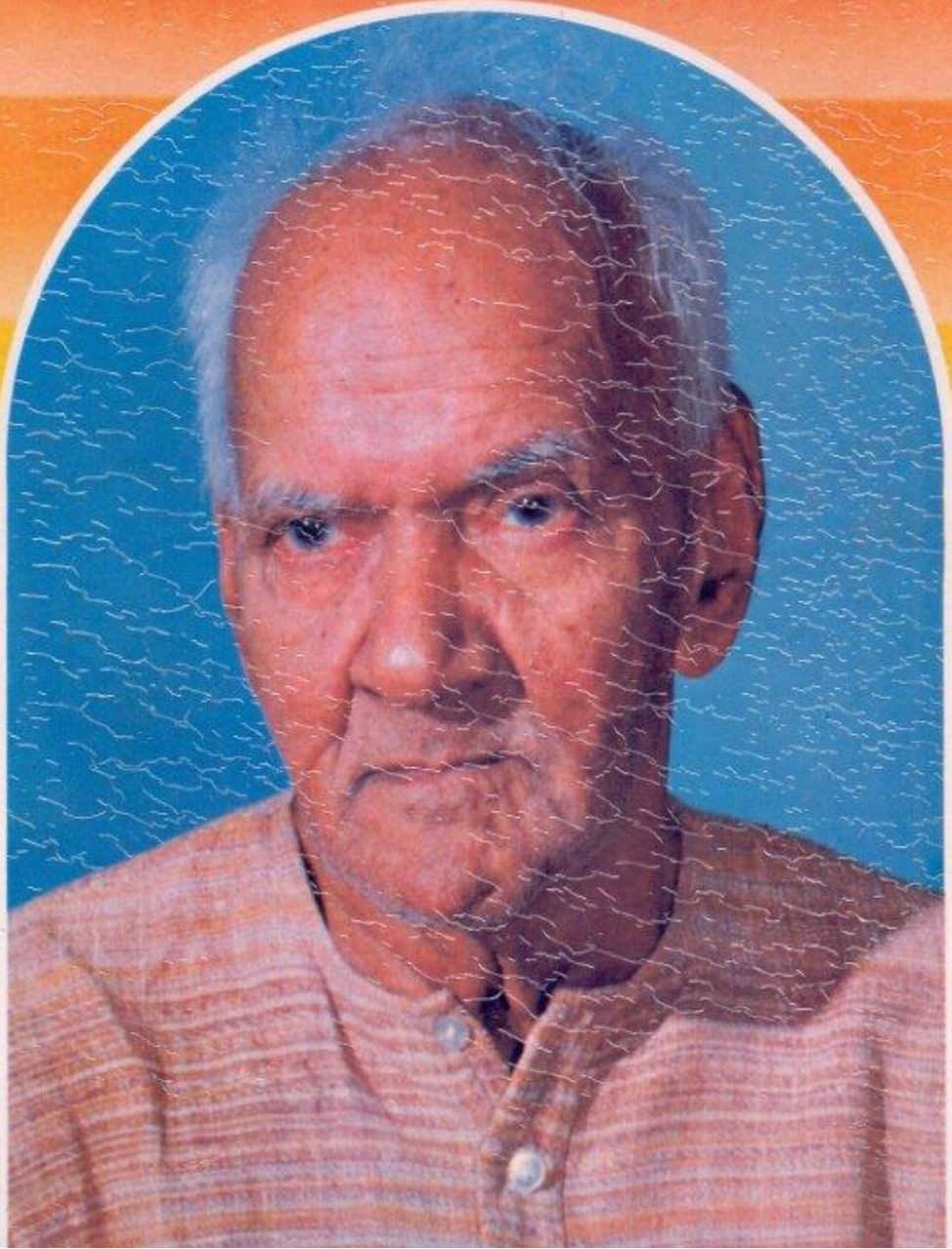
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ



www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ

सम्पादक
ब्रह्मवर्चस



प्रकाशक :

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा-२८१ ००३

© सर्वाधिकार सुरक्षित

द्वितीय संस्करण १९९८

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org



मूल्य १२५)

मुद्रक
जनजागरण प्रेस, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समर्पणम्

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ।।

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ।।

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ।।

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ।।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ।।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है। परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है। परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी माँ शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही हैं। उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया। आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं हैं किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानीगणों के वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देखा सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये। इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबोकर लिखा गया हो। हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता, मन को व विचारों को बदलता चला जाता है। लाखों-करोड़ों के मनों के अंतःस्थल को छूकर उसने उनका कायाकल्प कर दिया। रूसो के प्रजातंत्र की, कार्लमार्क्स के साम्यवाद की क्रान्ति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है। उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्बोधन से एक विराट् गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े करते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाये, कैसे छन्दबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर, १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पन्द्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता। वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आस-पास के, दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंतःकरण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था। साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा। जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे, छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे। किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुतः अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी। जाति-पाँति का कोई भेद नहीं। जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला

की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवा कर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा। उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किंतु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभासम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजास्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्ज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में सम्पन्न क्रिया-कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषिसत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष्य के चौबीस महापुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रान्ति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्बाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक-दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्त्वपूर्ण मोड़ था, जिसमें भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि- ''प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरुसत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गईं- संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।''

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने ताड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख-सुनकर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद

पैदल लम्बा रास्ता पार कर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल भी गये। छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई। जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अँग्रेजी सीखकर लौटे। आसनसोल जेल में वे श्री जवाहरलाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मदनमोहन मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से, मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना। यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान, बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जनआक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रान्तिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था। नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं। बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये। जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा झीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्तजी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्यमंत्री श्रीगोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधीजी के समक्ष पेश किये गये। बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए। कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुंज में सम्मानित किया। उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधानमंत्री राहत फण्ड के नाम समर्पित कर दीं। वैरागी जीवन का सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरू हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये। सांस्कृतिक, आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया, जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्रीकृष्णदत्तपालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रहकर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया। प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अतः पुनः सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमशः उनके अध्यवसाय घर- घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदयस्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ। स्थान बदला, आगरा से मथुरा आ गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे। पुस्तकों

का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंतःस्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही। साथ देने आ गयीं परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दुःखी था- पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रान्ति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि-विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परमवंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५७ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देशभर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्रायः पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनने महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूलधाती को पुनर्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञानसम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तप-पूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों के द्वारा विचार क्रान्ति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों को विशेष कार्य-भार सौंप परमवंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया-पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्तन, संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के

अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक, साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य, प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी-बूटी, यज्ञ विज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना, मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञानसम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का, एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युगशिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता व आस्तिकता संवर्धन एवं जन-जाग्रति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञासंस्थान, शक्तिपीठ, प्रज्ञामण्डल, स्वाध्याय-मण्डल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया-कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तपसाधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया-कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून, १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी के दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट-आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देवसंस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नवनिर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरुसत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युग संधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेध महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नवनिर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रान्ति ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर, १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद, दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु सम्पन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९५ में कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी गई। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो एक सौ आठ खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हुआ। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जाएँगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़-चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है। ❑❑❑

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूमिका

आस्तिकता मानव जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता है। बिना ईश्वर के मनुष्य इतनी लम्बी अपनी जीवन-यात्रा पूरी नहीं कर सकता। ईश्वर पर, उसके अनुशासन पर, उसके कण-कण में समाए अस्तित्व में विश्वास पर ही इस धरित्री का सारा क्रिया-कलाप टिका हुआ है। जिस दिन यह व्यापक परिमाण में उठ जाएगा एवं धरती स्वच्छन्द, भोगवादी विचारधारा पर विश्वास रखने वाले नास्तिकों से भरी होगी, सृष्टि का अस्तित्त्व ही खतरे में पड़ जाएगा। परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी के साहित्य की मूल धुरी 'आस्तिकवाद' रही है। विभिन्न तर्कों, प्रतिपादनों-दृष्टान्तों एवं प्रमाणों के माध्यम से जन-जन के मनों में आस्तिकवाद की प्रेरणा भरने का प्रयास किया है। वाङ्मय के इस खण्ड में ईश्वर-विश्वास करने वाले के जीवन में प्रतिक्रिया-स्वरूप क्या-क्या परिवर्तन-फलितार्थ देखने को मिलते हैं, विस्तार से पाठक पढ़ सकते हैं।

आस्तिकता का अर्थ है-आत्मविश्वास, दृढ़ इच्छाशक्ति एवं मनोबल की प्रचुरता। जिसे अपने आप पर पूर्णतः विश्वास है, वही सच्चे अर्थों में आस्तिक है, यह परिभाषा पूरी तरह वेदान्त के अध्यात्म ब्रह्म, तत्त्वमसि की भावना को चरितार्थ करती पूरे खण्ड में देखी जा सकती है। आज तथाकथित प्रच्छन्न आस्तिकता मंदिरों में जाकर पूजा-अर्चना करने के रूप में दिखाई देती है, परन्तु यह पूज्यवर की दृष्टि में विवेक की कसौटी पर कसने पर यह मात्र एक छलावा जान पड़ती है। जिसे ईश्वर पर विश्वास है, वह दिखावा नहीं करता। अपने आपको प्रगाढ़ आत्मविश्वास सम्पन्न बनाता है। यह एक ऐसी विभूति है जिसके माध्यम से अन्यान्य ऋद्धि-सिद्धियाँ स्वतः आ जाती हैं। ऐसा पूज्यवर का मत है ।

आज समाज में नैतिक मूल्यों का पतन दिखाई पड़ता है एवं ऐसा लगता है कि मानवी मूल्यों का मापदण्ड अब मात्र प्रत्यक्षवादी भोगवाद ही माना जाएगा। जन-मानस में यह भ्रान्ति तेजी से घर करती दिखाई पड़ती है कि तुरंत का लाभ, भले ही वह अनीति से उपार्जित धन द्वारा ही क्यों न हो, ही श्रेयस्कर है। ऐसी स्थिति में अन्यान्य व्यक्ति जो परोक्ष पर विश्वास करने हेतु विवेकशीलता नहीं जुटा पाते, इसी का अनुसरण करते देखे जाते हैं। ऐसी आस्था-संकट की परिस्थिति में आस्तिकता का प्रतिपादन वह भी व्यावहारिक दृष्टि में बोधगम्य प्रस्तुतीकरण करके जन-जन को उसके लिये सहमत कर लेना एक बहुत ही कठिन, दुःसाध्य कार्य था, जो पूज्यवर ने कर दिखाया है।

परमेश्वर के निराकार व साकार स्वरूप की विवेचना, व्याख्या करते हुए गुरुसत्ता ने ईश्वर की अनुभूति कैसे की जाय, कैसे उस सत्ता का मनन-चिन्तन कर अपने जीवन में उसे उतारा जाय, इसकी बड़ी विशद् व्याख्या इस खण्ड में की है। ईश्वर को पूज्यवर आदर्शों का समुच्चय-सत्प्रवृत्तियों का समूह, सद्गुणों की आधारभूत सत्ता की संज्ञा देते हुए लिखते हैं कि जब आस्तिकता सही मायने में जीवन में उतारी जाती है तो वह व्यक्ति में उन सभी सद्गुणों को विकसित-पुष्पित-पल्लवित करती चली जाती है, जिनकी संज्ञास्वरूप हम उसकी व्याख्या-विवेचना करते हैं। एक ऋषि, एक वैज्ञानिक के रूप में पूज्यवर विज्ञान की कसौटी पर ब्रह्म की सत्ता को कसते हुए इस खण्ड में सशक्त प्रतिपादन देते हुए देखे जा सकते हैं। ईश्वर-विश्वास का वैज्ञानिक आधार क्या हो एवं अल्बर्ट आइन्सटीन तथा हाइजन बर्ग, कार्लजुंग जैसी ऋषिसत्ताओं ने कैसे ब्रह्मसत्यं जगतमिथ्या की व्याख्या प्रस्तुत कर नास्तिकवाद को काटा है। यह परिजन इसमें पढ़ सकते हैं। ईश्वर का अर्थ है ऐश्वर्यमान सत्ता, जिसे हम 'इकालॉजी' के अनुशासन के रूप में अपने पूर्ण वैभव वाले स्वरूप में प्रकृति जगत में, ग्रह-नक्षत्र के रूप में, ब्रह्माण्ड में तथा सौंदर्य से भरी धरित्री पर, जीवजगत एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

वृक्ष-वनस्पतियों के रूप में देखते हैं। जलचक्र, नाइट्रोजनचक्र, पर्यावरणचक्र, जीवनचक्र आदि एक ही सत्य की व्याख्या करते हैं कि कोई न कोई अनुशासित विधि-व्यवस्था यहाँ है अवश्य। उस के बिना सृष्टि का तिनका भी नहीं हिल सकता। उसी के नियमन-अनुशासन में हर जड़-चेतन में स्पन्दन-गति-ऊर्जा संचार दृष्टिगोचर होता है। जब विज्ञान भी इस तथ्य को स्वीकार करता है तो क्योंकर हम उसे नकार बैठते हैं एवं कर्मों के प्रति सचेत न रह ऐसे कार्य कर बैठते हैं, जो उस ईश्वरीय अनुशासन की अवज्ञा-स्वरूप होते हैं व जिनका फल हमें भुगतना ही पड़ता है। आस्तिकवाद कर्मफल के सिद्धान्त पर, पुनर्जन्म पर एवं पाप-पुण्य के सिद्धान्तों पर विश्वास रखना सिखाता है। चाहे भौतिक हो, चाहे गणित, विज्ञान, चाहे भूगोल हो अथवा सृष्टि-विज्ञान-हर कसौटी पर ईश्वर के अस्तित्व को पूज्यवर ने इस खण्ड में सत्यापित करने का सफलतम प्रयास किया है।

यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि यह जीवन मात्र एकाकी संभव नहीं। जीवन व्यापार में ईश्वर को साझीदार बनाने की दूरदर्शिता अपनायी जा सके तो व्यक्ति हर दृष्टि से नफे में रह सकता है। ईश्वर की सामर्थ्य अनन्त है, उसकी अनुकम्पा से मिल सकने वाली सम्पदाएँ भी असीम हैं। ऐसी समर्थ शक्ति के साथ यदि किसी ने घनिष्टता के स्तर की मैत्री अर्जित कर ली तो समझना चाहिए कि पारस को छू लोहे के सोने बनने जैसी परिणति प्राप्त हो गयी।

'रसो वै सः' उक्ति में प्रेम को ही परमेश्वर माना गया है। प्रेम किसी भावुकता का नाम नहीं। प्रेम का अर्थ है-सघन स्तर की निश्छल आत्मीयता। इसमें देने व लेने की प्रक्रिया साथ-साथ चलती है, निर्बाध गति से चलती है। यही आस्तिकता है। सबसे बड़ी फलश्रुति जो आस्तिकता से उपलब्ध होती है, वह है भरपूर सुरक्षा-निर्भय होकर जीने का आश्वासन, तनावमुक्त हँसती-हँसाती, खिलती-खिलाती जिन्दगी। यही तो वह जीवन अमृत है जो हर किसी को अभीष्ट है। इन्हीं की तलाश में तो व्यक्ति वासना, तृष्णा अहंता रूपी भवबंधन से जूझता है। मुक्ति की कामना करता रहता है, किन्तु ईश्वर अवलम्बन के अभाव में उसे सम्पादित नहीं कर पाता। निश्चित ही पाठकगण इस खण्ड से वह सब कुछ प्राप्त कर सकेंगे जो किसी को भी जीवन-यात्रा पर चलने के लिए पाथेय के रूप में चाहिए। आज की नास्तिकता की वेला में आस्तिकता की ठण्डी बौछारें लेकर अंदर की शांति देता है वाङ्मय का यह खण्ड।

-ब्रह्मवर्चस

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
हम ईश्वर से विमुख न हों	१.१
आस्तिकता की सही परिभाषा	१.१
आस्तिकता की कसौटी	१.१
आस्तिकवाद का विज्ञानसम्मत आधार	१.२
आस्तिकता विवेकवानों को ही फलती है	१.४
आस्तिक बनो	१.५
विपन्नताओं से उबरने का एकमात्र उपचार	१.७
कष्टों का अर्थ यह तो नहीं कि ईश्वर है ही नहीं	१.९
सच्चरित्रता का मूल आधार ईश्वर-भक्ति ही है	१.१०
नैतिकता अविच्छिन्न रूप से जुड़ी है-आस्तिकता से	१.१२
आस्तिकता बनाम नीति-निष्ठा	१.१३
आस्तिकता अनुभूतिगम्य है	१.१४
आस्तिकता जीवन की अनिवार्य आवश्यकता	१.१६
आस्तिक बनाम नास्तिक	१.१७
कितना खोखला है यह नास्तिकवाद	१.१७
नास्तिकता सबसे बड़ा अन्धविश्वास है	१.१९
नास्तिकता कोई विचारधारा नहीं चित्त की स्थिति है	१.२२
स्पष्ट नास्तिकतावाद बनाम प्रच्छन्न नास्तिकवाद	१.२४
तर्क की कसौटी पर एक नास्तिकवादी दर्शन	१.२५
नास्तिकता के मायाजाल से उबरें	१.२७
क्या ईश्वर समुच ही मर गया	१.२७
ईश्वरीय-सत्ता पर अविश्वास न करें	१.३०
ईश्वर विश्वास और उसके फलितार्थ	१.३१
ईश-विश्वास किसी का कभी निष्फल नहीं गया	१.३३
ईश्वर विश्वास और आत्म-विकास की परम्परा	१.३४
ईश्वर विश्वास क्यों अनिवार्य है?	१.३६
एक बुद्धिमत्तापूर्ण सत्ता का नाम	१.३८
ईश्वर की सत्ता और महत्ता	१.३९
परमात्मा का अस्तित्व और अनुग्रह	१.४१
ईश्वर का अस्तित्व एवं अनुभूति	१.४२
आत्महीनता की विडम्बना से बचें, स्वयं को महान बनायें	१.४४
ईश्वर से जुड़ने का उपाय	१.४६
ईश्वर कैसा है व कहाँ है?	१.४८
ईश्वर अनुभव का विषय है	१.४९
ईश्वर और उसकी अनुभूति	१.५०
परमेश्वर का निराकार और साकार स्वरूप	१.५२
ईश्वर के साकार और निराकार रूप की विवेचना	१.५८
व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी, सतचेतन घन आनन्द राशी	१.५४
ईश्वर की समीपता और दूरी की परख	१.५५
हम परमात्म सत्ता से ओत-प्रोत हैं	१.५६
अनन्त ईश्वर की समीपता से अनन्त सामर्थ्य की प्राप्ति	१.५७
हम ईश्वर के होकर रहें-उसी के लिये जियें	१.५८
विज्ञान भी स्वीकारता है अब परब्रह्म की सत्ता को	२.१
विज्ञान ईश्वर के अस्तित्व से इनकार नहीं कर सकता	२.१
नास्तिक-दर्शन पर वैज्ञानिक आक्रमण	२.३
विज्ञान द्वारा प्रमाणित अन्तर्चेतना को भूला न जाय	२.५
ब्रह्म सत्य जगन्माया-अल्बर्ट आइन्सटीन की दृष्टि में	२.६
सर्वत्र अद्वैत ही बिखरा पड़ा	२.९
आत्मा-परमात्मा का अस्तित्व ज्ञानसंगत व विज्ञानसंगत	२.१०
विश्व-ब्रह्माण्ड में ओत-प्रोत ब्रह्मसत्ता	२.१२
कण-कण में बसी है चेतना	२.१४
एक ही शक्ति का खेल है, यह सारा	२.१६
ब्रह्म-सत्ता और उसकी सर्वव्यापकता	२.१७
जड़ और चेतन में एक ही सत्ता ओत-प्रोत है	२.१९
क्या प्रमाण है कि ईश्वर नहीं है?	२.१९
'सर्वंखिल्विदं ब्रह्म' को विज्ञान की मान्यता	२.२१

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
सृष्टि का नियन्ता व अधिपति कौन?	२.२३
निखिल ब्रह्माण्ड में संव्याप्त एकात्मता	२.२४
सृष्टि-संरचना भी परमसत्ता को सिद्ध करती है	२.२७
कौन है इस अनुशासित सृष्टि का नियन्ता	२.२९
वैज्ञानिक दृष्टि में ईश्वर का स्वरूप	२.३०
देवसत्ता और असुरसत्ता का अस्तित्व	२.३१
हम हाइड्रोजन गैस जैसे हलके रहें	२.३२
हाइड्रोजन और ईश्वर का साम्य	२.३४
लघुत्तम में महत्तम	२.३५
परमाणु-शक्ति से बढ़कर जीवाणुसत्ता	२.३६
धरती की तरह ही आत्म-सत्ता भी सामर्थ्य-पुंज	२.३८
अन्तरिक्ष से लेकर वृक्ष-वनस्पति तक फैली आत्मा	२.४०
अचेतन कुछ भी नहीं-जड़ भी चेतन	२.४२
सृष्टि के अणु-अणु में सक्रिय परमात्म-सत्ता	२.४३
परमात्म-सत्ता की इच्छाशक्ति-आकाश-तत्व	२.४४
दृश्य आयामों से परे जीवन जीकर तो देखें	२.४७
इन्सान सर्वशक्तिमान माता-पिता की सन्तान	२.४९
विनाश नहीं, सतत विकास ही एकमात्र नियति	२.५०
तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः	२.५२
स्रजेता की एक अनुपम कृति यह सृष्टि	२.५४
''पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते	२.५७
विश्व का तात्विक स्वरूप जानने के लिए साधना की आवश्यकता	२.५८
नियामक सत्ता के सुनियोजित क्रिया-कलाप	२.६०
वेदान्त की भाषा में परमात्म-सत्ता का काव्य	२.६१
सृष्टि के स्वरूप में झाँकती अदृश्य-सत्ता	२.६३
स्रष्टा की अगम्य संरचना	२.६५
गणितीय नियमों से सुसंचालित स्रष्टा के क्रिया-कलाप	२.६७
जीव वस्तुतः ब्रह्म का ही एक घटक है	२.६९
विराट-ब्रह्म का भावनात्मक पार-दर्शन	२.७०
सृष्टि के अन्दर सृष्टि और अनन्त सृष्टि-शृंखला	२.७२
भारतीय-दर्शन का विस्तार व वैज्ञानिक विश्लेषण	२.७५
ब्रह्म-सत्ता का अस्तित्व है या नहीं?	२.७७
ईश्वर सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान है	२.७९
भूल-भटककर भेंट हुई भगवान से	२.८१
मायापति विष्णु और उनकी योगमाया	२.८१
प्रकाश प्रवेश की भूमिका और परमात्मा के दर्शन	२.८४
भटकते न फिरें, ध्रुव के साथ जुड़ें	३.१
तर्कों की भाषा से परे है ईश्वर की सत्ता	३.१
क्या ईश्वरीय सत्ता सर्वव्यापी नहीं है	३.२
क्या सचमुच ईश्र पक्षपात करता है	३.४
क्या ईश्वर पर मुकदमा चलाया जा सकता है	३.६
परमसत्ता न तो अदूरदर्शी है, न अविवेकी ही	३.७
भगवान से सफाई किस बात की माँगें?	३.१०
पाप और ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी से मत डरिये	३.११
ईश्वर क्षमा कर दे तो भी पाप दण्ड नहीं मिटेगा	३.१२
जो ईश्वर से डरेगा उसे और किसी से नहीं डरना है	३.१४
'कर्मण्येवाधिकारस्ते'	३.१५
ईश्वर का आह्वान और आमंत्रण स्वीकार करें	३.१६
ईश्वर से माँगिए	३.१७
ईश्वर से अपने लिए क्या माँगें ?	३.१८
भगवत् प्रेम का त्रिकोण	३.२०
वैष्णव की करुणा भरी आत्मीयता	३.२१
भगवान का असीम दान	३.२२
विश्व प्रेम ही ईश्वर प्रेम है	३.२४
प्रेम में परमेश्वर	३.२६
प्रेममय परमेश्वर	३.२७
स्रष्टा के अनुदानों की उपेक्षा न हो	३.२९
प्राण ही परमेश्वर है	३.३०
हे परम प्रभु हमें पवित्र बना दे	३.३१
हम उत्कृष्टता की ओर अनवरत गति से अग्रसर हों	३.३२

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
समुद्र की तरह हमारा अंतरंग भी महान है	३.३४
अन्तरात्मा परमात्मा का प्रतीक-प्रतिनिधि	३.३६
भगवान मनुष्य की अन्तरात्मा में ओत-प्रोत है	३.३८
विभूतिवान व्यक्तियों का अभिवर्द्धन आवश्यक	३.४१
अणुशक्ति से अधिक सामर्थ्यवान आत्मशक्ति	३.४२
सर्वोपरि और सर्वशक्तिमान सत्ता-परमात्मा	३.४४
तुम्हें भगवान पूछते फिरते हैं	३.४५
घट-घटवासी उस परमसत्ता के प्रति निष्ठा	३.४७
हमारी जीवन नौका का एकमात्र खिवैया	३.४८
हे दयानिधान! आप हमें दुःख देते रहें	३.४९
दर्शन पर्याप्त नहीं, भगवान को साथी और सेवक बनायें	३.५०
परमात्मा ही प्रकाश है	३.५१
परमात्मा की अखण्ड ज्योति	३.५१
ईश प्रार्थना में निहित चुम्बकीय शक्ति	३.५२
ईश्वरीय अनुग्रह सबके लिये सहज सुगम	३.५३
अनुशासित विश्व-व्यवस्था और ईश्वरीय सत्ता	३.५५
इस सुन्दर दुनिया को बर्बाद न करें	३.५६
प्रतिकूलताओं को चुनौती देती मानवी-चेतना	३.५७
अदृश्य बाजीगर की मनोरंजन की पिटारी	३.५८
जो दिखाई देता है, वह भी सत्य नहीं	३.५९
प्रत्यक्ष से परे परोक्ष	३.६१
भटकते न फिरें ध्रुव के साथ जुड़ें	३.६२
चमत्कारों का केन्द्र-ईश्वर	३.६४
ईश्वरीय सत्ता का अनुभव और हमारा अन्तर्ज्ञान	३.६५
जड़-चेतन सभी में है, उसी का क्रीड़ा-कल्लोल	३.६६
अद्वैतवाद या सर्वेश्वरवाद	३.६८
सर्वव्यापी परमेश्वर की दिव्य-सत्ता	३.६९
जड़-चेतन में समाई हुई परमशक्ति	३.७१
यहाँ कुछ भी असम्भव नहीं	३.७२
तनिक उस पर विश्वास तो रखें	३.७३
कण-कण में संव्याप्त चेतन सत्ता	३.७४
साँस-साँस में रोम-रोम में बसते हैं भगवान	३.७५
सौन्दर्य बोध	३.७७
भगवान का सुबोध और सार्थक नाम सच्चिदानन्द	३.७७
सब धर्मों में एक ही है, उस परमसत्ता का स्वरूप	३.७८
ईश्वर एक है, उसे एक ही रहने दें	३.७९
विराट सत्ता की दर्शन-झाँकी	४.१
यद्ब्रह्म तज्ज्योतिः यज्ज्योतिः स आदित्यः	४.१
ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या का व्यावहारिक स्वरूप	४.२
''ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या का तत्वदर्शन''	४.३
परब्रह्म की सत्ता के कारण और प्रमाण	४.४
अजस्र अनुदानों से भरी-पूरी परब्रह्म की सत्ता	४.६
विज्ञानमानन्द ब्रह्म	४.७
ब्रह्म की सर्वव्यापकता	४.८
पूर्ण ही से पूर्ण उत्पन्न हुआ	४.८
सच्चा सुख अन्ततः है कहाँ?	४.१०
ॐकार रूपी ईश्वर की विवेचना	४.११
ईश्वरीय-सत्ता का तत्व-ज्ञान	४.१२
तत्वज्ञान की परम पवित्रता	४.१४
वह परम सत्ता एक ही है	४.१५
परमेश्वर एक है-अनेक नहीं	४.१७
संसार में केवल ईश्वर ही सत् है	४.१९
ईश्वर हमारा सच्चा जीवन सहचर है	४.२०
यह जीवन प्रभुमय बन जाय	४.२२
प्रभु भक्ति का वैदिक स्वरूप	४.२४
ईश्वर का मनुहार बनाम आत्म-परिष्कार	४.२६
ईश्वर का द्वार सबके लिए खुला है	४.२७
ईश्वर के अनुग्रह के वंचित न रहें	४.२८
ईश्वर का अनन्त अनुदान और हमारा प्रतिदान	४.२८
ईश्वरार्पण अर्थात् श्रेष्ठता को अपनाना	४.३०
हम ईश्वर के-ईश्वर हमारा	४.३०
सत्यं, शिवं, सुन्दरम् से युक्त जीवात्मा	४.३१
अन्तर्जगत में प्रवेश करें, सत्य को पायें	४.३३
आत्मा को कैसे जानें? परमात्मा को कैसे देखें?	४.३५
परमात्मा का सच्चा साक्षात्कार	४.३७
समस्त ज्ञान का आधार परमात्मा ही है	४.३९

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
ईश्वर भक्ति और प्रेम-साधना का तत्वज्ञान	४.४०
भगवान को प्राप्त करने का सुनिश्चित मार्ग	४.४२
भगवान को किससे देखें	४.४३
उस परम ज्योति को किससे जानें?	४.४४
विराट सत्ता की दर्शन-झाँकी	४.४५
ईश्वर के दर्शन और सम्पर्क का मर्मस्थल	४.४७
परमात्म-सत्ता के विराट रूप का दर्शन	४.४९
गति का दर्शन और परमगति	४.५०
पूर्णमदः पूर्णमिदम्	४.५२
आनन्द का उद्गम-आत्मभाव	४.५२
समर्पण का आनन्द और उसकी अनुभूति	४.५४
ईश्वरानुभूति से ब्रह्मानंद का रसास्वादन	४.५६
सच्चिदानन्द-परब्रह्म-परमात्मा	४.५७
हृदयगुहा में होते हैं परमात्मा के दर्शन	४.५८
ईश्वर दर्शन पवित्र अन्तःकरण में	४.५९
आत्मसाक्षात्कार और ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग	४.६१
ईश्वर दर्शन इस प्रकार होता है	४.६३
मुक्ति और ईश्वर-प्राप्ति पृथक नहीं एक हैं	४.६४

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हम ईश्वर से विमुख न हों

आस्तिकता की सही पारिभाषा

आस्तिकता, हृदय की सहज वृत्ति है । किन्तु इसका तात्पर्य किसी एकदेशीय वस्तु, स्थिति व्यक्ति के साथ एकात्म नहीं है । इसकी एक ही कसौटी है "सुहृदं सर्व भूतानाम्" जो इस कसौटी पर खरा नहीं उतरता उसे आस्तिक मानना, मनवाना एक प्रवंचना भर है । ये उद्‌गार हैं देशबन्धु चितरंजन दास के । जो स्वयं को इसी कसौटी पर जाँचा-परखा करते थे ।

कल्याण के आदि सम्पादक श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार को उन्हें निकट से देखने-परखने का अवसर मिला । अपने एक संस्मरण में कहते हैं कि अगाध विद्वत्ता के साथ करुणा और अपरिग्रह का भण्डार उनमें भरा हुआ था । उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य दीन विद्यार्थी, धनाभाव से चिकित्सा कराने में असमर्थ रोगी, मृत पिता का शवदाह करने में अशक्त निर्धन कंकालशेष, क्षुधार्त आदि विविध रूपों में अभावग्रस्त मानवता को तृप्त करना था । पोद्दार जी को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि सुबह से शाम तक जितना कमाते वह सब सूर्य की किरणों के साथ विलीन हो जाता । दो हाथों से धन संग्रह करते और उसे हजार हाथों तक पहुँचा देते थे ।

एक बार की बात है, डुमरांव राज्य का मुकदमा जीतने पर उन्हें एक दिन में एक लाख रुपये से अधिक मेहनताने में मिला । घर पहुँचते-पहुँचते सारा धन देश और समाज की विविध आवश्यकताओं में नियोजित हो गया । गाँधीजी ने उनकी यह बात सुन रखी थी । जब वह उनसे मिलने घर गए उस समय पोद्दार जी भी मौजूद थे । गाँधीजी ने दास बाबू से पूछा-सुना है आपकी रुपये में पन्द्रह आने कमाई लोग ठग ले जाते हैं ।

देशबन्धु ने उत्तर दिया बापू । मैं आस्तिक हूँ । मेरा भगवान, उदास, दुःखी, पीड़ित रोगी पड़ा रहे और मैं शौक-मौज में धन उड़ाऊँ यह मेरे से सम्भव नहीं । विभिन्न रूपों में जीवन जीने वाले भगवान को नैवेद्य लगाकर उसका उच्छिष्ट ग्रहण करना ही मुझे प्रिय है ।

पास बैठे हुए एक मित्र बोले लेकिन फिर भी आपत्ति-विपत्ति के लिए कुछ रखे बगैर इस तरह खुले हाथों सेवा कार्यों में लगाना बुद्धिमानी तो नहीं कही जा सकती। देशबन्धु कुछ रोष भरे स्वर में बोले-जो मेरे भगवान की सेवा में अड़ंगा लगाए, रोड़े अटकाए ऐसी बुद्धि को मैं तिलांजलि देता हूँ। ऐसे बुद्धिमान बनने से मैं बेवकूफ भला ।

परमात्मा अनेक रूपों में विपत्ति में पड़ा तड़फता रहे और उसकी सेवा करने के स्थान पर मैं भावी विपत्ति की आशंका से परेशान होऊँ और धन के ढेर लगाऊँ यह मेरे से सम्भव नहीं । भगवान ने मुझे हाथ-पाँव, मस्तिष्क क्षमताएँ दी हैं । वर्तमान में मैं इनका भरपूर उपयोग देने वाले के लिए कर लेना चाहता हूँ । भविष्य में क्या होगा अच्छा या बुरा इसके बारे में व्यर्थ अभी सोच-सोच कर परेशान क्यों होऊँ ।

आस्तिकता मुझे विरासत में मिली है । इसे मैं किसी कीमत में खोना नहीं चाहता । मेरे लिए इसका सीधा-सादा तात्पर्य है अपनी शारीरिक, मानसिक, आर्थिक शक्ति का एक-एक कण भगवान की सेवा में लगे । फिर सभी कुछ भगवान का ही तो है । मैं तो भगवान की चीज भगवान को अर्पित करता हूँ । इसमें किसी पर मेरा अहसान तो नहीं । यदि ऐसा न करूँ तो नास्तिक और बेईमान समझा जाऊँ । आस्तिकता की यह नई परिभाषा सुनकर गाँधीजी भाव-विभोर हो गए और मित्र-मण्डली आश्चर्यचकित ।

आस्तिकता की कसौटी

सन्त प्रवर महात्मा तुलसीदास की अनुभूति है-

उगा जे रामचरन रत विगत काम मद क्रोध ।
निज प्रभुमय देखहि जगत कासन करहि विरोध ।।

जो भगवान को मानते हैं, उन पर श्रद्धा करते हैं, उनके अस्तित्व में विश्वास रखते हैं, उन्हें न काम होता है, न मद होता है और न क्रोध । संसार के अणु-अणु में प्रभु का दर्शन करते हैं तब उनका विरोध किसके साथ हो ? तुलसीदास जी की आस्तिकता की इस परिभाषा पर किन-किन आस्तिकों को आज परखा जा सकता है ?

धर्म के नाम पर बड़े-बड़े आडंबर करने वालों की आज कमी नहीं है, लेकिन उनको जीवन में प्रभु के दर्शन नहीं होते । ऐसा मालूम होता है जैसे जीवन के अन्य व्यापारों की तरह धर्म का भी वे एक व्यापार कर लेते हैं और उससे अधिक उसकी कोई कीमत नहीं है ।

भगवान पर मेरा विश्वास है ऐसे कहने वाले भी मिलते हैं लेकिन ये शब्द मुँह से निकलते हैं या हृदय से, इसका निर्णय करना कठिन है । उनका व्यवहार रागद्वेष पूर्ण देखा जाता है और स्वयं भी उन्हें अपने विश्वास शब्द का विश्वास नहीं होता । प्रभु आज उपेक्षणीय हो गये हैं लेकिन तब भी 'हम आस्तिक हैं,' इसे बड़े जोर से चिल्लाकर कहते लोग पाये जाते हैं ।

जिसके हृदय में प्रभु का विश्वास है और जो उसका दर्शन करता है, उसका जीवन प्रभुमय होता है । उसके जीवन में समत्व होता है । वह संसार को प्रभु का विग्रह केवल मानता ही नहीं, अनुभव भी करता है । प्रभु उसके आधार में, प्रभु उसके जीवन में समा जाते हैं । वह व्यक्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रभु की अर्चना के लिए किसी समय को अपने कार्यक्रम में अलग नहीं रखता । उसके जीवन का कार्यक्रम ही प्रभुमय होता है । उसका खाना-पीना, सोना-जागना, चलना- फिरना तथा जाग्रत के समस्त व्यवहारों में प्रभु समाये रहते हैं । ऐसे आस्तिक के लिए सम्प्रदायों के अलग नाम नहीं हैं, उसके लिए प्रत्येक घर प्रभु का मन्दिर है और प्रत्येक शरीर प्रभु का विग्रह । यहाँ भेदभाव की गुंजाइश नहीं रहती । वह संसार में भगवान की नित्य लीला का रसास्वादन करता है और स्वयं को भी भगवान की लीला का एक पात्र मात्र समझता है ।

आस्तिक की न अपनी कोई कामना होती है, न माँग । वह न किसी से ऊँचा होता है न नीचा, न बड़ा न छोटा, न पवित्र न अपवित्र । उसको किसी प्रकार अभाव नहीं सताता ।

आज की दुनिया रागद्वेष से पूर्ण है । ऊँच-नीच के भावों से भरी हुई है । यद्यपि मन्दिर-मस्जिद और गिरजाघरों की संख्या बराबर बढ़ रही है लेकिन आस्तिकता की सब ओर उपेक्षा की जा रही है । हम कहने को तो आस्तिक बनते हैं लेकिन हृदय में उसके लिए कोई स्थान नहीं है । इस तरह हमारा जीवन आत्म-प्रवंचना से भरा हुआ है । हम अपने आपको धोखा दे रहे हैं या अपनी समझ को लेकर हम धोखा खा रहे हैं । धोखे का यह जीवन आस्तिक जीवन नहीं है इसे भी न समझने वालों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है ।

भारत के जीवन में जब-जब आस्तिकता का जमाना रहा है, वह हमेशा खुशहाल रहा है लेकिन जैसे-जैसे उसकी उपेक्षा की जाती रही है, उसकी खुशहाली हटती गई है । आज कलह और क्लेशों से भरा हुआ भारत हम सबों की नास्तिकता का डिमडिम घोष कर रहा है और फिर भी हम अपने आपको आस्तिक समझ बैठे हैं ।

आस्तिकता अनन्त शांति की जननी है । जहाँ आस्तिकता होगी वहाँ अशान्ति का कोई चिन्ह दृष्टिगोचर न होना चाहिए । ईश्वर का सच्चा विश्वासी पवित्र अन्तः-करण का होता है तदनुसार उसके व्यवहार तथा कर्मपरिपाक भी सुमधुर ही होते हैं ।

आस्तिकवाद का विज्ञानसम्मत आधार

भारतीय-संस्कृति की मान्यताएँ पूर्णतः वैज्ञानिक हैं । कर्मफल की सुनिश्चितता एवं पुनर्जन्म की मान्यता हमारी संस्कृति की एक सबसे बड़ी विशिष्टता है । इसमें ऋषियों ने मनुष्य के नैतिक-चारित्रिक एवं आत्मिक-उत्थान के जिन महत्वपूर्ण तथ्यों का समावेश किया है, वे निश्चय ही सम्पूर्ण मानवजाति के लिए समान रूप से हितकारी हैं । यह मान्यता जहाँ आत्मा की अमरता का-जीवन को अनवरत रूप से गतिशील रहने का विश्वास दिलाती है और प्रगति प्रयासों को तनिक-सा विराम लेने के उपरान्त फिर से गतिशील बनने का उत्साह उत्पन्न करती है, वहीं यह मनुष्य को अपने जीवनक्रम में नीतिमत्ता को अनिवार्य रूप से अपनाये रखने को भी बाध्य करती है । प्राचीनकाल में जब भारतीय-संस्कृति चहुँओर संव्याप्त थी तब समस्त संसार इन मान्यताओं एवं सिद्धान्तों का अनुकरण करके गौरव की अनुभूति करता था ।

जीवन की अविच्छिन्नता एक सच्चाई है और पुनर्जन्म उसका प्रत्यक्ष प्रमाण । मरने के बाद दूसरा जन्म मिलने का तथ्य हिन्दू-धर्म में सदा से माना जाता रहा है । चार्वाक के अतिरिक्त सभी भारतीय-दर्शन कर्म एवं पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं । पुराणों में इसका पग-पग पर वर्णन मिलता है । धर्मशास्त्रों में, अगणित आप्तवचनों में आत्मा के पुनर्जन्म लेने की बात कही गई है । चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के उपरान्त मनुष्य जन्म मिलने, पुण्य और पाप का फल भोगने के लिए फिर से जन्म मिलने की बात को धर्मग्रन्थों में अनेकानेक उदाहरणों के साथ समझाया गया है । जैन एवं बौद्ध मतावलम्बियों ने इसे अपने ढंग से प्रतिपादित किया है ।

वस्तुतः पुनर्जन्म का सिद्धान्त अकाट्य है । ऋग्वेद सूत्र ४।१८।१ में कहा गया है कि यह मार्ग अनादिकाल से चलता आ रहा है, जिसके द्वारा विभिन्न लोगों और एक दूसरे को चाहने वाले सभी पुरुष ज्ञानीजन आदि उत्पन्न होते हुए जीवनयात्रा पर अग्रसर होते हैं । उच्च पद वाले समर्थ व्यक्ति भी इसी परम्परागत मार्ग द्वारा ही उत्पन्न होते हैं । वृहदारण्यकोपनिषद् १।४।१० में ऋषि पुनर्जन्म का समर्थन करते हुए कहते हैं-"शुभ कर्म करने वाला शुभ होता है और पाप करने वाला पापी होता है । पुरुष पुण्य-कर्म से अगले जन्म में पुण्यात्मा बनता है और पाप कर्म से पापी होता है ।"

कोई-कोई कहते हैं कि यह पुरुष काममय ही है । वह जैसी कामना करता है,वैसा ही संकल्प करता है, जैसे संकल्प वाला होता है, वैसा ही कर्म करता है और जैसा कर्म करता है वैसा ही फल प्राप्त करता, जन्म ग्रहण करता है । वृहदारण्यक उपनिषद् के ही ४।४।५, ६।८।९।१४ सूत्रों में जन्म ग्रहण करने तक की विस्तृत विवेचना की गई है । छान्दोग्योपनिषद् में भी पुनर्जन्म का प्रभावशाली ढंग से वर्णन किया गया है । प्रश्नोपनिषद् का कथन है-"वहाँ जो लोग अभीष्ट पूर्ति को ही कर्म मानकर उपासना करते हैं वे चन्द्रलोक को प्राप्त करते हैं, वे जब लौटकर आते हैं तब सन्तान की इच्छा वाले वे ऋषि दक्षिण में जाते हैं।" एतरेयोपनिषद् २।१।४।५ में उल्लेख आता है "पिता के पुण्य कार्यों के निमित्त पिता की ही आत्मा पुत्र रूप में प्रतिनिधि बनती है, तब पितारूप आत्मा अपना कर्त्तव्य पूरा हो जाने पर मृत्यु को प्राप्त होकर संसार से गमन करती है और जाकर फिर जन्म लेकर लौट आती है । यही इसका तृतीय जन्म है ।"

श्रीमद्भागवतगीता में दूसरे अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है-"जिस तरह इस जीवन में बचपन, यौवन और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वृद्धावस्था आते हैं इसी तरह आगे दूसरा शरीर प्राप्त होता है ।'' इसे अधिक स्पष्ट करते हुए इसी ग्रन्थ के २।२२ में वे कहते हैं कि-जिस तरह कोई व्यक्ति अपने पुराने कपड़ों को उतारकर नये वस्त्र धारण करता है, ठीक उसी तरह आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर नये शरीर को ग्रहण करती है । क्योंकि जिसने जन्म लिया है उसे मृत्यु की गोद में अवश्य जाना पड़ेगा और जिसकी मृत्यु हुई है उसका जन्म लेना सुनिश्चित है । अपना उदाहरण प्रस्तुत करते हुए वे अर्जुन को समझाते हैं कि मेरे और तेरे अनेकों जन्म हो चुके हैं । उनको तो मैं जानता हूँ पर तू नहीं जानता । पुनर्जन्म का उद्देश्य समझाते हुए और पूर्ण विकास का आश्वासन देते हुए वे कहते हैं कि ''प्रयत्नपूर्वक परिश्रम करते-करते पापों से पवित्र होता हुआ कर्मयोगी अनेक जन्मों के बाद सिद्धि पाकर अन्त में उत्तम गति को पा लेता है । ''

मृत्यु के बाद जैसी गति जीव की होती है वैसी गति और जन्म को वह प्राप्त होता है । इसी को स्पष्ट करते हुए आपस्तम्ब धर्मसूत्र २।१।२।२-३।५।६ में कहा गया है कि विभिन्न वर्णों के लोग अपने व्यवस्थित कर्त्तव्यों के सम्पादन से सर्वोच्च एवं अपरिमित स्वर्गीयसुखों का भोग करते हैं । कर्मफल शेष होने के कारण पुनः लौट आते हैं, और यथोचित जाति या कुल, रूप, वर्ण, बल, बुद्धि, प्रज्ञा, सम्पत्ति के साथ जन्म लेते हैं, कर्त्तव्यपालन का लाभ उठाते हैं और यह सब आनन्द में परिणत होता है, जो चक्र के समान दोनों लोकों में होता है । यही नियम दुष्कर्म करने पर भी लागू होता है और दुष्परिणाम नारकीय यातनाएँ भुगतने के रूप में भी सामने आता है । यही बात गौतम धर्मसूत्र ११।२९।३० में भी कही गई है । गीताकार ने ९ वें अध्याय में इसी तथ्य का उद्घाटन किया है ।

आत्मा की अमरता और शरीर की नश्वरता भारतीय दर्शन का प्राण है । इसकी अमिट छाप अन्यान्य धर्मों एवं दर्शनों पर भी पड़ी है । उसे किसी न किसी रूप में उन्होंने स्वीकारा और अपनाया है । जातक-कथाओं में भगवान बुद्ध के सैकड़ों पिछले जन्मों की कथाओं का संग्रह है । ईसाई एवं मुस्लिम धर्मों में तो पुनर्जन्म की मान्यता स्पष्ट नहीं है पर उनके यहाँ भी आत्मा का अस्तित्व मरने के बाद भी बने रहने और न्याय के दिन ईश्वर के सम्मुख उपस्थित होने की बात कही गई है । ईसा का यह कथन कि जब तक मनुष्य पुनः जन्म नहीं लेता वह ईश्वर के दर्शन नहीं कर सकता, पुनर्जन्म का ही संकेत है । यहूदी लोग भी इस सिद्धान्त को मानते हैं । दक्षिण अमेरिका, आस्ट्रेलिया और अफ्रीका के निवासी पुनर्जन्म की मान्यता पर विश्वास रखते हैं । तिब्बत में दलाईलामा की नियुक्ति ही इसी सिद्धान्त के आधार पर की जाती है । इस प्रकार विश्व के प्रायः समस्त धर्मों के अनुयाइयों ने किसी न किसी रूप में पुनर्जन्म की मान्यता को स्वीकार किया है ।

पुरातनकाल में अनेक देश पुनर्जन्म में विश्वास करते थे । मिश्र एवं यूनान के निवासियों में यह विश्वास था कि मानव आत्मा अमर है और शरीर की मृत्यु हो जाने पर यह किसी अन्य जीवित वस्तु में, जो जन्म लेने वाली होती है, प्रवेश कर जाती है । मिश्र की पूजा-पद्धति इसकी साक्षी है । हिरोडोटस के अनुसार यूनानी दार्शनिकों ने भी इस सिद्धान्त को अपनाया था । यही कारण है कि पाइथागोरस की रचनाओं में इसका विशद वर्णन मिलता है । हाप्पिन्स एवं मैकहोनेल प्रभृति विद्वानों ने पाइथागोरस के ऊपर पड़ने वाले इस भारतीय प्रभाव की पुष्टि की है । एम्पीडाकिल्स एवं प्लेटो जैसे ग्रीस के प्रख्यात दार्शनिकों ने आत्मा के पूर्वजन्म और उत्तरजन्म में विश्वास किया है । जर्मन दार्शनिक मैक्समूलर, गेटे, फिशर आदि ने भी इसका समर्थन किया है । केनेथवाकर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि सर्किल आफ लाइफ' में लिखा है कि ईसा के काल में पुनर्जन्म का सिद्धान्त भारत में प्रसिद्ध था । सुविख्यात जर्मन दार्शनिक कान्ट ने नैतिक-चेतना के लिए मृत्यु के उपरान्त जीवन की निरन्तरता एवं अमरता को आवश्यक एवं स्वयंसिद्ध माना है । भारतीय ऋषियों, दार्शनिकों ने अपनी प्रखर बुद्धि, योगशक्ति और तर्क प्रणाली से यह सिद्ध किया था कि आत्मा की मृत्यु कभी भी नहीं होती। वह एक अजर-अमर अविनाशी तत्व है, जो दैवी नियमानुसार-कर्मफल की सुनिश्चित विधि-व्यवस्था के अनुसार भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होती रहती है । आधुनिककाल के कुछ पाश्चात्य मनीषियों ने भी पुनर्जन्म और कर्मफल के मर्म को समझा है 'द फ्यूचर आफ फेथ' में परसीकोल्सन ने कहा है कि-''पुनर्जन्म सत्य या कल्पनात्मक इस भ्रमकारी विश्व ब्रह्माण्ड की एक बहुत ही प्रशंसनीय और कई अर्थों में संतोषप्रद व्याख्या है।'' विख्यात दार्शनिक बॉकर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रिइनकार्नेशन' में लिखा है कि केवल पुनर्जन्म ही मानव जीवन की समस्याओं को क्रमशः हल करता है ।

'द सुपर फिजिकल' नामक पुस्तक में ऑसवार्न ने कहा है -''पुनर्जन्म एक उच्चस्तरीय संभाव्य एवं समीचीन कल्पना है, जो जीवन की असमानताओं को समझने की इच्छा का समाधान प्रस्तुत करती है । इसी में आगे कहा गया है कि ''मैं ऐसे किसी अन्य सिद्धान्त से अवगत नहीं हूँ जो दैनिक अनुभव की समस्याओं का इस तरह सन्तोषप्रद अनुभव प्रस्तुत करता है ।''

'द प्रॉब्लम आफ रिवर्थ' नामक अपनी पुस्तक में सुप्रसिद्ध विद्वान राल्फ शर्ले ने कहा है कि विश्व की जटिल गुत्थियों के जितने हल सोचे जा सकते हैं उनमें से पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार करने में सबसे कम कठिनाइयाँ हैं। वह कहते हैं कि इस सिद्धान्त में आस्था रखने वाला अपनी कल्पना के आधार पर उन सभी दशाओं और अवस्थाओं की व्याख्या कर सकता है जिसमें मनुष्य जाति के विभिन्न सदस्य पृथ्वी पर जन्म लेते हैं । उनके अनुसार पुनर्जन्म में विश्वास रखने वाला कम से कम शाश्वत न्याय में सर्वव्यापी सामान्य अवस्था के नियम में किसी असंगति का अपराध किये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विश्वास कर सकता है । भविष्य के जीवन के बारे में आस्था रखने वाला व्यक्ति थोड़े में बिना किसी निराशा के हेतुवादी हो सकता है । पुनर्जन्म उन कई बातों की स्वत: व्याख्या कर देता है जिनको आनुवंशिकता स्पष्ट नहीं कर सकती । विकास जैसी उलझी हुई अत्यन्त जटिल समस्याओं का समाधान जिस सरलता से पुनर्जन्म की मान्यता प्रस्तुत करती है, वैसा समाधान अब तक कोई अन्य परिकल्पना प्रतिपादित करने में सफल नहीं हो पायी है ।

अध्यात्म तत्वज्ञान की आधारशिला समझी जाने वाली पुनर्जन्म की मान्यता को अब वैज्ञानिक अनुसंधान का विषय स्वीकार कर लिया गया है । इस पर नित नूतन खोजें हो रही हैं । इस संदर्भ में जो प्रमाण सामने आये हैं उनसे पुरातन असमंजस की स्थिति धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है । प्रत्यक्ष-प्रच्छन्न नास्तिकवाद को इन प्रस्तुत प्रमाणों के सम्मुख अपने पूर्वाग्रहों को छोड़ना या शिथिल करना पड़ रहा है । पुनर्जन्म का सिद्धान्त जीवनक्रम में न केवल नीतिमत्ता को अपनाने पर बल देता है वरन् इसे मानने से यह आशा और विश्वास जाग्रत होता है कि जीवन अखण्ड और अनंत है । इसका अंत पंचभौतिक काया के नष्ट हो जाने पर ही नहीं होने वाला है । जो इच्छाएँ, कामनाएँ एवं योजनाएँ इस जन्म में अधूरी रह जाती हैं वे अगले जन्मों में पूरी होंगी, क्योंकि जीवात्मा अपने पूर्व जन्मों में सूक्ष्म संस्कार साथ लेकर जाती है । जीवन की निरन्तरता पर विश्वास रखने वाले सदैव आस्तिक बने रहते हैं, मृत्यु से कभी भयभीत नहीं होते ।

आस्तिकता विवेकवानों को ही फलती है

आस्तिकता मानव-जीवन में समाहित उत्कृष्टताओं का मापदण्ड है । सर्वव्यापी परमेश्वर हमारे गुप्त-प्रकट सभी कृत्यों को जानता है और तदनुसार भला-बुरा कर्मफल प्रदान करता है । इस मान्यता के आधार पर ही हमारी नीतिमत्ता सुरक्षित रहती है । नास्तिक निरंकुश होता है । उसे उद्दंडता अपनाने में दैवी-अनुशासन का भय नहीं रहता । तत्काल फल न मिलने पर वह इतनी दूरदर्शिता नहीं अपना पाता कि यहाँ देर है अन्धेर नहीं । जिसे कर्मफल पर विश्वास होगा वह पाप से डरेगा और पुण्य परमार्थ के संचय में निरत रहेगा । यही है सर्वतोमुखी प्रगति और सुनिश्चित सुख-शांति का मार्ग ।

परब्रह्म को सत्प्रवृत्तियों का समुच्चय भी कहा जा सकता है । दूसरे शब्दों में उत्कृष्ट आदर्शवादी भी है । ईश्वर उपासना का तात्पर्य है-उसी के ढाँचे में अपने गुण, कर्म, स्वभाव को ढालना, मानवी-गरिमा को अक्षुण्ण रखना । सज्जनोचित सदाशयता से अपने आप को ओत-प्रोत करना । आस्तिकता की यही अवधारणा वास्तविक है और श्रेयस्कर भी । जहाँ वह रहेगी वहाँ आध्यात्मिकता भी आत्मावलम्बन के रूप में रहेगी और व्यवहार में धार्मिकता, कर्त्तव्य-परायणता के रूप में दृष्टिगोचर होती रहेगी ।

सच्ची आस्तिकता में साधक परमेश्वर को आत्म-समर्पण करता है । उसके अनुशासन में चेतना है, अपनी रीति-नीति ऐसी बनाता है जो ईश्वर-भक्त को शोभा देती है । नाला अपने आपको जब नदी में मिलाता है तो उसी के प्रवाह में, उसी के अनुरूप बहता है । ईंधन जब अग्नि को समर्पित होता है तो अपने में आग के सारे गुण समाविष्ट कर लेता है । समर्पण ही ईश्वर-भक्ति है । उसमें कामना के लिए, याचना के लिए कोई गुंजाइश नहीं रहती । केवल उसी की इच्छा को समझाने, अपनाने के लिए तैयार करना पड़ता है । दृष्टिकोण में ऐसा बदलाव लाना पड़ता है कि कामनाएँ, तृष्णाएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ शेष न रहें केवल प्रभु की इच्छा को अपनी इच्छा बना लेने का कायाकल्प जैसा सर्वतोमुखी परिष्कृत प्रयास चल पड़े । इसकी सीधी परिणति होती है-चिन्तन में, चरित्र में, व्यवहार में-आदर्शवादी उत्कृष्टता के समावेश के रूप में । जीवन-क्रम में जितनी शालीनता चले समझना चाहिए कि उससे उतनी ही सार्थक भक्ति-भावना सध रही है ।

देखा जाता है कि तथा-कथित भक्तजन तथ्यों के सर्वथा विपरीत मानस बनाये रहते हैं और प्रतिकूल आचरण से व्यक्तित्व को भरे रहते हैं । देवताओं को कर्मकाण्ड के सहारे अपना गुलाम बनाने की चेष्टा करते हैं और उनसे उचित-अनुचित मनोरथ पूरे कर लेने की मनौती मनाते रहते हैं । इसी प्रयोजन के लिए छुट-पुट भेंट-पूजाएँ चढ़ाते और स्तवन के रूप में वे प्रशंसा के पुल बाँधते हैं । यह समूचे आडम्बर एक ही प्रयोजन के लिए होते हैं कि मनोकामनाएँ पूरी होने लगें । संकट टलते रहें और प्रतिकूलताओं का अनुकूलता के रूप में परिवर्तन बन पड़े, वातावरण बदले । परिस्थितियाँ अनुरूप व अनुकूल ढलें ।

इसे कहते हैं थोड़ा देकर बहुत पाने का व्यवसाय । समझना चाहिए कि चिड़ियों और मछलियों को जरा से चारे का लोभ दिखाकर जाल में फँसाया और उनका मलीदा बनाया जाता है । देवताओं की पूजा-पत्री करते समय भी यही रीति-नीति अपनायी जाती है । उनसे मनचाहा माँगने और हठपूर्वक पूरा कराने का आग्रह रहता है । जिसकी पात्रता नहीं है उसके लिए भी अनुग्रह माँगा जाता है, जो न्यायोचित नहीं है उसे भी देने के लिए कहा जाता है । यह विचार नहीं किया जाता कि देवता को भी उचित-अनुचित का, न्याय-अन्याय का विचार करने के लिए अवसर मिलना चाहिए । वे तनिक-सी पूजा सामग्री के लोभ में औचित्य को तिलांजलि देते रहे और जो माँगा गया है उसे देते रहे तो फिर पात्रता विकसित करने की किसी को क्या आवश्यकता रहेगी ? फिर 'सब धान बाईस पसेरी' के भाव बिकेगा । जो भी पूजा का प्रलोभन दिखायेगा, जो भी प्रशंसा के पुल बाँधेगा वह भक्त

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहलायेगा । जो माँगे सो पावे की रीति चल पड़ी तो फिर पात्र-कुपात्र का, खोटे खरे का विचार करने की क्या आवश्यकता रह जायेगी ? कर्मफल का सिद्धान्त तो समाप्त हो जायगा । रिश्वत का ही बोल-वाला चल पड़ेगा । लोक-व्यवहार में तो लाभांश का एक बड़ा भाग रिश्वत में देना पड़ता है । पर देवताओं को तो थोड़े से ही फुसलाया जा सकता है । उनके लिए तो अक्षत, पुष्प जैसी पाई पैसे की रिश्वत ही पर्याप्त समझी जाती है । चापलूस, झूठी प्रशंसा के पुल बाँधते और भोले लोगों को मूर्ख बनाकर उनकी जेब काटते हैं । देवताओं को ऐसी ही बाल-बुद्धि का समझा जाय और उन्हें झुनझुना गुब्बारा देकर फुसलाने की जुगाड़ बिठाई जाय तो इसे अनहोनी को होनी बनाकर दिखाने को बाजीगर ही समझा जायेगा। तथाकथित भक्त लोग ऐसी ही तिकड़म भिड़ाते हैं और देवताओं को रिश्वती, खुशामदखोर, अविवेकी रूप से बदनाम करते हैं।

विचारणीय है कि क्या 'अँधेर नगरी बेबूझ राजा' की लोकोक्ति भक्त और भगवान के प्रसंग में चरितार्थ होती रह सकती है? क्या पात्रता का सिद्धान्त सर्वथा उपेक्षित हो सकता है ? क्या प्रयास पुरुषार्थ का कर्मफल वाला अनुशासन निरस्त किया जा सकता है ? क्या पूजा पाठ का अर्थ योग्यता और प्रयत्नशीलता की आवश्यकता को समाप्त करना है ? क्या याचक और दाता दोनों को औचित्य की सीमा लाँघना है ? क्या ऐसा करके वे दोनों ही अपनी गरिमा गिराते नहीं हैं ?

ऐसी पूजापत्री फलदायक सिद्ध नहीं हो सकती , जिसमें मुफ्त ही मनोकामनापूर्ण करने-कराने की रीति-नीति जुड़ी हुई है । चाहने पर भी ऐसा होता नहीं है । मुफ्तखोरों की झोली मणि-माणिकों से भरती नहीं है । असम्भव को सम्भव बनाने के प्रयासों में कहाँ, कब, कितनी सफलता मिलती है । यदि पूजा मात्र से मनोरथ सिद्ध हुए होते तो पुजारियों के पौ बारह रहते । उनके घर सोने, चाँदी से बने होते । कर्मकाण्डी पंडितों को कुबेर जैसा धनी और इन्द्र जैसा समर्थ देखा जाता है । उन्हें तो सभी देवताओं के जंत्र-मंत्र आते हैं । भगवान को रिझाने के लिए विविध-विधि कीर्तन कौतुक करने-कराने वालों की एक भी मनोकामना अधूरी न रहती ।

भक्ति का उद्देश्य अपने आप को देवता के प्रति देवत्व के प्रति समर्पित करना है । मनुष्य में देवत्व का उत्पादन, अभिवर्धन प्रत्यक्षीकरण करता है इसी प्रकार भजन-पूजन बन पड़ता है और उसका प्रयोजन पूरा होता है। प्रामाणिकता, पवित्रता, प्रखरता और उदार सेवा-भावना के आधार पर ही देवता प्रसन्न होते, अनुग्रह करते और वरदान देते देखे जाते हैं यही यथार्थता है । पर जो लोग वास्तविकता से आँखें मूँद लेते हैं और चतुरता भरी तिकड़में भिड़ाकर सस्ते प्रलोभन के बदले बहुमूल्य वरदान पाना चाहते हैं उन्हें निराश ही रहना पड़ता है। पूजा के छद्म में जो समय श्रम लगता है वह बेकार चला जाता है। उपचारों में नियोजित किये गये साधन भी निरर्थक चले जाते हैं ।

आस्तिकता कृषि-कर्म जैसी, उद्यान आरोपण जैसी प्रत्यक्ष फलदायिनी पुण्य-प्रक्रिया है । उस हेतु जो बोया जाता है वह सहस्र गुना होकर फलता है, किन्तु आवश्यकता इस बात की भी है कि उसमें खाद-पानी की कमी न पड़ने दी जाय । आध्यात्मिकता, आत्म-परिष्कृति खाद है, धार्मिकता कर्त्तव्य-परायणता पानी । जो इन दिनों की व्यवस्था नहीं करते और देव-अनुग्रह का प्रतिफल पाना चाहते हैं, उन्हें अविवेकी ही कहा जायगा । बुद्धिहीन भी ।

आस्तिक बनो

परमात्मा सर्वत्र व्यापक है, इस सत्य को जानते तो अनेक लोग हैं पर उसे मानते नहीं । व्यवहार में नहीं लाते। जो परमात्मा को सर्वव्यापी, घट-घटवासी मानेगा, उसका जीवन उसी क्षण पूर्ण पवित्र निष्पाप और कषाय कल्मषों से रहित हो जायेगा । गीता में भगवान ने कहा है कि जो मेरी शरण में आता है, जो मुझे अनन्य भाव से भजता है वह तुरन्त ही पापों से छूट जाता है । निस्सन्देह बात ऐसी ही है । भगवान की शरण में जाने वाला, उस पर सच्चा विश्वास करने वाला, उस पर पूर्ण आस्था रखने वाला एक प्रकार से जीवन-मुक्त ही हो जाता है ।

ईश्वर का विश्वास और सच्चा जीवन एक ही वस्तु के दो नाम हैं । जो भगवान का भक्त है, जिसने साथ छोड़ कर प्रभु के चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया है, जो परमात्मा की उपासना करता है उसे जगतपिता की सर्वव्यापकता पर आस्था जरूर होनी चाहिए । यदि यह विश्वास दृढ़ हो जाय कि भगवान जर्रे-जर्रे में समाया हुआ है, हर जगह मौजूद है तो पाप कर्म करने का साहस ही नहीं हो सकता । ऐसा कौन-सा चोर है जो सावधान खड़ी हुई सशस्त्र पुलिस के सामने चोरी करने का साहस करे, चोरी, व्यभिचार, ठगी, धूर्तता, दंभ, असत्य, हिंसा आदि के लिए आड़ की, पर्दे की, दुराव की जरूरत पड़ती है । जहाँ मौका होता है, इन बुरे कामों को पकड़ने वाला नहीं होता, वहीं इनका किया जाना सम्भव है । जहाँ धूर्तता को भली प्रकार समझने वाले, देखने वाले और पकड़ने वाले लोगों की मजबूत ताकत सामने खड़ी होती है, वहाँ पाप कर्मों का हो सकना सम्भव नहीं । इसी प्रकार जो इस बात पर सच्चे मन से विश्वास करता है कि परमात्मा सब जगह मौजूद है वह किसी भी दुष्कर्म के करने का साहस नहीं कर सकता ।

बुरा काम करने वाला पहले यह भली प्रकार देखता है कि मुझे देखने वाला या पकड़ने वाला तो कोई यहाँ नहीं । जब वह भलीभाँति विश्वास कर लेता है कि उसका पाप कर्म किसी भी दृष्टि या पकड़ में नहीं आ रहा है तभी वह अपने काम में हाथ डालता है । इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने को परमात्मा की दृष्टि या पकड़ से बाहर मानते हैं वे ही दुष्कर्म करने को उद्यत हो सकते हैं । पाप कर्म

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

करने का स्पष्ट अर्थ यह है कि यह व्यक्ति ईश्वर को मानने का दंभ भले ही करता हो पर वास्तव में वह परमात्मा के अस्तित्व से इन्कार करता है । उसके मन को इस बात पर भरोसा नहीं है कि परमात्मा यहाँ मौजूद है । यदि विश्वास होता तो इतने बड़े हाकिम के सामने किस प्रकार उसके कानूनों को तोड़ने का साहस करता ? जो व्यक्ति एक पुलिस के चपरासी को देखकर भय से थर-थर काँपा करते हैं वे लोग इतने दुस्साहसी नहीं हो सकते कि परमात्मा जैसे सृष्टि के सर्वोच्च अफसर की आँखों के आगे न करने योग्य काम करें, उसके कानून को तोड़ें, उसको क्रुद्ध बनावें, उसका अपमान करें । ऐसा दुस्साहस तो सिर्फ वही कर सकता है जो यह समझता हो कि 'परमात्मा' कहने सुनने भर की चीज है । वह पोथी-पत्रों में, मन्दिर-मठों में नदी-तलाबों में कहीं स्वर्ग-नरक में भले ही रहता होगा, पर हर जगह वह नहीं है । मैं उसकी दृष्टि और पकड़ से बाहर हूँ ।

जो लोग परमात्मा की सर्वव्यापकता पर विश्वास नहीं करते, वे ही नास्तिक हैं । जो प्रकट या अप्रकट रूप से दुष्कर्म करने का साहस कर सकते हैं वे ही नास्तिक हैं । इन नास्तिकों में कुछ तो भजन-पूजा बिल्कुल नहीं करते, कुछ करते हैं । जो नहीं करते वे सोचते हैं व्यर्थ का झंझट मोल लेकर उसमें समय गँवाने से क्या फायदा ? जो पूजन भजन करते हैं वे भीतर से तो न करने वालों के समान ही होते हैं पर व्यापार बुद्धि में रोजगार के रूप में ईश्वर की खाल ओढ़ लेते हैं । कितने ही लोग ईश्वर के नाम के बहाने ही अपने जीविका चलाते हैं, हमारे देश में करीब ५६ लाख आदमी ऐसे हैं जिनकी कमाई, पेशा, रोजगार ईश्वर के नाम पर है । यदि वे यह प्रकट करें कि हम ईश्वर को नहीं मानते तो उसी दिन उनकी ऐश-आराम देने वाली, बिना परिश्रम की कमाई हाथ से चली जायगी । इसलिए उन्हें ईश्वर को उसी प्रकार ओढ़े रहना पड़ता है, जैसे जाड़े से बचने के लिए गर्मी देने वाले कम्बल को ओढ़े रहते हैं जैसे ही वह जरूरत पूरी हुई वैसे ही कम्बल को एक कोने में पटक देते हैं । यह तिजारती लोग जनता के समक्ष अपनी ईश्वर-भक्ति का बड़ा भारी घटाटोप बाँधते हैं क्यों कि जितना बड़ा घटाटोप बाँध सकेंगे उतनी ही अधिक कमाई होगी । तिजारती उद्देश्य पूरा होते ही वे अपने असली रूप में आ जाते हैं । पापों से खुलकर खेलते हुए एकान्त में उन्हें जरा भी झिझक नहीं होती ।

एक तीसरी किस्म के नास्तिक और हैं । वे प्रत्यक्ष रूप से ईश्वर के नाम पर रोजी नहीं चलाते बल्कि उल्टा उसके नाम पर कुछ खर्च करते हैं । ईश्वर का आडम्बर उनके द्वारा आये दिन रचा जाता रहता है । शरीर पर ईश्वर के प्रतीक मौजूद होते हैं, ईश्वर के निमित्त कहे जाने वाले कर्मकाण्डों का आयोजन होता रहता है । ईश्वर-भक्त कहलाने वालों का स्वागत-सत्कार, भेंट-पूजा होती रहती है । यह सब इसलिए होता है कि लोग उनके सम्बन्ध में अच्छे ख्याल रखें, उनका आदर करें, उन्हें धर्मात्मा समझें, उनके जीवन भर के कुकर्मों की कलई न खोलें और आज भी जो उनके दुष्कर्म चल रहे हैं वे छिपे रहें ।

चौथे प्रकार के नास्तिक वे हैं जो पाप छिपाने या धन कमाने के लिए नहीं किन्तु अपने को पुजवाने के लिए, यश और श्रद्धा प्राप्त करने के लिए ईश्वर भक्त बनते हैं, इसके लिए कुछ त्याग और कष्ट भी उठाते हैं पर भीतर से उन्हें प्रभु की सर्वव्यापकता पर आस्था नहीं होती । कुछ लोग रिश्वत के रूप में ईश्वर भक्ति को साधते हैं, अमुक भोग-ऐश्वर्य की लालसा उन्हें उसी मार्ग पर ले जाती है । जिस प्रकार आज कल घूसखोर हाकिमों को एक मोटी रकम झुका कर लोग मनमाना काम करवा लेते हैं और थैली खर्च करके थैला भरने में सफल हो जाते हैं । कुछ लोग तथाकथित ऋद्धि-सिद्धियों और न जाने किन-किन अप्रत्यक्ष वैभवों के मनसूबे बाँध कर उसे प्राप्त करने की फिकर में ईश्वर के दरवाजे खटखटाते रहते हैं ।

इस प्रकार प्रत्यक्षतः ईश्वरभक्त दिखाई देने वालों में भी असंख्यों मनुष्य ऐसे हैं जिनकी भीतरी मनोभूमि परमात्मा से कोसों दूर है । उनका निजी जीवन, घरेलू आचरण, व्यक्तिगत व्यवहार ऐसा नहीं होता जिससे यह प्रतीत हो कि ईश्वर को हाजिर नाजिर समझकर अपने को बुराइयों से बचाते हैं । ऐसे लोगों को किस प्रकार आस्तिक कहा जाय ? जो पापों में जितना ही अधिक लिप्त है, जिसका व्यक्तिगत जीवन जितना ही दूषित है वह उतना ही बड़ा नास्तिक है । लोगों को धोखा देकर अपना स्वार्थ साधना , छल, प्रपंच, माया, दंभ, भय, अत्याचार, कपट और धूर्तता से दूसरों के अधिकारों को अपहरण कर स्वयं सम्पन्न बनना नास्तिकता का स्पष्ट प्रमाण है । जो पाप करने का दुस्साहस करता है वह आस्तिक नहीं हो सकता, भले ही वह आस्तिकता का कितना ही बड़ा प्रदर्शन क्यों न करता हो ।

ईश्वर-भक्ति का जितना ही अंश, जिसमें होगा वह उतने ही दृढ़ बिश्वास के साथ ईश्वर की सर्वव्यापकता पर विश्वास करेगा, सब में प्रभु को समाया हुआ देखेगा । आस्तिकता का दृष्टिकोण बनते ही मनुष्य भीतर और बाहर से निष्पाप होने लगता है । अपने प्रियतम को घट-घट में बैठा देखकर वह सबसे नम्रता का, मधुरता का, स्नेह का, आदर का, सेवा का, सरलता, शुद्धता और निष्कपटता से भरा हुआ व्यवहार करता है । भक्त अपने भगवान् के लिए व्रत, उपवास, तप, तीर्थ यात्रा आदि द्वारा स्वयं कष्ट उठाता है और अपने प्राणबल्लभ के लिए अक्षत, पुष्प, दीप, नैवेद्य, भोग प्रसाद आदि कुछ न कुछ अर्पित करता रहता ही है । ''स्वयं कष्ट सहकर भगवान को कुछ समर्पण करना'' पूजा की सम्पूर्ण विधि-व्यवस्थाओं का यही तथ्य है । भगवान को घट-घटवासी मानने वाले भक्त अपनी पूजा विधि का इसी आधार पर अपने व्यावहारिक जीवन में उतारते हैं । वे अपने स्वार्थों की उतनी परवा नहीं करते, खुद कुछ कष्ट भी उठाना पड़े तो उठाते हैं पर जनता जनार्दन को, नरनारायण को अधिक सुखी बनाने में वे दत्तचित्त रहते हैं। लोक-सेवा का व्रत लेकर वे घटघट

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वासी परमात्मा की व्यावहारिक रूप से पूजा करते हैं । ऐसे भक्तों का जीवन-व्यवहार बड़ा निर्मल, पवित्र, मधुर और उदार होता है । आस्तिकता का यही तो प्रत्यक्ष लक्षण है ।

पूजा के समस्त कर्मकाण्ड इसलिए हैं कि मनुष्य परमात्मा को स्मरण रखे, उसके अस्तित्व को अपने चारों ओर देखे और मनुष्योचित कर्म करे । पूजा, अर्चना, वन्दना, कथा, कीर्तन, व्रत, उपवास, तीर्थ आदि सबका प्रयोजन मनुष्य की इस चेतना को जाग्रत करता है कि परमात्मा की निकटता का स्मरण रहे और ईश्वर के प्रेम एवं श्रद्धा द्वारा लोकसेवा का व्रत रखे और ईश्वर के क्रोध से डरकर पापों से बचे। जिस पूजा-उपासना से यह उद्देश्य सिद्ध न होता हो, वह व्यर्थ है । जिस उपाय से भी ''पाप से बचने और पुण्य में प्रवृत्त होने'' का भाव जाग उठे वह उपाय ईश्वरभक्ति की साधना ही है ।

पाठको ! ईश्वर की खाल मत ओढ़ो ? सच्चे ईश्वर भक्त बनो । भक्तों को मंदिरों की धरोहर मत बनाओ, उसे व्यावहारिक जीवन में उतार लो । वाचक ज्ञानी मत बनो, कर्मनिष्ठा सीखो । ईश्वर के थन लाठियों से मत छुओ उसे अपने में ओत-प्रोत कर लो । विडम्बना को छोड़ो, परमात्मा के चरणों से लिपट जाओ उसे अपने अन्तःकरण के भीतरी कोने में बिठा लो । अपनी दृष्टि को परमात्मामय बना लो । तुम्हारा जीवन- सच्चे आस्तिक का पवित्र जीवन होना चाहिए । अपवित्र जीवन तो प्रत्यक्ष नास्तिकता है ।

विपन्नताओं से उबरने का एकमात्र उपचार

बौद्धिक उतार-चढ़ाव, तर्क-वितर्क हमारे क्रियाकलापों को अधिक लाभदायक और सुरक्षा-युक्त बनाने में सहायता करते हैं; पर प्रायः जीवन को वे कोई दिशा या प्रेरणा नहीं देते । किसी विचार से सहमत होने पर भी आवश्यक नहीं कि उसे कार्यान्वित करने का उत्साह उभरे ही । जो किया जाता है, उसका आनन्द सामान्यतया तब मिलता है जबकि सफलता मिलती है । असफलता प्राप्त हो, तो दुःख होगा । यह बौद्धिक अनुभूति हुई । आंतरिक आस्थाओं का प्रभाव इससे ज्यादा गहरा है । उच्च आदर्शों के प्रति निष्ठावान रहने भर की मान्यता दृढ़ रहे, तो इतने भर से कोई व्यक्ति अपनी उत्कृष्टता पर गर्व कर सकता है । यह आस्थाओं का चमत्कार है, जो बिना सफलताओं के भी मात्र अपनी आंतरिक उपस्थिति भर से अन्तःकरण को उत्फुल्लता से भरे रहती है ।

आस्थाएँ प्रेरणा उभारती हैं; बढ़ने के लिए गति और सोचने के लिए प्रकाश प्रस्तुत करती हैं । उदात्तता की दिशा में बढ़ सकना आस्थाओं की विद्यमानता के बिना हो ही नहीं सकता । निष्ठा से संकल्प उठता है और संकल्प से साहस और पराक्रम उभरते हैं । तन्मयता तथा तत्परता इसी अंतःस्थिति में किसी प्रयास से नियोजित होती है और मन एवं कर्म का ऐसा स्तर बन पड़ने पर ही महत्वपूर्ण प्रगति सम्भव होती है । सोचने से पता चलता है कि बुद्धि की अपनी उपयोगिता होते हुए भी श्रद्धा की शक्ति असीम है । इसलिए शास्त्रों में श्रद्धा को ही जीवन कहा गया है । व्यक्तित्व और कुछ नहीं-श्रद्धा का प्रतिबिंब-परिचय भर है। गीताकार की यह उक्ति उसी सत्य की पुष्टि करती है-

''श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ।''

''यह व्यक्ति श्रद्धा का पुंज है । जिसकी जैसी श्रद्धा है वह वैसा ही है । '' यथार्थता यही है । शरीर की बनावट और मस्तिष्कीय कुशलता का महत्व होते हुए भी उनका व्यक्तित्व के स्तर का निर्माण करने में कोई विशेष योगदान नहीं है । मनुष्य के व्यक्तित्व की ढलाई श्रद्धा की भट्टी के सान्निध्य में होती है । इस श्रद्धा तत्व की गरिमा को यदि स्वीकार किया जा सके, तो यह भी मानना पड़ेगा कि उसे विकसित परिष्कृत एवं परिपक्व करने के लिए ईश्वर-मान्यता का अवलम्बन लेना आवश्यक है । ईश्वर के अस्तित्व की आस्था और उसके साथ तादात्म्य बिठाने के प्रयास में इतना लाभ प्रत्यक्ष मिलता है कि मनुष्य की आदर्शवादी निष्ठाएँ परिपक्व होती हैं और उसके सहारे व्यक्ति ऐसा बनता है, जिसमें आत्मसत्ता के अस्तित्व का परिचय भीतरी और बाहरी दोनों क्षेत्रों से प्राप्त किया जा सके ।

ईश्वरीसत्ता के विकृतरूप का ही इन दिनों बोलबाला है । उनके तथाकथित भक्त उसे हर प्रकार से बहलाने-फुसलाने के कौतुक करते देखे जाते हैं और उन टंटघंटों से अपने मनोरथ पूरा करने के सुख-स्वप्न देखते रहते हैं । जब तक इनसे लाभान्वित होने की आशा बनी रहती है, तब तक आधा-अधूरा उत्साह भी रहता है; किंतु उसे जैसे ही लाभ संदिग्ध दीखता है, वैसे ही भक्ति भाप बनकर आसमान में उड़ जाती है । कुछ दिनों पूर्व जो ईश्वर विश्वास उपजा था, अब वही बेकार-बकवाद लगने लगता है और नास्तिकता जैसा मानस बनने लगता है ; संसार ईश्वर-विहीन प्रतीत होता है । बात इस प्रकार की भ्रान्ति और उथली मनोभूमि की नहीं, सच्ची आस्तिकता की चल रही है । उसका वास्तविक लाभ श्रद्धा का सृजन करना है । यह उच्चस्तरीय आस्था के बिना सम्भव नहीं । यह आस्था जब प्रगाढ़ होती है, तब श्रद्धा कहलाती है । श्रद्धा ही महानता पैदा करती है और जीवन को इस रूप में विकसित करती है, जिसकी कि सर्वत्र प्रशंसा होती है। जहाँ इसका अभाव होता है । वहाँ महामानव बनना तो दूर जीवन में पग-पग पर दुःखों का, कष्टों का सामना करना और संकट झेलना पड़ता है । श्रद्धा और आस्तिकता का एक-दूसरे के साथ अटूट सम्बन्ध है । किसी को ईश्वर का प्रथम अनुदान मिलता है, तो वह श्रद्धा के रूप में ही मिलता है । फिर जैसे-जैसे इस तत्व की उपलब्धि गहनतम होती जाती है, वैसे-वैसे जीवन के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभिनंदनीय बनने की सम्भावना उसी अनुपात से परिपुष्ट होती चलती है। सिद्ध साधकों में जो अद्‌भुत सिद्धियाँ दिखाई पड़ती हैं, उनकी जननी इस स्थिति को कहा जा सकता है। यह आस्तिकता का परोक्ष लाभ हुआ, जिसमें सन्देह करने की तनिक भी गुंजाइश नहीं है । पूजा का प्रत्यक्ष प्रतिफल मिलने में शंका की गुंजाइश होने पर भी इस श्रद्धा के वरदान को असाधारण वरदान की ही संज्ञा दी जा सकती है ।

जीवन में भले-बुरे प्रसंग घटते रहते हैं, सफलताएँ भी मिलती हैं; पर असफलताओं, हानियों, विछोहों और दुर्घटनाओं की भी कमी नहीं । प्रतिकूलता आने से आदमी टूटने लगता है । कई बार तो वह इतना किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है कि क्या करना और क्या सोचना चाहिए-यह सामान्य समझ भी नहीं रह जाती, फलतः जो हानि सामने आती है, उसकी भयंकरता असाधारण होती है । टूटा व्यक्ति अपने ऊपर से आस्था-आत्मविश्वास खो बैठता है और प्रकाश की ज्योति खो बैठने से अंधकार में भटकता है । इस स्थिति में मनुष्य जीवित तो रह सकता है; पर उज्ज्वल भविष्य की आशाएँ एक प्रकार से गुम हो जाती हैं । यह अवस्था प्रत्यक्ष दुर्घटनाओं से भी अधिक भयावह है । यद्यपि वह दीखती नहीं; पर दुष्परिणामों की दृष्टि से उसकी विभीषिका कम नहीं होती । ऐसी विपन्नता से बचने का एक ही सशक्त उपाय है ईश्वर-विश्वास ।

ईश्वर-विश्वास यदि वास्तविक हो तो इस प्रकार के दुहरे प्रहार से बच सकना सम्भव हो सकता है । बाहरी कठिनाइयों की बढ़ी-चढ़ी विभीषिका के बावजूद आंतरिक साहस और संतुलन की स्थिति यदि बनी रहे, तो वे सहज ही सरल हो सकती हैं । यह आत्मज्योति, श्रद्धा का तेल पाकर ही जलती है । आस्तिक जन यह अनुभव करते हैं कि कोई दिव्य-शक्ति उनके साथ है । स्वजन-संबंधियों, परिचितों-मित्रों का सहयोग छूट जाने पर भी वह सहारा देगी । दूसरे साथ छोड़ सकते हैं; पर माता का दुलार कुपुत्र के प्रति भी यथावत् बना रहता है-यही उद्‌गार किसी कवि ने निम्न प्रकार से प्रकट किये हैं-

माता न कुमाता हो सकती,
हो पुत्र कुपुत्र भले कठोर ।
सब देव-देवियाँ एक ओर,
ऐ माँ ! मेरी तू एक ओर ।

मातृ-स्नेह और ईश्वरीय-करुणा एक ही बात है । एक इस संदर्भ में कि दोनों का वात्सल्य बेटे के प्रति निरंतर उमगता रहता है, भले ही बेटा कितना ही पतित क्यों न हो । ईश्वर की कृपा पतित, पथभ्रष्ट पर भी बरसती है और डरावनी विभीषिकाओं के बीच भी अपने आँचल में आश्रय देती है । जो उस आश्रय पर विश्वास करते हैं, उन्हें उज्ज्वल भविष्य की ज्योति घोर अंधकार की घड़ियों में भी दीख पड़ती है और उतना भर सहारा मिलने से मनुष्य डूबने से बच जाता है, फिर से उठ खड़ा होने का अवलंबन प्राप्त कर लेता है ।

जो भावनाशील और जाग्रत होती हैं, वैसी आत्माएँ ही भगवद् अनुकम्पा प्राप्त कर पाती हैं । इस संदर्भ में सूफी कवि हफीज ने अपने संस्मरण में लिखा है-एक रात उसके गुरु ने आवाज देकर किसी शिष्य को बुलाया । सब सो रहे थे; अकेला हफीज ही जाग रहा था, सो वह उठ कर आया । गुरु ने उसे बहुत-सी महत्वपूर्ण बातें बतायीं । इसके बाद फिर गुरु ने आवाज देकर किसी शिष्य को आने के लिए कहा । अब भी हफीज को छोड़ सब सो रहे थे, सो वह फिर जा पहुँचा और इस बार भी वह लाभदायक ज्ञान नोट करके लाया । उस रात इसी प्रकार पाँच बार पुकार हुई और हर बार हफीज ही पहुँचता और ज्ञान पाता रहा । कवि ने लिखा है कि गुरु के इस विशेष अनुग्रह और शिष्य के लाभान्वित होने के सौभाग्य के पीछे जगना ही कारण था । अन्य छात्रों की तरह यदि वह भी सो रहा होता, तो उस लाभ से वंचित ही रहना पड़ता जो केवल उसे ही मिल सका ।

महर्षि अरविंद कहते थे-"ईश्वर दर्शन के लिए आत्मा की ज्योति का आलोक रहना आवश्यक है, अन्यथा अंधकार में समीप रहते हुए भी अन्य पदार्थों की तरह ईश्वर को भी नहीं देखा जा सकेगा । आत्मा की ज्योति तीन धाराओं में बहती है-जागरूकता, सतर्कता और चैतन्यता । जिसका अंतःकरण जाग्रत है; जिसका विवेक सतर्क है और जिसकी क्रियाशीलता में चैतन्यता का समावेश है, वह हर क्षेत्र में सफल होता है । इन्हीं सफलताओं में से एक ईश्वर का साक्षात्कार भी है ।"

जी. एल. गोल्डस्मिथ कहते थे-"भगवान मनुष्य की अन्तरात्मा है और वह सदा सत्य की ओर उन्मुख रहती है । कोई अपनी उस अंतरात्मा से विमुख नहीं हो सकता, जो विश्वात्मा का ही एक अंग है । ऐसी दशा में किसी का भी सच्चे अर्थों में नास्तिक बन सकना सम्भव नहीं । यह बात दूसरी है कि ईश्वर सम्बन्धी किन्हीं मान्यताओं से चिढ़कर कोई उस समूची सत्ता से ही इनकार करने का आक्रोश व्यक्त करने लगे ।"

मनुष्य एक ऐसी चेतना से संपन्न है, जो ऊँचा उठना, श्रेष्ठ बनना और शक्ति पाना चाहती है । इसी चेतना को आत्मा कहा गया है, जो हर किसी के भीतर विद्यमान है । लक्ष्य-निर्णय करने में ही लोग भटकते हैं । आकांक्षा सर्वत्र एक ही रहती है । असफलता एवं विपन्नता से जब मन उद्विग्न हो रहा हो, तो उसे केवल आत्मा के आँचल में ही शांति मिल सकती है । वैभव और वर्चस्व आत्मा में निहित है । कष्टग्रस्त तो शरीर होता है । आत्मा को पहचानने पर अपनी सुसंपन्नता और सुखद भवितव्यता पर विश्वास बना रहता है । जहाँ इस प्रकार की आस्था रहेगी, वहाँ विपन्नताओं से न तो असहाय उद्विग्नता होगी और न निराशा का भार ही वहन करना पड़ेगा ।

कोई ईश्वर से विमुख होने की बात कर सकता है; पर सत्य से विमुख होने का साहस नहीं कर सकता । झूठ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बोलने वाले भी सत्य का प्रतिपादन करते हैं और अपने प्रति दूसरों से सत्य व्यवहार की अपेक्षा रखते हैं । दुष्टता में खिन्नता और सज्जनता में प्रसन्नता आत्मा की प्रकृति है । उसे अपने व्यवहार में कोई चाहे भले ही उपेक्षित करता रहे, फिर भी दूसरों के व्यवहार-दर्पण में उसे देखने की आकांक्षा बनी ही रहती है । दूसरों के साथ-साथ स्वयं को भी तभी संतोष मिलता है, जब कुछ उदार सद्व्यवहार बन पड़ता है । यही आत्मा का अस्तित्व जिससे इनकार कर सकना न नास्तिक के लिए संभव है और न आस्तिक के लिए । हम आत्मा को झुठलाने का प्रयत्न कर सकते हैं; पर इसमें सफलता किसी को भी मिल नहीं सकती । अपनी अस्तित्व में, अपनी मूल प्रकृति में समाये हुए सत्य, श्रेष्ठ और संतोष के प्रति आस्था रखे बिना किसी का भी काम नहीं चल सकता । इसलिए आत्मा के अस्तित्व से इनकार करने वाला भी आत्म-विश्वास का परित्याग कर सकने में समर्थ व सफल नहीं हो सकता ।

कष्टों का अर्थ यह तो नहीं कि ईश्वर है ही नहीं

ईश्वर और धर्म पर अविश्वास रखने वाले प्राय: यह प्रश्न उठाया करते हैं कि जब ईश्वर दयालु और कल्याणकारी है, तो संसार में पाप और दु:ख की अधिकता क्यों ? आस्तिक लोग स्वयं भी कहते हैं कि संसार में धर्मात्मा कम और धर्मविमुख ज्यादा हैं । ईमानदारों की अपेक्षा बेईमानों की संख्या अधिक है । ऐसी स्थिति में इस बात पर कैसे विश्वास किया जाय कि एक महान चैतन्यसत्ता इस सृष्टि की रचयिता और संचालक है ? यदि वास्तव में इसकी रचना किसी बुद्धिमान शक्ति द्वारा हुई होती, तो संसार में सर्वत्र सुख, आनन्द और पुण्य कर्मों का ही प्रसार देखने में आना चाहिए था ।

वास्तव में यह एक ऐसा जटिल प्रश्न है, जिसका उत्तर देने में बहुत से आस्तिक भी लड़खड़ा जाते हैं । जिन पश्चिमी ईश्वरवादियों ने इसका उत्तर दिया है, उन्होंने कहीं-कहीं अपनी असमर्थता भी स्वीकार की है ।

'थीइज्म' पुस्तक के लेखक फ्लिण्ट ने इसका उत्तर देते हुए कहा है-"यदि आप मुझसे पूछें कि ईश्वर ने सबको धर्मात्मा क्यों नहीं बनाया, तो इसका मेरे पास कोई उत्तर नहीं है । यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका कोई उत्तर हो ही नहीं सकता और न उससे कुछ लाभ है । यदि आप कहें कि ईश्वर ने मनुष्य को देवताओं की तरह क्यों नहीं बनाया, तो यह भी प्रश्न करेंगे कि उसने देवताओं से भी ऊँचे दर्जे के प्राणी क्यों नहीं बनाये । इस प्रकार 'अनवस्था दोष' उत्पन्न होता है ।"

जिस प्रकार का आक्षेप लोग पाप के विषय में करते हैं, वैसा ही भाव-दु:ख के विषय में भी प्रकट करते हैं । वे कहते हैं कि जब ईश्वर सर्वशक्तिमान है और जीवों का भला भी चाहता है तो उसने ऐसी व्यवस्था क्यों नहीं की कि संसार में दु:ख का नाम ही नहीं रहता ? इस शंका का उत्तर देते हुए अल्फ्रेड रसेल वालेस अपने ग्रन्थ 'दि वर्ल्ड ऑफ लाइफ' में लिखते हैं- "कुछ आलोचकों को संसार के दु:ख देखकर प्राय: घृणा हो जाती है और वे कहने लगते हैं कि यह सृष्टि सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और दयालु सत्ता की बनायी नहीं हो सकती ; पर इन लोगों ने कभी भी दु:ख की जड़ तक पहुँचने का प्रयत्न नहीं किया । उन्होंने यह नहीं सोचा कि दु:ख या कष्ट विकास के लिये कितने आवश्यक हैं।" स्वयं डार्विन ने इस नियम पर बड़ा बल दिया है कि कोई इन्द्रिय शक्ति या वेदना किसी प्राणी में उस समय तक नहीं उत्पन्न होती, जब तक वे उस जाति के लिए उपयोगी न हों । इस नियम पर यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो यही निष्कर्ष निकलता है कि ईश्वर प्रत्येक प्राणिवर्ग में उतना ही दु:ख उत्पन्न करता है, जितने की उसके लिए आवश्यकता है ।

फ्लिण्ट ने इसका समाधान अपनी उपरोक्त पुस्तक में कुछ भिन्न प्रकार से किया है । वे कहते हैं "दु:ख परिश्रम के लिए प्रेरणा करता है और परिश्रम द्वारा ही हमारा जीवन, हमारी शक्तियाँ नियमित और विकसित हो सकती हैं । इच्छा आवश्यकता का अनुभव कराती है और आवश्यकता का अनुभव ही दु:ख माना जाता है, किन्तु यदि जीवों में इच्छाएँ और आवश्यकताएँ न हों, तो फिर जीव रहेंगे क्या ? क्या वह ऐसे ही सुन्दर और सक्रिय होंगे, जैसे अब हैं ? यदि मनुष्य को समय-समय पर संघर्ष न करना पड़े तो क्या वह ऐसा प्रयत्नशील, चतुर, बुद्धिमान, शिक्षित होगा, जैसा आज है ? इस प्रकार आवश्यकता से उत्पन्न दु:ख प्राणियों की प्रगति और पूर्णता का साधन है, इसलिए जो दु:ख इस प्रयोजन की पूर्ति करता है, उसे बुरा कैसे कह सकते हैं ?"

दूसरी बात यह है कि दु:ख पूर्णता का ही साधन नहीं है, वरन् वह सुख का भी साधन है । शायद प्राणियों की संरचना ही ऐसी है कि यदि वह दु:ख का अनुभव न करे, तो सुख की प्रतीति भी न कर पाये । भले ही यह तथ्य शत-प्रतिशत सही न हो ; परंतु एक बात स्पष्ट है कि समस्त जीव-जगत में दु:ख वास्तव में आनन्द का साधन होता है, जो प्राणियों को परिश्रम के लिए उत्तेजित करता है । दु:ख की उपयोगिता का परिचय छोटे प्राणियों में उतना ही मिलता है जितना विवेकयुक्त मनुष्य में मिलता है। दु:ख का महत्व जितना शारीरिक बातों में है, उससे कहीं अधिक मानसिक बातों में मिलता है। यह दु:ख आत्मा को शुद्ध बनाने और शिक्षा देने में परम सहायक है । दु:ख से हृदय की कठोरता कम होती है। दु:ख वस्तुत: एक प्रकार का तप है । दु:ख से अभिमान का दमन होता है । इससे साहस और धैर्य बढ़ता है एवं दूसरों के प्रति सहानुभूति पनपती है । ऐसी अवस्था में कोई भी संसार में दु:खों को देख कर उसके लिए परमात्मा को दोषी बताने की तुलना में उसे धन्यवाद ही देगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जो बात फ्लिण्ट ने आज कही है, वह महाभारत में हजारों वर्ष पूर्व कह दी गई थी । जब भगवान कृष्ण ने वनवास के पश्चात् कुन्ती से इच्छित वर माँगने को कहा, तो कुन्ती ने कहा-"भगवान् ! मुझे जीवन में दु:ख ही दु:ख मिले, इतनी कृपा बनाये रखें ।" "ऐसा क्यों ?"- कृष्ण के यह पूछने पर कुन्ती ने कहा-"इससे आपका स्मरण निरन्तर बना रहेगा । सुख में तो लोग आपको और आपके प्रेम को भुला बैठते हैं ।"

इस प्रकार जब सृष्टि-रचना और विभिन्न परिस्थितियों से होकर प्राणियों के विकास पर विचार करते हैं, तो हमें ईश्वरीय योजना में दोष लगाने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता ।

ऐसे व्यक्तियों की भर्त्सना करते हुए 'थियोसाफी' की संस्थापिका मैडम ब्लैवटस्की ने जोरदार शब्दों में कहा है कि ईश्वर और आत्मा के अस्तित्व को नकारना वास्तव में एक विनाशकारी कल्पना है । यह एक ऐसे उन्मत्त का प्रलाप है, जो अपनी दूषित कल्पना के आधार पर विश्व-रचना को उद्भिजों की तरह उगने वाली सामग्री के रूप में देखता रहता है और उसका कर्त्ता किसी को नहीं मानता । वह कहता है कि यह सामग्री स्वयं ही प्रकट हुई है, स्वयं ही स्थित है, स्वयं ही विकसित होती है । यह समस्त सृष्टि अनायास उत्पन्न हुई और चलती जा रही है । इसका कोई उद्गम नहीं और न कोई निमित्त है । इस प्रकार उसकी दृष्टि में यह 'अनन्त चक्र' अकारण और संयोग का परिणाम है ।

हेन्स आइसेंक अपनी पुस्तक 'एथीइस्टिक सोसाइटी' में लिखते हैं कि ईश्वर पर कोई विश्वास करे या न करे इसके लिए उसे किसी प्रकार विवश तो नहीं किया जा सकता; पर इस अवधारणा को अपना लेने पर जीवन सम्बन्धी कई जटिलताएँ सरल हो जाती हैं । अमरीका जैसे अत्यन्त समृद्ध, सभ्य और सुशिक्षित देश के प्रत्येक अस्पताल में आजकल पचास प्रतिशत बैड पागलों के लिए सुरक्षित रहते हैं ।

लगभग हर पश्चिमी राष्ट्र की स्थिति ऐसी ही है, जबकि भारत जैसे पौर्वात्य देश में विक्षिप्तों की संख्या उतनी नहीं है । कारण एक ही है कि वहाँ सफलता, असफलता, लाभ-हानि जैसे प्रसंगों में केवल लौकिक दृष्टि से विचार नहीं किया जाता, वरन् प्रारब्ध और कर्मफल को भी उसमें सम्मिलित किया जाता है और अप्रिय प्रकरणों में उसे ईश्वरीय न्याय मानकर संतोष कर लिया जाता है । तथाकथित बुद्धिवादी देश अपनी अनीश्वरवादी मान्यता के कारण उस गहराई तक नहीं उतर पाते और सब कुछ इसी जीवन का परिणाम-प्रतिफल मान बैठते हैं । ऐसे में जब कोई बड़ी सफलता थोड़े-से प्रयास में उनके हाथ लगती है, तो वे फूले नहीं समाते और अतीव प्रसन्न हो उठते हैं; किन्तु जब कोई विफलता सामने आती है, तो जीवन ही नीरस व भारभूत प्रतीत होने लगता है ।

वे कहते हैं कि नास्तिकवादी चिन्तन की सबसे बड़ी हानि अपराध-वृत्ति को बढ़ावा देना है । शायद इसी कारण से पश्चिमी राष्ट्र आज अपराधों के जाल-जंजाल में उलझे हुए हैं - जहाँ यह मान लिया गया हो कि अपराधी को मार देने से अपराध समाप्त हो जायेंगे, वहाँ कदाचित् इसका अन्त कभी न हो, कारण कि अपराध के लिए दण्ड या फाँसी-यह सामाजिक व्यवस्था है और सरकारी कानून। इससे दुष्कृत्यों पर नियंत्रण तो रखा जा सकता है; पर अपराधविहीन समाज की कल्पना को साकार नहीं किया जा सकता । इसके लिए नियम नहीं अनुशासन की आवश्यकता पड़ती है । आत्मानुशासन आस्तिकवादी चिन्तन के बिना सम्भव नहीं । नीतिमत्ता, कर्त्तव्यपरायणता, सेवा-सहायता-यह सब इसी चिन्तनधारा के अन्तर्गत बन पड़ते हैं; क्योंकि कर्त्ता का दृढ़ विश्वास होता है कि कर्म के परिणाम आज नहीं तो कल मिलकर रहेंगे । इसलिए वह प्राय: बुरे कर्मों से बचता है । हेन्स कहते हैं कि आज हम भले ही वैज्ञानिक प्रगति के चरमोत्कर्ष पर पहुँच गये हैं और अपराधियों की धर-पकड़ के लिये नये-नये परिष्कृत क्षेत्र विकसित कर लिये गये हैं; किन्तु यह कहना अपराध आगे नहीं होंगे-गलत होगा ।

इसका एकमात्र उपचार आस्तिकवादी विचारधारा को अंगीकार करना ही हो सकता है । यदि सृष्टि-रचना के पीछे किसी सर्वोपरि सत्ता को स्वीकार लिया गया, तो सुख-दु:ख, लाभ-हानि, सफलता-असफलता, रोग-शोक जैसे न समझ में आने वाले कारणों से सरलतापूर्वक पिण्ड छुड़ाया और संतोषपूर्वक जिया जा सकता है । आगे इस चिन्तन की गहराई में उतरने पर यह स्पष्ट अनुभव होने लगता है कि संसार में भगवान ने अवरोध-विरोध क्यों खड़े किये अथवा लाभ, सुख, प्रसन्नता के साथ-साथ इनके विपरीत तत्वों को क्यों गढ़ा ?

वास्तव में अपने ज्येष्ठ पुत्र की प्रगति और प्रसन्नता भगवान को भी अभीष्ट है यदि मनुष्य के सामने अवगति का भय न हो, तो उसके लिए प्रगति का महत्व भी नगण्य जितना रह जाता । इसी प्रकार उसे यदि दु:ख और शोक की पीड़ा की अनुभूति न हो, तो प्रसन्नता की ही क्या महत्ता रह जाती । सच तो यह है कि रात की सघन तमिस्रा के उपरान्त ही दिन के स्वर्णिम उजाले का यथार्थ आनन्द मिलता है । जहाँ उजाला-ही-उजाला हो अथवा अन्धेरा ही अन्धेरा हो, वहाँ जीवन नीरस व निरानन्द बन जायेगा । यदि इस दृष्टि से विचार किया जाय, तो ईश्वर पर लगने वाले आरोप निरस्त हो जायेंगे और यह स्पष्ट विदित होगा कि इसके पीछे उसकी कल्याणकारी-भावना ही प्रमुख है ।

सच्चरित्रता का मूल आधार ईश्वर-भक्ति ही है

मनुष्य जन्म पाकर ज्ञान को प्राप्त करना सबसे प्रधान कर्त्तव्य माना जाता है । पर ज्ञान का अर्थ केवल बहुत से ग्रन्थों को पढ़ लेना अथवा कोरा पंडित बन जाना ही नहीं है । जब तक विद्या-बुद्धि के साथ मनुष्य में नैतिक बल और सच्चरित्रता का गुण न होगा तब तक कोई उसका आदर-सम्मान नहीं कर सकता । जब किसी को दुर्व्यसन लग जाता है तब बुद्धि के सहारे उसे पूर्णत: नहीं रोका जा सकता । जिनमें नैतिक बल का अभाव है वे केवल बुद्धि के द्वारा धार्मिक नहीं बन सकते । प्राय: यह देखने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में आता है कि जिनमें नैतिकता और सच्चरित्रता का भाव नहीं है उनकी विद्या-बुद्धि दूसरों का अनहित करने वाली, असत्य को सत्य सिद्ध करने वाली बन जाती है। इसलिए जो शक्ति नैतिकता में है वह बुद्धिमानी में नहीं है । बुद्धि केवल मार्ग दिखलाने वाली है । यदि पथिक जान-बूझ कर कुमार्ग पर चला जाय और कष्ट उठाये तो बुद्धि उसका कुछ नहीं कर सकती । पर नैतिकता मनुष्य को सुमार्ग से विचलित नहीं होने देती, इसीलिये मनुष्य को बुद्धि रहते भी नैतिक बल की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए ।

जैसे बुद्धि के साथ नैतिकता का थोड़ा ही सम्बन्ध है उसी प्रकार विद्या के साथ भी अधिक सम्बन्ध नहीं है । यदि ऐसा न होता तो अनेक प्रसिद्ध विद्वानों, लेखकों और मेधावी व्यक्तियों में अनेक शराबी, फिजूलखर्ची और व्यभिचारी क्यों दिखलाई पड़ते ? उनकी यह विशाल विद्या, प्रतिभा उनको पाप-चिन्ता और दुराचार से क्यों नहीं हटाती ? अतएव क्या स्त्री और क्या पुरुष, सबके लिए पहली और सबसे बड़ी शिक्षा यही है कि नीति और धर्म के पथ पर चलना सीखें । जो शिक्षा धर्म और नीति के पथ से रहित है वह शिक्षा नहीं, वरन् कुशिक्षा है । जिस कर्म में धर्म और नीति का सम्बन्ध नहीं वही पाप कर्म है । जिन बालकों को आरम्भ में धर्म और नीति की शिक्षा नहीं दी जाती, वे बड़े होने पर प्रायः दुश्चरित्र होकर अपने वंश और देश को कलंकित करते हैं । इसलिये शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को चरित्रहीनता से दूर रखना ही होना चाहिए । दुश्चरित्र विद्वान से तो वह मूर्ख ही अच्छा है, जो सच्चरित्र के न होने से मनुष्य अपना भला भी नहीं कर सकता, दूसरों का कल्याण तो वह क्या कर सकेगा ? इसलिये व्यक्ति और समाज का हित इसी में है कि प्रत्येक नागरिक को आरम्भ से ही नैतिकता की शिक्षा दी जाय, धर्म का रूप समझाया जाय और उनके अनुसार चलने का अभ्यास कराया जाय ।

यद्यपि देश, काल, जाति, समाज और संस्कार के भेद से धर्म और उपासना की पद्धतियाँ भिन्न-भिन्न हैं, तो भी धर्म का मूल रूप सर्वत्र एक है और उन्हीं मूल सिद्धान्तों को आरम्भिक अवस्था में हृदयंगम कराना चाहिए । धर्म की शेष क्रियाएँ, उपासना की पृथक-पृथक विधियाँ तो बाद में स्वयं आ जाती हैं । धर्म का मूल आधार तो एक ईश्वर में विश्वास करना है । अगर हम यह समझ लें कि हम सबको एक ही ईश्वर ने उत्पन्न किया है और वह हमारा वास्तविक पिता है, तो फिर हम किसी के साथ कभी भी बुरा या हानिकारक आचरण कैसे कर सकते हैं ? ऐसे सर्वशक्तिमान और कल्याणकारी जगदीश्वर में अटल विश्वास और भक्ति करना ही धर्म का प्रथम सोपान है । जिस पर तुम्हारी भक्ति होगी, जिस पर तुम्हारा प्रेम होगा, उसकी प्रसन्नता के काम तुम अवश्य करोगे । इसलिये यदि तुम्हें ईश्वर के प्रति भक्ति का भाव होगा तो नीतिपूर्वक लोकोपकारी काम करने को तुम अपने आप तैयार होगे और अनुचित कामों से तुमको घृणा होगी । श्रीकृष्ण भगवान ने गीता में कहा है-

अपि चेत सुदुराचारो भजते मामनन्य भाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ।।
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति ।

अर्थात्-"जो दुराचारी है, किन्तु शुद्ध मन से ईश्वर का भजन करता है, थोड़े ही दिनों में धर्मात्मा होकर सुख-शान्ति पाता है ।" इसलिये जो मनुष्य सच्चे हृदय से ईश्वर की भक्ति करेंगे, निष्कपट भाव से उसकी उपासना करेंगे, तो सभी जगह उनका आदर-सम्मान होगा । ईश्वर की भक्ति द्वारा बुरे कर्मों से घृणा होगी तो तुम स्वयं ही ईश्वर को प्रसन्न करने वाले कामों को समझ जाओगे और वैसा ही आचरण करने लगोगे ।

किसी विद्वान का कथन है कि-"कर्त्तव्य का पालन करना ही धर्म है । जो लोग उचित कर्म का त्याग नहीं करते उनके धर्म की रक्षा अपने आप होती है ।" शास्त्रों में भी यही कहा गया है-'**धर्म तु विहितं कर्म्म ह्यधर्मस्तद्विपर्यय ।**' जीवन की सार्थकता तभी है जब धर्म का पालन होता रहे । धर्महीन जीवन की मृत्यु का ही दूसरा नाम है, बल्कि हम तो यहाँ तक कह सकते हैं कि अधार्मिक जीवन से मरण ही श्रेष्ठ है । धर्म में प्रवृत्त होने के लिये मनुष्यत्व का ज्ञान होना आवश्यक है और मनुष्यत्व का ज्ञान तब तक नहीं हो सकता जब तक ईश्वरीय शक्ति में विश्वास और भक्ति न हो । इसलिये मनुष्य का सबसे पहला कर्त्तव्य अथवा साधन ईश्वर की भक्ति, प्रेम ही है । जो मनुष्य भक्ति के मार्ग पर चलेगा उसका धर्मप्रेमी अथवा सच्चरित्र होना कठिन नहीं है । ईश्वर में अटल विश्वास और भक्ति मनुष्य व लाभ करने का प्रथम सोपान है । जो ईश्वर के भक्त नहीं हैं वे मनुष्य होकर भी मनुष्यता से रहित हैं, इसलिये बालकों को शिक्षा देना आरम्भ करते ही उनको ईश्वर से प्रेम और भक्ति करना भी सिखाना चाहिए । जिन बालकों को बचपन में धर्म, नीति और भक्ति की शिक्षा नहीं दी जाती वे युवा होने पर अपना चरित्र ठीक नहीं रख सकते । नीतिपूर्वक चलने पर भी जब तक मनुष्य अन्य प्राणियों से प्रेम करना न सीखे तब तक मनुष्य जीवन अधूरा ही रहता है । इस कमी को पूरा करने वाली ईश्वर भक्ति ही है । इसके बिना मनुष्य का हृदय कोमल, शान्त और विशुद्ध नहीं बन सकता और जब तक ये गुण मनुष्य में न हो अन्य मनुष्य भी उससे प्रेम नहीं कर सकते । संसार में जो मनुष्य दूसरों को प्रेम न करें और दूसरे उसे प्रेम न करें तो उसका जीवन निरर्थक ही है और इस प्रकार का विशाल और सच्चा प्रेम ईश्वर की भक्ति करने से ही मिल सकता है ।

यह कहा गया है कि चरित्र से मनुष्यत्व प्राप्त होता है, पर भगवान की भक्ति चरित्रवान को देवत्व प्रदान करने वाली है । वह हमको एक ऐसा अलौकिक आनन्द देती है, जिसकी तुलना और किसी आनन्द से नहीं की जा सकती । वह मनुष्य के हृदय को अमृत के समान मीठा और नवनीत के समान कोमल बना देती है । तब उस मनुष्य को सर्वत्र आनन्द ही आनन्द दिखलाई पड़ता है;

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ईर्ष्या, कलह, शत्रुता के सब भाव लोप हो जाते हैं । क्योंकि जब मनुष्य परमात्मा को ही जगत का सच्चा पालनकर्त्ता मान लेता है, तब उसके हृदय में स्वभावत: ही सब प्राणियों के लिये आत्मभाव का उदय होता है । वह समझने लगता है कि यदि मैं किसी जीव को कष्ट पहुँचाऊँगा तो परमात्मा अवश्य मुझसे अप्रसन्न होगा । इसी प्रकार किसी प्राणी को दु:ख से छुड़ाने या उसका कोई उपकार कर देने से परमात्मा की कृपा भी अवश्य होगी । इस प्रकार ईश्वर की सच्ची भक्ति करने वाला व्यक्ति अपने देश, समाज और आस-पास रहने वालों का सच्चा हितैषी बन जाता है और वही सच्चरित्रवान कहलाने का अधिकारी होता है । जिन लोगों का ख्याल है कि भगवान की भक्ति का अर्थ मन्दिर में घन्टों आँखें मूँदकर बैठे रहना अथवा ठाकुरजी के आगे विह्वल होकर नाचने गाने लगना ही है, वे कुछ गलती करते हैं । भक्ति की दशा के बहुत प्रगाढ़ हो जाने पर कभी-कभी मनुष्य में ये लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं, पर इसका यह अर्थ नहीं कि वे अपने जीवन के प्रधान कर्त्तव्यों से मुँह मोड़ लें । इसके विपरीत हम तो ईश्वर-भक्ति का अर्थ यह समझते हैं कि वह व्यक्ति लोक और परलोक की वास्तविकता को समझ जाता है और जन-साधारण में जन, धन और यश आदि का जो मोह दिखलाई पड़ता है उससे वह छूट जाता है । इसलिये जब कभी अवसर आये वह दूसरों की सेवा, उपकार, उद्धार के लिये अधिक से अधिक त्याग और बलिदान कर सकता है । स्वार्थ और स्वार्थ से उत्पन्न पाप कार्यों की तो भक्त के लिये सम्भावना ही नहीं करनी चाहिए। इसलिये अपने हृदय में ऐसी सच्ची ईश्वर-भक्ति उत्पन्न करना और उसके द्वारा सत्कर्म करके मानवजीवन सफल बनाना ही हम सबका परम कर्त्तव्य है ।

नैतिकता अविच्छिन्न रूप से जुड़ी है-आस्तिकता से

नीतिपरायणता और आस्तिकता दोनों एक दूसरे से घनिष्टतापूर्वक सम्बन्धित हैं । इनको एक सिक्के के दो पहलू के रूप में जाना जा सकता है। एक को छोड़ देने पर दूसरे को समझना मुश्किल ही नहीं प्राय: असम्भव है।

पश्चिम के अधिकांश नीतिशास्त्री इस तथ्य को भुला देने के कारण ही जीवन को सुव्यवस्थित स्वरूप नहीं प्रदान कर पाये । यद्यपि इसके लिये ढेरों प्रयत्न किये गये, प्रेम, भाईचारे की न जाने कितनी बातें सोची, लिखी गयीं और पोथियों में प्रकाशित भी हुई पर बालू के महल की तरह भोगवादी वृत्ति तथा संकीर्ण स्वार्थपरक भावनाओं की लहरों ने इसे बिखरा दिया ।

आस्तिकता के बिना नीति सम्बन्धी सवालों का जबाव देना बिल्कुल असम्भव है । एक दूसरे से प्रेम क्यों करें ? भाईचारे की भावना को स्थान किसलिए दिया जाय ? संयमित व सुव्यवस्थित जीवनक्रम की उपयोगिता क्यों है ? ऐसा न करने पर किस प्रकार की हानि होगी ? आदि । इन सवालों का समाधान नास्तिकता के धरातल पर किसी तरह नहीं किया जा सकता ।

इसके लिए जरूरी है किसी ऐसी चीज की स्थापना जो समूची मनुष्य जाति और प्रकृति में सम्बन्ध सूत्र बताए । साथ ही इनका नियन्त्रण व पालन-पोषण भी करे । नैतिक व अनैतिक जीवन की लाभ-हानियों की नियामक हो । ये सारी चीजें तभी सम्भव हैं जब नियामक तत्व जड़ न होकर चेतन हो ।

आस्तिक दर्शन ने इसे ही ईश्वर, आत्मा, अमरता के रूप में समझाया है । ईश्वर एक ऐसी चेतन सत्ता है जो सब जगह एक-सी व्याप्त है । हम सभी में उसी के एक तत्व के समाये होने के कारण एक दूसरे से प्रेम व भाईचारे का व्यवहार बन पड़ता है । इस घनिष्ट सम्बन्ध के कारण पारस्परिक सहयोग का भाव अत्यन्त स्वाभाविक है । आत्मा इसी का अंश है, जो व्यक्तिगत जीवन की संचालक सत्ता है । प्रकृति से इसका सम्बन्ध ही जीवात्मा के रूप में जाना जाता है । इसी के द्वारा विभिन्न कर्म किए जाते हैं । जिनके नैतिक-अनैतिक रूपों के अनुसार अच्छे-बुरे फल प्राप्त होते हैं । इन परिणामों की समाप्ति वर्तमान जीवन तक ही नहीं है । कभी ऐसा दिखाई देता है कि बुरे कामों को करने वाला सुखी है और अच्छे कामों को करने वाला दु:खी । इसकी व्याख्या के लिए अमरता का एवं कर्मफल का सिद्धान्त पर्याप्त है । बुरे कामों को करने वाला इसके परिणाम कर्मों के परिपक्व हो जाने पर अवश्य पाएगा, भले ही वह अगले जन्म में ही क्यों न मिलें । अच्छे कर्मों के सन्दर्भ में भी यही बात है । जन्म से लूले-लँगड़े, प्रतिभावान इसी आधार पर होते हैं ।

यही नहीं लगातार अनैतिक कर्मों का किया जाना जहाँ इसी जन्म में विकास की गति रोककर अधोगामी बनाता है, वहीं आदर्शपरायण सुसंयमित जीवन चेतनात्मक उत्कर्ष में सहायक बनता है । आत्मा की प्रखरता और पवित्रता जीवनक्रम को परमपावन, सक्रिय और सतेज बनाती है ।

आस्तिकता के अभाव में मात्र बुद्धि के आधार पर बनाए गए नीति-नियमों का आदमी थोड़े दिनों तक तो पालन करता है । बाद में बुद्धि तरह-तरह के प्रश्न खड़े करती है जिनका कोई समाधान उसके पास नहीं होता । इस कारण उसे यही भ्रमवश उचित लगता है कि इसी अंधी दौड़ में भागने से अच्छा है कि शौक-मौज का जीवन जिएँ, तरह-तरह के सुखों का भोग करें । इस तरह धीरे-धीरे सारे नीति-नियम बह जाते हैं । मनुष्य होने के कारण जहाँ उसे सचेतन और जागरूक होना चाहिए था, वहाँ वह पशु की भाँति मात्र चेतन और प्रकृति प्रेरणाओं पर निर्भर रहने लगता है ।

मूर्धन्य मनीषी ह्वाइटहेड ने इसी कारण आस्तिकता की अनिवार्यता सिद्ध करते हुए कहा है कि नैतिकता तभी टिक

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकती है, जबकि उसे आस्तिकता का ठोस आधार मिले। इसके आधार पर ही मनुष्य आन्तरिक सफाई करता, कषाय-कल्मषों से मुक्त होता, विविध सद्गुणों को अपनाता और नीतिवान बनता है । आस्था के अभाव में मनुष्य व्यक्तिवान नहीं बन सकता । सर्वव्यापक सत्ता पर बल देते हुए विख्यात दार्शनिक हरबर्ट स्पेन्सर ने कहा है कि ईश्वर विश्वास से ही अन्तःकरण के विकास की महत्वपूर्ण प्रक्रिया की शुरूआत होती है । धीरे-धीरे वह विश्वासी व्यक्ति सारे के सारे नैतिक गुणों का घनीभूत पुंज बन जाता है । निश्चित ही नैतिकता का वास्तविक उद्देश्य आस्तिक बनने से पूरा हो जाता है ।

स्वार्थपरता की संकीर्ण मनोभूमि में ही अनैतिकता फूलती-फलती है । जब तक इस प्रकार की मनोभूमि बनी रहेगी, अनैतिकता के कम या दूर होने की बात तो दूर, उलटे इसे बढ़ावा मिलता रहेगा । सर्वव्यापी सत्ता पर विश्वास से आत्मीयता के विस्तार की प्रक्रिया शुरू होती है। मनुष्य संकीर्णता के दायरे से ऊपर उठ जाता है । उसका हृदय प्राणिमात्र के प्रति प्रेम से भर जाता है । फिर इसमें घृणा-विद्वेष का कोई स्थान नहीं रह जाता ।

मनुष्य सही माने में नैतिक, चरित्रनिष्ठ, कर्तव्यपरायण बने, यह मात्र बौद्धिक तर्कों के सहारे सम्भव नहीं । इसके लिए भाव सम्वेदनाओं को उभारना होगा । इसके लिए आस्तिकता के उन तथ्यों को अपनाना जरूरी है, जो मानवीय सम्वेदनाओं के मर्मस्थान को स्पर्श करते हैं । क्योंकि नीति सिद्धान्त अपनी समूची तार्किकता के बाद भी दिमाग को ही छू पाते हैं, दिल तक उनकी किसी तरह पहुँच नहीं । नीतिशास्त्र का आधार तर्क है, जबकि आस्तिकता का विवेक । विवेक-भावना और तर्क का समन्वित रूप है । इसका संचालन बुद्धि के स्थान पर हृदय से होता है ।

नीतिशास्त्र का वैचारिक मन्थन जीवनक्रम में आमूल-चूल परिवर्तन के लिए काफी नहीं है । विचारों से बुद्धि में परिपक्वता आती है, जानकारी बढ़ती है । पर उसका प्रभाव अन्तस पर नहीं के बराबर पड़ता है । आस्तिकता भावनाओं को छूती है । इसके अवलम्बन से जीवनक्रम में आमूल-चूल परिवर्तन लाकर आदर्शपरायण बनना सहज है । दर्शनशास्त्री देकार्त ने इसे बुद्धि का प्रकाश कहा है । जिससे तमाम तरह के सन्देहों से छुटकारा मिलता है । जीवन के विकास की गति तेज हो जाती है ।

पाश्चात्य दार्शनिक काण्ट के अनुसार मनुष्य को नैतिक बनाने के लिए ईश्वर को मानना आवश्यक है । इसके बिना उसे नीतिपरायण नहीं बनाया जा सकता । ईश्वर सारी नैतिक विशेषताओं एवं उच्चस्तरीय आदर्शों का एकीकृत पुंज है । इस विश्वास के साथ अवलम्बनकर्त्ता भी धीरे-धीरे वैसा ही बनता जाता है । दैनिक जीवन में ऐसे तमाम उदाहरण मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि ईश्वरपरायण व्यक्ति नैतिक दृष्टि से सामान्य लोगों से कहीं अधिक बढ़े-चढ़े होते हैं । वह कहीं अधिक शांति, सन्तोष की उपलब्धि करने में समर्थ होता है । महर्षि रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार ईश्वर-विश्वास स्वयं में एक सृजनात्मक शक्ति है, जो हमेशा पारस्परिक सेवा व सहयोग के फूलों का चयन करती है । इससे आदमी खुद ही नीतिपरायण बनता और दूसरों को भी अपने अनुसरण की प्रेरणा प्रदान करता है । सामान्य व्यक्ति के लिए ईश्वर इस संसार का निर्माता, पोषक और संहारक बन सन्मार्ग अपनाने और उस पर बढ़ चलने के लिए प्रेरणा का स्रोत है । असामान्य व्यक्ति उस सत्ता को आदर्शों एवं सिद्धान्तों के प्रकाश पुंज के रूप में देखता है । उसी के अनुरूप स्वयं को ढालने का प्रयास करता है ।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर पता चलता है कि किसी न किसी रूप में हर आदमी की चाहत है कि उसका अपना कोई संरक्षक हो, जो समर्थ हो उसे मार्गदर्शन दे और सहयोग करे । ऐसी समर्थ सत्ता परमात्मा के सिवा और कौन हो सकती है ? जो मनुष्य को हर समय सूक्ष्म संरक्षण प्रदान कर सके । इसी भाव की व्याख्या करते हुए मनोविज्ञानी कार्ल गुस्ताव जुंग का मानना है कि आस्तिकता उसी तरह संरक्षण प्रदान करती है जैसे नन्हें-मुन्ने शिशु के लिए माँ की गोद । इसी के समग्र विकास से नैतिक सत्य का ज्ञान होता है । यह ठीक है कि हम बाद में उसके विचार-विमर्श से विभिन्न कारण एवं तर्कों की खोज कर लें । जिसका जीवन इसके अनुसार संचालित होता है वह अपने जीवन को कवि या कलाकार की भाँति कविता या चित्रों में नहीं दर्शाता, वरन् एक उच्चतर किस्म के व्यवहार में अभिव्यक्त करता है ।

बात भी सही है । आस्तिक बनने का मतलब ईश्वर-ईश्वर की रट लगाना नहीं है । इसका सही अर्थ यही है कि हम ईश्वर को सर्वव्यापक मानकर सभी में उसी की अनुभूति करें । यह अनुभूति व्यावहारिक धरातल पर प्रेम, स्नेह, भाईचारे के रूप में प्रकट होती है । आत्मा को ईश्वर का अंश मानकर उसे सद्गुणों के समुच्चय के रूप में माना जाय । इन्हीं सद्गुणों को एक-एक करके व्यवहार में लाना होगा । साथ ही इस तथ्य पर विश्वास करना होगा कि वर्तमान जीवन विकास यात्रा का एक कदम है न कि इसकी समाप्ति । धीरे-धीरे किन्तु लगातार विभिन्न गुणों के द्वारा अपने आधार व व्यवहार को सजाना होगा । आचरण व व्यवहार को इस तरह ढालना ही सही माने में आस्तिक बनना है । इस प्रयास में जुटे लोगों की नैतिकता तर्क-वितर्क व पोथियों के पन्नों में कैद नहीं रहती। अपितु इसका उच्चतर स्वरूप अपनत्व के भाव तथा चिन्तन, कर्तृत्व की उत्कृष्टता के रूप में प्रकट होता है । जीवन को सही ढंग से गढ़कर सर्वांग सुन्दर बनाना इसी के द्वारा सम्भव है ।

आस्तिकता बनाम नीति-निष्ठा

प्रसिद्ध विद्वान व्हाइटहेड का कहना है कि ईश्वर विश्वास इसलिए आवश्यक है कि मनुष्य इस विश्वास का अवलम्बन लेकर अपनी भीतरी सफाई करता है । दुष्प्रवृत्तियाँ छोड़ता, सद्गुण अपनाता तथा नीतिवान बनता है ।

हर्बर्ट स्पेन्सर के अनुसार-"किसी सुप्रीम सत्ता में विश्वास करने से आन्तरिक विकास की प्रक्रिया आरम्भ होती है और अन्ततः ऐसा धार्मिक व्यक्ति सम्पूर्ण नैतिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गुणों का पुंज बन जाता है । सच तो यह है कि नीति-शास्त्र का वास्तविक उद्देश्य धर्मावलम्बन से पूरा हो जाता है । अनैतिकता का मूल कारण मनुष्य की स्वार्थ वृत्ति है । जब तक संकीर्ण स्वार्थों में मनुष्य बँधा रहेगा तब तक अनैतिकता को बढ़ावा मिलेगा । आत्मविस्तार की प्रक्रिया धर्मावलम्बन से आरम्भ होने से मनुष्य संकीर्णता की परिधि से ऊपर उठ जाता है और मानव मात्र को अपना मानने लगता है । इस तरह धर्म वही प्रयोजन पूरा करता है जो नीतिशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य है । इस प्रकार मनुष्य को चरित्रवान्, नीतिवान बनाना हो तो नीतिशास्त्र को अपने भीतर उन धार्मिक तत्वों को भी समाहित करना होगा जो मानवी हृदय को छूते हैं, क्योंकि नीतिशास्त्र के सिद्धान्त उपयोगी होते हुए भी उनमें मस्तिष्क को ही मात्र छूकर रह जाते हैं, जबकि परिवर्तन का केन्द्र-बिन्दु मनुष्य का हृदय है । नीतिशास्त्र के सिद्धान्त तर्क पर आधारित हैं । तर्क-उच्छृंखलता भी हो सकता है । धर्म को अपनाने, ईश्वर को अपनाने पर तर्क की यह उच्छृंखलता समाप्त हो जाती है । तर्क का स्थान विवेक ले लेता है, जो श्रद्धा एवं तर्क का समन्वित रूप होता है और तब मनुष्य बुद्धि से नहीं हृदय से परिचालित होता है ।

"नीतिशास्त्र का वैचारिक मंथन वस्तुतः नैतिकता का उद्‌गम नहीं हो सकता । नीतिशास्त्र विकास के लिए श्रेष्ठ सिद्धान्तों का समुच्चय है, जिसकी आचार-संहिता धर्म में समाविष्ट है। नैतिकता व्यवहार में तभी उतर सकती है जब आत्म-अंकुश एवं स्वनिर्माण के ऐसे आधार प्रस्तुत करे जिनको मनुष्य स्वतः अपनाने के लिए तैयार हो जाय। वह आधार नीतिशास्त्र नहीं धर्म ही दे सकता है ।"

'काण्ट' का कहना है कि "ईश्वर को मानना एवं उसका अवलम्बन लेना इसलिए भी आवश्यक है कि उसके बिना मनुष्य को नैतिक नहीं बनाया जा सकता।" वह समस्त नैतिक विशेषताओं एवं उच्चस्तरीय आदर्शों का पुंज है, इस विश्वास के आधार पर अवलम्बनकर्त्ता भी क्रमशः वैसा ही बनता जाता है । हम ऐसे उदाहरण अपने दैनिक जीवन में भी देखते हैं कि धर्म को व्यवहार में अपनाने वाला नैतिक दृष्टि से सामान्य व्यक्तियों की तुलना में कहीं अधिक आगे होता है । व्यक्तिगत सुख-शान्ति एवं सन्तोष के क्षेत्र में भी अन्यों की अपेक्षा अधिक बढ़ा-चढ़ा होता है। "ऐसी कोई अदृश्य सत्ता अवश्य है जो नीति एवं अनीति के परिणामों का सुसंचालन करती, नीति परायणों को सुख, शान्ति देती तथा अनीति पर चलने वालों को दण्ड प्रदान करती है। "

विलियम पैटर्न अपनी पुस्तक 'दी ग्रेड स्ट्रेटेजी आफ इवॉलूशन' में लिखते हैं कि ईश्वर-विश्वास स्वयं में एक सृजनात्मक एवं रचनात्मक शक्ति है, जो सदा सहयोग तथा पारस्परिक सेवा के फूल चुनती रहती है । मनुष्य स्वयं विकसित होता, नीतिपरायण बनता तथा दूसरों को वैसा ही अनुकरण करने की प्रेरणा देता है । इस तरह व्यक्ति और समाज दोनों का ही विकास होता है ।

एडविन ग्राण्ट 'ह्यूमनइवाल्यूशन' ग्रन्थ में उपरोक्त तथ्य को अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त करते हैं-कि उस महान सत्ता पर विश्वास एवं आरम्भ होने वाली आत्मविकास एवं सामाजिक-विकास की प्रक्रिया में क्रमशः सहयोग, सेवा, उदारता एवं चरित्र-निष्ठा के मानवी एवं नैतिकतत्व अधिकाधिक उभरते चले जाते हैं ।

नीति एवं दर्शन-शास्त्र के प्रख्यात विद्वान् ड्यूरेन्ट ड्रेक अपने ग्रन्थ 'इन्विटेशन टू फिलासफी' में लिखते हैं कि "सामान्य व्यक्ति के लिए ईश्वर-जगत का निर्माता, पोषक तथा संहारक बनकर सद्‌मार्ग अपनाने एवं सदाचरण की प्रेरणा देता है । असामान्य व्यक्ति इस सत्ता को श्रेष्ठ सिद्धान्तों एवं आदर्शों के पुंज के रूप में देखता है और उसी के अनुरूप ढलने को बाध्य करता है ।" वे आगे कहते हैं कि "यदि हमें विश्व में एकता, समता की-सुख-शान्ति की एवं आनन्द की-निर्झरणी प्रवाहित करनी है तो उसके मूलभूत स्रोत एवं श्रेष्ठतम मानवी आदर्शों के प्रतीक ईश्वर को अपनाना होगा ।"

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी देखा जाय तो हर व्यक्ति चाहता है कि कोई उसका एक ऐसा संरक्षक हो जो समर्थ हो तथा आपत्तिकाल में उसका सहयोग करे । ऐसी समर्थ सत्ता ईश्वर ही हो सकती है, जो मनुष्य को हर समय अपना सूक्ष्म संरक्षण दे सके । वाल्टेयर ने इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य को ध्यान में रखकर, एक बार कहा था कि "यदि-ईश्वर नहीं है तो हमें उसकी सर्जना करनी होगी क्योंकि ईश्वर के बिना अधिकांश लोगों का जीवन तुच्छ, असहाय एवं दुःख पूर्ण है ।"

कार्ल जुंग के अनुसार धर्म के अवलम्बन से मनुष्य उसी प्रकार शान्ति की अनुभूति करता है जिस तरह बच्चा माँ की गोद में पहुँचने के बाद अनुभव करता है । व्यक्ति जब अपने को निस्सहाय महसूस करता है । तो ऐसे अवसरों पर किसी सर्वसमर्थ पिता पर विश्वास कर ही वह शान्ति अनुभव करता है ।

मनोविज्ञान वेत्ता कार्ल जुंग की मान्यता है कि "धर्म की सहायता एवं किसी सर्वसमर्थ सत्ता के अवलम्बन से व्यक्ति जीवन के कालुष्य को लील सकता है ।" शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य स्थिर बनाये रखने से लेकर मनुष्य को श्रेष्ठ महान बनाने के सारे आधार अध्यात्म में विद्यमान हैं ।"

आस्तिकता अनुभूतिगम्य है

बीसवीं सदी में प्रत्यक्षवादी, मान्यताओं के प्रति विशेष उमंग, उमड़ा उत्साह इस सीमा तक बढ़ा कि अदृश्य परमात्म सत्ता के अस्तित्व से भी इन्कार किया गया । पदार्थसत्ता को ही सर्वोपरि ठहराने वाले एक ऐसे वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ जिसने आस्था, परमात्मा, कर्मफल की मान्यताओं पर भी कुठाराघात किया । इस वर्ग का कहना है कि ईश्वर पर विश्वास करने से मनुष्य पुरुषार्थवादी नहीं रहता, भाग्यवादी बनकर भ्रम-जंजालों एवं अन्धविश्वासों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में भटकता है । वास्तविकता के धरातल से परे हटकर काल्पनिक दुनिया में अपना समय एवं श्रम गँवाता रहता है । नास्तिक वर्ग का यह तर्क विचारणीय है ।

निस्सन्देह वह ईश्वर जो मनुष्य को पुरुषार्थहीन बनाता हो भ्रम-जंजालों में भटकाता हो, की मान्यता से इन्कार किया जाना चाहिए । सच तो यह है कि ईश्वर विश्वासी के समान पुरुषार्थी कोई नहीं होता । जहाँ सामान्य व्यक्ति का पुरुषार्थ व्यक्तिगत दायरे में सिमटा रहता है वहीं आस्तिक की प्रखरता प्रचण्ड पुरुषार्थ के रूप में मानव मात्र के कल्याण के लिए समर्पित होती है । जिन्होंने भी उस सत्ता का अवलम्बन लिया स्वयं तो श्रेष्ठ बने ही, अन्यों को भी श्रेष्ठता के मार्ग पर चलने के लिए बाध्य किया । आस्तिकतावादी महापुरुषों के इतिहास इस बात के साक्षी हैं कि उन्होंने अपनी तेजस्विता के बलबूते समाज को एक ऐसा श्रेष्ठ प्रवाह दिया जिसमें असंख्यों व्यक्ति बहते चले गये तथा महामानवों की श्रेणी में जा पहुँचे । जहाँ कहीं भी अकर्मण्यता दिखाई पड़ती है वहाँ समझा यह जाना चाहिए कि ईश्वर का अवलम्बन नहीं उसका खोखला कलेवर अपनाया गया है । भ्रम-जंजालों एवं अन्धविश्वासों की नहीं प्रचण्ड विवेक की उत्पत्ति ईश्वरीय विश्वास से उत्पन्न होती है । अंधविश्वास तो विकृतियाँ हैं, ईश्वरीय विश्वास की उपलब्धि नहीं ।

चर्च संघ के मूर्धन्य धर्माध्यक्ष डा० हैरीएमरसन फासगिक से नास्तिक वर्ग की इन विकृतियों की चर्चा की, तो उन्होंने उत्तर दिया-ईश्वर के उस स्वरूप का जो अन्धविश्वासों विकृतियों को जन्म देता हो, का न मानना ही श्रेयस्कर है । उन्होंने कहा कि "पुरुषार्थ से विमुख करने वाली ऐसी किसी भी आस्तिकता मान्यता को स्वीकार करने के पक्ष में मैं नहीं हूँ ।"

आस्तिकता के विरोध में इसका तर्क यह दिया जाता है कि ईश्वर है तो फिर दिखाई क्यों नहीं पड़ता ? किन्तु यदि दिखाई पड़ने के आधार पर ही ईश्वरीय अस्तित्व को स्वीकार करने की बात होगी तो वह शक्ति न होकर व्यक्ति असीम न होकर ससीम सत्ता होगी । उस महान सत्ता को उसकी विखरता से खींचकर सीमित क्षेत्र में प्रत्यक्ष कर देने की कल्पना वस्तुस्थिति के अनुपयुक्त एवं उसकी गरिमा के प्रतिकूल होगी । दिखाई तो नेत्रों से पंच तत्वों से बना यह संसार ही पड़ता है । जो सतत् परिवर्तित एवं बिखण्डित होता रहता है । परमात्मा को भी इन तत्वों में गढ़ी ऐसी ही शक्ति माना जाय तो यह एक भारी भूल होगी ।

स्थूल नेत्रों से दृष्टिगोचर होना ही मात्र किसी सत्ता के अस्तित्व का प्रमाण नहीं है । चुम्बक, विद्युत, ताप जैसी अनेक शक्तियाँ प्रत्यक्ष दिखाई नहीं पड़ती हैं । किन्तु उनका परिचय विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाओं के रूप में मिलता है । विद्युत, पंखे में चलती, बल्ब में चमकती एवं हीटर को गरम करती देखी जाती है । चुम्बक अपना परिचय आकर्षण शक्ति के रूप में देता है । प्रत्यक्ष न दिखाई पड़ते हुए भी उसकी सत्ता को स्वीकार किया गया है । प्रतिक्रियाओं के आधार पर इन शक्तियों की प्रकृति एवं विशेषताओं की जानकारी मिलती है ।

प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने वाली यह सृष्टि ही परमात्मा का साकार स्वरूप हो सकती है । इसकी सुव्यवस्था एवं सौन्दर्य में ईश्वरीय-चेतना को क्रीड़ा-कल्लोल करते भाव नेत्रों द्वारा देखा जा सकता है । उसका एक अंश चेतना के रूप में सृष्टि की व्यवस्था संचालित करता है । पूर्ण ब्रह्म को देख सकना अथवा अनुभव कर सकना असम्भव है । नास्तिक वर्ग द्वारा परमात्मा के संदर्भ में यह प्रश्न किये जाने पर कि परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता । डा० फासगिक ने उत्तर दिया कि "सागर को एक प्याले में उड़ेल देना सम्भव नहीं है । पूरी तरह से उस सत्ता का वर्णन कर सकना अथवा देख सकना इन नेत्रों से सम्भव नहीं है । सागर के जल का प्रतिनिधित्व करने वाला प्याला सागर के जल की विशेषता को दर्शाता तो है, किन्तु उस की समग्र विशेषताओं का परिचय नहीं दे सकता । इसी प्रकार ईश्वर की विशेषताओं का अध्ययन सृष्टि में कर तो सकते हैं, किन्तु पूर्णरूपेण उसे जान सकना इन प्रतीकों द्वारा संभव नहीं है । " डा० फासगिक ने आगे कहा कि "जिस प्रकार समुद्र के निकट पहुँचकर भी उस का एक बड़ा भाग सदा अज्ञात बना रहता है । उसमें स्नान किया जा सकता है; उसकी शीतलता का लाभ उठाया जा सकता है, उसी प्रकार परमात्मा इतना विराट् है कि वह बुद्धि एवं इन्द्रियों की पकड़ से बाहर है । सांकेतिक रूप से प्रकृतियों की संरचनाओं एवं उसकी विशेषताओं में उसका दर्शन किया जा सकता है । ईश्वर को निकटवर्ती रूप में सौन्दर्य, प्रेम, दिव्यता, श्रेष्ठता, सत्य एवं सच्चरित्रता जैसे गुणों के रूप में देखा जा सकता है । "

यह पूछे जाने पर कि सामान्य व्यक्ति ईश्वर को पाने का प्रयत्न करते हैं किन्तु सफल नहीं होते, ऐसा क्यों है ? डा० फासगिक ने कहा कि "सम्पूर्ण रूप से तो उसको कोई नहीं जान सकता और न ही यह सम्भव है । किन्तु उसकी दिव्यता का जितने अंश में दर्शन कर सके, जान सके, उसी को आधार मानकर अपनी साधना आरम्भ करे। विचारक श्रेष्ठ विचारों के रूप में, कलाकार, सौन्दर्य के रूप में, साधक, श्रद्धा-भावना के रूप में तथा कर्मयोगी श्रेष्ठ कर्मों के रूप में अपनी साधना आरम्भ करके उस परमात्मा की अनुभूति कर सकता है ।

सृष्टि की सुव्यवस्था एवं महापुरुषों के उदात्त चरित्र में भी उस महती चेतना का दर्शन किया जा सकता है । गणित के नियमों के समान नियम व्यवस्था एवं अनुशासन में बँधी सृष्टि प्रत्येक विचारशील को यह सोचने को बाध्य करती है कि क्या यह सब बिना किसी विचारशील नियामक-सत्ता के सम्भव है ।"

ईश्वरीय सत्ता में अविश्वास करने वाले वर्ग ने डा० फासगिक से पूछा कि आपके ईश्वर की परिभाषा क्या है ? उन्होंने कहा कि परिभाषाएँ बुद्धि की उपज है । जो ईश्वर, बुद्धि की परिभाषा के क्षेत्र में आता है । उसका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्तर मानवी होगा । असीम सामर्थ्यों से मुक्त सत्ता के रूप में नहीं होगा । "मानवी परिभाषाओं में बँधने वाला ईश्वर विराट् न होकर सामान्य होगा । ऐसा ईश्वर शक्ति नहीं व्यक्ति होगा । स्पष्ट है कि ईश्वर की परिभाषा दे सकना सम्भव नहीं है ।"

डा० फासगिक का उपरोक्त कथन गीता के इस तत्वज्ञान का समर्थन करता है, जिसमें गीताकार कहता है-

वह परमात्मा इन्द्रियों से, बुद्धि से परे है ।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ।।

-गीता ३।४२

स्थूल शरीर से इन्द्रियाँ, इन्द्रियों से मन, मन से बुद्धि सूक्ष्म और श्रेष्ठ है, किन्तु जो बुद्धि से भी परे है, उसे ही (परम) आत्मा कहा जाता है अर्थात् परमात्मा इन्द्रियों एवं बुद्धि की पकड़ से परे है ।

इसे जानने के लिये इन्द्रियों एवं बुद्धि की सीमा से निकलकर भाव जगत में प्रविष्ट होना होगा । ऋषियों द्वारा बताये हुए सनातन मार्ग पर चलते श्रेष्ठ जीवनक्रम अपनाने से ईश्वरीय अनुभूति सम्भव है । महानता अपनाना एवं श्रेष्ठता की ओर बढ़ चलने का साहस जुटा पाना अंधविश्वास अकर्मण्यता नहीं, प्रचण्ड पुरुषार्थ एवं विवेक का परिचायक है, जिसको अपनाने वाला स्वयं तो महान बनता है दूसरों को भी श्रेष्ठता की ओर बढ़ चलने की प्रेरणा दे सकने में समर्थ होता है । आस्तिकता का अवलम्बन ही वस्तुतः जीवन का सबसे बड़ा पुरुषार्थ एवं वास्तविक ज्ञान का परिचायक है ।

आस्तिकता, जीवन की अनिवार्य आवश्यकता

आस्तिकता के दो अपरिहार्य अंग है-आशा और प्रसन्नता । ईश्वर की सत्ता पर विश्वास रखने वाला सदा आशा का दीपक जलाए रखता है । निराशा की अंधेरी रात्रि से हमेशा दूर रहता है । वह यह मानकर चलता है कि प्रकृति के अनुदान, मानव शरीर एवं सहयोगी समाज देकर ईश्वर ने उस पर बड़ा उपकार किया है । जब उसने इतना किया है, तो भविष्य में भी सदा हमारा ध्यान रखेगा । ईश्वर महान् है, तो उसकी कृति भी महान ही होगी । यही सोचकर एक आस्तिक व्यक्ति सदा प्रसन्न भाव बनाए रखता है ।

अपनी महान् सम्भावनाओं पर अटूट विश्वास ही सच्ची आस्तिकता है । स्वामी विवेकानन्द ने आत्म-विश्वास की इस मानव प्रवृत्ति को ही आस्तिकता का द्योतक बताया है । 'अरस्तु' के अनुसार-नास्तिकता व निराशा पर्यायवाची हैं । जिसने उज्ज्वल भविष्य की आशा छोड़ दी, मान लेना चाहिए कि उसका ईश्वर पर से विश्वास हट गया ।

पर मनुष्य छोटे-मोटे अवरोधों-मामूली प्रतिकूलताओं से ही क्षणमात्र में विचलित होकर अपनी नास्तिकता का परिचय देने लगता है । वह भूल जाता है कि सदैव एक रस और अनुकूल परिस्थितियाँ हमें स्थगनशील बनाती और उन्नति तथा विकास के द्वारों को अवरुद्ध कर देती हैं । जिस तरह दिन एवं रात्रि का होना दैनिक जीवन में समस्वरता बनाए रखता है, उसी तरह परिस्थितियों की अनुकूलता-प्रतिकूलता भी मानवी पुरुषार्थ को चुनौती देकर उसे विकार-ऊर्ध्वगमन के लिए प्रेरित करती है । अतः जाने वाली परिस्थितियों को आशा भरी दृष्टि से देखना और जो गुजर गया उससे खिन्न व अप्रसन्न न होना ही श्रेयस्कर है ।

ईश्वर-विश्वास का अर्थ है-ईश्वरीय क्रिया-कलाप के पीछे छिपे सौन्दर्य की अनुभूति । ईश्वर की इच्छा के अनुरूप हम अपनी इच्छा को मोड़ लें, यही ईश्वर के प्रति सच्चा समर्पण है । इस समर्पण में व्यक्तिगत लाभ-हानि की बात गौण हो जाती है और मनुष्य अपने को प्रतिपल किसी महान् शक्ति की छत्रछाया में सुरक्षित व अनुप्राणित अनुभव करने लगता है ।

इस शक्ति को कोई ईश्वरनिष्ठा का बल कहता है, कोई अध्यात्मबल एवं कोई आत्मबल । इस बल की सतत् अनुभूति करने वाला ईश्वरभक्त हर स्थिति में प्रसन्न रहता है । वह अपने आस-पास की वस्तुओं से व्यर्थ का मोह नहीं जोड़ता । अपितु उपलब्ध पदार्थों के श्रेष्ठतम सदुपयोग की युक्ति ही खोजता है । क्षणिक-परिवर्तन उसे उद्वेलित नहीं करते, क्योंकि उसके पीछे काम करने वाली ईश्वरीय इच्छा उसे सहज शिरोधार्य होती है ।

सच्ची आस्तिकता का व्यक्ति के जीवन में समावेश देखना हो, तो सघन आशावादिता और सतत् मुस्कान युक्त प्रसन्नता के रूप में उसकी परख करनी चाहिए । इन्हीं दोनों के सहारे सूक्ष्म अभौतिक उपलब्धियों से व्यक्तियों का जीवन सरस, सरल, आनन्दमय हो जाता है । अभाव, हानि एवं वियोग की अप्रिय परिस्थितियाँ उसके समक्ष आती रहती हैं । किन्तु ऐसा व्यक्ति अपने परिष्कृत दृष्टिकोण के कारण इन सांसारिक परिवर्तनों से प्रभावित नहीं होता । हल्की-फुल्की जिन्दगी जीता हुआ वह बदली परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढाल लेता है । वह कभी रोता, खीझता नहीं है । आस्तिकता-ईश्वरीय व्यवस्था के प्रति अटूट निष्ठा उसे उज्ज्वल भविष्य का सुनिश्चित आश्वासन देती रहती है ।

विपन्न परिस्थितियों में मनुष्य कोई समर्थ सहारा चाहता है और वह सत्ता ईश्वर की ही हो सकती है, जिसके अवलम्बन से आशा का संचार होता है । प्रेरणा एवं शक्ति मिलती है । जब भी निराशा के बादल हमारे चारों ओर मँडराने लगते हैं एवं हम अपने को असहाय अनुभव करते हैं, ऐसे अवसरों पर ही ईश्वर हमें शक्ति एवं प्रेरणा देता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आस्तिक बनाम नास्तिक

दार्शनिक अर्नाल्ड टॉयनवी ने लिखा है-"परमात्मा का नाम रटते रहना ही यदि आस्तिकता है तो मुझे ऐसे आस्तिक की अपेक्षा नास्तिक कहलाना अच्छा लगेगा । मैंने यह सोचा और जाना है कि अपने आपको सच्चे, ईमानदार के रूप में विकसित करना पूजा से अधिक श्रेयस्कर है ।"

"मैं अपने पर आस्था रखता हूँ और अपनी आत्मा पर अगाध श्रद्धा, क्योंकि वही मेरा भगवान है । मैं सोचता हूँ कि यदि अपने आपे को भगवान बनाया जा सके तो फिर आस्तिकता का असली प्रयोजन पूरा हो जायेगा । परन्तु यदि आस्तिकता की परिभाषा इतनी भर है कि व्यक्ति कितना ही निकृष्ट क्यों न बना रहे पर थोड़ी पूजा-पाठ करके अपने को ईश्वर भक्त समझे तो मुझे ऐसी भक्ति से चिढ़ है और भक्त कहलाने में ऐतराज भी । ऐसी दशा में यदि कोई मुझे नास्तिक कहे तो इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं ।"

"मैंने सच्चाई को नाम रटने से बेहतर समझा है और दु:खिहारों की सेवा के समतुल्य । अपने को भला बनाना और गिरतों को उठाने में सहायता करना मैंने इबादत से भी कम नहीं माना । जब भी चिन्तन और मनन का अवसर मिला है, तभी मैं यह सोचता रहा हूँ कि दूर रहने वाले भगवान को तलाश करने की अपेक्षा यह क्या बुरा है कि अपनी अन्तरात्मा को इतना अच्छा बनाया जाय कि वह ईश्वर के समतुल्य समझी जा सके । जिन्हें पूजा से प्रेम है, उनसे मैं इतना और कहता हूँ कि पूजा करने वाले को इस लायक बनाओ कि पुजारी कहलाने के हकदार बन सको।"

"मैं दुनिया में आस्तिकों की बढ़ोत्तरी देखना चाहता हूँ । पूजा का विस्तार सब जगह हो, ऐसा मेरा मन है पर साथ ही यह भी सोचता हूँ कि किसी आस्तिक पर बेईमान होने का कलंक न लगे और पूजा करने वाले के सम्बन्ध में यह न कहा जाय कि अपने को बिना धोये, गन्दे गलीज मन से वह ईश्वर को बहका रहा है ।

भजन करने के लिए सबसे अच्छी और एकान्त की जगह अपना अन्त:करण है । अच्छा हो पहले हम उसे झाड़-बुहारकर इतना अच्छा बनायें कि इन्सान के सारे गुण उसमें दीख पड़ें । प्रार्थना का मन्त्र मैं यह जपना चाहता हूँ कि "हे सज्जनता के पुंज ! मुझे ऐसा भक्त बनाना जो सज्जन से कम न आँका जा सके । मुझे स्वर्ग जाना पड़े या नरक । पर वहाँ रखना जहाँ तू है । मैंने सुना है जिनके हृदय में करुणा बरसती है वहाँ तेरा निवास है । यदि ऐसा है तो मुझे दु:खिहारों के गाँव में जगह देना, भले ही लोग उसे नरक कहें । तू मुझे पसन्द करे या न करे पर मैं तुझे पसन्द करूँ । पसन्दगी से पहले हमारे रिश्ते सच्चाई और ईमानदारी के हों । हममें से कोई किसी को ठगे नहीं और ऐसा कुछ न कहे, जिसकी हकदारी वाजिब नहीं । आस्तिक भले होते हैं या नास्तिक, यह पहचान तू अपने पास रख । मुझे वह बना जिसके मन में इन्सान के ताईं दर्द हो और वह दर्द सेवा-सहायता के लिए मजबूर कर दे ।"

"भले कामों में समय लगे या पूजा-प्रार्थना में, इसका चुनाव यदि मेरे ऊपर छोड़ा जा सके तो मेरी पसन्दगी नोट की जाय कि मुझे भला बनना और बनाना पसन्द है । हे परम पिता ! तेरे रहने की जगह यदि सातवें आसमान पर हो तो मुझे एक ऐसी टूटी झोंपड़ी में रहने देना जहाँ दुखियारों का बसेरा हो ।"

आस्तिक बनना मुझे पसन्द है । पर वह आस्तिकता ऐसी न हो जो घमण्डी और पाखण्डी बना दे और करुणा को छीनकर कुछ और हाथ में थमा दे ।

कितना खोखला है यह नास्तिकवाद ?

नास्तिक मतवादियों ने ईश्वर के अस्तित्व को सतत् प्रत्यक्ष के आधार पर परखना चाहा । पर लाख प्रयत्न करने के बावजूद उसकी सत्ता सिद्ध न कर सके । मस्तिष्क प्रमाण न खोज सका, यहाँ उनकी यान्त्रिकी भौतिकी भी हार गई । सम्भवत: उनके ये सारे के सारे प्रयत्न कौतुक की दृष्टि से अपनाये गए थे । यों भी कहा जा सकता है कि उन्होंने कौतूहल जिज्ञासावश ही यह सब किया । यदि सचमुच जिज्ञासु की प्रवृत्ति होती तो जिज्ञासाओं के समाधान तक पहुँचने का प्रयास भी होता । इस कौतुक के असफल हो जाने पर उनका समूचा रोष आस्तिकवादी दर्शनों तथा धर्म पर फूट पड़ा ।

परमसत्ता के अस्तित्व को नेस्तनाबूद करने के लिए इन तथाकथित बुद्धिवादियों ने नाना प्रकार की दलीलें पेश करना शुरू किया । धर्म के विकल्प के रूप में प्रत्यक्षवादी विज्ञान को प्रस्तुत करने के लिए जीतोड़ प्रयास शुरू किए। अपने पक्ष में मोहक चित्र-विचित्र सिद्धान्त भी दिए। उनके सिद्धान्तों में सच्चाई भले न हो, पर ऐसी युक्तियाँ अवश्य थीं, जिससे बहिर्मुखी व भोगवादी प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला । ऐसे लोग अपने पक्ष का दार्शनिक स्तर पर समर्थन का दावा करने लगे । इन नास्तिक चिन्तकों द्वारा प्रस्तुत किए गए सिद्धान्त प्रकृतिवाद, संदेहवाद, अज्ञेयवाद, फलवाद आदि हैं । पर इन सब में सिरमौर, जिसे नास्तिकवादियों के चिन्तन की रीढ़ भी कहा जा सकता है-प्रकृतिवादी ही है ।

इसके समर्थक ल्यूक्रेशियस इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि यह सारी की सारी सृष्टि जड़ परमाणु से बनी है। जीव-जन्तुओं में दिखाई पड़ने वाली चेतना भी इन्हीं के परस्पर संघात का परिणाम है । बट्रेण्ड रसेल ने रैशनलिस्ट प्रेस एसोसियेशन के समक्ष दिए गए अपने वक्तव्य में उनके पक्ष का पूरी तरह से समर्थन करते हुए कहा था- "धर्म के सम्बन्ध में मेरा भी वही विचार है, जो ल्यूक्रेशियस का था । मैं धर्म को तो एक बीमारी मानता हूँ जो मानव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाति के लिए अनेकानेक विपत्तियों का स्रोत है। इनसे छुटकारा पाना प्रकृतिवादी दर्शन से ही सम्भव है ।'' रसेल की तरह नियो पैगनिज्म के समर्थक भी इसी तथ्य का पोषण करते हैं । इस विचारधारा के अनुसार जीवन में मिले प्रलोभनों को भोगना, उनके लिए प्रोत्साहन देना उचित ही है, मनुष्य का सहज स्वाभाविक धर्म है ।

दार्शनिकता का दम भरने वाले इस उपर्युक्त चिन्तन पर यदि गम्भीरता से विचार, चिन्तन किया जाय तो इसका खोखलापन हस्तामलकवत् स्पष्ट हो जाएगा । प्रकृति से चेतना का उदय हो गया यही बात ही सर्वप्रथम गले नहीं उतरती । प्रकृति-अणुओं-परमाणुओं को लेकर कहीं एक प्रकार के शरीर की रचना होती तो कहीं दूसरे प्रकार की। यह सब करने वाली शक्ति कौन-सी है । यदि परमाणुओं के संगठन और उनकी हलचल से शारीरिक गठन हो जाता है तो वह शक्ति कौन-सी है, जो परमाणुओं में हलचल उत्पन्न करती तथा उन्हें संगठित करके शरीर में रूपान्तरित करती है ? प्रकृतिवादियों के पास इसका कोई जवाब नहीं है । यदि इन सबको सत्य मान भी लिया जाय तो प्रकृतिवादी उन तत्वों के परमाणुओं को जिससे शरीर बना है लेकर स्वयं ही कोई जीव का निर्माण क्यों नहीं कर लेते और यदि यह कहा जाय कि प्रकृति में सभी गुण और शक्तियाँ विद्यमान हैं, तब तो प्रकृति का अर्थ ही बदल जाएगा । फिर तो वह प्रकृतिवादियों की प्रकृति न रहकर वेदान्तदर्शन की मूलसत्ता ब्रह्म हो जाएगी । ऐसा न मानना कार्य-कारण सम्बन्धी नियम के प्रतिकूल होगा। कार्य-कारण का ही रूपान्तर होता है कोई नई वस्तु नहीं होती ।

यदि किसी तरह से यह स्वीकार भी कर लें कि प्रकृति से चेतना उत्पन्न होती है तो इसका मतलब होगा कि प्रकृति से किसी अप्राकृत वस्तु की उत्पत्ति हुई और यह अप्राकृतिक वस्तु प्राकृतिक जगत से भिन्न एवं बहिरंगी है । इस तरह तो वैज्ञानिकों के उस सिद्धान्त का अपवाद प्रमाणित होता है कि संसार में भौतिक शक्ति का परिमाण सीमित और नित्य है । क्योंकि इस तरह तो प्रकृति में सतत् ह्रास ही होगा ।

वस्तुतः चेतना के पैदा होने की बातों के बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता, क्योंकि इन महत्वपूर्ण घटनाओं का ज्ञान भी चेतना के द्वारा ही होता है । इसी कारण वैश्व चेतना जिसे वेदान्ती 'ब्रह्म' कहते हैं, इसके अस्तित्व को मानने की आवश्यकता पर बल देते हुए जेरस और ग्रीन जैसे सुविख्यात दार्शनिकों ने कहा है-वैश्व चेतना से प्रकृति जन्मी, यह न मानने से बहुत सी कठिनाइयाँ आएँगी। किसी न किसी रूप में इस चेतना के उदय की बात कहना-अपनी हठवादिता की पराकाष्ठा के ऊपर दार्शनिकता का बलिदान करना ही है। प्रसिद्ध दर्शनशास्त्री मैकडुगल ने अपने लेखों में स्पष्ट किया है कि सृष्टि में, विशेषकर जीवन-सृष्टि में चेतना की प्रयोजनात्मक क्रिया चारों ओर दिखाई देती है । वेदान्त-दर्शन इसी को सरल और सुस्पष्ट करते हुए कहता है कि परम चेतना सृष्टि के कण-कण में है, उसके ऊपर प्रकृति का झीना सा आवरण तो मात्र अज्ञानियों के लिए है, अन्यथा उसकी सुस्पष्टता की झलक तो चारों ओर है । इसी तथ्य को प्रसिद्ध मनीषी इमर्सन ने प्रतिपादित करते हुए कहा है- ''नेचर इज टू थिन ए स्क्रीन, द ग्लोरी ऑफ ऑम्नीप्रेजेण्ट गॉड बर्स्ट्स थ्रू इट एवरी व्हेयर।'' अर्थात् ''प्रकृति एक महीन पर्दे के समान है, अगम्य विराट-सत्ता की झलक जिसके माध्यम से चारों ओर फूटती दिखाई देती है ।''

सर ऑलीवर लाज ने अपनी पुस्तक-'बियाण्ड फिजीक्स' (भौतिकी से परे) में यह बताने की चेष्टा की है-कि जिन गुण तत्वों का आरम्भात्मक समुदय प्रकृतिवादी मानते हैं, उनको अव्यक्त रूप में माने बिना इनका समुदयात्मक विकासवाद समझ में नहीं आ सकता । इस अव्यक्त रूप में वर्तमान तत्वों को अभिव्यक्त करने में कौन-सा कारण है ? इसका जवाब प्रकृतिवादियों के पास नहीं है । वे इस व्यक्तिकरण प्रक्रिया में वैश्वचेतना का ही हाथ बताते हैं । सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक लाथड-मार्गन भी इसका समर्थन करते हैं । भारतीय तत्व-चिन्तकों ने इसकी यथार्थता सहस्राब्दियों पूर्व जान ली थी और इस व्यक्तीकरण को ऋग्वेद के दशम् मण्डल के १२९ वें सूक्त जिसे 'नासीय सूक्त' कहा जाता है, में स्पष्ट करते हुए बताया है कि ''परमसत्ता जो सत् और असत् से परे है-ऐसे शाश्वत् सत्ता से ही सारे तत्व व्यक्त हुए हैं।''

यह कहना कि जो वस्तु निराकार या अव्यक्त है-वह असत्य या सत्ताहीन है, किसी भी प्रकार युक्तिसंगत नहीं है। आज तो विज्ञान भी ऐसे कारणों का आश्रय लेने लगा है जो सर्वथा अव्यक्त हैं अथवा जिनका उसे कतई ज्ञान नहीं है । प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडिंगटन ने अपने सुप्रसिद्ध व्याख्यान 'ऑन द नेचर ऑफ फिजीकल वर्ल्ड' में इस सत्य को स्वीकारते हुए कहा है कि ''कोई अज्ञात कारण किसी अज्ञात क्रिया-कलाप में प्रवृत्त है और हम इसके विषय में कुछ कह नहीं सकते । हमें किसी ऐसे मूल तत्व का सामना करना पड़ रहा है, जो भौतिक-जगत के परे का पदार्थ है । इसे चेतना का नाम दिया जाय तो सर्वथा उपयुक्त होगा ।'' आधुनिक भौतिक विज्ञान के ये निष्कर्ष प्रकृतिवाद को पूरी तरह ध्वस्त कर देते हैं । भौतिक पदार्थों की परम सत्ता, देश और काल की वास्तविकता परमाणुओं का सर्वान्तरिक अस्तित्व तथा समस्त घटनाओं का निष्प्रयोजन इन सभी की नींव पर इससे करारा कुठाराघात होता है ।

प्रकृतिवादी विश्व के कारणात्मक क्रिया-कलाप को एकदम प्रयोजनरहित सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं । पर वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। इस संसार में नाना प्रकार की घटनाएँ घट रही हैं, पर उनका प्रयोजन नहीं है, यह हम सब कैसे जान सकते हैं । किसी कारण का जिसका उद्देश्य अथवा प्रयोजन न समझ में आना, दिखाई न देना-अदृष्ट अथवा अदृश्यसत्ता को अस्वीकार करने के लिए काफी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं है । इस तरह अदृष्ट अथवा अदृश्य सत्ता को अस्वीकार करना एक भारी दार्शनिक भूल है । संसार की हर हलचल के मूल में एक प्रकार की अनुशासित सक्रियता का होना इस बात को प्रमाणित करता है कि ब्रह्माण्ड के अन्तस्तल में कोई उद्देश्य सिद्धि निहित है । पर जड़ प्रकृति उद्देश्यमय क्रिया करे यह बात असम्भव है । अतएव यह मानना कि परमचेतना के प्रभाव से प्रभावित होकर परमाणुओं के संघात किसी उद्देश्य के लिए बनते बिगड़ते हैं, सर्वथा युक्ति-संगत है । हमारे अपने जीवन में होने वाली उद्देश्यपूर्ण क्रियाओं का होना इस बात को इंगित करता है कि वैश्व चेतना के हर क्रिया-कलाप इसी महत्वपूर्ण उद्देश्य के लिए हो रहे हैं ।

दार्शनिक-सिद्धान्त की कसौटी प्रमाणवाद को ही माना जाता है । प्रकृतिवाद को इस पर कसकर देखने पर उसका थोथापन सिद्ध हो जाता है । हम सभी अपने अनुभव के आधार पर जानते हैं कि बिना ज्ञाता के कोई ज्ञान नहीं, दृष्टा के बिना दृश्य नहीं पर प्रकृतिवाद ज्ञाता या दृष्टा न मानकर दृश्य को ही मानने की हठवादिता करता है और मजे की बात तो यह है कि प्रकृतिवादी दृश्य में भी दृश्य जगत के एक अंग प्रकृति स्वरूप को ही सत्य मानते हैं, बाकी को असत्य । इतना ही नहीं परिमाण को प्रधान मानकर शब्द, रूप, रसादि गुण को गौण और हेय ठहराते हैं । इसे उनकी भूल और विवेकहीनता के सिवा और क्या कहा जाएगा ?

उपर्युक्त तर्कों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नास्तिकता की रंग-बिरंगी लुभावनी बातें कहने वाला प्रकृतिवाद चाहे कितने ही ऊट-पटाँग सिद्धान्त क्यों न गढ़े, पर दार्शनिकता और व्यावहारिकता की कसौटी पर वे बिल्कुल हल्के और युक्तिहीन ही ठहरते हैं । जिस प्रकार अंधकार में निवास करने वाला उल्लू किसी भी प्रकार सूर्य के दर्शन नहीं कर पाता और प्रकाश के विरोध में अनेक बातें सोचता रहता है, जबकि यथार्थता यह है कि सूर्य के बिना उसका भी अस्तित्व नहीं जिस पेड़ के कोटर में वह बैठा है, उसका अस्तित्व भी सूर्य के ही कारण है। ठीक उसी तरह बुद्धि के कोटर में बंद नास्तिकवादी नाना प्रकार के तर्क-कुतर्क करते रहते हैं । बुद्धि के आगे बढ़कर चेतना के क्षेत्र में प्रवेश नहीं करते । फिर उन्हें उसका अनुभव कैसे हो ? पर सत्यता तो यही है कि परम-चेतना के कारण ही इस जड़ जगत का अस्तित्व है-जहाँ पर बैठकर वे दुनिया भर के सिद्धान्तों की लम्बी-लम्बी पैंग बढ़ाने वाली बौद्धिक कसरतें किया करते हैं ।

अतएव सत्य के जिज्ञासु तत्वान्वेषियों के लिए भारतीय तत्व-दर्शन में निहित निर्देशों का पालन करना ही श्रेयस्कर है । इसी को मानते हुए व्यावहारिक जीवन में उतार कर जीवन की यथार्थता अपने वास्तविक स्वरूप का बोध करने में सक्षम हुआ जा सकता है । प्रख्यात तत्वान्वेषी डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् भी इसी तरह का प्रोत्साहन देते हुए स्पष्ट करते हैं कि ऋषियों ने आत्मा की नैसर्गिक गहराई को अनुभव किया है । इस आस्था की गहराई के समक्ष सब कुछ फीका है । आध्यात्मिक जीवन की उपेक्षा करना विवेकहीनता और मूर्खता ही है । यदि इसे अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारने की संज्ञा दी जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी ।

महान चिन्तक डा० राधाकृष्णन् की इस उक्ति जिसका समर्थन प्रसिद्ध मनीषी कैसरलिंग व स्पेंगलर भी करते हैं, हमारे सामने एक ऐसे राजमार्ग का द्वार खोल देता है जिसमें प्रवेश कर आगे बढ़कर जीवन का सच्चा आनन्द प्राप्त किया जा सकता है । अज्ञान के बन्धनों से मुक्ति पाकर उस शाश्वत सत्य का साक्षात्कार किया जा सकता है, जो हम सबके अस्तित्व का निमित्त कारण है । यदि हम लँगड़ा-लँगड़ा कर चलने पर विवश कर देने वाली तर्क बुद्धि को परे रख अनुभूति के परमसत्ता से प्रीति के स्तर पर समर्पण-भाव से विचार करें तो हमें जीवन का उद्देश्य भी समझ में आने लगता है तथा जीवनमुक्ति का अनुदान भी सहज ही मिल जाता है ।

नास्तिकता सबसे बड़ा अन्धविश्वास है

दार्शनिकों के बीच आस्तिकता तथा नास्तिकता को लेकर शीतयुद्ध लम्बे अरसे से चल रहा है । इसके दो मुख्य स्वरूप रहे हैं । पहला सत्य के अनुसंधान की उत्कृष्ट अभिलाषा, दूसरा पांडित्यपूर्ण वाग्वैदग्ध्य की प्रवृत्ति ।

प्राचीन भारतीय-मनीषी पूर्वजों में सत्य के शोध की लालसा सदैव जाग्रत एवं प्रखर रही है । जहाँ एक ओर वे योग-साधना के पथ पर चलकर आत्मसाक्षात्कार द्वारा सत्य को जानते-देखते-समझते थे वहीं तर्क के क्षेत्र में वे सदा सत्य के प्रत्येक पहलू के परीक्षण-विश्लेषण में वे सदा सोत्साह अग्रसर रहे और उससे उन्होंने कभी मुँह नहीं चुराया ।

साधना-पथ पर चलकर ईश्वर-साक्षात्कार के साथ ही उसके अस्तित्व का तर्कों, युक्तियों द्वारा विचार-विवेचन भी यहाँ सदा ही होता रहा है ।

ईश्वरीय-सत्ता को पूर्णतः अस्वीकार करने वाले भारतीय दार्शनिक-सम्प्रदायों में मुख्य था चार्वाक-सम्प्रदाय। चार्वाक ने ईश्वरीय-सत्ता की विद्यमानता का जो तार्किक विरोध किया उसका आस्तिक दार्शनिकों ने वैसी ही तार्किक प्रखरता से उत्तर दिया । उनके विरोध में सच्चे आस्तिक न तो क्रुद्ध हुए, न ही उदासीन अपितु गम्भीरता एवं संयम तार्किकता के साथ उस विरोध के आधार का खंडन किया । इन तार्किक खंडनकर्त्ताओं में दसवीं शताब्दी के दार्शनिक उदयनाचार्य का अपना विशिष्ट स्थान है। उनका लिखा 'न्याय-कुसुमांजलि' नामक ग्रन्थ ईश्वर सिद्धि के विषय में तर्क प्रधान पुस्तकों में अद्वितीय माना जाता है। यहाँ तार्किकों के समाधान के लिए उसी ग्रन्थ के कुछ महत्वपूर्ण अंशों का सार-रूप प्रस्तुत किया जा रहा है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

१.२० ईश्वर विश्वास और उसक फलश्रुतियाँ

न्याय कुसुमांजलि में पाँच अध्याय या पाँच स्तवक हैं । ईश्वर के विषय में पाँच मुख्य विप्रतिपत्तियाँ उस समय तक बौद्धिक-जगत में स्थापित थीं। अर्थात् ईश्वर के सम्बन्ध में पाँच महत्वपूर्ण स्थापनाएँ प्रस्तुत की जाती थीं उन्हीं पाँचों विप्रतिपत्तियों का निराकरण एक-एक स्तवक में किया गया है ।

इनमें से पहली विप्रतिपत्तियाँ है-"अलौकिकस्य पर-लोक-साधनस्याभावत्" अर्थात् अलौकिक परलोक साधन का अभाव है, इसलिए ईश्वर का भी अभाव है । यह सूत्र रूप में कथन हुआ । आइए, इस कथन को विस्तार से समझें और फिर उसका तार्किक परीक्षण करें ।

एक सूत्र में तीन तर्क छिपे हैं । पहला है अलौकिक का अभाव । दूसरा परलोक का अभाव । तीसरा साधन का अभाव । अर्थात्-(१) अलौकिक यानी जिसे देखा न जा सके, ऐसी अदृष्ट वस्तु सत्ता कहीं कोई हो नहीं सकती। (२) इस लोक के अतिरिक्त और कोई लोक, जिसमें जीवन विद्यमान हो नहीं सकता । (३) संसार में कोई किसी का कारण नहीं है ।

इनमें से अंतिम ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । इसीलिए उदयनाचार्य ने सबसे पहले 'न्यायकुसुमांजलि' में उसी का खंडन किया है । क्योंकि ईश्वर की सत्ता का जो सबसे पहला मान-अनुमान होता है । वह इसी आधार पर कि इस सृष्टि का कोई न कोई कारण होना चाहिए । वह कारण मनुष्य है ? यह नहीं हो सकता, क्योंकि वह तो अरबों वर्ष के प्रयास के बाद भी आज तक सृष्टि के रहस्य को समझ नहीं सका । अतः मनुष्य या ऐसे ही किसी अन्य प्राणी ने सृष्टि की रचना की हो, यह सम्भव नहीं । इसलिए एक सर्वोच्च सत्ता ही इस समस्त सृष्टि का कारण है ।

आस्तिक आचार्यों का तर्क है कि घड़ा कार्य है, उसका कर्त्ता कुम्हार है । इसी प्रकार पृथ्वी आदि का कोई चैतन्य कर्त्ता होना चाहिए । वही सर्वोपरि चैतन्य-सत्ता ईश्वर है । इस प्रकार उस चैतन्यसत्ता को दो रूपों में देखा जा सकता है । इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में संव्याप्त और उसकी क्रमबद्ध हलचलों का कारण ब्रह्माण्डीय चेतना है तथा प्रत्येक जीवपिंड में इसी ब्रह्मांडीय का सक्रिय अंश है जीव-चेतना या जीवात्मा परमात्मा का ही अंश है। विराट्, अनन्त चेतना-समुद्र में तैर रही मछलियों की तरह प्रत्येक जीवधारी की स्थिति है । उसके भीतर जो चेतन-सत्ता है वह उसी परमात्मा का अंश है। पिंड से परे सम्पूर्ण सृष्टि में प्रकृति में जो सुव्यवस्थिति-सुनियोजित गतिशीलता है, घटना-प्रवाह है, उसका कारण और नियामक परमेश्वर या ब्रह्माण्डीय चेतना है ।

नास्तिकों ने परमसत्ता के इन दोनों रूपों का इस प्रकार खंडन किया ।

(१) सृष्टि की गतिविधियों का संचालक, व्यवस्थापक कोई नहीं है । वह यों ही अकस्मात् होता है । इसे ही कहते हैं जगत-व्यापार का अकस्मात्वाद ।

(२) जीव चेतना वस्तुतः स्वतः उत्पन्न होती है । उसका शरीर से बाहर कोई अस्तित्व नहीं। शरीर के निर्माण की प्रक्रिया में चेतना स्वतः उत्पन्न हो जाती है । दार्शनिक शब्दावली में इसे ही कहते हैं भूत-चैतन्यवाद।

इस प्रकार ये दोनों तर्क कारणवादी सिद्धान्त का और ईश्वरीय सत्ता के प्रकाश का खंडन करते हैं । इनका विस्तार यों किया गया है । नास्तिकों का कथन है

अग्निरुष्णो जलं शीतं-समस्पर्शस्तथानिलः ।
केनेदं चित्रितं तस्मात्स्वभावात्तद्व्यवस्थितिः ।।

अर्थात्- अग्नि उष्ण होती है और वायु का स्पर्श शीतल होता है, यह सब भला किसने बनाया है ? अर्थात् किसी ने इन्हें बनाया थोड़े ही है, उनकी यह गुण-प्रकृति स्वभाव से ही है । यह विश्व किसी कारण-सत्ता का कार्य नहीं है । वह तो तत्वों के अकस्मात संयोग का परिणाम है मानवबुद्धि सृष्टि के रहस्य का पता अभी तक लगा नहीं सकी है । इसलिए उसके विवेचन की चेष्टा व्यर्थ है और किसी कारण-सत्ता की मान्यता कल्पना-मात्र है । मोरों को रंगों से कौन सजाता है ? कोयल से गाना कौन गवाता है ? यह तो उनकी प्रकृति ही है । इसलिए किसी भी कार्य का कोई अन्य कारण मानना व्यर्थ है । सृष्टि का कारण ईश्वर को मानना अनावश्यक है ।

चार्वाकवादियों ने ईश्वरीय-सत्ता की कारणता का निषेध तर्क-शास्त्रीय पद्धति से किया । कारणता का निश्चय तर्क-शास्त्रीय ढंग से अन्वय-व्यक्तिरेक के आधार पर किया जाता है अर्थात् जब कोई कारण किसी कार्य के साथ सदा सम्बद्ध देखा जाय और उस कारण की अनुपस्थिति में कार्य कहीं भी न देखा जाय, तब उस कार्य-विशेष का अमुक कारण-विशेष माना जा सकता है। चार्वाक के अनुसार क्योंकि सृष्टि में ऐसा कोई भी कार्य-कारण सम्बन्ध सिद्धान्त नहीं हो पाता, इसलिए कारणता का सिद्धान्त ही गलत है ।

अन्वय कहते हैं अनिवार्य विद्यमानता को "तत् सत्वे तत्सत्ता अन्वयः" जहाँ-जहाँ कार्य है वहाँ-वहाँ अमुक कारण या गुण है, यह हुआ अन्वय । जबकि "तदभावे तदभावो व्यतिरेकः" जहाँ-जहाँ अमुक कारण या गुण का अभाव है वहाँ-वहाँ अमुक कार्य या वस्तु का भी अभाव है यह हुआ व्यतिरेक ।

जैसे आग दाह का कारण है, यह तो हुआ आग का स्वभाव किन्तु आग का कारण क्या है ।

प्राचीनकाल में अग्नि प्रायः दो प्रकार से उत्पन्न की जाती थी। एक अरणि के मन्थन से दूसरे मणि अर्थात् आतिशी शीशे के प्रयोग से । यज्ञ आदि में अरणि नामक वृक्ष के दो टुकड़ों को एक विशेष ढंग से रगड़ कर आग पैदा की जाती थी । अतिशी शीशे यानि मणि को सूर्य के सम्मुख रखकर अग्नि उत्पन्न की जाती थी । उन दोनों साधनों से उत्पन्न अग्नि को तृष्णादि ग्रहण करते थे घास-फूस के द्वारा वह आग जोर पकड़ती थी, तब उसे जलाकर रखते थे काष्ठादि द्वारा ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अतः उस समय चार्वाक ने तर्क किया " अग्नि का क्या कारण है, कारणवादियो ! तुम्हीं बताओ ?" अग्नि के तुम कारण गिना सकते हो (१) 'तृणसत्वे वह्नि सत्ता, (२) अरणिसत्वे वह्नि सत्ता और (३) मणिसत्वे वह्नि सत्ता, यानि या तो तृणादि होने पर आग होती है या अरणि के रहने पर या मणि के रहने पर । अब न तो यह तर्क दिया जा सकता कि जहाँ-जहाँ तृण है वहाँ-वहाँ आग है अथवा जहाँ-तहाँ अरणि या मणि है वहाँ-वहाँ आग है । न ही यह तर्क सिद्ध होता है कि जहाँ-जहाँ तृण अरणि या मणि नहीं है वहाँ-वहाँ आग नहीं है । यानी आग का इन तीनों कथित कारणों से न तो अन्वय सम्बन्ध सिद्ध होता, न ही व्यतिरेकी सम्बन्ध । इस प्रकार अग्नि का कोई एक कारण नहीं सिद्ध हो सकता। यदि कोई एक कारण प्रस्तुत किया जाता है अग्नि का, तब उसका भी इन्हीं तर्कों आधार पर खंडन हो सकता है। चार्वाकवादियों का तर्क है पर इसी प्रकार सृष्टि के समस्त पदार्थों के कथित कारणों का खंडन हो सकता है। इसलिए संसार में कोई कारण नहीं है। अतः सृष्टि का प्रत्येक कार्य अकस्मात् हो जाता है। उसे किसी कारण की अपेक्षा नहीं रहती । सृष्टि भी अकस्मात् और अकारण उत्पन्न हुई या कह सकते हैं कि इस प्रकार उत्पन्न होना उसकी प्रकृति ही है, उसकी स्थिति या गति का कोई ईश्वर जैसा अन्य कारण नहीं है ।

इसी प्रकार आत्मा के बारे में चार्वाक का प्रतिपादन है कि वह किसी परमात्म-सत्ता का अंश नहीं । अपितु शरीर की उत्पत्ति के साथ स्वाभाविक रूप में चेतना अस्तित्व में आ गई । जैसे पान, खैर, चूना तथा सुपारी में अलग-अलग प्रयोग से लालिमा नहीं दीख पड़ती किन्तु एक विशिष्ट मात्रा में इनके संयोग होने से फिर इनके प्रयोग यानि चबाने से ललोई पैदा होती है, उसी प्रकार अचेतन तत्वों के एक निश्चित क्रम में संयोग से चेतना उत्पन्न होती है । अतः शरीर ही आत्मा है । शरीर के निर्माण की प्रक्रिया में स्वभावतः चेतना उत्पन्न हो जाती है । जैसे जौ या महुआ को खाने से नशा नहीं होता, पर इन पदार्थों को एक विशेष प्रक्रिया में ढालने पर मदिरा बन जाती है और मादकता नामक गुण-शक्ति उनमें स्वतः ही उत्पन्न हो जाती है, उसी प्रकार अचेतन तत्वों की एक विशिष्ट परिमाण और ढंग में संगति होने पर चैतन्य की स्वभावतः उत्पत्ति हो जाती है । वही आत्मा है । आत्मा का कारण कोई बाह्य सत्ता-परमात्मा आदि मानना बुद्धिहीनता है ।

जब तक शरीर है, तभी तक चेतना है । शरीर के नाश हो जाने पर चेतना भी नष्ट हो जाती है । पोषक-तत्व शरीर को मिलते हैं तो प्रकृष्ट चेतना का उदय होता है । शरीर का पोषण न होने पर चेतना का ह्रास होने लगता है । चैतन्य के कार्य का आधार शरीर ही है । अतः शरीर ही चैतन्य है, वही आत्मा है । हमें सारा सम्वेदन ज्ञान शरीर-परक ही होता है- 'मैं मोटा हूँ,' 'वह पतला है,' 'मैं प्रसन्न हूँ,' मैं उदात्त हूँ,' मैं ज्ञान प्राप्त कर रहा हूँ' आदि अनुभव शरीर से जुड़े हैं । अतः चैतन्य शरीर का ही अंग है ।

शरीर में औषधि-विशेषों के प्रयोग से शारीरिक, मानसिक दक्षता बढ़ती है । इसे ही चेतना-स्तर में वृद्धि कहा जाता है । अतः शरीर ही चेतना का आधार है ।

वर्षाकाल में दही रखा हो, तो उसमें स्वतः छोटे-छोटे कीड़े कुछ समय बाद रेंगते देखे जा सकते हैं । इसी प्रकार शरीर में स्वतः चेतना उत्पन्न होती है । अतः न तो सृष्टि-संचालन का कारण कोई ब्रह्माण्डीय चेतना है और न आत्मा किसी परमात्मा का अंश है । वे तो स्वाभाविक क्रियाएँ हैं । यह हुई 'साधनस्य अभागवत्' की व्याख्या ।

इनका खंडन एवं यथार्थ विवेचन इस प्रकार है-घड़े का कर्त्ता कुम्हार है, यह स्पष्ट है । क्योंकि घट का निर्माण प्राणिकृत क्रिया है। किंतु अग्नि, जल, वायु आदि की गतिविधियाँ अप्राणिकृत हैं । चार्वाक का यह प्रश्न कि उन्हें किसने बनाया अर्थात् किस व्यक्ति ने बनाया गलत है। क्योंकि उन्हें किसी व्यक्ति ने बनाया, यह तो आस्तिक भी नहीं मानते। आस्तिक तो इन्हें ईश्वरीय व्यवस्था का ही अंग मानते हैं । अतः इन पदार्थों का मनुष्य ने निर्माण नहीं किया, इसलिए ईश्वर नामक सत्ता भी नहीं है, यह तो कोई तर्क नहीं हुआ । इन्हें किसी ने बनाया हो, यह देखने में न आने पर ईश्वर का न होना कैसे सिद्ध हुआ ? उल्टे इससे सिद्ध होता है कि कोई अदृश्य सत्ता इसका निर्माण करती है ।

जहाँ तक कारणता के सिद्धान्त के खंडन का प्रश्न है, वह तो स्वतः ही गलत सिद्ध हो चुका है । वैज्ञानिक परीक्षणों-प्रयोगों और परिणामों को तो नास्तिक भी सत्य मानते हैं और समस्त वैज्ञानिक शोधें अपने मूल रूप में मात्र प्रकृति की अधूरी नकल हैं। प्रकृति की जिस हलचल की जितनी जानकारी ढूँढ़ने-खोजने पर मिल जाती है, उसी की नकल तैयार कर ली जाती है । इसे ही कहते हैं वैज्ञानिक अन्वेषण । गुरुत्वाकर्षण हो या सापेक्षता-सिद्धान्त, वे विद्यमान तो सदा से ही थे, उनकी जानकारी प्राप्त कर ली गई । ध्वनियों के कम्पन और प्रवाह, जीवकोशाओं का निर्माण और कार्य, विद्युत-संचार, चुम्बकीय सक्रियता, अन्तरिक्षीय-संचार आदि-आदि समस्त गतिविधियाँ सूक्ष्म रूप से प्रकृति में सदा से जारी हैं । उनके सूत्रों की जानकारी पाकर उसी की बाँह पकड़कर चला गया तो रेडियो, टेलीविजन, वायुयान, उपग्रह, औषधि-शल्यक्रिया उपचारक यंत्र एवं तंत्र, टेस्ट ट्यूब बेबी आदि का निर्माण सम्भव हो गया । वस्तुतः विज्ञान, प्रकृति पर विजय नहीं करता, एक अनाड़ी बालक की तरह प्रकृति माता का अनुकरण-अनुसरण करता है । जब यह अनुकरण सही होता है, प्रगति होती है तो जिससे विज्ञान-शिशु हर्षोन्मत्त हो उठता है । जब अनुकरण त्रुटिपूर्ण होता है तो शिशु गिर पड़ता है उसे चोट लगती है, क्षतिग्रस्त हो जाता है।

प्रकृति के इस अनुकरण यानी सम्पूर्ण वैज्ञानिक शोध प्रयोग के आधार हैं, कारणता का सिद्धान्त एवं प्रकृति की समरूपता के सिद्धांत ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कारणता के सिद्धांत का अर्थ है- प्रत्येक कार्य का एक निश्चित कारण होता है । प्रकृति की सफलता के सिद्धान्त का अर्थ है कि प्रकृति में एक स्थान पर यदि किसी कार्य का अमुक मूल कारण है, तो अन्यत्र सर्वत्र भी उस कार्य का मूल कारण वहीं और वैसा ही होगा । यदि वैसा कहीं होता नहीं दीखता तो इसमें त्रुटि प्रकृति की नहीं होती, हमारी जानकारी की कमी इसका कारण होती है ।

इससे स्पष्ट होता है कि प्रकृति की प्रत्येक हलचल सकारण है और उसका एक निश्चित क्रम है । ऐसी क्रमबद्ध, सुनिश्चित, सुव्यवस्थित हलचल बिना किसी चेतन-सत्ता के नियंत्रण-निर्देशन के सम्भव नहीं है । अतः नास्तिकों का तर्क निरस्त हो जाता है । अग्नि वाला उदाहरण ही यदि लें तो अरणि, मणि या तृण स्वतः अग्नि के कारण नहीं, वे तो अग्नि-प्रज्वलन के अनुकूल पदार्थ मात्र हैं । अग्नि इनसे भिन्न शक्ति है । शक्ति की वह सूक्ष्म प्रक्रिया ही अग्नि की अभिव्यक्ति का कारण है । इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ की गतिविधि के सुनिश्चित कारण हैं और इस सम्पूर्ण सृष्टि की क्रमबद्ध व्यवस्थित हलचल का भी सुनिश्चित कारण है ।

चार्वाकवादियों का अंतिम तर्क था चेतना की स्वतः उत्पत्ति का, जो अब वैज्ञानिक दृष्टि से भी खंडित हो चुका है । चेतना स्वतः नहीं उत्पन्न होती, अपितु मूल रूप में ही विद्यमान रहती है । अब तो वैज्ञानिक भी यह मानने लगे हैं कि सृष्टि के मूल कण स्वयं ही अदृश्य चेतन तरंगें हैं जो चेतन एवं जड़ दोनों में परिवर्तित हो सकने में सक्षम हैं । 'शरीर के न रहने पर आत्मा की चेतना भी नहीं रहती' नास्तिकों का यह तर्क तो स्पष्टतः भी विपरीत है । चार्वाक ने मदिरा और पान की ललाई का भ्रान्त उदाहरण दिया है । पान खत्म हो जाने पर भी लालिमा कुछ देर तक बनी रहती है । मादक-द्रव्य प्रत्यक्षतः पच जाने पर भी नशे का प्रभाव मस्तिष्क में कुछ समय तक बना रहता है । यदि चेतना भी मदिरा या पान की लालिमा जैसी आनुषंगिक उत्पत्ति होती, तो वह शरीर-नाश के कुछ समय बाद तिरोहित हुआ करती, शरीर के रहते नहीं । पर होता विपरीत है, चेतना के तिरोभाव से शरीर पूर्ववत् रहते हुए भी निश्चेष्ट, व्यर्थ हो जाता है । अतः नास्तिकों द्वारा आत्म-चेतना की उत्पत्ति-व्याख्या भी अनुपयुक्त एवं अप्रामाणिक है ।

भूत-चैतन्यवाद एवं अकस्मात्वाद दोनों ही यथार्थ एवं विवेक की कसौटी पर खरे नहीं उतरते और इसलिए नास्तिकता के बारे में आधुनिक दार्शनिक फिलिन्ट की यह उक्ति जीवन सिद्ध होती है कि "प्रकृति के परमाणुओं ने परमात्मा की क्रिया के बिना स्वयं ही इस विचित्र सृष्टि की यह रचना की।" यह बात मानना इस मान्यता से भी अधिक युक्तिशून्य है कि अँग्रेजी-भाषा के अक्षरों ने बिना महाकवि शेक्सपियर के मस्तिष्क को सहायता के स्वयं ही शेक्सपियर के महान नाटकों की रचना कर डाली। 'इलियट' महाकाव्य में प्रयुक्त समस्त अक्षरों को यदि समस्त मनुष्य जाति संसार के आरम्भ से अब तक दिन रात उछालती रहती तो भी 'इलियड' की पहली पंक्ति तक न बन पाती । वह बनी तभी, जब 'इलियड' के स्रष्टा कवि होमर ने एकोलीज के क्रोध और ट्राय के युद्ध को काव्य में वर्णन करने की इच्छा की । फिर सृष्टि रूपी काव्य और ईश्वरीय नाटक की 'इलियड' काव्य कृति से या शेक्सपियर के नाटकों से क्या तुलना ! बिना किसी विशेष चेतन-सत्ता की इच्छा और सहायता के क्या इतनी विशाल सृष्टि इस व्यवस्थित रूप में रची और चलायी जा सकती है ? यह मानना कि प्रकृति के परमाणुओं ने स्वतः ही, बिना किसी चेतन-सत्ता के बिना उसकी बुद्धि की प्रेरणा के, स्वतः ही इस विशाल, भव्य, जटिल सृष्टि की रचना कर दी है, दुनिया का सबसे बड़ा अंधविश्वास है।"

नास्तिकता कोई विचारधारा नहीं चित्त की स्थिति है

चार्वाकवादियों ने जिस प्रकार 'साधनस्य अभावात्' अर्थात् सृष्टि कार्य का कोई कारण न होने से ईश्वर के सिद्ध न होने की बात कही, उसी प्रकार अदृष्ट न होने तथा अन्य लोकों में जीवन के न होने की बात कही और इन्हें भी ईश्वर के न होने का प्रमाण बताया ।

अदृष्ट के न होने के पक्ष में उनका तर्क है कि मात्र उसी का अस्तित्व है-जो प्रत्यक्ष है । जो प्रत्यक्ष नहीं, उसका अस्तित्व नहीं । क्योंकि उसका कभी प्रत्यक्ष नहीं हुआ । ईश्वर कभी गोचर नहीं हुआ, इसी से उसका अस्तित्व नहीं है। जो कभी-कभी प्रत्यक्ष हुआ है, वह अदृश्य नहीं है। अदृश्य तो वही है जिसका कभी भी प्रत्यक्षरण नहीं हुआ। ईश्वर को कभी भी प्रत्यक्ष नहीं देखा गया, इसलिए वह उतना ही अयथार्थ एवं अस्तित्वहीन है जितना खरगोश या गधे के सिर पर सींग ।

इसका उत्तर यही है कि जो अदृष्ट है, वह अस्तित्वहीन नहीं है । देवदत्त घर में नहीं है, इससे वह दृष्ट नहीं है। पर यह नहीं सिद्ध होता कि देवदत्त कहीं है ही नहीं। यदि कहा जाय कि देवदत्त को कभी किसी ने देखा है, इसी से वह है, तो ईश्वर का अनुभव भी कई साधकों-सिद्धों ने किया है, इसलिए वह है । देवदत्त को देखना चाहने वाले, उसके स्वरूप से परिचित लोग ही उसे देखकर जानेंगे और पहचानेंगे । अन्य लोग यदि उसे देख भी लेंगे तो कोई एक मनुष्य है, यही मानेंगे । देवदत्त है ऐसा निश्चित कथन नहीं कर सकते । इसी प्रकार ईश्वरीय-सत्ता की द्योतक घटनाएँ प्रत्यक्ष देखकर भी नास्तिक लोग उसे प्रकृति की हलचल विशेष कहकर सन्तुष्ट हो सकते हैं । ईश्वर को पहचानेगा वही, जो उसके स्वरूप से परिचित होगा ।

बच्चे या बाल-बुद्धि लोग देवदत्त के पुतले को देवदत्त मान सकते हैं । कोई समझदार व्यक्ति बाद में तर्क एवं

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परीक्षण के साथ यह सिद्ध कर दें कि यह तो मिट्टी या कागज या प्लास्टिक का पुतला है, देवदत्त नहीं, तो उसका विश्लेषण अपनी जगह सही होते हुए भी वास्तविक देवदत्त की सत्ता को असिद्ध नहीं करता । उसी प्रकार ईश्वरीय व्यवस्था को यदि विवेकशील वर्ग उखाड़ फेंकता है या उसमें दोष ढूँढ़ निकालता है, उसके आकारों को मिथ्या कर देता है, तो इसमें ईश्वरीय-व्यवस्था ही मिथ्या नहीं सिद्ध की जाती । जिस समय नीत्शे ने घोषणा की कि ईश्वर मर गया है, अब उसके स्थान पर मनुष्य को स्वयं अपना भार उठाना होगा, उस समय वह ईश्वरीय व्यवस्था को नहीं, ईश्वर के नाम पर चर्च द्वारा लादी गई व्यवस्था को मृत घोषित कर रहा था । मनुष्य अपनी जिम्मेदारियाँ स्वयं उठाए, इसे नीत्शे के बहुत पहले से भी कहा जाता रहा है। 'मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है' यह प्रतिपादन आस्तिक आचार्यों का भी रहा है । अतः नीत्शे जैसों का कथन और निष्कर्ष वस्तुतः ईश्वर के विरुद्ध नहीं, ईश्वराभास के विरुद्ध था । ईश्वर को गोचर तो आस्तिक भी नहीं मानते । जो गोचर नहीं, वह अस्तित्वहीन है, ऐसा नहीं माना जा सकता । परमाणु सामान्यतः अदृष्ट है, पर उसका अस्तित्व है । अब तो वैज्ञानिक यह भी स्वीकार कर रहे हैं कि सृष्टि के मूल प्राथमिक कण वैज्ञानिक उपकरणों की पकड़ में ही नहीं आ सकते । वे क्या हैं, यह ठीक से जाना ही नहीं जा सकता, इस प्रकार वे अदृष्ट हैं । किन्तु इससे उनकी अस्तित्वहीनता नहीं सिद्ध होती । क्योंकि सृष्टि के मूल कणों का ही अस्तित्व नहीं है, ऐसा कहने का अर्थ है कि सृष्टि ही नहीं है, विज्ञान और वैज्ञानिक नहीं है तथा सृष्टि नहीं है, यह कहने वाला भी नहीं है । अतः अदृष्ट की असत्ता सिद्ध नहीं होती । इसलिए 'अलौकिकस्य अभावात्' यह नास्तिकों का सूत्र गलत सिद्ध हुआ ।

शेष रहा 'परलोकस्याभावात्' सूत्र । परलोक यानी इस लोक के अतिरिक्त जीवन युक्त कोई अन्य नहीं है, यह तो इस विज्ञान के युग में स्वतः ही अमान्य हो गया है । इसी पृथ्वीलोक जैसे अरबों लोकों में सभ्यता-संस्कृति की विद्यमानता की सम्भावना वैज्ञानिक बता रहे हैं ।

प्राचीन आचार्यों ने परलोक के पक्ष में एक और अकाट्य तर्क दिया था । वह अभी भी उतना ही महत्वपूर्ण है । वह यह है कि -(१) कई बार पुण्य-कार्य करने वालों को भी उचित फल इसी जीवन में मिलता नहीं देखा जाता । दूसरे जन्म में उसका फल मिलता है । जन्मतः विलक्षण प्रतिभाएँ और विशिष्ट अनुकूलताएँ विगत जीवन के पुण्य का ही परिणाम हो सकती हैं । क्योंकि बिना कारण के कोई कार्य सम्भव नहीं है, यह सिद्ध हो चुका है ।

लौकिक दृष्टि से चिरकाल पूर्व नष्ट हुआ पुण्य-कर्म इतनी अवधि के उपरान्त फल-उत्पादन में समर्थ होता है, इसका अर्थ है कि इस बीच उस कर्म को सूक्ष्म रूप में किसी अन्य लोक में उसी प्रकार अवस्थिति रही जिस प्रकार कि धरती में गड़ा बीज ऊपर सतह पर अदृश्य होने पर भी नीचे विद्यमान रहता है । क्योंकि किसी फल के जनक अवान्तर व्यापार के बिना अर्थात् सृजन-उत्पादन की अविच्छिन्न प्रक्रिया के बिना कोई कर्म-बीज फल-उत्पादन में समर्थ नहीं हो सकता । जिस प्रकार चिरध्वस्त अनुभव मस्तिष्क में अंकित संस्कार रूप में रहने के कारण ही स्मृति रूप में चित्त में कालान्तर में उदित होता है, उसी प्रकार कहीं संस्कार-रूप अवस्थित कर्म ही जन्मांतर में फल देते हैं । यह 'कहीं' ही परलोक है, जिसे चाहे तो ब्रह्माण्डीय मस्तिष्क-लोक भी कह सकते हैं । इस प्रकार 'परलोकस्य अभावात्' सूत्र गलत हुआ ।

(१) पुण्य और नैतिक कर्मों में प्रत्यक्षतः कष्ट होने पर भी अनेक लोग उस ओर प्रवृत्त रहते हैं, पुण्य-पथ से विचलित नहीं होते । इसका अर्थ है कि उन्हें परलोक में विश्वास है, यह विश्वास अकारण नहीं होता । अकारण उत्पन्न विश्वास पीड़ा पाकर डिग जाता है । कष्ट सहन को सुदीर्घ प्रेरणा युगों-युगों तक देते रहने में आधारहीन विश्वास समर्थ नहीं होता । जो लोग धार्मिक सम्प्रदायों के नाम पर अंधमान्यताओं में विश्वास करते हैं, उन्हें आए दिन यहाँ से वहाँ भटकते देखा जा सकता है । मूर्ति-पूजा के अंधविश्वासों ने मूर्ति-भंजक मुसलमानों से मौका पाते ही समझौता कर लिया, रोटी-बेटी का रिश्ता बना लिया । किन्तु आदर्शों मूल्यों को अपनाकर जीवन भर कष्ट भोगने वाले लाखों लोग हर देशकाल में पाए जाते हैं । इससे स्पष्ट होता है कि इस आदर्शनिष्ठा के फलवती होने की उन्हें अडिग आस्था है । प्रत्यक्षतः यह फल मिलता नहीं । अतः सूक्ष्म रूप में ही उस फल के उत्पादन की किसी प्रक्रिया पर उनके चेतन-अचेतन मन में आस्था रहती है । यही सूक्ष्म भाव-लोक परलोक है । यदि कोई कहे कि चालाक ठगों ने आदर्शवाद का जाल-जंजाल बिछाकर भोले लोगों को ठग रखा है तो "विप्रलम्भोऽपिनेदृशः" प्रवंचना या ठगी भी ऐसी नहीं होती । क्योंकि दूसरों को ठगने के लिये कोई निरन्तर आजीवन स्वयं कष्ट नहीं सहता । न ही, किसी सर्वथा आधारहीन तथ्य से दूर देश काल में ठगी हो सकती। अतः बड़ी संख्या में किसी ऐहिक सुख के, लोगों की पुण्यकर्मों में निरन्तर प्रवृत्ति परलोक की प्रतिपादक पुष्टिकारक घटना है, प्रमाण है । इस प्रकार 'परलोकस्य अभावात् ' सूत्र का तर्क गलत सिद्ध होता है ।

न्यायकुसुमांजलिकार ने नास्तिक प्रतिपादनों का जो खंडन किया है, उसके मुख्य तर्क यही हैं। सच पूछा जाय, तो प्रथम स्तवक का प्रतिपादन ही प्रधान है ।

शेष चार स्तवकों में क्रमशः उन लोगों के तर्कों को काटा गया है जो कहते हैं कि (१) परलोक तो है और पुण्यकर्मों का फल भी मिलता है, किंतु ईश्वर नहीं है । (२) ईश्वर नहीं है, इसके प्रमाण विद्यमान हैं, इसलिए ईश्वर नहीं है (३) ईश्वर है, इसके प्रमाण नहीं मिलते, इसलिए ईश्वर नहीं है, किन्तु जीवात्मा चेतन है, पुनर्जन्म होता है और कैवल्य-सिद्धि यानी मोक्ष लाभ भी होता है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तथा (४) आत्मा है, वह चेतन है, प्रकृति से भिन्न है, किन्तु वह किसी एक ही परमात्मा का अंश नहीं है । अपितु असंख्य आत्माएँ हैं और सभी अपने आप में स्वतंत्र हैं । स्पष्ट है कि ये सभी तर्क मात्र तर्क के लिए हैं। ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार करने वाले आधारभूत तर्क वही हैं, जो चार्वाकवादियों ने प्रस्तुत किये हैं और वे तर्क भी तर्क कम हैं, ईश्वर को न मानने का हठ अधिक है । शेष लोग जो कहते हैं कि पुनर्जन्म भी होता है, परलोक भी है, आत्मा चैतन्यमय भी है, किन्तु परमात्मा नहीं है, वे तो स्पष्टतः दुराग्रह ही प्रदर्शित करते हैं । मानो परमात्मा को मानने से या तो उन्हें भय है या फिर परमात्मा को अस्वीकार करने के दम्भ के प्रदर्शन का उन्हें मोह है ।

वास्तविक बात यह है कि नास्तिकता की कोई एक सुस्पष्ट विचारधारा नहीं है । नीत्शे जैसों ने ईश्वर को अस्वीकार किया, किन्तु ईश्वरीय गुणों से विभूषित मानवों-अतिमानवों की कल्पना प्रस्तुत कर एक तरह से आस्तिकवादी मूल्यों को ही स्वीकार किया । बैखरी वाणी से ईश्वर को स्वीकार करना या न करना -वस्तुतः अधिक महत्वपूर्ण नहीं है । क्योंकि वह तो तर्क-व्यापार मात्र है ।

आस्तिकता की कसौटी तर्क और वाणी मात्र नहीं, चिन्तन और आचरण का स्तर है । इसीलिए विवेकानन्द ने कहा था-"जिसे स्वयं पर विश्वास नहीं, वही नयी परिभाषा के अनुसार नास्तिक है।" अतिमानस-अतिमानव आदि आदर्शों को संस्थापना करने वाले चिन्तन और कर्म को पूरी तरह नास्तिक नहीं माना जा सकता । नास्तिक तो वह है, जिसे कर्मों के सुनिश्चित परिणाम पर एवं कार्य-कारण के अनिवार्य सम्बन्ध पर विश्वास नहीं है और इसलिए जो उत्कृष्ट चिन्तन तथा आदर्श कर्तृत्व को मूर्खों तथा उद्भ्रान्तों की हरकतें मानता है । ऐसी मान्यता किसी चिन्तन का नहीं, चित्त की विकृति का परिणाम है ।

नास्तिकता चित्त की वह स्थिति है, जो दुर्बलता और रुग्णता के कारण कर्कश, दुराग्रहपूर्ण तथा निषेधवादी हठवादिता से भरपूर होती है । स्वस्थ एवं श्रेष्ठ चिन्तन का तो जब भी, जहाँ भी प्रयास होगा, वह प्रत्यक्ष न सही परोक्ष रूप में आस्तिकतावादी मूल्यों और नैतिक प्रतिमानों की ही पुष्टि करेगा ।

स्पष्ट नास्तिकतावाद बनाम प्रच्छन्न नास्तिकवाद

नास्तिकवादी मान्यता यह है कि शरीर ही जीव है। शरीर के मरण के साथ-साथ ही जीव का भी अन्त हो जाता है । शरीर और जीव का पृथक् अस्तित्व नहीं । दोनों एक साथ ही जीते मरते हैं । इस मान्यता के अनुसार परलोक का-पुनर्जन्म का आधार नहीं पाता ।

नास्तिकवाद यदि किसी दार्शनिक-चिन्तन तक सीमित रहता तो बात दूसरी थी पर उसका अत्यन्त दूरगामी प्रभाव हमारी जीवन-यापन सम्बन्धी विचारणा एवं क्रिया-प्रक्रिया पर पड़ता है । इसलिए इसे विचार भिन्नता कहकर टाला नहीं जा सकता ।

मानवी स्वभाव येनकेन प्रकारेण अधिकाधिक सुख-सुविधा साधनों का संग्रह एवं उपयोग करने का है । कम समय, कम श्रम में अधिक सुख-साधन उपलब्ध करने की आतुरता में उचित-अनुचित का भेद छूट जाता है । उचित मार्ग से तो अभीष्ट श्रमशीलता और योग्यता के आधार पर ही वस्तुएँ मिलती हैं । यदि इस मर्यादा में रुके रहने की गुंजाइश न हो तो गतिविधियों को उस स्तर की बनाना पड़ेगा जिसे पाप, बेईमानी, छल, उत्पीड़न आदि अपराध वर्ग में गिना जा सके । प्रत्यक्ष है कि ईमानदारी की अपेक्षा बेईमानी की नीति अपनाने वाले-स्वल्प समय में अधिक सुख-साधन एकत्रित कर लेते हैं । एक की देखा-देखी दूसरे की भी इस प्रचलन का अनुसरण करने की इच्छा होती है और अनैतिक आचरण का प्रवाह द्रुतगति से आगे बढ़ने लगता है । नास्तिकवाद इस प्रवाह को रोकता नहीं वरन् प्रोत्साहित करता है । कहना न होगा कि यदि अपराधी प्रकृति और कृति बढ़ती ही जाय तो आचार-संहिता एवं मर्यादा नाम की कोई चीज न रहेगी । स्वेच्छाचार बढ़ेगा और स्वार्थपरता अन्तःमानव समाज को परस्पर नोंच खाने की स्थिति में ले जाकर पटक देगी । फलतः व्यक्ति एवं समाज का सत्यानाशी अहित ही सम्मुख उपस्थित होगा ।

कानून की पकड़ से आदमी को बुद्धि-कौशल सहज ही बचा सकता है । अपराधों की महामारी अब सर्वजनीन और सर्वव्यापक होती चली जा रही है । पकड़ में कोई विरले ही आते हैं । जो पकड़े जाते हैं वे भी दुर्बल न्याय व्यवस्था का लाभ उठाकर राजदण्ड से बच जाते हैं । समाज में एक तो वैसे ही समर्थ एवं संगठित प्रतिरोध की क्षमता नहीं, इस पर भी गुंडावाद का आतंक उसे चुप रहने और सहन करने में ही भलाई मानने के लिए आतंकित करता है । ऐसी दशा में समाज प्रतिरोध का भी भय नहीं रहता । सरकारी पकड़ से बचने या पूछने के उपाय तो अब सर्वविदित हो चले हैं इसलिए चतुर लोग उससे डरने की आवश्यकता नहीं समझते । विपत्ति में फँसने से पहले ही आवश्यक सुरक्षा, व्यवस्था के साधन बना लेते हैं ।

अपराधी मनोवृत्ति से बचाने का भावनात्मक अंकुश ही अब तक कारगर होता रहा है। यों उसमें भी भारी शिथिलता आई है फिर भी जितनी रोकथाम आस्तिकता के कारण रह रही है, उसे भी कम महत्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता । ईश्वर का न्याय, कर्म का फल यदि पूरी तरह मानवीय चेतना में से हटा दिया जाय तो फिर उसे आचरण में पूरे उत्साह के साथ प्रवृत्त होने से कोई रोक नहीं सकेगा। सरकारी नियन्त्रण किसी की बहिरंग गतिविधियों पर ही एक सीमा तक रोकथाम कर सकता है। विचारणा, आकांक्षा एवं अभिरुचि पर तो सरकारी अंकुश भी नहीं चलता । दुष्ट-बुद्धि, दुर्भाव और अशुभ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चिन्तन पर रोकथाम तो आत्म-नियन्त्रण में ही हो सकती है । कहना न होगा कि इस आत्म-निग्रह में ईश्वर की उसके न्याय और कर्मफल देने की मान्यता ही कारगर सिद्ध हो सकती है । नास्तिकतावादी मान्यता अपनाकर ही अवांछनीय रीति-नीति अपनाकर अधिकाधिक सुख-साधन कमाने में फिर कोई बड़ा बन्धन ही नहीं रह जाता । कानून और लोकमत को तो सहज ही बहकाया जा सकता है ।

विद्वान वाल्टेयर ने इसी तथ्य को ध्यान में रखकर कहा था-यदि सचमुच ईश्वर नहीं हो तो भी उसका सृजन करना मानवी सुव्यवस्था की दृष्टि से परम आवश्यक है । सत्प्रवृत्तियों को अपनाने और दुष्प्रवृत्तियों से विरत होने की प्रेरणा देने के लिए ही धर्म एवं अध्यात्म का ढाँचा खड़ा किया गया है । इन दोनों को ईश्वरीय अस्तित्व के सहारे ही खड़ा रखा जा सकता है । वस्तुतः ईश्वरवाद की व्याख्या ही धर्म एवं अध्यात्म के क्रियात्मक एवं भावनात्मक उत्कृष्टता को समर्पण करने की दृष्टि से की जाती है ।

आस्तिकवाद में भी एक भयानक विकृति कुछ समय से ऐसी पनपी है जिसे नास्तिकवाद के समकक्ष ही कह सकते हैं वह है-छुट-पुट कर्मकाण्डों के आधार पर पाप दंड से छुटकारा मिल जाने का समर्थन । इन दिनों सम्प्रदाय-वादियों ने अपने-अपने मत सम्प्रदाय के अनुयायी बनाने और बढ़ाने के लिये एक सस्ता नुस्खा ढूँढ़ निकाला है कि उनके मत के अनुसार बताये पूजा-विधान, मन्त्र या क्रियाकृत्य की अत्यन्त सरल विधि पूरी कर लेने से जीवन भर के समस्त पापों के दण्ड से छुटकारा मिल जाता है । यह प्रलोभन इसलिए दिया गया प्रतीत होता है कि पाप दण्ड की कष्टसाध्य प्रक्रिया से सहज ही छुटकारा मिल जाने का भारी लाभ देखकर लोग उनके सम्प्रदाय की रीति-नीति अपना लेंगे । यदि बात इतनी भर होती तो भी क्षम्य थी पर इस मान्यता में एक अत्यन्त भयानक प्रतिक्रिया भी जुड़ी हुई है जिसके कारण वह प्रलोभन व्यक्तिगत चरित्र और समाजगत सुव्यवस्था पर घातक प्रभाव डालता है । मनुष्य पापदण्ड से निर्भय हो जाता है । दुष्कर्म करने का उसे प्रोत्साहन साहस मिलता है । जब अनीति अपनाकर भरपूर लाभ उठाया जा सकता है और उनके दण्ड से छुटपुट कर्मकाण्ड का आश्रय ही बचा सकता है, तो फिर कोई क्यों अनीति आचरण के लाभ को छोड़ना चाहेगा ?

नास्तिकवाद और इस पापदंड से बचाने वाले अनास्तिकवाद का निष्कर्ष एक ही है । नास्तिक इसलिए पाप से निश्चित होता है कि सरकार और समाज को चकमा देने के बाद ईश्वर, परलोक, कर्मफल आदि का अतिरिक्त झंझट नहीं रह जाता । ठीक इसी निर्णय पर विकृत चिन्तन से भरा प्रचलित ईश्वरवाद भी पहुँचाना है । इस प्रकार वे बाहर से एक-दूसरे के प्रतिकूल दीखते हुए भी निष्कर्ष एक ही निकालते हैं । पापाचरण के लिए दोनों ही समान रूप से पथ प्रशस्त करते हैं ।

एक और प्रश्न पर भी तो वे दोनों एक मत हैं। पुण्य परमार्थ की आवश्यकता नास्तिकवाद नहीं मानता-क्योंकि इससे धन और समय बर्बाद हो जाता है, जब पुण्य प्रतिफल ही नहीं मिलने वाला है तो प्रत्यक्ष घाटा देने वाले परोपकार जैसे कार्यों को क्यों किया जाय ? प्रचलित विकृत अध्यात्मवाद भी यही सिखाता है । जब छुट-पुट कर्मकाण्डों के नाम पर जप आदि से ही अक्षय पुण्य मिल जाता है और स्वर्ग-मुक्ति तक का द्वारा खुल जाता है तो खर्चीले एवं कष्टसाध्य परमार्थ प्रयोजनों को अपनाने से क्या लाभ ? प्रकारान्तर से सेवा-सत्कर्मों की निरर्थकता सिद्ध करने में भी यह दोनों ही दर्शन एकमत हैं ।

नास्तिकवाद के दुष्परिणामों पर समाज के मूर्धन्य लोग विचार करते रहे हैं और उसे अपनाने पर उत्पन्न होने वाले चरित्रसंकट की विभीषिका समझाते रहे हैं । पर न जाने दूसरे उस प्रच्छन्न नास्तिकवाद की ओर विचारशील लोगों का ध्यान क्यों नहीं जाता, जो छुट-पुट कर्मकाण्डों का अतिश्योक्तिपूर्ण माहात्म्य बताकर पापदण्ड से निर्भय रहने और पुण्य की निरर्थकता सिद्ध करने में प्रकारान्तर से नास्तिकवाद का सहोदर भाई ही सिद्ध होता है । धर्म, अध्यात्म और ईश्वरवाद के मूल प्रयोजन की यह प्रच्छन्न नास्तिकवाद जड़ ही काट रहा है इसलिए उसे भी निरस्त किये जाने की आवश्यकता है ।

तर्क की कसौटी पर एक नास्तिकवादी दर्शन

मानव जाति की प्रगति का इतिहास यदि एक शब्द में कहना हो, तो उसे आपस का 'सहयोग' कह सकते हैं । आदमी के रहने-सहने का ढंग, जिन्दगी जीने की व्यवस्थित रीति-नीति उसकी इसी मनोवृत्ति की उपज है । यही वह तथ्य है, जिस पर उन्नति की सारी सम्भावनाएँ टिकी हुई हैं । यों यह कहते सुना जाता है कि बुद्धिमत्ता के सहारे प्रगति की राह पर बढ़ा गया है । पर सही बात यही है कि सहयोग के आधार पर एक दूसरे के साथ घनिष्टता स्थापित करते हुए परस्पर आदान-प्रदान का क्रम चला और उससे मानसिक विकास के दरवाजे खुले ।

इस चीज को नजरअन्दाज करके कुछ लोगों ने जिन्दगी जीने के तरीके को दूसरी तरह से सोचा है । पिछले दिनों हुई इस सोच को उपयोगितावाद का नाम दिया गया है । नीतिशास्त्रियों ने इसे स्थूल सुखवाद भी कहा है । जे० एस० मिल ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है "संसार में सभी सुख की तलाश में हैं । जीवन का ध्येय यही है । इस कारण स्वाभाविक है कि इसे तलाशा जाय।" उनके अनुसार आदमी की चाहत सुख है और वस्तुएँ हैं इसका माध्यम । इसी कारण वस्तुओं को इकट्ठा करने की कोशिश की जाती है । मिल ने अपने इस सिद्धान्त में आचरण की महत्ता पर कोई ध्यान नहीं दिया है ।

मनोविद एरिक फ्रॉम अपनी किताब 'एनाटॉमी आफ ह्यूमन डिस्ट्रक्टिवनेस' में इसे मनोवैज्ञानिक भ्रान्ति बतलाते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हैं । उन्होंने कहा है कि इसे अपनाने का मतलब है, हजारों साल के किए कराए पर पानी फेर देना । इससे तो साधन-सामग्रियों को बेतहाशा इकट्ठे करने के चक्कर में आदमी पशु जैसा हो जाएगा ।

बोलना-सोचना, पढ़ना-लिखना, खेती, पशुपालन तथा समाज व्यवस्था आदि उन्नति के आरम्भिक चरणों को सहयोग-सद्भाव की उपलब्धियाँ हैं । इन्हीं सीढ़ियों पर चढ़ते हुए मनुष्य ने आगे बढ़ने और ऊँचा उठने की राह पायी है । यह सब किसी एक के प्रयास का फल नहीं है । इसमें बहुत समय लगा है । एक के अनुभव का दूसरे ने लाभ उठाया है । एक की उपलब्धियाँ दूसरों ने सीखी हैं जो मार्ग मिला है, उस पर एक दूसरे को साथ लेते हुए कदम बढ़ाया है ।

मिल तथा इसके अनुयायियों ने अपने पक्ष में जो तर्क प्रस्तुत किये हैं, वे प्रकृति के नियम न होकर अपवाद हैं । बड़ा पेड़ अपने पास वाले पौधों की खुराक खुद हड़प लेता है । बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है । हिंसक जानवर छोटे-छोटे निरीह पशुओं को खा जाते हैं । उदाहरण प्रकृति की समूची व्यवस्था को भुला कर दिये गए हैं । परिस्थिति विज्ञान के विद्वान यह बताते हैं कि प्रकृति का हर घटक एक दूसरे के साथ सहयोग का व्यवहार करता है । प्राणी और वनस्पतियाँ एक दूसरे के साथ मिलकर ही जीवन की गाड़ी चला रहे हैं । एक कार्बन डाई आक्साइड छोड़ता है दूसरा उसे पचाकर बदले में ताजी आक्सीजन देता है । प्रकृति में लगातार चलने वाले नाइट्रोजन-चक्र, जल-चक्र आदि इसी आधार पर समूची व्यवस्था बनाए हुए हैं ।

उपयोगितावाद के अनुरूप यदि मनचाही इच्छाओं को पूरा करने को ठीक मान लिया जाय, तो समूची समाज व्यवस्था ढह जाएगी । यदि हर मनुष्य सुख-साधनों की छीना-झपटी को सही समझने लगे, तो होने वाले परिणाम की कल्पना भी खतरनाक लगेगी । भारतीय तत्वचिन्तक भी सुख की बात कहते हैं । पर प्राच्य-दर्शन में मिल की तरह सुख-साधनों को अधिकाधिक इकट्ठा करने उनके लिए छीना-झपटी करने जैसा भाव नहीं है । इसमें एक समूह का सुख न कहकर सबके सुख की बात कही है । "सर्वे भवन्तु सुखिनः" की कामना की है, जो समता व सद्भाव का द्योतक है ।

मनुष्य समझदार और श्रेष्ठ प्राणी माना जाता है । इसका कारण उसकी सहयोगपरक सत्प्रवृत्ति ही है। इसी आधार पर परिवार बसाए गए । उसमें सरसता और उदारता का समावेश हुआ। इससे कुटुम्ब के हर छोटे-बड़े सदस्य को लाभ मिला । यही प्रवृत्ति आगे सामाजिकता के रूप में विकसित हुई। समाज व्यवस्था की संरचना परिवार पद्धति की आचारसंहिता के आधार पर ही बन सकी है । अर्थतन्त्र का पूरा ढाँचा सहकारिता पर टिका है। वस्तुओं का उत्पादन और विनिमय-वितरण-क्रम ही वर्तमान अर्थ-व्यवस्था तक बढ़ता आया है । शिल्प, चिकित्सा, शिक्षा, कला-कौशल और विज्ञान के लम्बे चरण एकाएक नहीं उठे । अमुक आविष्कार का श्रेय अमुक व्यक्ति को मिला यह अलग बात है। पर वस्तुतः सफल खोज की पृष्ठभूमि बहुत पहले से ही बनने लगी थी। उसमें अनेकों का चिन्तन और प्रयास जुड़ते हुए वह आधार बन सका था, जिसके सहारे उसे अन्तिम रूप से उद्घोषित किया गया। धर्म, अध्यात्म जैसी उच्चस्तरीय भावनात्मक चेतनाएँ किसी एक आदमी का काम नहीं है । इनके क्रमिक विकास में अनेक पीढ़ियों के हजारों साल लगे हैं। यह सब उनके परस्पर सहयोग का ही परिणाम है।

जबकि मिल का सिद्धान्त उपरोक्त चिन्तन से विपरीत है । इसके अलावा भी इसमें दो प्रधान दोष हैं । पहला मनुष्य-मनुष्य के बीच अलगाव की दीवार खड़ी करना । क्योंकि हर मनुष्य जब सुविधा-साधनों को इकट्ठा करने के लिए जुट पड़ेगा , तो इन्हें कहीं से छीन-झपट कर ही जुटाया जा सकेगा । छीनने वाला शोषक होगा, जिसका छीना गया है, वह शोषित । इन दोनों के बीच की खाई धीरे-धीरे बढ़ती जाएगी । एक स्थिति में इसे पाटने के लिए प्रयास होंगे फिर वे चाहे हिंसात्मक ही क्यों न हों ? रूस में हुई वोल्शेविक क्रान्ति इसका जीता-जागता उदाहरण है । इसका दूसरा दोष है-सारे भावनात्मक सम्बन्धों को समाप्त कर देना । युवक अपने बूढ़े बाप की क्यों सेवा करेंगे ? क्योंकि इसमें दवा से लेकर शारीरिक सेवा करने, पैसा खर्च करने की झंझट उठानी पड़ती है । मिल के अनुसार इससे कोई फायदा तो है नहीं । यही स्थिति छोटे बच्चों की परवरिश करने वाले माँ-बाप की है ।

सचमुच, उपयोगितावाद की नीति से समता और सद्भाव खत्म हो जाते हैं । विक्टोरिया विश्वविद्यालय के प्राध्यापक लायड गियरिंग ने अपने अध्ययन 'फेथ्स न्यू एज' में इसे अच्छी तरह समझाया है । उनके अनुसार आज की सामाजिक समस्याओं का कारण यही है । हर आदमी चालाकी, धोखाधड़ी, किसी भी तरह से अपने भोग सुख की पूर्ति चाहता है । फिर भला अस्तव्यस्तता और बर्बादी क्यों न हो ?

श्री गियरिंग का अपनी पुस्तक में मत है कि इन समस्याओं के निवारण के लिए समाज को एक बड़ा परिवार मान कर चलना होगा । पारस्परिक घनिष्टता से समता-सद्भाव उपज सकते हैं । बात भी सही है-अपनी ढपली अपना राग अलापने से काम नहीं चलेगा । यदि हर बाजा अपना अलग-अलग स्वर निकाले तो उससे कानों को बुरा लगने वाला शोरगुल उत्पन्न होगा । यह भला किसे अच्छा लगेगा ?

स्थिति के सुधारने-सँवारने के लिए हमें अपने में सहयोग व सद्भाव का विकास करना चाहिए । इसी के आधार पर दूसरों का हृदय जीतना और उन्हें अपना घनिष्ट सहयोगी बना सकना सम्भव हो सकेगा । अपनी प्रकृति एवं प्रवृत्ति ही दूसरों पर भली-बुरी छाप छोड़ती है । उस प्रतिक्रिया से प्रेरित होकर लोगों का व्यवहार अच्छा या

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बुरा बनता है । अपना स्तर जिस तरह का होगा, उसी के अनुरूप लोग सम्पर्क में आएँगे-घनिष्ट बनेंगे । अपने विकास की बात सोचते हुए हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि अभीष्ट सहयोग का संचय कर सकने योग्य विशेषताएँ अपने में सँजोएँ । इस तरह व्यापक स्तर का प्रयास सामाजिक जीवन में पुनः सहयोग की, सद्भाव की प्रतिष्ठा कर सकेगा और अनास्था की असुरता से संघर्ष किया जा सकना सम्भव होगा ।

नास्तिकता के माया-जाल से उबरें

नास्तिकता की फसल भावनाओं से रहित बौद्धिकता के खेत में उपजती है । इस क्षितिज पर जीने वालों में से अधिकांश प्रायः इस पर अपना हक मानते हैं । ऐसे लोगों के लिए यह शान और फैशन दोनों हैं । शान इसलिए क्योंकि इसे अपनाकर उन्हें लगता है कि इस तरह वे सरल-विश्वासी आस्तिकजनों की अपेक्षा कुछ अधिक बुद्धिपरायण हैं । तनिक ऊपर उठे हैं और फैशन यों क्योंकि बौद्धिकता के जमाने में उन्हें सरलतापूर्वक अद्यतन होने की प्रतीति बनी रहती है । इस प्रतीति को अपने से लिपटाए फिरने वालों में शायद ही कोई ऐसा नहीं, जिसने इस पर अनेक दृष्टिकोण से विचार किया हो । विचार करते तो उन्हें नास्तिकता क्यों नहीं ? इस प्रश्न के तर्क और अनुभवसम्मत अनेकों समाधान मिले बिना न रहते ।

नास्ति अर्थात् ''नहीं है'' का नकारात्मक दृष्टिकोण रखने वाले अपने समूचे जीवन को एक अनचाही काल कोठरी में अनजाने कैद कर बैठते हैं । तभी तो सुविख्यात थियालॉजिस्ट वालटिलिक ने कहा है-नास्तिकता बुद्धि का गौरव नहीं वरन् बौद्धिकता का मायाजाल है । इस फेर में पड़ना केवल जीवन व्यक्तित्व बल्कि स्वयं बुद्धि की यात्रा थम जाती है । समूचा विकास अवरुद्ध हो जाता है । क्योंकि जो आदमी नहीं के ऊपर जिन्दगी खड़ी करेगा, वह खाली हो जाएगा । सार्त्र और कामू जैसे विख्यात बौद्धिक इस रिक्तता की व्यथा से अपने को नहीं बचा सके तब औरों की बात क्या ?

नहीं के बीज से कोई अंकुर नहीं निकलता । नहीं के बीज से कोई फूल नहीं खिलते । नहीं के बीज से कोई जीवन विकसित नहीं होता । जीवन में कहीं न कहीं हाँ न हो तो जीवन खाली हो जाएगा । 'नहीं' से बड़ा कोई मरुस्थल नहीं है और जमीन पर जो मरुभूमियाँ होती हैं वहाँ तो कुछ मरुद्यान भी होते हैं । पर इस नकारा भूमि में कहीं कोई हरियाली नहीं । एक रिक्तता शून्यता समूचे व्यक्तित्व को घेर लेती है ।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने तथ्य को भली भाँति पहचाना और परखा है । तभी तो आई० जे० रोजेट 'क्रिएटिवनेस ऑव लाइफ' में विधेयात्मक चिंतन को सृजनात्मक जीवन का आधार बताते हैं । उन्हीं के शब्दों में विधेयात्मक चिंतन का मतलब है-आस्तिकता । आस्तिकता का मतलब कोई कर्मकाण्ड नहीं, देवी-देवताओं की भीड़ के सहारे जीवन की परावलम्बिता नहीं । इसका तात्पर्य तो उस जीवन-शैली से है जो न केवल स्वयं पर विश्वास करना सिखाती है बल्कि यह भी शिक्षण देती है कि अपने विकास की असीम सम्भावनाओं को मत भूलो ।

इसके अभाव में व्यक्तित्व बीज की तरह सड़ता, घुनता और नष्ट होता है। बुद्धि जिसे भावनाओं से घुल मिल कर प्रज्ञा, स्वयं को खोज कर ऋतम्भरा बनना था, विराट् सागर में समासहित होने वाली सरिता का रूप लेना था, नास्तिकता के मायाजाल में पड़कर वह एक अवरुद्ध नाला मात्र बनकर रह जाती है। ऐसी दशा में उसका एक ही काम रह जाता है जीवन के प्रति विषाक्तता का वमन।

व्यक्तित्व के विकास की पहेली सुलझाने की एकमात्र शर्त यही है कि हमारे अस्तित्व की गहराइयों से ''हाँ'' निकले । अपने घर में आग लगा लेना, स्वर्णिम भविष्य की उज्ज्वल सम्भावनाओं को अपने ही पैरों से ठुकरा देना, कितनी बड़ी नादानी है, इसका विचार स्वयं करना होगा । इस नादानी को करने वाले न केवल अपने विकास की सम्भावनाओं के द्वार पर वजनी ताला लटका देते हैं बल्कि उनके स्वयं के जीवन में अनेक दरारें पड़ने लगती हैं । किसी न किसी स्तर पर उनको असुरक्षा, अनिश्चितता, विक्षिप्तता, उन्माद, घुटन से वास्ता पड़े बिना नहीं रहता।

जीवन खिले, व्यक्तित्व की सुरभि चारों ओर फैल सके इस हेतु जरूरी है आस्तिकता को स्वीकारा जाय। आस्तिकता का एक ही मतलब है संवेदनशीलता। देश काल के अनुरूप इसके स्वरूप अनेकों हो सकते हैं। इसको स्वीकारने तदनुसार जीवन जीने की सफलता की एक ही कसौटी है सर्वहित के लिए सर्वस्व उत्सर्ग करने की आतुरता। संवेदना का स्वर जिसके जीवन में हो, उसके जीवन में प्रार्थना ज्यादा दूर नहीं। बदलते समय में यही आस्तिकता शानदार जीवन का मानदण्ड बनेगी। अच्छा हो, हमारी बुद्धि नास्तिकता के मायाजाल से उबरने में अपनी शान समझे। अवरुद्ध प्रवाह की जगह एक सरिता बनकर उज्ज्वल सम्भावनाओं के सागर की ओर बढ़े ।

क्या ईश्वर सचमुच ही मर गया

अठारहवीं सदी में फ्रांसीसी दार्शनिकों ने ईश्वर के अनस्तित्व के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा और लिखा था । उसमें न केवल तर्क ही प्रस्तुत किये वरन् उत्साहपूर्वक बढ़ी-चढ़ी घोषणाएँ भी की थीं । वायरिन के संकेतों का नीत्से ने तीव्र स्वर से प्रतिपादन किया । उसने घोषणा की-''ईश्वर अन्तिम रूप में मर गया ।'' सुनने वालों में से अगणित ऐसे भी थे जिन्होंने इस उद्घोष पर विश्वास किया उन्होंने आश्चर्यचकित होकर महान घटना-'ए विग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ईवेण्ट' के रूप में स्वीकारा, किन्तु नीत्से का इस खण्डन भर से समाधान न हुआ । उसके आस्तिकवादी स्वर फिर मुखर हुए और अपने लहजे में उसने नये शब्दों में कहा-''अब हम सब लोग ही वैसे हीरो बनेंगे जैसा कि अब तक ईश्वर था ।'' उसका यह संकेत अतिमानव की नई सृष्टि होने की ओर था । ईश्वर कैसा हो मतभेद इतना भर रहा । काम तो नीत्से का भी ईश्वर के अस्तित्व के बिना न चला उसने जिस अतिमानव की कल्पना की वह सर्वथा मौलिक नहीं थी । अवतारों का उल्लेख बहुत पहले से ही होता चला आया है। उसमें और इस नये अतिमानव में मौलिक अन्तर नहीं विशेषताओं सम्बन्धी ही यत्किंचित अन्तर रहा है ।

नीत्से ने ईश्वर के मरने की घोषणा तो की पर उसके अन्तरंग का देवदूत इस कुकृत्य पर रो पड़ा । उस फ्रांसीसी दार्शनिक ने इस सिसकते हुए देवदूत को एक अभिव्यंजना का रूपक देते हुए व्यक्त किया है । वह लिखता है-''एक पगला, दिन-दोपहर सड़क पर लालटेन लिए दौड़ रहा था-लोगों ने उससे कारण पूछा-तो बोला मैं ईश्वर को ढूँढ रहा हूँ। भीड़ को सम्बोधन करते हुए वह बोला-ईश्वर है नहीं-उसकी हम और आप लोगों ने मिलकर हत्या कर दी है। देखो उसकी कब्र खुद रही है । मृतक की लाश उसमें दफनाई जाएगी । पर इससे किसी को क्या मिला ? इतना बड़ा कृत्य कर तो गुजरे, पर क्या उसकी प्रतिक्रिया सहन हो सकेगी ? अब इस अभाव की पूर्ति का एक ही रास्ता है कि हम इस लायक बनें कि मृत ईश्वर का कारोबार सँभाल सकें ।''

सृष्टि की गहराई में उतरने पर स्पष्ट हो जाता है कि उसके कण-कण में नियम और नियन्त्रण संव्याप्त है । यहाँ सब कुछ यों ही अन्धाधुन्ध नहीं चल रहा है वरन् एक 'सुव्यवस्थित आर्डर' के आधार पर सारा सूत्र-संचालन इस प्रकार हो रहा है मानो किसी बाजीगर की उँगलियों में बँधे धागे सारी कठपुतलियों को तरह-तरह के नाच नचा रहे हों । छोटे जीवाणु परमाणुओं से लेकर आक्रोश में परिभ्रमण करने वाले तारा-मण्डलों और नीहारिका समूहों के बीच एक अत्यन्त सजग सुव्यवस्था काम कर रही है । वे सभी अपने-अपने लिए निर्धारित सुनिश्चित नियमों से बँधे हुए हैं । इन नियमों की जानकारी में ही विज्ञान के प्रयास नियोजित हैं । विज्ञान अपने को सत्यान्वेषी कहता है। सृष्टि के नियम ही उसके लिए शोध विषय हैं । इस नियामक सत्ता को-विज्ञान को ईश्वर कह सकते हैं । यह भी प्रतिपादित ईश्वरीय गुणानुवाद का एक पक्ष हो सकता है। इसमें ईश्वर की इनकारी नहीं, वरन् उसकी आंशिक स्वीकृति है । आज इतना मान लेने से भी कल अधिक गहरी जानकारी की अपेक्षा की जा सकती है । आस्तिकता के अगले अध्यायों का अध्ययन पीछे होता रहेगा, आज भी उसकी प्रामाणिकता तो स्पष्ट ही है भले ही उसका नाम 'आर्डर' ही क्यों न दिया जाय ?

प्रकृति के अन्तराल पर्यवेक्षण के प्रयास में एक नया तत्व सामने आया है-विश्व चेतना । समझा जा रहा है कि व्यक्ति चेतना उसी का एक घटक है । विज्ञान के क्षेत्र में इन दिनों यह चर्चा जोरों पर है कि यह संसार मात्र पदार्थ नहीं है, उसके पीछे एक दूरदर्शी मस्तिष्क भी काम करता है । पदार्थ के पीछे झाँकती एक विवेकवान् मस्तिष्क की झाँकी अब अधिकाधिक स्पष्ट होती जा रही है । उस चेतना में मात्र बुद्धि ही नहीं आकांक्षा का भी अस्तित्त्व झलकता है । उद्देश्य तो ठीक से नहीं समझा जा सका, पर इस सृष्टि व्यवस्था में मात्र आणविक हलचलों तक सीमित रहने से समाधान नहीं होता । दूरगामी परिणामों को ध्यान में रखने जैसी एक चेतना को सृष्टि संचालन की कम शृंखला मानने में अब वैज्ञानिक मतभेद बहुत ही कम रह गया है । मैटर के पीछे ' माइण्ड' काम करता हुआ प्रतीत होता है और कोई यूनिवर्सल विल इस सारे प्रसार-विस्तार को किसी इच्छित दिशा में घसीटे ले जा रही प्रतीत होती है । यूनिवर्सल माइण्ड-यूनिवर्सल दिल का अस्तित्व 'आर्डर' के साथ जोड़कर विज्ञान में ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में अर्द्ध स्वीकृति प्रदान कर दी है, अब वह पिछली शताब्दी की तरह इस सम्बन्ध में कट्टर नहीं रह गया है, उसने अर्द्ध आस्तिकता स्वीकार कर ली है ।

इस संसार में दो परस्पर विरोधी शक्तियाँ काम करती हैं । जीवन और मरण, अन्धकार और प्रकाश, पाप और पुण्य, उत्थान और पतन आदि । वे अपनी-अपनी ओर खींचती हैं । इनके मध्य सन्तुलन बनाने वाली एक तीसरी शक्ति होनी चाहिए । मुकदमे में वादी और प्रतिवादी पक्ष अपनी-अपनी ओर खींच-तान करते हैं । न्यायाधीश औचित्य और समाधान का उपाय निकालता है । यदि न्यायाधीश न हो तो उस संघर्ष का उचित अन्त कभी होगा ही नहीं और विनाश ही हाथ लगेगा ।

पदार्थ का एक ही गुण और एक ही प्रवाह हो सकता है । उसमें पक्ष प्रतिपक्ष की-एक सीमा तक संघर्ष और फिर सहयोग की प्रवृत्ति होने का कोई कारण किसी नियामक शक्ति के बिना सम्भव नहीं । क्रिया और प्रतिक्रिया का क्रम भी इस संसार में अन्धाधुन्ध नहीं सुव्यवस्थित और सन्तुलित रीति से चल रहा है । उसी से स्थिरता, शान्ति और प्रगति का आधार बनता है । विश्व का सौन्दर्य और आनन्द उसी पर निर्भर है । पदार्थ में भिन्नता है-उनकी आकृति और प्रकृति में भारी अन्तर है फिर भी दूरगामी पर्यवेक्षण से सिद्ध होता है कि वे सभी एक दूसरे के पूरक सहयोगी बनकर रह रहे हैं। इकालॉजी सिद्धान्त पर जितना विचार किया जाता है उतना ही यह स्पष्ट होता है कि संसार के सभी प्राणी और पदार्थ एक ही किसी विराट् शरीर के अंग-प्रत्यंग, जीवाणु-परमाणु बनकर रह रहे हैं और परस्पर पूर्णतया सुसम्बद्ध ही नहीं एक दूसरे पर निर्भर भी हैं। ऐसी विश्वव्यवस्था बिना नियामक शक्ति के हो ही नहीं सकती, उस नियामक को ईश्वर कहा जा सकता है ।

हम देखते हैं कि वस्तुएँ कितनी ही मूल्यवान क्यों न हों वे अपने आप किसी प्रयोजन की पूर्ति नहीं करतीं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सोना खदानों में अनादि काल से पड़ा है । उसे मानवी प्रयत्नों से ढूँढ़ा और खोद निकाला जाता है । आभूषण बनाने का प्रयत्न होता है अथवा उसे बाजार में बेचकर सुख-साधन खरीदे जाते हैं । यह सब किसी के करने से ही सम्भव हुआ । सोने का अस्तित्व और मूल्य रहते हुए भी उस का उपयोग किसी जीवित प्राणी के बिना सम्भव नहीं। अन्न में भूख बुझाने का गुण है, पर उसे उगाने से लेकर पकाने, खाने तक के सारे प्रयोजन मनुष्यों को ही करने पड़ते हैं। अनेकानेक सुविधा-साधन और उपकरण इस संसार में मौजूद हैं और प्रयोग होते हैं । किन्तु उन्हें उपयोगी बनाने तथा उपयोग करने का कार्य चैतन्य मनुष्य ही करते हैं। कर्त्ता के बिना कर्म होते रहें, संसार में अगणित हलचलें हो रही हैं। उत्पादन, अभिवर्द्धन और परिवर्तन के कौतूहलवर्द्धक क्रम चल रहे हैं । इन सब सुनियोजित क्रिया-कलाप की कोई चेतनात्मा न हो, सब अपने आप ही चलता रहता हो ऐसा हो नहीं सकता। अपने आप जड़ पदार्थ, कुछ गति करें भी तो वे सभी अव्यवस्थित होंगी । बाढ़-भूकम्प, महामारी, आँधी-तूफान जैसे प्रकृति प्रवाहों में कहीं व्यवस्था नहीं होती। किन्तु हम देखते हैं प्राणि-जगत और पदार्थ परिकर में कई नियम मर्यादाएँ गतिशील रहती हैं और सब कुछ व्यवस्थित बनाये रहती हैं । यह कैसे होता है-इसमें किसी कर्त्ता के अस्तित्व से इन्कार करने पर कोई समाधान हो ही नहीं सकता ।

मोटी बुद्धि, इन्द्रिय ज्ञान पर निर्भर रहती है । जो देखा, सुना, चखा, छुआ जाता है उस पर विश्वास करती है । इसे यह समझने में बड़ी कठिनाई होती है कि इन्द्रिय शक्ति ही किसी तथ्य को प्रमाणित करने का एकमात्र माध्यम नहीं है । ऐसे तथ्यों का भी इस संसार में अस्तित्त्व हैं जिन्हें इन्द्रियों से नहीं वरन् बुद्धि से ही जाना जा सकता है । कई बार तो इन्द्रियाँ भ्रान्त अनुभूतियाँ भी करती हैं और उनके द्वारा प्राप्त ज्ञान संदिग्ध होता है । सिनेमा के पर्दे पर तस्वीरें चलती-फिरती दिखाई पड़ती हैं, पर वे वस्तुतः स्थिर होती हैं । तेजी से घूमने के कारण आँखें उनकी वास्तविक स्थिति समझने में भ्रमित हो जाती हैं और स्थिर तस्वीरें चलती-फिरती दिखाई पड़ती हैं । मृग-मारीचिका उड़न तस्तरियाँ जैसी कितनी ही भ्रान्तियाँ आँखों के आगे से गुजरती हैं । पानी में रहने वाले जीवाणु तक मात्र इन्द्रियों से नहीं देखे जाते, उनके लिए भी सूक्ष्मदर्शी उपकरण ही काम आते हैं । अन्तरिक्ष के ग्रह-नक्षत्रों की गतिविधियाँ समझने के लिए यन्त्र ही काम करते हैं । इन्द्रियशक्ति अपर्याप्त पड़ती है । प्रकाश तरंगें, ध्वनि तरंगें इन्द्रियों की पकड़ में कहाँ आती हैं ?

फिर भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, द्वेष, प्रेम, सुख-दुःख जैसी अनुभूतियों का अस्तित्व होते हुए भी वे आँखों से नहीं देखी जाती हैं । मनुष्य का अपना अस्तित्व-'आत्मा' ही इन्द्रियों से कहाँ दिखाई पड़ता है । इस विश्व में बहुत कुछ ऐसा है जो बुद्धि से ही जाना जा सकता है । ईश्वर इन्द्रियों से तो प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता, पर उसकी क्रिया-प्रक्रिया को देखते हुए अस्तित्व पर विश्वास किया जा सकता है । पदार्थ की सूक्ष्मतम स्थिति भी बुद्धिगम्य है। यन्त्रों से भी उसकी मूल सत्ता नहीं देखी जा सकती । उसके क्रिया-कलापों को देखते हुए ही यह अनुमान लगाया जाता है कि उसका अस्तित्व किस प्रकार का होना चाहिए । ईश्वर का परिचय एवं प्रमाण भी इसी आधार पर उपलब्ध हो सकता है ।

न्याय दर्शन (तर्क शास्त्र) के प्रमाण के आठ आधार बताये गये हैं । (१) प्रत्यक्ष (२) अनुमान (३) उपमान (४) शब्द (५) अर्थापत्ति (६) ऐतिह्य (७) सम्भव (८) अभाव । इनमें से एक प्रत्यक्ष ही इन्द्रियगम्य है । शेष सात के लिए बुद्धि पर निर्भर रहना पड़ता है । जब भौतिक जगत की जानकारियाँ प्रत्यक्ष के आधार पर नहीं मिल पातीं तो ईश्वर जैसे अति-सूक्ष्म-तत्व को आँख से देखने पर ही विश्वास करने का आग्रह करना बालहठ जैसा ही कहा जा सकता है ।

मीमांसाकार ने अपने प्रबल तर्कों के आधार पर ईश्वर का खण्डन किया है, साथ ही उस प्रतिपादन को समाप्त करते हुए ॐ नमो पुण्डरीकाक्षाय लिखकर उस निषेध पाप का प्रायश्चित भी कर लिया है ।

परमाणु को बहुत पहले पदार्थ का सबसे छोटा कण कहा जाता था । पीछे उसके कितने ही घटकों का एक समूह समन्वय माना गया । अब वह ठोस, तरल या वाष्प की उन तीनों स्थितियों से भिन्न है जो पदार्थ के स्वरूप एवं अस्तित्व की जानकारी देते हैं । अब परमाणु मात्र शक्ति एवं गति भर है-उसकी विवेचना एनर्जी तथा प्रोसैस के रूप में की जाती है । यहाँ एक आगे का प्रश्न खड़ा होता है कि शक्ति या गति किसकी ? उसकी दिशा और प्रकृति का निर्धारण कैसे होता है ? वह बिना टकराये सहयोग के सिद्धान्त को किस प्रकार क्रियाशील रखती है । इसके भण्डार का अक्षय रहना किस प्रकार सम्भव होता है ? उसका उद्गम स्रोत और उपयोग प्रयोजन पूरा होने की व्यवस्था किस प्रकार बनती है । अपने आप यहाँ नहीं कुछ हो रहा है ऐसा कहा जा सकता है, पर इतने भर से कदाचित ही किसी के अन्तःकरण का समाधान होता हो । इतना सुनकर जिज्ञासा की तृप्ति हो सकेगी ऐसा लगता नहीं है ।

विज्ञान ने मात्र इतना कहा है कि उसके वर्तमान साधनों से ईश्वर के अस्तित्व का परिचय नहीं मिल पाया । यह कभी नहीं कहा कि जो उसका वर्तमान ज्ञान है वही अन्तिम है और आगे जानने या खोज करने के लिए और कुछ नहीं है । विज्ञान की दृष्टि खुली है वह स्वभावतः दुराग्रही नहीं है । भविष्य में आगे की खोजों के लिए उसमें पूरी-पूरी आशा और आस्था रखी गई है । विज्ञान का बचपन जैसे-जैसे किशोरावस्था में विकसित होता जा रहा है वैसे-वैसे उसे अपनी प्राथमिक जानकारियों की तुलना में इतना अधिक विवरण मिला है जिसकी तुलना करने पर लगता है कि आरम्भिक प्रतिपादन अधूरे ही नहीं भ्रमपूर्ण भी थे । समयानुसार उनका परिशोधन होता चला गया है । इसमें न प्राचीन खोजों को लांछित होना पड़ा है और न आधुनिक उपलब्धियों को अपनी पूर्णता का अहंकार है । जिस प्रकार आरम्भिक शोधें आज झुठला दी गईं, ठीक इसी प्रकार यह भी गुंजाइश है कि भविष्य में आज के प्रतिपादनों में भी भारी हेर-फेर करने पड़ें । विज्ञान की दृष्टि विशुद्ध अन्वेषक की है । सत्य की शोध उसका लक्ष्य है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसमें साम्प्रदायिक दुराग्रह या परम्परा मोह नहीं है । विज्ञान के क्षेत्रों से मात्र इतना ही कहा गया है वर्तमान साधनों से ईश्वर पकड़ में नहीं आता । ऐसे-ऐसे असंख्यों प्रसंग हैं जो अभी पकड़ में नहीं आये, पर उनके अस्तित्व की पूरी-पूरी सम्भावना है । इस अपने विश्व का प्रतिद्वन्द्वी एक प्रतिविश्व सम्भावना के क्षेत्र में स्वीकार कर लिया गया है, पर उसका स्वरूप निर्धारण शेष है जिसकी खोज चल रही है । खोज के ऐसे असंख्य विषय हैं जिनके भविष्य के ढूँढ़ लिये जाने की पूरी आशा की जाती है । इन्हीं प्रसंगों में एक ईश्वर का अस्तित्व भी है ।

आल गुडनेस-आल नालिज एण्ड आल ब्यूटी के रूप में सत्यं शिवं सुन्दरम् के रूप में जिस समग्र चेतना-शक्ति का मानवी अन्तरात्मा के साथ स्पर्श होता है-उसे ब्रह्म कहा जाता है । इसका आस्थाओं के रूप में अनुभव करना हो तो ईमानदारी, सज्जनता, कर्त्तव्य-निष्ठा और उदारता के रूप में उसकी सम्वेदनाओं को कभी भी कोई भी अपने भीतर ढूँढ़ सकता है । यह तत्व जिसमें जितने हों समझना चाहिए कि उसके भीतर उतना ही हलका या भारी ईश्वर काम कर रहा है । सदाशयता अपनाने और उसे व्यापक बनाने के रूप में-मलीनता और दुष्टता को हटाने के रूप में-जितना उत्साह, जितना आवेश उभर रहा हो उसी अनुपात में अपने में ईश्वर-तत्व के अवतरण की झाँकी देखी जा सकती है ।

एथीस्ट-नास्तिक अब उतना कट्टर नहीं रहा जितना पिछली शताब्दियों में था-वह क्रमशः एग्नोस्टिक-प्रत्यक्षवादी बनता जा रहा है । दुराग्रह यदि शोध निष्कर्ष को स्वीकार करने के लिए सहमत है तो समझना चाहिए कि सत्य तक पहुँचने की अभी पूरी आशा है । यदि ईश्वर है-जैसा कि वह है ही-तो हमें धैर्य रखना चाहिए और प्रतीक्षा करनी चाहिए कि बचकाने विज्ञान से न सही प्रौढ़ विज्ञान से वह अवश्य ही सिद्ध हो जाएगा । पदार्थ की हलचलों के पीछे कोई शक्ति प्रवाह काम करने की बात अब प्रत्यक्ष हो गई । पदार्थों का अस्तित्व शक्ति तरंगों के रूप में जाना गया है । अब इस सम्भावना को प्रत्यक्ष भर करना शेष है कि विश्व के अन्तराल में काम करने वाला शक्ति प्रवाह ज्ञान युक्त ही नहीं-न्याय और औचित्य के तथ्यों से भी ओत-प्रोत है ।

ईश्वरीय-सत्ता पर अविश्वास न करें

ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार करने वाले नास्तिकों का मत है कि ईश्वर नामक अज्ञात-सत्ता में विश्वास रखने से क्या लाभ है ? यह मात्र एक अन्धविश्वास है । जब विज्ञान के उपादान ईश्वरीय-सत्ता को प्रमाणित न कर पाये तो हम इसे क्यों मानें ? इस प्रकार की बातें नास्तिकों की चर्चा से जुड़ी कही जाती हैं । किन्तु यह एक चिन्तनीय बात है । क्या हम अपने जीवन में उन्हीं बातों को मानते-स्थान देते हैं जिनका अस्तित्व विज्ञान द्वारा प्रमाणित हो ? इस प्रश्न का एकमेव जवाब है-नहीं । जीवन से ऐसे कितने ही तथ्य एवं मूल्य जुड़े हैं, जिनके स्वरूप के सम्बन्ध में पुष्टि-हेतु विज्ञान मौन है । उदाहरण के लिये नीतिशास्त्र को ही लें । विज्ञान की दृष्टि से यह निरर्थक ही है । वस्तुतः जिसे हम विज्ञान मानते हैं-वह मात्र पदार्थ विज्ञान है । इससे ईश्वरीय-चेतना के सूक्ष्म रहस्यों की, जीवन मूल्यों की गवेषणा की भी कैसे जा सकती है ?

अनेकों बातें ऐसी हैं, जो नास्तिकों की दृष्टि में अर्थहीन हैं । उदाहरणार्थ इनका मत है कि "अंगनालिंगनाज्जन्यसुखमेव पुमर्थता" अर्थात् "स्त्री का आलिंगन ही परम पुरुषार्थ है।" पदार्थ वैज्ञानिकों की दृष्टि में भी नर और मादा का यौन सम्बन्ध सहज और स्वाभाविक है । यही नहीं, वही मनुष्य का एकमेव लक्ष्य होना चाहिए , यह उनकी भोगवादी नीति कहती है । पशु-पक्षी भी ऐसा करते हैं । उसमें माता-पिता, भाई-बहिन या पुत्री के साथ यौनाचार की कल्पना भी हेय है । यदि वैज्ञानिक कसौटी मानकर सदाचार की मर्यादा का उल्लंघन किया जाएगा तो समाज में विकृति ही आयेगी । विवेकीजन इसे न मानना ही उचित समझते हैं ।

विज्ञान के मतानुसार जीव-जीव का भोजन है। प्रत्येक प्राणी के लिये स्वार्थपरता-उदरपूर्ति और प्रजननप्रधान जीवन जीना ही एकमात्र लक्ष्य होता है। स्वार्थपरता प्रधान चार्वाक सदृश लोगों के मतों "यावज्जीवेत्सुखं जीवदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्" प्रधान वचनों का विरोध विज्ञान के आधार पर कैसे किया जाय ? यदि दया, सेवा, स्नेह, करुणा, सहिष्णुता, त्याग, सहयोग-सहकार जैसे सद्गुणों को मानव-जीवन से निकाल दिया जाय तो सामाजिक-सुख, शान्ति स्वप्न मात्र रह जाएगी ।

डार्विन जैसे विकासवादी भय को प्रत्येक प्राणी का स्वाभाविक धर्म मानते हैं तथा जानस्टुअर्ट मिल तथा उनके सहयोगी यूटीलिटेरियन भौतिक सुखों की ही जीवन में प्रधानता मानते हैं । इसकी प्राप्ति हेतु सभी प्रकार के कर्मों को उचित ठहराते हैं । यदि इन दोनों की बात को मान लिया जाय। भय को सर्वथा त्याग सुखों की किंचित मात्र भी इच्छा न रखकर जो वीर मातृभूमि के लिए बलिदान हो जाते हैं अथवा देश, समाज लोकहित के लिए अपना समस्त जीवन कठोर तितिक्षापूर्वक बिता देते हैं ऐसे लोग इनकी दृष्टि में मूर्ख ही कहे जाएँगे । वे जानबूझकर कठोरता क्यों अपनाते हैं, इसका कोई उत्तर इनके पास नहीं है । इस प्रकार यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि विज्ञान अभी ईश्वरीय सिद्धि-असिद्धि के विषय में नितान्त बौना है ।

नास्तिकवाद के मतावलम्बियों का मानना है कि प्रत्यक्ष-प्रमाण के आधार पर जिसकी सत्ता सिद्ध हो उसे ही माना जाय । परन्तु यह तर्क भी उचित नहीं । प्रत्यक्ष

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रमाण को आधार मानकर हर चीज को सिद्ध कर सकना असम्भव है । उसके द्वारा तो यह भी सिद्ध किया जा सकना असम्भव है कि हमारा पिता कौन है ? पर माता जी की साक्षी को इसके लिए पर्याप्त प्रमाण मान लिया जाता है ।

ईश्वर स्थूल नेत्रों से नहीं दिखाई देता, अतएव उसे न माना जाय । नास्तिकों का यह तर्क भी निरर्थक और सारहीन है । अनेकों वस्तुएँ अपने जीवन में ऐसी हैं जो दिखलाई तो नहीं पड़ती पर अनुभवगम्य हैं । उदाहरणार्थ सरोवर में बादल से गिरे जल बिन्दुओं को कोई देख पाता है ? यद्यपि तारागण दिन में भी विद्यमान रहते हैं, पर सूर्य के प्रकाश के कारण क्या उन्हें दिन में देख पाना सम्भव है ? अत्यन्त सूक्ष्म वस्तुएँ भी हमें दिखाई नहीं देतीं । दूध में मक्खन की सत्ता होती है पर दिखलाई नहीं पड़ता । इसी तरह फूलों की मिठास और जल में घुला नमक दिखाई नहीं पड़ता, पर इनमें उपर्युक्त गुण नहीं हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता । न्यूटन ने पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति को कहाँ प्रत्यक्ष देखा था ? उनके साथ तो केवल सेब के गिरने की घटना ही प्रत्यक्ष हुई । आकर्षण-शक्ति तो अदृश्य ही रही । अतएव प्रत्यक्ष नहीं है, इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उसका सर्वथा अभाव है ।

प्रत्यक्ष-प्रमाण आज के अर्द्धकिसित-विज्ञान से नहीं मिल पाते, केवल इसी कारण यह मान लिया जाय कि ईश्वर का अभाव है, यह युक्तिसंगत नहीं है। मानव जीवन की अनेकानेक समस्याओं की उलझी गुत्थियाँ अध्यात्म-विज्ञान में सुलझती हैं, जिसे पदार्थवादी अपनी अंधी दौड़ में भूलते जा रहे हैं। ईश्वर का अस्तित्व भी अध्यात्म-विज्ञान से सिद्ध होता है । तपश्चर्या में रत मनीषी ऋषिगण अपनी दिव्यदृष्टि से उस परमतत्व की अनुभूति भी करते हैं।

इस नानाविधि सुरम्य-सृष्टि को बनाने वाला परमपिता परमेश्वर है । कर्त्ता के बिना कोई क्रिया नहीं हो सकती । पेण्ट, ब्रुश, बोर्ड आदि सभी सामान यदि इकट्ठे कर दिए जाएँ तो भी बिना चित्रकार के कोई चित्र बन सके यह असम्भव है । समग्र सृष्टि का संचालन करने वाला कोटि-कोटि जीवों में चेतना का संचार करने वाला, सर्वशक्तिमान नियन्ता एक ही कारीगर है । प्रकृति का अणु-अणु उससे ओत-प्रोत है। विश्व की सुन्दरता, सुरम्यता उसी की अभिव्यक्ति है । जिस प्रकार सागर और उसकी एक बूँद में तत्व दृष्टि में कोई भेद नहीं वह उसी का अंश है । उसी तरह आत्मा और परमात्मा में भी कोई विभेद नहीं । परमात्मा का शाश्वत चिरन्तन अंश ही परमात्मा है । परन्तु जिस तरह बादलों के कारण सूर्य स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं होता है, उसी तरह अज्ञान से भावित होने के कारण हम आत्मतत्व से विमुख रहते हैं और यथार्थता से विमुख होकर इधर-उधर भटकते रहते हैं ।

इस विश्व में हम देखते हैं कि कोई प्राणी सुखी जीवन व्यतीत करता है, परन्तु कोई पीड़ा कष्ट से दुःखी रहता है । जबकि सुख की प्राप्ति सभी की इच्छा है फिर यह विवशता क्यों ? कोई गधा, बैल, चूहा बनता है कोई सुसम्पन्न परिवार में जन्म लेता है । इसका तात्पर्य यह है कि कोई ऐसी नियामक सत्ता है जो हमारे कर्म के अनुरूप व्यवस्था देती है । समाज की आँखों, पुलिस की दृष्टि में धूल झोंकना सम्भव है पर घट-घट वासी परमेश्वर की दृष्टि में धूल झोंकना सम्भव नहीं । यही कारण है कि आस्तिकता को मानने वाले, सच्चे अर्थों में परमेश्वरपरायण व्यक्ति प्यार, स्नेह, उदारता जैसे सद्गुणों को धारण करते और अनीति, अत्याचार, दुष्टता से सर्वथा दूर रहते हैं, क्योंकि उन्हें ज्ञात है कि जो "पश्यत्यचक्षुः सशृणोत्यकर्णः" बना आँखों के देखता और बिना कानों के सुनता ऐसी सर्वव्याप्त नियामक सत्ता हमारी अनुशासनकर्त्ता है। जबकि काम सिजविक जैसे नास्तिक स्वतंत्र आचारवादियों ने इसको कोई महत्वपूर्ण नहीं जाना है ।

दूरदर्शी तत्ववेता ऋषियों ने मानव-जीवन में आस्तिकता को जो महत्वपूर्ण स्थान दिया है वह उन्हीं की सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है । उन्होंने अपने परिष्कृत सूक्ष्म बुद्धि से यह जान लिया था कि स्वभावतः बहिर्मुखी मनुष्य अपनी बुद्धि और प्रकृति का दुरुपयोग कर पथ-भ्रष्ट हो सकता है तथा शांति-सुव्यवस्था में बाधक सिद्ध हो सकता है । उसे कुमार्ग पर जाने से बचाने तथा उसके जीवन के समग्र विकास के लिए उन्होंने आस्तिकता को जीवन के सर्वांगपूर्ण विकास की आधारशिला बनाया । परमेश्वर सर्वत्र व्याप्त है । वह सबका नियामक नियन्ता और समदर्शी है । इन तथ्यों को हृदयंगम कर एक आस्तिक व्यक्ति अनीति से दूर रह स्वयं में सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्धन करता है । आस्तिकवाद ही समाज की प्रगति का मूलभूत आधार है। इसे सुनिश्चित माना जाना चाहिए । आज की सारी समस्याएँ जो मानवी दुर्बुद्धिजन्य हैं एवं दैवी प्रकोप की परिणति मानी जाती हैं। देखते-देखते मिट सकती हैं, यदि आस्तिकता के दर्शन से जन-जन को अनुप्राणित कर दिया जाय ।

ईश्वर विश्वास और उसके फलितार्थ

सृष्टिक्रम नियम-व्यवस्था के साथ चल रहा है । ग्रह-तारक अपनी-अपनी धुरी और कक्षा पर बिना एक क्षण का भी आगा-पीछा किए सतत् चलते रहते हैं । प्राणी और जीव अपने अनुरूप ही सन्तति उत्पन्न करते हैं । दिन-रात ऋतु परिवर्तन के क्रम में एक सुव्यवस्था बनी हुई है । इसी प्रकार कर्मफल भी एक दैवी व्यवस्था है । दूध को दही बनने में, बीज को पल्लवित होने में कुछ समय तो लग जाता है किन्तु कृत्यों के अनुरूप भले-बुरे प्रतिफल निश्चित रूप से उपलब्ध होते रहते हैं । यदि ऐसा न होता तो यहाँ जंगल का कानून चलता । "जिसकी लाठी तिसकी भैंस" वाली नीति का बोलबाला रहता । पर ऐसा है नहीं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रयत्न करने वाले पहलवान, विद्वान्, धनवान, कलाकार आदि बनते हैं । नशा पीने वाले उन्मत्त बनते और विष खाने वाले प्राण गँवा बैठते हैं । यह कार्य-फल की सुनिश्चित व्यवस्था का प्रत्यक्ष-प्रमाण है ।

हमें सदाशयता का परिचय देना और कुकर्मों से बचना चाहिए । पर प्रमाद तो प्रमाद ही ठहरा अल्हड़पन की आदत भी मनुष्य को कम हैरानी में नहीं डालती । दूसरों को नशेबाजी के दुष्परिणाम भुगतते देखते भी मनुष्य उस खतरे पर ध्यान नहीं देता और देखा-देखी उसी कुटेव को अपनाने लगता है ।

आत्मिक-विकास इस स्तर का न होने से एक भारी कमी रह जाती है कि उचित-अनुचित का भेदभाव भी न बन पड़े किन्तु मनुष्य आमतौर से इसी प्रसंग में भारी भूल करता है । तत्काल फल मिलता रहा होता तो झूठ बोलने वाले के मुँह में छाले पड़ जाते । चोरी करने वाले के हाथ में लकवा मार जाता । व्यभिचारी नपुंसक हो जाते तो न धर्म-मर्यादा की आवश्यकता पड़ती और न ईश्वर को साक्षी बनाने की । यह छूट मनुष्य को इसलिए मिली है कि वह अपनी विवेक-बुद्धि से काम ले । अपनी गौरव-गरिमा को ध्यान में रखते हुए निर्णय ले तो वस्तुतः स्वेच्छाचार ही उद्धत अहंकार की प्रतिकृति है । अनगढ़ व्यक्ति मर्यादाओं और वर्जनाओं की उपेक्षा करके स्वच्छन्दतापूर्वक संकीर्ण स्वार्थपरता से प्रेरित होकर वह करता रहता है जो उसे नहीं ही करना चाहिए । यही कारण है कि प्रगति की समस्त सुविधाएँ और सम्भावनाएँ रहते हुए भी लोग उलझनों में उलझते और संकटों के दल-दल में फँसे दिखाई पड़ते हैं । अन्य जीव चैन की जिन्दगी जी लेते हैं । पर मनुष्य को तो हर घड़ी विपन्न, उद्विग्न स्थिति में रहना पड़ता है ।

यह स्वेच्छाचार कैसे रुके? व्यक्ति शालीनता से अनुबंधित कैसे रहे? समाज में परस्पर सहयोग और सद्भाव का प्रचलन कैसे रहे? इन प्रश्नों का एक ही उत्तर मिलता है कि किसी नियामक सत्ता का अस्तित्व वह सच्चे मन से अनुभव करे । उसे व्यापक और सर्वदर्शी माने तथा उसकी न्याय-निष्ठा पर निश्चित विश्वास करे। इस भावना के साथ ईश्वर को मान्यता देना ही सच्ची आस्तिकता है ।

ईश्वर को मानते और पूजते तो असंख्य हैं । पर उनकी मान्यता भ्रान्तियों से भरी होती है । फलतः उसका प्रतिफल जो सज्जनता और उदारता के रूप में प्रकट होना चाहिए वह नहीं होता । लोग ईश्वर को सभी मानवी दुर्बलताओं से घिरा हुआ एक ऐसा व्यक्ति मानते हैं, जिसे अपने पक्ष में थोड़े से प्रलोभन या वाक्छल द्वारा सहज ही बहकाया, फुसलाया जा सकता है । उससे मनमानी मुराद पूरी करा लेने का षड्यन्त्र रचते हैं । इसके लिए गिड़गिड़ाते हुए स्तोत्र पाठ भी करते हैं और यत्किंचित् पूजा-पत्री के नाम पर उपहार भी प्रस्तुत करते हैं । उद्देश्य चापलूसी और रिश्वत जैसा ही होता है । भगवान प्रत्यक्ष दीखते तो शायद कुछ अधिक करने की हिम्मत भी की जाती पर एक ओर पूजन, दूसरी ओर अविश्वास का मन बनाए रहने से इतने ही कुछ चिन्ह-पूजा की जाती है जिसके निरर्थक चले जाने पर कोई बड़ा जोखिम न उठाना पड़े । यही विडम्बना है जो तथाकथित ईश्वर भक्ति के नाम पर लकीर पीटने जैसी चिह्न पूजा होती है । उसका प्रतिफल भी उस परमसत्ता के न्याय से कुछ उलटा सीधा हो तो उसे अनायास ही मिला समझना चाहिए । क्योंकि ईश्वर के यहाँ अँधेरगर्दी नहीं है । उसकी न्याय तुला ही सबका यथोचित निर्णय करती है ।

ईश्वर को न किसी से प्रेम है, न ईर्ष्या । न वह किसी पर वरदान बिखेरता है, न किसी को शाप देता है । उसकी विधि-व्यवस्था का जो अनुशासन पालते हैं वे सुखी रहते हैं । उन पर ईश्वर का प्रेम समझा जा सकता है । किन्तु जो मर्यादाएँ तोड़ते हैं, कुमार्ग पर चलते हैं, वे अपने कृत्यों का दुष्परिणाम भुगतते हैं । इसे ईश्वर की अप्रसन्नता कह सकते हैं । ईश्वर एक नियम अनुशासन है । वह स्वयं अपने नियमों से बँधा है और अन्य सभी प्राणी तथा पदार्थ उसी अनुबंध का पालन करने के लिए बाधित हैं । उनमें से किसी के साथ न कड़ाई बरती जाती है और न नरमी दिखाई जाती है । मनुहार या उपहार देकर उसे पक्षपात के लिए सहमत भी नहीं किया जा सकता । इसलिए प्रत्येक आस्तिक का कर्त्तव्य है कि ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर अपने चिन्तन और चरित्र को सही, खरा बनाए रखे उसमें न स्वेच्छाचार स्वयं बरते और न उच्छृंखलता किसी और को बरतने दे ।

नियन्ता की क्षमताएँ असंख्य हैं, वे विभिन्न प्रयोजनों के लिए विभिन्न प्रकार से सक्रिय होती रहती हैं । इसमें मानवी अन्तराल को प्रभावित करने वाली धारा सज्जनता और सदाशयता की है । उसे सत्प्रवृत्तियों का समुच्चय भी कह सकते हैं । सूर्य की धूप निकलते ही कमल के फूल खिलने लगते हैं । इसी प्रकार पारब्रह्म का सान्निध्य होते ही मनुष्य के गुण-कर्म स्वभाव उत्कृष्टता की महक से महकने लगते हैं । भक्ति कोई भावुक आवेश नहीं है जिसमें ईश्वर के दर्शन जैसा कोई आग्रह रोपा जा सके । जो सर्वव्यापी है जो कण-कण में समाया हुआ है वह स्वभावतः अपने पास भी है । बाहर के वातावरण में भरा हुआ है और अन्तरंग में, अन्तःकरण में भी उसकी महत्ता ओतप्रोत है । अज्ञान के कारण ही वह दूर प्रतीत होता है । विवेक उभरने पर वह अति समीप दृष्टिगोचर होने लगता है ।

विराट् ब्रह्म भी ईश्वर का दृश्यमान स्वरूप है । शक्ति रूप सर्वव्यापी सत्ता का वास्तविक स्वरूप तो निराकार ही हो सकता है । ध्यान धारणा का आध्यात्मिक साधनापरक उद्देश्य पूरा करने के लिए कोई प्रतिमा बनानी पड़ती है । मनुष्य की कल्पना मनुष्य देहधारी भगवान ही रच सकता है । इसलिए अपनी मान्यता एवं श्रद्धा के अनुरूप अवतारों के रूप में देवताओं की छवि जैसी आकृतियों को मान्यता के अनुरूप ही सृजा गया है । इसीलिए "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" के अनुरूप एक को ही बहुत रूपों में दृष्टिगोचर होने वाला कहा गया है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ईश्वर का विराट् दृश्यमान स्वरूप यह विराट् विश्व ही है । अर्जुन, यशोदा, कौशिल्या, काकभुसुण्डि को इसी रूप में भगवत दर्शन हुए थे । चर्मचक्षुओं से यह रूप कोई भी कभी भी देख सकता है । विराट् विश्व की पूजा, उसकी स्वच्छता प्रगति एवं सुसज्जा के रूप में ही की जा सकती है । अबकी अपेक्षा अगला समय अधिक समृद्ध, समुन्नत, प्रगतिशील व सुसंस्कृत हो इसके लिए प्राणपण से प्रयत्न करना यह विराट् की उपासना है । ऐसे भावनाशील संसार को उद्यान मानकर स्वयं कर्त्तव्यपरायण माली की तरह उसके उत्कर्ष अभ्युदय में अपना समय, श्रम, मनोयोग एवं साधन लगाते रहे हैं । यह कर्मयोग भी है । गीता में इसी का प्रधानतः प्रतिपादन है ।

आस्तिकता की भावना मनुष्य की उच्छृंखलता पर अंकुश लगाती है । ऊँट को नकेल, बैल को नाथ, घोड़े को लगाम, हाथी को अंकुश के सहारे वश में किया जाता है । सरकस के जानवरों को उनका शिक्षक चाबुक से डराकर इच्छित कृत्य सिखाता और कराता है । ईश्वर विश्वास भी यही करता है ।

ईश-विश्वास किसी का कभी निष्फल नहीं गया

चोट खाया हुआ साँप आक्रमणकारी पर ऐसी फुँकार मार कर दौड़ता है कि उसके होश छूट जाते हैं, बचाव के लिये भागना ही पड़ता है । सांसारिक व्यथाओं से विक्षुब्ध मनुष्य की भी ऐसी ही स्थिति होती है। जब मनुष्य को पीड़ाएँ चारों ओर से घेर लेती हैं और कोई सहारा नहीं सूझता तो वह निष्ठापूर्वक अपने परमेश्वर को पुकारता है। हार खाये हुए मनुष्य की कातर-पुकार से परमात्मा का आसन हिल जाता है और उन्हें सारी व्यवस्था छोड़कर भक्त की सेवा के लिये भागना पड़ता है । मनुष्य ने बुलाया हो और उसकी शुभेच्छा न आई हो, मनुष्य ने सहायता माँगी हो और परमात्मा ने मनोरथ पूर्ण न किया हो, मनुष्य की प्रार्थना पर परमात्मा दौड़ कर न चला आया हो, ऐसा कभी नहीं हुआ और न ही आगे कभी होगा । मनुष्य के विश्वास की शक्ति के आगे परमात्मा को सदैव ही झुकना पड़ा है ।

उसे बुलाइये, वह आपके अन्तःकरण में दिव्य-प्रकाश बनकर उतरेगा, मधुर-संगीत बनकर हृदय में गुंजन करेगा, आशीर्वाद बनकर आपके दुःख-दर्द दूर करेगा । पर उसे सच्चे हृदय से बुलाइये, निष्कपट और निश्चल होकर पुकारिये ।

ऐसा समय आता है जब मनुष्य संसार को भूलकर कुछ क्षण के लिये ऐसे दिव्य लोक में पहुँचता है, जहाँ उसे असीम सहानुभूति और शाश्वत शान्ति मिलती है। प्रार्थना की इस आतंरिक स्थिति और उसके आनन्द को कोई भुक्त-भोगी ही जान सकता है । परमात्मा के सन्निकट पहुँच कर आत्मा जब भक्ति-भावना से अपनी संवेदनाएँ प्रस्तुत करती है तो अनिर्वचनीय आनन्द मिलता है । अन्तःकरण की समस्त वासनाएँ विलीन हो जाती हैं, इन्द्रियों की चेष्टायें शांत हो जाती हैं । उस आनन्द की अभिव्यक्ति करते हुये महाकवि सूर ने लिखा है-

ज्यों गूंगहिं मीठे फल को रस उर अन्तर ही भावै ।
अमित स्वाद सबही जू निरन्तर अमित तोष उपजावै ।।
मन वाणी को अगम अगोचर सो जाने जो पावे ।

सूर की अनुभूति का आनन्द ध्रुव ने पाया था । उसके दुःखी हृदय ने संसार से संतृप्त अंतःकरण ने परमात्मा को करुण स्वरों में पुकारा था । भगवान उसके पास आये थे । कुमार ध्रुव ने पूर्णता की स्थिति प्राप्त की थी । परमात्मा का अनुग्रह न रहा होता तो ध्रुव अजर-अमर कैसे होता ?

हिरण्यकश्यपु की हठधर्मिता से दुःखी बालक प्रह्लाद ने उसे बार-बार पुकारा, उसका नारायण बार-बार उसकी मदद के लिये दौड़ा । विष पिया उसके भगवान ने समुद्र के गर्त में पाथेय बना प्रह्लाद का भगवान । इससे भी काम न चला तो नृसिंह बनकर प्रह्लाद का भगवान खम्भा चीर कर दौड़ा आया । जिसने मनुष्य को पैदा किया उसके हृदय में अपनी संतान के लिये मोह न हो ? ममता न हो यह कैसे हो सकता है ? मनुष्य बुलावे और वह न आये ऐसा कभी हुआ नहीं ।

द्रौपदी जान गई कि इस सभा में उसे बचाने वाला कोई नहीं है । दुःशासन चीर खींचता है । लाज न चली जाय इस भय से निर्बल नारी दीनानाथ को पुकारती है । भगवान श्रीकृष्ण आते हैं । उसका चीर बढ़ता है । दुःशासन थक गया पर चीर समाप्त नहीं हुआ । परमात्मा की अनन्त शक्ति को नापने की सामर्थ्य किस में है ? उसे तो उनका परम-भक्त ही जान और समझ सकता है ।

सामूहिक प्रार्थनाओं का बल सदैव परमात्मा को स्वर्ग से धरती पर उतार लाने में समर्थ रहा । देवासुर-संग्राम की कथाओं में ऐसे अनेक वर्णन हैं । महाभारत के युद्ध की घटना है । युद्ध-भूमि में किसी टिटहरी ने अंडे दे रखे थे । युद्ध जोर का चल रहा था । पक्षियों को और कोई सहारा दिखाई न दिया तो उन्होंने ईश्वर की शरण ली । परमात्मा ने उनके विश्वास की रक्षा की । एक हाथी का घंटा टूट अंडों को छुपाकर बैठ गया युद्ध समाप्त होने पर उसमें से पक्षियों के बच्चे सकुशल निकाल लिये गये ।

गजराज की पुकार पर उन्हें वाहन का भी परित्याग करना पड़ा था । नंगे पैरों वे दौड़े थे और गज को ग्राह के फन्दे से मुक्त किया था । जब भी जिस अवस्था में भी जिसने परमात्मा को सच्चे हृदय से पुकारा वह अपने आवश्यक कार्य छोड़कर दौड़ा । जीवात्मा के प्रति उसकी दया अगाध है, अनन्त है । वह भक्त का स्नेह बन्धन ठुकराने में असमर्थ है ।

बहुत से लोग हैं जो ईश्वर और उसके अस्तित्व को मानने से इनकार करते हैं, पर यदि भली-भाँति देखा जाय तो मूढ़ताग्रस्त व्यक्ति ही ऐसा कर सकते हैं । एक बहुत बड़ा आश्चर्य हमारे सामने बिखरा पड़ा है । उसे देखकर भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिसका विवेक जाग्रत न हो, कौतूहल पैदा न हो उसे और कहा भी क्या जाएगा ? पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा कर रही है, यह दृश्य आप किसी अन्य ग्रह में बैठे देख रहे होते तो समझते मनुष्य का अभिमान कितना छोटा है । ब्रह्माण्डों की विशाल की तुलना में वह चींटी से भी हजार गुना छोटा लगेगा । अनन्त आकाश और उस पर निरन्तर होती रहती ग्रह-नक्षत्रों की हलचल, सूर्य-चन्द्र सागर पर्वत, नदियाँ, वृक्ष, वनस्पति मनुष्य के स्वयं के बदलते हुए क्षण क्या यह सब मनुष्य का विवेक जाग्रत करने के लिये काफी नहीं हैं ? परमात्मा का अस्तित्व मानने के लिये क्या इतने से संतोष नहीं होता ? विचारवान व्यक्ति कभी ऐसा न सोचेगा । इतनी बड़ी विश्वव्यापी गतिविधि का नियंत्रणकर्त्ता तो कोई होना ही चाहिए । पृथ्वी ठीक ३६५.२५ दिन में ही सूर्य की परिक्रमा लगाये, इतनी सूक्ष्म गति निकालने वाला कोई विधायक स्रष्टा तो होना ही चाहिए । कोई नियामक न होता तो सम्भवतः स्थूल प्रकृति का अस्तित्व भी न होता । सर्वत्र शून्य बिखरा पड़ा होता ।

संपूर्ण हिन्दू संस्कृति का आधार ईश्वर-निष्ठा ही है । कोई भी धार्मिक कृत्य परमात्मा के ध्यान के बिना प्रारम्भ नहीं करते । उसे स्मरण करते ही वह शक्ति मिल जाती है, जिससे मनुष्य कठिनाइयों को पार करता हुआ आगे बढ़ता चला जाय । मनुष्य जीवन में पग-पग पर ऐसी कठिनाइयाँ आती हैं कि उनमें ईश्वरीय सहयोग न मिले और परमात्मा का अनुदान न प्राप्त हो तो मनुष्य का जीवन विशृंखलित हो जाय । ईश्वर पर विश्वास कर लेने के बाद अन्तःकरण में इतनी दृढ़ता आ जाती है कि फिर बाहरी कठिनाइयाँ विक्षेप नहीं कर पातीं और सफलता का मार्ग खुलता चला जाता है ।

ऐसे उदाहरण इस युग में भी चरितार्थ होते रहते हैं। संत ज्ञानेश्वर, जगद्गुरु शंकराचार्य, संत तुकाराम, सूर और तुलसी का जीवन बीते कुछ अधिक दिन नहीं हुए। भारतीय स्वतंत्रता की उपलब्धि अभी कुछ दिन पूर्व ही हुई है। उसका प्रणेता महात्मा गाँधी अकेला था । शरीर भी कुल ८६ पौण्ड का । कोई सेना साथ में न थी । कोई शस्त्र भी न उठाया था उनने । 'राम-नाम' का बल था गाँधी के पास। पर उस नाम के स्मरण और चिन्तन में ऐसी प्रगाढ़ निष्ठा भरी थी कि गाँधी के नाम से लहर आती थी और उत्तर दक्षिण में एक विकट तूफान-सा उठा पड़ता था। वह शक्ति गाँधी जी की नहीं थी, जनता की भी नहीं थी। सम्पूर्ण क्रांति का बीज वह 'राम-नाम' था जो हर वक्त गाँधी की जबान पर रहता था, उसके हृदय में गूँजता रहता था ।

आदिकाल से लेकर अब तक जितने भी संत-महापुरुष हुए हैं और जिन्होंने भी आत्म-कल्याण या लोक-कल्याण की दिशा में कदम उठाया है उन्होंने परमात्मा का आश्रय मुख्य रूप से लिया है । मनुष्य के पास शक्ति भी कितनी है । बहुत थोड़ा शरीर बल, उस पर विषयों के प्रलोभन, बहुत थोड़ा साधन बल, उस पर भी सांसारिक गतिरोध । अपनी ही सामर्थ्य पर वह न तो आत्म-कल्याण कर सकता है, न संसार की ही कुछ भलाई कर सकता है । पर जब भी उसने ईश्वर की जयकार की, उसे अपना सहयोगी चुना और सहायता के लिये पुकार की कि वह दौड़ा और उसकी शक्ति बनकर दिशा प्रदर्शित करने लगा । परमात्मा की कृपा पाकर मनुष्य अपना शंख बजाता हुआ चला जाता है, मोक्ष उसके पीछे-पीछे चलता है । ज्ञान की मशाल लेकर आगे बढ़ता है लोक-कल्याण पीछे-पीछे भागता हुआ चला आता है । इसमें श्रेय मनुष्य का नहीं परमात्मा का है । वही शक्ति बनकर पुरुष में अवतीर्ण होता है । जो भी उसे निष्ठापूर्वक बुलाता है उसकी मदद के लिये परमात्मा आता अवश्य है । आज तक ईश्वर विश्वास न किसी का निष्फल गया और न आगे इसकी सम्भावना है ।

ईश्वर विश्वास और आत्म-विकास की परम्परा

विज्ञान मनुष्य को किस तरह के आचरण की प्रेरणा देता है ? थोड़ी देर के लिये इस प्रश्न को मन से बिलकुल निकाल दें और यह देखें कि विज्ञान करता क्या है तो हमें पता चलेगा कि विज्ञान की दौड़ भी शाश्वत आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये है । अर्थात् वह स्वीकार करता है कि संसार में कुछ महत्वपूर्ण अंतिम सत्य भी है, जो अभी यंत्रों द्वारा जाना नहीं गया । संक्षेप में अपूर्णता से पूर्णता की प्राप्ति का प्रयत्न ही विज्ञान है ।

विज्ञान दुःखी लोगों को, बच्चों को खिलौने देकर प्रसन्न करने के समान प्रसन्न करता है । नक्षत्रों की गति विधि के बारे में भविष्य-वाणी करता है, परमाणुओं की रचना और पदार्थों में क्या है, उसका विश्लेषण करता है । वह इस प्रकार मनुष्य जीवन की रक्षा का प्रयत्न करता है । प्रकृति की अनन्त क्लिष्टता को तो बताने का प्रयास करता है, किन्तु उत्तेजना, क्रोध, प्रेम, लालसा उत्कण्ठा आदि भाव क्या है, क्यों हैं, कहाँ से उद्भव होते हैं, यह कुछ नहीं बताता और इसीलिये वह भगवान् के सम्बन्ध में सोचने को विवश करता है । विज्ञान इस प्रकार स्वयं ही ईश्वर का भाव (आयडिया) प्रदान करता है ।

अपने २३ जुलाई के कथन में ह्यूस्टन (अमेरिका) के अन्तरिक्ष उड्डयन के संचालक डा० बार्न ने चन्द्र यात्रा की सफलता पर अपनी अभिव्यक्ति प्रस्तुत करते हुए बताया- "इस महान् सफलता से हमें ऐसा लगता है कि मनुष्य जीवन के सम्बन्ध में हम अब तक कहीं मूर्खतापूर्ण दृष्टिकोण न लिये बैठे हों ।" इन शब्दों में अपने भौतिकवादी दृष्टिकोण से फिसलने और आध्यात्मिक सत्य को स्वीकार करने का स्पष्ट संकेत है । ब्रह्माण्ड की दूरियाँ जितनी कम होंगी, ईश्वरीयसत्ता के अस्तित्व का भाव उतना ही तीव्र होगा। इसलिये विज्ञान ईश्वर को प्रमाणित करता है, ऐसा मानने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वृद्धावस्था में जब मृत्यु समय समीप होती है तो भगवान् की याद बहुत तीव्र हो उठती है । नीत्से और फ्रायड जैसे महान् नास्तिकवादी और व्यक्तिवादी चिंतकों को भी अपने जीवन के अन्तिम चरण में अपने सिद्धान्तों को करवट देनी पड़ी थी । जिन परिस्थितियों में विज्ञान सीमित और असफल हो जाता है, वहीं इस ईश्वरीय चिन्तन देने के लिये विवश हो जाता है ।

पूर्ण स्वतन्त्रता, बुद्धि एवं सद्विवेक के रूप में भगवान् ने अपना तेज मनुष्य को प्रदान किया । इसी को कहते हैं कि भगवान् तुम्हारे अन्दर है । हमारे भीतर की जो विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियाँ हैं, वे दरअसल ईश्वर को मापने की इकाई हैं । जैसे पत्थर में भार है, यह तो हम जानते हैं पर कितना भार है, यह जानने के लिये भार की ही कोई, किलोग्राम, ग्राम, पौण्ड आदि इकाई काम में लाते हैं । थान के थान कपड़ों में विस्तृत लम्बाई होती है पर उसे नापा तभी जा सकता है, जब मीटर, सेन्टीमीटर के रूप में लम्बाई नापने की छोटी से छोटी इकाई हो । यह व्यक्ति इतिहास का कितना जानकार है, उसके लिये उस व्यक्ति से इतिहास के ही छोटे-छोटे प्रश्न पूछ कर उसके ज्ञान की तौल करते हैं । ईश्वर की इकाई मनुष्य है, मनुष्य सदैव योजनाबद्ध तरीके से कुछ विशेष प्रकार की इच्छाएँ और आदर्श, मान्यताएँ लेकर जी रहा है, इसलिये हम विश्वास करते हैं कि एक विस्तृतक्षेत्र में भी ऐसी प्रवृत्ति वाली मूक किन्तु सशक्त चेतना काम अवश्य करती है ।

भगवान् को साकार रूप (फिजिकल फार्म) में नहीं जाना जा सकता । उसे आध्यात्मिक प्रयत्नों द्वारा उसी प्रकार अनुभव किया जा सकता है, जिस तरह विद्युत, चुम्बकत्व, शब्द और ताप का कोई ठोस रूप नहीं है, किन्तु विशेष परिस्थितियों में उन्हें अनुभव किया जा सकता है ।

मुख्य संकट ईश्वर में अविश्वास नहीं प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में इस तथ्य से तो कोई इनकार कर ही नहीं सकता कि कोई अज्ञात सत्ता सृष्टि में काम कर रही है । मुख्य बाधा उसके गुणों सम्बन्धी है । हम प्रतिदिन लोगों को अन्याय करते देखते हैं पर उन्हें दण्ड नहीं मिलता, इसलिये ईश्वर की न्यायपरायणता और सर्वव्यापकता वाली बात गलत हो जाती । यदि भगवान् सर्वशक्तिमान् है तो वह प्रारम्भ से ही पूर्ण मनुष्य का निर्माण क्यों नहीं करता ? क्यों मनुष्य अनैतिकता के लिये आकृष्ट होता है । यह प्रश्न वास्तव में गम्भीर है और इसका तो तार्किक उत्तर हमारे पास नहीं है ।

पर यदि हम यह विश्वास कर लें कि ईश्वर सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक और सबके साथ न्याय करने वाला है तो हमें यह भी विश्वास करना पड़ेगा कि इतने बड़े विराट् ब्रह्माण्ड की व्यवस्था जिसमें प्रत्येक जीवित प्राणियों वाले ग्रह-नक्षत्रों के लिये सूर्य प्रकाश, चन्द्र प्रकाश, वृक्ष-वनस्पति, अन्न, जल आदि से लेकर उन्हें क्रियाशील रखने तक की सारी जिम्मेदारी को पूरा करने के लिये, वह समय से बँधा हुआ (बाउण्ड) नहीं हो सकता । हमारे लिये आयु के सौ वर्ष बहुत अधिक हैं पर जिसके लिये समय कोई अवरोध (डाइमेन्शन) है ही नहीं, उसके लिये सौ वर्ष एक क्षण की भाँति हैं, एक क्षण मनुष्य को आत्म-विकास के लिये दिया गया था और उसे भगवान् ने पूर्ण स्वतन्त्र इसलिये बनाया कि वह किसी भी सुविधाजनक माध्यम से अपने आत्म-विकास की प्रक्रिया को पूर्ण कर ले । यदि उस क्षण का उपयोग मनुष्य समझ-बूझकर नहीं करता, जैसा है उससे भी पदच्युत होने का हठ करता है तो दूसरे क्षण उसकी क्या स्थिति हो यह देखना भगवान् का काम है। 'गहना कर्मणो गतिः' में आत्म-प्रवंचना और आत्म-विकास की सिद्धि की इस रहस्यमत्ता को ही विस्मय से देखा है ।

मान लीजिये एक व्यक्ति का जीवन १०० लाख वर्ष है और उसके लिये १० लाख आदमियों और समस्याओं का प्रबन्ध करना है तो वह मनुष्य के उपरोक्त तर्कों को सन्तुष्ट कदापि नहीं कर सकेगा । लेखपाल, तहसीलदार को हर समय केवल अपने ही हलके के बारे में नहीं उलझाये रख सकता, क्रम-क्रम से वह सबको देखता है । कलक्टर, गर्वनर और राष्ट्रपति के कार्य-क्षेत्र जितने बड़े हैं, उन्हें अपने ढंग से काम करने के लिये उतने ही अधिकार प्रदान किये गये हैं और उन कर्त्तव्य और अधिकारों का प्रयोग वह अपने नियमों और संवैधानिक ढाँचों में करता है, वह प्रत्येक व्यक्ति की बात हर समय सुनने के लिये वैसा नहीं रहता ।

एक व्यक्ति यदि केवल गिनती ही करे तो २०० तक गिनने में उसे एक मिनट का समय लग जाएगा । १२००० तक गिनने के लिये उसे पूरा एक घण्टा और २८८००० तक गिनने के लिए उसे सम्पूर्ण दिन लगाना पड़ेगा, इस बीच पहले गिने अक्षरों की यदि पुनरावृत्ति न हो और वे पूर्ण स्वतन्त्र जान पड़ें तो यह नहीं मानना चाहिए कि गिनने वाला कमजोर है या उसे गिनती गिनना नहीं आती । उस गिनने वाले को मालूम है कि अभी तो १०५१२०००० तक गिनना है, उसके लिए एक वर्ष पड़ा है । सृष्टि का प्रथम व्यक्ति यदि उस दिन से गणना करना शुरू करे जिस दिन सृष्टि का आविर्भाव हुआ हो तो केवल एक अरब तक गिनने के लिए उसे ९५१२ वर्ष ३४ दिन ५ घण्टे २० मिनट का समय लगेगा । जबकि अकेली पृथ्वी पर केवल मनुष्यों की संख्या ५ अरब के लगभग है, तब फिर हर व्यक्ति के साथ ईश्वरीय हस्तक्षेप यदि २८५३६ वर्ष १०२ दिन और १६ घण्टे तो देने ही पड़ेंगे ।

सृष्टि के समय का कोई आदि-अन्त नहीं, उसी तरह कर्मफल के साथ भगवान् की अल्पकालिक व्यवस्था की भाँति नहीं जोड़ा जा सकता । उसकी कार्य-विधि अपनी तरह की है और उसे हम केवल आत्म-विकास के गहन अध्ययन और मनुष्य के लाखों वर्ष के अतीत का इतिहास पढ़कर ही निश्चित कर सकते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य अपनी अवस्था में रहकर ही अपना उद्देश्य पूरा कर सकता है । उसे चाहिए तो यह था कि वह ईश्वरीय योजनाओं में साथ देता । यह मानता कि आत्म-प्रगति का सारा भार अपने ऊपर ही है और इस तरह वह किसी व्यक्ति, भाग्य या भगवान् पर निर्भर न होकर अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिये आप ही प्रयत्नशील होता ।

प्रगति के लिए, विकास के लिए, साधनों के समान स्वतन्त्रता भी आवश्यक है, तभी तो मनुष्य किसी तरह का उद्यम, उद्योग सफल कर सकता है । आत्म-विकास के लिए स्वतन्त्रता की आवश्यकता थी सो मनुष्य को भगवान् ने कर्म के लिए स्वतन्त्र कर दिया । गीताकार ने कहा- **'कर्मण्येवाधिकारस्ते'** कर्म करने के लिये तू स्वतन्त्र है, किन्तु **'उद्धरेदात्मनादामानं'** अपने आपका उद्धार भी तू आप ही कर । भगवान् ने किसी बात के लिये नियन्त्रण नहीं लगाया। यदि वह ऐसा करता तो वह स्वयं भी पूर्वाग्रह का दोषी ठहराया जा सकता था ।

उसने अपना प्रकाश भी दिया है ताकि मनुष्य सही अर्थों में अपने व्यक्तित्व और महानता, अनुसन्धान और आदर आप करें । अपनी बुद्धि के द्वारा वह आप निर्णय करे कि उसे किन कामों से सुख और सन्तोष मिलता है, किससे नहीं । उसने बुद्धि को ज्यादा से ज्यादा चौड़ा करके अपनी तरह विराट की सम्भावनाओं पर विचार करके अपना कर्त्तव्य निर्धारित करने की क्षमता भी दी है । ईश्वर प्रदत्त मुक्तइच्छा (फ्री बिल) का उपयोग हमें आप ही करना पड़ेगा और ईश्वरीय अनुभूति की ओर अग्रसर होना पड़ेगा, इसके लिए परमात्मा दोषी नहीं, प्रतिबन्धित भी नहीं । हाँ वह साक्षी अवश्य है और जब भी कोई मनुष्य घृणित या अपकर्म करता है तो वह भीतर ही भीतर यह अवश्य कहता है कि "इससे तुम्हारी आत्मा का हनन हो रहा है, यह कर्म न करो ।" अब यह मनुष्य की इच्छा है कि वह उससे रुके या न रुके ।

ईश्वर विश्वास हमें अच्छाई को, गुणों को, एक या अनेक भगवान् के रूप में प्रदर्शित करता है । बुराई को वह उसी प्रकार बुरी आत्माओं के रूप में दर्शाता है । अच्छाई भविष्य में प्रसन्न जीवन की द्योतक है, इसलिये हम उसे आत्म-विकास के लिये अनिवार्य कर देते हैं, बुराई का भविष्य भी उसी प्रकार सदैव बुराई और अप्रसन्नता में दिखाई देता है, इसलिये बुराई को आत्म-विकास के मार्ग का अवरोध मानकर निरन्तर शुद्ध और स्वच्छ जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं ।

जितने भी ईश्वरवादी महापुरुष हुए हैं उनके जीवन में अच्छाइयाँ ही अच्छाइयाँ हम पाते हैं, इसलिये हमें यह कहने का अधिकार हो जाता है कि अच्छे से अच्छे वर्ताव व्यवहार वाला व्यक्ति ईश्वर को ही आप पा लेता है, किसी अन्य सहारे और साधन की उसे आवश्यकता भी नहीं होती ।

अच्छाई के विकास में हमें चिन्ता, दुःख और भय भी सामने आयें तो भी उसके सुखप्रद परिणाम की आशा से हमें उस प्रक्रिया को बन्द नहीं कर देना चाहिए । सरल, शुद्ध और सहन करने योग्य दुःखों ने सदैव आत्मा को बलवान् ही बनाया है, उसे ईश्वरीय दिव्य-शक्तियों की अनुभूति ही कराई है । यदि यह दुःख प्रेम, दया, कृतज्ञता और विश्वास का अन्त करते हों, तब हमें एक वीरयोद्धा की भाँति उनका सामना भी करना चाहिए, इससे हम शुद्ध, सरल और अनुभूतिप्रद सुख प्राप्ति की दिशा में ही अग्रसर होंगे । आत्म-विकास का यही लक्ष्य भी है । ऐसा ही अभ्यास अपने जीवन में करना चाहिए ।

ईश्वर विश्वास क्यों अनिवार्य है?

ईश्वर सर्वव्यापी हो अथवा एक स्थान पर वास करने वाला । यह विश्व-ब्रह्माण्ड उसकी कृति हो या किसी अन्य की । वह सर्वसमर्थ हो, चाहे निर्बल । ससीम हो या असीम । प्रश्न यह उठता है कि आस्तिकता की मानवी जीवन में क्या उपयोगिता है ? वह मनुष्य के लिये क्यों आवश्यक है ? क्या इसके बिना मनुष्य सुखी नहीं रह सकता ? यदि ऐसी बात है, तो संसार में ढेरों ऐसे व्यक्ति मिल जाएँगे, जिनका ईश्वर पर विश्वास नहीं है, जो अनीश्वरवाद का समर्थन करते हैं, तो क्या उन्हें जीवन भर दुःख ही दुःख भोगना पड़ता है ।

आये दिन विश्व के मूर्धन्य कहे जाने वाले मनीषियों द्वारा इस प्रकार के प्रश्न उठाये जाते रहे हैं और आस्तिकता की महत्ता पर प्रश्न-चिन्ह लगाया जाता रहा है । देखा जाय तो इसमें इनका भी कोई दोष नहीं । जो प्रत्यक्ष घटित होता है, उससे इनकार कैसे किया जाय ? शरीर के मरने के बाद भी उसके अस्तित्व की कैसे आशा की जाय ? हाँ, इतना अवश्य है कि प्रत्यक्षवाद को ही सब कुछ नहीं माना जाना चाहिए । गलती यहीं होती है । जो लोग अपने भौतिक-जीवन को सब कुछ मान बैठे हैं, उनके लिए इस प्रकार के प्रश्न करना स्वाभाविक ही है । सम्भवतः इसी कारण से चार्वाक जैसे लोगों के मन में "भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनम् कुतः" की बात आयी होगी, पर जो परोक्षवाद पर विश्वास करते और भौतिक जीवन से परे जीवन का अस्तित्व स्वीकारते हैं, जो वास्तविक भी है, उनके लिए इतने से ही काम नहीं चलता उन्हें कुछ और प्रश्नों पर विचार करना पड़ता है कि "मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ और मेरा लक्ष्य क्या है ?"

इन प्रश्नों पर विचार करने से निश्चय ही आस्तिकता की महत्ता, जीवन में समझ में आ जाती है, मगर कार्लाइल का विचार है कि मनुष्य के अस्तित्व में आने से लेकर अब तक वह इन्हीं प्रश्नों की ऊहापोह में पड़ा हुआ है, फिर भी वह इनका उत्तर न पा सका, तो फिर फिजूल के जाल-जंजाल में पड़कर अपना बहुमूल्य समय गँवाना और स्वल्प जीवन को बरवाद कर उसके आनन्द लाभ से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वंचित होना, किसी भी प्रकार बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती । उनका विचार है कि "मैं कौन हूँ ?" इस पर मनन करने के बजाय "मुझे क्या करना चाहिए ?" इस पर विचार करना चाहिए । कुछ क्षण के लिए कार्लाइल का यह सुझाव मान भी लिया जाय, तो क्या बिना आत्मबोध और स्वरूपबोध के कर्त्तव्यबोध कर पाना सम्भव है ? कदाचित् नहीं । जब गन्तव्य ही न मालूम हो, तो कोई कदम किस ओर बढ़ायेगा ?

स्वयं को सही-सही न जानने की स्थिति में मनुष्य-कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के बीच विभेद नहीं कर पाता और जिसकी रुचि जिस प्रकार की होती है, स्वतन्त्रतापूर्वक वह उसी प्रकार का कार्य करने लगता है। व्यभिचारी व्यभिचार करता और अपराधी अपराध वृत्ति में संलग्न होकर लोगों को सताता, प्रताड़ित करता है। फलतः समाज-व्यवस्था भंग होती है और सर्वत्र अराजकता का वातावरण उत्पन्न होता है, पर जब उसे अपने स्वरूप और स्रष्टा के नियम का पता चलता है तो वह ऐसे क्षुद्र प्रयोजनों में संलग्न रहने का साहस नहीं सँजो पाता ।

उदाहरणार्थ, किसी कार्यालय में कार्यरत लिपिक को मालूम होता है, कि उसके जिम्मे निर्धारित कार्य क्या है और वह उन्हें करने के लिए बाध्य है, चाहे इसमें उसका मन लगे या न लगे उसकी अपनी मर्जी यहाँ नहीं चल सकती । चूँकि उसे ज्ञात होता है कि यदि वह अपनी मर्जी की करने की धृष्टता करेगा तो वह किसी दण्ड का पात्र बनेगा, उसे किसी न किसी प्रकार की सजा अवश्य मिलेगी या तो आर्थिक दण्ड भुगतना पड़ेगा अथवा नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा, अतः वह उसी कार्य को नियमपूर्वक करता रहता है जो अधिकारी की ओर से उसे मिलता है । ईश्वरीय-सत्ता की ओर से मनुष्य के लिए भी इस संसार में ऐसी ही नियम व्यवस्था है । जब मनुष्य इस व्यवस्था को भंग करने की कोशिश करता है तो परमात्मा की दृष्टि से अपराधी साबित होता है, फलतः उसको दण्ड भी झेलना पड़ता है । इस दण्ड से वह तभी बच सकता है, जब स्वयं को समझे, अपना जन्म धारण करने का उद्देश्य जाने और उसके अनुरूप कार्य करे । ऐसा तभी सम्भव है, जब व्यक्ति आस्तिकता को जीवन में धारण और सृष्टि की नियामक सत्ता पर विश्वास कर सके । यह जान सके कि वह स्वयं भी अविनाशी आत्मा है, परमपिता परमात्मा का अंशधर है ।

मरणधर्मा शरीर तो कलेवर मात्र है, जो समय-समय पर बदलता रहता है । वस्त्र के जीर्ण-शीर्ण पड़ जाने पर उसे त्यागना और नया वस्त्र धारण करना पड़ता है । इस परिवर्तन की क्रिया से शरीर प्रभावित होता हो, ऐसा कहाँ देखने-सुनने में आता है । शरीर तो यथावत् बना रहता है । इसी प्रकार का सम्बन्ध शरीर और आत्मा के बीच है । शरीर के बदलते रहने पर भी मूल-सत्ता ज्यों की त्यों बनी रहती है जिन्हें यह तथ्य विदित है और जो कर्मफल सिद्धान्त पर विश्वास करते हैं, वे अपना कार्य भी मानवी गरिमा के अनुरूप निर्धारित करते हैं, स्वयं शालीनतापूर्वक सच्चे इन्सान की तरह जीते और दूसरों को भी इसी की प्रेरणा देते हैं । ऐसे ही लोगों की संख्या जब धरती पर बढ़ती है तो धरती स्वर्गोपम बनती और मनुष्य देवमानव होने का गौरव प्राप्त करता है, इससे जहाँ मानव अपने परम लक्ष्य को शीघ्रातिशीघ्र पा सकने में सफल होता है, वहीं दूसरी ओर संसार में हर प्रकार की सुख-शान्ति बनी रहती है । आस्तिकता का यही सबसे बड़ा लाभ है ।

जो अनीश्वरवाद के समर्थक हैं, वे किसी अदृश्य सत्ता पर क्यों कर विश्वास करेंगे और क्यों कर वे उससे डरेंगे ? स्पष्ट है, ऐसे लोगों के क्रियाकलाप स्वतंत्र होंगे । जिनकी जो इच्छा होगी, निरंकुश शासक की तरह करते रहेंगे । न वर्जनाओं का ध्यान रहेगा, न उच्छृंखलताओं का । न दण्ड व्यवस्था की चिन्ता होगी, न किसी के भय का ख्याल होगा। परिणाम सर्वग्राही विभीषिका के रूप में सामने आयेगा । इसके अतिरिक्त जो इसी जीवन को अपना आदि अन्त मानते हैं, वे निश्चय ही हर प्रकार की साधन सुविधा एकत्रित कर जीवन का भरपूर उपभोग करना चाहेंगे । चाहे इस प्रक्रिया में उन्हें अनीति-अत्याचार का ही सहारा क्यों न लेना पड़े ? पर वे ऐसा करेंगे अवश्य । यह अनीश्वरवादी व भोगवादी नीति का दोष है ।

चार्वाक और जे० एस० मिल दोनों इस प्रकार की भोगवादी मान्यता के समर्थक और अनीश्वरवाद के प्रशंसक रहे हैं । एक का भोगवाद व्यक्तिवाद पर आधारित है, तो दूसरे का समूहवाद पर । जे० एस० मिल के समाज में अधिकतम मनुष्यों को अधिक से अधिक सुख दिलाना ही एकमात्र उद्देश्य होता है, पर सुखी समाज की यह कल्पना भी सर्वांगपूर्ण नहीं है, क्योंकि इस सुख की नींव कुकृत्यों रूपी आधारशिला पर भी रखी जा सकती है । यदि सुख दूसरों को कष्ट देकर ही मिलता है तो कोई क्यों कर परोपकर में निरत होगा क्योंकि उसका परिणाम तो तुरन्त मिलता भी नहीं है ।

आस्तिकवाद ऐसे में आश्वासन देता है कि मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है । हर व्यक्ति को अपने किये उपकार का बदला निश्चित ही आत्मसंतोष एवं लोक-सम्मान, दैवी अनुग्रह के रूप में इस जन्म में तथा अगले जन्म में भिन्न रूपों में मिलकर ही रहता है । भगवत् सत्ता पुण्यकार्यों का पारितोषिक निश्चित ही प्रदान करती है जो लौकिक भी हो सकता है, आत्मिक प्रगति के रूप में परोक्ष भी । इस पर भोगवादी नास्तिक कह सकते हैं कि यह भी तो एक प्रकार का लाभ है, तो ईश्वर विश्वास से अर्जित तथा अनीश्वरवादी लाभ में क्या अन्तर रहा ? इस प्रकार का प्रश्न करने वाले वस्तुतः यह भूल जाते हैं कि भोगवादियों का लाभवाद भौतिकवाद पर आधारित है, जिसकी गति सिर्फ इसी संसार तक सीमित है, पर ईश्वरवादियों का लाभवाद अध्यात्मवाद और परलोकवाद दोनों पर आधारित है । ऐसे लोगों को भौतिक संसार में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्रेय, सम्मान, श्रद्धा का सुख तो प्राप्त होता ही है, वे स्वर्ग, मुक्ति, शान्ति का आनन्द भी परलोक में उठाते हैं । यही मनुष्य का चरम लक्ष्य भी है ।

इस प्रकार विचार किया जाय, तो नास्तिकता के कारण मनुष्य-जीवन अधूरा प्रतीत होता है । आस्था के अभाव में व्यक्ति न तो आनन्द की प्राप्ति कर सकता है, न चरम लक्ष्य की ओर बढ़ सकता है ।

एक बुद्धिमत्तापूर्ण सत्ता का नाम

जे० एस० मिल० लाँग एवं हक्सले आदि विद्वत्जनों ने सृष्टि में अनेकानेक प्रकार की त्रुटियाँ गिनाते हुए कहा है कि यदि कोई इसका स्रजेता है, तो निश्चय ही वह निर्दयी, अज्ञानी है । अनेकानेक अवगुणों से युक्त है । उनका कहना है कि यदि सृष्टिकर्त्ता कोई बुद्धिमान प्राणी होता तो निस्सन्देह उसकी रचना त्रुटिपूर्ण न होती, पर देखने-सुनने में ऐसा कहाँ प्रतीत होता है ? आये दिन उसकी कोई न कोई कमी-उजागर होती रहती है । ऐसा इन नास्तिकों का अभिमत है ।

जो ऐसा सोचते हैं, वस्तुतः वे भारी भूल करते हैं । ईश्वर की सृष्टि न तो अपूर्ण है, न त्रुटिपूर्ण । वास्तव में इस संसार में उनकी अपने प्रकार की व्यवस्था है । उसी के हिसाब से उसने हर प्रकार की रचनाएँ उत्पन्न की हैं । इसमें जो हमें दोष नजर आते हैं, सही अर्थों में न तो वे दोष हैं, न रचनाकार की अयोग्यता । यदि उसकी कोई कृति हमें दोषपूर्ण दीखती भी है, तो आवश्यक होने के नाते ही उत्पन्न की गई है और जो आवश्यक है, उसे त्रुटि कैसे कहा जा सकता है ? उदाहरण के लिए जर्मन दार्शनिक प्रो० हेल्महोल्ज की शिकायत है कि मनुष्य को जो दृष्टि मिली है, उसमें अन्यान्य प्रकार की कमियों के अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण कमी यह है कि उसकी दृष्टि सामर्थ्य अत्यन्त न्यून है । इस प्रसंग पर विचार करने से पूर्व उस बालक पर विचार करना उपयुक्त होगा, जो सामने के बगीचे का दृश्यावलोकन करने के लिए दूरबीन की माँग करता है । पिता उसे बाजार में बिकने वाली एक रुपये की दूरबीन लाकर दे देता है । इतने से ही प्रसन्न होकर वह खेलता व तरह-तरह के दृश्य निहार कर खुश होता रहता है । उसकी आवश्यकता पूर्ति इतने से ही हो जाती है । जब बाजार में बिकने वाले खिलौने से ही बालक का काम चल रहा है, जो पिता के लिए उसे महँगी दूरबीन देने का कोई औचित्य रह भी नहीं जाता । उसे देने से तो उल्टे पिता की विवेक-हीनता ही सिद्ध होगी, क्योंकि बालक न तो इसका सदुपयोग कर पायेगा, न इसके कीमती होने का अनुमान लगा पायेगा । अस्तु ऐसी स्थिति में वह इसका भी खिलौने की भाँति ही प्रयोग करेगा और तोड़-मरोड़ कर रख देगा । अतः विवेक यही कहता है कि बालक को जिस स्तर की दूरबीन की आवश्यक है, उसे उसी स्तर की दी जाय । इसी में पिता की बुद्धिमानी है । इस दृष्टि से मनुष्य को जो आँखें मिली हैं, उस आधार पर ईश्वर को न तो अज्ञानी ठहराया जा सकता है और न अविवेकी ही । अज्ञानी-अविवेकी तो वह तब कहलाता, जब मनुष्य को आवश्यकतानुसार दृष्टि न मिली होती, किन्तु हम देखते हैं कि जो भी दृष्टि सीमा हमें मिली हुई है, उसी से बिना किसी कठिनाई के भली-भाँति अपना क्रिया-व्यापार चलाते रहते हैं । ऐसा भी नहीं कि परमात्मा इससे अधिक दृश्य सामर्थ्य दे ही नहीं सकता । यदि ऐसी बात होती तो उत्तुंग आकाश में मँडराने वाले चील गिद्धों को दूरदृष्टि न मिली होती । जन्तुओं में भी कितने ही ऐसे जन्तु हैं, जिन्हें विशेष स्तर की अवलोकन-क्षमता प्राप्त है । बिल्ली, शेर जैसे जानवर रात और दिन दोनों ही स्थितियों में दृष्टि सम्बन्धी समान प्रकार की क्षमता प्रदर्शित करते हैं । उलूक वस्तुओं को रात में उसी विशिष्टता से देख-समझ सकता है, जितना कोई अन्य जन्तु दिन में । उकाब की आँखें इतनी तीक्ष्ण होती हैं, कि जितनी दूरी तक दूरबीन के सहारे भी नहीं देख सकते, उतनी दूर वह अपनी आँखों से स्पष्टतापूर्वक देख सकता है ।

इन सब पर विचार करने से ऐसा लगता है कि परमेश्वर ने सोच-समझ कर ही हमें यह दृष्टि सामर्थ्य दी है; क्योंकि उसमें अधिक भी देने की क्षमता है और कम भी । वह अधिक दृश्य सामर्थ्य भी दे सकता था और अल्प भी । दूरदृष्टि का मनुष्य जीवन में कोई महत्व है नहीं और अल्प दृष्टि से उसका काम नहीं चल सकता । इसी कारण उसने मध्यम दृष्टि का समावेश मनुष्य में किया, जिससे मनुष्य अपना सारा कार्य सुगमतापूर्वक सम्पादित करता रहता है । किसी प्रकार की कठिनाई इससे प्रस्तुत नहीं होती । इस प्रकार स्रष्टा पर लगाया गया यह आक्षेप कि मनुष्य को इस संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी होने के नाते दृष्टि भी श्रेष्ठ मिलनी चाहिए, निरस्त हो जाता है ।

इतना ही नहीं, अन्य अनेक क्षेत्रों में विचार करने से भी मनुष्य मानवेतर प्राणियों से पिछड़ा हुआ ही प्रतीत होता है । कितने ही जन्तुओं में गंध ग्रहण करने की अद्भुत सामर्थ्य होती है । कुत्तों के बारे में सर्वविदित है कि वह इसी आधार पर अपराधी को ढूँढ़ निकालता है । हिरन गंध के आधार पर ही अपने-अपने क्षेत्र की पहचान बनाये रहते हैं । पक्षियों में दिशा ज्ञान की विलक्षण क्षमता होती है । वह हवा में उड़ सकते हैं । मछलियाँ तथा अन्य जलीय जीव पानी के निवास कर सकते हैं । साँप अपनी त्वचा से सुनते हैं । इस पर कोई यह कहे कि चूँकि मनुष्य सृष्टि का मुकुटमणि है, अतः इन सभी विशिष्टताओं का समावेश उसमें होना चाहिए था, यह पक्षपात पूर्ण होगा । कोई सृष्टि का श्रेष्ठ प्राणी है, मात्र इसलिए उसमें सारी श्रेष्ठ क्षमताएँ होनी चाहिए, ऐसा नहीं कहा जा सकता जिसकी जिसमें आवश्यकता ही नहीं उसे प्रदान करने से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तो स्रजेता की नासमझी ही साबित होती । मनुष्य को यदि गंध सम्बन्धी विशिष्ट स्तर की सामर्थ्य मिल भी जाती तो उसका वह क्या करता ? कुत्तों-हिरणों में तो इसे इसलिए दिया गया, ताकि भोजन ढूँढ़ने में सुगमता हो और शत्रु से अपनी सुरक्षा का उपाय समय रहते ही ढूँढ़ पायें । मानव में इन दोनों समस्याओं के हल के रूप में हाथ-पैर जैसे वैकल्पिक अंग दिये गये हैं । इनसे यह भोजन जुटाने और आत्मरक्षा करने के दोनों काम समान दक्षता से कर सकता है । फिर इसी काम के लिए किसी अधिक उच्चस्तरीय व्यवस्था का कोई औचित्य रह नहीं जाता ।

इस तरह ईश्वरीय सत्ता की क्षमता-वितरण प्रक्रिया पर विचार करने पर जो एक बात सामने आती है, वह यह कि सृष्टि-रचना के समय उसने उपयोगिता पर निश्चय ही ध्यान दिया होगा और विवेकपूर्वक यह विचार किया होगा कि किस जन्तु में किस अंग की कितनी उपयोगिता होगी । बाद में इसी आधार पर विभिन्न इन्द्रियों में भिन्न स्तर की क्षमताओं का समावेश किया होगा । वस्तुतः यह परम सत्ता की न्याय बुद्धि का परिचायक है ।

कुछ लोग सृष्टि में चलने वाले जन्म-मृत्यु के चक्र को दोषपूर्ण बताते हैं और उसे रचयिता का अज्ञान प्रदर्शित करने वाली क्रिया की नृशंसता कहकर संबोधित करते हैं ।

ऐसा समझने वाले पहली भूल तो यह करते हैं कि वे सृष्टि को नित्य समझ बैठे हैं । वस्तुतः सृष्टि किसी समर्थ सत्ता की अनित्य रचना है । जो अनित्य है, उसके प्राणी नित्य कैसे हो सकते हैं ? जो बना है, उसका बिगड़ना सुनिश्चित है । जिसका निर्माण हुआ है उसका नाश भी जरूरी है । यदि संसार में यह व्यवस्था नहीं होती, तो कोई भी प्राणी अपने अनादि-अनन्त जीवन की एकरसता से जल्दी ही ऊब और असंतुष्ट हो जाता । ऐसी स्थिति में मनुष्य से कोई काम होना तो दूर, जीवन ढोना भी भारभूत बन जाता । फिर वहाँ भी ईश्वर की इस व्यवस्था पर आक्षेप लगने आरम्भ हो जाते कि आखिर उसने ऐसा संसार बनाया ही क्यों, जिसमें जीवन का आदि अन्त ही न हो । दूसरे असीम जीवन में किसी प्रकार का दुःख तकलीफ लगातार सह पाना उसके लिए कठिन हो जाता, यदि संसार-चक्र की व्यवस्था न होती । जन्म-मृत्यु की सृष्टि में तो वह अपने दुःखों से कुछ समय के लिए अवकाश पा लेता है और उस दौरान पुनः तरोताजा होकर इस स्थिति में आ जाता है कि दुबारा कठिन परिस्थिति का वह भलीभाँति साहसपूर्वक सामना कर सके । यदि दुनिया में जीवन-मरण का प्रवाह न होता और सिर्फ जन्म ही होता चला जाता, तो प्राणियों की संख्या इतनी अधिक हो जाती कि वह संसार ही उसके लिए अपर्याप्त साबित होता । फिर साथ-साथ इतनी विशाल संख्या का रह पाना मुश्किल हो जाता । इसके साथ ही तरह-तरह की समस्याएँ उत्पन्न होने लगतीं, जिसमें आवास और भोजन सम्बन्धी मुख्य होतीं । ऐसी सृष्टि में तब डार्विन का 'स्ट्रगल फॉर एग्जिस्टेन्स' और 'सरवाइवल ऑफ दि फिटेस्ट' का सिद्धान्त और मत्स्य न्याय का जंगली कानून सर्वत्र दृष्टिगोचर होता ।

इन्हीं सब व्यावहारिक कठिनाइयों को ध्यान में रख कर ईश्वर ने ऐसी सृष्टि बनायी है, जिसमें जीवन-चक्र की उपयोगिता के आधार पर जीवधारियों में भिन्न-भिन्न प्रकार की क्षमताओं की व्यवस्था की है । इससे स्रजेता की बुद्धिमत्ता का ही परिचय मिलता है । इस प्रकार यह कहना कि इस संसार का रचनाकार अल्पज्ञ और मन्दमति है, सर्वथा अनुचित होगा ।

ईश्वर की सत्ता और महत्ता

ईश्वर क्या है ? उसकी सत्ता, इच्छा और क्रिया का उद्गम क्या है ? इस सन्दर्भ में विभिन्न धर्म और दर्शन अपने-अपने ढंग से व्याख्या, विवेचन करते रहते हैं । इनमें बहुत कुछ साम्य होते हुए भी काफी अन्तर और मतभेद विद्यमान हैं । इन मतभेदों का सही रूप से निरूपण न होने देने में हठवादिता ही प्रधान कारण रही है । यदि पूर्ण मान्यताओं को ही सब कुछ न मान लिया गया होता और विश्व-व्यवस्था के अन्यान्य पक्षों की तरह इन सन्दर्भ में भी अधिक चिन्तन का द्वार खुला रखा गया हो तो उस सत्ता की महत्ता से सभी लाभान्वित होते । जबकि आज ईश्वर का उपभोग अपने सही-गलत पक्षों का समर्थन करने और सहयोग देने भर के लिए किया जाता है । इस विपन्नता के रहते, ईश्वर के सम्बन्ध में भ्रान्तियाँ भी बनी रहेंगी और उसकी सत्ता और पवित्रता को विशिष्ट स्वार्थों के पक्ष में किया जाता रहेगा । ऐसी दशा में विज्ञजनों के मन में यह असमंजस बना ही रहेगा कि आस्तिकता के क्षेत्र में ऐसी अराजकता के रहते उसकी उपयोगिता स्वीकार की जाय या न की जाय ?

ईश्वर विश्वास का अर्थ है उत्कृष्टता के प्रति असीम श्रद्धा रखने वाला साहस । दूसरे शब्दों में इसे आत्मबल भी कह सकते हैं । सच्चे ईश्वर विश्वासी को आत्मबल सम्पन्न होना ही चाहिए । ऐसे व्यक्ति में ऐसा आत्मबल होगा वह न तो अनीति के सामने झुकता है और न प्रलोभन से ग्रसित होकर कुछ ऐसा काम करता है, जिससे आदर्शवादिता पर मानवी गरिमा पर आँच आती है । ईश्वर विश्वास की गहराई इसी नीति-निष्ठा की कसौटी पर सदा कसी जाती और खरी सिद्ध होती रही है ।

दुनिया के इतिहास में ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं, जिनमें अकेला व्यक्ति किसी समय बालक जैसा छोटा व्यक्ति भी किसी की मदद के बिना जबरदस्त शक्तियों का निडरता और दृढ़ता से मुकाबला करने के लिये खड़ा होता है । इन शक्तियों के सामने थोड़ा झुक जाने से जीवन बच सकता हो तथा लाभ भी हो सकता हो, तो भी वह झुकने की अपेक्षा टूटना या नष्ट हो जाना अधिक पसन्द करता है । ऐसे व्यक्ति के हृदय में ऐसी किस वस्तु का अनुभव होता है जो इसे इतना बल देती है ? प्रह्लाद ऐसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

किस वस्तु का अपने हृदय में अनुभव करता था, जिसके बल पर वह अपने पिता की कठोर यातनाओं की अवहेलना कर सका या सुधन्या तेल में भूने जाने की, गुरुगोविन्द सिंह के छोटे-छोटे पुत्र दीवाल में जीवित चिने जाने की और रोम का तरुण जलती हुई मशाल में अपना हाथ रख देने की यातना किस बल पर सन्तोषपूर्वक सहन कर सके थे ?

प्राणों और जीवन के सुखों के विषय में ऐसी लापरवाही बताने का बल देने वाली तथा शारीरिक जीवन की अपेक्षा किसी अशरीरी वस्तु के साथ अधिक आत्मीयता का अनुभव कराने वाली आखिर कौन-सी वस्तु है ?

हर तरह बरतने के लिये किसी जबरदस्त 'भावना' का अनुभव होना चाहिए, ऐसा अनीश्वरवादी को भी स्वीकार किये बिना चारा नहीं । यह भावना सामान्य इन्द्रियों के विषयों की या संकल्प-विकल्पों की नहीं है ।

परन्तु यह एक ऐसा अनुभव है, जिसके कारण उस मनुष्य का यह विश्वास होता है कि उसमें कोई ऐसी शक्तिशाली प्रेरणा काम कर रही है, जो दुनिया की दूसरी सब शक्तियों से अधिक बलवान है, जो उसके शरीर और प्राणों की अपेक्षा उसके अधिक समीप है ।

इस शक्ति को कोई ईश्वर निष्ठा का बल कहता है, कोई अध्यात्म बल (स्प्रिचुअल फोर्स) कोई आत्मबल (सोल फोर्स) तो कोई नैतिक बल (मोरल फोर्स) एवं कोई प्रतीतबल (स्ट्रेन्थ ऑफ कन्विन्शन) कहता है ।

इस बल की परीक्षा क्या है ? हमारी भयवृत्ति पर प्रभुत्व रखने वाला वह अनुभव, जिसका बल हमें अपने नेक मार्ग और कार्य में दृढ़ रहने के लिये मजबूर करता हो। स्वयं आकाश भी टूट पड़े और मनुष्य के सब मनोरथ या सांसारिक ध्येय चूर-चूर हो जायें तो भी उसे अपने निश्चय पर अडिगता से चिपके रहने की शक्ति देने वाला जो मूल स्रोत है, वही अध्यात्म बल है ।

ऐसा बल पैदा करने वाला विश्वास धर्म, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, बल, तप, नियम, शास्त्र, चिन्तन, विज्ञान वगैरहा चाहे जिन निमित्तों से उत्पन्न हो, वही सत्याग्रही का दर्शन या आत्मा है । वह बल उसे बाहर के साधनों या समाज में से नहीं मिलता । वह अपने भीतर ही इसका अनुभव करता है ।

मार्क्स, एंजिल्स आदि यूरोपीय लेखकों ने इस विचार का प्रचार किया है कि ईश्वर और धर्ममत (रिलीजन, चर्च) सब सत्ताधारियों द्वारा अपनी सत्ता को मजबूत करने के लिये निर्मित कपोल कल्पित माया है । हमारे देश के अनेक व्यक्तियों ने भी उस विचार को जैसे-तैसे अपना लिया है और भिन्न-भिन्न प्रकार से वे उसे हमारे साहित्य में फैला रहे हैं ।

परन्तु वे प्रकाशित अर्थात् (रोवील्ड) एवं अनुभूत-(रीक्लाइण्ड) धर्ममतों में अन्तर स्थापित करने में असफल रहे हैं । यहूदी, ईसाई, मुस्लिम आदि किसी विशेष व्यक्ति द्वारा स्थापित अर्थात् पौरुषेय-रीवील्ड धर्म हैं, हिन्दू, जैन, बौद्ध आदि किसी विशेष व्यक्ति द्वारा स्थापित न किये हुए अर्थात् अपौरुषेय धर्म रीयलाइण्ड हैं ।

इन दोनों में बड़ा अन्तर है । वह अन्तर यह है कि प्रकाशित धर्ममतों में ईश्वर को आकाश के पार और निराकार होते हुए भी बुद्धि तथा भावनायुक्त एक तत्व विशेष माना गया है । उसने जिसे जैसा चाहा वैसा बनाया है। उसमें उस प्राणी की इच्छा-अनिच्छा का कोई सम्बन्ध नहीं है । बाद में मनुष्य को यह धर्म समझाया गया है कि यह ईश्वर सर्वत्र न्यायी और दयावान है । इसलिये उसने जो कुछ किया होगा, वह ठीक ही किया होगा । उनके द्वारा-पैगम्बरों द्वारा बाँधी गई सामाजिक रूढ़ियाँ, प्रणालियाँ और नियम मिलकर एक-एक धर्ममत (रिलीजन) हो गये हैं ।

वास्तव में हमारे देश के किसी भी धर्ममत या उसके किसी भी पन्थ में ईश्वर स्वरूप, समाज धर्म तथा विधिधर्म की तात्विक नींव उपरोक्त नींव से बिल्कुल भिन्न प्रकार की है । अद्वैत-सेश्वर-जैन, द्वैत-निरीश्वर-बौद्ध, विशिष्टा-वैदिक । चाहे जिस मत का मनुष्य हो हिन्दू धर्म विचार में ईश्वर को सृष्टि का कुम्हार जैसा कर्त्ता नहीं समझा गया है ।

हिन्दू धर्म में ईश्वर के साथ एक दूसरी शक्ति को भी महत्ता दी गयी है । इसे हम 'कर्म' के नाम से पहचानते हैं। न तो ईश्वर एक स्वेच्छाचारी सर्वाधिकारी है, न कर्म ही सम्पूर्णतया स्वाधीन है । इसी कारण ईश्वर को केवल कर्मफल प्रदाता कहते हैं अथवा साक्षीमात्र और अकर्त्ता भी कहते हैं ।

इसका अर्थ यह हुआ कि हिन्दुओं के विचार से हमारे सुख-दुःख की मुख्य जवाबदारी कर्म की मानी गई है, न कि ईश्वर की ।

वह कर्म चाहे आज का हो, कल का हो या बहुत पहले का हो, वैयक्तिक हो या पूर्वजों का या समग्र समाज का, इस जन्म का हो या पूर्वजन्म पर आरोपित किया गया हो, किसी न किसी प्रकार के कर्म के कारण ही हमारी वर्तमान स्थिति है और उसी के कारण उसमें परिवर्तन भी होगा ।

हम आमतौर पर केवल वैयक्तिक कर्मों के ऊपर ही सुख-दुःख का उत्तरदायित्व आरोपित करते हैं और उसमें भी बहुत ही जल्दी एकदम पूर्वजन्म के कर्मों का तर्क दौड़ाते हैं । यह गलत दृष्टिकोण है ।

सृष्टि के सब प्राणी और पदार्थ शरीर के अवयवों की तरह एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं तथा अनादि भूतकाल से उनका सम्बन्ध है। हिन्दू जनता की भावना में ईश्वर या तो केवल साक्षी रूप, अकर्त्ता और कर्म फल प्रदाता है अथवा उसका कर्तृत्व किसी को पीड़ा पहुँचाने पीड़ित रखने या पाप अथवा नरक में ढकेलने के लिए प्रवृत्त नहीं होता, परन्तु जो उसकी अनन्य शरण लेता है उसके कष्ट और पापों को हटाने और उसके ज्ञान, बल, बुद्धि अथवा उसकी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सात्विक सम्पत्ति बढ़ाने के लिए ही प्रवृत्त होता है । मनुष्य की शुभ वृत्तियों को जाग्रत और बशवर्ती करने वाले उसके गूढ़ तत्व का ही नाम ईश्वर है ।

परमात्मा का अस्तित्व और अनुग्रह

वैज्ञानिक विकास के प्रारम्भिक चरण ने ईश्वरीय सत्ता के अस्तित्व को स्वीकार न करने का हठ किया था । यह वैज्ञानिकों के अपरिपक्व मस्तिष्क का परिणाम है । प्रकृति स्वयं संचालित है न कोई उसका सृजन करने वाला है न ही चलाने वाला । इसके कर्त्ता के रूप में ईश्वर एक आरोपित नाम है जिसका कहीं न तो अस्तित्व है न इस विश्व-ब्रह्माण्ड से इसकी गतिविधि से कोई सम्बन्ध । विज्ञान की यह नास्तिक विचारधारा कुछ दिनों तक जोर पकड़े रही । वैज्ञानिकों ने अपनी अपूर्व खोज के आधार पर यह घोषणा की थी कि संसार के मूल तथा उसकी प्रत्येक क्रिया एवं प्रतिक्रिया में एक विशेष प्रकार की सामर्थ्य काम कर रही है जो सृष्टि संचालन में स्वयं समर्थ है, उनमें स्वयं ही चेतना उत्पन्न होती है । सक्रियता के लिए उन्हें किसी अन्य चेतन शक्ति पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है, जिसे आस्तिकवादी ईश्वर कहते हैं ।

इस नास्तिक भाव का वास्तविक कारण विज्ञान का अपूर्ण ज्ञान ही था । पर जैसे-जैसे वैज्ञानिक ज्ञान स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ता गया-चेतन शक्ति के अधिकाधिक प्रमाण मिलते गये । वह दिन दूर नहीं जब चेतन शक्ति की क्रियाशीलता प्रत्येक अणु में, होने की हमारी आध्यात्मिक मान्यता से विज्ञान भी सहमत होगा और यह स्वीकार करने में आपत्ति नहीं होगी कि अणुओं की गतिविधि उसकी स्वयं की शक्ति द्वारा नहीं अपितु किसी चेतन शक्ति द्वारा संचालित है । इस तथ्य को विश्व के मूर्धन्य वैज्ञानिक 'आइन्सटीन' ने भी स्वीकार किया था । यद्यपि पिछले दिनों विज्ञान ने आश्चर्यजनक प्रगति की है, पर अभी पूर्णता की सीमा में नहीं पहुँचा है । जिस दिन विज्ञान अपनी पूर्णता को प्राप्त होगा निश्चय ही यह तत्वज्ञान में बदल जाएगा और उसका विश्वसनीय उद्घोष यही होगा-यह सृष्टि उस 'चेतन' की संरचना है जिसे परम ब्रह्म परमात्मा कहते हैं ।

यह विश्व उसी चेतना से उत्पन्न हुआ है, उसी की सत्ता में स्थिति है और उसी में लयमान होता जा रहा है। जड़-चेतन की संपूर्ण सक्रियता का आधार वह परम प्रभु है; जो सृष्टि की प्रत्येक कलाकृति में ओत-प्रोत है। न तो कुछ परमात्मा से भिन्न है और न परमात्मा किसी से पृथक है। पूर्णता को पहुँचा हुआ वैज्ञानिक सबसे बड़ा आस्तिक होगा ऐसा विश्वास वैज्ञानिकों की बदलती हुई धारणाओं के आधार पर किया जा सकता है ।

पवन, अग्नि, जल और मृतिका चार व्यक्त एवं अस्तित्ववान पदार्थों से विश्व का निर्माण हुआ है । यह चारों पदार्थ अपने में जड़ एवं निर्जीव हैं । किन्तु उनमें एक जीवन, एक सक्रियता, सजीवता दिखाई देती है, उससे ईश्वरीय-चेतन-शक्ति की उपस्थिति का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है । हवा की गतिशीलता, जल की तरलता, अग्नि की तेजस्विता, मिट्टी की उर्वरता का गुण उस सर्वशक्तिमान परमात्मा से ही सम्भव है, अन्यथा किसी जड़ अथवा निर्जीव पदार्थ में सक्रियता की सम्भावना कहाँ? गुण अथवा चेतनशील प्राण के रूप में विद्यमान परमात्मा जब इन पदार्थों में से तिरोधान हो जाता है, तो ऐसी स्थिति में कोई भी पदार्थ अपनी सक्रियता का प्रमाण नहीं दे पाता ।

सृष्टि के किसी भी पदार्थ में अपनी कोई क्षमता अथवा अपना कोई गुण नहीं है । वह सब उस चेतनस्वरूप परमात्मा की ही चमत्कार है जो प्रत्येक अणु के गुण एवं सक्रियता के रूप में दृष्टिगोचर होता है । ऐसे सर्वव्यापक, सर्वसमर्थ चेतन-शक्ति के अस्तित्व से इन्कार करना अपनी अज्ञानता का परिचय देना है ।

लोहा, जड़ एवं निर्जीव पदार्थ है किन्तु यन्त्रों एवं चक्रों के रूप में सक्रिय दिखाई देता है । पत्थर की निर्जीवता चक्की की सक्रियता के रूप में देखी जाती है । काष्ठ जैसा जड़ पदार्थ वृक्ष के रूप में उठता हुआ और फल-फूल पत्तों से भरता दिखाई देता है । इन सबकी सक्रियता का कारण चेतनशक्ति ही है । उसका समावेश चाहे मनुष्य की सहायता से हुआ हो अथवा उक्त चेतना स्वयं ही उन पदार्थों में गतिशील हो उठी हो । चेतन सत्ता के अभाव एवं अव्यक्त की स्थिति में सम्पूर्ण जगत निर्जीव, निष्प्राण एवं निस्तब्ध स्थिरता मात्र है । इस प्रकार संसार की नियामक सत्ता के अस्तित्व से विमुख होकर मनमानी घोषणाएँ करना विवेकयुक्त नहीं है ।

खिलते हुए फूल, बहती नदियाँ, उदय-अस्त होते हुए सूर्य-चन्द्र, चमकते हुए तारे, गतिशील नक्षत्र, बदलती हुई ऋतुओं में उसी जगतरूप परमात्मा की ही विद्यमानता है, अन्यथा मूल रूप में जड़, इन सबमें ये विशेषताएँ स्वयं सम्भव कैसे हो सकतीं ?

मनुष्य का भौतिक विश्लेषण करने पर वह निर्जीव, मिट्टी का एक नश्वर पुतला दिखाई देता है, जिसके न कोई अपने गुण हैं न कोई चेतना । किन्तु यह मिट्टी की प्रतिमा क्या-क्या काम और कैसे-कैसे चमत्कार कर दिखाती है? अनुपयोगी को उपयोगी और जड़ों को चेतन बनाकर गति देने वाला मनुष्य यदि अपनी विशेषताओं को अपना निजी उपार्जन समझने का दम्भ करता है तो यह उस परमात्मा के प्रति कृतघ्नता ही है, जिसने अपनी चेतन शक्ति का उसमें समावेश कर उसे ऐसा कर सकने योग्य बनाया ।

उस चेतना के अंश की उपस्थिति के कारण ही मनुष्य शरीर का मूल्य एवं महत्व है । मानव शरीर में स्थित यही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चेतना जब प्राणशक्ति के रूप में सक्रिय होती है तो यह मृत्तिकामय और शरीर सक्षम एवं संक्रामक बनता है । जिस दिन यह परमतत्व, परमात्मा अपने को स्थिर एवं स्तब्ध कर लेता है समग्र अवयवों के अक्षत रहने पर भी शरीर निश्चेष्ट होकर निरर्थक हो जाता है ।

आदिकाल से ही तत्वदर्शी ऋषियों ने उस परमात्मा को पहचाना, पाने का प्रयत्न किया एवं सफल हुए । इस उपलब्धि को ही मानव जीवन की सार्थकता मानते हुए उन्होंने उपासना की विधि का प्रचलन किया । जन-मानस में अखण्ड आस्तिकता का प्रभाव बढ़ाने के लिए धर्म का स्वरूप निर्धारित किया एवं व्यापक प्रचार किया । जीवन को साधनामय बनाकर कितने परम प्रभु को पाकर तद्रूप हो चुके हैं और आगे भी उस पर चलकर होते रहेंगे ।

संसार भर में प्रचलित समस्त साधनात्मक विधियों का मूल मन्तव्य एक ही है-वह है जीवन की रीति-नीति ऐसी बनाना जो परमात्मा के अंश मनुष्य के अनुरूप हो। परिष्कृत जीवन ही परमात्मा का कृपापात्र बनता है एवं ईश्वरीय अनुग्रह की अजस्र धारा विभिन्न प्रकार की सफलताओं के रूप में बरसती रहती है । ईश्वर परम सन्तोष एवं आनन्द रूप में उपासक को अपना मंगलमय सान्निध्य का अनुग्रह करता है। परमात्मा के सच्चे भक्तों को संसार में किसी भी प्रकार की सुखशान्ति की कमी नहीं रहती ।

परमात्मा की कृपालुता एवं दयालुता असंदिग्ध है । किन्तु उसकी एक व्यवस्था, मर्यादा है । इसका उल्लंघन करने वालों के लिए उसका एक और भी स्वरूप है-वह है न्यायी तथा व्यवस्थापक होना । जहाँ उसकी प्रसन्नता, मर्यादा व्यवस्था के अनुरूप जीवन नीति-रीति अपनाने वालों पर अनिवर्चनीय उपहारों की झड़ी लगा देती है वहाँ उसकी अप्रसन्नता प्रतिकूल आचरण करनें वालों को कठोर दण्ड भी देती है । संसार में कदाचित् ही ऐसा कोई व्यक्ति होगा जो परमात्मा की न्याय परिधि में आकर दण्ड की, दुःख की कामना करे । नहीं तो प्रत्येक जीव उसकी प्रसन्नता एवं अनुग्रह पाने का ही आकांक्षी रहता है। उपासना, परमात्मा की प्रसन्नता प्राप्त करने का ही एक उपाय है । किन्तु यह प्रसन्नता केवल पूजा-पाठ, भजन, कीर्तन अथवा स्मरण जाप से ही नहीं प्राप्त की जा सकती है ।

परमात्मा का अनुग्रह और उसके फलस्वरूप शान्ति, प्रसन्नता की प्राप्ति एवं सफलता का शाश्वत उपहार पाने के लिए मनुष्य को उपासना के साथ जीवन साधना को अपनाना होगा । उसकी दयालुता के साथ ही रुद्ररूप को भी याद रखें तथा सत्पथ शुद्ध एवं सात्त्विक भावना से चलकर उसे अप्रसन्न होने का अवसर दें, मनुष्य का कल्याण इसी में है । यही परमात्मा के अंश मनुष्य के लिए योग्य एवं शोभनीय है ।

ईश्वर का अस्तित्व एवं अनुभूति

भगवान को निराकार चेतन-सत्ता कहा गया है, इसीलिए उसकी सर्वव्यापकता है, कण-कण में उसकी विद्यमानता बतायी गयी है । कोई सत्ता इतनी निकट हो और हमें उसका आभास तक न मिले, ऐसा हो नहीं सकता । किसी न किसी रूप में तो उसकी उपस्थिति का एहसास हमें मिलना ही चाहिए, परन्तु ऐसा प्रायः नहीं होता । तो क्या उसकी सत्ता से इनकार कर दिया जाय अथवा किसी स्थान विशेष में उसकी उपस्थिति मान ली जाय ? पर यह भी उचित नहीं होगा, क्योंकि प्राचीन ऋषियों ने भी सर्वव्यापकता के सिद्धान्त का ही समर्थन किया है ।

भिन्न-भिन्न दर्शनों ने अपने-अपने प्रकार से इसकी व्याख्या की है । किसी ने स्याद्वाद (संदेहवाद) का सिद्धान्त दिया, तो किसी ने शून्यवाद का, जबकि नीत्से जैसे दार्शनिकों ने तो "भगवान मर गया" यहाँ तक कह डाला । इतनी महान और महत्वपूर्ण सत्ता के सम्बन्ध में इतनी मतभिन्नता आखिर क्यों ? यदि वस्तुतः वह घट-घट वासी है, तो जनसामान्य को उसकी अनुभूति क्यों नहीं होती ?

इसका उत्तर मूर्धन्य मनीषी राल्फ वाल्डो ट्राइन अपनी पुस्तक 'इन टयून विद दि इनफाइनाइट' में देते हैं। पुस्तक के 'दि सुप्रीम फैक्ट ऑफ दि ह्यूमन लाइफ' अध्याय में एक कहानी का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि उनके एक मित्र का कमल फूलों से सुशोभित एक सुन्दर तालाब था । उसके आस-पास प्राकृतिक घाटी की सुन्दरता व्याप्त थी । तालाब में पानी पास के एक पहाड़ी झरने से आता था, गर्मियों के दिनों में इसकी सुषमा और भी अद्भुत हो जाती थी । खिले हुए रंग-बिरंगे कमल फूलों से तालाब भरा रहता था । तालाब के किनारों पर भी तरह-तरह के फूल सुशोभित होते रहते । ऐसे में भिन्न-भिन्न प्रकार के पशु-पक्षियों के झुण्डों की उपस्थिति वहाँ के वातावरण को और भी नैसर्गिक बना देती । यही कारण था कि वहाँ पर्यटकों की भीड़ सदा बनी रहती । बच्चे, बूढ़े, युवक हर प्रकार के लोग हमेशा वहाँ आते-जाते दिखाई पड़ते । तालाब में पानी आने-जाने के लिए एक सुन्दर मार्ग और उसमें एक द्वार बना हुआ था, जो सदा पूरी तरह खुला रहता था, जिसके कारण पानी बह-बहकर आस-पास के क्षेत्र को भी हरा-भरा बनाये रखता था ।

कुछ वर्षों के उपरान्त किसी आवश्यक कार्य से मित्र को एक साल के लिए कहीं बाहर जाना पड़ा । वह अपने स्थान पर देखभाल के लिए एक निरीक्षक नियुक्त कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गया । निरीक्षक बड़ा ही संकीर्ण और स्वार्थी प्रकृति का व्यक्ति था । जिस वस्तु और व्यक्ति से उसका कुछ स्वार्थ सिद्ध होता, लाभ मिलता, उससे ही वह अपना सम्बन्ध रखता, शेष की उपेक्षा कर देता । उसने आते ही तालाब में आने वाले पानी का मार्ग बन्द कर दिया और उसे निजी क्षेत्र घोषित कर लोगों का आना-जाना रोक दिया । पानी बन्द हो जाने से कुछ ही दिनों में वहाँ की सुन्दरता कुरूपता में बदल गई । पक्षियों का कलरव, पशुओं का निर्भय विचरण, मन को मोहने वाली फूलों की महकता और सुगन्धित वातावरण सब कुछ नष्ट हो गया ।

श्री वाल्डो कहते हैं कि इतना बड़ा परिवर्तन मात्र एक कारण स्रोत से तालाब का संबंध विच्छेद हो जाने के कारण हुआ । मनुष्य जीवन से इस घटना की संगति बिठाते हुए वे कहते हैं कि मनुष्य इस अनंत चेतना के सागर का एक अंग है । उसी से वह उत्पन्न हुआ है, पर यहाँ के अधिसंख्यक लोग उस संकीर्ण और स्वार्थी निरीक्षक की भाँति आचरण करते हैं और स्वतः ही उस परम चेतना से सम्पर्क का अपना द्वार बन्द कर लेते हैं, फलतः न सिर्फ उस शक्ति और सत्ता का अनुभव नहीं कर पाते, वरन् उसका मार्गदर्शन पाने और लाभ उठाने से भी वंचित रह जाते हैं ।

रिचार्ड मोरिस बक अपनी पुस्तक 'कॉस्मिक कॉन्शसनेस' में इसी बात को दूसरे ढंग से समझाते हैं । वे कहते हैं कि मनुष्य मूलतः शुद्ध पवित्र अन्तःकरणयुक्त होता है पर सर्वत्र प्रदूषित वातावरण होने और उसी में पलने बढ़ने के कारण धीरे-धीरे वह उससे प्रभावित होकर अपवित्र बन जाता है, जबकि उसे कीचड़ के कमल की भाँति अप्रभावित रहना चाहिए । वे कहते हैं कि कमल कीचड़ में खिलकर भी उसकी सड़ने और दुर्गन्ध से सर्वथा मुक्त होता है और अपनी मादकता बिखेरता रहता है । उसका यही आकर्षण उसके पास मधुमक्खियों को भी खींच बुलाता है और भृंगों एवं मनुष्यों को भी । यदि उसमें रंगों का सौन्दर्य न हो और सदा बदबू ही बिखेरता रहे, तो मनुष्य तो क्या पशु-पक्षी भी उसके निकट न भटकें । रिचार्ड मोरिस का कहना है कि मनुष्य की तरह भगवान भी आकर्षणों के पीछे भागते हैं, अन्तर एक ही है, मनुष्य आमतौर से बुरे आकर्षणों की ओर उन्मुख होता है और जो अच्छा एवं कल्याणकारी है, उससे परहेज करता है, किन्तु ईश्वर ऐसा नहीं करते, उनका पलायन सदा अच्छे आकर्षणों की ओर होता है । वे उन्हीं व्यक्तियों की ओर आकर्षित होते हैं, जो अपने सद्गुण और सद्व्यवहार से आस-पास के वातावरण को एवं सत्कार्यों द्वारा समाज के वातावरण को चन्दन की तरह सुवासित करते रहते हैं । प्रकारान्तर से यही वह मानदण्ड है, जिसके आधार पर परमसत्ता की न सिर्फ अनुभूति होती है, वरन् मार्गदर्शन भी मिलता है ।

आज जो विरोधाभास दिखाई पड़ता है या अनीश्वरवादियों के शब्दों में कहें, तो ऐसी किसी सत्ता की जो शून्यता या अनुपस्थिति प्रतिभासित होती है, उसका एक प्रमुख कारण मनुष्य की मलीनता है । दैनिक जीवन में हम देखते भी हैं कि बालक माता का कितना ही प्रिय क्यों न हो, वह तब तक उसे अपनी गोद में नहीं उठाती जब तक पूरी तरह आश्वस्त नहीं हो जाती कि वह साफ-सुथरा है, मलमूत्र में सना नहीं है, फिर सर्वथा शुद्ध-पवित्र ईश्वरीय सत्ता का सान्निध्य लाभ हम अपने अपरिष्कृत और अपवित्र स्वरूप से कैसे कर सकते हैं ? किन्तु ईश्वर की अनुभूति प्राप्त करने की दिशा में मनुष्य का आत्म-परिष्कार ही सब कुछ नहीं होता । इसे लक्ष्य की दिशा में आधा रास्ता तय करना ही कहा जा सकता है । यह तो व्यक्तिगत जीवन की एक श्रेष्ठ उपलब्धि मात्र है । मनुष्य सामाजिक प्राणी भी है, वह समाज में रहता है, इसलिए उसके कुछ सामाजिक दायित्व भी होते हैं, जिसे उसे अनिवार्य रूप में पूरा करना पड़ता है । इसे प्रयोजन का उत्तरार्द्ध कहा जा सकता है । इस प्रकार व्यक्तिगत जीवन में चिन्तन और व्यवहार में उदात्तता और सामाजिक जीवन में सेवा-सहकार की अनिवार्यता यह दोनों मिलकर ही सम्पूर्ण उद्देश्य की पूर्ति कर पाते हैं । चिन्तन यदि पवित्र हो और व्यवहार भी शालीन हो, किन्तु सामाजिक जीवन में निष्क्रियता बनी रहे, तो भी व्यक्ति आत्मोन्नति के क्षेत्र में ईश्वर साक्षात्कार के संदर्भ में वह लाभ नहीं उठा सकेगा, जो सेवा-सहकार का दूसरा और महत्वपूर्ण पथ साथ-साथ क्रियान्वित होने से हो सकता था । कोई मूर्तिकार मूर्ति बहुत सुन्दर, सजीव और आकर्षक बनाता हो, उसे देखते ही दर्शकों को किसी जीवन्त नारी का भ्रम हो जाता हो, पर इतने से ही प्रतिमा बोलने नहीं लग जाती । इतना सब कुछ होने के बावजूद भी उसमें एक कमी रह जाती है-प्राण की और यही कमी उसके लिए सबसे बड़ी कमी साबित होती है । यही बात उस साधक पर भी लागू होती है जो ईश्वर-दर्शन की आकांक्षा रखता है, इसके लिए आत्म-परिष्कार आवश्यक साधना भी करता है, पर लोक-आराधना के अभाव में वह अंकुरित बीज पौधा बनने से पूर्व ही सूख जाता है ।

राल्फ वाल्डो के शब्दों में यही सिंचन का वह द्वार है, जिसके खुला रहने से तालाब और उसके उद्गम स्रोत के बीच जो सम्बन्ध होता है, उस स्तर का सम्बन्ध बना रहता है, जिसका प्रतिफल सुखमय जीवन के रूप में सामने आता है । मनुष्य जीवन में जीवन-साधना और लोक-आराधना के रूप में यह दो द्वार हैं । इन्हें खुला रखने से ही ईश्वर उपासना अर्थात् निकटता एवं उसकी अनुभूति की बात बनती है, तथा परमसत्ता का बोध सदा, सर्वदा और सर्वत्र हो सकता है । ऐसा सम्भव हो सके, तो फिर चार्वाक या नीत्शे तक यह नहीं कह सकेगा कि "ईश्वर मर गया ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्महीनता की विडम्बना से बचें, स्वयं को महान बनायें

आत्म-हीनता का भाव मनुष्य की उन्नति में बहुत बाधक होता है । जो भी व्यक्ति दीन-हीन और प्रगतिहीन स्थिति में पड़े दिखलाई देते हैं, वे सब किसी न किसी प्रकार की आत्महीनता से ग्रसित होते हैं । कोई अपने को निर्बल समझ रहा होगा, कोई विद्या-बुद्धि से रहित, कोई साधन-हीनता का रोना रो रहा होगा तो कोई परिस्थितियों और भाग्य को कोस रहा होगा । इस प्रकार की सारी निराशा आत्महीनता का ही लक्षण होता है ।

आत्महीनों के विचार बड़े प्रतिगामी होते हैं । वे अपने अन्तःकरण में नाना प्रकार के भ्रम, न्यूनताएँ, निर्बलताएँ, कुकल्पनाएँ आशंकाएँ और भ्राँन्तियाँ पाले रहते हैं । उन्हें संसार का हर आदमी अपने से अधिक सक्षम और योग्य मालूम होता है । हर काम अपनी शक्ति से बाहर का विदित होता है । उनके विचार सदैव विपरीत दिशा में ही दौड़ते हैं उनके सोचने का ढंग इस प्रकार का होता है कि मानो परमात्मा ने उन्हें इस योग्य ही नहीं बनाया कि वे संसार में आगे बढ़कर संघर्ष कर सकें और अपने लिए सम्मान पूर्ण स्थान अर्जित कर सकें । उनको यदि उन्नति और प्रगति के लिये उत्साहित किया जाता है तब भी वे भयभीत हो उठते हैं । सोचते हैं यदि हमने अमुक साहस पूर्ण कोई काम हाथ में लिया तो हो सकता है कि कोई नई आपत्ति खड़ी हो जाये और हम किसी संकट में पड़ जायें । अमुक काम हमारे बलबूते का नहीं है, भला हम उसे किस प्रकार कर सकते हैं । आत्महीन व्यक्ति किसी साहस पूर्ण प्रगति पथ पर चलने से बुरी तरह डरता रहता है । ऐसा कायर और शंकालु व्यक्ति निश्चय ही कोई उन्नति नहीं कर सकता । उसे गई-बीती स्थिति में ही जीवन काटने को विवश होना पड़ता है ।

आशा, आकांक्षा, आत्म-विश्वास और आत्मबल, जिनको उन्नति और प्रगति का आधार माना गया है, आत्महीन-व्यक्ति में उनका सर्वथा अभाव रहता है । उन्नति की आशा और आकांक्षा करने का अधिकार तो उसी को हो सकता है जो अपने को किसी भी कार्य करने और कोई भी संकट उठा सकने के योग्य समझता है । जिसे यह विश्वास होता है कि वह जिस काम में हाथ डालेगा उसे पूरा करके रहेगा । उसमें आ पड़ने वाले किसी भी संकट को उठा लेने के योग्य साहस, धैर्य और क्षमता है । इस विश्वास के अतिरिक्त जो कार्य करने में रुचि रखता है, साहस और उत्साह रखता है, अपनी कमियाँ दूर करने और योग्यताएँ बढ़ाने के लिए प्रयत्नशीलता रहता है। उन्नति और प्रगति की ,आशा आकांक्षा करने का वही अधिकारी होता है । जिसने योग्यताओं, अनुभवों तथा शिक्षाओं से आत्म-विश्वास और सदाचरण द्वारा आत्मबल संचित नहीं किया है वह उन्नति और प्रगति की आशा-आकांक्षा करने का अधिकारी किस प्रकार हो सकता है ? आत्महीन व्यक्ति में इन सारे गुणों का अभाव होता है अस्तु उसका उन्नति और प्रगति की आशा-आकांक्षा से वंचित रहना स्वाभाविक ही है ।

आशा और आकांक्षा उन्नति का मूल आधार है । जिसमें यह आकांक्षा ही न होगी कि मुझे भी आगे बढ़ना चाहिए, उन्नति और प्रगति करनी चाहिए, उसे न तो उसकी प्रेरणा होगी और न वह उस दिशा में सक्रिय होगा । उन्नति और प्रगति भी संसार में कोई आवश्यक बात है- यह उसे याद ही न आयेगा । आकांक्षा ही मनुष्य की क्रियाशीलता को प्रेरित तथा उत्साहित करती है । यदि उन्नति और प्रगति की आकांक्षा तो हो किन्तु उसे प्राप्त कर सकने की आशा न हो तब भी मनुष्य की क्रियाशीलता गतिमान नहीं होने पाती । वह सोचता है जब वांछित स्थिति पा सकने की आशा नहीं है, कोई सम्भावना नहीं है तो उसके लिए प्रयत्न करना ही बेकार है । बात भी ठीक है कि जिसे यह आशा न हो कि परीक्षा में पास हो जाएगा-वह उसमें बैठेगा ही क्यों ? आशा का आधार पाकर ही मनुष्य सारे काम करता है । आशा से रहित अकेली आकांक्षा मनुष्य को उन्नति तथा प्रगति के लिए प्रेरित तथा सक्रिय नहीं बना सकती, आत्महीन व्यक्ति में न तो आकांक्षा का ही उदय होता है और न उसे सफलता की आशा होती है । निदान उन्नति और प्रगति के सहनीय शब्द उसके नाम के साथ जुड़ना सम्भव नहीं हो सकता ।

आत्महीनता कोई प्रकृति-प्रदत्त दोष नहीं होता । यह वास्तव में एक मानसिक रोग होता है जो मनुष्य की अनेक असावधानियों से पैदा हो जाता है । उनमें से एक असावधानी तो अयोग्यता होती है । यह अयोग्यता कार्य-कुशलता, कार्य-क्षमता, विद्या, बुद्धि , आचार-विचार, आहार-विहार अथवा व्यवहार-बर्ताव की क्यों न हो आत्म-हीनता का भाव पैदा कर देती है । जिस आदमी ने अभ्यास और लगनपूर्वक अपने कार्य में कुशलता, दक्षता और योग्यता प्राप्त करने की सावधानी नहीं बरती है उसे उस विषय में न तो आत्मविश्वास प्राप्त होगा और न वह दक्ष और कुशल व्यक्तियों के साथ समकक्षता अनुभव कर सकता है । उसका उस दिशा में आत्महीनता अनुभव करना स्वाभाविक ही है । वह कितने ही दम्भ अथवा अहंकार का सहारा क्यों न ले, आत्महीनता के भाव से बच नहीं सकता ।

जिसमें विद्या, बुद्धि की कमी है । किसी बात की सोच सकने, समझ सकने और ठीक से व्यक्त कर सकने की योग्यता नहीं है, वह जहाँ भी जाएगा उचित स्थान तथा आदर न पा सकेगा । लोग स्वभावतः उसे निम्न दृष्टि से देखेंगे जिसकी प्रतिक्रिया उस पर आत्महीनता के भाव के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रूप में ही होगी । जिसके विचार दूषित होंगे, आचरण निम्नकोटि का होगा वह दूसरों की दृष्टि में ही नहीं स्वयं अपनी दृष्टि में गिरा रहेगा । वह सभ्य और शालीन समाज में आता-जाता भी यही अनुभव करता रहेगा कि वह इसमें आने-जाने योग्य नहीं है । उसके अन्दर का चोर निश्चय ही उसे आत्महीन बना देगा ।

आहार-विहार का भी मनुष्य की आत्मा पर बड़ा प्रभाव पड़ेगा । यदि एक बार दूसरे लोग किसी के आहार-विहार पर दृष्टि न भी डालें तो भी उसकी अपनी दृष्टि से तो वह बच ही नहीं सकता । वह किस प्रकार रहता है, क्या खाता-पीता और पहनता है । इस विषय में उसका स्तर क्या है-आदि बातें भी मनुष्य में आत्म-गौरव आत्महीनता का भाव पैदा कर देती हैं । जिसका रहन-सहन निकृष्ट और अपने अनुरूप न होगा उसमें आत्महीनता का भाव रहता ही है । आलस्य के कारण जो गन्दगी से रहता है, अपने स्तर से ऊँचा-नीचा खाता, पहनता है तो उसे निम्न स्तर में लज्जा और ऊँचे स्तर पर दम्भ की आत्महीनता पैदा हो जाएगी । अयोग्य आहार-विहार और अयोग्य रहन-सहन की असावधानी आत्महीनता का बहुत बड़ा कारण है ।

मनुष्य के आत्म-गौरव और आत्म-हीनता के सम्बन्ध में व्यवहार-बर्ताव का बहुत हाथ रहता है । जो अशिष्ट, असभ्य और अशालीन व्यवहार का अभ्यस्त है । व्यवहार करने में यथायोग्य की सावधानी नहीं बर्तता तो निश्चय ही उसे अपमानित, लांछित तथा तिरस्कृत होना पड़ता है । तिरस्कृत अथवा अपमान का सगा सम्बन्ध है । जो समाज अथवा परिवार आदि में तिरस्कृत अथवा अनाहत होता रहता है, उसे आत्महीनता का शिकार बनने से कोई नहीं बचा सकता । निश्चय ही उसकी आत्मा मलीन हो जाएगी उसका आत्म तेज नष्ट हो जाएगा और वह आत्महीनता का रोगी बन जाएगा । व्यवहार बर्ताव की असावधानी आत्महीनता का बड़ा कारण है ।

आत्म-हीनता उत्पन्न होने का एक कारण होता है दूसरों से अपनी तुलना करना । बहुत से लोगों का स्वभाव होता है कि वे दूसरे लोगों के धन-वैभव, कारोबार, मान-सम्मान और पद-प्रतिष्ठा पर बहुत दृष्टि रखते हैं और अनजान में ही प्रभावित होकर उन्हें बड़ा आदमी मान लेते हैं । यहाँ तक तो गनीमत होती है । किन्तु जब इससे आगे बढ़कर उनकी स्थिति से अपनी तुलना करके ऊहापोह में पड़ जाते हैं तभी उनमें आत्महीनता के अंकुर उगने लगते हैं । उनके इस प्रकार सोचने का ढंग कि देखो अमुक आदमी के पास कितनी धन दौलत है, उसका कारोबार कितनी जोर से चल रहा है । समाज में उसे कितनी पद-प्रतिष्ठा मिली है । कैसे शान-शौकत से रह रहा है । संसार के सारे सुख उसके पास हैं । भगवान की कृपा है । बड़ा भाग्यवान आदमी है और एक मैं हूँ न धन न दौलत, न मान न सम्मान, न कार न रोजगार । थोड़ी सी आमदनी है । पेट भर रोटी खा लो और सन्तोष करो । अपने-अपने भाग्य की बात है । हमारे भाग्य में जब गरीबी लिखी है तो हो भी क्या सकता है ? उसमें स्वभावतः आत्महीनता की भावना पैदा कर देता है । किसी की उच्च स्थिति से अपनी साधरण स्थिति की स्पृहा के साथ तुलना करने का अर्थ है अपने लिए आत्महीनता की भूमिका बनाना ।

यदि किसी से तुलना न करके भी केवल अपने अभावों, कमियों और कष्टों का भी चिन्तन किया जाता रहे तब भी आत्महीनता का भाव उत्पन्न हो जाता है, मैं गरीब हूँ । मेरे घर का खर्च ही पूरा नहीं पड़ता है । मैं ज्यादा कमा ही नहीं पाता अपने पर कोई न कोई आपत्ति और उलझन आती ही रहती है-आदि-विचार मनुष्य को आत्महीन बना देते हैं । मनुष्य अपने प्रति जितने हीन और ओछे विचार रखेगा वह उतना ही आत्महीन बन जाएगा । विचारों का स्थिति पर बड़ा प्रभाव पड़ा है । यदि कोई मनुष्य यथार्थ रूप में गरीब न हो, अच्छा खासा खाता-पीता हो किन्तु लोभ, लालच अथवा भय-दुराव आदि के कारण अपने को निरन्तर गरीब समझता अथवा कहता रहे तो निश्चय ही एक दिन परिस्थितियाँ इस प्रकार से घूम जाएँगी कि वह गरीब हो जाएगा । यदि परिस्थितियाँ न भी घूमें तो भी पैसा होते हुए भी अपने को गरीब और दीन-हीन मानने व कहने वाला यों ही दीन ही होता है । जो अपनी स्थिति और वैभव का अनुभव न कर सके और दूसरों को उसको समझने से वंचित रखे, वह दीनहीन ही तो होता है । ऐसे निम्न और निकृष्ट वृत्ति वाले अवश्य ही आत्महीनता के रोगी बन जाते हैं ।

इस प्रकार की अनेक न्यूनताओं और असावधानियों के कारण लोगों में आत्महीनता का भाव आ जाता है । यदि उसे तत्परतापूर्वक जल्दी ही दूर न कर दिया जाये तो वह प्रौढ़ होकर एक मानसिक रोग में बदल जाता है । आत्महीनता का भाव नैसर्गिक न होकर मनुष्य का अपना पैदा किया हुआ होता है । यह भाव उन्नति और प्रगति में बहुत बाधक होता है । अस्तु इसे अपने पास न तो आने देना और न रखना चाहिए ।

आत्महीनता से बचकर रहना कोई कठिन बात नहीं है, थोड़ी-सी सावधानी बरतने से इससे आसानी से बचा जा सकता है । उसमें से एक तो यह है कि अपने कार्य और क्षेत्र में दक्षता तथा कुशलता प्राप्त कर ली जाये । सब के साथ यथायोग्य व्यवहार किया जाए । इसके अतिरिक्त दो विशेष बातें ये हैं कि न तो कभी किसी की उच्च स्थिति से अपनी सामान्य स्थिति की तुलना की जाये और न अपना न अपने कार्यों तथा भाग्य की अवमानना करने के साथ अपनी क्षमताओं में अविश्वास और अपनी स्थिति का अवमूल्यन ही किया जाये । अपने को महत्वहीन और अभागा समझने वाले लोग अवश्य ही आत्महीनता के शिकार बन जाते हैं । इन दुष्प्रवृत्तियों से सावधान रहकर जीवन में विश्वास और आदर भाव से अपना कर्त्तव्य किया और अपनी स्थिति में प्रसन्न रहकर चला जाए तो आत्महीनता का कोई प्रश्न ही न रह जाये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ईश्वर से जुड़ने का उपाय

जो मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को समझ लेता है, उसका सम्बन्ध परमात्म-तत्व से स्पष्ट और प्रकट हो जाता है, जिसकी अभिव्यक्ति उच्च-शक्तियों के रूप में होकर संसार को प्रभावित करने लगती है और लोग उस व्यक्ति को अवतार, पैगम्बर, ऋषि योगी आदि मान कर पूजने और मनन करने लगते हैं । वह दिव्य-पुरुष बन जाता है ।

परमात्म-तत्व वह अनन्त-जीवन, वह सर्व-व्यापी चैतन्य और वह सर्वोपरि सत्ता है, जो इस जगत् के पीछे अदृश्य रूप से काम करती, इसका नियमन और नियन्त्रण करती है और जिससे दृश्यमान् जीवन आता है और सदा सर्वदा आता रहेगा । इसी अनन्त, असीम और अनादि ज्ञान और शक्ति के भण्डार से सम्बन्ध स्थापित हो जाने से साधारण मनुष्य असाधारण बनकर अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञाता हो जाता है ।

अणु-अणु का मूलाधार वह परमात्म-तत्व ही है । सब कुछ उसी से बनता और उसी चेतना-शक्ति से गतिशील होता है । आकार-प्रकार में भिन्न दीखते हुए भी प्रत्येक पदार्थ एवं प्राणी एक उसी तत्व का अंश है । जिस प्रकार समुद्र से उठाया हुआ एक जल-बिन्दु भिन्न दीखता हुआ भी मूलतः उसी का संक्षिप्त स्वरूप होता है और समुद्र की सारी विशेषताएँ उसमें होती हैं, उसी प्रकार व्यक्तिगत जीवन और समष्टिगत जीवन सीमित और असीमित के मिथ्या के भेद के साथ तत्वतः एक ही है । जो जीवात्मा है वही परमात्मा और जो परमात्मा है वही जीवात्मा । इस सत्य को जान लेना ही आत्म-ज्ञान कहा गया है । जिन-जिन महापुरुषों ने आत्म-प्रकाश की प्राप्ति कर ली है, उन्होंने अपना अनुभव प्रकट करते हुए, इस सत्य की इस प्रकार पुष्टि की है कि हम अपना जीवन परमात्म-तत्व से एक दिव्य प्रवाह के रूप में पाते हैं अथवा हमारे जीवन का उस परमात्म-तत्व से ऐक्य है । हममें और परमात्मा में कोई भेद नहीं है । हम और हमारा ईश्वर एक सत्य के ही दो नाम और दो रूप हैं । यही ज्ञान अथवा अनुभव आत्मानुभूति आत्म-प्रतीति अथवा आत्म-ज्ञान के अर्थ में मानी गई है ।

प्रतीति के साथ शक्ति का अटूट सम्बन्ध है । जिसे अपने प्रति सर्वशक्तिमान् की प्रतीति होती है । वह सर्वशक्तिमान् और जिसको अपने प्रति निर्बलता की प्रतीति होती है वह निर्बल बन जाता है और उसी के अनुसार उसका जीवन व्यक्त अथवा प्रकट होता है । अपने प्रति इस प्रतीति की स्थापना करने का प्रयास ही आत्म-ज्ञान की ओर अग्रसर होना है । जिसका उपाय आत्म-चिन्तन के सिवाय क्या हो सकता है ? जब यह चिन्तन अभ्यास पाते-पाते अविचल, असंदिग्ध, अतर्क और अविकल्प हो जाता है, तभी मनुष्य में आत्म-ज्ञान का दिव्य-प्रकाश अपने-आप विकीर्ण हो जाता है, दिव्य शक्तियाँ स्वयं आकर उसका वरण करने लगती और वह साधारण-से असाधारण, सामान्य से दिव्य और व्यष्टि से समष्टि रूप होकर संसार के लिए आश्चर्य, योगी, अवतार अथवा सिद्ध रूप हो जाता है ।

आत्म-ज्ञान ही मनुष्य का सर्वोच्च लक्ष्य है । जिसने इस लक्ष्य की ओर ध्यान नहीं दिया, भौतिक विभूतियों के लोभ में इसकी उपेक्षा कर दी, उसने मानो मानव-जीवन का सारा मूल्य गँवा दिया । जो अवसर परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित करने और उसने बहने वाले दिव्य-प्रकश को ग्रहण करने की योग्यता उपार्जित करने के लिए मिला था, उसे अज्ञान के अन्धकर में अटकते-भटकते रहकर खो दिया । पर भूल मनुष्य जैसे विवेकशील प्राणी के लिये अनुचित और अवांछनीय है । इस अविवेक को त्याग कर हर भटके हुए व्यक्ति को शीघ्र-से-शीघ्र ज्ञान मार्ग पर आ ही जाना चाहिए ।

जीवन का प्रत्येक क्षण अमूल्य और अलभ्य है, एक बार बीत जाने पर दुबारा नहीं मिलता । इसलिए भूल सुधारने में जितनी शीघ्रता हो जाएगी, उतना ही हितकर होगा । मनुष्य की महत्ता इस एक जीवन में ही अपना सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त कर लेने की है । नहीं तो इतना तो कर ही लेना बुद्धिमानी है कि जो जीवन शेष है, अभी अपने अधिकार में है, उसको सत्यपथ पर नियोजित कर जितना जो कुछ बढ़ा जा सके बढ़ चला जाये । इस अपेक्षित अभियान का तारतम्य आगामी जीवन में बना रहेगा और तब वह उसी निर्धारित सत्य-मार्ग पर प्रारम्भ से ही चल पड़ेगा ।

प्रायः लोगों में यह भ्रान्त धारणा काम करती है कि शरीर छूट जाने के बाद उसके साथ जुड़ी हुई हर बात यहीं छूट जाती है । किन्तु सत्य इससे सर्वथा भिन्न है । शरीर छूट जाने पर जीवन का अन्त नहीं होता । जीवन तो एक अनन्त एवं अवच्छिन्न प्रवाह है, जो सदा-सर्वदा एक तारतम्यता के साथ प्रवाहित होता रहता है । जीवन अमर है, इसका कभी नाश नहीं होता, जीवात्मा इस स्थूल लोक को त्याग कर इसके पश्चात् आने वाले लोक के नये आकार में जीवन-क्रम को पूर्ववत् चालू रखता है । जीवात्मा का परमात्मा की ओर अग्रसर होना यही विधान है । वह कूद कर अथवा छलाँग लगा कर पूरे पथ को पार नहीं करता, वरन् क्रम-क्रम से सोपान-अनुसोपान पर पैर रखता हुआ ऊपर चढ़ता है । एक जीवन की सारी बातें दूसरे जीवन में उसके साथ यथावत् सूक्ष्म संस्कारों के रूप में जाती हैं और अपनी गतिविधि निर्धारित करती हैं । इसीलिये यह सोच कर कि अब तो जीवन का बहुत भाग बेकार चला गया है, अब हो भी क्या सकता है ठीक नहीं । शेष जीवन में जो सत्प्रयास प्रारम्भ कर दिया जायेगा वह भी अपने पूरे परिमाण के साथ आगामी जीवन का प्रारम्भ बनेगा ।

हमारा वर्तमान जीवन, वर्तमान की ही वस्तु है, ऐसा मानना समीचीन नहीं । हमारा जीवन पहले भी था और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आगे भी रहेगा । जीवन का वास्तविक अस्तित्व अदृश्य जगत् में ही रहता है । यही नहीं संसार की प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक पदार्थ, जिसे हम देख रहे हैं, अथवा आगे देखेंगे, वह आज ही उत्पन्न नहीं हुई है । उसका अस्तित्व पहले से ही सूक्ष्म अथवा अदृश्य जगत् में वर्तमान था । मनुष्य का प्रत्यक्ष जीवन स्थूल-लोक से प्रारम्भ होता दीखता अवश्य है, किन्तु वह वस्तुतः पहले से ही चला आता होता है । यह स्थूल शरीर जिसके छूट जाने को हम जीवन का अन्त मान लेते हैं, वास्तविक शरीर जिसे सूक्ष्म शरीर कहते हैं, का ऊपरी आवरण अथवा कलेवर मात्र है ।

यह जो कुछ क्रिया-कलाप करता दीखता है वह उस सूक्ष्म शरीर की ही क्रिया होती है, जो इसके आधार पर प्रकट हुआ करती है । अपने इसी कलेवर के भीतर वह वास्तविक और शाश्वत सूक्ष्म शरीर वृद्धि करता हुआ पूर्णता को प्राप्त होता रहता है । जिस प्रकार छिलके के भीतर अनाज का दाना धीरे-धीरे विकसित होकर पकता रहता है और जब वह पूरी तरह पक जाता है तो बाहर निकल जाता है, जिससे ऊपर का छिलका बेकार हो जाता है । उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर के पूर्ण विकसित हो जाने पर अथवा परमात्म-तत्व को आत्मसात् कर लेने पर स्थूल शरीर बेकार और व्यर्थ होकर गिर जाता है । अन्तर केवल इतना है कि अन्न का दाना अपने एक ही आवरण में पूरी तरह पक जाता है और सूक्ष्म शरीर अथवा जीवात्मा को पूर्ण विकास पाने के लिये अनेक बार स्थूल शरीर का कलेवर धारण करना पड़ता है और जिस दिन वह आत्म- प्रतीति की स्थिति में पहुँच जाता है, उसके बाद उसे फिर शरीर धारण करने की आवश्यकता नहीं रहती, वह अपने अनादि एवं अनन्त जीवन प्रवाह से स्रोत की तरह मिल कर तदरूप हो जाता है ।

यदि वास्तविक दृष्टि से विचार किया जाये तो पता चलेगा कि हमारा जीवन स्थूल शरीर नहीं, सूक्ष्म शरीर ही है । हम जो कुछ करते हैं, उसी रूप में करते हैं और जो कुछ आगे करेंगे, उसी रूप में । हमारा यह बाह्याकार कितना ही बदलता रहे किन्तु उसमें रहने वाला जीवात्मा कभी नहीं बदलता । हमारा जीवन अपरिवर्तनशील और अमर है यही रहस्य संसार का सबसे बड़ा सत्य है ।

हमारा यह वास्तविक जीवन अथवा सूक्ष्म स्वरूप क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर होगा 'विचार ' । विचार अपने में मूर्तिमान होते हुए भी सूक्ष्म सत्ता होने के कारण कभी स्पष्ट दिखलाई नहीं देते । उनकी मूर्तिमत्ता कार्यों के रूप ही प्रकट होकर सामने आती है । हमारे आस-पास की दुनिया में दिखलाई देने वाली हर वस्तु का सर्वप्रथम स्रोत विचार ही होता है । कोई भी वस्तु अथवा पदार्थ सर्वप्रथम विचार रूप में जन्म लेकर ही स्थूल रूप में प्रकट होता है । हम स्वयं अपना जन्म विचारों में ही धारण करते हैं । उन्हीं में पलते-बढ़ते और व्यक्त होते हैं । हम जीवन रूप में विचार स्वरूप ही हैं । हम आज जो कुछ दिखलाई दे रहे हैं अथवा आगे दिखलाई देंगे, वह हमारे विचारों के सिवाय और कुछ न होगा । अपने जीवन को सत्य पथ पर नियोजित करने का अर्थ विचारों को उस दिशा में उन्मुख करने के सिवाय और कुछ भी नहीं है ।

विचार ही मनुष्य का वास्तविक स्वरूप है। उसे केवल कोरी कल्पना अथवा हवाई उड़न मान कर महत्व न देने वाले अपने सत्यस्वरूप की ओर से आँख बन्द कर लेते हैं । शाश्वतशक्ति से सम्बन्धित होने से विचारों को संसार की वास्तविक, प्रबल, सूक्ष्म और महान् शक्ति माना गया है । विचारों के कारण ही मनुष्य उत्कृष्ट अथवा निकृष्ट बनता है ।

समानता वाले दो पदार्थ एक दूसरे को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित करते हैं । सृष्टि का यह नियम स्थायी और शाश्वत है । हम अपने जीवन के अनुकूल विचारों और शक्तियों को अदृश्य जगत् से आकर्षित करते और स्वयं भी उनकी ओर खिंचते रहते हैं । हमारे विचार सत्य और सत् होंगे, हम सत्य और सत् तत्वों की ओर आकर्षित होंगे । इसके विपरीत असत्य एवं असद् विचारों के कारण हम अवांछनीय तत्वों को आकर्षित करते और उनकी ओर बढ़ते जाते हैं । आत्म-विकास अथवा आत्म-निर्माण का दूसरा नाम विचार-निर्माण ही है ।

हम जितने ही कुशल विचार शिल्पी होंगे, हमारी आत्मा का निर्माण उतना ही सुन्दर और स्थायी होगा । अपनी आत्मा का साक्षात्कार ही हम विचारों के द्वारा ही कर सकते हैं । विचारों के आदर्श में ही आत्मा का रूप प्रतिबिम्बित होता है और विचार-चक्षुओं से ही उसके दर्शन किये जा सकते हैं । विचार जितने उज्ज्वल और पवित्र होंगे, आत्मा का प्रतिबिम्ब उतना ही स्वच्छ और स्पष्ट दृष्टिगोचर होगा ।

आत्म-चिन्तन जिसे आत्म-ज्ञान का उपाय माना गया है, अपने प्रति विचार करना ही तो है । विचार-शक्ति के द्वारा ही हम अपने प्रति किसी स्थायी प्रतीति का सृजन कर सकते हैं । विचार ही वह माध्यम है जो आत्मा और परमात्मा के बीच सम्बन्ध सूत्र की भूमिका पूरी किया करते हैं । अपने विचारों को विचार द्वारा देखिये और पता लगाइये कि आप किस स्थिति में हैं । आपका जीवन-यान ठीक उस पथ पर अग्रसर हो रहा है । यदि ऐसा है तो निरन्तर चलते जाइये और यदि कोई त्रुटि है तो रुकिये और अपने जीवन यान का दृष्टिकोण बदल कर ठीक दिशा में नियोजित कर लीजिए ।

मनुष्य का सर्वोच्च लक्ष्य परमात्म-तत्व से स्थायी सम्बन्ध स्थापित करना है । और मनुष्य उस परम प्रवाह की एक अविच्छिन्न तरंग है। यह प्रतीति प्राप्त कर लेना ही आत्म-ज्ञान माना गया है । इसका एकमात्र उपाय आत्म-चिन्तन है, जिसे विचार-क्रिया भी कह सकते हैं । इस प्रकार यदि हम इस विचार का अभ्यास करते हुए लगातार आगे बढ़ते रहे कि-"हम स्थूल नहीं सूक्ष्म जीव हैं तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अजर और अमर हैं, जिसका सीधा सम्बन्ध उस परमात्म तत्व से ही रहता है । किन्तु अज्ञान का अन्धकार उस सत्य का अनुभव नहीं होने देता । इसलिये अब हम उस अन्धकार से निकल कर प्रकाश में आ गये हैं।'' हमारी यह प्रतीति निरन्तर बढ़ती जाती है कि हम बिन्दु रूप में सिन्धु और आत्मा के रूप में परमात्मा ही हैं, तो कोई कारण नहीं कि हम शीघ्र ही अपने सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त न कर लें ।

ऐसा विचार-आत्मा से ग्रहण करते ही वह सर्व-व्यापक परमात्म-तत्व वह अनन्त जीवन हमारी ओर आकर्षित होता हुआ हमारे जीवन में और हमारा जीवन बढ़ता हुआ उसमें मिलने लगेगा और तब हमारे बीच के सारे व्यवधान और अवरोध व्यर्थ हो जाएँगे, फिर चाहे वह देहाभिमान हो अथवा मोहान्धकार ।

ईश्वर कैसा है व कहाँ है ?

आदिकाल से अब तक के मानवी इतिहास का अध्ययन करें तो हम पायेंगे कि चाहे मनुष्य विश्व के किसी भी कोने का रहने वाला हो, वह सदा एक ऐसी सत्ता का अनुभव करता रहा है, जो उससे बड़ी हो, फिर चाहे वह ईश्वर हो, गॉड हो, मोनाड हो, खुदा अथवा अननोएबिल कुछ भी हो, पर है अवश्य । प्रायः सबने उसकी निराकार कल्पना की है पर यदि उसका साकार स्वरूप देखना हो, तो उसकी छवि मनुष्य के रूप में ही देखी जा सकती है ।

हिन्दू धर्म के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद के मंडल १ सूक्त २४ में इस सम्बन्ध में लिखा है कि ईश्वर सर्वव्यापक होने से हमारे स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर में निवास करते हुए हमें दोष-दुर्गुणों में फँसने से बचाने की क्षमता रखता है । उसकी प्रार्थना से दुष्कर्मों का विनाश और सत्कर्मों का विकास होता है । श्वेताश्वेतर उपनिषद (३/२०) में कहा गया है कि जो संसार के सभी भौतिक तत्वों से सूक्ष्म और वृहत् है, उसी को परम अविनाशी तत्व अथवा परब्रह्म की संज्ञा दी गई है ।

बुद्ध के उपदेशों और आदर्शों से समूचा मानव समुदाय प्रभावित होने लगा तो बहुत से लोगों ने उनके समक्ष जाकर पूछा- आप कौन हैं ? क्या आप ईश्वर हैं ? देवदूत हैं ? अथवा साधु ? बुद्ध ने कहा-नहीं मैं यह सब कुछ नहीं हूँ।'' फिर लोगों ने पूछा ''तो आप क्या हैं'' ? प्रत्युत्तर में उनसे कहा ''मैं बुद्ध हूँ'' । इसी उत्तर ने उनने नाम का स्वरूप ग्रहण कर लिया । बुद्ध का अभिप्राय ही होता है-ज्ञानवान-प्रज्ञावान । उस समय बुद्ध ने ईश्वर के अस्तित्व सम्बन्धी व्याख्या को भले ही टाल दिया हो, पर अनुयायियों के अन्तराल में किसी समर्थ सत्ता के विद्यमान होने की भावना को अवश्य जगा दिया । बौद्धों के धर्म ग्रन्थ 'उमंग' और 'मध्यमिका कारिका' में यही लिखा है कि वह है भी और नहीं भी । न वह इस तरह है और न किसी तरह । वह न पैदा होता है, न बढ़ता है, न मरता है । वह कोई एक चीज नहीं है न उसका अस्तित्व है, न वह अस्तित्वहीन है । न वह दोनों से अलग है । इन अवस्थाओं से परे शाश्वत सत्य ही ईश्वर है । जो लोग मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हैं वे ही उस परमात्म-सत्ता के स्वरूप को भली-भाँति समझ सकते हैं । बौद्ध-धर्म में 'महायान' और 'हीनयान' दो प्रकर के मत प्रचलित हैं । महायान-सम्प्रदाय के लोग दया और करुणा को जीवन की अनिवार्य आवश्यकता मानते हैं । सदाचरण के अभाव में ज्ञान की उपलब्धि निरर्थक ही समझी जाती है, जबकि हीनयान मार्ग के समर्थक एकमात्र ज्ञानवान बनने पर ही बल देते और इसे परमात्मा की प्राप्ति का प्रमुख आधार मानते हैं ।

जैन धर्म की मान्यताओं के अनुसार ईश्वर को बीतराग और जितेन्द्र कहा गया है । जिसके राग-द्वेष बीत चुके हों, उसे बीतराग और इन्द्रियों को जीत कर वशवर्ती बनाने वाले को जितेन्द्र के नाम से जाना जाता है । जैनधर्म ग्रन्थों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि २४ प्रकार के अध्यात्मवेत्ताओं ने इस धर्म को अपने-अपने मतों से परिपुष्ट किया । उन्हें तीर्थंकर के नाम से पुकारा जाता है । वे किसी देवी देवता को नहीं मानते । उनका ईश्वर जिन है यानी जन्म-मरण से मुक्त आत्मा ही परमात्मा है । ''जैसा करोगे वैसा भरोगे'' उनका अकाट्य सिद्धान्त है । उनके प्रत्येक तीर्थंकर के साथ 'पंचकल्याण' की घटना अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है । स्वर्ग से अवतरण, धरती पर जन्म लेना, तपस्वियों की तरह दिनचर्या बिताना, सर्वज्ञता की प्राप्ति और निर्वाण की उपलब्धि आदि की घटनाएँ तीर्थंकर की विशिष्टता को ही प्रकट करती हैं । दूसरे शब्दों में इन्हीं को परमात्म-तत्व की विशेषताएँ भी कहा जा सकता है । हर व्यक्ति अपने साधनात्मक प्रयत्नों से इस परम स्थिति तक पहुँच सकता है । जैन धर्म-ग्रन्थों में ईश्वर के अस्तित्व का वर्णन इस प्रकार भी देखने को मिलता है, ''मैं उस निरंजन को नमस्कार करता हूँ जो अनेक में एक है और एक में अनेक है और जो न एक में और न अनेक में है ।''

गुरुनानक ने ठीक ही कहा है –

'काहे रे मन ! वन खोजन जाई ।
सरब निवासी सदा अलेखा तो संग रहत सदाई'।

अर्थात् ऐ मेरे दिल ! तू क्यों जंगलों में खोजने जाता है वह परमात्मा तो सबके भीतर विराजमान है । सब जगह विद्यमान है, पर दिखाई नहीं देता । जिस प्रकार फूल में सुगन्धि छिपी रहती है । वैसा ही परमात्मा भी सब के दिल में बसता है ।

पारसी धर्म में ईश्वर के लिए 'आहूर मजूद' शब्द प्रयुक्त किया गया है । सरगॉन के असुरियन शिलालेख में ६१५ ईसा-पूर्व भी इस नाम का अस्तित्व देखने में आया है । पारसी-धर्म के संस्थापक जरथ्रुस्त्र ने अपनी भजनमाल और प्रार्थना में इसी शब्द को बार-बार प्रयोग किया है । उनके कथनानुसार आहूर-मजूदा का निवास स्वर्ग की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उच्चतम स्थिति में अवस्थित है, समूचे भूमण्डल पर है और पवित्र एवं पुण्यात्माओं के हृदय में भी । वह दैवीय गुणों से सम्पन्न और सामान्यजनों से महान और श्रेष्ठ है । वह सद्बुद्धि का अधिष्ठाता भी कहा जाता है, इसलिये उसे बुद्धिमान स्वामी भी कहकर पुकारते हैं । उसकी विवेक बुद्धि के आधार पर ही इस सृष्टि की संरचना सम्भव हो सकी है । वह सर्वज्ञ, दूरदर्शी और सर्व-दर्शी है । त्रिकालदर्शी उसी को कहा गया है । उनकी स्तुति में 'खातु' और चिरति सद्बुद्धि के लिए ही प्रयुक्त किये गये हैं, यानि मानवी बुद्धि को सन्मार्ग पर प्रेरित करने वाली शक्ति को ही ईश्वरीय सत्ता के नाम से पुकारा जाता है ।

जरथुस्त्र ने अपने प्रतिपादनों में जिस 'आशा' शब्द का प्रयोग किया है, उसकी संगति वेदों के ऋतु के साथ बैठती है । 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' इसी को कहते हैं । ईरानी में 'अर्त' और अरेता के नाम से प्रख्यात है । प्राचीन फारसी आलेखों में 'अर्त' वस्तुतः दिव्य सत्ता की सद्प्रेरणाओं के लिए ही प्रयुक्त होता है ।

ईसाई धर्मग्रन्थ बाइबिल में ईश्वरीय सत्ता का वर्णन इस प्रकार है "मैं ही आदि हूँ और मैं ही अंत हूँ । मेरे सिवा कोई नहीं है । मैं वह रोशनी हूँ जो हर आदमी को रोशन करती है । मैं नहीं रहूँ तो तुम कुछ नहीं कर सकते हो" । ईसाई लोग प्रार्थना में इसी समर्थ सत्ता की आराधना करते और कहते हैं "हे परम पिता तू स्वर्ग में रहता है, पर हम स्वर्ग इसी धरती को बनायेंगे । मैथ्यू ५-४४, ४५, ४८ में यही लिखा है कि परमपिता सब प्राणियों के प्रति समता और एकता का भाव रखता है, उसी प्रकार मनुष्य को भी उसी के अनुरूप अपनी मनोवृत्ति का निर्माण करना चाहिए । ईसा के अनुरूप ईश्वर एक ऐसे विवेकवान गड़रिये की तरह है जो समूचे भेड़ समुदाय को खाई-खंदड़ में गिरने से बचाता और हित-साधन का रास्ता दिखाता है । सेंट पॉल ने प्रथम कॉरिथिन्यन्स के तेरहवें अध्याय में परमात्मा की स्नेह सहकार की प्रवृत्तियों का उल्लेख करते हुए कहा है कि यदि उससे कोई दो कदम साथ चलने को कहे तो वह उसके साथ एक मील तक जाने का उत्साह दिखाता है, किन्तु शर्त एक ही है कि वह उसका सुपुत्र हो। उसका अनुशासन पाले, स्वयं ऊँचा उठे और दूसरों को आगे बढ़ाने, ऊँचा उठाने का दायित्व निभाये तभी परमपिता भी पग-पग उसके साथ चलने का अपना वचन निभाते हैं अन्यथा अनुशासनहीन कुपात्रों की तरह उसकी उपेक्षा कर देता है ।

इस प्रकार विश्व के लभग सभी धर्मों ने ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकारा है और उसकी व्याख्या-विवेचना एवं कल्याणकारी सर्वोच्चसत्ता के रूप में की है । अमेरिका के प्रसिद्ध दार्शनिक थोरो जब मृत्यु शैय्या पर अपनी अन्तिम साँसें गिन रहे थे, तो किसी ने उससे पूछा-"क्या आपने ईश्वर से मित्रता कर ली है?" थोरो ने बड़े सहज भाव में उत्तर दिया-"मेरी उससे शत्रुता ही कब थी। यदि इस संसार में सचमुच ही ईश्वर है, तो मैं उसकी मनुष्य में झाँकी करता हूँ और एक मानवतावादी होने के नाते उसकी सेवा-सहायता में ही भगवान की भक्ति समझता हूँ।" इनके इस कथन की संगति प्रसिद्ध दार्शनिक मार्क ट्वेन के उस कथन से शब्द बैठ जाती है, जिसमें उनने कहा था कि "मेरा भगवान न गिरिजाघर में है, न क्रूस में, मेरा भगवान तो चलता-फिरता मनुष्य है, वह मनुष्य जिसकी मैं अब तक सेवा करता आया हूँ। " सचमुच आने वाली सदी का भगवान मनुष्य रूप में ही होगा, तभी यह पृथ्वी उनका निवास अर्थात् स्वर्ग बन सकेगी ।

ईश्वर अनुभव का विषय है

यदि हम हिन्दू धर्म का तत्त्व जानना चाहें तो हम इतना ही कह सकते हैं कि इसका आधार उस सच्ची आध्यात्मिक अनुभूति है जिसे हमने अपने अन्तःस्थल में दृढ़तापूर्वक पकड़ रखा है । जब हम वैदिक काल को अपने धर्म का मूल स्थान कहकर स्मरण करते हैं तो इसका अर्थ यही होता है कि वैदिक ऋषि हमारे पथ प्रदर्शक थे, उन्होंने सबसे पहिले अध्यात्म-तत्त्वों का पता चलाया था । ऋषि शब्द 'दृश' धातु से बना है जिसका अर्थ 'देखना ' होता है । इसके अनुसार धर्म का अर्थ देखा हुआ, दर्शन और अनुभूति होता है । ऋषियों ने जिस सत्य की घोषणा की है वह तर्क या दर्शन-शास्त्र का मनन करने का फल नहीं है वरन् उनकी आध्यात्मिक सूझ का परिणाम है । इसी कारण ऋषियों को वेद में पाये जाने वाले सत्य तत्त्वों का रचयिता नहीं समझा जाता वरन् वे केवल उनके देखने वाले हैं, जिन्होंने अपनी आत्मा का विश्वात्मा से तादात्म्य करके उन चरम सत्यों का दर्शन कर लिया है । उनके वचनों का आधार आवेशपूर्ण सूझ नहीं है वरन् हृदय में स्थित शक्ति और जीवन का ही अनवरत अनुभव है । वेदों को सर्वश्रेष्ठ प्रमाण इसीलिए माना जाता है क्योंकि वास्तविकता ही सबसे बड़ी प्रामाणिकता है । ईश्वर हमारा कोई प्रिय आदर्श नहीं है, वह तो उस सत्य का नाम है जिसका हम अनुभव करते हैं । आध्यात्मिक अनुभूति का अर्थ हमारा कोई काल्पनिक विचार नहीं होता, वरन् सत्य के निकटतम साहचर्य को ही आध्यात्मिक अनुभूति का नाम दिया जा सकता है ।

जिस महात्मा ने भगवान का साहचर्य प्राप्त किया है, उसने केवल उसकी चर्चा सुनकर उसे नहीं जाना है, वरन् उसको अनुभव कर लिया है । उसके लिए शंका अथवा अविश्वास की गुंजाइश ही नहीं रहती और न उसके इस अद्भुत तथा सरल निश्चय को कोई डिगा सकता है । किन्तु जिन्होंने धर्म का ज्ञान दूसरों से सुनकर प्राप्त किया है, जो धार्मिक बनने का कष्ट तो नहीं उठाना चाहते पर धर्म से प्राप्त होने वाले संतोष का उपभोग करना चाहते हैं-जो चाहते हैं कि चमत्कारपूर्ण कथाओं और कर्म-काण्ड की विधियों से उनको फल मिल जाय- ऐसे साधारण मनुष्यों के लिए इस अनुभूति को चित्रात्मक स्थूल रूप देने की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्यकता पड़ती है । इसके सिवाय अपने अनुभव को दूसरे पर प्रकट करने का, उसके रहस्यों को विशदरूप से देने का और विरुद्ध आलोचनाओं से उसकी यथार्थता की रक्षा करने का एकमात्र साधन भाषा और तर्क है । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए धर्म-शास्त्रों की रचना की गई है । उन शास्त्रों में ईश्वर की व्याख्या सभी प्रकार की संस्कृति के या सभी दर्जे के लोगों के समझने के लायक पाई जाती है-बिल्कुल स्थूल भी और परम सूक्ष्म भी ।

इस अन्तर्ज्ञान को जानने वाला महापुरुष जब अपने अनुभव को साधारण तर्क की भाषा में प्रकट करना चाहता है तो वह एक प्रबल विश्वास के साथ इस अलौकिक सत्य का प्रतिपादन करता है । वह जानता है कि आत्मा का निकट-सीधा सम्बन्ध एक ऐसे लोक से है जो इन्द्रिय जगत से भिन्न है-जो इन्द्रियों के इस सामान्य लोक से अत्यधिक तेजपूर्ण होकर भी उससे किसी प्रकार कम सत्य नहीं है। तर्क, अन्तर्ज्ञान और आध्यात्मिक अनुभूति सब एक स्वर से उस सत्ता की यथार्थता के साक्षी हैं, जो इस सबका आधार है। उसी के सम्बन्ध में कहा गया कि "अमरता और मृत्यु उसकी प्रतिच्छाया हैं।" (यस्यछाया मृतम् यस्य मृत्युः- ऋग्वेद १०,१२१) आध्यात्मिक अनुभूति का मुख्य लक्षण यही है कि वह अनिर्वचनीय होती है, अर्थात् उसको शब्दों द्वारा ठीक-ठीक प्रकट नहीं किया जा सकता । जब हम अनुभूति सत्य का वर्णन करना चाहते हैं तब हमें रूपों तथा शब्दों का सहारा लेना पड़ता है, पर साथ ही यह भी जान लेना चाहिए कि सत्य को प्रकट करने के लिए बड़े से बड़े शब्द और रूप भी अपर्याप्त हैं ।

भगवान बुद्ध ने आध्यात्मिक अनुभूति की यथार्थता को स्वीकार किया है, पर इस अनुभूति द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार हो सकता है, इसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण न होने के कारण वे इतना ही कहकर सन्तुष्ट हो जाते हैं कि दिखलाई पड़ने वाले स्थूल जगत में सूक्ष्म भाव-जगत भी समाया हुआ है । इसी सम्बन्ध में शंकराचार्य जी का कहना है कि सभी रूपों में मिथ्या का अंश रहता है और सत्य उन रूपों से परे है । इस प्रकार चाहे हम उपनिषदों के सिद्धान्त को मानें, चाहे बुद्ध के मत पर विचार करें और चाहे शंकराचार्य के कथन को स्वीकार करें सब का तात्पर्य यही है कि अविभक्त तथा अद्वैतसत्ता इस अनेक रूप वाले अनित्य जगत से परे है, अथवा यह उसी में व्याप्त विशुद्ध तेज पूर्ण आत्मा है, जिसे हम एक निर्गुण सत्ता के रूप में जानते हैं, पर न तो उसका वास्तविक ज्ञान ही सम्भव है और न उसका वर्णन ही किया जा सकता है । इसलिए हम कुछ न जानकर भी यह मान लेते हैं कि ईश्वर की महत्ता अज्ञेय (न जानी जा सकने वाली) है और वह मन तथा वचन की पहुँच के बाहर है । उपनिषदों ने भी कह दिया है- " वह ज्ञात से भिन्न है और अज्ञात से भी श्रेष्ठ है" (केनोपनिषद १-३) "वहाँ तक दृष्टि नहीं पहुँचती, तथा मन और वाणी भी नहीं पहुँचती" (वृहदारण्यक-उपनिषद,३-८-८) ।

यद्यपि इस ईश्वरीय तत्व की सांसारिक पदार्थों से भिन्न है, फिर भी वह हम में पाई जाने वाली श्रेष्ठतम वृत्तियों से कुछ मिलती-जुलती है । क्योंकि ब्रह्म का स्वरूप यदि मानव की आत्मा से बिल्कुल भिन्न होता तो उसका अस्पष्ट आभास पा सकना भी हमारे लिये सम्भव न था । तब हम यह भी न कह सकते कि ब्रह्म सर्वथा भिन्न गुणों वाला है । मनुष्य की आत्मा में, उसके अन्तस्तल में, उसकी बुद्धि के परे भी एक ऐसा तत्व है जो ब्रह्म से मिलता-जुलता है । मनुष्य के हृदय में ही ब्रह्मानुभूति का आधार मौजूद है । ईश्वर और मनुष्य की आत्मा (जीवात्मा) में किसी प्रकार समानता होने से ही आध्यात्मिक भावों की उत्पत्ति हुई है । यह केवल अनुमान का विषय नहीं है। आध्यात्मिक अनुभूति में आत्मा तथा परमात्मा का भेद नहीं रहता । 'तत्वमसि' (तुम वही हो) इस महा-वाक्य में इसी सत्य का परिचय दिया है ईश्वर वह अनन्त तत्त्व है जो हमारे भीतर भी है और बाहर भी है । यदि हमारे भीतर परमात्मा न होता तो हमें उसकी आवश्यकता का अनुभव ही न होता और यदि वह हमारे बाहर न होता तो उसकी उपासना की कोई न जरूरत होती । इसलिए हमें यही स्वीकार करना पड़ता है कि परमात्मा मनुष्य की आत्मा का सबसे श्रेष्ठ रूप है ।

ईश्वर और उसकी अनुभूति

इस संसार में रहते हुए मनुष्य सफलताओं के लिये नाना प्रयत्न करता है किन्तु उसकी निजी इच्छाएँ प्रायः परिस्थितियों की परतंत्रता के कारण पूर्ण नहीं होतीं । उद्योग करने से भी अभीष्ट लाभ यही होता तो भाग्य के अस्तित्व को स्वीकार करना पड़ता है, जिससे मनुष्य जीवन की अवधि अपरिमित-सी दिखाई देने लगती है । जीव की अमरता और उसकी परतंत्रता-इन दो वस्तुओं पर विचार करने के उपरान्त हम इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि एक शक्ति ऐसी भी है जो इस सृष्टि का नियमन करती है । बालक का जन्म होता है तो सामान्य मनुष्य उसे एक सामान्य संयोग मानकर सांसारिक प्रपंचों में लग जाते हैं किन्तु विचारवान् व्यक्ति के लिये यही सबसे महत्वपूर्ण घटना भी हो सकती है । हाड़-माँस के इस छोटे से पिंड का गर्भ स्थान जैसी अपर्याप्त जगह में किस तरह पालन-पोषण होता है ? किस तरह वह साँस ग्रहण करता होगा ? कहाँ से प्रकाश मिलता होगा ? रस, रक्त आदि का संचालन किस तरह होता होगा ? माँस के कटघरे में आबद्ध जीव के लिये इतना कठिन व्यवस्थाओं पर विचार करने से हैरत में रह जाना पड़ता है । लगता है कोई अदृश्य शक्ति ही इस संसार के भाग्य और परिस्थितियों का निर्माण करती रहती है ।

सब कुछ चमत्कार-सा लगता है, पर है सत्य । अपने अन्दर की खोज करते हैं तो केवल हाड़-माँस, रक्त, मल-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मज्जा को ही सार-भूत नहीं पाते । इससे भी उच्चतर किसी चेतन तत्व का आभास होता है । यह अन्तर्बोध कहाँ से आया ? यह प्रश्न बार-बार उठता है, ईश्वर की धारणा को अस्तित्व में मान लेने से ही संतोष नहीं होता । उसकी खोज भी करनी पड़ती है । इसके लिये ध्यान निजत्व पर टिकता है । अपने आपको जानने से संभवतः ईश्वर विषयक ठोस निष्कर्ष निकले, यह समझ कर सारा ध्यान अन्तर्चेतना पर जमा देते हैं, तो उसकी स्थिति के साथ-साथ किसी प्रेरक सत्ता का ज्ञान होता है । ईश्वर का अस्तित्व स्पष्ट नजर आने लगता है । उसकी सत्ता का अनुभव जिधर दृष्टि जाती है उधर ही होने लगता है । ध्यानपूर्वक देखने से प्रत्येक वस्तु प्रत्येक प्राणी में ईश्वरीय और उसकी समर्थता प्रकट होती है ।

सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, पहाड़, नदियाँ, पशु-पक्षी और इनसे सम्बन्धित अनेक क्रियाएँ-भरण, पोषण, उत्पादन संरक्षण आदि में उस सर्वव्यापक सत्ता का ही हस्तक्षेप कार्य कर रहा दिखाई देता है । इसे प्रकृति या निःसर्ग कह कर टाला नहीं जा सकता, क्योंकि प्रकृति अपने आप में अपूर्ण है । वह स्वतः गतिशील नहीं है । जहाँ भी क्रियाशीलता दिखाई देती है वही प्रकृति के साथ-साथ विश्व चेतना का भी प्रादुर्भाव दिखाई देने लगता है ।

महात्मा टालस्टाय ने लिखा है-"मैंने पहले अनेक तर्कों के द्वारा ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करना चाहा किन्तु उनसे बोध न हुआ, पर इससे एक बात मेरी समझ में आई कि संसार का कारण देश या काल की भाँति कोई वस्तु नहीं है । यदि 'मैं' हूँ तो इसका कारण भी कुछ जरूर होगा । यह कारण भी किसी आदि कारण पर आधारित होंगे । सम्पूर्ण दृष्टि का जो मूल कारण होगा उसे ही लोगों ने ईश्वर कहा है । यह विचार मुझे पसंद आ गया और इसे ही समझने में अपनी सारी चेष्टा लगा दी । इन प्रश्नों के सुलझाने में मैं जितना ही उलझता गया उतना ही एक बात में मेरी बुद्धि में स्थिर होती गई कि ईश्वर स्रष्टा है, वही संसार का पालन करता है । इस विश्वास ने मेरी क्षुद्रता प्रकट कर दी । तब से मैं निरन्तर परमेश्वर से ही प्रार्थना किया करता हूँ । प्रभो ! मुझे शक्ति दो, ज्ञान दो ताकि मेरे जीवन की गति रुकने न पाये ।

नास्तिकता और अज्ञेयवाद के झूठे वितण्डावादों की अपेक्षा घटनाओं की विद्यमानता अधिक बलवत्तर है हमारी अन्तर्चेतना यह सिद्ध करती है कि कोई समष्टि इस विश्व में अवश्य विद्यमान है, जो सारे संसार को एकक्रम व्यवस्था से चलाता रहता है । यह प्रकृति की तरह जड़ नहीं है । स्वार्थी या कठोर भी नहीं है । प्रत्युत अनन्त शक्तिशाली, सर्वज्ञानी तथा प्रेम स्वरूप है । यह सत्ता होती तो मनुष्य के हृदय में प्रेम की अजस्र सत्ता कहाँ आती । सौन्दर्य की आध्यात्मिक आकांक्षा का उदय उस परम सुन्दर की अनुभूति का अंश ही तो है । इन सिद्धान्तों का खण्डन किसी भी तरह नहीं किया जा सकता । चेतना को नियमन करने वाली कोई कारण-सत्ता है जरूर ।

प्रेम और सौन्दर्य की तरह प्रत्येक व्यक्ति में ज्ञान की जो स्फूर्ति हुआ करती है । वह भी तो परमात्मा के प्रकाश की ही स्थिति है । जाग्रत अवस्था में प्रत्येक वस्तु जिस तरह व्यवहृत होती है उसका ठीक वैसा ही आकार-प्रकार, ढील-ढाँचा मस्तिष्क में बनता-बिगड़ता रहता है । सुप्त अवस्था में भी एक अहं-भावना कार्य किया करती है जिसकी प्रत्येक गतिविधि का आभास निद्रा टूट जाने के बाद होता रहता है, इससे क्या ज्ञान की अविरलता का बोध नहीं होता । यह ज्ञान आखिर कहीं से प्रभासित ही हुआ होगा ? उसका भी कुछ न कुछ अस्तित्व होगा ? यह विचार यदि अविचल भाव से चलते रहें तो भी अन्त में हम ईश्वरीय-अस्तित्व की परिधि में ही पहुँचेंगे । वही सर्वत्र अपनी चेतना का प्रकाश फैला रहा है, इस विश्वास के साथ ही अपना ज्ञान परिपूर्ण बनता है ।

हर तरफ से टकराकर मनुष्य बार बार इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि बिना किसी कारण के इस संसार का निर्माण हो नहीं सकता । बिना किसी हेतु के मनुष्य का यहाँ आगमन सम्भव नहीं है । इस बात को कहाँ तक टाला जा सकता है, किसी ने हमें जन्म दिया है, हमारा लालन-पालन किया है, हमें प्रेम किया है । मनुष्य की निजी इच्छाएँ परवश हैं । वह प्रत्येक कार्य कर गुजरने के लिये पूर्ण क्षमतावान् नहीं है । फिर उसके पास मानवीय संदेहों, शंकाओं की समाधान शक्ति भी तो नहीं है । ऐसी अवस्था में इसे कोई कैसे मानेगा कि मनुष्य का जन्म प्रकृति का कार्य है । प्रत्येक कार्य ठीक विधि-व्यवस्था पर चल रहा है अतः उसका संचालन कर्त्ता भी निःसन्देह हमारे मन की तरह ही विचारपूर्ण होना चाहिए ।

ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास कर लेने से सदैव उसकी पुष्टि ही हुई है । भारतीय तत्व-वेत्ताओं ने गहन अनुसंधान के बाद सबसे पहला आदेश यही दिया है । "ईश्वर पर विश्वास करो ।" और इस संसार को ही उसके होने का प्रमाण समझो । विश्वास बना लेने के बाद मनुष्य की चेतना अन्तर्मुखी हो जाती है, फलस्वरूप तर्क और अविश्वास की छाया अपने आप हटने लगती है और मनुष्य पूर्ण प्रकाश की ओर शनैः-शनैः बढ़ने लगता है । सिद्धि प्राप्ति के तुरन्त बाद ही "ईश्वर पर विश्वास करो" का सर्वनिश्चयात्मक आदेश प्रामाणिक कहा जा सकता है। क्योंकि उन महापुरुषों के जीवन से हमें दिव्यता, असीमता और पूर्णता का आभास मिलता है । सभी कालों और देशों के मनुष्यों ने परमात्म-सत्ता को माना है । ऊपर-नीचे, भीतर-बाहर, अन्तरिक्ष, आकाश, सूर्य-चन्द्रमा में सर्वत्र उसी के प्रकाश का बखान किया है । जिन वेदान्तियों, तार्किक तथा दार्शनिकों ने मानव बुद्धि का यथा साध्य प्रयोग किया है उन्होंने उसके अस्तित्व को प्रमाणित किया है । योगियों ने उसी अन्तर्ज्योति को अनुभव किया है ।

कितने ही विरोध उत्पन्न किये जाएँ किन्तु जीवन की चेतनशीलता के आगे आकर सारे अज्ञेय-विचार, समाप्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होने को मजबूर हो जाते हैं । जहाँ मनुष्य की विवशता है, वहीं ईश्वर की स्थिति है । जहाँ मनुष्य की बुद्धि तथा शक्तियाँ कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं कर पातीं किन्तु गतिविधियाँ बराबर चलती रहती हैं, वहीं परमात्मा विराजमान है । यह तथ्य भुलाया या ठुकराया नहीं जा सकता ।

अनेक उपलब्धियों, अन्वेषणों तथा गहन जीवन-दर्शन के परिणामस्वरूप उस परमात्मा को बुद्धिसंगत और निश्चित ठहरा कर ही महापुरुषों ने उसे जानने की शिक्षा दी है । शास्त्रकार का कथन है-

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति,
न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ।
भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः,
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ।।

"अर्थात् - यदि इस जीवन में परमात्मा को जान लिया तो यह जन्म सार्थक हुआ और यदि उसे न जान पाये तो यह निश्चय ही बहुत बड़ी हानि है । बुद्धिमान व्यक्ति प्रत्येक प्राणी में उसी का दर्शन करते हुये अजर अमर हो जाते हैं ।"

परमेश्वर का निराकार और साकार स्वरूप

परमात्मा का सजीव और साकार रूप यह विश्व है । चेतन्य-शक्ति-सत्ता को अन्तःकरण में अनुभव किया जा सकता है, आँखों से देखा नहीं जा सकता इसलिए उसे निराकार कहते हैं । भावना के क्षेत्र में उदात्त मनोवृतियों के रूप में उसकी अनुभूति होती है और शरीरधरियों में सत्प्रवृत्तियों को ईश्वरीय-चेतना का प्रकाश कह सकते हैं । पर यह सारा क्षेत्र निराकार ही है । निखिल ब्रह्माण्ड का सृजनकर्त्ता संचालक महातत्व दृश्यमान नहीं । इसी प्रकार सद्भावनाएँ भी देखी नहीं जा सकती हैं ।

परमात्मा का साकार रूप देखना हो तो यह विश्व ही परमेश्वर माना जा सकता है । मूर्तियाँ और प्रतिमाएँ ध्यान साधना की एकाग्रता के लिए मनुष्य की अपनी सूझबूझ हैं । देवता या अवतारों के जैसे चित्र दिखाये या बताये जाते हैं वे भी मानवी कल्पनाएँ हैं । विभिन्न देश, धर्म के लोगों ने अपने रूप और स्वभाव वाले परमात्मा बनाये हैं उनमें इतनी भिन्नता है कि उनमें कौन वास्तविक है यह निर्णय कर सकना शक्य नहीं है ।

ईश्वर की सभी प्रतिमाएँ सही हैं और सभी गलत । सही इसलिए हैं कि जिसमें श्रद्धा और सद्भावना का समन्वय हो वह कल्पना-कृति सही ही कही जानी चाहिए । गलत इसलिए हैं कि ईश्वर मनुष्य आकृति का हो यह क्या आवश्यक है ? उसके लिए सभी जीव कलेवर एक से हैं वह मनुष्य का ही रूप क्यों बनायेगा । फिर मनुष्यों में भी भिन्न प्रकार की आकृति प्रकृति क्यों धारण करेगा ? यदि वस्तुतः उसका आकार होता तो सर्वत्र एक-सा ही अनुभव में आता । सूर्य चन्द्र आदि सर्वत्र एक समान ही देखे जाते हैं । रूपधारी परमेश्वर को मानवीय कल्पना कृति ही कहना चहिए । अवतारों की प्रतिमाएँ भी अवास्तविक हैं । उन अवतारों के काल के वास्तविक चित्र उपलब्ध नहीं आकृतियों की भिन्नता का होना यही बताता है कि भक्ति भावना द्वारा-ध्यान, उपासना प्रयोजन सिद्ध करने के लिये उपयुक्त माध्यम के रूप में उन्हें गढ़ा गया है । उनमें मूर्तिकार शिल्पियों की कला को ही प्रत्यक्ष और वास्तविक कहा जा सकता है ।

तब क्या ईश्वर का कोई स्वरूप है । नहीं क्यों, वह साकार नहीं है । निश्चित रूप से वह निराकार होने की तरह साकार भी है । इस विश्व में जो कुछ दृश्यमान हो रहा है उसे 'भगवान' ही कहना चाहिए । यों जड़ पदार्थ भी ब्रह्ममय हैं । उनके भीतर काम करने वाली परा प्रकृति-अणु संचार प्रक्रिया-उसी महाशक्ति का स्पन्दन है । चेतन प्राणियों में वह और भी स्पष्ट है । ज्ञान और इच्छा शक्ति के रूप में उसका दर्शन हर प्राणधारी में किया जा सकता है । उसका और भी स्पष्ट-उत्कृष्ट दर्शन ऋतम्भरा प्रज्ञा, धर्म चेतना, निस्वार्थ आत्मीयता और कर्त्तव्य निष्ठा के रूप में देखा जा सकता है । जहाँ कहीं भी जितने अंशों में यह उत्कृष्टता विद्यमान है वहाँ उतने ही अधिक प्रखर परमेश्वर के अंश का दर्शन किया जा सकता है । अवतारों में उनकी गरिमा 'कलाओं' के आधार पर नापी गई है । कोई अवतार कितनी कला के हुए हैं कोई कितनी के । यह अन्तर बताता है उन अवतारी आत्माओं में श्रेष्ठता की ऊर्जा कितनी ऊँची थी ।

समग्र ब्रह्म का दर्शन न सम्भव है, न आवश्यक, न उपयोगी । ईश्वरीय-रचना में तो विनाश और विकृति की भी बड़ी मात्रा है जिसे असुरता कहते हैं । देवत्व को संघर्ष की चेतना सजग रखने और सत्प्रवृत्तियों की अपनी क्षमता तीक्ष्ण रखने के लिए चुनौती के रूप में यह विकारी असुरता भी विद्यमान है । उसे ब्रह्म की परिधि से बाहर नहीं किया जा सकता । उतने ब्रह्म अंश के साथ तो उचित व्यवहार संघर्ष और विग्रह के रूप में ही किया जा सकता है । ईश्वरीय-दर्शन मानव प्राणी की-अन्य प्राणधारियों की सत्प्रवृत्ति के रूप में करना चाहिए । उस दिव्य-प्रेरणा से सम्पन्न प्रकाश को ही परमेश्वर का साकार स्वरूप कह सकते हैं । गायत्री मंत्र में उसी सविता देवता को वरेण्य-वन्दनीय कहा गया है ।

ईश्वर के साकार और निराकार रूप की विवेचना

परब्रह्म साकार है या निराकार ? इस प्रश्न को लेकर प्रायः विवादात्मक चर्चाएँ चलती रहती हैं । चिन्तन का सूत्र सही न होने से गुत्थी सुलझने के स्थान पर और भी उलझ जाती है । यदि लक्षणों पर विचारपूर्वक गवेषणा की जाय तो वस्तुस्थिति समझने में तनिक भी कठिनाई न पड़े

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और दोनों ही पक्षों को अपने-अपने अनुकूल समाधान मिल जाये ।

सर्वव्यापक वस्तुओं में आकाश की, वायु की, ईथर की, प्राण की उपमा दी जा सकती है । वे निराकार हैं । सृष्टि की नियति और व्यवस्था भी अदृश्य रहकर अपना काम करती है । उनका व्यापक होना स्वाभाविक है । व्यापक तत्व एकदेशीय नहीं हो सकते । यदि एक स्थान पर एक स्वरूप में वे बँध जाएँगे तो फिर अन्यत्र उनकी उपस्थिति कैसे देखी जा सकेगी ? इसलिए परब्रह्म को सृष्टा, नियन्ता, पोषक मानते हुए उसे घट-घटवासी, सर्वत्र समाहित ही माना जा सकता है । ऐसा हुए बिना वह एक क्षेत्र की सम्पदा बनकर रह जाएगा और वहीं रहकर जितना कुछ करते बन पड़ेगा, उतना ही कर सकेगा । सर्वव्यापी होकर जो विशाल भूमिका निबाही जाती है, उसके लिए समर्थ हो सकना सम्भव न होगा । यह निराकार पक्ष है । जो सूक्ष्म है वह निराकार हो सकता है । शरीर में मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार का अन्तः-करण चतुष्टय विसंगति है, पर उसे किसी रूप या चिह्न में विद्यमान नहीं देखा जा सकता । उनकी सूक्ष्म शक्ति उन्हें निराकार होने के लिए ही बाधित करती है । उनका दर्शन नहीं हो सकता ।

तो क्या ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हो सकता ? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि उसके साथ प्रकृति के स्थूल के कुछ तत्त्व मिले रहने चाहिए तभी यह सम्भव प्रकृति स्थूल है । उसके तत्व अणु परमाणुओं से लेकर विशालकाय भूधरों सागरों तक दृश्यमान होते हैं । यों उसके भीतर भी परमचेतना की सत्ता भी विद्यमान है । किन्तु दीखता केवल प्राकृतिक कलेवर ही है । शरीर को ही लें उसके कण-कण में चेतना का निवास है तो भी दीखते केवल अंग-अवयव ही हैं । उनका पंच भौतिक कलेवर ही दीख पड़ता है । इसी प्रकार समग्र सत्ता का दर्शन कहीं भी, कभी भी नहीं हो सकता । उनके साथ मिश्रण आवश्यक होगा । इनके बिना नाम, रूप, शब्द, स्वरूप का समुच्चय बन ही नहीं सकता ।

कई व्यक्ति इष्टदेव दर्शन के लिए आग्रह प्रकट करते हैं । यह आग्रह दिवास्वप्न के रूप में ही प्रकट हो सकता है । ध्यान की परिपक्वावस्था में कल्पना ही प्रतिमा बन जाती है । झाड़ी का भूत बनना इसी को कहते हैं । शंका से डाकिन और मनसा से भूत उत्पन्न होने की कहावत प्रसिद्ध है । स्वप्न देखते समय उसमें चल रही हलचलें भी यथावत् प्रतीत होती हैं । जिनके साथ लगाव अधिक होता है वह प्रेमी, प्रेमिका प्रायः स्वप्न में याद आते रहते हैं और कई बार दिवास्वप्न बनकर प्रत्यक्षवत् भी दीख पड़ते हैं ।

पानी प्रवाही है । हवा अदृश्य गतिशील । पर दोनों के सम्मिश्रण से बुलबुल बन जाते हैं । वह चलते, फिरते और आकृतिवान भी होते हैं । किन्तु वह सारा दृश्य क्षणिक होता है । बुलबुले अधिक देर स्थिर नहीं रहते । कुछ ही देर में इधर-उधर भटक कर अदृश्य हो जाते हैं । ठीक यही बात इष्टदेव दर्शन की होती है । भावुक और आग्रही अपनी साधना की सफलता इसी रूप में आँकते हैं कि इन्हें छवि चलती-फिरती धुँधली-सी इष्ट कल्पना से मिलती-जुलती छवियाँ दीख भी पड़ती हैं । भक्तजन इतने से भी अपनी बिगड़ती बात बना लेते हैं । स्वल्प संतोष भी डूबते के लिए तिनके का सहारा बन जाता है ।

यदि सचमुच इष्ट देव का दर्शन हुआ होता, देवता इतने दूरवर्ती लोक-लोकान्तरों से चलकर भक्त की पुकार पर दौड़ा आया होता तो उसे कुछ उपहार भी दिया जाता । मनोकामनाओं को पूरा किया होता, गई-गुजरी स्थिति से ऊँचा उठा कर किसी उच्च स्थान तक पहुँचाया होता । लेकिन ऐसा कुछ होता नहीं । न लौकिक स्थिति सुधरती है, न आत्मिक पारलौकिक स्थिति में कोई अन्तर आता प्रतीत होता है । फिर कैसे कहा जाय कि देवता पधारे थे ? यदि वे सचमुच पधारे होते तो न ही खाली हाथ आते और न रीति जेब जाते । उनके साथ कुछ न कुछ आदान-प्रदान हुआ होता, पर इस बात का कोई चिह्न नहीं है तो उस प्रतिमा प्रदर्शन का क्या मूल्यांकन किया जाय ? उसे किस प्रकार कोई उच्चस्तरीय उपलब्धि माना जाय ?

छवि दर्शन का आग्रह समय-समय पर और भी कई भक्तजनों का होता रहा है । अर्जुन ने कृष्ण से इसी के लिए अनुरोध किया था । यशोदा यही वान्छा सँजोये बैठी थी। कौशिल्या को अपनी गोदी में भगवान खिलाने का मन था । पर वहाँ तो हाड़-माँस को छोटा बालक भर दीख पड़ता था । काकभुशुण्डि ने इन सबसे बढ़कर साहस कर दिखाया। वे मरने-मारने पर तैयार हो गये । बालक राम यदि वस्तुतः परब्रह्म हैं तो शंका निवारण के लिए परीक्षा के निमित्त कटिबद्ध हुआ जाय । वे चावल खाते राम के मुँह में घुस गये । किन्तु देखा क्या जो उपरोक्त अन्य सन्तों ने देखा था । उन्हें दिखाया गया था कि भगवान को देखना है तो वह चर्मचक्षुओं के सहारे सम्भव नहीं, उसके लिए दिव्य नेत्र खोलने होंगे । इस समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड को ही ईश्वर का विराट् रूप समझना होगा । सभी को इतने पर ही सन्तोष करना पड़ा । जिनके किन्हीं जनक-जननी के उदर से उत्पन्न हुए शरीर से भगवान का आरोपण किया, उन्हें इतने भर से ही सन्तोष करना पड़ा ऐसा तो कोई भी कर सकता है । पति का पत्नी को, संरक्षक को अभिभावक को, गुरु को भगवान माना जा सकता है । वे तदनुरूप फलित भी होते हैं । पर श्रद्धा की शक्ति का चमत्कार है । उसने मिट्टी की प्रतिमा को द्रोणाचार्य, पाषाण को परमहंस की काली और छोटे खिलौने को मीरा का गिरधर गोपाल बना दिया था । पर उनकी सामर्थ्य श्रद्धावान तक ही सीमित रही । मिट्टी के द्रोणाचार्य ने एकलव्य के अतिरिक्त किसी को भी धनुष विद्या नहीं सिखाई । मीरा के अतिरिक्त गिरधर गोपाल ने कहीं भी एक पत्थर नहीं उठाया, रामकृष्ण की प्रचण्ड चेतना शक्ति काली उन्हीं के लिए जगदधातु थी । पर जब चोर प्रतिमा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के मुँह में हाथ डाल कर जीभ उखाड़ ले गये तो उनसे आत्म-रक्षा तक न बन पड़ी ।

प्रतिमा पूजन सार्थक है या निरर्थक ? इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि जड़ के भीतर भी चेतन की विद्यमानता का दर्शन इस आधार पर विकसित किया जा सकता है । श्रद्धा के बल पर गोबर को गणेश बनाया जा सकता है । गोल पत्थर को शिव शालिग्राम । वे दर्पण की प्रतिच्छवि एवं गुम्बद की प्रतिध्वनि की तरह अपनी ही चेतना को इच्छानुरूप परिलक्षित कर सकती हैं । देवता या ईश्वर के रूप से भी । पर यहाँ पर ध्यान रखने योग्य है कि जिसने उस पर श्रद्धा का आरोपण नहीं किया है, उसके लिए यह निर्जीव पदार्थ एक बुत मात्र है । आकृति और शृंगार ही उसका आकर्षण हो सकता है । निजी आरोपण के अभाव में वह श्रद्धा, सम्वर्द्धन में सहायक नहीं हो सकती न जाँच-पड़ताल की किसी कसौटी पर खरी ही उतर सकती है ।

व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी, सतचेतन घन आनन्द राशी

जिस प्रकार कोई कलाकृति अपने निर्माता के अस्तित्व तथा व्यक्तित्व को प्रकट करती है, उसी प्रकार यह सृष्टि भी अपने रचयिता, अपने शिल्पी परमात्मा को व्यक्त करती है। जिसका निर्माण हुआ है, उसका निर्माता अवश्य है इसमें किसी प्रकार की शंका अथवा तर्क का कोई अवसर नहीं है।

यह समस्त सृष्टि एक सुनिश्चित एवं निर्धारित रचना है । इस रचना का अणु-अणु निश्चित नियमावली से अनुशासित है, नियंत्रित है । हजारों प्रकार की वनस्पतियाँ और लाखों प्रकार के प्राणी अपने-अपने नियमानुसार बनते और बिगड़ते रहते हैं, पर क्या मजाल कि उसकी रचना से तनिक-सी गड़बड़ी हो जाये ।

सूर्य समय पर निकलता, समय पर अस्त होता है । गुलाब के पौधे और गेंदे के पौधे में गेंदे के ही फूल खिलते हैं । आम के वृक्ष में आम और अमरूद के वृक्ष में अमरूद के ही फल लगते हैं । उसमें भी जिन वृक्षों से जिस प्रकार के फल अपेक्षित हैं उसी प्रकार के ही फल पैदा होंगे । एक रंग, एक आकार और एक स्वाद । खट्टे वृक्षों में खट्टे और मीठे में मीठे फल ही उत्पन्न होंगे । निश्चित भूमि, निश्चित जलवायु और निश्चित ऋतु में ही वे उत्पन्न होंगे और निश्चित समय पर ही समाप्त होंगे ।

एक जंगल में लाखों प्रकार की वनस्पतियाँ होती हैं । हजारों प्रकार के पेड़ उत्पन्न होते हैं, किन्तु उनकी एक भी पत्ती की बनावट में भूल नहीं होती । इमली से लेकर केले तक की पत्तियों का एक निश्चित आकार-प्रकार होता है । एक पेड़ की पत्ती संसार के किसी दूसरे पेड़ की पत्ती से नहीं मिलती । उनमें कोई न कोई किसी प्रकार को थोड़ा बहुत अन्तर अवश्य होगा । इतनी विविधता और इतने प्रकार जानने वाला वह कलाकार, वह शिल्पी, वह निर्माता कितना ज्ञानवान, कितना चैतन्य और कितना समर्थ होगा इसका अनुमान लगाना भी कठिन है । विश्व की इतनी बड़ी रचना को देखकर और उसके संचालन की आविष्कार विधि देखकर ऐसा कौन अभागा होगा जो रचयिता के अस्तित्व में संदेह करेगा ।

किसी भी वृक्ष का बीज देखिये । उसके स्तर-स्तर अलग कर डालिये । उसका रेशा-रेशा चीर डालिये । कहीं भी आपको वृक्ष का कोई आकार, उसकी कोई भी तस्वीर, उसके अन्दर भावी सम्भावना का कोई भी अस्तित्व दृष्टिगोचर न होगा । कितना विलक्षण है, कितना अद्‌भुत है कि जब वह धरती में बो दिया जाता है तब वह विविध प्रकार के वृक्ष को जन्म देता है । जब वृक्ष अस्तित्व में आता है, तब बीज मिट चुका होता है । किन्तु पुनः कई गुना होकर वह वृक्षों द्वारा उत्पन्न फलों में अपना अस्तित्व अपना स्वरूप प्रदान कर देता है । प्रकृति की यह प्रक्रिया कितनी विलक्षण, अद्‌भुत और विस्मयवर्धक है ? ध्यानपूर्वक इसको देखने, विचार करने और मनन करने की इसकी नियामक सत्ता, निर्माता और पालनकर्त्ता का ध्यान आये बिना नहीं रहता । कैसा अखण्ड अनुशासन है कि एक ही मिट्टी से ईख मिठास, मिर्च कड़ुवाहट और करौंदा खटास प्राप्त करता है ? मिट्टी को चाखिए । उसमें इस प्रकार का कोई रस कोई स्वाद आपको नहीं मिलेगा । इतने रस, इतने स्वाद और इतने गुण एक ही मिट्टी में कहाँ से आ जाते हैं ? यह सारे रस, आकार, प्रकार गुण आदि और कुछ नहीं एक उसी परमात्मा शिल्पी का अपना व्यक्तित्व एवं अपना अस्तित्व है । वह स्वयं धरती है, स्वयं मिट्टी है, स्वयं बीज वृक्ष और फल है । वह ही स्वयं रस, स्वाद और गुण भी है । वह सब कुछ है ।

संसार में लाखों पशु-पक्षी और जीव-जन्तु मौजूद हैं । सब एक दूसरे से भिन्न हैं । सभी के आकार-प्रकार बनावट, स्वभाव विचित्र हैं । जितने प्रकार के पक्षी उतने प्रकार के रंग, उतनी प्रकार की बोलियाँ और उतने ही प्रकार के गुण व स्वभाव । इन सब बातों में इतनी अनन्तता, इतनी असीमता और अपरिमितता एक उसी विराट की याद दिलाती है ।

रात-दिन प्रकाश-अन्धकार, गर्मी-सर्दी, जल-थल आदि सब उसी की साक्षी देते हैं, उसी के अस्तित्व को प्रकट करते हैं । अग्नि जलती है, पानी बुझाता है, वायु कंपित करती है, जीवन जिलाता है और मृत्यु मारती है । किसके आदेश से किसके संकेत से ? एक उसी बिन्दु के इंगित मात्र से यह सारे कार्यकलाप होते हैं, सारी प्रक्रियाएँ चलती हैं । बिना उसके संकेत के एक पत्ती भी नहीं हिल सकती, एक श्वास का भी आवागमन नहीं हो सकता ।

इतनी बड़ी रचना, इतनी महान कृति को उसने किस उद्देश्य, किस हेतु से, किसके लिये विनिर्मित किया है ? यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक गहन प्रश्न है । एक गूढ़ रहस्य है । मनीषियों का मत है कि यह सब एक उस ही परमात्मा ने अपने से-अपने में अपने लिये ही उत्पन्न किया है ।

सृष्टि में हर ओर से ओत-प्रोत परमात्मा और परमात्मा में हर प्रकार से समाहित यह सम्पूर्ण रचना, मनुष्य के समझने के लिये है । समझ कर उस रचयिता का ज्ञान प्राप्त कर आनन्द पाने के लिये है । अपने अंदर परमात्म- सत्ता के प्रति विश्वास बिठाकर उसे आस्तिक बनाने के लिये है ।

सृष्टि के प्रत्येक प्रत्यक्ष पदार्थ में जो अप्रत्यक्ष, निराकर विचित्र है, विलक्षणता है, कौतूहल है वही परमात्मा की एक झलक है जिसके सहारे मनुष्य उस चिदानन्द परमात्मा तक पहुँचता है । अपना हृदय विशाल कीजिये । अपनी दृष्टि निर्मल कीजिये और देखिये आपकी सृष्टि के प्रत्येक अणु में उस विराट् की झाँकी देखने को मिलेगी ।

परमात्मा सत्-चित् आनन्द अर्थात् सच्चिदानन्द रूप है । उसका उद्देश्य प्राणी मात्र को आनन्द प्रदान करना है । मनुष्य को छोड़कर संसार का हर प्राणी एक नैसर्गिक आनन्द को प्राप्त करता है । एक मनुष्य ही ऐसा है जो स्वत: आनन्दित नहीं दिखलाई देता । इसका स्पष्ट कारण यह है कि परमात्मा की इच्छा है कि वह उसके सम्पूर्ण स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करके आनन्द की अनुभूति प्राप्त करे, अर्थात् केवल आनन्द नहीं सच्चिदानन्द परमात्मा की पूर्ण अनुभूति करे । सत् चित् अर्थात् उसके अस्तित्व का, चेतन सत्ता का ज्ञान प्राप्त करके आनन्द की अनुभूति प्राप्त करे । अन्य पशु-पक्षियों की भाँति मनुष्य परमात्मा का ज्ञान प्राप्त किये बिना आनन्द को प्राप्त नहीं कर सकता । उसे सच्चा, उच्चस्तरीय आनन्द तब ही प्राप्त हो सकता है, जब वह परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर ले ।

अपनी इच्छा के अनुरूप ही उसने मनुष्य को उपादान भी दिये हैं । यह हैं अद्भुत शरीर और विलक्षणता विवेक-बुद्धि इनका उपयोग कर मनुष्य सहज ही परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर सकता है । अपनी विवेक शक्ति को विकृतियों से मुक्त कर मनुष्य यदि प्रत्यक्ष संसार को एक गहरी अनुभूति से देखे उस पर चिन्तन करे, तो सहज ही वह परमात्मा के अस्तित्व का ज्ञान प्राप्त कर सकता है ।

मनुष्य को आनन्द की खोज करने हेतु अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं । वह तो सच्चिदानन्द परमात्मा से उत्पन्न इस आनन्दमय सृष्टि में स्वयं ही ओत-प्रोत है । मनुष्य को केवल अपनी अनुभव शक्ति को प्रबुद्ध भर करना है । अनुभव शक्ति के प्रबोध के लिये उसे कोई विशेष तपस्या अथवा साधना नहीं करनी है । वह एक विस्मयमूलक दृष्टिकोण से उसकी रचना इस संसार को देखे और उसे परम शिल्पी की परम रचना समझकर उसका सम्मान करे । इतना भर कर लेने से इसकी अनुभव शक्ति स्वत: प्रबुद्ध हो उठेगी और एक बार प्रबुद्ध हो जाने पर वह शक्ति विलुप्त नहीं होगी ।

स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, फल-फूल जिसको भी देखें, एक विस्मय और कौतूहल से देखता हुआ निर्भयता की सराहना में गद-गद हृदय हुआ मनुष्य एक दिन बिना किसी विशेष साधन के परमानन्द को अवश्य पा लेता है । यही आत्मबोध है और यही परमात्मा के अस्तित्व की अनुभूति है ।

ईश्वर की समीपता और दूरी की परख

ईश्वर हमारे सबसे अधिक समीप है । संसार का कोई पदार्थ या व्यक्ति जितना समीप हो सकता है उसकी अपेक्षा ईश्वर की निकटता और भी अधिक है । वह हमारी साँस के साथ प्रवेश करता है और समस्त अंग अवयवों में प्राण वायु के रूप में जीवन का अनुदान प्रतिक्षण प्रदान करता है; यदि इसमें क्षण भर का भी व्यवधान उत्पन्न हो जाय तो मरण निश्चित है ।

हृदय की धड़कन उसी की रासलीला है । सम्भावित सोलह हजार नाड़ियों के साथ वही कृष्ण रमण करता है । माँसपेशियों के आकुंचन में गुदगुदी उसी के द्वारा उत्पन्न की जाती है । अन्त:करण में उसी का गीता प्रवचन निरन्तर चलता रहता है । ज्ञान-विज्ञान की विशालकाय पाठशाला उसी ने हमारे मस्तिष्क में चला रखी है । उसका अध्यापन ऐसा है जो कभी बन्द ही नहीं होता ।

जीवकोषों के भीतर चलने वाली गतिविधियों का सूक्ष्म उपकरणों से निरीक्षण किया जाय तो पता लगेगा कि समस्त ब्रह्माण्ड के विशाल परिकर में जो हलचलें हो रही हैं वे सभी बीज रूप में इन नन्हीं-सी कोशिकाओं में गतिशील हैं । "जो ब्रह्माण्ड में, सो पिण्ड में" वाली उक्ति अब किम्वदन्ती नहीं रही अब उसकी पुष्टि एक सुनिश्चित सच्चाई के रूप में हो चुकी है । मनुष्य का व्यक्तित्व वस्तुत: विराट् ब्रह्म का ही एक संक्षिप्त संस्करण है । पर वह मनुष्य का शरीर धारण करके अवतार लेता रहता है यह सत्य है इसी प्रकार यह भी एक स्वत: सिद्ध सच्चाई है कि मनुष्य अपने चरम विकास की स्थिति में पहुँचकर परमेश्वर बन सकता है । मानवी संरचना कुछ है ही ऐसी अद्भुत कि उसमें ईश्वर की समग्र सत्ता की अनुभूति कर सकना सर्वथा सम्भव है ।

इतना सब होते हुए भी हम ईश्वर से अरबों-खरबों मील दूर हैं । उसकी समीपता की अनुभूति के साथ-साथ जिस परम सन्तोष और परम आनन्द का अनुभव होना चाहिए वह कभी हुआ ही नहीं । ईश्वर की समीपता को जीवन-मुक्ति भी कहते हैं । उस स्थिति की सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य इन चार रूपों में वर्णन किया गया है । ईश्वर के लोक में रहना-उसके समीप रहना-उस जैसा रूप होना- उसमें समाविष्ट हो जाना यह चारों ही अवस्थाएँ उस स्थिति की ओर संकेत करती हैं जिसमें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य की भीतरी चेतना और बाहरी क्रिया उतनी उत्कृष्ट बन जाती है-जितनी कि ईश्वर की होती है ।

अपनी चेतना-सत्ता को ईश्वरीय चेतना में घुला देने उसके सदृश बना देने में किसे कितनी सफलता मिली इसका परिचय उसके चिन्तन और कर्तृत्व का स्तर परख कर सहज ही प्राप्त किया जा सकता है । कौन भव-बन्धनों में जकड़ा पड़ा है और किसने जीवन मुक्ति प्राप्त कर ली? इसकी परीक्षा एक ही कसौटी पर हो सकती है कि अहंता का क्षेत्र कितना सीमित अथवा विस्तृत है । जो निकृष्ट स्तर की बातें सोचता है जिसकी अभिलाषाएँ पाशविक हैं उसे भव-बन्धन में आबद्ध नर-पशु कहा जाएगा किन्तु जिसने अपनी चेतना को परिष्कृत एवं विस्तृत बनाकर सबमें अपने को संव्याप्त समझा, उसने देव योनि प्राप्त कर ली ऐसा समझा जाएगा ।

आँखों से देव-दर्शन के लिए की जाने वाली तीर्थयात्रा और सूक्ष्म नेत्रों से प्रभु-दर्शन के लिए होने वाली ध्यान साधना का अपना स्थान है और अपना महत्व । इन सीड़ियों को पार करते हुए हमें पहुँचना उसी स्थान तक पड़ेगा जहाँ ईश्वर की समीपता मिलती है-उसी के सदृश उदार अन्तःकरण और पवित्र व्यक्तित्व का आलोक जगमगाता है । हम तब तक ईश्वर से असंख्य योजन दूर रहेंगे जब तक अपनी चेतना को ईश्वरीय चेतना के सदृश उदात्त बनाने की आवश्यकता अनुभव नहीं करते । समीपता तो इसी तथ्य पर निर्भर है कि हम अपनी सत्ता को ईश्वर के समान ही सहृदय और सचेतन बनाने में तत्परतापूर्वक प्रयत्नरत रह रहे हैं ।

हम परमात्म सत्ता से ओत-प्रोत हैं

श्रुति कहती है-'**वैषम्य नैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्, तथा हि दर्शयति**'-परमात्मा के न पक्षपात है और न क्रूरता । किन्तु उसे प्राणियों के धर्म-अधर्म की अपेक्षा रहती है । वह शरीरधारियों के शरीरों की रचना करता है, उनमें अवस्थित रहकर उनकी जीवन-प्रणाली का संचालन करता है । इससे अधिक वह और कुछ भी नहीं करता । कर्म करने की स्वतन्त्रता देकर वह जीवों के कर्मों का दृष्टा भर बनकर रहता है । कर्म जीव के अधीन है और फल ईश्वर के, जीव के कर्म ही उसे शुभ-अशुभ परिणाम भोगने-विभिन्न योनियों में जाने के लिए विवश करते हैं । उन्नति और अवनति का, सुख और दुख का कारण भी वह स्वयं ही है, इसमें न तो ईश्वर का पक्षपात है और न क्रूरता ।

अन्तःप्रेरणा के धागे से बँधा हुआ शरीर और मन कर्म करता है और उन कर्मों से जुड़ी हुई उचित-अनुचित की प्रक्रिया जीवन का भला-बुरा स्वरूप विनिर्मित करती है । इसी दृश्य जीवन का परिणाम परिपाक दुखदायी अथवा सुखदायी परिस्थितियों के रूप में सामने आता है । यही है दैवी शाप वरदान । इसे ईश्वर की इच्छा या विधान कहा जाता है । इस कथन में इतना ही सत्य है कि ईश्वर की इच्छा यही रही है कि अन्तःसंस्थान को जो जिस स्तर का बनाये उसकी क्रिया-प्रक्रिया उसी स्तर की बने और तदनुसार ही उसे फल भोगने पड़ें । इस विधि-व्यवस्था को ईश्वर इच्छा कहा जाय तो उचित है, किन्तु यदि अन्तः-प्रेरणा को भला-बुरा बनाना या किसी को शुभ किसी को अशुभ मार्ग पर चलने के लिए-सुख या नरक में गिरने को बलात् घसीटने वाली ईश्वर इच्छा की बात कही जाय तो वह पूर्णतया असत्य है । इससे तो ईश्वर अन्यायी-पक्षपाती और अन्धेर, अव्यवस्था फैलाने वाला मनमौजी कहा जाएगा । जबकि वह वैसा है कदापि नहीं । ईश्वर इच्छा इतनी ही है कि आत्मविघातकों और आत्म-निर्माताओं को यथोचित दण्ड-पुरस्कार मिलने की विधि-व्यवस्था सुनिश्चित और सुव्यवस्थित रीति से चलती रहे ।

बन्धन और मोक्ष का कारण मन है । मन का बिगाड़ और सुधार ही पतन एवं उत्थान का कारण है । मन ही हमें स्वर्ग और नरक की सैर कराता है इसलिए तत्वदर्शन का सारा प्रयास व्यक्ति का मन का परिष्कार करने की प्रेरणा देने पर केन्द्रित है ।

गीता कहती है-

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्तै निर्विषयं स्मृतम् ।।

अर्थात- मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है। लिप्सा और लालसाओं में आसक्त मन ही बन्धन का कारण है । विषयासक्ति से विरत मन ही मोक्ष का आधार है ।

योगवासिष्ठ कहती है-

शुद्धो मुक्तः सदैवात्मा नैव बध्येत् कर्हिचित् ।
बन्धमोक्षौ मनस्संस्थौ तस्मिन् शान्ते प्रशाम्यतः ।।

अर्थात्- आत्मा सदा शुद्ध और मुक्त है। उसे बन्धन में कौन बाँध सकता है ? मन का माया में उलझ जाना ही बन्धन है । जब वह उलझन सुलझ कर अशान्ति शान्ति में परिणत हो जाती है तो फिर सर्वत्र शान्ति ही अनुभव होती है ।

'अहं ब्रह्मास्मि' सूत्र का अर्थ यह है कि मैं ब्रह्म हूँ । पर इसमें यह भाव नहीं है कि केवल मैं ही ब्रह्म हूँ और कोई नहीं । वरन् यह प्रतिपादन है कि इस विश्व में सर्वत्र ब्रह्म चेतना ही विद्यमान है और उसका एक घटक होने के नाते में भी ब्रह्म ही हूँ । "एतदात्मिदं सर्वम्" यह समस्त विश्व ब्रह्म रूप है । वह सर्वव्यापी ब्रह्म अपने में भी परिपूर्ण है । तब उसे अन्यत्र ढूँढ़ने जाने का श्रम क्यों किया जाय ? ब्रह्म जिज्ञासा के लिए उत्सुक श्वेतकेतु को यही बताया गया कि 'स आत्मा तत्वमसि श्वेतकेतोः' अर्थात् हे श्वेतकेतु वह परमात्मा तू ही है ।

योगवासिष्ठ के अनुसार-भगवान रामचन्द्र जी को संसार में तीव्र वैराग्य हुआ और वे विरक्त जीवन जीने की तैयारी करने लगे तो महर्षि वशिष्ठ ने उन्हें समझाया राम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तुम संसार का त्याग क्यों करते हो ? संसार क्या ब्रह्म से भिन्न वस्तु है ।

गन्ध वायु में मिलती है फिर भी वायु निर्लिप्त रहती है । आकाश में गन्ध व धुँआ मिलते रहते हैं किन्तु आकाश निर्मल ही रहता है । जगत के प्रपंच में लोक-व्यवहार करते हुए भी आत्मा की निर्मलता बनी रह सकती है ।

वेदान्त दर्शन के अनुसार यह ब्रह्म सत्ता तीन प्रकार की है (१)पारमार्थिक (२)व्यावहारिक (३)प्रतिभासिक। निर्गुण, निराकार, अचिन्त्य, स्रष्टा, दृष्टा, साक्षी, नियन्ता पारमार्थिक सत्ता है । साकार ईश्वर जीव, जगत, परलोक, स्वर्ग, नरक, शाप, वरदान, अवतार देव, आदि लोकव्यवहार में प्रयुक्त व्यावहारिक सत्ता है । स्वप्न की तरह वस्तुओं में प्रतिभासित, माया समाविष्ट प्रतिभासित सत्ता है। बाजीगर की तरह अपने में से ही विभिन्न पदार्थों का सृजन और अपने में ही लीन करके क्रीड़ा-कल्लोल प्रक्रिया इसी प्रतिभासिक-सत्ता का स्वरूप विस्तार है ।

वेदान्त की शिक्षा है कि भगवान हममें वैसा ही ओत-प्रोत है जैसा कि समस्त विश्व में । उसी की सम्पदाओं का हम उपभोग करते हैं । हम उस सर्वव्यापी और सर्वशक्ति मान सत्ता के ही कल-पुर्जे हैं । अविनाशी और अनन्त प्रभु के ही हम परम प्रिय बाल-बच्चे हैं । यह मान्यता यदि गम्भीरता पूर्वक सुनी-समझी जाय तो अपने सम्बन्ध में विचार करने के लिए एक नवीन दृष्टि मिलती है। उसी दर्शन को यदि व्यवहार में अपनाया जाय तो फिर दिव्य जीवन ही जिया जा सकेगा । महामानव की भूमिका में ही हमारी गति-विधियाँ चल रही होंगी ।

वेद का अर्थ है ज्ञान और अन्त का अर्थ है चरम परिणति वेदान्त अर्थात् ज्ञान की चरम सीमा । इस लक्ष्य तक पहुँच कर और कुछ इस जीवन में-इस संसार में प्राप्त करने को शेष नहीं रह जाता । वेदान्त-दर्शन किसी सम्प्रदाय, जाति या वर्ग से बँधा हुआ नहीं है । उसे ब्रह्मविद्या की पृष्ठभूमि के रूप में ही माना, समझा जाना चाहिए । सबमें एक ही आत्मा को मान लेने के उपरान्त भिन्नता का और कोई कारण नहीं रह जाता । फिर उसे किसी विभेद या वर्ग को सीमा में कैसे अवरुद्ध किया जा सकता है । "एकम् सद्विप्राः बहुधा वदन्ति" उस एक को ही विद्वानों ने अनेक प्रकार से कहा है का सिद्धान्त मानने वालों का स्वरूप मतभेद में कुछ आपत्ति हो ही नहीं सकती ।

अनन्त ईश्वर की समीपता से अनन्त सामर्थ्य की प्राप्ति

यजुर्वेद में एक मन्त्र आता है-

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमि सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठत् दशाङ्गुलम् ॥

यजु ३१/१

ईश्वर अनन्त मस्तिष्कों वाला, अनन्त आँखों और अनन्त पैरों वाला है । सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त होते हुए भी उसमें ऊपर है । अर्थात् वह परमात्मा सृष्टि के भीतर और बाहर सभी जगह व्याप्त है ।

जिस वस्तु को हम अनुभव नहीं कर सकते अथवा तर्क द्वारा सिद्ध नहीं कर सकते, वह अनन्त है । ईश्वर अनन्त है । काल, समय एवं क्षेत्र की परिधि में बँधी होने के कारण सांसारिक वस्तुओं की अपनी सीमाएँ हैं, उनका अन्त है । पहाड़ों की चोटियों पर दृष्टि दौड़ाने पर उनका अन्त स्पष्टतः दीखता है । न भी दिखायी दे तो भी यह अनुभव होता है कि उसका कभी न कभी निर्माण हुआ है और एक न एक दिन उसका अन्त होगा । इस बात की पुष्टि तर्क भी करता है । समुद्र की भी अपनी सीमाएँ हैं । अपार दिखायी पड़ते हुए भी वह पार रहित नहीं है ।

अनन्तता का भाव मनुष्य के हृदय में जन्म के साथ ही मिला है, जिसको वह अनुभव तो करता है किन्तु उसको भली प्रकार जान सकना असम्भव है । जो बात समझ में आ गई वह अनन्त नहीं रही ।

परमात्मा की कृति यह सृष्टि इतनी विराट एवं अनन्त रहस्यों से युक्त है जिसका एक अंश भी अब तक जाना नहीं जा सका । जिन पदार्थों, रचनाओं को हम देखते हैं, उनका ही स्वरूप अब तक स्पष्ट नहीं हो सका है । सृष्टि की प्रत्येक घटना तथा वस्तु अपने अन्दर अनन्त नियमों को छिपाये हैं । विज्ञान द्वारा जितना ज्ञात होता है अविज्ञात का क्षेत्र उसी अनुपात में बढ़ता जाता है । इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि विज्ञान अब तक पदार्थ सत्ता का स्पष्ट स्वरूप तक निर्धारित नहीं कर सका है । कभी यह मान्यता थी कि पदार्थ का सबसे छोटा कण परमाणु है । नयी शोधों ने इस मान्यता को निरस्त कर दिया । प्रोट्रोन, इलेक्ट्रान, न्यूट्रान, पाजीट्रान जैसे सूक्ष्म कणों का अस्तित्व उभर कर सामने आया । कालान्तर में कणों की मान्यता को ऊर्जा का स्वरूप विज्ञान ने प्रदान किया । स्थिति अब यहाँ तक जा पहुँची है कि जड़-चेतन की मध्यवर्ती 'क्वान्टा' जो विचारशील शक्ति-प्रवाह है की बात परमाणु के सन्दर्भ-विवेचन में स्वीकार की जाने लगी है । कौन जाने आगे चलकर नये तथ्यों का रहस्योद्घाटन हो और यह मान्यता भी धराशायी हो जाय ।

एक सामान्य परमाणु अपने अन्दर असंख्यों रहस्य छिपाये है। इस विराट् सृष्टि की कल्पना मात्र से बुद्धि हतप्रभ रह जाती है। ग्रह-नक्षत्रों से युक्त अनेक सौरमण्डल, आकाश गंगाएँ जिनका वर्णन शास्त्रों में आता है, के रहस्यों को जान सकना तो अभी बहुत दूर की बात है। उनकी कल्पना कर सकना भी कठिन है । इनकी स्थिति एवं दूरी की सही जानकारी प्राप्त कर सकना सम्भव नहीं हो सकता है, उनके स्वरूप को समझ सकना बहुत आगे की बात है ।

लगता है परमात्मा ही नहीं उसकी सृष्टि भी अचिन्त्य और अनन्त है । सृष्टि का स्वरूप यदि स्पष्ट हो जाय तो भी उसके प्रवाह की अनन्तता से इन्कार नहीं किया जा सकता । तात्पर्य यह कि सृष्टि के पहले भी सृष्टि थी और बाद में भी होगी । इससे पहले भी एक सृष्टि तथा इसके पश्चात् भी सृष्टि की कल्पना करते जाएँ तो यह क्रम कभी समाप्त नहीं होता । सृष्टि का प्रवाह काल इस प्रकार अनादि और अनन्त दोनों हैं । अनादि से चली आ रही सृष्टि अनन्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की ओर प्रवाहित हो रही है, जिस प्रकार रात के बाद दिन और फिर रात का क्रम चलता रहता है । जन्म, मरण, प्रलय, सबका प्रवाह कभी अवरुद्ध नहीं होता । इसी कारण संसार को जीवन-चक्र कहा गया है । जिस प्रकार चक्र के आदि और अन्त का पता लगाना मुश्किल है उसी प्रकार सृष्टि के अनन्त प्रवाह को काल की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता है ।

सीमा की दृष्टि से देखा जाय तो सृष्टि का अन्त नहीं है । सृष्टि रूपी शृंखला की कड़ियों का आदि अन्त नहीं दिखाई पड़ता, इस बात पर विचार किया जाय कि मनुष्य सृष्टि के कितने अंशों को जान सका है तो उसकी अल्पज्ञता को देखते हुए निराशा ही हाथ लगती है, संसार के समस्त ज्ञान का योग किया जाय तो भी वह सृष्टि के विराट् अविज्ञात ज्ञान के समक्ष उतना ही है जितना कि पहाड़ के समक्ष कंकड़ों का एक छोटा ढेर ।

अथर्ववेद का ऋषि कहता है–

"यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति" ।

"वह ईश्वर भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों से परे है ।"

ईश्वर की अनन्त सत्ता का यह तो स्थूल स्वरूप रहा जिसका एक अंश भी अब तक जान सकना मनुष्य के लिए सम्भव नहीं हो सका है । सृष्टि के स्थूल स्वरूप की तुलना में अदृश्य चेतन-जगत कहीं अधिक अद्भुत एवं रहस्यों से युक्त है । शास्त्रों में वर्णन है–

'एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यमृतं दिवि ।।'

परमात्मा के वर्णित की अपेक्षा अवर्णित स्वरूप असंख्य गुना अधिक है । समस्त सृष्टि उसका एक स्वल्प भाग है । बड़ा भाग तो अमृत है । अमृत का अभिप्राय यहाँ चेतना की उन परतों से है जो स्थूल सृष्टि से अलग सूक्ष्म जगत में क्रीड़ा-कल्लोल करता रहता है तथा जीवन मरण से रहित है । वस्तुतः यह अमृत्व ही अनन्तता है । उसे समझ सकना तो और भी कठिन है । मानव शरीर में कार्य कर रही चेतन परतों को ही अब तक न ही जाना जा सका है । उस परम चेतना को समझ पाना कठिन ही नहीं असम्भव ही है । ऋषियों ने इसी कारण उस परमात्मा को कहा था 'नेति-नेति' ।

जीव अल्प है उसकी सामर्थ्य की अपनी सीमाएँ हैं । परमात्मा अनन्त है । उसकी शक्ति भी अपरिमित है । उसकी कल्पना मात्र से हृदय आन्दोलित एवं मस्तिष्क चकित हो जाता है । उसका सान्निध्य प्राप्त किया जा सके, अनन्तता से सम्बन्ध जोड़ा जा सके तो जिस प्रकार पानी की बूँद गंगा में मिलकर गंगाजल बन जाती है, उसी प्रकार जीव की सामर्थ्य भी अनन्त हो सकती है । उस मिलन की स्थिति में कितना आनन्द एवं सन्तोष मिलता है इसका वर्णन नहीं किया जा सकता ।

अल्प जीव का अनन्त-ब्रह्म के साथ सम्बन्ध जोड़ना ही आत्म-विकास है । क्रमिक विकास की श्रेणियों में होते हुए जीव उस अनन्तता का अनुभव करता है । उस अनन्तता की पूर्ण अनुभूति को ही मुक्ति कहा गया है ।

उस अनन्त सत्ता के साथ सम्बन्ध जोड़ा जाय । उसके सम्पर्क-सान्निध्य का लाभ उठाया जा सके तो मनुष्य वह सब कुछ प्राप्त कर सकता है, जिसके लिए उसे जीवन का अनुपम उपहार मिला है ।

हम ईश्वर के होकर रहें-उसी के लिये जियें

परमेश्वर को अपनी इच्छानुसार चलाने के लिए विवश न करें । वरन् उसकी इच्छापूर्ति के निमित्त स्वयं बने। अब तक के उपलब्ध अनुदान कम नहीं, उन पर सन्तोष करना चाहिए और यदि अधिक की अपेक्षा है तो बुद्धि और पुरुषार्थ के मूल्य पर उसके लिये प्रयत्न करना चाहिए ।

इच्छाओं और कामनाओं की पूर्ति के लिये भगवान के सम्मुख गिड़गिड़ाना अशोभनीय है । जो मिला है उसी का सदुपयोग कहाँ कर सके जो और अधिक माँगने की हिम्मत करें । कर्मफल भोगने के लिये हमें साहसी और ईमानदार व्यक्ति की तरह तैयार रहना चाहिए । गलती करने में कभी जो दुस्साहस दिखाया था, आज उसका एक अंश प्रस्तुत कर्मफल को भोगते समय भी दिखाना चाहिए । विशेषतया तब जबकि कर्मफल अनिवार्य है । उस विधान से कोई छूट नहीं सकता । स्वयं भगवान तक नहीं बच सके तो हम ही क्यों साहस खोकर दीनता प्रकट करें । जो सहना ही ठहरा– उसे हँसते हुए बहादुरी के साथ क्यों न सहें ।

कर्मफल से छुटकारे के लिये, पात्रता से अधिक उपलब्धियों के लिये प्रायः लोग ईश्वर का दरवाजा खटखटाते हैं और पूजा-परिचर्या की व्यवस्था बनाते हैं । यह भक्ति नहीं है । न इसमें श्रद्धा का पुट है । ऐसी ओछी दृष्टि से की गई उपासना से आत्मकल्याण का पथ-प्रशस्त नहीं होता और न वह परमेश्वर को ही प्रभावित करती है ।

ईश्वर को अपना आज्ञानुवर्ती बनाने की अपेक्षा यह उचित है कि हम ईश्वर के आज्ञानुवर्ती बनें । ईश्वर को अपनी इच्छानुसार चलाने और अपनी नियम व्यवस्था बिगाड़ देने के लिये कहने की अपेक्षा यह उचित है कि हम ईश्वर की इच्छानुसार चलें और अपनी वासना, तृष्णाओं का ताना-बाना समेट लें । ईश्वर को अपना अनुचर बनाने की अपेक्षा यही उचित है कि हम उसके अनुचर बनें । मालिक की तरह ईश्वर पर हुक्म चलाना उचित नहीं । उपयुक्त यह है कि हम उसके आदेशों को समझें और तदनुरूप अपनी गतिविधियों का पुनःनिर्माण पुनर्निर्धारण करें ।

आस्तिकता का अर्थ केवल ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास करना ही नहीं वरन् यह भी है कि उसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निर्देशों का पालन यथावत किया जाये, उपासना का अर्थ समृद्धि और सुविधा के लिये गिड़गिड़ाना नहीं वरन् यह है कि हमारा वह शौर्य सजग हो जिसमें अंधकार में भटकते लोगों का अनुसरण छोड़कर ईश्वर के पीछे एकाकी चल सकें।

अच्छा हो हम ईश्वर के लिये जियें-उसके बनकर रहें और उसकी प्रेरणाओं का अनुसरण करें। उपासना का अर्थ है-पास बैठना। पास बैठें और बिठायें। जीवन उद्देश्य और सदुपयोग का मार्ग पूछें और उस पर चलने की अपनी तत्परता बनायें। बैठने की दूरी क्रमशः घटनी चाहिए और निकटता इतनी बढ़नी चाहिए कि अपना आपा-परमेश्वर में तल्लीन हो जाय और उस परमज्योति से अपना कण-कण जगमगाने लगे। अपनी आकांक्षाओं में ईश्वरीय आकांक्षा घुली रहे। हम वही चाहना करें-वहीं सोचें जो ईश्वरीय-प्रेरणा प्रवाह के अनुकूल हो। हम वही करें जो ईश्वर को अपेक्षित है। मन का शासन अस्वीकार करके-ईश्वर के हाथों अपने को सौंप दें और उसी के संकेतों पर अपने चिन्तन और कर्तृत्व की दिशा का निर्धारण करें।

अपने लिये नहीं हम ईश्वर के लिये जिएँ। यह घाटे का नहीं सबसे अधिक लाभ का कदम है। यह निश्चित है कि जो ईश्वर का होकर रहता है ईश्वर भी उसी का हो जाता है।

* * *

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विज्ञान भी स्वीकारता है अब परब्रह्म की सत्ता को

विज्ञान ईश्वर के अस्तित्व से इनकार नहीं कर सकता

संसार की प्रत्येक वस्तु का कोई न कोई निर्माता होता है तभी वह बनती है । इतने बड़े विश्व का भी कोई न कोई निर्माता होना चाहिए । सृष्टि की विभिन्न वस्तुओं में से प्रत्येक में अपने-अपने नियम क्रम पाये जाते हैं । उन्हीं के आधार पर उनकी गतिविधियाँ संचालित होती हैं । यह नियम न होते तो सर्वत्र अस्त-व्यस्तता और अव्यवस्था दृष्टिगोचर होती । इन नियमों का निर्धारणकर्त्ता कोई न कोई होना चाहिए । जो भी शक्ति इस निर्माण एवं नियन्त्रण के लिए उत्तरदायी है वही ईश्वर है । वस्तुओं का उगना, बढ़ना, जीर्ण होना, मरना और फिर उनका नवीन रूप धारण करना, यह परिवर्तनक्रम भी बड़ा विचित्र किन्तु विवेकपूर्ण है । इस प्रगति-चक्र को घुमाने वाली कोई शक्ति होनी चाहिए । यह जड़ता का स्वसंचालित नियम नहीं हो सकता ।

विज्ञान इस निष्कर्ष पर पहुँच गया है कि संसार का मूल-तत्व एक है । एक ही ऊर्जा अपनी विभिन्न चिंगारियों के रूप में, विभिन्न दिशाओं में, विभिन्न रंग-रूप में उछल-कूद कर रही है । यहाँ आतिशबाजी का तमाशा हो रहा है । कुशल शिल्पी बारूद को कई उपकरणों के साथ बनाकर कई प्रकार के बारूदी-खिलौने बना देते हैं, उनमें से कोई आवाज करता है, कोई चिंगारियाँ उड़ाता है, कोई रंग-बिरंगी रोशनी करता है, कोई उड़ता-उछलता है । इन हलचलों की इस भिन्नता और विचित्रता के रहते हुए भी वस्तुतः बारूद का मूल-तत्व एक है । यही बात इस संसार में दृश्यमान भिन्न-भिन्न आकृति-प्रकृति के पदार्थों के बारे में लागू होती है । उनके स्वरूप और गुण, धर्म अलग हैं तो भी वे जिस सत्ता से उत्पन्न होते हैं वह व्यापक और एक है ।

विज्ञान ने कभी यह नहीं कहा कि-'ईश्वर नहीं है ।' उसने केवल इतना ही कहा-उसकी अनुसंधान प्रक्रिया की पकड़ में ईश्वर जैसी कोई सत्ता नहीं आती । इन्द्रिय-बोध के आधार पर सूक्ष्मदर्शी उपकरणों की सहायता से प्रयोगशालाओं में वैज्ञानिक अनुसन्धान चलते हैं । इस परिधि में जो कुछ आता है वही विज्ञान का प्रतिपाद्य विषय है । उसकी अपनी छोटी सीमा और मर्यादा है । उससे जितना कुछ ज्ञान पकड़ पाया जाता है उसे ही प्रस्तुत करना उसका विषय है । इस मर्यादा में यदि ईश्वर नहीं आया है तो उसका अर्थ यह नहीं कि उसकी सत्ता है ही नहीं ।

विज्ञान अपने शैशव से क्रमशः विकसित होता हुआ किशोरावस्था में प्रवेश कर रहा है। अभी उसे परिपक्व प्रौढ़ एवं वृद्ध होने में बहुत समय लगेगा । उसे अभी तो आज की गलती कल सुधारने से ही फुरसत नहीं । बाल-बुद्धि आज जिस बात का जोर-शोर से प्रतिपादन करती है उसके आगे के तथ्य सामने आने पर पूर्व मान्यताएँ बदलने की घोषणा करनी पड़ती है । यह स्थिति सम्भव है आगे न रहे, जब विज्ञान अपनी किशोरावस्था पार करेगा और यौवन की परिपक्वता में प्रवेश करेगा तो उसे ऐसे आधार भी हाथ लग जाएँगे जो आज के भौंड़े उपकरणों की अपेक्षा प्रकृति की अधिक सूक्ष्मता की थाह ला सकें । तब सम्भवतः उन्हें पदार्थ की भौतिक-शक्ति के अन्तराल में छिपी हुई चेतना की परतें भी दृष्टिगोचर होने लगेंगी । आज भी इसकी सम्भावना स्वीकार की जा रही है इसलिए ईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि न होने पर भी विज्ञान अन्यान्य अनेक सम्भावनाओं की तरह ईश्वर की सम्भावना का भी खण्डन नहीं करता, वह केवल नम्र शब्दों में इतना ही कहता है अभी प्रयोगशालाओं ने अपनी पकड़ में ईश्वर को नहीं जकड़ पाया है । उसका खण्डन इसी सीमा तक है । विज्ञानी नास्तिकता दुराग्रही नहीं है वह अपनी वर्तमान स्थिति का विवरण मात्र प्रस्तुत करती है ।

ईश्वर की सत्ता को प्रमाणित करने के लिए यह आधार ही काफी है कि सृष्टि के प्रत्येक घटक को एक नियम और क्रम के बन्धन में बँधकर रहना पड़ता है । कभी-कभी भूकम्प, तूफान, उल्कापात जैसी घटनाएँ प्राणियों के पेट से विचित्र आकृति-प्रकृति की सन्तानों का होना जैसे व्यतिक्रम दीख पड़ते हैं, पर गहराई से विचार करने पर वे भी ऐसे नियम-कानूनों के आधार पर होते हैं जिन्हें आमतौर से हम नहीं जानते पर वे अपना काम करते हैं और जब अवसर आते हैं तो विलक्षण स्थिति उत्पन्न करते हैं ।

'दि मिस्टीरिस यूनीवर्स' ग्रन्थ के लेखक सर जेम्स जोन्स ने अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि-"इस ब्रह्माण्ड का सृष्टा कोई विशुद्ध गणितज्ञ रहा होगा । उसने न केवल मानव-प्राणी की वरन् अन्य सभी जड़-चेतन कहे जाने वाले प्राणियों और पदार्थों की संरचना में गणित की उच्चस्तरीय विद्या का पूरी तरह प्रयोग किया है । यदि इसमें कहीं कोई भूल रह जाती तो हर चीज बनने से पूर्व ही बिखर जाती । प्राणी जीवन धारण करने से पूर्व ही मर जाते और ग्रह-पिण्ड अपना पूर्ण रूप बनाने से पूर्व एक-दूसरे के साथ टकराकर चूर-चूर हो जाते । यह सृष्टा के गणित-ज्ञान का चमत्कार ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है कि न केवल पृथ्वी वरन् समस्त ब्रह्माण्ड एक क्रमबद्ध प्रक्रिया के साथ गतिशील है ।''

न्यूटन की खोजें किसी समय अत्यन्त सत्य मानी गई थीं, पर अब परिपुष्ट विज्ञान ने उन्हें क्षुद्र, असामयिक एवं व्यर्थ सिद्ध कर दिया है । गुरुत्वाकर्षण की खोज किसी समय एक अदभुत उपलब्धि थी अब आइन्स्टीन का नवीनतम सिद्धान्त प्रामाणिक माना गया है और गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त को बाल-विनोद ठहराया गया है । आइन्स्टीन के अनुसार देश, काल और एकीकरण की-स्पेश, टाइम और काजेशन-के एकीकरण सिद्धान्त की एक वक्राकृति मात्र है, जिसे हम पृथ्वी का घुमाव मानते हैं । यह इस वक्रता के दो उपांशों का आनुपातिक सम्बन्ध भर है । इसी से पृथ्वी घूमती दीखती है और उसकी गतिशीलता की अनुभूति में एक कड़ी गुरुत्वाकर्षण की भी जुड़ जाती है । यह आकर्षण तथ्य नहीं वरन् हलचलों की एक भोंड़ी-सी अनुभूति मात्र है ।

कोई चित्रकार यदि अन्य किसी ग्रह पर बैठकर पृथ्वी का रंगीन चित्र बनाये तो वह रंग-बिरंगे दृश्यों का एक-समतल दृश्य ही होगा । गोला भी बनाया तो वह एक पक्षीय होगा । पूरा गोला इस तरह बनाया जाना असम्भव है, जो दोनों ओर की स्थिति को एक साथ दिखा सके । कल तक लम्बाई-चौड़ाई बताने वाले चित्र ही तैयार होते थे । गहराई का आभास उनसे यत्किंचित ही होता था । अब 'थ्रीडायमेन्शन' स्थिति देखने की भी सुविधा बन चली है और गहराई को देख सकना भी सम्भव हो गया है । आगे चित्रकला के विकास में कई और आयाम जुड़ेंगे, पर अभी तो वे सम्भव नहीं इसलिए जो भी चित्र बने हैं वे अधूरी दृश्य प्रक्रिया पर निर्भर हैं । अन्य ग्रह पर बैठकर बनाया गया पृथ्वी का चित्र यहाँ की हलचलों की सही जानकारी दे सके यह सम्भव नहीं । भले ही उस ग्रह के निवासी उस चित्र को कितना ही सर्वांगपूर्ण क्यों न मानें ।

हमारे पूर्वज धरती को समतल मानते थे । पीछे पता चला कि वह गोल है । इसके बाद यह जाना गया कि वह घूमती भी है और परिक्रमा भी करती है । इसके उपरान्त यह जाना गया कि वह अपने अधिष्ठाता तथा अन्य भाइयों के साथ किसी महासूर्य की परिक्रमा के लिए भी दौड़ी जा रही है और वह महासूर्य किसी अतिसूर्य की परिक्रमा में निरत है । अपने सौरमण्डल जैसे अन्य कितने ही सौरमण्डल उस महासूर्य सहित अतिसूर्य की प्रदिक्षणा में निरत हैं । मालूम नहीं यह महा-अति और अत्यन्त अति का सिलसिला कहाँ जाकर समाप्त हो रहा होगा और पृथ्वी के भ्रमण की कितनी हलचलों का भाग्य उन अचिन्त्य परिक्रमाओं के साथ जुड़ा होगा । कुछ दिन पूर्व यह भी पता लगा है कि पृथ्वी लहकती और थिरकती भी है । सीधे-सादे ढंग से अपनी धुरी पर घूमती भर नहीं है वरन् वह कई प्रकार की कलाबाजियाँ भी दिखाती है । साँस लेती हुई फूलती और पिचकती भी है, इससे उसकी भ्रमणशीलता में अन्तर आता है तद्नुसार गुरुत्वाकर्षण भी घटता-बढ़ता है ।

अपनी आकाश-गंगा में हमारे सौरमण्डल जैसे लाखों सौरमण्डल हैं । इन सौरमण्डल के अपने-अपने ग्रह-उपग्रह हैं । समूचे ब्रह्माण्ड में कितनी आकाश-गंगाएँ हैं ? इस प्रश्न का उत्तर वैज्ञानिक अरबों में गिनते हैं । प्रत्येक आकाश गंगा कितने सौरमण्डल अपनी कमर के साथ रस्सों से बाँधे हैं और वे सौरमण्डल कितने ग्रहों को जकड़े बाँधे बैठे हैं और उन ग्रहों के साथ कितने उपग्रह चिपके हैं इस सारे पिण्ड-परिवार की गणना की जाय तो हमारा अंकगणित झक मारेगा और उस गिनती की पूरी कल्पना तक कर सकना मनुष्य के क्षुद्र मस्तिष्क के लिए सम्भव न हो सकेगा । समस्त ब्रह्माण्ड में हमारी पृथ्वी जैसे क्षुद्र ग्रह कितने होंगे और उनमें से कितनी ही चित्र-विचित्र आकृति-प्रकृति के प्राणियों को अपनी गोदी में खिला रही होगी ? वहाँ की आणविक, रासायनिक, जैवीय परिस्थितियाँ एक दूसरे से कितनी अधिक भिन्न-विपरीत होंगी ? यह सब कल्पना करना भी हमारे लिए अशक्य है । अभी तो अपनी पृथ्वी के वातावरण में जो हलचलें चल रही हैं, उन्हीं की खोज अत्यन्त विस्मयजनक परतें उठाती चल रही है और उन्हीं उलझनों से हम हतप्रभ रह रहे हैं । जब अन्य ग्रह-तारकों में पृथ्वी से सर्वथा भिन्न प्रकार के वातावरण को ध्यान में रखते हुए, हमारे विज्ञान से सर्वथा विचित्र अपरिचित विज्ञान का ककहरा पढ़ेंगे तो लगेगा कि इतने असीम ज्ञान-विज्ञान का क्षुद्र मानव मस्तिष्क द्वारा खोज पाया जाना तो दूर उसकी समूची कल्पना करना तक अशक्य है ।

विज्ञान अभी अपना बचपन भी पार नहीं कर पाया कि उसे अपने विषय की गहराई दिन-दिन अधिक दुरूह प्रतीत होती जा रही है । पदार्थ की सबसे छोटी इकाई इलेक्ट्रोन घोषित तो कर दी गई है पर उसका किसी भी यन्त्र से अब तक प्रत्यक्षीकरण नहीं किया जा सका । न उसे आँख से देखा गया है और न चित्र ही उतारा गया है । वह मात्र एक परिकल्पना है जिसे रूपहीन कहकर पिण्ड छुड़ाया गया है । इस इकाई की गतिविधियाँ तो नोट करली गई हैं, पर वे क्यों होती हैं। इन हलचलों के लिए उन्हें प्रेरणा एवं क्षमता कहाँ से मिलती है ? खर्च होने वाली शक्ति की वे पूर्ति कहाँ से करती हैं ? इसका कोई उत्तर प्राप्त नहीं किया जा सका । अणु-विज्ञान मनीषी आइन्स्टीन और मैक्स प्लैंक तक इस सम्बन्ध में चुप हैं और यह सोचते हैं कि भौतिक-सत्ता के ऊपर कोई अभौतिकी-सत्ता छाई हुई है । यह अभौतिक-सत्ता क्या हो सकती है और उसका उद्देश्य एवं क्रिया-कलाप क्या होना चाहिए ? यह खोज पाना अभी विज्ञान के लिए बहुत आगे की बात है ।

परमाणु परिवार से लेकर सौर-मण्डल और ब्रह्माण्ड में संव्याप्त ग्रह-पिण्ड परिकर के बारे में हम अभी इतना भी नहीं जानते, जितना कि सारे शरीर की तुलना में एक बाल । हम केवल पंचतत्वों से बने हुए स्थूल पदार्थों के बारे में ही थोड़ी-बहुत जानकारी प्रयोगशालाओं के माध्यम से प्राप्त कर सके हैं । जीव सत्ता, मस्तिष्कीय सम्भावना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अचेतन मन की अतीन्द्रिय शक्ति के अगणित प्रमाण होते हुए भी अभी वैज्ञानिक व्याख्या नहीं हो सकी है । असंख्य क्षेत्रों की जानकारियाँ अभी प्रारम्भिक अवस्था को भी पार नहीं कर सकी हैं । ऐसी दशा में यदि ईश्वर जैसा अति सूक्ष्मतत्व प्रयोगशालाओं की पकड़ में नहीं आया तो यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह नहीं है । तत्वदर्शी दृष्टि से हम उसकी सत्ता, महत्ता और व्यवस्था सहज ही सर्वत्र बिखरी देख सकते हैं और उस पर श्रद्धा भरा विश्वास कर सकते हैं ।

नास्तिक-दर्शन पर वैज्ञानिक आक्रमण

ईश्वर और उसके अस्तित्व पर विश्वास भारतीय धर्म की महत्त्वपूर्ण आधारशिला है । उसके आधार पर लोग भौतिक आकर्षणों से बचे और अपना मनुष्य जीवन सार्थक करने में सफल हुए हैं, किन्तु अब लोग विज्ञान का युग कहकर इन तथ्यों की अवहेलना करने लगे हैं । जर्मनी के विद्वान नीत्से ने नास्तिक-दर्शन नाम का एक अलग दर्शन ही तैयार कर दिया और लोगों को इस भ्रम में डाल दिया कि संसार में ईश्वर नाम की कोई वस्तु नहीं है । प्रत्यक्ष संसार ही सब कुछ है, इसमें ही जो कुछ इन्द्रियजन्य सुख है, वही स्वर्ग है । उनसे ही प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए ।

फ्रायड ने तो काम-सुख को ही सर्वस्व सिद्ध करने में अपना सारा जीवन लगा दिया । पोथियाँ रचकर तैयार कर दीं और काम-स्वेच्छाचार का डटकर प्रचार किया । कहना न होगा कि आज सारा पश्चिम उसके पद-चिह्नों पर पूरी तरह चल निकला है । भारतवर्ष भी उस लहर से अछूता नहीं रह सका । यहाँ भी अब आस्तिकता का नाम ही रह गया है, मध्यम श्रेणी के पढ़े-लिखे लोग तेजी से नास्तिक होते जा रहे हैं ।

नीत्से और फ्रायड के समान ही भारतवर्ष में भी चार्वाक नाम का पण्डित हुआ है, उसने भी ईश्वर के अस्तित्व को इनकार किया और स्वेच्छाचार का प्रतिपादन किया था । फलस्वरूप कुछ दिन के लिये यहाँ ऐसी आध्यात्मिक अशांति और सामाजिक अव्यवस्था फैल गई कि उसे दूर करने के लिये जगद्गुरु शंकराचार्य को एक नये सिरे से धार्मिक-क्रांति करनी पड़ी थी । यह कार्य कुछ कठिन था पर विश्व-व्यवस्था के लिये उन्हें यह तप करना ही पड़ा ।

नास्तिक-दर्शन का प्रथम सूत्र-"यह संसार जड़ मात्र है । भूमि, जल, अग्नि और वायु ये ही चार तत्त्व प्रमेय के रूप में स्वीकार किये और कहा कि इन्हीं चार भूतों की उचित मात्रा में पारस्परिक संयोग होने पर स्वभावतः चैतन्य की उत्पत्ति हो जाती है । किण्वादि, गुड़ और महुआ आदि के एकत्र होने पर मादकता तैयार हो जाती है, चूना, पान व सुपारी के संयोग से रक्त-वर्ण पैदा हो जाता है, इसी तरह इन चार तत्त्वों का ही संयोग है कि शरीर में एक चेतना अँगड़ाई ले लेती है । चूँकि यह चेतना स्वयंभू है इसलिये उसकी हर इच्छा को पूर्ण करना ही मनुष्य का धर्म है । जो भी खाने की इच्छा हो खाये, कोई दोष नहीं । काम-सुख सर्वाधिक संतुष्टि प्रदान करता है, इसलिये काम-तुष्टि पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए । उसकी दृष्टि में व्यभिचार कुछ भी नहीं है ।"

"इसी प्रकार, चूँकि यह प्राकृतिक नियम है कि हर शक्तिशाली वस्तु अशक्त को खा जाती है, इसलिये मनुष्य का ऐसा करना प्राकृतिक है अर्थात् माँस, मछली खाना कोई दोष नहीं । 'मैं स्थूल हूँ, मैं कृश हूँ ' इत्यादि साधारण उक्तियों और शरीर में केवल स्थूलता और कृशता होने के कारण किसी आत्मा का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता । देह ही सब कुछ है, आत्मा कुछ नहीं । मृत्यु के समय देह से आत्मा निकलकर परलोक चली जाती है, यह निराभ्रम है । यदि आत्मा परलोक गमन करती तो स्त्री-पुत्रों के प्रेम से आकर्षित होकर कभी लौट भी आती- किन्तु ऐसे कोई उदाहरण नहीं मिलते । चार्वाक की एक और मान्यता यह है कि हम संसार में सत्य कुछ नहीं, सब मिथ्या है, प्रमाण अनुमान और उपमानों से किसी वस्तु को सत्य सिद्ध करना उसकी दृष्टि में भ्रम के अतिरिक्त कुछ नहीं था । नास्तिकतावादी अतीन्द्रिय ईश्वरादि सत्ता को भी नहीं मानता । जड़वादी होने के कारण स्वेच्छाचारिता और कामाचारिता को अत्यन्त प्रोत्साहन दिया गया है । उनके मतानुसार स्वर्ग यही हैं, प्रत्यक्ष सुखोपभोग ही वह स्वर्ग है, जिसकी अन्यत्र कामना की जाती है । जो वर्तमान सुख का परित्याग करता है, वह मूर्ख है । शरीर को कष्ट देना उससे भी बड़ी मूर्खता है । ऋण लेकर भी घृत पीना चाहिए । माँस, मदिरा, मछली, मुद्रा (धन) और मैथुन यही स्वर्गीय सुख के आधार हैं । जो इनको प्राप्त करने में जितना सफल रहा, वह उतना ही भाग्यशाली है, चाहे उसके लिये कितना ही पाखण्ड, धूर्तता, चालाकी और चोरी ही क्यों न करनी पड़े । इस प्रकार जड़वाद, भौतिकवाद, नास्तिक-दर्शन, स्वेच्छाचार, कामाचारवाद, लोकायतवाद, लोकायतिकवाद का ही एक सम्मिलित स्वरूप है और वर्तमान विश्व-सिद्धान्तदाताओं का नाम भले ही न जानता हो पर अधिकांश इन मान्यताओं पर चल रहा है ।"

यह दर्शन संसार के लिये कितना उपयोगी ठहरा है, इस पर कुछ लिखने की अपेक्षा यह कहना अधिक युक्ति संगत है कि संसार की परिस्थितियों को देख लो उत्तर मिल जाएगा । आज किसी में विश्वास नहीं । अशान्ति, उद्विग्नता से लोगों के जीवन बुरी तरह ग्रस्त है, बीसवीं सदी में जितनी जनसंख्या है, उतने ही रोग हैं अर्थात् अधिकांश व्यक्ति न समझ में आने वाली बीमारियों से रुग्ण हैं । छल, कपट, हिंसा, धोखेबाजी के कारण किसी का भी न तो जीवन सुरक्षित है और न इज्जत । सामाजिक जीवन जीते हुए भी लोग अपने को उस जंगल में भटका हुआ अनुभव

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते हैं, जिसमें चारों ओर हिंसक ही हिंसक जन्तु घूम रहे हों । यह देन किसी और की नहीं-अनात्मवादी, अईश्वरपरायण और जड़वादी दर्शन की ही पूँजी है ।

नीत्से, फ्रायड तथा चार्वाक जैसे प्रतिभाशाली पण्डित यह नहीं सोच सके कि मृतक देह में वह चारों तत्त्व जिन्हें वह जीवन का आधार मानते थे, चैतन्य क्यों नहीं बने रहे ? उसकी इच्छाओं, आकांक्षाओं का अन्त क्यों हो जाता है ? वे थोड़ा भी गम्भीर चिन्तन करते तो उन्हें पता चल जाता कि तन्मात्राओं की अनुभूति करने वाला कोई और तत्त्व भी है, वह इन चार तत्त्वों से भिन्न है । अदृश्य वस्तु के अस्तित्व को कोई इनकार नहीं कर सकता । तार में होकर बिजली चलती है पर वह दिखाई नहीं देती । इसका यह तात्पर्य नहीं कि उसके अस्तित्व से इनकार कर दिया जाये । विद्युत न होती तो बल्ब कहाँ से जलता प्रकाश कहाँ से आता ?

वैज्ञानिक बोह्र को धन्यवाद, जिसने सर्वप्रथम यह बताया कि रसायन का जीव-विज्ञान से गठबन्धन हुए बिना चैतन्य जगत स्थिर नहीं रह सकता । १८२७ में उसने एल्यूमिनियम और १८२८ में यूरिया नामक शारीरिक रसायन का संश्लेषण कर उसने यह सिद्ध किया कि शारीरिक रसायन और धातुओं को प्रयोगशाला में उपलब्ध किया जा सकता है किन्तु जीव कोई स्वतन्त्र सत्ता है, जिसे प्रयोगशाला में नहीं पकड़ा जा सकता । यह घोषणा रसायन और औषधि जगत में तीव्र हलचल पैदा करने वाली थी । तब से अब तक अकार्बनिक रसायन के ही लगभग ५०००० यौगिकों की खोज की जा चुकी है, किन्तु जीवन के सम्बन्ध में कोई युक्तिसंगत विश्लेषण, वैज्ञानिक प्रस्तुत नहीं कर सके ।

किन्तु वैज्ञानिकों ने उसकी खोज का संकल्प अवश्य किया । खोजते-खोजते वे कोशिका और उसके द्वारा उत्पादनों और घटकों तक जा पहुँचे । उन्होंने देखा कि कोशिकाओं (सेल्स, जिनसे मिलकर शरीर बना है) के भीतर जो सैकड़ों यौगिक भरे पड़े हैं, उन्हें निश्चित रूप से प्रयोगशाला में बनाया जा सकता है । उन्होंने इस बहुत ही सूक्ष्म-कोशिका के भीतर जीव-विज्ञान को भी सूक्ष्मदर्शी यन्त्रों से अध्ययन करना प्रारम्भ किया, जो निष्कर्ष प्राप्त हुए यद्यपि वह अपूर्ण हैं पर जितने हैं, जड़वादी मान्यता को काट देने के लिये वही काफी हैं । वैज्ञानिक दृष्टि में कोशिका वह पिण्ड है, जिसमें सम्पूर्ण जगत का सूक्ष्मदर्शन छिपा हुआ है । उसे अध्ययन कर लेने वाला कभी नास्तिक नहीं हो सकता है ।

यद्यपि यह अत्यन्त सूक्ष्म-संरचना है तथापि बोधगम्य (नोएबुल) है । एक बूँद में मनुष्य के लाल रक्त की लगभग ५ हजार कोशिकाएँ समा सकती हैं । यह कोशिका-झिल्ली पौधों और वैक्टीरियाज में अपेक्षाकृत अधिक मोटी और कड़ी होती हैं, यह एक प्रकार की निर्जीव चहारदिवारी है, सूक्ष्म जलीय जगत तो उसके अन्दर बन्द है, आइये उस पर एक दृष्टि डालकर देखें कि वहाँ कौन से तत्त्व क्या कर रहे हैं ?

सूक्ष्मदर्शी यंत्रों द्वारा कोशिका झिल्ली के भीतर की इस रचना को बड़े आश्चर्य के साथ देखा जाता है । यह झिल्ली कोशिका के अन्दर समस्त इकाइयों की अपेक्षा अधिक सक्रिय इकाई है, किन्तु उसकी सक्रियता भीतर घुसे हुए नाभिक (न्यूक्लियस) की इच्छा के कारण है । न्यूक्लियस ही वह चेतन और केन्द्रीय-भूत सत्ता मानी जा रही है, जिस पर कोशिका का सारा क्रिया-व्यापार चलता है । यह एक अत्यन्त सूक्ष्म पर विराट-जगत् का प्रतिनिधि है । उसी को देखकर आइन्स्टाइन ने कहा था कि यह क्षितिज भी अण्डाकार स्थिति में है, जब लोगों ने पूछा कि उसके बाद क्या है तो उसने कहा-"कुछ नहीं।" यह संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य है कि यह संसार जिसकी सीमा अनन्त है, वह भी घिरा हुआ, मुड़ा हुआ अर्थात् ससीम है । सीमा स्थित है ।

जो भी हो हमें उस कोशिका-झिल्ली का अध्ययन करना है । यह झिल्ली उन तत्त्वों को छाँटती है, जिनकी न्यूक्लियस इच्छा करता है, जिस प्रकार सिनेमा हाल के गेट पर खड़े हुए चौकीदार जिनके पास जैसा टिकट होता है, उन्हें अन्दर जाने देता है, उसी प्रकार कोशिका झिल्ली भीतर केवल उन्हीं तत्त्वों को जाने देती है, जिसकी न्यूक्लियस इच्छा और प्रेम करता है । इस न्यूक्लियस के अतिरिक्त वहाँ कमजोर रेशों और अपेक्षाकृत मजबूत तन्तुओं का जाल-सा बिछा हुआ है । इन्हें क्रोमेटिन कहते हैं । क्योंकि वह रंगों को जज्ब करते हैं, जब एक कोशिका दूसरी कोशिका में विभाजित होती है तो यह तन्तु ही व्यावर्त्तन, पृथक्करण और पुनर्व्यवस्थापन के रूप में एक प्रकार का सामूहिक नृत्य-सा करते हैं । अतिकुशल नृत्यकार भी उस नृत्य की गति का मुकाबला नहीं कर सकते ।

यह गति बड़ी रहस्यपूर्ण होती है, यह उन चार तत्त्वों को क्रियाशील करने का वैज्ञानिक तरीका है, जिससे नई सृष्टि की उत्पत्ति होती (नये बालक का जन्म भी इसी विभाजन क्रिया से होता है) है । किन्तु वह सब करने वाला पाँचवाँ आकाशतत्त्व भी वहाँ विद्यमान है । न्यूक्लियस उसी आकाश में स्थित है, अर्थात् वह किसी भी तत्त्व पर टिका हुआ नहीं है, जबकि कोशिका-झिल्ली के अन्दर गति करने वाले सभी पदार्थ परस्पर सम्बद्ध होते हैं ।

न्यूक्लियस और कोशिका परिधि के बीच वाले भाग में जिसे साइटोप्लाज्म कहते हैं, अनेक संरचनाएँ होती हैं । छोटी सघन पहाड़ियाँ माइटोकॉन्ड्रिया और उससे भी छोटे टीले माइक्रोसॉक्से मिट्टी के कणों के बने प्रतीत होते हैं । कहीं-कहीं पतले तन्तु गोल्जीबाडीज टेढ़े-मेढ़े ढंग से पड़े लहराते हैं, जिससे वायु का अस्तित्व दर्शन होता है । कुछ कोशिकाओं में दूसरी वस्तुएँ जैसे पिगमेंट, स्टार्चकण, चर्बी की गोलियाँ बिखरी पड़ी रहती हैं । कोश में ७० प्रतिशत जल और इन तत्त्वों को क्रियाशील रखने वाले तापीय कण भी रहते हैं । इस बिन्दु-जगत में ही चारों तत्त्वों के साथ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आकाश भी छाया हुआ है । वैज्ञानिक इस सूक्ष्म रचना से दंग रह गये और अपने आपसे पूछने लगे, यदि कोशिका ही जीवन संरचना की इकाई है तो क्या उसके कार्य की भी इकाई है ? रक्तपरिसंचरण के आविष्कारकर्त्ता विलियम हार्वे ने उसका उत्तर देते हुए कहा था–"हम जो कुछ जानते हैं वह उसकी तुलना में जो अब भी अज्ञात है, बहुत कम है ।" यह वक्तव्य आज भी उतना ही सत्य है । वैज्ञानिक यह मानते हैं, "कोशिका के आकाश में स्थित जगत के सम्पूर्ण अध्ययन के लिये ३३५ वर्ष की अवधि भी बहुत अल्प है ।" चार्वाक और नीत्से ने तो न जाने कैसे प्रत्यक्ष देहात्मवाद को ही सर्वस्व कह दिया । आज के वैज्ञानिक उसे एक मूर्खतापूर्ण प्रलाप ही कहते हैं ।

चार तत्त्वों से देह की परिभाषा यों खण्डित हो गई । जब तक न्यूक्लियस है, तब तक शरीर का महत्व कुछ नहीं, यह भी सिद्ध हो गया । परलोक में क्या कुछ है । वहाँ जीवन है भी या नहीं ? यह भले ही अभी समझ में न आया हो पर चन्द्रमा और शुक्र में अपने जहाज उतार कर अमेरिका और रूस ने परलोक के अस्तित्व को भी सिद्ध कर दिया । क्या परलोकवाद को सिद्ध करने के लिये और कोई प्रमाण चाहिए ।

स्वेच्छाचार और कामाचारवाद की बुराइयाँ आज सभी देख रहे हैं, यह तो सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि से ही अनुचित है, वैज्ञानिक दृष्टि से तो उसे पाप और आत्मा के पतन का कारण माना गया है । इस तरह नास्तिक-दर्शन ने रंगीनी से भरा हुआ जो महल बनाया, विज्ञान ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये । अब निकट भविष्य में ही उस मान्यता का प्रादुर्भाव हो रहा है, जिसमें नास्तिक-दर्शन की साँस तो क्या, लाश भी दिखाई न देगी ।

विज्ञान द्वारा प्रमाणित अन्तर्चेतना को भूला न जाय

योग वासिष्ठ में बताया है–

परमाणुनिमेषाणां लक्षांशकलनास्वपि ।
जगत्कल्पसहस्राणि सत्यानीव विभान्त्यलम् ।।
तेष्वप्यन्तस्तथैवान्तः परमाणुकणं प्रति ।
भ्रान्तिरेवमनन्ताहो इयमित्यवभासते ।।
अणावणावसंख्यानि तेन संति जगन्ति खे ।
तेषान्तान्व्यवहारी वान्संख्यातुं क इव क्षमः ।।

हे राम ! प्रत्येक परमाणु के एक क्षुद्र टुकड़े के भी छोटे टुकड़े-लाखवें भाग के भीतर सहस्रों विश्व स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं । उन परमाणुओं में से प्रत्येक के भीतर भी वैसा ही दृश्य जगत विद्यमान है । यह आश्चर्य और अनहोनी जैसी लगती है पर यह सत्य है । हे राम ! आकाश के अणु-अणु में सुव्यवस्थित संसार समासीन है, उनके समाचार कौन जानता है ?

ज्ञान, शक्ति, प्रकाशरूप यह चेतना ही ब्रह्म है, उसे जानना ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य बताया है, शास्त्रकार ने । किन्तु हमारे सामने पदार्थ का एक विराट संसार दृष्टिगोचर हो रहा है, हम उसमें भूल जाते हैं और विज्ञान को, वैज्ञानिक मान्यताओं को सत्य मानकर अन्तर्चेतना की उपेक्षा करने लगते है ।

विज्ञान शास्त्रकार की उपरोक्त धारणा को स्थिर करता है, उसे सत्य सिद्ध करता है । अति सूक्ष्मदर्शी निरीक्षण (माइक्रोस्कोपिक इन्स्पेक्शन) से ज्ञात हुआ है कि मनुष्य का शरीर भी छोटे-छोटे अदृश्य परमाणुओं से बना हुआ है, उन्हें कोश (सैल) कहते हैं । कोशाओं की रचना प्याज के छिलकों की तरह (फैब्रिक फार्वर्ड सैल्स टिस्यू) एक विशेष प्रकार की होती है, प्याज के छिलके की एक कोशिका अपनी पूरी प्याज की गाँठ की तरह ही परत के भीतर परत वाली होती है । इस तरह सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु के भीतर भी एक नियोजित चेतना काम कर रही है ।

पेड़-पौधों की पत्तियाँ भी साँस लेती हैं, साँस लेने की क्रिया पत्तियाँ आगे निकले हुए नुकीले भाग से करती हैं । सबसे आगे का नुकीला कोश बहुत ही छोटा होगा, वह आकाश से वायु खींच-खींच कर पहुँचाता रहता है। वायु में अकेले हवा नहीं होती, उसमें प्रकाश के कण (इसका विवरण फोटो सिंस्थेसिस के लेख में करेंगे) भी होते हैं । इसी वायु और प्रकाश कणों से वृक्ष-वनस्पतियों के भीतर ठीक वैसी ही चेतनता काम करती रहती है, जिस तरह मनुष्य शरीर में श्वास-प्रश्वास क्रिया से ही सारे क्रिया-कलाप चलते रहते हैं ।

छोटे से छोटे कोश में वायु, जल, प्रकाश, खनिज, लवण, धातुएँ आदि विभिन्न वस्तुएँ जिस-जिस मात्रा और अनुपात में होती हैं, उसी अनुपात में उनका स्वरूप बनता-बिगड़ता रहता है और इस तरह प्रकृति में एक सुव्यवस्थित हलचल दिखाई देती रहती है । अणुओं के भीतर की यह हलचल विराट ब्रह्माण्ड में हो रही हलचलों की प्रतिच्छाया होती है । कुछ ऐसे तारों का पता लगाया गया है, जो कालान्तर में अपनी चमक बदलते रहते हैं, पृथ्वी में होने वाले ऋतु-परिवर्तन को तो हम स्पष्ट देखते और अनुभव करते हैं ।

कुछ विशेष प्रकार के नक्षत्रों के अध्ययन से पता चला है कि आगे उनकी गतिविधियाँ क्या होगीं, यह निश्चित रूप से जाना जा सकता है । आकाश में कुछ ऐसे भी तारे हैं, जिनको हम देख नहीं सकते, पर वे ध्वनि कम्पनों से अनुभव में आते हैं । वैज्ञानिकों ने इन तारों की खोज इसी आधार पर की है, जब कोई वस्तु हवा में तीव्रता से कम्पन करती है, तब उससे दबाव तरंगें भी तीव्रता से उत्पन्न होती हैं । जब यह तरंगें कान से कुछ निश्चित परिस्थितियों में टकराती हैं, तभी उस ध्वनि का अनुभव होता है । इसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तरह अनेक अदृश्य तारों के अस्तित्व का पता लगाया गया है ।

विज्ञान के अनुसार यह ध्वनि, यह परिवर्तनशीलता और यह विराट दृश्य परमाणु में विद्यमान है, तब फिर हम उस परमाणु की मूल सत्ता को ही क्यों न जानें ताकि उसे जानकर विश्व-ब्रह्माण्ड को जान लें । योगाभ्यास हमें उसी सूक्ष्म-दर्शन की प्राप्ति कराता है । इस विद्या के द्वारा मनुष्य परमाणविक चेतना में विश्वम्भर शक्ति और उसके विराट स्वरूप के दर्शन करता है ।

ब्रह्म सत्य जगन्माया— अल्बर्ट आइन्स्टीन की दृष्टि में

विज्ञान ने अब इतनी प्रगति कर ली है कि वह भौतिकतावादी मान्यताओं को पीछे छोड़कर आध्यात्मिक सत्यों के अनुसंधान और अनुशीलन की कक्षा में जा पहुँचा है । अल्बर्ट आइन्स्टीन का सापेक्षवाद (थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी) इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है और उससे यह ज्ञात होता है कि वैज्ञानिक भी जिस अन्तिम सत्य की जानकारी के लिये बेचैन हैं, उसके लिये उन्हें पदार्थ की भौतिकीय जानकारी (फिजिकल नालेज आफ एलीमेन्ट्स) से हटकर चौ-आयामी (फोर डाइमेन्शनल) अथवा उससे भी बहु-आयामी (मल्टी डाइमेन्शनल) संसार और तथ्यों का अध्ययन करना आवश्यक होगा ।

डाइमेन्शन का अर्थ है आयाम । आयाम में जितनी बातें सम्मिलित हों, उतने ही डाइमेन्शन की वह वस्तु होगी । सरल या सीधी रेखा जिसमें केवल लम्बाई होती है एक आयामी (वन डाइमेन्शन) आयताकार (रेक्टन्गिल) जिसमें लम्बाई और चौड़ाई होती है द्विआयामी (टू डाइमेन्शन) और इसी प्रकार कोई ठोस (सालिड) वस्तु लें तो उसमें लम्बाई-चौड़ाई और ऊँचाई (थ्री डाइमेन्शन) होंगे । संसार के जितने भी पदार्थ हैं, वह इन्हीं तीन प्रकार के आकारों के अन्तर्गत आते हैं । हमारे पास जो भी वस्तुएँ हैं, वह इन्हीं तक सीमित हैं, इसलिये भौतिक-विज्ञान जब भी किन्हीं वस्तुओं का अध्ययन करता है, वह इसी सीमा की जानकारी दे पाता है ।

लेकिन अल्बर्ट आइन्स्टीन ने बताया कि यह गलत है । जब तक हम एक और चौथे आयाम डाइमेन्शन समय (टाइम) की कल्पना नहीं करते, तब तक वस्तुओं के स्वरूप को अच्छी प्रकार समझ ही नहीं सकते । सभी पदार्थ समय की सीमा से बँधे हैं, अर्थात् हर एक वस्तु का समय भी निर्धारित है, उसके बाद या तो वह अपना रूपान्तर कर देता है या नष्ट हो जाता है । मनुष्य शरीर भी एक दिन नष्ट हो जाता है फिर वस्तुओं के बारे में तो कहना ही क्या ? मनुष्य धोखे में रहता है कि यह वस्तु मेरी है, इस पर मेरा अधिकार है, इसका मैं उपभोग करूँगा, यह मेरे काम की है, इसका उपार्जन मैंने किया है पर यदि इस चौथे डाइमेन्शन को ध्यान में रखकर विचार करें तो पता चलेगा कि जिन वस्तुओं को हम अपना कहते हैं, वह न अपनी है और न किसी दूसरे की, सब प्राकृतिक परमाणुओं से बनी आकृतियाँ मात्र हैं । उनका कोई निश्चित स्वरूप नहीं है । समय की मर्यादा में बँधे परमाणु जब टूट-टूट कर अलग हो जाते हैं तो वस्तु का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है । इस तरह पानी के बुलबुले के समान संसार बनता और बिगड़ता रहता है । स्थिर-तत्त्व तो कुछ और ही है ।

आइन्स्टीन का सम्पूर्ण सापेक्षवाद का सिद्धान्त (थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी) इसी तथ्य को समझना है । आज वैज्ञानिकों, भौतिकवादी शिक्षितों और पाश्चात्य देशों के निवासियों तक को इस सापेक्षवाद के सिद्धान्त ने उलझन में डाल रखा है । बड़े-बड़े डिफरेन्शियल कैलकुलस (एक प्रकार की गणित) और बाइनामियल जैसी थ्योरम्स (यह बीजगणित की एक लम्बे पृष्ठों में हल होने वाला समीकरण इक्वेशन) है जो समझ लेना आसान समझा जाता है, किन्तु आइन्स्टीन के सापेक्षवाद (थ्योरी आफ रिलेटिविटी) की भावानुभूति (कान्सेप्ट) को समझना दुस्तर हो रहा है । कारण कि वह संसार, सांसारिक परिस्थितियों, प्रकृति और मानवीय चेतना का एक ऐसा अध्ययन (स्टडी) है, जो मनुष्य को संसार की यथार्थता से अवगत कराती है और उसे जीवन के प्रति एक नये प्रकार का दृष्टिकोण अपनाने की सम्मति प्रदान करती है, जिसमें प्रकृति ही प्रकृति, पदार्थ ही पदार्थ नहीं वरन् एक परम तत्त्व (एब्सोल्युट एलीमेन्ट) भी है, जिसके जानने से ही संसार की वास्तविकता का पता लगाया जा सकता है । भारतीय अध्यात्म-विज्ञान उसे ही ईश्वर, परमात्मा परमगति और संसार की सर्वोच्च सत्ता मानता है । दोनों सिद्धान्त एक स्थान पर मिल रहे हैं, केवल नाम और अनुभूति के तरीके (वे आफ कान्सेप्शन) में अन्तर है ।

संसार में जितने भी पदार्थ हैं, वह १-समय (टाइम) २-स्थान (स्पेस), ३-गति (मोशन),४-कारण (काजेशन) , इन चार के ही अन्तर्गत हैं । हम समय की सीमा में बँधे हैं अर्थात् हमारा एक निश्चित समय है, अधिकतम अपनी आयु भर के अन्दर की वस्तुएँ सोचते-विचारते हैं, न तो जन्म से पहले की कल्पना है और मृत्यु के बाद की, इसलिये जो कुछ भी करते हैं, उसका सीधा सम्बन्ध इस समय से ही होता है । उसके बाहर का कोई भी संसार हमारे मस्तिष्क में नहीं आता ।

होना यह चाहिए कि हम परम-समय (एब्सोल्यूट टाइम) को ध्यान में रखकर ही अपने क्रिया-कलाप निर्धारित करें । भारतीय आचार्यों ने आचार-संहिता तैयार करते समय इस बात को ध्यान में रखा था और ऐसी व्यवस्था की थी कि मनुष्य पूजा, उपासना, संयम, सेवा तथा सदाचार का पालन करता हुआ अपने भौतिक कर्तव्य पूरे करे ताकि आत्म-शक्तियों का ह्रास न हो । शक्ति को विघटित कर देने से मनुष्य इस जीवन में भी दुःखी होता है और वह निम्नगामी योनियों की ओर आकर्षित हो जाता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । बढ़ी हुई शक्ति चाहे वह शारीरिक हो, मानसिक, बौद्धिक अथवा आत्मिक उससे यह जीवन तो सफल होता ही है, उस परम-स्थिति को प्राप्त करने में मूल लाभ मिलता है । इस विज्ञता का ही परिणाम है कि भारतीय जीवन-शैली आज भी अपने ही ढंग की है । जिसमें पाश्चात्य ढंग के विकारों के लिये कोई स्थान नहीं ।

'समय' की तरह ही हम 'देश' से भी बँधे हैं । अब जबकि विज्ञान और समाज-शास्त्र ने इतनी उन्नति कर ली है कि सारी पृथ्वी एक परिवार की तरह हो गई है और हमारी प्रत्येक क्रिया का प्रभाव सारे विश्व पर पड़ता है । अब हम सम्पूर्ण पृथ्वी की घटनाओं और हलचलों के बारे में विचारते हैं पर इससे पहले का मनुष्य अधिक से अधिक अपने देश तक की बात सोच पाता था, क्योंकि उसके लिये संसार उतने ही स्थान (स्पेस) में बँधा था । कोई समय ऐसा भी रहा होगा, जब उसका यह विस्तार का संसार और भी छोटा रहा होगा । आज तो मनुष्य स्वार्थी नहीं रह सकता, विवश होकर उसे संसार के और लोगों के हितों पर ध्यान देना अनिवार्य हो गया है, पर पहले उसके कर्त्तव्य की सीमा बहुत छोटी थी । सापेक्षवाद के चार अनुभागों (फैक्टर्स) में दूसरा देश या स्थान (स्पेस) हमें यह बताता है कि हम जितने संसार से परिचित हैं, उतने से ही अपने कर्त्तव्य से जुड़े रहते हैं और उतने लोगों की भलाई या बुराई को ध्यान में रखकर काम करते हैं ।

एक अन्य तथ्य यह है कि हम 'गति' के नियमों से भी बँधे हुए हैं । प्रकृति के सभी परमाणु क्रियाशील हैं, छोटे-छोटे टीले बढ़कर पहाड़ बन जाते हैं और छोटी-छोटी नालियाँ-नदियाँ, गड्ढे-तालाब बन जाते हैं और पौधे विशालकाय वृक्ष । हमारी पृथ्वी में जलवायु और दिन-रात सम्बन्धी परिवर्तन भी गति (मोशन) के ही परिणामस्वरूप हैं, प्राकृतिक गतिशीलता से हम स्वयं भी प्रभावित होते हैं । ऐसा कोई भी पदार्थ और प्राणी इस धरती पर नहीं है जो इन परिवर्तनों से प्रभावित न होता हो, हमारे सुख-दुःख भी इनसे जुड़े हुए हैं, कभी-कभी परिवर्तन हमारी इच्छाओं के अनुरूप होते हैं तो हमें सुख मिलता है और कभी-कभी प्रतिकूल होने से हमें दुःख और कष्ट का अनुभव होने लगता है, तात्पर्य यह कि गति (मोशन) हमारे भौतिक-जीवन को ही नहीं चेतन-विचार और भावनाओं को भी प्रभावित करती है ।

आज हम जिस स्थिति में हैं, वह अनेक घटनाओं का क्रम-बद्ध इतिहास होता है । इसे ही कारण (काजेशन) कहते हैं, जो आइन्स्टीन के सापेक्षवाद सिद्धान्त (थ्यौरी आफ रिलेटेविटी) का चौथा-तत्त्व (फैक्टर) है । हमारा जन्म स्वयं भी कारण के विकास की प्रतिक्रिया है । इसी प्रकार संसार में जो कुछ भी है, वह पूर्व से घटनाबद्ध है कोई भी प्रभाव या परिणाम, कारण (काजेशन) के बिना सम्भव नहीं है ।

यह चार बातें हैं, जो हमारे जीवन को घेरे हुए हैं, हम समय, स्थान, गति और कारण (टाइम, स्पेस, मोशन एण्ड काजेशन) से बँधे हुए हैं । इन चार से अतिरिक्त और कोई बात हम सोच भी नहीं सकते । सही बात तो यह हैं कि हमारे विचार इन चार बातों में इतना आसक्त हो गये हैं कि हम इससे आगे की कोई बात सोच ही नहीं पाते । इन चारों की जो जितनी कम मात्रा से बँधा रहता है, वह उतना ही स्वार्थी, संकीर्ण और भोगवादी होता है । जो व्यक्ति केवल वर्तमान की ही बात सोचता है, भूत और भविष्य के निष्कर्षों का लाभ नहीं लेता, वही पाप और स्वार्थपूर्ण प्रवृत्तियों को स्वयं भी करता है और दूसरों को भी प्रोत्साहित करता है । इसी प्रकार जो केवल अपने शरीर या अधिक से अधिक अपने परिवार के ही हित की बात सोचता, उसके भी कार्य संकीर्ण और दुःखद होते हैं । विकास सम्बन्धी अवस्था को भी जो बहुत छोटी सीमा में मानते हैं और भौतिक-जगत में होने वाली गतिविधियों में किसी दूरवर्ती कारण को नहीं देखते, वह गलत लक्ष्य बनाते या अधिक से अधिक अपने स्वार्थ की बात सोचते हैं । संकीर्णता की यह मनोवृत्ति ही संसार में दुःख का कारण है । इसी का नाम माया या भ्रम कहा गया है । "तू मैं और तोर तै माया । स्व-वश कीन्ह जिन्ह विश्व निकाया ।" अर्थात् मैं और मेरे, तू और तेरे की संकीर्णता ने ही मनुष्य को भौतिक-बन्धनों में बाँध लिया है, इसी का नाम माया है ।

मानवीय-चेतना और मानवीय-लक्ष्य का विस्तृत अध्ययन, चिन्तन और मनन करने के बाद आइन्स्टीन को भी कहना ही पड़ा कि मनुष्य का इस प्रकार समय, स्थान या देश, गति और कारण (टाइम, मोशन एण्ड काजेशन) की संकीर्णता में बँधना उसकी भयंकर भूल है । उन्होंने बताया कि यह सम्पूर्ण चीजें हैं ही नहीं । संसार में न तो समय का कोई अस्तित्व है, न स्थान का, न गति का और नहीं किसी कारण या परिणाम का । यह चारों मस्तिष्क की उपज हैं और हम जब तक इनसे प्रतिबन्धित हैं, तब तक परमसत्य (एब्सोल्यूट) की अनुभूति नहीं कर सकते । परम-सत्य वह है, जो इन चारों से बँधकर नहीं इनको बाँधकर रखता है । जो स्वयं इनसे प्रभावित नहीं होता वरन् इन्हें प्रभावित करता है । उन्होंने बताया जो भी है, जैसा भी है, मस्तिष्क इन चारों से ऊपर का एक बहु-आयामी (मल्टीडाइमेन्शनल) तत्त्व है, उसे इन चारों चीजों से मुक्त कर दिया जाये तो परम-स्थिति (एब्सोल्यूट स्टेज) को अच्छी तरह जाना जा सकता है । वही संसार का अन्तिम सत्य, परमात्मा, परमपद, मोक्ष या स्वर्ग और मुक्ति की स्थिति है ।

इतने भारी दृश्य संसार को मिथ्या कह देना एक वैज्ञानिक के लिये साधारण बात नहीं थी । उन्हें सापेक्षवाद के सिद्धान्त पर 'नोबेल पुरस्कार' प्रदान किया गया था, इसलिये जो लोग इस सिद्धान्त की गहराई को नहीं समझ सके, उनका प्रश्नों पर प्रश्न करना स्वाभाविक था । आइन्स्टीन से पूछा गया तब फिर यह जो समय और पदार्थों की हमें अनुभूति होती है, दिखाई देते हैं, यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सब क्या है ? उसने उत्तर दिया माया-अर्थात् सापेक्षता (रिलेटिविटी)। हमने अनुभव लिया है कि सूर्योदय से सूर्यास्त तक का समय २४ घन्टे का होता है । समय कोई भौतिक पदार्थ नहीं है, यह तो दो घटनाओं के बीच की अवधि की माप (मेजरमेन्ट) है, जो कभी सत्य नहीं हो सकता, क्योंकि यदि आप चन्द्रमा पर बैठे हों एक बार सूर्य के उदय होने और उसके अस्त होने में १२×७= ८४ घन्टे लग जाते हैं । ८४ घन्टों को यदि ६० मिनट के एक घन्टे से बाँटें तो वहाँ का दिन १०० घन्टे से भी बड़ा होगा इसलिये समय कोई स्थिर या शाश्वत वस्तु नहीं है । हम, सृष्टि जहाँ से प्रारम्भ हुई है वहाँ से लेकर सृष्टि जहाँ समाप्त होगी, वहाँ तक को समय की इकाई क्यों न मानें ? क्योंकि अन्तिम सत्य तो यही दो घटनाएँ होगी । हमारे जन्म से मृत्यु तक का समय इसी विशाल समय की सापेक्षता (रिलेटिविटी) ही तो है । इसलिये जब तक हम उस अन्तिम समय (एब्सोल्यूट टाइम) को नहीं जान लेते, समय सम्बन्धी सारे माप (मेजरमेन्ट्स) और उनको प्रभावित करने वाले कार्य सब गलत हैं ।

इस दृष्टि से केवल वही कार्य और कर्त्तव्य हमारे लिये सच्चे होते हैं, जो समय की इस परमगति को प्रभावित करते हैं, शेष सभी कार्य चाहें उसमें खाना, पहनना, चलना, उठना-बैठना भी क्यों न सम्मिलित हो भ्रम है, यह कार्य वैसे दोनों ही परिस्थितियों में उभयनिष्ठ रहते हैं, इसलिये हम अपने जीवन में उन्हीं कार्यों को शुद्ध और यथार्थ मानते हैं, जिनसे हमें परम-काल गति की अनुभूति में सहायता मिलती है । केवल भौतिक सुख के लिये किये गये सभी कार्य व्यर्थ हैं, उसमें हमारा चाहे कितना ही अधिक श्रम, बुद्धि-कौशल, साधन क्यों न प्रयुक्त हो रहा हो ।

हमारे लिये कोई भी स्थान सत्य नहीं है । हमारे द्वारा वस्तुओं को पहचानने के अतिरिक्त स्थान का कोई अर्थ ही नहीं है । जिस प्रकार समय अनुभव के अतिरिक्त कुछ नहीं था, उसी तरह देश या ब्रह्माण्ड (स्पेस) हमारे मस्तिष्क द्वारा उत्पन्न काल्पनिक वस्तु के अतिरिक्त कुछ नहीं है । वस्तुओं को समझने तथा उनकी व्यवस्था (अरेन्जमेन्ट) जानने में सहायता मिलती है, इसलिये स्थान (स्पेस) की कल्पना को हम सत्य मान लेते हैं अन्यथा स्थान कुछ निश्चित तरीके के परमाणुओं के अतिरिक्त और है भी क्या ? परमाणु भी इलेक्ट्रान्समय होते हैं, इलेक्ट्रान एक प्रकार की ऊर्जा निकालता रहता है, जो तरंग रूप (वेविकल फार्म) में होता है । जिन वस्तुओं के इलेक्ट्रान जितने मन्द गति के हो गये हैं, वह उतने ही स्थूल दिखाई देते हैं । यह हमारे मस्तिष्क की देखने की स्थिति पर निर्भर करता है, यदि पृथ्वी को छोड़कर किसी सूर्य जैसे ग्रह में बैठे हों तो यह पृथ्वी एक प्रकार के विकिरण (रेडिएशन) के अतिरिक्त और कुछ न दिखाई देगी । इसलिये देश या ब्रह्माण्ड भी वस्तुओं की संरचना का अपेक्षित (रिलेटिव) रूप है, उसकी यथार्थता भी परम-अवस्था (एब्सोल्यूट स्टेज) पर ही हो सकती है ।

यदि हमारे आकाश में और कोई सूर्य, चन्द्रमा और सितारे नहीं होते, तब क्या हम कह सकते थे कि पृथ्वी एक सेकिंड में १८ मील प्रति घन्टा की गति से दौड़ रही है । गति (मोशन) का ज्ञान भी हमारी सापेक्ष बुद्धि (रिलेटिव सेन्स) का ही परिणाम है । अभी हम कहते हैं कि यह हमारा कमरा स्थिर है । ऐसा कहने का हमें इसलिये अधिकार है कि पृथ्वी के साथ हमारा कमरा ही नहीं घूमता हम भी घूमते हैं, यदि एक स्टेशन पर दो गाड़ियाँ समान गति से एक ही दिशा में दौड़ रही हों तो दोनों गाड़ियों के सवार अपने आपको स्थिर अनुभव करेंगे । यदि एक गाड़ी ४५ मील प्रति घन्टा की गति से पूर्व को जा रही हो और दूसरी ४५ मील प्रति घन्टा पश्चिम की ओर तो दोनों गाड़ियाँ जिस स्थान पर साथ-साथ होंगी (विल कम ए क्रास) वहाँ एक दूसरे की गति ९० मील प्रति घन्टा अनुभव करेंगी । इससे यह सिद्ध होता है कि गति भी एक परम-गति (एब्सोल्यूट मोशन) की सापेक्ष (रिलेटिव) है, उसमें भी कोई अन्तिम सत्य नहीं है । सौर-मण्डल की तुलना में पृथ्वी की गति १८ मील प्रति सेकिण्ड की समझ में आती है पर यदि हम गैलेक्सी (तारामण्डल) के किसी अन्य ग्रह में बैठकर देख (आब्जर्व) रहे हों तो यह गति कुछ और हो, या तो बहुत धीमी या बहुत तीव्र नजर आ रही होंगी । इस तरह गति सम्बन्धी हमारी भौतिक मान्यताएँ सही नहीं हैं ।

पदार्थों के कारण (काजेशन) के सम्बन्ध में भी हम पूर्ण सापेक्ष हैं । थोड़े से तत्त्व चाहे उन्हें पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और वायु कहें अथवा हाइड्रोजन, आक्सीजन, सल्फर, जिंक, कोबाल्ट, एसिड्स कहें, इन्हीं से मिल-जुलकर भौतिक-पदार्थों का बनना-बिगड़ना जारी रहता है । हमारे कोई भी कार्बनिक (आर्गेनिक) तथा अकार्बनिक (इनार्गेनिक) पदार्थ इन तत्त्वों की परस्पर रासायनिक क्रिया (केमिकल एक्शन) का ही परिणाम होते हैं । परन्तु जब हम पदार्थ के अन्तिम टुकड़े परमाणु की संरचना, जो कि रासायनिक क्रिया (केमिकल एक्शन) में भाग लेता है पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि सम्पूर्ण पदार्थों में आवेश (इलेक्ट्रान्स) का अन्तर है अन्यथा मूलभूत तत्त्व (एब्सोल्यूट एलीमेन्ट) कोई और ही है । एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ में परिवर्तन आवेश की मुक्ति (चेन्ज आफ इलेक्ट्रान्स) के कारण होता है । पदार्थ शक्तियों के परिवर्तित रूप हैं, इसी प्रकार शक्तियों (इनर्जीस) की भी एक परम स्थिति (एब्सोल्यूट स्टेज) होनी चाहिए । इसका आभास प्रकाश की क्वान्टम थ्योरी से होता है अर्थात् संसार का कारण भी भौतिक नहीं कोई परम (एब्सोल्यूट) तत्त्व ही है ।

उस परम-अवस्था (एब्सोल्यूट स्टेज) को कैसे अनुभव करें, जब आइन्स्टीन से यह प्रश्न किया गया तो उसने कहा हम समय, स्थान, गति और कारण (टाइम, स्पेस, मोशन एण्ड काजेशन) की सापेक्ष अवस्था

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(रिलेटिबिटी) से यदि अपने मस्तिष्क को ऊपर उठा दें तो उस परम-अवस्था की अनुभूति कर सकते हैं । सापेक्ष अवस्था की अनुभूति ही माया या भौतिकवाद है, यदि हम इन चारों से ऊपर उठकर संसार का अनुभव करें तो अन्तिम सत्य या भगवान् की अनुभूति कर सकते हैं । सापेक्षवाद के सिद्धान्त का यही सार और निष्कर्ष है ।

सर्वत्र अद्वैत ही बिखरा पड़ा

पैंगल तब महर्षि नहीं बने थे । उनके लिये आत्म-सिद्धि आवश्यक थी । पर पैंगल साधना करते-करते पदार्थों की विविधता में ही उलझ कर रह गये । पशु-पक्षी, वन्य जन्तु, मछलियाँ, साँप, कीड़े-मकोड़ों में शरीर और प्रवृत्तियों की भिन्नता होने पर भी शुद्ध अहंकार और चेतनता की एकता तो समझ में आ गई पर विस्तृत पहाड़, टीले, जंगल, नदी, नाले, समुद्र, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, प्रकाश, आकाश और पृथ्वी पर पाये जाने वाले विविध खनिज, धातुएँ, गैसें, ठोस आदि क्या है, क्यों है और उनमें यह विविधता कहाँ से आई है ? यह उनकी समझ में नहीं आया । इससे उनकी आत्म-दर्शन की आकांक्षा और बेचैन हो उठी ।

वे याज्ञवल्क्य के पास गये और उनकी बारह वर्ष तक सेवा-सुश्रूषा कर पदार्थ-विद्या का ज्ञान प्राप्त किया । इस अध्ययन से पैंगल का मस्तिष्क साफ हो गया कि जड़ पदार्थ भी एक ही मूल-सत्ता के अंश हैं । सब कुछ एक ही तत्व से उपजा है । 'एकोऽहं बहुस्यामः' 'एक नूर से जग उपजिया' वाली बात उन्हें पदार्थ के विषय में भी अक्षरशः सत्य प्रतीत हुई । पैंगलोपनिषद् में इस कैवल्य का उपदेश मुनि याज्ञवल्क्य ने इस प्रकार दिया है-

"सदेव सोम्येदमग्र आसीत् । तन्नित्यमुक्तमविक्रियं सत्य-ज्ञानानन्दं परिपूर्ण सनातनमेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ।। तस्मिन्-मरुशुक्तिकास्थाणुस्फटिकादौ जलरौप्यपुरुषरेखा दिवल्लोहितशुक्लकृष्णागुणमयी गुणसाम्यानिर्वाच्या मूलप्रकृतिरासीत् । तत्प्रतिबिम्बितं यत्तत्साक्षिचैतन्यमासीत् ।।"

-पैंगलोपनिषद् १/२-३

"हे पैंगल ! पहले केवल एक ही तत्त्व था । वह नित्य मुक्त, अविकारी, ज्ञानरूप चैतन्य और आनन्द से परिपूर्ण था, वही ब्रह्म है । उससे लाल, श्वेत, कृष्ण वर्ण की तीन प्रकाश किरणों या गुण वाली प्रकृति उत्पन्न हुई । यह ऐसा था जैसे सीपी में मोती, स्थाणु में पुरुष और मणि में रेखाएँ होती हैं । तीन गुणों से बना हुआ साक्षी भी चैतन्य हुआ । वह मूल प्रकृति फिर विकारयुक्त हुई तब वह सत्व गुण वाली आवरण शक्ति हुई, जिसे अव्यक्त कहते हैं ।...उसी में समस्त विश्व लपेटे हुए वस्त्र के समान रहता है । ईश्वर में अधिष्ठित आवरण शक्ति से रजोगुणमयी विक्षेप शक्ति होती है, जिसे महत् कहते हैं । उसका जो प्रतिबिम्ब पड़ता है वह चैतन्य हिरण्य गर्भ कहा जाता है । वह महत्तत्व वाला कुछ स्पष्ट और कुछ अस्पष्ट आकार का होता है ।"

इसी उपनिषद् में आगे क्रमशः इसे विक्षेप से आत्मा, आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी आदि उत्पन्न हुए बताये हैं । वस्तुतः यह परतें एक ही तत्व की क्रमशः स्थूल अवस्थाएँ हैं, जो स्थूल होता गया वह अधिकाधिक दृश्य, स्पर्श्य होता गया । ऊपरी कक्षा अर्थात् ईश्वर की ओर वही तत्व अधिक चेतन और निर्विकार-निराकार होता गया । वायु की लहरों के समान विभिन्न तत्त्व प्रतिभाषित होते हुए भी संसार के सब तत्व एक ही मूल-तत्त्व से आविर्भूत हुए हैं । उसे महाशक्ति कहा जाये, आत्मा या परमात्मा-सब एक ही सत्ता के अनेक नाम हैं ।

विज्ञान की आधुनिक जानकारियाँ भी उपरोक्त तथ्य का ही प्रतिपादन करती हैं । जड़-पदार्थ चाहे वह लोहा हो या सोना, ताँबा हो या पारद-(१) गैस, (२) द्रव, तथा (३) ठोस, इन तीनों अवस्थाओं में पाये जाने वाले जो भी तत्व हैं, उनमें क्रमबद्ध एकता है । अब तक १०८ तत्वों का पता लगाया गया है । यह सभी तत्व 'पीरियाडिक टेबुल' में सजाकर रखे गये तो पता चला कि सभी तत्वों में केवल प्रोटान (यह धन विद्युत आवेश कण है, जो नाभिक या न्यूक्लियस में पाया जाता है) और इलेक्ट्रॉन (यह परमाणु का ऋण विद्युत आवेश-कण होता है) की संख्या का अन्तर मात्र है । जिस वस्तु में इलेक्ट्रान या प्रोटान (परमाणु में जितनी संख्या प्रोटान की होती है, उतनी ही इलेक्ट्रान की भी होती है) की मात्रा कम होती है, वह उतना ही हलका और सूक्ष्म होता है । जिसमें संख्या बढ़ती गई, वह उतना ही ठोस, स्थूल, दृश्य और स्पर्श्य होता गया ।

हाइड्रोजन सबसे हलकी गैस है । उसमें इलेक्ट्रान या प्रोटान की संख्या १ होती है । हीलियम में २, लीथियम में ३, बैरीलियम में ४, बोरान ५, कार्बन ६, नाइट्रोजन ७, आक्सीजन ८, फ्लोरीन ९, नियान १०, सोडियम ११, मैगनीशियम १२, एल्युमिनियम १३, सिलिकन १४, फास्फोरस १५, सल्फर १६, क्लोरीन १७, आर्गन १८, पोटैशियम १९, कैलशियम २०, स्कैण्डियम २१ आदि ।

इसी क्रम से पारे में ८० इलेक्ट्रान और प्रोटान तथा सोने में ७९ इलेक्ट्रान पाये जाते हैं । आर्टीफिसियल ट्रांसम्यूटेशन (एक प्रयोग है जिसमें किरणों द्वारा न्यूक्लियस पर प्रहार करके इलेक्ट्रॉन्स को बदला जाता है) द्वारा पारे के नाभिक पर बमबार्ड किया गया तो वैज्ञानिकों ने पाया कि एक इलेक्ट्रान कम हो जाने से जब ७९ ही इलेक्ट्रॉन्स बचे तो वही पारे का शुद्ध परमाणु, सोने के शुद्ध परमाणु में बदल गया । प्रकृति का यह प्रयोग बताता है कि यदि मनुष्य अपने भीतर बढ़े हुए दुर्गुणों की मात्रा कम कर सके तो वह अधिकतम शुद्ध और मूल्यवान् अवस्था को पहुँच सकता है

सोना और पारा ज्यादा आपेक्षित घनत्व (रिलेटिव डेन्सिटी) वाले पदार्थ हैं, इसलिये इनके प्रयोगों में कमजोर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और भौतिकवादी व्यक्तियों की तरह अस्थायित्व देखने में आया । जड़ अपना स्वभाव जल्दी नहीं बदलता । किन्तु जो अधिक सूक्ष्म होते हैं, वह यदि कोई अच्छी बात देख लेते हैं तो अपने आपको उसके अनुरूप जल्दी ही ढालकर अपनी उपयोगिता, स्थायित्व और मूल्य बढ़ा लेते हैं । कम अपेक्षित घनत्व वाले पदार्थों में यह परिवर्तन तीव्र और स्थायी होता है । उदाहरण के लिये लीथियम परमाणु जिसमें इलेक्ट्रॉन्स की संख्या तीन होती है, प्रोटान्स का बमबार्ड द्वारा हीलियम परमाणु में बदल देता है ।

अब यदि ऊपर दी हुई सारिणी का उलटा चलें और स्कैण्डियम से बदलना प्रारम्भ करें तो उसे क्रमशः कैल्शियम, पोटैशियम, आर्गन इत्यादि में बदलते हुए हाइड्रोजन तक बना सकते हैं । यद्यपि यह एक बहुत ही कठिन और खर्चीला प्रयोग है, पर यह निर्विवाद सत्य है कि यदि प्रयोग किये जायें तो लोहे को भी हाइड्रोजन में बदला जा सकता है ।

हाइड्रोजन सूर्य की सबसे समीपवर्ती गैस है, यही गैस सूर्य में जलती है । फिर यदि हमारे शास्त्रों और योग-ग्रन्थों में सूर्य को ही सम्पूर्ण प्रकृति की आत्मा, अधिष्ठाता माना गया है, तो उसमें अतिशयोक्ति क्या है ? यह अधिक संवेदनशील, त्रिगुणात्मक शक्ति वाला, सृष्टि के कण-कण में आच्छादित तत्त्व है । किसी दिन नाभिकी-विद्या यह बतायेगी कि सूर्य ही क्रमशः स्थूल होता हुआ प्रकृति में ढला है, यही वह चेतना है जो हमारे मनोमय जगत का भी नियन्त्रण करती है । इस विद्या को जान लेने पर गायत्री उपासना के आधार और सावित्री-महाविद्या की उपलब्धियों में लोग विलक्षण सत्यताएँ पायेंगे । सूर्य हमारी आत्मा है, जैसा कि पैंगलोपनिषद् में कहा है-हमारे ज्ञान में अनुभूति आ जाये तो हमारे लिये शरीरों को बदल डालने वाले अनेक सत्यों को वैज्ञानिक ढंग से प्रमाणित कर सकना सम्भव हो जाएगा ।

आत्मा इन तत्त्वों की श्रेणी का सबसे सूक्ष्म तत्त्व है । महर्षि कणाद ने उसे पदार्थ माना है । वह १०८ तत्त्वों के इस क्रम में मूल होने के कारण ही है । आत्मा-शक्ति और पदार्थ दोनों ही है-जिस दिन हम इस बात को जान लेंगे, उस दिन पदार्थ और परमात्मा पर मानसिक रूप से नियन्त्रण करना भी निःसन्देह सम्भव हो जाएगा । अभी यह विद्या हम भारतीयों के पास है, पीछे उसका लाभ सारा संसार प्राप्त करेगा ।

आत्मा-परमात्मा का अस्तित्व ज्ञानसंगत व विज्ञानसंगत

इन दिनों प्रामाणिकता का आधार प्रत्यक्षवाद माना जाने लगा है । 'जो प्रत्यक्ष वही प्रामाणिक' की मान्यता दिन-दिन जोर पकड़ती जाती है । विज्ञान के बढ़ते हुए चरण ज्ञान क्षेत्र में तर्क, तथ्य की कसौटी को मान्यता देते हैं । उनका कहना है-पुरातन मान्यताओं में से कितनी ही अधूरी और अप्रामाणिक सिद्ध हुई हैं, उन्हें बदलना और सुधारना पड़ा है । ऐसी दशा में जो कुछ कहा और माना जाता रहा है उस सब का नये सिरे से पर्यवेक्षण किया जाना चाहिए । अब यही बात जोर पकड़ती जा रही है कि श्रद्धा को भावुकता भर माना जाय और महत्वपूर्ण विषयों को प्रत्यक्षवादी तर्क, तथ्यों द्वारा परखने के बाद ही स्वीकार किया जाय ।

इस संदर्भ में ईश्वर और आत्मा की मान्यता भी एक विषय है जिस पर नया प्रकाश पड़ने की आवश्यकता है । इस दिशा में भी खोज-बीन हुई और इतनी मंजिल पार कर ली गई है कि प्राणियों में पाई जाने वाली चेतना का अपना निजी अस्तित्व है वह रासायनिक पदार्थों के मिलन से जन्म लेती और बिछुड़न से मर जाती हो ऐसी बात नहीं है । उसका स्वतन्त्र अस्तित्व है । यह रासायनिक पदार्थों और परमाणुओं को अपनी इच्छानुसार खींचती, बदलती एवं प्रयुक्त करती है । इस प्राणि-चेतना का अपना आकर्षण और प्रभाव है । अपनी आकांक्षा, अभ्यास, प्रकृति एवं आवश्यकतानुसार वह शरीर धारण करती है । उस शरीर में आवश्यक हेर-फेर करती है, शरीर को ही नहीं वातावरण को भी वह प्रभावित करती है ।

वृक्षों की सघनता वर्षा के बादलों को आकर्षित करती है यह सर्वविदित है । पेड़ कट जाने पर वर्षा घट जाती है । उद्यानों की अभिवृद्धि से मौसम बदलता और बादल खिंचते चले आते हैं । यह वृक्षों में रहने वाली चेतना का आकर्षण एवं प्रभाव है । सृष्टि के इतिहास से अनेकानेक परिवर्तनों की लम्बी शृंखला और उनके पीछे तत्कालीन प्राणियों की आकांक्षाओं का दबाव भारी काम करता रहा है । अपने-अपने शरीरों की स्थिति में तथा अपनी इन्द्रिय चेतना में भी उन्होंने भारी परिवर्तन कर लिए हैं ।

प्राणि-जगत की चेतना अनुभवों का लाभ उठाते हुए, ठोकरों से शिक्षा लेते हुए, भूलों को सुधारते हुए प्रगति के प्रस्तुत स्तर तक पहुँच पाई है । आदिमकाल के डायनासौरों जैसे विशालकाय प्राणी पूँछ, दाँत और पीठ पर आक्रमणकारी शस्त्र साधनों से सुसज्जित थे, तब शायद संघर्ष और विजय का मत्स्य न्याय ही उपयुक्त समझा गया होगा, पर वह प्रयोग सफल न रहा । एक दूसरे की चमड़ी उधेड़ने और अण्डे निगलने की नीति सार्थक सिद्ध नहीं हुई । कायिक दृष्टि से विशाल और सामर्थ्य की दृष्टि से सबल होते हुए भी आदिमकाल के पशु-पक्षी अपनी हिंस्र आदतों के दुष्परिणाम भुगतते हुए अपना अस्तित्व ही गँवा बैठे ।

पीछे नया अध्याय प्रारम्भ हुआ और नीति बदली । प्राणियों की ममता बच्चों के प्रति बढ़ी और उन्होंने अण्डों को घोंसलों में सेने की अपेक्षा पेट में ही पकाने का निश्चय किया, इतना ही नहीं उन्हें शरीर रस निचोड़ कर दूध भी पिलाया । यह प्रकृति-परिवर्तन की एक महाक्रान्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

थी । हिंसा की निरर्थकता समझी गई और स्नेह, सहयोग भरे अनुदान का आदान-प्रदान का क्रम चल पड़ा ।

माँसाहारी प्राणियों की मूल चेतना ने अपने शारीरिक अवयव अपनी आवश्यकतानुसार उपलब्ध एवं विकसित किये हैं । पेड़ों की छाया में तथा घास की झाड़ियों में अपने को छिपाये रहने की जिन्होंने आवश्यकता समझी, उनकी चमड़ी का रंग तथा दाग-धब्बे उसी प्रकार के उत्पन्न हो गये । शाकाहारियों को दाँत-आँत की जैसी स्थिति आवश्यक थी उसी अनुरूप उन्होंने अपने कलेवरों को प्राप्त कर लिया । घोर शीत में आहार प्राप्त कर सकने की कठिनाई देखकर हिम-प्रदेश के रीछों ने उन दिनों गहरी निद्रा में पड़े रहने की आदत बनाली । देश-काल के अनुरूप विभिन्न प्राणियों ने जहाँ अपने को बदला है वहाँ ऐसे प्रमाण भी उपलब्ध हुए हैं कि अमुक क्षेत्र में बहु-संख्यक प्रबल चेतना सम्पन्न प्राणियों ने अपनी आवश्यकता के अनुरूप व्यवस्था बदलवा लेने के लिए प्रकृति को सहमत कर लिया ।

यह बहुत पुराने जमाने की गई-गुजरी बात हो गई जब प्राणी को रासायनिक पदार्थों का समूह और उनकी चेतना को जीवाणुओं की सम्मिलित स्फुरणा मात्र कहा गया था और उसे चलता-फिरता पौधा घोषित किया गया था । शरीर के साथ ही जीवन का आदि और मरण के साथ अन्त होने की बात भी कभी-कभी विज्ञान क्षेत्र से उठी थी पर अब उस मान्यता में लगभग आमूलचूल परिवर्तन कर लिया गया । मरणोत्तर जीवन के प्रमाण इतने अधिक मिले हैं कि उन्हें झुठलाया जा सकना सम्भव नहीं रहा । पुनर्जन्म की घटनाएँ आये दिन सामने आती हैं । ऐसे बालक जन्मते रहते हैं जो पूर्व जन्म की अपनी स्थिति को स्मृति के आधार पर प्रामाणिक सिद्ध कर सकें । प्रेतात्माएँ कैसी होती हैं-कहाँ रहतीं और क्या करती हैं इस सम्बन्ध में अभी बहुत जानना शेष है, पर उनके अस्तित्व को अब अप्रामाणिक ठहरा देना सम्भव नहीं । इस संदर्भ में भी इतने अधिक प्रमाण मिलते रहते हैं कि इन्हें अन्धविश्वास या भ्रान्ति समुच्चय कह देने से काम नहीं चल सकता ।

परमाणुवादी पदार्थ-विज्ञान ने आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार किया है और यह प्रयत्न किया है कि उस अस्तित्व की संगति किसी प्रकार प्रकृति की विज्ञानसम्मत व्याख्या के साथ ही बैठ जाय ।

आत्म-सत्ता के अस्तित्व के संदर्भ में अधिक सुबोध प्रकाश टामस ऐडिसन ने डाला है । फोनोग्राफ, रोशनी के बल्ब आदि के आविष्कर्त्ता इस प्रख्यात विज्ञानी का कथन है कि "प्राणी की सत्ता उच्चस्तरीय विद्युत कण गुच्छकों के रूप में रहती है । मरने के बाद भी यह गुच्छक विधिवत नहीं होते और परस्पर सघन सम्बद्ध बने रहते हैं । यह गुच्छक बिखरते नहीं वरन् मरने पर अनन्त आकाश में भ्रमण करने के उपरान्त पुनः जीवन चक्र में प्रवेश करते और नया जन्म धारण करते हैं । यह गुच्छक मधुमक्खियों के झुण्ड की तरह हैं । पुराना छत्ता वे एक साथ छोड़ती और नया छत्ता एक साथ बनाती हैं । इसी प्रकार उच्चस्तरीय विद्युत कणों के गुच्छक अपने साथ स्थूल शरीर की साधन-सामग्री और अपनी आस्थाओं और संवेदनाओं को साथ लेकर जन्मते-मरते रहने पर भी अमर बने रहते हैं ।"

क्वान्टम की थ्योरी के परिपूरक सिद्धान्त ने यह सिद्ध किया है कि जड़ और चेतना की सत्ता एक दूसरे से भिन्न स्तर की दिखते हुए भी वस्तुतः उनके बीच सघन तादात्म्य मौजूद है । 'पदार्थ' एक स्थिति में ठोस रहता है, पर दूसरी स्थिति में वह अपदार्थ बन जाता है । इस प्रकार जड़-चेतन में और चेतन जड़ में परिणत हो सकता है । मन की सत्ता शरीर रूप में पदार्थ रूप में प्रकट हो सकती है और अमुक स्थिति में पहुँचकर पदार्थ भी बन सकती है ।

विज्ञानी हाइसन वर्ग का प्रतिपादन है कि अन्तरिक्ष में अमुक स्थिति पर पहुँचने पर परमाणु पदार्थ न रहकर अपदार्थ में-ऊर्जा में परिणत हो जाते हैं । पदार्थ सत्ता परिधि, काल और रूप में ढाँचे में बँधी है । मनःसत्ता में अनुभूतियाँ, स्मृतियाँ, विचार और बिम्ब के रूप में व्याख्या होती है । इतना अन्तर रहते हुए भी उन दोनों के बीच अत्यधिक घनिष्टता है यहाँ तक कि वे दोनों एक दूसरे को प्रभावित ही नहीं करते वरन् परस्पर रूपान्तरित भी होते रहते हैं ।

इस तथ्य को नोबुल पुरस्कार विजेता यूजोन विगनर ने और भी अधिक स्पष्ट किया है वे कहते हैं कि यह जान लेना ही पर्याप्त नहीं कि वस्तुओं की हलचलों से चेतना ही प्रभावित होती है, वस्तुस्थिति यह है कि चेतना से पदार्थ भी प्रभावित होता है ।

रूस के इलेक्ट्रोनिक विज्ञानी सेमयोन किर्लियान ने एक ऐसी फोटोग्राफी का आविष्कार किया है जो मनुष्य के इर्द-गिर्द होने वाली उसकी विद्युतीय हलचलों का छायांकन करती है । इससे प्रतीत होता है कि स्थूल शरीर के साथ-साथ किसी सूक्ष्म शरीर की भी सत्ता विद्यमान है और वह ऐसे अविज्ञात पदार्थों से बनी है जो इलेक्ट्रॉनों से बने ठोस पदार्थ की अपेक्षा भिन्न भी हैं और अधिक गतिशील भी ।

विज्ञान-विश्लेषण के अनुसार मनुष्य विद्युत आवेगों से सम्पन्न एक विशेष प्राणी है । वह अदृश्य ऊर्जाओं के समुद्र में तैरता है । हर मनुष्य में विशेष चुम्बकीय प्रवाह उठते रहते हैं और वे अपने सजातीय ऊर्जा तत्वों को इस निखिल आकाश में से खींचकर अपने में धारण करते रहते हैं । साथ ही मनुष्य अपनी इन चुम्बकीय विशेषताओं को अन्तरिक्ष में बिखेरता भी रहता है । उसका यह ग्रहण और प्रक्षेपण क्रियाकलाप निरन्तर चलता रहता है । अदृश्य ऊर्जाओं से वह प्रभावित होता है और उनमें अपना योगदान सम्मिलित करता है । इसी आकर्षण-विकर्षण में मृत आत्माओं के साथ सम्पर्क स्थापित करना और आदान-प्रदान का क्रम चल पड़ना भी सम्भव हो सकता है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ख्याति प्राप्त वैज्ञानिक यू० वर्नार्ड का कथन है कि अभी मन:तत्व के बारे में हमारी जानकारी बहुत स्वल्प है पर वह दिन दूर नहीं जब चेतना के उन रहस्यों का उद्घाटन होगा जो उपलब्ध भौतिक-शक्तियों की तुलना में कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं । निकट भविष्य में यह सम्भव हो सकेगा कि मन:तत्व की शक्ति से पदार्थों का गठन, विघटन एवं रूपान्तरण हो सके । इसी प्रकार यह भी सम्भावना है कि संकल्प-शक्ति के सहारे मनुष्य अपने शरीर में अभीष्ट परिवर्तन प्रस्तुत कर सके ।

मनुष्य शरीर के सम्बन्ध में अध्यात्म की वैज्ञानिक व्याख्या यह है कि 'थ्री डाइमेन्शंस ऑफ स्पेस' और 'वन डाइमेन्शन आफ ट्यून' के समन्वय से यह अद्भुत निर्माण सम्भव हुआ है । इन में जो अनुपात है वही मनुष्य की वर्तमान स्थिति का आधार है । यदि इस अनुपात में थोड़ा हेर-फेर सम्भव हो सके तो स्थिति में इतना अन्तर हो सकता है कि आज का सामान्य मनुष्य कल अनेक कोटियों पर असामान्य सिद्ध हो सके ।

प्राणियों को चेतना का स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार कर और उसका प्रभाव पदार्थों पर पड़ने के वैज्ञानिक निष्कर्ष ने उस बचपन से छुटकारा पा लिया जिसमें आत्मा के अस्तित्व ही अस्वीकार कर दिया गया था और प्राणियों के जन्म-मरण को रासायनिक पदार्थों की एक विशेष हलचल ठहराया गया था । अब प्राणि-सत्ता को चेतना-घटक के रूप में जाना-माना जा रहा है । आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार करने में अब वैज्ञानिक आनाकानी, बहानेबाजी मात्र कही जा सकती है । वह दिन दूर नहीं जब इस संदर्भ में आड़े आ रहा असमंजस भी समाप्त होकर रहेगा ।

विज्ञान को प्रामाणिकता के साक्षी के रूप में मान्यता मिलती रही है, पर गहराई यह है कि विज्ञान का अस्तित्व ही जीव-चेतना की ज्ञानधारा के द्वारा ही प्रकाश में आया है । सृष्टि के अन्तराल में सूक्ष्म हलचलें अनादिकाल से ही चलती रही हैं । तब से अब तक वे अविज्ञात ही बनी रहीं उन्हें जानना तथा प्रयोग में लाना जिन आविष्कारों और आविष्कारकों के द्वारा सम्भव हुआ है वह चमत्कार ज्ञान की परिष्कृत स्थिति का ही परिणाम है । अब भी प्रकृति में छिपे हुए रहस्यों का बहुत कुछ उद्घाटन होना शेष है । जितना जाना जा चुका उससे कहीं अधिक जानने की मंजिल और पार करनी पड़ेगी । यह सब मानवी ज्ञान-चेतना के सहारे ही सम्भव होगा ।

विज्ञान के आधार पर चेतना को सिद्ध किया जाय या चेतना को विज्ञान की जननी माना जाय ! आज हम इसी असमंजस भरे चौराहे पर खड़े हैं । यों विज्ञान द्वारा भी आत्मा और परमात्मा का अस्तित्व सिद्ध होने जा रहा है, पर अधिक बुद्धिमत्ता इसी में थी कि चेतना की सर्वव्यापी और सर्वसमर्थ सत्ता को स्वीकार किया जाता और माना जाता कि पदार्थ और कुछ नहीं सूक्ष्म-चेतना की सघन एवं दृश्यमान एक स्थिति मात्र है । वेदान्त चिरकाल से 'सर्वं खिल्विदं ब्रह्मं' का उद्घोष करता रहा है '। अब विज्ञान भी सर्वत्र ब्रह्माण्डीय चेतना की सत्ता जड़ और चेतन में संव्याप्त मानने की सहमति प्रकट कर रहा है । लगता है कल नहीं तो परसों आत्मा और परमात्मा की सत्ता व्यष्टि और समष्टि चेतना के रूप में संव्याप्त होने की स्वीकृति प्रदान करेगा । ज्ञान और विज्ञान की दोनों ही धाराएँ आरम्भ में भले ही भिन्न एवं विपरीत दिखाई देती हों, पर आगे चलकर उन दोनों का समन्वय, एकीकरण होना सुनिश्चित है ।

पौराणिक गाथा है कि महर्षि कश्यप के दो पत्नियाँ थीं-एक दिति दूसरी अदिति । दिति से दैत्य और अदिति से देव उत्पन्न हुए । दैत्य है विज्ञान और देव है अध्यात्म । दोनों आपस में लड़ेंगे तो कलह और विनाश के अतिरिक्त किसी के पल्ले कुछ न पड़ेगा । मिल-जुलकर समुद्र-मन्थन करेंगे तो उनको श्रेय तथा समस्त विश्व को विविध-विधि लाभान्वित होने का अवसर मिलेगा ।

गंगा और यमुना हिमालय के एक ही क्षेत्र से निकलती हैं । दोनों का उद्गम केन्द्र एक है । आँखें दो हैं, पर दोनों की अनुभूतियों के आधार पर दृश्य-बिम्ब का निर्धारण एक ही मस्तिष्क केन्द्र करता है । कुछ दूर अलग-अलग बहने के कारण वे आगे चलकर परस्पर मिल जाती हैं । नेत्रों की ज्योति पृथक-पृथक हैं, पर दृश्य पटल पर दोनों का ही फोकस एक हो जाता है और वे दोनों अलग-अलग दृश्य न देखकर जो देखती हैं उसका निष्कर्ष एक ही होता है । अध्यात्म और विज्ञान को एक ही हिमालय की दो गंगा-यमुना एक ही मस्तिष्क में धँसी हुई दो आँखें कहा जाय तो कुछ भी अत्युक्ति न होगी । वे एक दूसरे की प्रतिद्वन्द्वी या प्रतिपक्षी नहीं वरन् वस्तुत: परस्पर पूरक बन कर रह सकती हैं ।

विश्व-ब्रह्माण्ड में ओत-प्रोत ब्रह्म-सत्ता

जीव और प्रकृति में ईश्वर समाया भी रहता है ताकि उनके मूलधर्म-गुण, कर्म, स्वभाव यथावत् अस्तित्व में बना रहे । क्रम और नियन्त्रण ही जन्म विकास और मरण की जो क्रिया-प्रक्रिया चलती रहती है उसे सृष्टि में ईश्वर का समावेश कह सकते हैं । इतना होते हुए भी यह सब कुछ स्वसंचालित स्तर का बना हुआ है । हर काम में ईश्वर को हस्तक्षेप नहीं करना पड़ता । जीवधारी अपनी कर्म-प्रक्रिया में उलझते-सुलझते, सुख-दु:ख उठाते, उन्नति-अवनति की झोंक खाते-मरते खपते रहते हैं । कर्मों का फल वे स्वयं ही प्राप्त कर लेते हैं । इसमें ईश्वर को दखल नहीं देना पड़ता । इसी प्रकार अणु-परमाणु अपनी विशेष स्थिति, गति और क्षमता से प्रेरित होकर अपनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हलचलें अनवरत रूप से चलाते रहते हैं और उनके क्रियाकलाप हमें सृष्टि संचार के रूप में दीखते हैं—शाप और वरदान हर मनुष्य स्वयं ही अपने आपको देता है-देव और दानव के बीजांकुर प्रचुर मात्रा में उसके भीतर विद्यमान हैं, उनमें से इच्छानुसार जिन्हें चाहे उन्हें वह अभीष्ट मात्रा में विकसित एवं उपेक्षित कर सकता है । मनुष्य की उन्नति-अवनित का, दुःख और सुख की स्थिति का पूर्णतया उत्तरदायी वह स्वयं ही है । जीवधारियों के भीतर विद्यमान एक स्वसंचालित प्रक्रिया के रूप में ईश्वर उनके भीतर मौजूद भी है और किसी कार्य में व्यक्तिगत आधार पर हस्तक्षेप करने के झंझट से वह दूर भी है । इसीलिये आत्मवेत्ता उसे निकट भी मानते हैं और दूर भी, उसे भीतर भी कहा जाता है और बाहर भी ।

प्रकृति की सत्ता भी इसी प्रकार अपनी पटरी पर दौड़ती, धुरी पर घूमती है । अणु-सत्ता स्पष्टतः स्वसंचालित है । वस्तुओं का विकास और विनाश-अप्रकटीकरण और विलीनीकरण अपने ढंग से होता रहता है । आगे पीछे बढ़ने, घटने-धुरी पर घूमने, उठने और गिरने के असंख्य क्रम इस जगत को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, ज्ञात और अज्ञात प्रकरणों में चलते रहते हैं । इस सबके भीतर काम करने वाले 'महतत्व' प्रकृति के गर्भ में समाविष्ट ईश्वरीय सत्ता को अध्यात्म की भाषा में 'हिरण्यगर्भ' कहते हैं । दृश्य जगत के बीच में इन्हीं दो शक्तिसंस्थानों को काम करते हुए देखा जा सकता है । पदार्थ की मूल-सत्ता 'महतत्व' है और उसमें जो गतिशीलता पाई जाती है उसे 'हिरण्यगर्भ' कहते हैं । इस प्रकार चेतन-जीवधारियों की तरह ही न, किन्तु दूसरे ढंग से ईश्वर सृष्टि के कण-कण में समाया हुआ माना गया है । ज्ञान, इच्छा और क्रिया के त्रिविध स्फुरण जीव के हैं किन्तु प्रकृति हलचल एवं क्रमबद्धता के दो आधार लेकर ही अपनी हलचलें गतिशील रखे रहती हैं ।

'महतत्व' और 'हिरण्यगर्भ' यह दो प्रकृति बीज जब अपनी अव्यक्त स्थिति से आगे बढ़कर व्यक्त होते हैं-सूक्ष्म से स्थूल बनते हैं तो उन्हें ताप और प्रकाश के रूप में देखा जाता है । गति की प्रतिक्रिया प्रकाश और ताप है-वह चक्राकार घूमती है और आगे बढ़ती है । बस, यहीं से वह क्षेत्र आरम्भ हो जाता है जिसे हम प्रकृतिक्षेत्र कहते हैं ।

पदार्थ-विज्ञान, का कार्यक्षेत्र यहीं से आरम्भ होता है । भौतिक-विज्ञान यहीं से अपना श्रीगणेश करते हैं । ईश्वर, जीव और अव्यक्त प्रकृति का विवेचन भौतिक-विज्ञान का नहीं, आत्म-विज्ञान का कार्यक्षेत्र है । उसके लिये जिन यन्त्रों, उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है उन्हें कल-कारखानों में नहीं बनाया जा सकता । मानवी अन्तःकरण के रूप में ईश्वर की प्रयोगशाला में ही उसका निर्माण होता है । तप और योगाभ्यास से उसे अधिकाधिक प्रखर एवं सम्वेदनशील बनाया जाता है । अनुभूतियों के रूप में उस अविज्ञात समझे जाने वाले क्षेत्र की महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त की जा सकती हैं । इतना ही नहीं ईश्वरीय महत्ता और जीव-सत्ता में सन्निहित प्रकृतिगत ऊर्जा की अपेक्षा असंख्य गुनी मृत्यु-शक्ति के प्रयोग-उपयोग का लाभ उठाया जा सकता है । यह क्षेत्र विशुद्ध रूप से आत्म-विज्ञान का है । भौतिक-विज्ञान में भी आत्म-विज्ञान के नियम तो काम करते हैं-उनका नियन्त्रण भी है पर कठिनाई यह है कि पदार्थों के बने कोई यन्त्र-उपकरण उतने सम्वेदनशील अभी नहीं बन सके हैं, जिनसे विश्व ब्रह्माण्ड में काम करने वाली दिव्य-सत्ता की महत्ता को प्रत्यक्ष देखा-समझा जा सके । भविष्य में सम्भव है आत्म-विज्ञान और भौतिक-विज्ञान की मूल-सत्ता को एक ही सिद्ध किया जा सके पर जब तक उभयपक्षी विज्ञानवेत्ता उनमें आगे तक नहीं बढ़ जाते तब तक दोनों ही क्षे अलग-अलग समझे माने जाते रहेंगे । इन दिनों हम ऐ ही स्थिति में हैं ।

इन पंक्तियों में प्रकृतिगत अध्यात्म की चर्चा करना अभीष्ट है । आत्म-सत्ता के क्षेत्र में ईश्वर और जीव हलचलें किस आधार पर चलती हैं, इस सम्बन्ध में म जितना जान सका है उसका उल्लेख किसी अन्य अव पर करेंगे यहाँ तो प्रकृति के क्रिया-कलाप के सम्बन्ध ही थोड़ी जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए ।

अव्यक्त प्रकृति के दो आधार 'महतत्व' और 'हिर गर्भ' की चर्चा ऊपर की जा चुकी है । संक्षेप में इन्हें पदा का आकार-प्रकार और उसके क्रिया-कलाप भी कह सकते हैं । भौतिक-विज्ञानी इन दोनों के समन्वय का सर्वप्रथम परिचय एक बीज-ब्रह्माण्ड के रूप में प्राप्त करते हैं । शोधें कहती हैं कि चिरअतीत में 'पदार्थ' एक विशाल ब्रह्माण्ड मात्र था । उसमें विस्फोट हुआ और वह अगणित नीहारिकाओं के रूप में बिखर गया । विस्फोट से जो शक्ति उत्पन्न हुई उसने नीहारिकाओं में विभिन्न प्रकार की हलचल उत्पन्न कर दी तदनुसार पदार्थ के कई प्रकार के गुण, धर्म प्रकट हो गये ।

वैज्ञानिकों का सृष्टि के आरम्भ का प्रतिपादन यह है कि मूल ब्रह्माण्ड-कन्दुक में विस्फोट से जो बिखराव नीहारिकाओं के रूप में विभाजित हुआ उसमें भ्रमणशीलता के अतिरिक्त मंथन क्रिया भी चल पड़ी । जिस प्रकार दही मथने से मक्खन की पुटकें ऊपर आ जाती हैं उसी प्रकार प्रकृति की परिचयात्मक प्रक्रिया तीन रूपों में निखरकर ऊपर आई । (१) वैकारिक वस्तुओं का स्वरूप, आकार-प्रकार (२) तेजस्, शक्तिधाराएँ, (३) अहंकार इन्द्रिय-चेतना एवं मनन-चिन्तन । अध्यात्म भाषा में इन तीनों को क्रमशः सतोगुणी, रजोगुणी एवं तमोगुणी प्रकृति अहंकार भी कहते हैं ।

परमाणु की उत्पत्ति यहीं से होती है । वह तीन भागों में विभक्त रहता है-(१) नाभिक, (२) मध्यवर्ती हलचल, (३) आवरण । इन तीनों को सत्व-रज-तम का अधिक स्पष्ट और अधिक स्थूल रूप कह सकते हैं । पंच महाभूतों के अस्तित्व में आने का स्तर यही है । आरम्भ में

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

'हिरण्यगर्भ' स्वयं ही एक महान परमाणु था । उसमें जो हलचल उत्पन्न हुई तो वही प्रारम्भिक क्रम आरम्भ हो गया जो पीछे परमाणु की अन्तःहलचलों में दिखाई देता है ।

'हिरण्यगर्भ' की गतिशीलता जैसे-जैसे बढ़ी वैसे ही उसमें ताप, तेजस् बढ़ता गया फलस्वरूप आदि-विस्फोट हुआ । उस विस्फोट से बने कोटि-कोटि खण्ड अमापनीय दूरियों पर प्रबल वेग से फेंक दिये गये । यह टुकड़े तीव्र गति से आगे बढ़ने के साथ-साथ अपनी धुरी पर भी घूमने लगे । जिससे उनमें चुम्बकत्व पैदा हुआ । इस चुम्बकत्व ने इन खण्डों में परस्पर खिंचाव पैदा किया । वे एक दूसरे से उस चुम्बकीय धारा के कारण परस्पर आबद्ध हुए । बड़ों ने छोटों को अपने प्रभाव क्षेत्र में ले लिया । इस प्रकार उनके 'हिरण्यगर्भ' धूल के अनेक खंड परिवार बन गये । बड़े पिण्ड के इर्द-गिर्द उसके छोटे खण्ड घूमने लगे । इन्हीं का नाम आकाश-गंगा पड़ा । ऐसी अनेक कोटि आकाश गंगाएँ 'हिरण्यगर्भ' के विस्फोट से बनीं । विस्फोट के बाद हिरण्यगर्भ का जो नाभिकेन्द्र बच गया उस महाध्रुव की परिक्रमा यह आकाश-गंगाएँ करने लगीं ।

यही क्रम आगे आकाशगंगाओं में चला । यह ताप प्रकाश की आदि प्रवृत्तियाँ आकाशगंगाओं में भी विकसित हुई उनमें भी विस्फोट हुए । वे भी क्रमशः वायु गर्भ के ठोस वर्ग में बदलते गये और तारकों की रचना हो गई । तारकों से-ग्रह, ग्रह से उपग्रह में वही क्रम चलता रहता है । छितराये हुए खण्ड अपने उद्गम पिण्ड केन्द्र की-परिक्रमा करने लगे । यही है वह सृष्टि-क्रम जिसे भारतीय तत्वदर्शन के विविध प्रतिपादनों और अलंकारिक कथा-प्रसंगों के माध्यम से प्रस्तुत किया है ।

सृष्टि के आरम्भ और उसके क्रिया-कलाप के गर्भ में हम उस आध्यात्मिक सत्य को ही प्रत्यक्ष देखते हैं, जिससे ईश्वर की स्फुरणा और आकांक्षा के कारण इस जगत की उत्पत्ति कही गई है । 'महतत्व' और 'हिरण्यगर्भ' की व्याख्या में निरत प्रकृतिगत पदार्थों और हलचलों का विश्लेषण विवेचन भर करते हैं, पर यदि इससे कुछ और ऊँचे उठकर देखना-समझना सम्भव हो सके तो प्रतीत होगा कि यह जगत ब्रह्म-सत्ता की इच्छा-स्फुरणा मात्र है, उसी की ये चिनगारियाँ उड़ती दिखाई देती हैं जिन पर भौतिक विज्ञान इतने उत्साह से शोध कार्य कर रहा है । इन चिनगारियों के उद्गम केन्द्र को भी यदि समझा-खोजा जाता तो मनुष्य को वह क्षमता प्राप्त होती जो प्रकृति-विज्ञान की उपलब्धियों की तुलना में कोटि-कोटि गुनी अधिक प्रचण्ड और दिव्य है ।

कण-कण में बसी है चेतना

अलग-अलग दीखते हुए भी वस्तुतः हम सभी चेतना के धरातल पर एक दूसरे से जुड़े हुए हैं । मनुष्य में जो चैतन्य-सत्ता क्रीड़ा-कल्लोल कर रही है वही सम्पूर्ण जगत एवं प्राणी-पदार्थ में विद्यमान है । शास्त्रकारों एवं आप्त पुरुषों ने इसे ही व्यक्त करते हुए कहा है कि ब्रह्माण्ड और पिण्ड में, व्यष्टि और समष्टि में जितनी भी शक्तियाँ काम कर रही हैं, वह सभी प्राण-चेतना के ही भिन्न-भिन्न रूप हैं । कल्प के आदि से ही अपने मूल रूप 'महाप्राण' से उद्भूत होकर यह सत्ता अन्ततः पुनः उसी में समाहित हो जाती है । समत्व एवं एकत्व का दृष्टिकोण अपनाकर चलने और विचारणा, भावना तथा संवेदना को उच्चस्तरीय बना लेने पर नियन्ता की अनुभूति हर किसी को हो सकती है । पूर्णता स्तर तक का विकास तभी सम्भव है ।

पाश्चात्य मनीषी भी उपरोक्त तथ्य को स्वीकारते हैं । सुविख्यात मनोविज्ञानी कार्ल जुंग का कहना है कि परोक्ष व सूक्ष्म रूप से हम एक दूसरे से सुसम्बद्ध हैं । हम जो भी करते अथवा सोचते हैं, उससे दूसरे अवश्य प्रभावित होते हैं । इसे उन्होंने 'कलेक्टिवकान्शसनेस' अर्थात् सामूहिक अवचेतन नाम दिया है । विज्ञान का 'पास्कल ला' नाम का एक प्रसिद्ध नियम है, जिसके अनुसार जब किसी द्रव में दबाव पड़ता है, तो वह दबाव बिना घटे सम्पूर्ण द्रव क्षेत्र में संचारित होता है । यह सिद्धान्त यहाँ भी लागू होता है । हमारी चिन्तन-चेतना जैसी होती है, उसी रूप में वह इस चेतना के समुद्र में संचारित हो जाती है, पर इसे ग्रहण करना पूर्णतः ग्रहीता पर निर्भर करता है । यहाँ भी ग्रहण अवधारण नियमानुसार होता है । जिस प्रकार समानधर्मी व्यक्ति और विचार परस्पर मिलते और घनीभूत होते हैं वही बात चेतना के सम्बन्ध में भी कही जाती है । चिन्तन-चेतना जिस स्तर की होती है, वह उसी ओर आकर्षित होती है । उत्कृष्ट स्तर की चेतना सदा सजातीय की ओर खिंचती चली आती है, जबकि निकृष्ट स्तर की चेतना निकृष्टतम की ओर प्रवाहित होती है ।

विज्ञानवेत्ताओं ने समस्त भौतिक-शक्तियों को जो कि चेतना के ही रूपान्तरण हैं, पाँच भागों में विभक्त किया है । ये हैं-(१) एलेक्ट्रो-मैगनेटिक फोर्स अर्थात् विद्युत चुम्बकीय बल (२) वीक फोर्स अर्थात् अल्प बल (३) स्ट्रांग फोर्स (महाबल) (४) ग्रैवीटेशनल फोर्स (गुरुत्वाकर्षण बल) और (५) एण्टी मैटर-एण्टी यूनिवर्स (प्रतिपदार्थ प्रतिविश्व) विज्ञानियों ने इन्ही सत्ताओं के समष्टिगत रूप में चेतना-जगत की झाँकी देखी है । परामनोविज्ञानी रिचार्ड मोरिस बक ने अपनी पुस्तक 'कास्मिक कन्ससनेस' में चेतना के चार स्तर बताये हैं । उनके अनुसार (१) परसिप्चुअल माइण्ड-यह चेतना का निम्न स्तर है, जो निम्न स्तर के जीवधारियों में विद्यमान है । (२) रिसिप्चुअल माइण्ड-यह कुछ उन्नत स्तर की चेतना है, जो उच्चस्तर के जीवधारियों में पायी जाती है । (३) कन्सेप्चुअल माइण्ड को उन्होंने आत्मचेतना युक्त मानवी चेतना के रूप में वर्णन किया है । अन्तिम (४) चौथी प्रकार की चेतना को उन्होंने ब्राह्मी-चेतना नाम दिया है । उनका कहना है कि यह चेतना की सर्वोच्च स्थिति है, जिसमें व्यक्ति को एकत्व और अद्वैत स्थिति का बोध होता है । सब में स्वयं को और स्वयं में सब को देखने की विशालता इसी अवस्था में विकसित होती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

२.१५ ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ

महर्षि अरविंद ने भी चेतना को चार मुख्य सोपानों में विभाजित किया है । ये हैं-क्रमशः उच्चतर मन, प्रकाशित मन, संबुद्धि मन और ओवर माइण्ड चेतना के उच्चतर आयाम को उन्होंने 'सुपर माइन्ड' कहा है । उनके अनुसार चेतना के इस सर्वोच्च स्तर का सम्पूर्ण मानव जाति में अवतरण तभी हो सकेगा जब वह अपने गुण-कर्म, स्वभाव में परिष्कार लाकर विचारणा-भावना और सम्वेदना को उच्चस्तरीय बना सके । साथ ही ईश्वर के प्रति श्रद्धाभाव रखते हुए पूर्णरूपेण आत्म-समर्पण कर दे । इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को उन्होंने इवोल्यूशन और इन्वोल्यूशन का नाम दिया है । इवोल्यूशन अर्थात् आरोहण में आत्म-परिष्कार कर स्वयं को ऊँचा उठाया जाता है और इन्वोल्यूशन अर्थात् अवरोहण में प्रयासपूर्वक भगवद् करुणा को नीचे उतारा जाता है । व्यक्तित्व और चेतना का पूर्ण विकास तभी सम्भव बन पड़ता है और देवत्व की प्राप्ति भी तभी होती है । इस स्थिति को प्राप्त व्यक्ति को उन्होंने 'नस्टिक बीइंग' अर्थात् अध्यात्मजीवी कहा है । रिचार्ड मोरिस बुक ने चेतना की इसी स्थिति को 'ब्रह्माण्डीय चेतना' नाम दिया है और कहा कि व्यक्ति में यह अस्थायी रूप से तब तक प्रकट और लुप्त रहेगी, जब तक यह उसका स्थायी गुणधर्म न बन जाये या दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जब तक मानव-जाति अपनी आत्मचेतना को उसके अनुरूप उच्चस्तरीय न बना ले, तब तक वह 'चेतना' स्थायी रूप से अवतरित नहीं हो सकती ।

हम जो चिन्तन करते हैं, वही इच्छा-आकांक्षा के रूप में शब्द-शक्ति बनकर निकलता है । विज्ञान ने शब्द को शक्ति के रूप में स्वीकारा है । उसके अनुसार शक्ति का न तो नाश होता है न निर्माण, वरन् रूपान्तरण होता है । वह अपने मूलरूप में भी रह सकती है अथवा दूसरे में बदल सकती है, पर उनका विनाश कभी नहीं होता । इस आधार पर वैज्ञानिक अन्तरिक्ष में अब तक के छोड़े गये विचारों को एक विशेष क्षेत्र में अवस्थित बताते हैं । आयनोस्फीयर, एटमोस्फीयर की तरह इस क्षेत्र का नाम उन्होंने आइडियोस्फीयर दिया है । इस क्षेत्र में घूमने-फिरने वाली विचार-चेतना में से वैज्ञानिक अब यन्त्रों के माध्यम से उन तरंगों को ग्रहण करने का प्रयास कर रहे हैं, जो महाभारत युद्ध के दौरान गीता के उपदेश के रूप में निकली थीं । यह तो विज्ञान का अपने ढंग का प्रयास है, पर जनसामान्य तो आइडियोस्फीयर से अपनी स्वयं-चेतना के स्तर के अनुरूप ही लाभ उठा पाता है । उपरोक्त चेतनात्मक स्तर में से वह जिस स्तर का प्रतिनिधित्व करता है, उसी स्तर की अंतरिक्षीय चेतना विचार-चेतना के रूप में उसकी ओर खिंची चली आती है और अपने अनुरूप क्रियाकलाप अपनाने के लिए व्यक्ति को बाधित करती है । यदि ऐसी बात नहीं होती तो स्वतन्त्रता-संग्राम के दिनों श्री अरविंद का सम्पर्क ब्राह्मी-चेतना से न हुआ होता । इसी महत् चेतना के निर्देश पर उन्होंने स्वाधीनता संग्राम के अपने सक्रिय जीवन से संन्यास लिया एवं अध्यात्म साधना में प्रवृत्त होकर अपनी प्रचण्ड-चेतना द्वारा वातावरण को प्रभावित किया और स्वतंत्रता प्राप्ति के कार्य को आसान बनाया ।

हमारी वर्तमान चेतना निम्नस्तरीय है, फलतः अनायास उसी स्तर की चेतना हमारी ओर आकर्षित होती रहती है और हमें वैसे ही कार्य करने की प्रेरणा देती है । इसके अतिरिक्त हम स्थान और वस्तु विशेष से जुड़ी चेतना से भी प्रभावित होते हैं । हम जो भी कार्य करते हैं, वह सूक्ष्म रूप से पूरे वातावरण को तो प्रभावित करता ही है, पर सम्पर्क क्षेत्र वाले स्थान और वस्तु को विशेष रूप से प्रभावित करता है । यह प्रभाव चेतना के स्तर के आधार पर भला-बुरा दोनों प्रकार का हो सकता है ।

होपडायमण्ड और कोहिनूर हीरे के बारे में कहा जाता है कि ये जिन-जिन के पास गये, उन-उन को त्रास ही दिया और तबाही मचाही । ऐसी ही जनश्रुति महाभारत की युद्ध भूमि और श्रवण कुमार के बारे में भी है । कहा जाता है कि महाभारत युद्ध के लिए भगवान कृष्ण ने जानबूझकर ऐसी भूमि का चयन किया, जिसका इतिहास रक्तरंजित था । उन्हें आशंका थी कि भाई-भाई का प्रेम असमय ही न उमड़ पड़े और मुख्य उद्देश्य अधूरा रह जाये, इसलिए उन्होंने ऐसी अभिशप्त युद्ध-भूमि के चयन का निर्देश दिया था जिसकी विकृत-चेतना अन्त तक सब के मन-मस्तक पर छायी रहे । श्रवण कुमार के बारे में कथा है कि एक बार जब वे अपने मात-पिता को तीर्थयात्रा के लिए ले जा रहे थे, तो एक जंगल से गुजरते हुए उनके मन में विचार आया कि इन्हें काँवर से उतार देना चाहिए और ऐसा ही किया भी ।

सूक्ष्म-द्रष्टा पिता कारण जानकर चुप रहे । उन्हें मालूम था कि उक्त स्थान बहुत पहले एक असुर का कार्यक्षेत्र रह चुका है और इसी का सूक्ष्म प्रभाव बेटे पर पड़ा है । उस स्थान को पार करते ही जब उनकी सद्बुद्धि लौटी तो इसका उन्हें बहुत पश्चात्ताप हुआ ।

इसी तरह उच्चस्तरीय चेतना का महामानवों की प्राण-ऊर्जा का सम्पर्क-सान्निध्य भी उत्तम होता है । कहा जाता है कि ऋषियों की तपःस्थली में हिंस्र जन्तु भी पालतू पशु का सा व्यवहार करने लगते थे । सिंह और गाय के एक ही घाट पर पानी पीने की कथा प्रसिद्ध है । इसी प्रकार देखा जाता है कि जब कभी मन्दिर आदि पवित्र स्थल अथवा तीर्थ उत्तराखण्ड जैसे पवित्र-क्षेत्रों में कोई प्रवेश करता है, तो अनायास ही उसकी सद्भावनाएँ हिलोरें लेने लगती हैं । वस्तुतः यह उस स्थान अथवा क्षेत्र में संव्याप्त उच्चस्तरीय चेतना का ही प्रभाव होता है ।

यह तो स्थान और क्षेत्र विशेष से जुड़ी प्रचण्ड-चेतना हुई, जो हमें भले-बुरे ढंग से प्रभावित और आकर्षित करती है । ब्राह्मी चेतना तो कण-कण में विद्यमान है, पर उसकी अनुभूति के लिए आत्मशोधन आवश्यक है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इससे कम में हम उसकी प्रतीति नहीं कर सकते । यदि यह चेतना कण-कण में नहीं होती, तो इस विश्व-ब्रह्माण्ड में जो नियम और व्यवस्था हमें दिखाई पड़ती है, वह कदापि नहीं होती । फिर सर्वत्र अव्यवस्था के ही दर्शन होते । सूर्य-चन्द्र ग्रह-नक्षत्र में से कोई भी समय के पाबन्द नहीं होते । पेड़-पौधों में असमय ही फल-फूल लगते और उनमें किस्म और प्रजाति का कोई भेद-भाव नहीं होता । जब चाहे तब आम के पेड़ में अमरूद और अमरूद में केले उत्पन्न होते । जन्तुओं में भी ऐसी ही अनियमितता और अव्यवस्था देखने को मिलती । तब गाय के बिल्ली और बिल्ली के खरगोश उत्पन्न होने में तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता । जन्तुओं में भ्रूणावस्था में एक और महत्वपूर्ण बात देखने को मिलती है । देखा गया है कि भ्रूणावस्था में प्रायः सभी जन्तुओं के बच्चों का आकार-प्रकार एक जैसा ही होता है । बाद की अवस्था में ही उन में विभेद उत्पन्न होता है और अलग-अलग प्रकार के रूप, आकार ग्रहण करते हैं । यह विभेद उत्पन्न करने वाला कौन है ? जो जन्तुओं के रूप और आकार को निर्धारित करता है । निश्चय ही यह वही अदृश्य चेतना है, जिसके कारण इस संसार की गति, प्रगति और नियम-व्यवस्था हुई है । जड़-चेतन उसी से ओत-प्रोत है ।

एक ही शक्ति का खेल है, यह सारा

कुछ समय पूर्व तक विज्ञान-जगत में आत्मा और ईश्वर की गुत्थी बड़ी उलझाव भरी थी । उसके लिए सबसे बड़ी समस्या यह थी कि स्थूल-यंत्रों द्वारा सूक्ष्म-तत्व की पुष्टि कैसे की जाय और बिना पुष्टि के प्रत्यक्षवादी विज्ञान उसे स्वीकार कैसे करे ? प्रश्न गम्भीर थे, पर पिछले दिनों विज्ञान ने उन्हें जड़-चेतन के समन्वय के रूप में स्वीकार कर लिया है । आत्मा को अर्द्ध-चेतन और अर्द्ध-जड़ के रूप में मान्यता मिली और इसी अनुपात में परमात्मा को अर्द्ध-ब्रह्म और अर्द्ध-प्रकृति के रूप में स्वीकारा गया ।

अध्यात्मवाद को यह स्थिति भी स्वीकार है । चेतना विज्ञान के विशेषज्ञों के अनुसार काम इतने से भी चल सकता है । वे कहते हैं कि अर्द्धनारी-नटेश्वर की प्रतिमाओं में इस मान्यता की स्वीकृति है । वहाँ ब्रह्म और प्रकृति का युग्म ब्रह्मविद्या के तत्व-दर्शन ने स्वीकार किया है । ब्रह्मा, विष्णु और महेश अपनी-अपनी पत्नियों को साथ लेकर ही चलते हैं । शक्ति के अभाव में परम-सत्ता का कोई अस्तित्व नहीं माना जाता । प्रकृति और परमात्मा के समन्वय से ही जीवात्मा की उत्पत्ति हुई है, ऐसे प्रतिपादन ब्रह्मविद्या की अनेक व्याख्याओं में उपलब्ध हैं ।

विज्ञान अपनी भाषा में परब्रह्म को, परमात्मा को ब्रह्माण्डीय चेतना के रूप में स्वीकार करने लगा है और उसका घनिष्ट सम्बन्ध जीव-चेतना के साथ जोड़ने में उसे अब विशेष संकोच नहीं रह गया है । यह मान्यता जीव और ब्रह्म को अंश और अंशी के रूप में मानने की वेदान्त व्याख्या से बहुत भिन्न नहीं है ।

अभी पिछले ही दिनों विज्ञानवेत्ताओं ने एक ब्रह्माण्डीय ऊर्जा का अस्तित्व स्वीकार किया है । इससे पूर्व पृथ्वी पर चल रही भौतिकी को ही पदार्थ-विज्ञान की सीमा माना जाता था, पर अब एक ऐसी व्यापक सूक्ष्म-सत्ता का अनुभव किया गया है, जो अनेक ग्रह-नक्षत्रों के बीच तालमेल बिठाती है । पृथ्वी पर 'इकालॉजी' का सिद्धान्त प्रकृति की एक विशेष व्यवस्था है । वनस्पति, प्राणी, भूमि, वर्षा, रासायनिक पदार्थ आदि के बीच परस्पर संतुलन काम कर रहा है और वे सब एक-दूसरे के पूरक बनकर रह रहे हैं । इतना तो उनकी समझ में आता था, पर जड़ समझी जाने वाली प्रकृति की वह अति दूरदर्शितापूर्ण चेतन व्यवस्था उन भौतिकविज्ञानियों के लिए सिर-दर्द थी, जो पदार्थ के ऊपर किसी ईश्वर जैसी चेतना का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते । अब ब्रह्माण्डीय ऊर्जा उससे भी बड़ी बात है । ग्रह-पिण्डों के बीच एक-दूसरे के साथ आदान-प्रदान की, सहयोग-संतुलन की जो 'इकालॉजी' से भी अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवस्था दृष्टिगोचर हो रही है, उसे क्या कहा जाय ?

परामनोविज्ञान की नवीनतम शोधें भी इसी निष्कर्ष पर पहुँची हैं-मनुष्य-चेतना ब्रह्माण्ड-चेतना की अविच्छिन्न इकाई है । अस्तु, प्राण शरीर में सीमित रहते हुए भी असीम के साथ अपना सम्बन्ध बनाये हुए हैं । व्यष्टि और समष्टि की मूल-सत्ता में इतनी सघन एकता है कि एक व्यक्ति समूची ब्रह्म-चेतना का प्रतिनिधित्व कर सकता है ।

परमाणु-सत्ता की सूक्ष्म-प्रकृति का विश्लेषण करते हुए विज्ञान इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि दो इलेक्ट्रॉनों को पृथक दिशा में खदेड़ दिया जाय, तो भी उनके बीच पूर्व सम्बन्ध बना रहता है । वे कितनी ही दूर रहें एक-दूसरे की स्थिति का परिचय अपने में दर्पण की तरह प्रतिबिम्बित कर प्राप्त करते रहते हैं । एक की स्थिति को देखकर दूसरे के बारे में बहुत कुछ पता मिल सकता है । एक को किसी प्रकार प्रभावित किया जाय, तो उसका साथी भी अनायास ही प्रभावित हो जाता है । इस प्रतिपादन पर आइंस्टीन रोजेन-पोटोल्स्की जैसे विश्व-विख्यात विज्ञानवेत्ताओं की मुहर है । इस सिद्धान्त से एक व्यापक सत्ता और उसके सदस्य रूप में छोटे घटकों की सिद्धि तथा पृथक रहते हुए भी एकता का तारतम्य बने होने की पुष्टि होती है ।

विज्ञान की मान्यता के अनुसार पूर्ण को जानने के लिए उसका अंश जानने की और अंश के अस्तित्व को समझने के लिए, उसके पूर्णरूप को समझने की आवश्यकता पड़ती है । इसके बिना यथार्थता को पूरी तरह नहीं समझा जा सकता । मूर्धन्य विज्ञानी फ्रिटजॉफ काप्रा ने अंश या अंशी के बीच अविच्छिन्न सम्बन्ध होने की बात

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ताओ ऑफ फिजिक्स' में विस्तारपूर्वक प्रतिपादन किया है । इसी का समर्थन करते हुए 'ग्राण्ड यूनिफाइड सिद्धान्त' के संयुक्त नोबल पुरस्कार विजेता शेल्डन ग्लैशो ने अपनी पुस्तक 'वर्ल्ड अराउण्ड अस' में कहा है कि परमाणु का प्रत्येक घटक विश्व-ब्रह्माण्ड का परिपूर्ण सदस्य है । इस सदस्यता को किसी भी प्रकार निरस्त नहीं किया जा सकता । दोनों एक दूसरे के पूरक होकर ही आदि काल से रहे हैं और अनन्तकाल तक अपना सघन सम्बन्ध यथावत बनाये रहेंगे ।

कभी आइंस्टीन ने कहा था कि ब्रह्माण्डीय चेतना का अस्तित्व सिद्ध कर सकने योग्य ठोस आधार विज्ञान-के पास मौजूद हैं । रूडोल्फ स्टीनर ने अपने ग्रन्थ 'गॉड एण्ड दि यूनिवर्स' में आइंस्टीन के प्रतिपादन को और भी अच्छी तरह सिद्ध करने के लिए आधार प्रस्तुत किये हैं ।

जीव-विज्ञानी मोर्गन ने ब्रह्माण्डीय चेतना के अस्तित्व और उसके कार्यक्षेत्र पर और भी अधिक प्रकाश डाला है । वे उसे जीवाणुओं में अपने ढंग से और परमाणुओं में अपने ढंग से काम करती हुई बताते हैं और भारतीय दर्शन की परा और अपरा प्रकृति को ब्रह्म-पत्नी के रूप में प्रस्तुत करने वाली मान्यता के समीप ही जा पहुँचते हैं । इस संदर्भ में उन्होंने विस्तृत प्रकाश अपनी 'दि किंगडम ऑफ एनिमल एण्ड दि किंगडम ऑफ गॉड' पुस्तक में डाला है ।

विज्ञान को परमाणु-संरचना के बारे में जब से जानकारी मिली है, वैज्ञानिक परमाणु की इलेक्ट्रॉन प्रक्रिया को उपकरणों के माध्यम से अधिकाधिक समझने का प्रयास करते रहे हैं । उल्लेखनीय है कि इस प्रक्रिया को सम्पूर्ण रूप से मात्र यन्त्रों के सहारे ही नहीं जाना जा सकता । उसके अस्तित्व का दर्शन और निरूपण करने वाला सबसे सशक्त यंत्र है मानवी मस्तिष्क । अन्य उपकरण तो इस संदर्भ में थोड़ी-सी सहायता मात्र करके रह जाते हैं । परमाणु की विवेचना नेत्र का नहीं गणित का विषय है । उसकी हलचलों से उत्पन्न प्रक्रिया के आधार पर गणित करके यह पता लगाया जाता है कि परमाणु और उसके उदर में हलचल कर रहे घटकों का स्वरूप, स्तर एवं क्रिया-कलाप क्या होना चाहिए ? विज्ञानी लुडबिग ने इसे और भी स्पष्ट करते हुए अपनी पुस्तक 'क्वांटम मिकेनिज्म' में कहा है कि क्वांटम शास्त्र यंत्रों पर नहीं वैज्ञानिकों की मानसिक चेतना पर अवलम्बित है ।

क्वांटम-थ्योरी के उक्त सिद्धान्त ने यह सिद्ध कर दिया है कि जड़ और चेतन की सत्ता एक-दूसरे से भिन्न स्तर की दीखते हुए भी वस्तुतः उनके बीच सघन तादात्म्य मौजूद है । पदार्थ एक स्थिति में ठोस रहता है, फिर द्रव बन जाता है, तत्पश्चात् गैस और तापक्रम जब और उच्च हो जाता है, तो वह अपनी चतुर्थ अवस्था 'प्लाज्मा' में पहुँच जाता है । तापमान जब और उच्चतम होता है, तो पदार्थ सर्वथा अपदार्थ स्थिति में परिवर्तित हो जाता है । विज्ञान इसे 'ऊर्जा' कहकर पुकारता है । अध्यात्म में इसे 'चेतना' नाम दिया गया है । इस प्रकार जड़, चेतन में और चेतन, जड़ में परिणत हो सकता है । मन की सत्ता शरीर रूप में, पदार्थ रूप में प्रकट हो सकती और एक स्थिति में पहुँचकर पदार्थ भी बन सकती है ।

विवेकानन्द ने अपनी पुस्तक 'राजयोग' में लिखा है कि इस संसार में जितने प्राणी-पदार्थ हैं, सब सृष्टि के आरम्भ में आकाश-तत्त्व से उत्पन्न होते हैं और अन्त में पुनः उसी में विलीन हो जाते हैं । इसी प्रकार यहाँ जितनी भी भौतिक, अभौतिक शक्तियाँ काम कर रही हैं, सभी प्राण के रूपान्तरण हैं, उन्हीं की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं । सृष्टि के अन्त में यह सभी शक्तियाँ पुनः अपने मूल रूप प्राण में परिवर्तित हो जाती हैं । विज्ञान की 'ग्राण्ड यूनिफाइड थ्योरी' इसी तथ्य की पुष्टि करती है और कहती है कि सृष्टि संरचना से पूर्व सभी शक्तियाँ एकरूप थीं ।

स्पष्ट है हर जड़-चेतन में भिन्न-भिन्न रूपों में एक ही शक्ति क्रीड़ा-कल्लोल कर रही है । जब वह पिण्ड और प्राणियों में विभिन्न क्रियाओं के रूप में कार्य करती दिखाई पड़ती है, तो आत्म-चेतना के नाम से जानी जाती है और ब्रह्माण्ड में उसकी स्वतंत्र-सत्ता ब्राह्मी-चेतना, ईश्वर, परमात्मा आदि संबोधनों से पुकारी जाती है । वस्तुतः वह दोनों हैं एक ही । उन्हें न तो पृथक माना जा सकता है, न किया जा सकता । यह बात धीरे-धीरे विज्ञान की समझ में अब आने लगी है ।

ब्रह्मसत्ता और उसकी सर्वव्यापकता

जैसा कि आजकल के वैज्ञानिकों की मान्यता है कि आत्मा अथवा चेतना भी स्थूल शरीर के समान ही पदार्थों का यौगिक मात्र है । इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि यदि उक्त बात सत्य है तो इस बात की अर्थात् पदार्थों के मिश्रण की प्रक्रिया का ज्ञान कराने वाले किसी दूसरे मन की भी आवश्यकता पड़ेगी ।

इसके उत्तर में प्रसिद्ध मनीषी जान स्टुअर्ट मिल ने सत्य ही कहा है-"मानव मस्तिष्क का वैज्ञानिक विश्लेषण करने पर भी जब कोई आत्मा या मन का किसी प्रकार का अस्तित्व नहीं समझ पाता और आत्मा या चेतना के सत्य को भी स्वीकार करने को तैयार नहीं होता अथवा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मा को मस्तिष्क की एक प्रक्रिया मात्र मानता है तो वह यह भूल जाता है कि इस प्रकार का निर्णय ही आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करना है ।''

आज के वैज्ञानिकों की मान्यता है कि गति ही गति पैदा करती है । यदि हम इस प्रतिपादन को सत्य मान लें तो यह कैसे माना जा सकता है कि मस्तिष्क की आणविक संरचना चेतना या बुद्धि उत्पन्न करती है क्योंकि बुद्धि या चेतना-शक्ति कोई गति नहीं अपितु गति जानने वाली शक्ति है । अस्तु वैज्ञानिकों का उक्त सिद्धान्त स्वयंमेव गलत सिद्ध हो जाता है ।

प्रो० जेम्स के अनुसार-''यह कहना और मानना निरर्थक बकवास होगा कि मस्तिष्क के कोषाणुओं की ब्यूहाणविक गति ही चेतना का मूल कारण है ।''

वैज्ञानिकों की यह मान्यता है कि मानव की स्मृति का आधार शरीर या उसकी आणविक संरचना है । बिलकुल निराधार मालूम होती है क्योंकि प्रति साढ़े सात वर्ष में शरीर की समस्त आणविक संरचना आमूल-चूल परिवर्तित हो जाती है । बचपन का शरीर युवावस्था में व युवावस्था के कोषाणु वृद्धावस्था में नहीं रह जाते ऐसी स्थिति में भी बचपन तक की स्मृतियाँ बनी रहती हैं ।

प्रसिद्ध भौतिकविद डॉ० फ्यूमेन का कहना है कि ''जो फासफोरस इस समय हमारे मस्तिष्क में है दो सप्ताह बाद पूर्णतया: बदल जाता है । मस्तिष्क के समस्त अणु बदलकर नए हो जाते हैं । अस्तु स्मृति का आधार मस्तिष्क के कोषाणुओं की रचना व प्रक्रिया नहीं हो सकती ।''

वैज्ञानिक मान्यता के अनुसार किसी भी वस्तु का कारण उसी में सन्निहित रहता है, जैसा कि बीज में वृक्ष की समस्त सम्भावनाएँ सन्निहित रहती हैं । अस्तु यह कहा जा सकता है कि परिणाम कारण की ही अभिव्यक्ति मात्र है ।

भौतिकशास्त्री जे० ए० बी० बटलर ने अपनी पुस्तक 'इन साइड दि लिविंग सैल' में लिखा है कि ''इस विश्व-ब्रह्माण्ड को पदार्थ एवं चेतना-मिश्रित एक विशिष्ट प्रक्रिया के रूप में माना जा सकता है । यद्यपि इस प्रक्रिया को सिद्ध नहीं किया जा सकता फिर भी यह अकाट्य सत्य है कि अन्त की सम्भावनाएँ प्रारम्भ में ही समायी रहती हैं ।''

जीवन क्या है ? इस सम्बन्ध में दो प्रकार की मान्यताएँ हैं, प्रथम यह कि जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक विकास का क्रमिक रूप है, जिसमें वातावरण और वंश परम्परा का प्रभाव होता है । दूसरा पक्ष अध्यात्मवादियों का है, उनके अनुसार जीव में आत्मा का अलग अस्तित्व होता है जो शिशु में उसके पिण्ड स्वरूप अवस्था में ही प्रविष्ट करती है ।

मृत्यु के सम्बन्ध में प्रथम मत के वैज्ञानिकों की मान्यता है कि शरीर बनाने वाले दोनों तत्त्व अर्थात् अणु और चेतना-शक्ति अपना-अपना कार्य बन्द कर देते हैं तो मृत्यु हो जाती है । जबकि दूसरी मान्यता के समर्थक प्राय: सभी धर्म और आध्यात्मिक प्रतिपादन हैं जिनकी मान्यता है कि आत्मा या बीज की मृत्यु नहीं होती, अपितु मृत्यु के बाद भी आत्मा का अस्तित्व बना रहता है, जिसे अपने भौतिक-जीवन के कर्मों का फल भोगना पड़ता है ।

इस ब्रह्माण्ड की रचना के सम्बन्ध में पहले वैज्ञानिकों की मान्यता थी कि इसका निर्माण ठोस पदार्थों से हुआ है जिसकी रचना अणुओं से हुई है । बाद के वैज्ञानिक प्रतिपादनों से सिद्ध हुआ कि अणुओं की रचना परमाणुओं से होती है अर्थात् परमाणुओं को सृष्टि-सृजन का मूलाधार माना गया । लार्ड केलविन ने यह सिद्ध कर दिखाया है-''यदि एक बूँद पानी को इतना विस्तृत किया जाय कि वह इस पृथ्वी के आकार का हो जाय तो उसमें पाया जाने वाला सबसे छोटा परमाणु एक क्रिकेट की गेंद के बराबर होगा ।''

रदरफोर्ड एवं वैज्ञानिक बोर के अनुसंधानों ने यह सिद्ध किया कि परमाणु असंख्य विद्युत अणुओं के संयोग से विनिर्मित एक लघु सौर प्रणाली के रूप में है । आगे चलकर जो अभी तक नवीन प्रयोग हुए हैं उनसे सिद्ध होता है कि सम्पूर्ण विद्युत पदार्थ तरंगों से बने हुए हैं, अस्तु अब तरंगों को ही सृष्टि की रचना का आधार माना जाता है । किन्तु विज्ञान की बढ़ती पकड़ इन तरंगों को भी असंदिग्ध नहीं मानती ।

फ्रांसिस मैसन ने आधुनिक वैज्ञानिकों की मान्यताओं पर कुठाराघात करते हुए अपनी पुस्तक 'दि ग्रेट डिजाइन' में लिखा है-''यह पदार्थ क्या है ? क्या यह विद्युतीय विकिरण है ? तब यह विकिरण क्या है ? विकिरण सृष्टि का आधार मूलतत्त्व है जिससे यह ब्रह्माण्ड निर्मित हुआ है । यह विशुद्ध ऊर्जा है जो कि इतनी सघन है कि यह ऊर्जा और तरंग दोनों के रूप में कार्य कर सकती है ।''

इस प्रकार विज्ञान और अध्यात्मवादी दोनों ही सिद्धान्त ब्रह्माण्ड के निर्माण के सम्बन्ध में एक ही निष्कर्ष पर पहुँचते हैं जहाँ पर पदार्थ एवं चेतना का मिलन होता है । अध्यात्मवादी सारे विश्व-ब्रह्माण्ड को चेतना से ओत-प्रोत मानते हैं, यही चेतना अध्यात्म में आत्मा और विज्ञान में ऊर्जा कही जाती है । इसे इस रूप में भी कहा जा सकता है कि सीमित दायरे में चेतना को पदार्थ और विस्तृत दायरे में यह चेतना ही जीवित पदार्थ या आत्मा है । यह चेतना ही अधिक स्वतन्त्र रूप में विशुद्ध चेतना (स्प्रिट) है, इस प्रकार यह चेतना के विकास की पद्धति वैज्ञानिकों के विकासवाद का ही स्वरूप हुआ । इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विकास के एक किनारे में पदार्थ तथा दूसरे में चेतना या आत्मा है । चेतना के विकास का क्रम तब तक चलता रहता है जब तक चेतना (आत्मा) परमात्मा (परम-तत्त्व) से एकाकार न हो जाय ।

इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध दार्शनिक मेटरनिक ने ठीक ही कहा है-"ब्रह्माण्ड के एक अणु का भी रहस्य मेरी समझ में जिस दिन भी आ जाएगा उस दिन यह विश्व-वाटिका या तो नर्क तुल्य हो जायगी अथवा मेरी चेतना ही जड़वत हो जाएगी ।"

ऋग्वेद ६/४७/१८ में भी परम-तत्त्व की व्यापकता की ओर संकेत किया गया है-

"रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश ॥

अर्थात्-उस परमब्रह्म स्वरूप को समझने के लिए सभी रूप सुन्दर हैं, सभी रूपों में उसका ही प्रतिबिम्ब है बिन्दुरूपी इन्द्र नाना प्रकार के माया रूपी स्वरूपों में दिखाई पड़ रहा है। उसकी हजारों-हजार किरणें पूरे ब्रह्माण्ड में फैली हुई हैं । अस्तु, उसके स्वरूप को समझने के लिए बिन्दु का ही प्रतिक्षण अवलोकन पर्याप्त है ।

जड़ और चेतन में एक ही सत्ता ओत-प्रोत है

राकफेलर इंस्टीट्यूट (अमेरिका) में वेकाफ और स्टेनली ने जीवित और अजीवित पदार्थों का अन्तर बतलाने के लिये अनेक अनुसंधान किये । उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि प्रत्येक अणु रासायनिक प्रक्रिया से स्वयं ही उत्पन्न होते हैं और बढ़ते हैं पर इसमें विचारणीय बात है कि अणु तभी उत्पन्न होते हैं, जब तक वे जीवित पदार्थ से सम्बन्धित रहते हैं । इसलिये जीवन की उत्पत्ति सिद्ध करने का प्रयास तो निरर्थक है, उससे तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि चेतना और जड़ दो विलग वस्तुएँ होकर भी गति या सक्रियता का मूल कारण चेतन ही है, उसकी क्षमताओं का विज्ञान अध्ययन नहीं कर सका, उसे केवल जड़-शक्ति की उपलब्धि हुई है, इसलिये विज्ञान जिन बातों को बताने में असमर्थ है, उसकी जानकारी के लिये संसार के सामने सिवाय इसके कि वह वेदान्त की शरण ले और कोई दूसरा उपाय शेष नहीं रह जाता । जहाँ से पदार्थ-विज्ञान की इति हो जाती है, उसके आगे मनोविज्ञान-अर्थात् आस्था और विश्वास का आश्रय लिये बिना मनुष्य 'सत्यमेव' की जानकारी प्राप्त नहीं कर सकता । हमें यह विश्वास करना ही होगा कि चेतना के गुण और स्वभाव पदार्थ से अलग हैं और उसकी जानकारी भावनात्मक आधार पर ही हो सकती है । भावनाओं को गहरा बनाने के लिये उपाय भले ही कुछ भी हों ।

प्रत्येक जीव में स्वार्थपरायणता का कुछ न कुछ अंश अवश्य रहता है । इसमें स्वयं के प्रति प्रेम और आदर भी सम्मिलित है, यदि यह प्रश्न किया जा सकता है कि प्रोटोप्लाज्मा कहाँ से उत्पन्न हुआ तो यह भी पूछा जा सकता है कि यह स्वार्थ-भाव कहाँ से आया ? मानव की मूल-प्रवृत्तियों जैसे प्रेम, काम, अहंभाव की उत्पत्ति कैसे हुई ? मनोविज्ञान उन्हें वंशानुगत सम्पत्ति के रूप में लेता है, उससे भी सीढ़ी दर सीढ़ी ऊपर चढ़ें तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि विकास की प्रक्रिया किसी एक बिन्दु से प्रारम्भ हुयी है और तब यह भी मानना पड़ेगा कि वह चेतना आदि अन्त रहित है । जीव उसमें से संसर्गमात्र मात्रा से पैदा होता रहता है, उससे मूल चेतना के अस्तित्व में न अन्तर आता है और न उसे कोई खतरा पैदा होता है ।

वेदान्त उस मूल-स्वत्व को ही अधिक महत्त्व देता है और उसे प्राप्त करने को ही जीवन का लक्ष्य बतलाता है । वह अविनाशी, अक्षर, सर्वव्यापी तत्त्व है, यह वह सम्पत्तियाँ हैं, जिसके पास होंगी, वह स्वर्ग से भी अधिक सुखी होगा । इच्छानुसार जहाँ चाहे पहुँच सके, जो भोग चाहे भोग सके उससे बढ़कर सुख क्या हो सकता है । यह स्थिति अन्तिम स्थिति है ।

ब्रह्म एक भाव है और उसे भावनात्मक स्तर पर उतर कर ही प्राप्त कर सकते हैं और जब उसे पा लेते हैं, तब उस स्थिति से आनन्ददायक और प्राप्य कुछ रह नहीं जाता । यह प्रक्रिया हम अपने आपको प्रेम करने से प्रारम्भ करते हैं । यह प्रेम शरीर के माध्यम से करने लगते हैं तो वह अज्ञान की स्थिति हो जाती है, क्योंकि हमारा अपना स्वरूप चेतन तो है पर अदृश्य है उसे केवल विश्वास और अपने गुणों के अध्ययन और विकास के द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं । वेदान्त की इस सम्मति को मानने से ही ईश्वर-दर्शन की अगली जानकारियाँ सम्भव होंगी और उसके अतिरिक्त कोई उपाय भी नहीं है ।

क्या प्रमाण है कि ईश्वर नहीं है ?

यों तो यह सारा संसार ही अपने आप में एक महान आश्चर्य है । पर संसार की कुछ इमारतें हैं जिनकी गणना सात महान आश्चर्यों में की जाती है । इनमें से एक है मिस्र के पिरामिड । वहाँ की राजधानी काहिरा से ९ मील पूर्व की ओर बने तीन पिरामिडों का समूह इस बात का द्योतक है कि अब से तीन चार हजार वर्ष पूर्व वहाँ के कला-कौशल ने कितनी उन्नति की थी ? इनका निर्माण ईसा से ३५०० वर्ष से ११०० वर्ष पूर्व की अवधि के बीच हुआ माना जाता है । बड़े-बड़े पत्थरों को एक पर एक

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चिन-कर सीढ़ियों की तरह बनाई गई ये इमारतें आज की उन्नत भवन निर्माण कला को भी मात देती हैं ।

पिरामिड वस्तुतः उस समय के राजा-महाराजाओं या सम्पन्न प्रतिष्ठित व्यक्तियों की समाधियाँ हैं । इनमें सबसे बड़ा पिरामिड है जो राजा च्योप्स की समाधि पर बनाया गया है । इसका निचला भाग १३ एकड़ जमीन के घेरे में फैला हुआ है । लगभग १३ लाख पत्थर इसके बनाने में इस्तेमाल किये गये हैं । इनमें से कई पत्थरों का भार ढाई टन तक है । आश्चर्य किया जाता है कि उस समय जब कोई क्रेनें नहीं थीं और न ही कोई मशीनें तो इन पत्थरों को वहाँ तक कैसे ले जाया गया और किस तरह इनको चिनकर ४५० फीट ऊँचाई तक बनाया गया । इससे भी आश्चर्य की बात यह कि इन पिरामिडों के अन्दर की कब्रों में जो शव दफनाए गये, वे आज भी ज्यों के त्यों विद्यमान हैं । पिरामिडों के सामने ही १४० फुट लम्बा बहुत बड़ा पुतला है । जिसका मुँह औरत का सा है और धड़ सिंह जैसा इसे 'स्फिक्स' कहा जाता है । आँधी, वर्षा, तूफान इनका कुछ नहीं बिगाड़ सके ।

पिरामिडों की तरह ही दुनिया का दूसरा बड़ा आश्चर्य है-बेबीलोन के झूलते बगीचे । ईसा से ६०० वर्ष पूर्व बनवाये गये बागों की ऊँचाई ७५ से ३०० फुट जमीन के ऊपर तक है । इन बगीचों के निर्माण की गाथा भी उतनी ही विचित्र है । कहते हैं कि राजा नेबुचादनेजार ने ये बाग लगवाये थे । जिन दिनों ये बने उन दिनों अरब के पास बेबीलोन नामक एक बहुत ही सुन्दर नगर था । वहाँ के राजा नेबुचादनेजार ने फारस की राजकुमारी से विवाह किया । किन्तु वह इस नये नगर और राजमहल के परिवेश में उदास रहने लगी । राजा को एक बार उसने बातों ही बातों में बताया कि यहाँ कोई सुन्दर बगीचा नहीं है । बगीचे तो वहाँ बहुत थे और एक से एक सुन्दर थे । राजा ने उन बगीचों के बारे में बताया तो राजकुमारी ने कहा ये बगीचे तो उसके देश के बगीचों से बहुत ही घटिया हैं । इस पर राजा ने आदेश दिया कि ऐसे बाग बनवाए जाएँ जो दुनिया में बेजोड़ और बेमिसाल हों ।

राजा के आदेश का पालन किया गया और सैकड़ों मील दूर पहाड़ों से पत्थर लाए गये । जमीन के ऊपर छतें पाटकर जमीन बनाई गई और उस पर सुन्दर तथा सुगन्धित फूल लगाए गये । झील से पंप द्वारा पानी चढ़ाया गया । इस प्रकार इन झूलते बगीचों का निर्माण हुआ जिन्हें ४० हजार मजदूरों और कारीगरों ने तीन वर्ष तक रात दिन काम करके तैयार किया । ये बगीचे भी संसार के महान आश्चर्यों में गिने जाते हैं ।

आगरा का ताजमहल भी इसी प्रकार एक सम्राट द्वारा अपनी प्रिय रानी की याद को अमर करने के लिए बनवाई गई इमारत है । संसार के सर्वप्रसिद्ध सात आश्चर्यों में से एक इस ताजमहल का निर्माण साढ़े अठारह वर्षों में हुआ । इसे बनाने के लिए कोई २० हजार मजदूर रोज काम करते थे । इतिहासकारों के अनुमान के अनुसार उस समय जब वस्तुएँ और मजदूरी बहुत कम मूल्यों पर उपलब्ध थीं ताजमहल के निर्माण में ६ करोड़ रुपये खर्च हुये । इसके लिए राजस्थान से संगमरमर, तिब्बत से नीलम मणि, सिंहल से सिपास्त्मा जुलि मणि, पंजाब से हीरे और बगदाद से पुखराज रत्न मँगाए गये थे ।

एशिया माइनर के तट पर ईसा से ३५० वर्ष पूर्व बनाए गये डिआना देवी के मंदिर के निर्माण में भी करीब १०० वर्ष लग गये थे । इस मंदिर की मूर्ति ४२५ फुट लम्बी और २२० फीट चौड़ी थी । मन्दिर में लगभग १०० खम्भे थे और प्रत्येक की ऊँचाई ६० फीट थी । कोरिया का मेलोलियम भी संसार का एक आश्चर्य है, करीब १०० फीट लम्बी और उतनी ही चौड़ी चहारदीवारी के मध्य ६०-६० फीट ऊँचे ३६ स्तम्भ जो नीचे मोटे और ऊपर क्रमशः पतले होते गए हैं, इनकी विशेषता है कि सीढ़ियों पर नीचे से ऊपर तक संगमरमर की बहुमूल्य सजावट की गई है । यह एक मकबरा था जिसकी ऊँचाई १४० फीट थी, पाँच भागों में विभक्त इस मकबरे में तहखाना, खम्भों का घेरा, पिरामिड और मूर्तियों का आधार सभी कुछ आश्चर्यजनक है ।

रोडस की प्रतिमा, ओलम्पिया में जुपीटर की विशाल मूर्ति, फारस के प्रकाश स्तम्भ, चीन की दीवार, पीसा का बुर्ज, सेंट सोफियो की मस्जिद, सेंट पीटर का गिरजाघर एम्पायर-स्टेट (न्यूयार्क जिसकी ऊँचाई १४७२ फीट है) पाइटलट, (ऊँचाई १०४६ फीट) एफिल टावर, कुतुब मीनार, गोल गुम्बद, लीनिंग टावर, इंडिपिण्डेस हाल, ऐलीजी पैलेस, क्रेमलीन आदि कितनी ही सर्वश्रेष्ठ इमारतें, मनुष्यकृत रचनाएँ हैं जिनके निर्माणकर्ताओं को प्रखर बुद्धि और भावसम्पन्न आत्माएँ कहा जा सकता है । संसार की इन आश्चर्यजनक इमारतों को देखकर सहज ही उनके निर्माताओं की कुशाग्र बुद्धि और पैनी प्रतिभा के सामने नतमस्तक हो जाना पड़ता है ।

ये कृतियाँ तो जड़ हैं । एक बार बना दी गईं फिर अविचल खड़ी रहीं । इनमें से कुछ नष्ट भी हो गईं पर एक बात तय है कि इनमें से किसी का भी निर्माण स्वतः नहीं हुआ । फिर यह कहने का क्या आधार है कि इतना सुन्दर संसार जिसमें प्रतिदिन सूरज उगता, प्रकाश व गर्मी देता व अपने समय पर अस्त हो जाता है, दिन भर के हारे-थके प्राणियों को रात्रि अपने अंचल में विश्राम देती है, वन-प्रान्तर में भूल-भटक गए यात्रियों को तारे दिशा बताते हैं । ऋतुएँ समय पर आती और चली जाती हैं, हर प्राणी के लिए अनुकूल आहार, जलवायु की व्यवस्था और प्रतिकूलताओं से सुरक्षा का प्रबन्ध प्रकृति में उपलब्ध है । ये सुविधाएँ और व्यवस्थाएँ सहज ही उपलब्ध हैं, इसलिए इन पर कोई आश्चर्य भले ही न होता हो, पर हैं तो विस्मयजनक ही । इस विस्मय के साथ ही प्रश्न खड़ा होता है कि इन आश्चर्यों की सर्जक सत्ता कौन है ? जो भी कोई वह सत्ता हो, उसे ही भिन्न-भिन्न धर्मों, ऋषियों और मनीषियों ने ईश्वर कहा है ।

जो लोग ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्न उठाते और उसे संदिग्ध बताते हैं, उनके लिए प्रति प्रश्न यह है कि जब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

संसार के इतने आश्चर्यों का कोई न कोई निर्माता है तो इतने बड़े संसार का निर्माण बिना सृजेता के कैसे हुआ यों तर्क के लिए तो कहा जा सकता है कि जब संसार का निर्माण ईश्वर ने किया तो ईश्वर का निर्माण किसने किया ? इस प्रकार के तर्क-वितर्कों का अन्त नहीं है और उन्हें कितना ही लम्बा खींचा जा सकता है, लेकिन तभी जब कि ईश्वर को कोई व्यक्ति मान कर चला जाय ।

स्मरण रखा जाना चाहिए कि मनीषी विचारकों ने ईश्वरीय सत्ता का प्रतिपादन कहीं भी व्यक्ति इकाई के रूप में नहीं किया है । उसे एक नियामक शक्ति के रूप में ही जाना और समझा जाता है । उसके प्रभाव और शक्ति का परिचय प्रकृति के चारों ओर सन्तुलन के रूप में बिखरा पड़ा देखा जा सकता है । यदि कोई नियम व्यवस्था न रही होती तो करोड़ों की संख्या में तारागण किसी व्यवस्था के अभाव में अब तक न जाने कब के आपस में टकराकर नष्ट हो गये होते । यदि इन सब में कोई नियम व्यवस्था काम न कर रही होती तो अमुक दिन, अमुक समय, अमुक सूर्य या चन्द्र ग्रहण, संक्रान्ति आदि का ज्ञान किस प्रकार सम्भव होता ?

सूर्य से पृथ्वी ९ करोड़ ३० लाख मील दूर है और पृथ्वी से चन्द्रमा २ लाख ४० हजार मील दूर । यह दूरी पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्य के निरन्तर घूमते रहने के बाद भी न घटती है और न बढ़ती है । जैसे कोई कठपुतली नचाने वाला एक सुनिश्चित क्रम से अपनी अँगुलियों की डोरों को हिलाता हुआ कठपुतली का खेल दिखाता है , उसकी प्रवीणता के कारण कभी खेल नहीं बिगड़ता, उसी प्रकार सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा ही नहीं ब्रह्माण्ड के अन्यान्य ग्रह-नक्षत्र भी उसी गति, उसी नियम व्यवस्था से चल रहे हैं ।

चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा १७ दिन, ७ घण्टे ४३ मिनट और १२ सेकिन्ड में पूरी कर लेता है । पृथ्वी अपनी धुरी पर २३ घण्टे ५६ मिनट, ४.९ सेकैंड में घूम जाती है । सूर्य की परिक्रमा करते समय वह एक सेकण्ड में १८ मील की दूरी तय करती और अपनी धुरी पर १०३७ मील प्रति घण्टा की चाल से घूमती है । बृहस्पति अपनी धुरी पर ९ घण्टे ५५ मिनट में घूम जाता है और ३३३ दिन में सूर्य की परिक्रमा पूरी करता है । सौर-परिवार के इन सदस्यों ने निर्धारित समय में अपना यह क्रम पूरा करने में न कभी विलम्ब किया और न उतावली से काम लिया ।

इनका नियमन करने वाली कोई व्यवस्था, सत्ता या शक्ति के अस्तित्व से किस प्रकार इनकार किया जा सकता है जबकि बिना उठाने वाले के, एक पत्थर भी उठ कर इधर से उधर नहीं जाता । कार्यालयों में कोई नियम व्यवस्था न हो, कोई नियन्त्रणकर्ता या प्रबन्धक न हो तो वहाँ का काम चल पाना कठिन हो जाता है । सब अपनी मनमानी करने लगें तो कैसी अव्यवस्था उत्पन्न हो जाएगी कहा नहीं जा सकता । यह मान लिया जाय कि किसी प्रकार थोड़ी देर के लिए यह व्यवस्था चल भी जाय तो वह स्थिर नहीं हो सकती । मुश्किल से पन्द्रह मिनट भी नहीं चल पावेगी । नियामक के बिना स्थिर और अनवरत व्यवस्था और प्रशासक के बिना प्रशासन की कल्पना नहीं की जा सकती । परिवार के वयोवृद्ध व्यक्ति के हाथ में सारी गृहस्थी का नियन्त्रण होता है । गाँव का एक मुखिया होता है तो कई गाँवों व नगरों के समूह की बनी तहसील का स्वामी-नियंत्रणकर्ता तहसीलदार, जिले का प्रशासक कलेक्टर, राज्य का गवर्नर और देश की शासन व्यवस्था का सूत्र संचालक राष्ट्रपति होता है । मिलों तक में मैनेजर और कम्पनियों में डाइरेक्टर न हों तो उनकी व्यवस्था ही उप्प पड़ जाती है और अस्तित्व डाँवाडोल हो जाता है । फिर इतनी बड़ी सृष्टि का प्रशासक, स्वामी और मुखिया न होता तो संसार न जाने कब का विनष्ट हो चुका होता ?

यह एक मानी हुई बात है कि जड़ में शक्ति हो सकती है, व्यवस्था नहीं । राह में गढ़े पत्थर से किसी को चोट लग जाय तो खून निकल सकता है लेकिन पत्थर खुद चलने वाले को देखकर चोट पहुँचाने के लिए उसके अँगूठों की नोंक तक नहीं पहुँचता । क्योंकि वह जड़ है । हालांकि अब तो जड़ की परिभाषा भी बदल गई है और कहा जाता है कि इस दुनिया में जड़ कुछ नहीं है, पर वह विषय अलग है, उसका प्रस्तुत पंक्तियों से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है । कहा इतना भर जा रहा है कि व्यवस्था, प्रशासन, संचालन, नियमन और नियंत्रण जिस-तिस के बस की बात नहीं है । यह कार्य कोई समर्थ-सत्ता ही कर सकती है और जब प्रश्न ब्रह्माण्ड का आता है, जिसके विस्तार का ही अनुमान नहीं लगाया जा सकता परन्तु यह अनुभव किया जाता है कि आकाशस्थ समस्त पिण्ड अंडाकार वृत्त में एक निश्चित गति क्रम से गतिवान हैं तो प्रश्न उठता है कि कोई नियामक सत्ता नहीं है इस बात का क्या प्रमाण है ?

"सर्वंखिल्विदं ब्रह्म" को विज्ञान की मान्यता

विज्ञान की विभिन्न शाखा-प्रशाखाएँ गहन अध्ययन से इन्हीं निष्कर्षों पर पहुँची हैं कि 'विविधता में एकता' ही सृष्टि का परम नियम है एवं समष्टि-चेतना का ही अलग-अलग अंशों में वितरण सृष्टि के विभिन्न घटकों में हुआ है

सृष्टा कोई ऐसा अतिमानव नहीं है जो प्रकृति के बाहर वास करता हो अथवा किसी विशिष्ट स्थान स्वर्ग में बैठा निर्देश देता रहता हो । वेदान्त-दर्शन का कथन है कि जीव पुरुषार्थ के सिद्धान्त से बँधा है । अपने भाग्य का निर्माता वह आप है । अपना भविष्य वह स्वयं अपने हाथों निर्धारित करता है । ऐसे मत का प्रतिपादन करने वाला व्यक्ति अन्धविश्वासों में न बँधकर पुरुषार्थ द्वारा अपने विकास का पथ-प्रशस्त करता है । 'कुछ नहीं' से 'कुछ' का निर्माण करने वाला नहीं वरन् आदर्शों की साकार प्रतिमा ही परब्रह्म का स्वरूप है, वह ऐसा मानता है ।

जिस परमात्मा की कल्पना आज का अध्यात्म करना चाहता है, वह साकार भी है, निराकार भी है व इन दोनों

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से परे भी है । यह परमात्मा स्पिनोजा के लिये मूलतत्त्व (सबस्टेंशिया) हो सकता है, हर्बर्ट स्पेंसर के लिये अज्ञात (अननोएबुल) हो सकता है, प्लेटो के लिये ईश्वर (गॉड), इमर्सन के लिये पर-आत्मा (ओवर-सोल) तथा काण्ट के लिये "डिज एन सिच" हो सकता है । ऐसा परब्रह्म, सर्वव्यापक, सृष्टा नाम विशेष के बन्धन में नहीं बँध सकता । उसकी परिभाषा, उद्‌बोधन चाहे जो भी हो ईश्वर, परमात्मा, परमपिता, सृष्टा वही रहेगा ।

'अनेकता में एकता' के अध्यात्म सिद्धान्त का विज्ञान के साथ पूरा तालमेल है । एक ही तत्त्व को जगत का सार-मूल केन्द्र वह मानता है । उसी में विकास और -विकास की कल्पना उसे ग्राह्य है, पर क्षण-विशेष पर सृष्टि रचना उसे एक असंगत तथ्य लगता है । इस सिद्धान्त के आश्रय पर आत्माएँ शाश्वत और सनातन जीवाणु हैं । ऐसे जीवाणु जो कारण और कार्य के सिद्धान्तों से परिचालित हैं । आत्मा अनश्वर है, अमर है एवं स्वयंभू शक्ति का अपरिमित स्रोत है । जिस मूल केन्द्रबिन्दु से यह आत्मा जुड़ी है वह परमात्म-शक्ति बुद्धि तथा पदार्थ दोनों ही रूपों में प्रतिभाषित होती रहती है । जिस प्रकार से अग्नि-राशि के समय अग्निकण निकलते रहते हैं, उसी प्रकार परमात्मा से ही आत्मारूपी अग्निकण बहिर्गत हुए हैं । अद्वैत मान्यतानुसार प्रत्येक आत्मा अनन्त ब्रह्म स्वरूप है । लाखों जलकणों पर सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़कर लाखों सूर्य के रूप में प्रतिभाषित होता है । उसी प्रकार प्रत्येक आत्मा ब्रह्म के प्रतिबिम्ब के रूप में विद्यमान है ।

भौतिक जगत की संरचना किसी क्षण विशेष में हो सकती है, परन्तु उस परम-शक्ति, सार-तत्त्व का कोई आदि नहीं है जो आत्मा के भौतिक स्वरूप को अनुप्राणित करती है । प्रत्येक आत्मा कर्मफल के सिद्धान्त से बँधी है और यही उस परमात्मा, परम-सत्ता, ईश्वर का अनुशासन वाला पक्ष है । ईश्वर न पुरस्कृत करने वाला है, न दण्डित करने वाला । वह चेतना का अनन्त स्रोत है । कर्म-सिद्धान्त, सद्-असद् परिणामों के व्यापकता के रूप में भी उसकी एक छवि है ।

एक स्थान ऐसा है, जहाँ पदार्थ-विज्ञानी और अध्यात्मवादी एक ही निष्कर्ष पर जा पहुँचते हैं । आधुनिक विज्ञान कहता है कि जगत का मूल स्रोत एक है । वह जड़ और चेतन में समान रूप से विद्यमान है । जड़ में उसे हलचल के रूप में और चेतन में उसे इच्छा एवं बुद्धि के रूप में देखा जा सकता है ।

आइन्स्टीन जैसे मूर्धन्य वैज्ञानिकों ने भी आत्मसत्ता (चेतना) को व्यापक एवं अविनाशी माना था । इसका प्रमाण एक वार्ता से मिलता है जिसमें उनसे एक मित्र ने उसकी रोगावस्था से पूछा था कि "क्या आपको मृत्यु से भय नहीं लगता ?" उत्तर में आइन्स्टीन ने कहा-"मैं समस्त चेतन-सृष्टि से इतना अधिक तादात्म्य अनुभव करता हूँ कि उससे अलग अपनी सत्ता का मुझे भास भी नहीं होता । मेरे लिए यह बात अर्थहीन है कि एक व्यक्ति संसार में कब आता है और कब जाता है । आना-जाना तो चेतना की स्थूल एवं सूक्ष्म अभिव्यक्तियाँ मात्र हैं । चेतना का प्रवाह तो निरन्तर प्रवाहित है ऐसा मैं अनुभव करता हूँ ।"

स्पष्ट है कि आइन्स्टीन मनुष्य के भौतिक-जीवन को चेतना से अलग नहीं वरन् उसका ही एक अभिन्न अंग मानते थे । मृत्यु को उन्होंने अन्त के रूप में नहीं वरन् चेतना के नवीनीकरण की एक प्रक्रिया भर माना है । अपनी अभूतपूर्व खोजों के उपरान्त भी आइन्स्टीन सन्तुष्ट न थे । जीवन के अन्तिम दिनों वे अत्यधिक व्यस्त देखे गये । व्यस्तता का कारण था-वे समस्त भौतिक-शक्तियों के मूल कारणों की खोज में थे । उनका विश्वास था कि चुम्बकीय, गुरुत्वीय, नाभिकीय-शक्ति का कुछ ठोस आधार होना चाहिए ।

भौतिकी शोधों का चरम-लक्ष्य है सृष्टि के मूल रहस्यों का पता लगाना । शोधें सूक्ष्मतर स्तर पर उतरकर अब उस क्षेत्र में जा पहुँची हैं जहाँ से चेतना का क्षेत्र आरम्भ होता है । मूल-रहस्यों का उद्‌घाटन इसीलिए सम्भव नहीं हो पा रहा है कि प्रक्रिया भौतिक ही बनी हुई है जबकि चेतना का क्षेत्र सर्वथा भिन्न है । उसे जानने-समझने के लिए तो चेतना-विज्ञान का ही अवलम्बन लेना होगा । अपने भटकाव को अब भौतिकविद् भी स्वीकार करने लगे हैं ।

सृष्टि के मूल-रहस्यों को जानने के लिए भौतिक शास्त्री एलिजाबेथ, माइकेल मर्फी, फ्रिटजोफकाप्रा, डेविड फिनेल्टाइन ने मिलकर कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी में लोरेन्स-वर्कले प्रयोगशाला की स्थापना की । वर्ष १९७४ में इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए चालीस भौतिकविदों एवं प्राच्य धर्मदर्शन के विशेषज्ञों का एक संगठन बनाया गया । भौतिक विज्ञान के अब तक शोध निष्कर्षों के अध्ययन के उपरान्त अधिकांश वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया कि "हमने सृष्टि रहस्यों को जानने में खोज आरम्भ तो की विशुद्ध विज्ञान से, पर आकर भटक गये दर्शन में ।" ब्रह्माण्डीय चेतना के शोधकर्त्ता प्रो० मर्फी ने कहा कि एक नये चिन्तन का प्रादुर्भाव हमारी शोध प्रक्रिया से हो रहा है । मान्यता अब अधिक पुष्ट होती जा रही है कि अन्तरिक्ष ऊर्जा एवं पदार्थ वस्तुतः एक ही तत्त्व है । उनका उद्‌गम किसी एक से हुआ है ।

प्रो० काप्रा की नवीन पुस्तक इन दिनों पाश्चात्य जगत में अधिक प्रख्यात एवं लोकप्रिय हुई है । पराभौतिकी की यह पुस्तक महत्त्वपूर्ण सृष्टि-तथ्यों पर प्रकाश डालती है । 'दि ताओ आफ फिजिक्स' नामक इस पुस्तक ने वैज्ञानिक चिन्तन को नये आधार दिए हैं, लेखक ने अमेरिका से प्रकाशित होने वाली प्रसिद्ध पत्रिका 'सैटर्डे रिव्यू' में लिखा है कि प्रकृति के अन्वेषण एवं मूल रहस्यों को जानने के लिए तार्किक बुद्धि ही पर्याप्त नहीं है । अन्तःप्रज्ञा (इन्ट्यूशन) का महत्त्व बुद्धि से कहीं अधिक है । अधिक सूक्ष्मतर अनुभूतियाँ बुद्धि के द्वारा नहीं, अन्तःप्रज्ञा द्वारा होती हैं । वैज्ञानिक क्षेत्र की असफलताओं का कारण स्पष्ट करते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हुए प्रो० काप्रा ने कहा कि ''अन्तःप्रज्ञा की उपेक्षा, विज्ञान की असफलता का कारण रही है ।''

विज्ञान का भटकाव दूर होने के दिन अब समीप हैं । सर्वव्यापी चेतना में संव्याप्त इस ब्रह्माण्ड को अगले दिनों उसी परब्रह्म की प्रतिमूर्ति के रूप में समझा जाने लगेगा जैसा कि वेदान्त का 'सर्वं खिल्विदं ब्रह्म' के रूप में प्रतिपादन है

सृष्टि का नियन्ता व अधिपति कौन ?

अनीश्वरवाद एवं शून्यवाद जिस जड़वादी मान्यता पर आधारित है, वह यही प्रतिपादित करती है कि इस दृश्यमान जगत की संरचना में पदार्थ की ही प्रमुख भूमिका है । उन्हीं के परस्पर मिलन-संयोग से यह सृष्टि बनी । किसी अभौतिक चेतन-सत्ता का इस सृजन में कोई योगदान नहीं है । चार्वाक ने प्रत्यक्षकर्त्ता के अभाव में अनुमाण प्रमाण को अमान्य ठहराया, वहीं नीत्से ने 'नो सोल-नो गॉड ' का उद्घोष कर ईश्वर के मर जाने का नारा बुलन्द किया । शून्यवादियों ने जागतिक घटनाओं को 'माया' कहकर छुट्टी पा ली । कुछ सीमा तक साम्यवाद एवं विज्ञान के प्रत्यक्षवाद ने भी इन प्रतिपादनों का समर्थन किया । किन्तु यदि तनिक सूक्ष्म बुद्धि से हम विचार करें तो वास्तविकता इससे भिन्न पाते हैं कि यह सृष्टि न तो स्वभाव वश बनी, न ही यह अकस्मात् उत्पन्न हो गई, वरन् इसके पीछे एक बुद्धिमान सत्ता का हाथ है, जिसने अपनी कुशल कारीगरी का परिचय देते हुए इसका निर्माण किया ।

संसार के क्रिया-व्यापार पर दृष्टिपात करने पर इसमें हमें कुछ निश्चित विधि-व्यवस्थाएँ दिखाई पड़ेंगी, जो मानने के लिए बाध्य करती हैं कि इसे बनाने व नियंत्रित करने वाली कोई नियामक सत्ता अवश्य है । क्रमबद्धता के नियम की ही तरह जीव-जन्तु, वृक्ष-वनस्पति अपने में एक विशिष्ट स्तर का ज्ञान सँजोये होते हैं, उसी के आधार पर वह अपना जीवन-व्यापार चलाते रहते हैं । पौधों को यह ज्ञात हो जाता है कि फलने-फूलने का समय आ गया और उन्हें अब ऐसा करना चाहिए । ऐसा भी नहीं है कि संसार के सारे वृक्ष एक ही समय में फलोत्पादन करते हों । प्रत्येक वनस्पति का अपना एक निर्धारित समय होता है, उसी नियत समय में वह फूलती-फलती देखी जाती है । उन्हें इसका पता कैसे चलता है कि इसके लिए अनुकूल वक्त आ गया । प्राणियों में ईल मछली प्रायः जुलाई-अगस्त के महीनों में अण्डे देती है । इसके लिए उसे लम्बी यात्रा तय कर नदी में आना पड़ता है । इसी प्रकार अन्य जीव-जन्तु भी प्रजनन अपने निश्चित समय पर ही करते हैं । इन जन्तुओं को समय की सूचना कौन देता है ? ऐसा ज्ञान निर्जीव समझे जाने वाले खगोलीय पिण्डों में भी पाया जाता है । पृथ्वी अपनी कक्षा में २३ अंश झुकी हुई है । यह ज्ञान उसे कहाँ से मिला कि इस झुकाव के बिना पृथ्वी में जीवन सम्भव न हो सकेगा, परिस्थितियाँ अनुकूल न बन सकेंगी । सूर्य जलता हुआ अग्नि, पिण्ड है जिसकी सतह का तापक्रम १२००० डिग्री सेंटीग्रेड है । पृथ्वी की दूरी सूर्य से इतनी ही निर्धारित है कि इसके अभीष्ट परिमाण की गर्मी और प्रकाश से वहाँ जीवन-व्यापार चलता रहता है । दूरी तनिक कम होती, तो पृथ्वी जल कर राख हो जाती और तनिक अधिक होने से हर वक्त बर्फ जमी रहती । इतना ही नहीं, लगातार, बरसने वाली ब्रह्माण्डीय किरणों से रक्षा के लिए सुरक्षा-कवचों की भी व्यवस्था है और दिन-रात व मौसम-परिवर्तन के लिए कक्षा एवं धुरी में उपयुक्त गतियों की भी । यह सब तंत्र सही-सही कैसे संचालित-नियंत्रित होते रहते हैं । विज्ञान के पास इसका कोई उत्तर नहीं है ।

इसी प्रकार जीव-जगत और वनस्पति की एक अन्य विशेषता आकार सम्बन्धी है । प्रत्येक वनस्पति और जन्तु का निर्धारित आकार-प्रकार होता है । यूक्लिप्टस और ताड़ के पेड़ सदा पतले-लम्बे होते हैं । उनमें शाखा-प्रशाखाएँ कम होती हैं । सम्भव है इनसे यदि उनका भार बढ़ता तो वे अपना अस्तित्व न बचा पाते, आँधी-तूफान में गिर पड़ते । संसार का सबसे ऊँचा वृक्ष पैसिकोइया है, जो अमेरिका में पाया जाता है । इनमें भी शाखाएँ कम होती हैं । जबकि मध्यम आकार के वृक्षों में प्रायः अधिक डालियाँ पायी जाती हैं । जन्तुओं में भी निवास और वातावरण के हिसाब से आकार की उपयुक्तता देखी जा सकती है । जीव-विज्ञानियों के अनुसार जलचर और नभचरों की शरीर-आकृति यदि स्ट्रीम लाइण्ड नहीं होती तो शायद ही वे उस वातावरण में रह पाते और जल व वायु जैसे प्रतिरोधों को चीरकर आगे बढ़ने में सक्षम होते । इन्हीं को देखते हुए वायुयानों को वह शक्ल प्रदान की गई ताकि वायु का न्यूनतम अवरोध उस पर आरोपित हो । इसके अतिरिक्त एक अन्य महत्वपूर्ण बात जीव-विज्ञानी बताते हैं, वह यह कि भ्रूणावस्था में कई सप्ताह तक सभी जन्तुओं की आकृति एक-सी होती है, चाहे वह मानवी भ्रूण हो या घोड़े, कुत्ते, गाय अथवा बिल्ली के । अनेक सप्ताह बाद ही उनमें भिन्नता दृष्टिगोचर होनी आरम्भ होती है । इस सन्दर्भ में कभी ऐसा देखा-सुना नहीं गया कि मनुष्य के खरगोश पैदा हुआ हो अथवा गाय ने बिल्ली जनी हो । कुछ सप्ताहों की समानता के बाद भिन्नता प्रकट करने वाली यह कौन-सी प्रणाली है, जो रक्त-पिण्ड से आरम्भ होकर त्वचा, अस्थि जैसे नितान्त भिन्न अवयव पैदा कर देती है । वैज्ञानिक इस सम्बन्ध में मौन हैं ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नियमितता भी सृष्टि का एक निश्चित नियम है । सूर्य-चन्द्र और अन्यान्य ग्रह-नक्षत्र सभी समय के पाबन्द हैं । सूर्य निर्धारित समय पर उदित और अस्त होता रहता है । इसी प्रकार चन्द्र-कलाओं का घटना-बढ़ना भी सदा निर्धारित क्रम से होता है । ग्रह-नक्षत्रों की गतियाँ भी नियत हैं । खगोलीय गणनाएँ इनकी इसी नियमितता पर आधारित हैं । जिस दिन ये प्रमाद बरतने लगें सारा ज्योतिर्विज्ञान ही झूठा हो जाय ।

इस प्रकार देखा जाय तो ज्ञात होगा कि पूरा विश्व-ब्रह्माण्ड एक निश्चित नियम-व्यवस्था में आबद्ध है । किसी प्रकार की कोई अव्यवस्था है ही नहीं । जब व्यवस्था है, तो इसका कोई व्यवस्थापक भी होना चाहिए क्योंकि इतनी बुद्धिमान गतिविधियाँ स्वतः सम्पन्न कैसे हो सकती हैं ? यदि किसी प्रकार ये कभी सम्पन्न हो भी गईं-ऐसा मान भी लिया जाय, तो इनके नियंत्रण के लिए कोई-न-कोई नियन्ता होना ही चाहिए, क्योंकि स्वचालित यंत्र-उपकरण भी बिना संचालक के सही-सही काम नहीं कर पाते । आदि से लेकर अब तक के सृष्टि-नियम में किसी प्रकार का कोई व्यतिरेक न आना इसी का प्रमाण-परिचय प्रस्तुत करता है ।

कार्य-कारण सिद्धान्त के अनुसार कोई भी कार्य बिना कारण के हो ही नहीं सकता । कणादि मुनि ने भी इसका समर्थन करते हुए कहा है कि **''कारणाभावात् कार्य्याभाव''** अर्थात् कारण के अभाव में कार्य सम्भव ही नहीं है । मनीषियों ने निमित्त कारण अथवा कर्त्ता के तीन लक्षण बताये हैं-१-उपादान कारण का उत्तम ज्ञान (२) इच्छाशक्ति एवं (३) प्रयास ।

इन तीनों के संयोग से ही कोई क्रिया सम्पन्न हो सकती है । कोई इंजीनियर भवन बनाना चाहता है, तो इसके लिए आवश्यक है कि उसे ईंट-गारे जैसी निर्माण सामग्री का भी ज्ञान हो, तभी उसमें भवन निर्माण की इच्छा भी जाग्रत हो सकती है और जब इच्छा जगी तो प्रयास द्वारा भवन बनकर तैयार हो जाता है । इसे देखने वाला कोई यह नहीं कह सकता कि इमारत स्वभाववश अथवा प्रकृति द्वारा या अकस्मात् बन गई । भले ही उसने निर्माता को न देखा हो, पर इस सम्बन्ध में उसका निश्चित मत होता है कि इसके पीछे किसी-न-किसी कर्ता का हाथ है, किसी-न-किसी की इच्छा-शक्ति जुड़ी हुई है, जिसने इस संरचना के रूप में उसकी अभिव्यक्ति की है ।

इस प्रकार यह प्रमाणित हो जाता है कि यह विश्व ब्रह्माण्ड भी ईश्वरीय सत्ता द्वारा रचित है, क्योंकि जब एक छोटी इमारत निर्माता की इच्छा के बिना नहीं बन सकती तो यह कैसे माना जा सकता है, कि इतनी विशाल, सुन्दर, सुव्यवस्थित और सुसम्बद्ध रचना, कर्ता व उसकी इच्छा के बिना बन गई । निश्चय ही इसके पीछे उसकी एक से अनेक बनने की आकांक्षा रही होगी और उसी के फलस्वरूप यह सृष्टि बन पड़ी । अतः अनीश्वरवादियों का यह कथन कि इस सृष्टि का कोई स्रष्टा अथवा नियन्ता है ही नहीं, नितान्त भ्रमपूर्ण है, यह भली-भाँति समझ लिया जाना चाहिए ।

निखिल ब्रह्माण्ड में संव्याप्त एकात्मता

मस्तिष्क और हृदय दो केन्द्र ऐसे हैं जो शरीर के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं । यों तो महत्त्व हर अंग-अवयव का है । शरीर-परिचालन तथा विभिन्न क्रियाकलापों में उनकी अपनी-अपनी भूमिकाएँ हैं, पर जो भूमिका मस्तिष्क और हृदय की है, अन्य किसी भी कायिक अंग-प्रत्यंग की नहीं है । मस्तिष्क की सामान्य जानकारी विभिन्न तन्त्रों के ऊपर नियन्त्रण रखने तथा हृदय रक्त परिवहन में केन्द्रीय भूमिका निभाने के रूप में मिलती है । ये कार्य स्थूल हैं । इनकी सूक्ष्म भूमिकाएँ और भी अधिक महत्वपूर्ण हैं । सोचने तथा विचारने, निर्णय लेने आदि की क्षमता मस्तिष्क में ही होती है । हृदय से भाव सम्वेदनाएँ निस्सृत होती हैं । बाह्य-जगत से आदान-प्रदान का क्रम भी इन्हीं दो केन्द्रों के माध्यम से चलता है । ये स्वयं भी बाह्य परिस्थितियों में प्रभावित होते तथा दूसरों को भी अपनी स्थिति के अनुरूप प्रभावित करते हैं । अत्यधिक सम्वेदनशील होने के कारण इनकी स्थिति में समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं, जिसकी प्रतिक्रियाएँ व्यक्ति एवं वातावरण पर दिखाई पड़ती हैं । समूचे शरीर में क्या परिवर्तन हो रहे हैं, उसकी सूक्ष्म जानकारी इन दो मर्मस्पर्शी केन्द्रों की स्थिति से मिल जाती है । विचारणा के स्तर तथा अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के आधार पर उसका परिचय आसानी से मिल जाता है ।

सौर-मण्डल शरीर की तरह ही एक विराट शरीर है । ब्रह्माण्ड में ऐसे अगणित विराट घटक क्रियाशील हैं, उनकी संख्या एवं स्वरूप की सही-सही जानकारी किसी को भी नहीं है । अपने सौर-मण्डल में नौ ग्रह हैं । उलटी कक्षा में घूमने वाले एक अन्य ग्रह का भी प्रमाण मिला है जिसे दसवाँ ग्रह समझा जा रहा है । मंगल, पृथ्वी , बृहस्पति, बुध, शुक्र, प्लेटो, नेप्च्यून, यूरेनस के अतिरिक्त दसवाँ ग्रह भी उस परिवार में सम्मिलित हो गया है । ये सभी सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करते हैं । हर ग्रह के एकानेक उपग्रह हैं । अपनी पृथ्वी का चन्द्रमा है । सौर-मण्डल के हर घटक परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं । पृथ्वी का निज का जितना वैभव है उससे अनेक गुना दूसरे घटकों के अनुदानों से मिला है । गर्मी, प्रकाश, वर्षा आदि अनुदान तो प्रत्यक्ष दीखते हैं पर सूक्ष्म दिखायी नहीं पड़ते । सूक्ष्म आदान-प्रदान के अतिसम्वेदी केन्द्रों का परिचय पृथ्वी के ध्रुव केन्द्रों के रूप में मिला है । उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव के रूप में दो गह्वर पर अवस्थित इन केन्द्रों के अतिरिक्त भूगर्भ में एक हृदय संस्थान भी है । पृथ्वी का घोर तापयुक्त यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

२.२५ ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ

हृदय-केन्द्र अत्यन्त विशाल है । इसकी त्रिज्या २१०० मील है । इस भाग को 'बेरी स्फियर' कहते हैं ।

भूगर्भ-विज्ञान के अनुसार पृथ्वी गोल है । केवल ध्रुवीय क्षेत्रों में कुछ पिचकी हुई है । भूमध्य रेखा क्षेत्र में कुछ उभरी हुई है । पृथ्वी का व्यास ७९०० मील है । पर्वतों की सर्वोच्च चोटी प्राय ५ ।। मील ऊँची और समुद्र की अधिकतम गहराई ७ मील है ।

वैज्ञानिक कहते हैं कि ऊर्जा प्रदान करने वाले सौरमण्डल का अब अन्त समीप आ गया है । काल-गणना करने वालों का मत है कि सूर्य का किशोर-काल अतीत हो गया है । प्रौढ़ावस्था अभी चल रही है । यह उसकी ढलती उम्र है जो उसे क्रमशः मरण की दिशा में घसीटे लिये जा रही है । जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं वह शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सूर्य की पतिव्रता पत्नी है वह उसी की कमाई खाती है । सुरक्षा के लिये उसी पर आश्रित है और पति के मरण पर साथ सती होने के लिये समुद्यत है । अस्तु, सूर्य के मरण का सीधा सम्बन्ध अपनी पृथ्वी के साथ है और उसके अंचल में पलने वाले हम सब प्राणियों का भाग्य भी इन अभिभावकों की स्थिति पर आश्रित है ।

पृथ्वी के अन्य भागों की अपेक्षा ध्रुवों की परिस्थितियाँ असामान्य हैं । ऐसा माना जाता है कि अन्तर्ग्रही विशिष्ट अनुदान इन्हीं केन्द्रों से अवतरित होकर समस्त भू-मण्डल पर वितरित होते हैं तथा विजातीय द्रव्य दक्षिणी ध्रुव के माध्यम से अन्तरिक्ष में फेंक दिये जाते हैं एवं यह मान्यता पूर्णतः विज्ञानसम्मत भी है ।

इन ध्रुव-प्रदेशों पर दुर्लभ मनोरम दृश्य दिखाई पड़ते हैं । उत्तरी ध्रुव पर छाया रहने वाला सुविस्तृत तेजोवलय 'अरोरा बोरिएलिस' अपनी अद्भुत आभा से हर किसी का मन मोह लेता है । 'दि नेशनल एरौनाटिक्स एण्ड स्पेश एडमिनिस्ट्रेशन' (नासा) द्वारा छोड़े गये डायनामिक्स एक्सप्लोरेटर सेटेलाइट से अनेक हाई रिजोल्यूशन फोटोग्राफ्स लिए गये । उससे आश्चर्यजनक जानकारियाँ मिलीं । अध्ययन-अन्वेषण में लगे वैज्ञानिकों का मत है कि अन्तरिक्ष से आने वाले सब एटोमिक पार्टिकल्स पृथ्वी के विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र में प्रवेश करके आवेशित हो जाते हैं तथा ध्रुव केन्द्रों पर ध्रुव-प्रथा के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं । ध्रुव प्रभा का क्षेत्र विस्तार ४००० कि० मी० व्यास है । इसकी किरणों की पट्टियाँ जो ध्रुव केन्द्र को आवृत्त किये होती हैं, उनकी चौड़ाई १००० कि० मी० हुआ करती है । यह प्रभा-मण्डल जमीन से १०० कि० मी० ऊपर चमकता है तथा उसकी स्वयं की ऊँचाई दस से लेकर सैकड़ों किलोमीटर तक होती है । दिन में चर्म-चक्षुओं से आरोरा को देखने में कठिनाई होती है पर रात को वह स्पष्ट दिखाई पड़ता है । दिन और रात के आरोरा में विशेष अन्तर भी पाया जाता है । सूर्य किरणों के आड़े-तिरछे पड़ने से उसका रूप, रंग बदलता रहता है । उसे शक्तिशाली दुर्बीन व कैमरों से ही देखा और उनका फोटो लिया जा सकता है ।

यूनाइटेड स्टेट्स के उत्तरी क्षेत्र के आकाश मार्ग से ध्रुवीय ज्योति को सैनफ्रेंसिस्को, मेमफिस तथा एटलान्टा के दक्षिण छोर पर रंग-बिरंगे रूप में देखा जा सकता है । ५३ डिग्री अक्षांश पर तथा मध्य-रात्रियों में उसके दर्शन किए जा सकते हैं । वैज्ञानिकों का अभिमत है कि ध्रुवीय-ज्योति का प्रकाश हाइड्रोजन आयन अथवा प्रोटोन के प्रवाह से उत्पन्न होता है जो सूर्य से १५०० मील प्रति सेकण्ड की गति से फेंका जाता है । प्रकाश कण प्रोटान्स, इलेक्ट्रान्स को भी साथ खींचकर लिये चलते हैं जिनका कुछ अंश पृथ्वी तक पहुँचता है, जहाँ का चुम्बकीय क्षेत्र इलेक्ट्रानों तथा प्रोटानों को अलग कर देता है । प्रोटानों का जल अंश पृथ्वी के वायुमण्डल से स्पर्श करता है तो ध्रुवीय-ज्योति (आरोरा) के रूप में प्रकट होता है । इसका यथार्थ स्वरूप तथा भूमिका अविज्ञात होते हुए भी सम्भावना व्यक्त की गई है कि धरती पर अन्तर्ग्रही अनुदानों की वर्षा का यह स्थूल प्रकटीकरण है ।

अलेक्जेण्डर मार्शेक ने सघन अन्तरिक्ष में प्रकाश के रूप में भी, शब्दों के रूप में भी सौर-मण्डल तथा मन्दाकिनी आकाश गंगा से आने वाले शक्ति-प्रवाहों को सुना है । उसका यन्त्र-अंकन किया है । यह आवाज क्रमबद्ध संगीत एवं स्वर-लहरियों की तरह है । यों कान से वे ध्वनि मात्र सुनाई पड़ती हैं, उनका कोई विशेष महत्व समझ में नहीं आता पर खगोल विद्या की नवीनतम शोधें यह स्पष्ट करती चली जा रही हैं कि यह शब्द प्रवाह भी सूर्य से ध्रुव प्रदेशों पर बरसने वाले गति-प्रवाहों की तरह ही अतीव सामर्थ्यवान है और उनके द्वारा प्राणियों के शरीर तथा मन पर ऐसा प्रबल प्रभाव पड़ता है जैसा व्यक्तिगत प्रयत्नों से बहुत परिश्रम करने पर भी सम्भव नहीं, यह प्रभाव भले और बुरे दोनों ही स्तर का हो सकता है ।

इस सबके बावजूद यह तथ्य भुलाया नहीं जा सकता कि पृथ्वी को सूर्य से ही सर्वाधिक अनुदान मिलते हैं और वह उसकी स्थिति, गति एवं परिवर्तनों से प्रभावित भी होती है । उन प्रभावों को इन ध्रुवों पर अध्ययन कर सकना अधिक सुगम है । ध्रुवीय-ज्योति का सूर्य-कलंकों से भी घना सम्बन्ध है । जब सूर्य की प्रकृति शान्त रहती है तब ध्रुवीय ज्योति मन्द दिखाई पड़ती है पर उग्र होने पर उस ज्योति का दर्शन दिन और रात को अधिक समय तक किया जा सकता है ।

'स्पेस क्राफ्ट' से किये गये निरीक्षणों के अनुसार सोलर विण्ड की धाराएँ सूर्य के विषुवत् वृत्त से उत्तर एवं दक्षिण की ओर क्रमशः उतरते हुए उत्तरी-दक्षिणी ध्रुव तक जा पहुँचती हैं । सोलर-विण्ड की गति जब तीव्र रहती है तो सूर्य के उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव के पोलर होल्स अधिक चौड़े रहते हैं । जिसके कारण ध्रुव-प्रदेशों में सोलर विण्ड की धारा अत्यन्त तेज पाई जाती है । जब उनकी गति कम होती है तो ध्रुव-प्रदेशों में भी उस प्रवाह की गति कम दिखाई पड़ती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न केवल अन्तर्ग्रहीय प्रभावों को इन ध्रुव-केन्द्रों पर देखा जा सकता है बल्कि पृथ्वी एवं उसके वातावरण में हुए हेर-फेर का भी प्रभाव यहाँ देखना सम्भव है । विगत दिनों यह आश्चर्यजनक तथ्य विदित हुआ है कि पृथ्वी पर होने वाले नाभिकीय परीक्षणों से होकर विकिरण दक्षिणी ध्रुव तक न जाने कैसे और क्यों पहुँच जाते हैं । खतरनाक विकिरणों की एवं उत्तरी ध्रुव के प्रदूषण की बड़ी मात्रा दक्षिणी ध्रुव के किनारे एकत्रित होती चली जा रही है ।

इन ध्रुवों के सम्बन्ध में जैसे-जैसे विस्तृत जानकारियाँ मिलती जा रही हैं, इनकी विलक्षणता वैज्ञानिक समुदाय को हतप्रभ तो करती ही है, नवीन अन्वेषणों के लिए उत्साहित भी करती है ।

उत्तरी ध्रुव एक गड्ढा है तो दक्षिणी ध्रुव गुमड़ा । उत्तरी ध्रुव की बर्फ दक्षिणी ध्रुव से अधिक गर्म होती है । जल्दी गलने और जल्दी जमने वाली भी होती है । दक्षिणी ध्रुव उजाड़ क्षेत्र है, यहाँ कुछ पक्षी जलचरों के अतिरिक्त एक पंखहीन मच्छर भी पाया जाता है । वह क्या खाकर जीता है और कैसे इतनी भयंकर शीत में जीवन धारण किये रहता है । वैज्ञानिक इस प्रश्न का आज तक समाधान नहीं कर सके ।

उत्तरी ध्रुव में जीवन का बाहुल्य है। पौधों तथा जन्तुओं की संख्या करोड़ों तक पहुँचती है । यहाँ दिन और रात समान नहीं होते, ६-६ माह के भी नहीं होते-कई बार रात ८० दिन के बराबर होती है । यह सबसे लम्बी रात होती है । क्षितिज के बीच सूर्य वर्ष में १६ दिन रहता है । यहाँ चन्द्रमा इतनी तेजी से चमकता है कि उसके प्रकाश में, दिन में सूर्य की रोशनी के समान ही काम किया जा सकता है ।

कुछ मेरुप्रकाश विस्तृत और आकृतिहीन होते हैं, कुछ सजीव और हलचल करते हुए । कभी वे किरणों की लम्बाई के रूप में जान पड़ते हैं कभी प्रभा और ज्वाला के रूप में, कभी यह दृश्य बदलता हुआ, कभी चाप, पट्टी और कोरोना के रूप में होता है तो कभी प्रकाश गुच्छे सर्चलाइट के समान । यहाँ रात भर तरह-तरह के दृश्य बदलते हैं । हर दृश्य और परिवर्तन सूर्य की अपनी आन्तरिक हलचल का प्रतीक है । इसका सबसे बड़ा प्रमाण अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष अनुसंधान के दौरान आया और उसके विलक्षण आकार-प्रकार देखने में आये । स्मरण रहे कि भू-भौतिक वर्ष सूर्य के ११ वर्षीय चक्र के दौरान मनाया जाता रहा है । इस अवधि में सूर्य की आन्तरिक हलचल बहुत बढ़ जाती है, यह प्रकाश मुख्यतः चुम्बकीय तूफान होता है जो पृथ्वी की सारी यान्त्रिक क्रिया में क्रान्ति उत्पन्न करके रख देता है ।

मार्च तथा सितम्बर में (चैत्र तथा क्वार) जबकि पृथ्वी का अक्ष सूर्य के साथ उचित कोण पर होता है । मेरु प्रकाश अधिक मात्रा में पृथ्वी पर पड़ता है जबकि अन्य समय गलत दिशा के कारण प्रकाश लौटकर ब्रह्माण्ड में चला जाता है । यही वह अवधि होती है जब पृथ्वी में फूल-फलों की वृद्धि और ऋतु परिवर्तन होता है । पूरी पृथ्वी पर पलने वाले जीवधारी एवं वृक्ष-वनस्पति अपना ऊर्जा अनुदान सूर्य के साथ बदलती स्थिति के अनुरूप पाते रहते हैं । उनके जीवन का प्राणाधार यही सूर्य है जो स्वयं किसी महासूर्य से संचालित होता है । इस महासूर्य को परब्रह्म का प्रतीक रूप या महापिण्ड भी कह सकते हैं ।

उत्तरी ध्रुव की तरह दक्षिणी ध्रुव में भी ध्रुव-प्रभा के दर्शन होते हैं । उत्तरी ध्रुव से उसकी भिन्नता होने के कारण वैज्ञानिकों ने उसका नाम 'आरोरा आस्ट्रेलिस' दिया है । दिन यहाँ भी बहुत ही लम्बे होते हैं । जिन अन्वेषी दलों ने वहाँ की परिस्थितियों का अध्ययन किया है उनका कहना है कि कई दिनों तक रात्रि के दर्शन नहीं हो सके । आकाश में रंग-बिरंगे गैसों के बादल मँडराते रहते हैं । तापक्रम शून्य से भी कई डिग्री नीचे बारहों माह तक बना रहता है । सदा बर्फ की मोटी परत जमी रहती है । सफेद भालू, पेन्गुइन पक्षी तथा मछलियाँ भयंकर शीत में भी जीवित रहते हैं । अनुसंधानकर्त्ताओं का मत है कि उत्तरी दक्षिणी ध्रुव पर दीखने वाला प्रभामण्डल का अन्तर्ग्रहीय परिस्थितियों के आदान-प्रदान से गहरा सम्बन्ध है जिसकी यथार्थ जानकारी तो उपलब्ध नहीं हो सकी है, पर भविष्य में मिलने की सम्भावना है । ये ध्रुव स्थिर भी नहीं है । मान्यता यही है कि कालान्तर में ये अपना स्थान बदलें, क्योंकि ये पहले भी ऐसा करते रहे हैं ।

कुछ भी हो ध्रुव सम्बन्धी यह विवेचन व्यष्टि एवं समष्टि के मध्यवर्ती सम्बन्धों को स्पष्ट करते हैं एवं ब्रह्माण्ड सम्बन्धी ऐसे अनेक रहस्यों का उद्घाटन करते हैं जो प्रगति की चरम सीमा पर पहुँचे हुए विज्ञान को विलक्षण अद्भुत लगती है ।

वस्तुतः आत्मिकी का यह मत है कि सारा विश्व ब्रह्माण्ड ही एक है । समग्र-विश्व की चेतना का अधिष्ठाता विश्वात्मा है । बिखरी हुई आत्माएँ इसी के छोटे-छोटे घटक हैं । जब तक यह इकाइयाँ परस्पर मिलकर रहती हैं और एक दूसरे के साथ अविच्छिन्न रूप से जुडी हैं तभी तक दृश्यमान सौन्दर्य का अस्तित्व है। यदि इनका विघटन होने लगे तो केवल धूल मात्र ही इस संसार में शेष रह जाएगी विश्व मानव की विश्वात्मा यदि अपनी समग्र-चेतना से विघटित होकर संकीर्ण स्वार्थपरता में बिखरने लगे तो समझना चाहिए विश्व-सौन्दर्य की समाप्ति का समय निकट आ गया ।

डॉ० फ्रिट्जाफ काप्रा जिन्होंने 'ताओ ऑफ फिजिक्स' व 'टर्निंग पॉइण्ट' जैसी प्रसिद्ध पुस्तकें लिखी हैं । स्वीकार करते हैं कि परमाणु का प्रत्येक घटक विश्व-ब्रह्माण्ड का परिपूर्ण घटक है अर्थात् प्रत्येक अणु में ब्रह्माण्ड सत्ता ओत-प्रोत है । अणु में ही विराट-ब्रह्माण्ड के दर्शन किये जा सकते हैं । यह पारस्परिक सम्बन्ध इतने प्रगाढ़ है कि इन्हें कभी निरस्त नहीं किया जा सकता । जहाँ इस तरह का प्रयास होता है, वहाँ भयंकर दुष्परिणाम उपस्थित हो उठते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परामनोविज्ञान की नवीनतम शोधें भी इसी निष्कर्ष पर पहुँची हैं कि मनुष्य-चेतना ब्रह्माण्ड-चेतना की अविछिन्न इकाई है । अस्तु प्राण-सत्ता शरीर में सीमित रहते हुए भी असीम के साथ अपना सम्बन्ध बनाये हुए है । व्यष्टि और समष्टि की मूल-सत्ता में इतनी सघन एकता है कि एक व्यक्ति समूची ब्रह्म-चेतना का प्रतिनिधित्व कर सकता है । इस सम्बन्ध में विज्ञान की दृष्टि भी उदार बनती जा रही है। अब विज्ञान अपनी भाषा में परब्रह्म को, परमात्मा को 'ब्रह्माण्डीय-चेतना' के रूप में स्वीकार करने लगा है और उसका घनिष्ट सम्बन्ध जीव-चेतना के साथ जोड़ने में उसे विशेष संकोच नहीं रह गया है । यह मान्यता जीव और ब्रह्म अंश और अंशी के रूप में मानने की वेदान्त व्याख्या से बहुत भिन्न नहीं है ।

सृष्टि-संरचना भी परमसत्ता को सिद्ध करती है

"ईश्वर के अस्तित्त्व का सबसे बड़ा प्रमाण क्या है ?" स्वामी रामकृष्ण परमहंस से जब यह पूछा गया तो उन्होंने उत्तर दिया-"इस संसार से बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है, जिससे कि ईश्वर का अस्तित्त्व सिद्ध हो सके ।" बात कितनी ही सरल क्यों न हो, पर इस संसार से बड़ा प्रमाण और कोई नहीं है, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि ईश्वर है । संसार का प्रत्येक परमाणु एक निर्धारित नियम के अनुसार काम कर रहा है । यदि उस नियम में तनिक भी व्यतिक्रम आ जाय तो विराट ब्रह्माण्ड का अस्तित्त्व एक क्षण में नष्ट-भ्रष्ट हो सकता है । एक कण के विस्फोट से अनन्त प्रकृति में आग लग सकती है और संसार में अग्नि-ज्वालाओं की लपलपाती जिह्वा सब कुछ चट कर सकती है ।

सारे संसार का, समूचे ब्रह्माण्ड का अस्तित्व ईश्वर की सत्ता को प्रमाणित करता है । ब्रह्माण्ड शब्द 'ब्रह्म' और 'अण्ड' इन दो शब्दों से मिलकर बना है । जिसका अर्थ है, जिसमें अगणित विराट् अण्ड अस्तित्त्वमान हों । वैज्ञानिक यह मानते हैं कि आकाश में स्थित समस्त पिण्ड एक शक्ति को केन्द्र मानकर उसके चारों ओर चक्कर लगा रहे हैं । ये सभी पिण्ड अण्डाकार वृत्त में घूमते हैं, इसी कारण वैज्ञानिक इन घूमने वाले समस्त पिण्डों को ब्रह्माण्ड कहते हैं ।

पृथ्वी पर जहाँ-जहाँ भी जीवन विद्यमान है, उसका जीवन आधार सूर्य से प्राप्त होने वाली ऊर्जा है । ८ करोड़ ५८ लाख ८५ हजार मील व्यास वाला सूर्य का गोला १० करोड़ ३० लाख मील की दूरी से पृथ्वी पर अपनी प्रकाश किरणें फेंकता है, जो ८ मिनट में पृथ्वी तक पहुँचती हैं । दिनभर में यहाँ के वातावरण में इतनी सुविधाएँ इन प्रकाश-किरणों से एकत्रित हो जाती हैं कि रात आसानी से कट जाय । दिन-रात के इस क्रम में एक दिन भी यदि अन्तर पड़ जाय तो जीवन-सत्ता संकटाग्रस्त हो सकती है और जिस ऊर्जा-स्रोत सूर्य से पृथ्वीवासी जीवन-शक्ति प्राप्त करते हैं । वैज्ञानिकों की भाषा में सूर्य तप्त गैसों का एक विशाल गोला है । नदी के तेज प्रवाह में जिस प्रकार भँवर पड़ते हैं, उसी प्रकार सूर्य में चलती रहने वाली तप्त-ज्वालाओं के अन्धड़ उसमें भँवर पैदा करते हैं । ये भँवर भी पृथ्वी पर जीवन-सत्ता को बनाये रखने में सहयोगी होते हैं ।

सूर्य के लिए पृथ्वी समुद्र में एक बूँद का-सा नगण्य अस्तित्त्व रखती है । जिस प्रकार एक गेंद के चारों ओर मक्खी नाचती हुई दिखाई दे, सूर्य यदि गेंद के बराबर हो तो पृथ्वी भी इस मक्खी से अधिक बड़ी नहीं होगी । फिर भारत के किसी प्रदेश के एक किसान के घर में जी रही चींटी का सूर्य के सामने क्या अस्तित्त्व हो सकता है । लेकिन वह भी सूर्य से प्राप्त ऊर्जा के द्वारा अपने दिन मजे से काट लेती है ।

पृथ्वी और सूर्य की तुलना गेंद और मक्खी से की जा सकती है । पृथ्वी से भी छोटे और बड़े कितने ही ग्रह-उपग्रह अपने इस सौर-मण्डल में विद्यमान हैं । सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की तरह घूमने वाले ग्रह, उपग्रह (चन्द्र) उल्का और धूमकेतु ये सब मिलकर सौर-मण्डल कहलाते हैं । अभी तक सौर-परिवार के करीब १०० सदस्यों के बारे में ही पता लगाया जा सका है ।

ब्रह्माण्ड में ऐसे अनेक सौर-मण्डल हैं और विस्तृत ब्रह्माण्ड में-अनन्त अन्तरिक्ष में अपने सौर-मण्डल की वैसी ही स्थिति है, जैसी कि दस फीट लम्बे और दस फीट चौड़े सफेद कागज पर एक बिन्दु की । यदि कोई कहे कि मेरी आँख का आँसू समुद्र में खो गया है तो यह कहना जितनी छोटी-सी बात होगी, भला समुद्र की अगाध जल-राशि में एक बूँद आँसू की क्या बिसात ? वैसी ही स्थिति ब्रह्माण्ड में सूर्य की है । सूर्य से बड़ा तारा, जिसे वरीयता क्रम में सूर्य के आगे वाले स्थान पर रखा जा सकता है, उससे १५ हजार गुना बड़ा है । उससे बड़ा दूसरा तारा अण्टेयर्स सूर्य जैसे ३ करोड़ ६० लाख गोलों को अपने भीतर आसानी से बिठा सकता है । सूर्य और पृथ्वी से बड़े ही नहीं, छोटे सूर्य और ग्रह भी हैं । किन्तु यह सभी छोटे-बड़े सौर-मण्डल और ग्रह-उपग्रह विराट ब्रह्माण्ड में निर्द्वन्द्व विचरण कर रहे हैं ।

विराट ब्रह्माण्ड का थोड़ा-सा अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि हम एक बार में अपनी आँखों से तीन हजार तारे ही देख सकते हैं, जबकि वैज्ञानिक यन्त्रों से जितने तारे देखे जा सके हैं, उनकी गणना का अभी तक कोई हिसाब नहीं लगाया जा सका है । ज्येष्ठ और मार्गशीर्ष माह में आकाश में एक क्षितिज की ओर सफेद पट्टी-सी दिखाई देती है । यह आकाशगंगा सूर्य जैसे असंख्य तारों के गुच्छक और तारों के बादल हैं । बादलों में जिस प्रकार पानी की बूँदें होती हैं, उसी प्रकार इन तारा-मेघों में भी दुरबीन की सहायता से असंख्य तारे देखे जा सकते हैं । सबसे छोटा दिखाई देने वाला तारा गुच्छक-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शौरी कहा जाता है । इस गुच्छक में सूर्य जैसे ५० हजार तारे आ जाते हैं, वैज्ञानिकों के अनुसार तारों की संख्या कम से कम दो अरब होनी चाहिए । दिखाई देने वाले तारा-मण्डलों की ही यात्रा करने की योजना बनाई जाय और ४०० मील प्रति घण्टा उड़ने वाले विमान से यात्रा पर निकला जाय तो एक बार में दिखाई देने वाले तारों को छूकर आने में ही कम से कम साढ़े चार करोड़ वर्ष लग जाएँगे ।

सर्वाधिक चमकने वाले तारों की संख्या २० है । इनमें 'व्याध' नाम का तारा सर्वाधिक दीप्तिमान है । सूर्य की तुलना में यह तारा २१ गुना अधिक है । कल्पना की जाय कि परमात्मा सूर्य के स्थान पर यदि 'व्याध' तारे को नियुक्त करदे और वह धरती को प्रकाश देने लगे तो जेष्ठ मास में पृथ्वी का तापमान २३१० डिग्री फारनेहाइट हो जाएगा, जबकि इस समय यह तापमान केवल ११० डिग्री फारनेहाइट ही है ।

आकार की दृष्टि से भी तारों का वर्गीकरण किया जाता है । बड़े आकार वाले तारे 'विराट' कहे जाते हैं और छोटे आकार वाले 'वामन' कहलाते हैं । विराट् से भी जो अधिक बड़े हैं, उन्हें 'अति विराट' कहा जाता है । आर्द्रा भ्रममण्डल में लाल रंग का एक विराट तारा है, जो सूर्य की तुलना में तीस करोड़ गुना अधिक बड़ा है । वामन केवल नाम के ही वामन हैं, अन्यथा वे भी भगवान विष्णु के वामन अवतार की तरह कम आश्चर्यजनक नहीं हैं । भार की दृष्टि से ये तारे सबको मात दे सकते हैं । यदि वामन तारे से चार घनफुट मिट्टी खोदकर लाई जाय और उसे पृथ्वी पर तोला जाय तो इतनी मिट्टी का वजन ही २२५ टन होगा । वहाँ यदि पेड़-पौधे होते होंगे और गुलाब के फूल जैसा उसी आकार का कोई फूल लगता होगा, तो उसे तोड़ पाना तो दूर रहा, उसकी एक पंखुड़ी भी मनुष्य नहीं उठा सकेगा । गुलाब के फूल के बराबर वाले फूल को पृथ्वी पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर उठाने के लिए क्रेन की जरूरत पड़ेगी ?

इतने महान् आश्चर्यों से भरा यह विश्व-ब्रह्माण्ड अपने ढंग से व्यवस्थित रीति से चल रहा है । ईश्वर के होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या कहा जा सकता है । अलेक्जेण्डर पोप का यह कथन ठीक ही है कि ईश्वर है । क्योंकि यह संसार लाखों-करोड़ों वर्ष से चल रहा है और अनन्त-काल तक चलता रहेगा । इस तथ्य को थोड़ा इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि सूर्य अपने केन्द्र में १६००००० डिग्री सेन्टीग्रेड है । पृथ्वी पर उसकी किरणें आठ मिनट में पहुँच जाती हैं और वे अपने साथ प्रचण्ड गर्मी लिए चलती हैं । यदि उनके साथ आने वाली गर्मी पृथ्वी पर सीधे-सीधे पहुँचने लगे तो पृथ्वी पर एक चींटी और घास का एक तिनका भी न दिखाई दे । समुद्र का सारा पानी भाप बनकर उड़ जाय । लेकिन ऐसा नहीं होता, क्योंकि पृथ्वी के ऊपर अयन-मण्डल की पट्टियाँ जिन्हें आइलेग स्पीयर कहा जाता है, चढ़ी हुई हैं । यदि ये पट्टियाँ न चढ़ी होतीं तो पृथ्वी कभी की जलकर राख हो गई होती ।

इसके अलावा सूर्य पृथ्वी की ओर थोड़ा भी पास खिसक आये तो ध्रुव-प्रदेशों की बर्फ पिघल सकती है और सारी पृथ्वी पर जल-प्लावन का दृश्य प्रस्तुत हो सकता है । जरा भी पास खिसक आने पर इतनी गर्मी पैदा हो सकती है कि पृथ्वी पर विद्यमान प्राणी कड़ाही के उबलते हुए तेल में तले जा रहे पकौड़े की तरह पककर जल जाय और यदि सूर्य अपने स्थान से पृथ्वी की दूरी से थोड़ा भी हटकर पृथ्वी से जरा दूर चला गया अपने स्थान से पाँच-सात फीट भी पीछे हट गया तो पृथ्वी पर समुद्र तो क्या मिट्टी तक जमकर बर्फ बन सकती है ।

ऊपर की पँक्तियों में ग्रह-नक्षत्रों और ब्रह्माण्ड के विस्तार का थोड़ा-सा उल्लेख किया गया है, ये सभी सौरमण्डल और ग्रह-नक्षत्र अपने क्षेत्र में रहते हुए ही अपने क्रियाकलाप चलाते हैं । थोड़े भी अपने स्थान से इधर उधर होने पर सर्वनाश हो सकता है । ये अपने स्थान और क्षेत्र में रहते हैं, इसी में सन्तुलन और व्यवस्था बनी हुई है । सूर्य पृथ्वी को ठीक उसी प्रकार खींचकर बाँधे रहता है, जैसे गुलेल से पत्थर फेंकने वाला रस्सी को खींचे रखता है । सूर्य अपनी इस शक्ति से पृथ्वी और अन्य ग्रह-उपग्रहों को भी खींचे रखता है । यही कारण है कि सूर्य अपने सौर-मण्डल का नेता, संचालक, अनुशास्ता कहा जाता है ।

यह सारे तथ्य बताते हैं कि ग्रहों की स्थिति और व्यवस्था, ब्रह्माण्ड का संचालन अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्वक किया जा रहा है । व्यवस्था या संचालन करने वाली उस शक्ति को नियम, शक्ति, सन्तुलन अथवा कुछ भी कहा जाये । अन्ततः यह मानना पड़ेगा कि उसका अस्तित्व ही जीवन का और दृश्य-अदृश्य सत्ता का आधार है, उसे ही परमात्मा कहा गया है । उपरोक्त तथ्य इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि संसार को बनाने और चलाने वाला अद्भुत गणितज्ञ, विलक्षण इन्जीनियर, सुयोग्य चिकित्साधिकारी, मौसमवेत्ता और अप्रतिम वैज्ञानिक है, उस सत्ता के अस्तित्व से इनकार करना अपने आप को जीवित मानने से इनकार करने जैसा है ।

क्योंकि जीवन के आविर्भाव से ही उसकी नियामक सत्ता का पता चल जाता है । जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इस सृष्टि में ऐसी व्यवस्था है कि वे सब सरलतापूर्वक पूरी होती रहें । साँस लिए बिना प्राणी एक पल भी जीवित नहीं रह सकता, सो प्रचुर मात्रा में हवा में उपलब्ध है । इसके बाद जल की आवश्यकता है, वह भी थोड़ा-सा प्रयत्न करने से प्राप्त हो जाता है । अन्न, हवा और जल के बाद तीसरे महत्त्व क्रम की आवश्यकता है, सो उसके लिए साधन न जुटा सकने वाले प्राणियों के लिए प्रकृति में फल-फूल की व्यवस्था है सो बुद्धिधारी प्राणी थोड़े प्रयत्नों से अपनी यह आवश्यकता पूरी कर लेते हैं । इसके बाद समस्त उपादान आवश्यकता के अनुपात से प्रयत्न और पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त होते रहते हैं । इन सार्वभौम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्यकताओं की पूर्ति बिना संचालक, व्यवस्थापक के कैसे सम्भव हो सकती थी ?

इस विस्तार और सुव्यवस्थाक्रम से इनकार नहीं किया जा सकता । यह स्वीकार करने का कोई भी कारण नहीं है कि सृष्टिजीवन या ब्रह्मांड अव्यवस्थित अथवा असन्तुलित है या यहाँ कोई नियम व्यवस्था नहीं है । इसके साथ ही ब्रह्माण्ड के कण-कण में, अणु-परमाणु में अनुशासन और व्यवस्था बनाकर रहने तथा उसे तोड़ने पर दण्ड देने वाली नियामक सत्ता का अस्तित्त्व भी स्वीकार करना पड़ेगा । इसी संतुलन व्यवस्था का नियमन करने वाली सत्ता का नाम ईश्वर है । उसके अस्तित्त्व को प्रमाणित करते हुए प्रसिद्ध दार्शनिक हर्वर्ट स्पेन्सर ने कहा है- "ईश्वर एक विराट शक्ति है, जो संसार की सब गतिविधियों का नियन्त्रण करता है ।" दार्शनिक कांट ने कहा है- "नैतिक नियमों की स्वीकृति ही परमात्मा के अस्तित्त्व का प्रमाण है । इन नियमों के अन्तर्गत रहते हुए ही यह विश्व-ब्रह्माण्ड व्यवस्थित और सन्तुलित क्रम से चल रहा है । इतने पर भी कहा जाय कि ईश्वर का अस्तित्व झूठा है तो इसे बुद्धि का दिवालियापन ही कहना चाहिए ।"

कौन है इस अनुशासित सृष्टि का नियन्ता ?

यह समूचा विश्व-ब्रह्माण्ड, उसके सारे घटक इतने सुनियोजित ढंग से अपना कार्य कर रहे हैं जिसे देखकर किसी न किसी नियामक-सत्ता की कल्पना करनी ही पड़ती है । इसके बिना ब्रह्माण्ड की व्याख्या और उसकी निरन्तरता की विवेचना पूर्णरूप से नहीं की जा सकती । इसे मात्र संयोग भी नहीं कहा जा सकता कि इस अनन्त ब्रह्माण्ड के असंख्यों सौर-मण्डल, उनके समस्त ग्रह-नक्षत्र अपना-अपना अलग अस्तित्त्व बनाये हुए, अपनी कक्षाओं पर भ्रमण करते हुए अपना निर्धारित क्रियाकलाप चला रहे हैं । इनका कोई उद्देश्य नहीं, परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं, ऐसा मानना अविवेकपूर्ण होगा ।

सूक्ष्म पर्यवेक्षण करने पर हर कोई यह समझने में समर्थ हो सकता है कि यह सारे ग्रह-नक्षत्र एक ही सत्ता सूत्र में-धागों में मनकों की तरह पिरोये हुए हैं और ग्रह-नक्षत्र की यह माला एक ही दिशा में, एक ही नियंत्रण में गतिशील हो रही है । इतना ही नहीं उनका परस्पर भी अति घनिष्ट सम्बन्ध है । एक ही परिवार के सदस्य जैसे मिलजुलकर कुटुम्ब का एक ढाँचा बनाये रहते हैं, उसी प्रकार समस्त ग्रह-नक्षत्र-सृष्टि के समस्त घटक एक दूसरे के पूरक बने हुए हैं और परस्पर बहुत कुछ लेन-देन का क्रम चलाते हुए ब्रह्माण्ड की वर्तमान स्थिति बनाये हुए हैं । यह सब एक विश्वव्यापी प्रेरक और नियामक-सत्ता द्वारा ही सम्भव है ।

वस्तुतः इस संसार में 'अकेला' नाम का कोई पदार्थ नहीं । यहाँ सब कुछ सुगठित और सुसम्बद्ध है । पदार्थ की सबसे छोटी इकाई परमाणु भी अपने गर्भ में कितने ही घटक सँजोये हुए एक छोटे सौर-मण्डल परिवार की तरह प्रगतिशील रह रहा है । इलेक्ट्रॉन-प्रोटॉन आदि घटकों की परतें खुलती जा रही हैं और पता लग रहा है कि उनके गर्भ में भी और कितने ही समूह वर्ग विराजमान हैं । यह सभी निरन्तर गतिशील रहते हुए किसी उद्देश्य की पूर्ति की दिशा में व्यवस्थित क्रम से क्रियारत हैं । इन्हीं सब बातों को देखते हुए सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक कार्ल सांगा ने अपनी कृति में लिखा है कि-संसार का हर परमाणु एक निर्धारित नियम व्यवस्थानुसार कार्य करता है । यदि इसमें तनिक भी व्यतिक्रम और अनुशासन-हीनता दृष्टिगोचर होती तो विराट ब्रह्माण्ड एक क्षण भी अपने वर्तमान अस्तित्त्व को नहीं रख पाता तथा क्षणमात्र में विस्फोट से इस प्रकृति में आग लग जाती और यह संसार अग्नि की लपटों में घिरा एक तप्त पिण्ड भर होता । परन्तु देखने में ऐसा नहीं आता । अतः यह किसी चेतन समष्टि-सत्ता का अस्तित्त्व में होना प्रमाणित करता है ।

सृष्टि-चक्र में सर्वत्र अन्योन्याश्रय का सिद्धान्त काम कर रहा है । जड़-चेतन से विनिर्मित यह सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्ड एकता के सुदृढ़ बन्धनों में बँधा हुआ है । एक से दूसरे का पोषण होता है और हर किसी को दूसरों का सहयोगी होकर रहना पड़ रहा है । यह पारस्परिक बन्धन ही सृष्टि की शोभा-सौन्दर्य का, उसकी विभिन्न हलचलों का, उत्पादन-विकास एवं परिवर्तन का उद्गम केन्द्र है । इसके मूल में अदृश्य किन्तु सर्वशक्तिमान सत्ता ही कार्यरत है । प्रख्यात विचारक मनीषी रुडाल्फ ओटो को सुदूर आकाश में जाज्वल्यमान ग्रह-नक्षत्रों, सुसज्जित तारों को देखकर यही अनुभूति हुई थी कि जिस क्रमबद्धता-सुगढ़ता और अनुशासन से ये सब ग्रह-नक्षत्र गतिमान हैं, निश्चय ही इसके पीछे किसी विशिष्ट प्रेरक शक्ति का हाथ है । उनके अनुसार विश्व-ब्रह्माण्ड के सभी घटकों में विद्यमान नियमितता, अनुशासनात्मक गतिशीलता और पारस्परिक आदान-प्रदान को देखकर यह सहज ही विश्वास होता है कि कोई दिव्य और महान चेतना अवश्य है, अन्यथा इतनी सुन्दर सृष्टि की महान कल्पना भला कौन कर सकता ?

रुडाल्फ का कहना है कि जब प्रकृति की अनुपम छटा का अवलोकन करते हैं तो सृजनकर्ता के इस कृत्य में निश्चित ही एक सृजनात्मक लक्ष्य परिलक्षित होता है । नियमितता, सहकारिता, विकास-शीलता की-सत्यम् शिवम्, सुन्दरम् की ही झाँकी जड़-चेतन में सर्वत्र दिखाई पड़ती है । समस्त प्रकृति उस परम-सत्ता की अभिव्यक्ति है, जो सुन्दरता और मनोहारी दृश्यों से ओत-प्रोत है । सौन्दर्य-बोध से उसकी अनुभूति होती है । मनुष्य को विलक्षण एवं अलौकिक शक्तियों से भरपूर मस्तिष्क इसीलिए प्रकृति प्रदत्त अनुदान रूप में मिला है कि उसके माध्यम से वह उस कलाकार की सुन्दर रचना की अनुभूति कर सके और उसका सदुपयोग कर सुखी-समुन्नत बन सके।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रख्यात वैज्ञानिक मनीषी फ्रान्सिज मेसन ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि प्रकृति एक ईश्वरीय विधान है, एक व्यवस्था है । यह कोई अनगढ़ या बेतुकी उपज नहीं वरन् योजनाबद्ध ढंग से विनिर्मित एक कृति है, एक दिशा है, जिसके अन्तराल में एक महान और उच्चस्तरीय बुद्धिमत्ता सन्निहित है । यह न तो दैवयोग की सृष्टि है और न ही यान्त्रिकी संयोग है वरन् इस विश्व-ब्रह्माण्ड में एक ऐसी परम-सत्ता काम कर रही है, जिसे स्पिरिट या विश्वात्मा कहा जा सकता है । उसकी महानता, दिव्यता, सर्वसमर्थता एवं सौन्दर्य का बोध कराने के लिए ही ग्रह-नक्षत्रों सहित समस्त जड़-चेतन की उत्पत्ति हुई है । यह सब उसी महासत्ता के घटक हैं ।

फ्रांसिज मेसन के अनुसार अपने सौर-मण्डल में जो अगणित ग्रह-पिण्ड सम्मिलित हैं, उनका संचालन और व्यवस्थापन निश्चित ही किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये हो रहा है । जिस प्रकार बैठने के एक कक्ष में सजावट, सुव्यवस्था, सुन्दरता के दर्शन होते हैं, सभी वस्तुएँ उचित स्थान पर रखी जाती हैं उसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड में सृष्टिकर्ता ने अनेकानेक ग्रह-नक्षत्रों, नदी, पहाड़ों, झरनों, वृक्ष-वनस्पतियों, प्राणियों को एक व्यवस्थित क्रम से सँजोकर रखा है । इस सुव्यवस्था और सुन्दरता के पीछे अवश्य ही कोई महान लक्ष्य सन्निहित है । मनुष्य अपनी अल्पज्ञता के कारण स्रष्टा के उस सर्वोच्च उद्देश्य को नहीं समझ पाता और उसकी सृष्टि-व्यवस्था को बेतुका मानता और व्यतिरेक उत्पन्न करता रहता है । जिस आश्रयस्थल पर निवास करता है उस पृथ्वी के बारे में ही उसे बहुत कम जानकारी है । जबकि इसका वातावरण और परिस्थितियाँ इतने विवेकपूर्ण ढंग से विनिर्मित हैं कि यदि उनसे छेड़खानी न की जाय तो इसके चारों ओर गैसों के जो अनेक सुरक्षा-कवच बने हुए हैं और अनावश्यक हानिकारक ब्रह्माण्डीय विकरणों से हमारी रक्षा करते हैं, वे अनन्तकाल तक वैसे ही बने रह सकते हैं । पृथ्वी की दैनिक और वार्षिक गतियाँ भी इसी तरह निर्धारित हैं कि जीवन-धारण के लिए वे तनिक भी अन्यथा नहीं पड़तीं । ऐसे ही अन्य सभी ग्रह-नक्षत्र भी हैं जो अपनी-अपनी कक्षा में निर्बाध रूप से गतिमान हैं । उनसे अब तक किसी तरह का व्यतिरेक नहीं आया ।

इस प्रकार इन सभी तथ्यों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो इन्हें सहज संयोग कहकर नहीं टाला जा सकता । इनके पीछे सुव्यवस्था, सुसंतुलन, सुनियोजन, सुनियंत्रण का जो अद्‌भुत सामंजस्य दिखाई पड़ता है, वह निश्चय ही किसी अदृश्य नियन्ता के बिना शक्य नहीं । सम्भव है ब्रह्माण्ड की इन्हीं सब विशिष्टताओं को देखते हुए प्रसिद्ध वैज्ञानिक मनीषी सर जेम्स जीना के यह उद्‌गार निकल पड़े हों कि-"यह विश्व-ब्रह्माण्ड किसी तीर-तुक्के की परिणति नहीं, वरन् सुनियोजित ढंग से विनिर्मित किसी बुद्धिमत्तापूर्ण सत्ता की सुन्दरतम् अभिव्यक्ति है ।" दार्शनिक स्पिनोजा भी अपना मत प्रकट करते हुए यही कहते हैं कि "यह ब्रह्माण्ड ईश्वर के ही विचारों का मूर्तरूप है ।" महान वैज्ञानिक पास्कल का कहना था कि "दृश्य पदार्थों में अदृश्य रूप से काम करने वाली एक ही सत्ता है वही इस विराट-विश्व का संचालन करती है ।" प्रख्यात भौतिकविद् फ्रांसिस थामसन ने सृष्टि-संरचना पर अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए लिखा है कि "संसार की समस्त वस्तुएँ एक अखण्ड सत्ता से जुड़ी हैं । चाहे वे बड़ी हों या छोटी, उनका परस्पर सम्बन्ध इतना प्रगाढ़ व सुनियोजित है कि सभी को आश्चर्य होता है । उसी अचिन्त्य, अगम्य सत्ता के इशारे पर सृष्टि के सारे क्रिया-कलाप संचालित होते हैं ।

सर फ्रांसिस का यह कथन वस्तुतः उस आप्तवचन की ही याद दिलाता है जिसमें कहा गया है कि ईश्वर ही सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है । उसी ने समस्त जगत को आच्छादित कर रखा है । अतः यह न तो कुछ अनगढ़ है और न बेतुका वरन् सब कुछ योजनाबद्ध ढंग से एक अनुशासित सत्ता द्वारा संचालित हो रहा है । उसी के अनुशासन को जीवन में उतारकर व्यक्ति सही अर्थों में आस्तिक बन सकता है । भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को, श्रीराम ने कौशल्या व काकभुशुण्डि को जो विराट रूप दिखाया था, वह यही परब्रह्म का, नियामक सत्ता का रूप है । इसकी उपस्थिति सृष्टि के कण-कण में अपने रोम-रोम में मानते हुए जो अपनी क्रिया-पद्धति का, जीवनचर्या का सुनियोजन करता है, वही सही अर्थों में ईश्वर का श्रेष्ठ पुत्र युवराज-मानव कहलाने का अधिकारी है ।

वैज्ञानिक दृष्टि में ईश्वर का स्वरूप

प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन से एक बार उनके एक मित्र ने पूछा-आप वैज्ञानिक होकर भी ईश्वर की उपासना करते हैं । यदि सचमुच भगवान् है तो वह क्या है ?

'ज्ञान' न्यूटन ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया । हमारा मस्तिष्क ज्ञान की खोज में जहाँ पहुँचता है वहीं उसे शाश्वत चेतना का ज्ञान होता है । कण-कण में जो ज्ञान की अनुभूति भरी पड़ी है वह परमात्मा का ही स्वरूप है । ज्ञान की ही शक्ति से संसार का नियन्त्रण होता है । विनाश के लिए भी ज्ञान की ही आवश्यकता है । परमात्मा इसी रूप में सर्व-शक्तिमान है ।

स्पिनोजा ने विज्ञान और दर्शन दोनों का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला कि संसार में दो प्रकार की सत्ताएँ काम कर रही हैं । एक दृश्य है-एक अदृश्य । एक का नाम है प्रकृति या पदार्थ । एक अदृश्य-अपदार्थ अथवा विचार । मृत्यु के अन्तिम क्षणों तक विचार प्रक्रिया का बने रहना और मृत्यु के तुरन्त बाद समाप्त हो जाना इस तथ्य का द्योतक है कि जिस तरह पदार्थ अर्थात् धातुओं खनिजों, लवणों गैसों आदि से बना शरीर मृत्यु के बाद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सड़-गलकर अपने-अपने तत्त्व से जा मिलता है, उसी तरह विचार अपनी प्रणाली में जा मिलते हैं, विचार कभी नष्ट नहीं होते उससे यह सिद्ध होता है कि अविनाशी विचारों की केन्द्रीभूत सत्ता ही परमात्मा है । विचारों को भौतिक दृष्टि से 'जीन्स' का सत्व माना जाये तो वैज्ञानिक विचार से भी वह अमर सत्ता है और दार्शनिक दृष्टि से देखा जाये तो भी उनका अस्तित्त्व कभी नष्ट नहीं होता । विचार अवचेतन मन से आते हैं । कब किस विचार के स्पन्दन मन में उमड़ने लगे यह मनुष्य के नियन्त्रण में नहीं आते । इससे भी प्रकट है कि यह अविनाशी तरंगें सूक्ष्म-जगत में लहराती रहती हैं और मस्तिष्क के किसी भाग से स्वसंचालित व्यवस्था की तरह उमड़ते रहते हैं ।

वैज्ञानिक हीगल के मतानुसार परमात्मा सामान्य इच्छाओं से अत्यधिक समुन्नत श्रेणी की इच्छाओं को भी नियन्त्रण में रखने वाला परम-विचार (एब्सोलूट आइडिया) बताया है । वे लिखते हैं जिस तरह सामान्य श्रेणी से उच्च विद्वान लोग अपने ज्ञान से नये-नये विचारों और भावनाओं का स्वयं ही निर्माण करते हैं उन विचारों के अनुसार उन्नत श्रेणी की रचनाएँ या वैज्ञानिक अनुसंधान कर सकने में सक्षम होते हैं, उसी तरह 'परम विचार' अति विशिष्ट रचनाएँ और वैज्ञानिक अनुसन्धान करने में समर्थ हैं तभी तो उसका बनाया संसार इतना सुन्दर और उसके बनाये जीव-जन्तु अत्यधिक उन्नत श्रेणी के यन्त्रों से भी श्रेष्ठ ठहरते हैं । इस सन्दर्भ में मनुष्य शरीर की रचना उसका अत्यन्त उच्चकोटि का शिल्प और कलाकारिता कही जा सकती हैं ।

सन्त इमर्सन और वर्कले के मत में सब आत्माओं में श्रेष्ठ शक्ति का नाम ही परमात्मा है । सारा संसार कहीं से उधार प्राण और चेतना ले रहा है । प्राण और चेतना अपने मूल रूप में एक जैसी ही है, मनुष्य व जीवों में एक जैसा स्पन्दन, आहार, निद्रा, भय, मैथुन के एक से क्रिया-कलाप हैं । जिस तरह एक विद्युत घर से प्रवाहित विद्युत भार ही अनेक विद्युत-बल्बों में प्रकाशित दृश्यमान होता है । उसी तरह उधार ली गई यह चेतना जिस मूल उद्गम से निस्रत होती है उसी का नाम परमात्मा है । यदि आत्माओं का स्वरूप प्रकाश है तो परमेश्वर भी नि:संदेह प्रकाश है । यदि 'प्राण' अग्नि रूप है तो जगत-नियन्ता भी अग्नि रूप होना चाहिए ।

१९३७ में प्रकाशित 'दि मिस्टीरियस यूनिवर्स' नामक पुस्तक और 'दि न्यू बैक ग्राउण्ड आफ साइन्स' में सर जेम्स जोन्स ने लिखा है-'उन्नीसवीं शताब्दी के विज्ञान में पदार्थ और पदार्थ जगत-ऊँचे से ऊँचे सिद्धान्त माने जाते थे, अब हम उससे दूर होते चले जाएँगे । अब जो नये तथ्य प्रकाश में आ रहे हैं उनसे हम विवश हैं कि प्रारम्भ में शीघ्रता में आकर हमने जो धारणा बनाली थी, उसे अब फिर से जाँचें । अब मालूम होता है कि जिस जड़ पदार्थ को शाश्वत सत्य मानकर बैठे थे वह भ्रम है, पदार्थ मन या आत्मा से पैदा हुआ है और उसी का जहूर (रूप) है ।

'सोशल एनविरानमेण्ट्स एण्ड मॉरल प्रोग्रेस' पुस्तक में चार्ल्स डारविन के मित्र जो कभी डारविन के अनन्य समर्थक थे लिखा है कि "मुझे विश्वास है कि चेतना (आत्मा) ही पदार्थ का हस्तान्तरण करती है ।"

सर आलिवर लाज ने 'आत्मा और मृत्यु' विषय भाषण करते हुए १९३० में ब्रिस्टल में कहा था-"यह सच है कि हम सब चेतन-जगत में जी रहे हैं । यह चेतना-शक्ति पदार्थ पर हावी है । पदार्थ उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता ।"

सर ए० एस० एडिंग्टन का कथन है कि-हम इस निष्कर्ष पर पहुँच गये हैं कि एक असाधारण शक्ति काम कर रही है, पर हम नहीं जानते वह क्या कर रही है ।

'स्टे एलाइव आल योर लाइफ' नामक पुस्तक में डॉ० नार्मन विन्सेन्ट पीले ने मरते हुए मनुष्यों की गतिविधियों के बड़े सूक्ष्म निष्कर्ष प्रकाशित किये हैं । उन्होंने एक संस्मरण लिखा है-एक मनुष्य मर रहा था वह अर्द्ध-चेतनावस्था में था जब उसकी आत्मा कुछ-कुछ इस संसार से भी सम्पर्क साध सकती थी और अतीन्द्रिय जगत को भी देख सकती थी उसने बताया मैं बहुत आश्चर्यजनक ज्योति देख रहा हूँ, उस ज्योतिपुंज से बहुत मधुर संगीत विस्फुटित हो रहा है । स्मरण रहे ईश्वर को भारतीय तत्त्व दर्शन में "ॐकार" इस्लाम दर्शन में "अलम" ध्वनि वाला मधुर संगीत बताया है ।

वैज्ञानिकों, विचारकों और दार्शनिकों के यह कथन भ्रान्त-प्रलाप नहीं ठहराये जा सकते । यह प्रतिपादन अनुभूतियों और तथ्यों की ठोस शिला पर आधारित हैं । ब्रह्म की सत्ता दृश्य जगत का प्राण है उसके बिना इतना व्यवस्थित विश्व कभी भी सम्भव नहीं हो सकता था ।

देवसत्ता और असुरसत्ता का अस्तित्त्व

इस विश्व में देवतत्त्व और असुरतत्त्व दोनों का अस्तित्त्व है । देवत्त्व का पोषण, अभिवर्द्धन और सम्मान किया जाना चाहिए साथ ही असुरता की दुरभिसन्धियों तथा आक्रमणों से अपना बचाव भी करना चाहिए ।

सज्जनों की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वे अपने आदर्श और व्यवहार पर स्थिर रहते हैं । सज्जनता की रीति-नीति बदलते नहीं । परस्पर टकराते भी नहीं । कोई उनसे टकराये तो टूटते भी नहीं । अपनी दिव्य-सत्ता को अक्षुण्ण रखते हैं और किसी अनात्म-तत्त्व के सामने आत्म-समर्पण नहीं करते । अपना स्वाभिमान और स्वावलम्बन हर भली-बुरी स्थिति में अक्षुण्ण बनाये रहते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देव-तत्त्वों की तरह, सज्जनों की तरह परमाणु की मूलसत्ता होती है । यह अपनी शाश्वत और सनातन विशेषता को नष्ट नहीं होने देती ।

यह परमाणु सृजन के काम में ही लगे रहते हैं । वे इकट्ठे होते हैं, जुड़ते हैं, मिल-जुलकर रहते हैं । उनकी यह संगठन और सृजन की भावना ही विभिन्न पदार्थों का निर्माण करती है । नींव के पत्थरों की तरह, अदृश्य और अविदित रहकर वे सृजन के कार्य में अथक रूप से संलग्न हैं । उस सुन्दर विश्व में जो विशालता दीख पड़ती है वह इन छोटे परमाणुओं के पारमार्थिक क्रिया-कलाप का परिणाम ही है । इन्हें इस धरती के-सृजनकर्त्ता, पोषक और परिवर्तनकारी-ब्रह्मा, विष्णु, महेश कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी ।

छोटे परमाणु एकाकी नहीं है । उनके भीतर और भी छोटा परिवार है । इसमें भले और बुरे दोनों तत्त्वों का निर्वाह होता है ।

इलेक्ट्रोन एवं प्रोटोन के मूल कणों को विभक्त नहीं किया जा सकता । उनकी परस्पर टक्कर या सम्मिश्रण का परिणाम इतना भर हो सकता है कि वे परस्पर मिलकर अन्त:क्रिया या मिश्रित क्रिया द्वारा नवीन कणों या नवीन नाभिकों में परिणत हो जाय ।

परमाणु-विद्या के अन्वेषणों के अनुसार अब तक मूल कण लगभग २० की संख्या में खोजे जा चुके हैं । फोटोन, इलेक्ट्रान, प्रोटान, न्यूट्रान, पोजीट्रान, न्यूट्रिनो, ड्यूट्रान जैसे कणों से ही यह सारा विश्व विनिर्मित हुआ है । इन्हें विश्व-भवन की ईंटें ही कहना चाहिए ।

इसी दैवी अणु-शक्ति में एक प्रतिरोधी असुर तत्त्व भी मौजूद है । समय-समय पर यही रंग बदलता है, टूटता-फूटता है और विरोध-विग्रह उत्पन्न करता है । कुचक्रों का यही शिकार होता है और अन्तत: विनाश जैसी दुर्गति भी इसी की होती है । इस संसार में देवत्त्व नहीं असुरत्त्व भी मौजूद है । सम्भवत: यही परिचय देने के लिए यह प्रतिक्षण विद्यमान हो ।

परमाणु के प्रत्येक मूलकण के साथ विपरीत प्रकृति का एक 'प्रतिकण' भी रहता है । जैसे इलेक्ट्रान का प्रति कण पोजीट्रान, प्रोटान का एन्टी प्रोट्रॉन, न्यूट्रॉन का एन्टी न्यूट्रॉन, न्यूट्रिनो का एन्टी-न्यूट्रिनो है । मेसानों में भी यह विरोधी प्रतिकण रहते हैं ।

सभी प्रति-कण अल्पजीवी होते हैं । यह प्रति-कण जब अपने समान सामान्य कण से टकराते हैं तो दोनों एक दूसरे से भिड़ जाते हैं और भयंकर विस्फोट उत्पन्न होता है । उसी से विकरण उत्पन्न होता है और भयानक ऊर्जा फैलती है

यह विरोधी प्रकृति के प्रति-कण कहाँ से आते हैं ? क्यों अवरोध उत्पन्न करते हैं ? कुछ समझ में नहीं आता । वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इस ब्रह्माण्ड में शायद कोई अन्य विश्व ऐसा है जिसे सर्वथा विपरीत प्रतिविश्व कहा जा सके । उसकी संरचना इन विपरीत प्रकृति के प्रति-कणों से ही हुई होगी । वहाँ सब कुछ यहाँ से उलटा ही होता होगा । इस लोक में सारा पदार्थ-एन्टी मैटर-होगा । वहाँ के नाभिक-एन्टी प्रोटॉन और एन्ट्री न्यूट्रॉन के बने होंगे । उन प्रति नाभिकों के इर्द-गिर्द इलेक्ट्रान के स्थान पर पोजीट्रॉन भ्रमण करते होंगे । वहीं से यह प्रति-कणों का प्रवाह धरती पर आता होगा और यह कि अणु-रचना के साथ उसका सम्मिश्रण यह परस्पर विरोधी स्थिति उत्पन्न करता होगा । यह प्रति-विश्व कहाँ है, यह ढूँढ़ा नहीं जा सका पर उसका अस्तित्व तो एक प्रकार से मान ही लिया गया है ।

हमें अपने चिन्तन और व्यवहार में इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि इस विश्व में जहाँ देव-सत्ता का वर्चस्व है वहाँ असुर-सत्ता भी हर जगह मौजूद है । न कोई व्यक्ति या पदार्थ शुद्ध है न अशुद्ध । गुण, दोष की मात्रा सर्वत्र मौजूद है । हमें गुणों को देखना, समझना, ढूँढ़ना और बढ़ाना चाहिए क्योंकि वे ही स्थिर और सत् हैं । असुरत्व भी हर जगह मौजूद है, उससे सतर्क रहें, बचे । मनुष्य में यह कुशलता बनी रहे वह नीर-क्षीर, विवेक कर सकने में समर्थ रहे इस प्रशिक्षण के लिए भगवान ने संसार में असुरता का अंश रखा है । परमाणु में भी प्रति-कण अंश भेजा है । भेजने वाली असुर-सत्ता सम्पन्न दुनिया भी कहीं है । वह बाहर भी है और भीतर भी । उससे सतर्क रहना भी उतना ही आवश्यक है जितना देवत्व का अवलम्बन ।

हम हाइड्रोजन गैस जैसे हलके रहें

ईश्वर सबमें घुला-मिला है । विशुद्ध ब्रह्मतत्त्व को अलग से देखा नहीं जा सकता । उसकी झाँकी किसी व्यक्ति प्रतिमा, चित्र आदि के माध्यम से ही की जा सकती है । ठीक यही स्थिति हाइड्रोजन की है । वह सबसे हलकी गैस है, इसलिए अकेली नहीं पाती, वह किसी न किसी पदार्थ में घुल-मिल कर ही रहती है । एकाकीपन उसे सुहाता ही नहीं । कहीं वह पानी में मिली होगी, कहीं वनस्पति घी में, कहीं पेड़-पौधों में, कहीं खनिज पदार्थों में । संसार का कोई भी तत्त्व ऐसा नहीं जिसमें न्यूनाधिक मात्रा में हाइड्रोजन मिली हुई न पाई जाय ।

हाइड्रोजन के परमाणु सबसे हलके होते हैं । उसके केन्द्र में केवल एक प्रोटोन होता है और केवल एक इलेक्ट्रोन चक्कर काटता है । उसका परमाणु केवल दो टुकड़ों में विखण्डित किया जा सकता है ।

मानव शरीर में पानी की मात्रा ६० प्रतिशत है और पानी में हाइड्रोजन की मात्रा दो तिहाई है । इसका अर्थ हुआ हमारा अस्तित्त्व शरीर ४० प्रतिशत हाइड्रोजन का बना है । आकाश में चमकने वाले अधिकांश तारे जिनमें एक हमारा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सूर्य भी है हाइड्रोजन के ही बने हैं । अपने सौर-मण्डल के गुरु, वरुण, शनि, यूरेनस, नेपच्यून में हाइड्रोजन की मात्रा अन्य ग्रहों की अपेक्षा कहीं अधिक है ।

हलकापन तुच्छ अथवा दयनीय नहीं माना जाना चाहिए । जिसके ऊपर व्यक्तिगत, पारिवारिक जिम्मेदारियों का बोझ जितना हलका होगा वह उतना ही अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकेगा । बोझिल गृहस्थी भार ढोते-ढोते तो उसी कुचक्र में आदमी को मरते-खपते रहने के अतिरिक्त आगे बढ़ने का और कोई रास्ता नहीं बच रहता । हलकी हाइड्रोजन गैस इसीलिए सर्वोपरि महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है कि वह अधिकाधिक भारमुक्त रहती है । मन में जिसके ऊपर कामनाओं का, महत्त्वाकांक्षाओं का जितना अधिक बोझ लदा होगा वह बन्दर जैसी उछल-कूद करके कुछ संग्रह कर सकता है और बालकों जैसा मोद मना सकता है, फिर भी इसके लिए जिन अन्तर्द्वन्द्वों में उलझे रहना पड़ता है वे बेतरह थका देते हैं । हलका मन रखकर खिलाड़ी की भावना से किये हुए सांसारिक और आध्यात्मिक दोनों ही स्तर के कार्य सरल भी होते हैं और सफल भी ।

जहाँ भी चमक दिखाई पड़े वहाँ यह हलकापन ही उभरता समझा जाना चाहिए । सूर्य चमकीला है साथ ही पृथ्वी की तुलना में कहीं अधिक हलका भी । जिसने अहंकार का बोझ उतारकर नम्रता एवं विनयशीलता का शिष्ट हलकापन धारण कर लिया समझना चाहिए उसने महानता प्राप्त करने का मर्म समझ लिया ।

हाइड्रोजन की सबसे बड़ी विशेषता उसकी ज्वलनशीलता है । जरा से ताप में वह जलने लगती है । जब जलती है तो आक्सीजन के साथ मिलकर पानी बन जाती है । यह पानी ही जीवन है । जीव-वैज्ञानिकों के अनुसार इस धरती पर जीवन सबसे पहले पानी में ही पैदा हुआ । वनस्पतियों से लेकर प्राणियों तक के शरीरों में अधिक अंश जल का और कम अंश ठोस पदार्थों का होता है । इन सबका जीवन पानी पीकर ही स्थिर रहता और बढ़ता है, यदि वह न मिले तो फिर किसी का भी जीवित रहना सम्भव न रह सकेगा । पानी में एक तिहाई आक्सीजन और दो तिहाई हाइड्रोजन है । इसका अर्थ यह हुआ कि धरती पर पाये जाने वाले जीवन-तत्त्व में दो तिहाई भाग हाइड्रोजन का है ।

अनाचार और अनौचित्य को देखकर क्षुब्ध हो उठना उज्ज्वल अन्तःकरण का चिह्न है । अनीति से घृणा होनी ही चाहिए । अवांछनीयता से न केवल असहयोग किया जाय वरन् उसके विरुद्ध संघर्ष भी खड़ा किया जाय । भगवान ने मनुष्य के अन्दर हाइड्रोजन जैसी ज्वलनशीलता इसीलिए दी है । पर यह सब होना शांत-चित्त एवं संतुलित मनःस्थिति में ही चाहिए अन्यथा जोश में होश खो बैठने से ऐसी आँधी गतिविधियाँ अपनाली जाएँगी जिनसे अनाचार को मिटाना तो दूर उलटे स्वयं को ही आवेशग्रस्त स्थिति के कारण हानि उठानी पड़ेगी ।

हलकापन-सौमनस्य पानी की तरह बरसता है, बहता है और सर्वत्र शीतलता, हरीतमा एवं तृप्ति की परिस्थितियाँ विनिर्मित करता है । हाइड्रोजन जैसे हलके विनम्र स्वभाव के व्यक्ति सर्वत्र शांति, शीतलता एवं सरसता की धारा ही प्रवाहित करते हैं ।

हवाई जहाजों के आविष्कार में इसी जानकारी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निवाही कि हाइड्रोजन हलकी होती है और हलकापन ही ऊपर उठता है-ऊँचा चढ़ता है ।

अठारहवीं सदी के अन्त में फ्रांस के गोल्फियर भाइयों ने ऐसा गुब्बारा बनाया जिसके सहारे आदमी आकाश में उड़ सकता था । पीछे जर्मनी के काउन्ट जैपलीन ने आदिम हवाई जहाज 'जैपलीन' बनाये । 'ग्राफ' नामक जैपलीन ने धरती की परिक्रमा करके संसार को चकित कर दिया । इन दोनों ही आविष्कारों में हाइड्रोजन की ऊष्मा उठ सकने की शक्ति का ही प्रयोग किया गया था । उसके बाद अन्य प्रयोग होते रहे और वर्तमान हवाई जहाजों का ढाँचा खड़ा हो गया ।

ऊँचा उठना हलकेपन पर निर्भर है । भारी तो नीचे ही गिरेगा । धन, सम्पदाओं से लेकर पद, सत्ता और बुद्धिमत्ता का अहंतापूर्ण भारीपन अपने ऊपर लादे रहने वाला कभी उच्चकोटि के महामानवों की पंक्ति में नहीं बैठ सकता । वायुयान आकाश में ऊँचे उड़ते हैं, समस्त वाहनों की तुलना में अधिक वेग से चलते हैं । मनुष्य भी वायुयान की भूमिका सम्पादित कर सकता है । आँखों की पहुँच से परे भी ऊँचाई तक पहुँच सकता है और इतनी तीव्रता से प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकता है जिसकी तुलना में सामान्य मनःस्तर के प्रबल पुरुषार्थ और मनोयोग को भी पिछड़ा रह जाना पड़े । अन्तःकरण का हलकापन कितनी महान सम्भावनाएँ अपने साथ जोड़े हुए हैं इसकी एक झाँकी हाइड्रोजन गैस के सहारे चलने वाले वायुयानों को देखकर की जा सकती है ।

वनस्पति घी का आज पूरे जोर-शोर के साथ प्रचलन है । चिकनाई की तीन-चौथाई आवश्यकता इसी से पूरी होती है । असली घी तो एक चौथाई बचा है सो भी दुम दबाकर भागने की तैयारी में है । यह वनस्पति घी क्या है ? विशुद्ध रूप से हाइड्रोजन गैस का चमत्कार । मूँगफली आदि के मामूली तेलों को गन्धहीन सफेद और असली घृत से भी बढ़िया रवादार बना देने का जादू इस हाइड्रोजन गैस द्वारा ही किया हुआ होता है, गैस के चूल्हे अब हर बड़े शहर में उपलब्ध हैं और ईंधन के धुँए के झंझट से छुट्टी मिल गई । यह इसी गैस का चमत्कार है ।

हाइड्रोजन ठण्डा करके तरल बनाया जा सकता है । अधिक शीत में वह ठोस भी हो जाता है । किसी भी रूप में रहे वह अपने हलकेपन की विशेषता बनाये ही रहेगा। आक्सीजन की तुलना में वह १६ गुना हलका होता है । जिस बर्तन में एक सेर पानी आ सकता है उसमें एक छटाँक ही हाइड्रोजन भरा जा सकेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जल के रूप में जीवनदाता और हलकेपन में अनुपम यह हाइड्रोजन परशुराम की तरह उग्र भी है । अधिक से अधिक उग्र और ज्वलनशील सर्वनाशी आग्नेयास्त्र हाइड्रोजन बम बना ही है । उससे अधिक घातक अस्त्र अभी तक और कोई नहीं बना है ।

तेल को घी बना देने की-तुच्छ को महान बना सकने की क्षमता हाइड्रोजन की तरह दुर्बुद्धि के भार से विमुक्त मानवों में ही पाई जाती है । शीतलता को बनाने और बढ़ाने में भी उसका योगदान सराहनीय माना जाता रहेगा । ढुल-मुल बहते-हिलते पानी जैसे अस्थिर मन को हाइड्रोजन की तरह हलकेपन का स्नेह-सौजन्य ही निष्ठावान सुस्थिर बनाता है । जहाँ आक्सीजन का सोलह सेर प्रयास काम करेगा सामान्य व्यक्तित्व १६ जुटेंगे, वहाँ हलके चरित्र व्यवहार और मनःस्तर का व्यक्ति अपनी स्वल्प शक्ति खर्च करके ही वह प्रयोजन पूरा कर लेगा । हाइड्रोजन की तरह श्रेष्ठ व्यक्तित्व भी अपने में हलकापन ही भरे रहते हैं । वे भारीपन की तुलना में सर्वत्र अधिक सफल होते हैं । प्रसिद्ध है कि मोटे-भारी मनुष्यों की तुलना में हलके पतले लोग अधिक नीरोग और अधिक दीर्घजीवी होते हैं ।

उपयुक्त अवसर पर वे उत्साहवर्द्धक शीतलता प्रस्तुत: करते हैं और जहाँ आवश्यकता होती है वह अपनी विस्फोटक उग्रता का भी परिचय देते हैं । सज्जनों की श्रेष्ठता अनाचार के उन्मूलन और सदाचार के परिपोषण में हाइड्रोजन की ही तरह उभयपक्षी भूमिका सम्पादित करती है ।

हाइड्रोजन और ईश्वर का साम्य

१९४३ में जन्मे स्विटजरलैंड के वैज्ञानिक थियोफ्राट्स पैरासेल्सस एक दिन एक प्रयोग कर रहे थे । उन्होंने तेजाब में धातु का एक टुकड़ा डाला तो एक गैस उठी । इस गैस की यह विशेषता थी कि आग के सम्पर्क में आते ही फफक कर जल उठती थी । पैरासेल्सस आध्यात्मिक व्यक्ति थे । वे पदार्थ की खोज में किसी प्राणवान् सत्ता की खोज करना चाहते थे । इस प्रयोग का यद्यपि वे कोई अर्थ नहीं निकाल सके, उस गैस का नामकरण भी वे नहीं कर पाये पर बाद में कैवेडिग ने उसे 'सुलगने वाली हवा' तथा फ्रांस के प्रसिद्ध रसायन-विज्ञानी आनत्वान लैवेजियर ने उसका नाम जलोत्पादक (हाइड्रोजन) रखकर लोगों को बताया कि यह संसार की सबसे हल्की गैस है । इस प्रयोग के कारण पैरासेल्सस को ही रसायनशास्त्र का जन्मदाता मानते हैं । उधर इस तत्त्व के सम्मुख आते ही अध्यात्मवादी ईश्वरीय मान्यता को एक नई राह मिली ।

ईश्वर के लिये वेद कहता है-

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ।

-ऋग्वेद १०/८१/३

वह एक ही अपनी आँख से सर्वत्र देखता है, वही सुनता, उसी के पाप-पुण्य रूप बाहु सर्वत्र काम करते और जीवों को चेतना देते हैं । वह दिव्य गुणों वाला परमेश्वर ही पृथ्वी और द्यौलोक को उत्पन्न करता है ।

एक वाक्य में परिभाषा करनी हो तो-"ईश्वर एक ऐसी आदि सत्ता है जिसका कभी अन्त नहीं होता, वह एक ऐसा सर्वव्यापी तत्त्व है जहाँ संसार की सभी प्रतिकूल परिस्थितियाँ एकाकार होती हैं ।" अर्थात् वह गर्म और सर्द, मधुर और कड़वे, पाप और पुण्य, प्रकाश और अन्धकार, कोप और करुणा आदि परस्पर विपरीत शक्तियों का सम्मिलन केन्द्र है । इड़ा और पिंगला नाड़ियों के योग से जिस प्रकार सुषुम्ना का आविर्भाव होता है 'पाजिटिव चार्ज' (धन-धारा) और निगेटिव चार्ज (ऋण-धारा) के सम्मिलन से जिस तरह विद्युत् नाम की शक्ति का प्रादुर्भाव होता है, उसी प्रकार परमात्मा एक ऐसा तत्त्व है जहाँ संसार की प्रत्येक विपरीत परिस्थितियाँ आकर मिल जाती हैं ।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर जब हाइड्रोजन का अध्ययन करते हैं तो एक विलक्षण साम्य दिखाई देता है । हाइड्रोजन सृष्टि का आदि-तत्त्व है, लेकिन अपनी सरल रचना के कारण वह कहीं भी अपने स्वतन्त्र अस्तित्त्व में उपलब्ध नहीं । इसमें गर्म और शीत दो धाराओं का विलक्षण संयोग भी है । हाइड्रोजन के एक अणु में केवल दो ही परमाणु होते हैं । उसके नाभिक के किनारे एक ही इलेक्ट्रॉन चक्कर काटता है, उसमें प्रोटॉन भी एक ही होता है । इस सरल रचना के कारण वह ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, मिट्टी, घी, तेल, वृक्ष, वनस्पति जिस किसी के सम्पर्क में आता है उसी से मिलकर अपने अस्तित्त्व को वैसे खो-सा देता है जैसे कोई लोकसेवक अथवा महान् आत्माएँ संसार की सेवा में अपने आप को इस तरह घुला देती हैं कि उनकी अपनी निजी इच्छाओं, स्वार्थों और महत्वाकांक्षाओं का कोई अस्तित्त्व ही नहीं रह जाता ।

हाइड्रोजन सर्वव्यापी तत्त्व है । पृथ्वी के कण-कण में जिसमें न्यूनाधिक मात्रा में हाइड्रोजन उपलब्ध न हो। ताप का स्वभाव स्फुरण का होता है अर्थात् आग के सम्पर्क में आने वाला कोई भी तत्त्व तेजी से फैलता है, इसलिये यह तो है कि जो ग्रह-नक्षत्र अधिक गर्म है उनका हाइड्रोजन स्फुरित होकर आकाश में फैल जाता है, जबकि कम गुरुत्वाकर्षण और कम ताप वाले लोकों में वह बहुतायत से अपने स्वतन्त्र अस्तित्व में भी बना रहता है । सूर्य में भी हाइड्रोजन ही जलता है और हीलियम के रूप में सारे संसार को प्रकाश देता है ।

ईश्वर जड़ भी है चेतन भी । हाइड्रोजन जड़ वस्तुओं में भी पाया जाता है और मनुष्य जैसे प्राणधारियों के शरीर में भी । हमारे शरीर का वजन यदि सौ पौण्ड हो तो इसका अर्थ यह हुआ कि हमारे शरीर में ६० पौण्ड पानी होगा । पानी कोई स्वतन्त्र तत्त्व नहीं, २ भाग हाइड्रोजन और १ भाग आक्सीजन का सम्मिश्रण ही पानी है, तब यदि ६०

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पौण्ड शरीर में पानी है तो इसका यह अर्थ हुआ कि १०० पौण्ड वाले शरीर में ४० पौण्ड हाइड्रोजन अनिवार्य रूप से पाया जाएगा । यह स्थिति सृष्टि के प्रत्येक प्राणी के लिये है । हाइड्रोजन इस तरह एक सर्वव्यापी तत्त्व है ।

एक व्यक्ति एक ही स्थान पर हिंसक भी हो और अहिंसक भी । यह कुछ अटपटा-सा लगता है पर ईश्वर और हाइड्रोजन दोनों में ही यह बात स्पष्ट प्रकट है । किसी भी तत्त्व से अतीत होने पर यह सम्भव है, उदाहरण के लिये किसी व्यक्ति को दो ऐसे व्यक्तियों के पालन-पोषण का भार सौंपा जाये जिनमें एक अच्छा एक बुरा हो तो सन्तुलन बनाये रखने के लिये और न्याय-व्यवस्था स्थिर रखने के लिये उसे आवश्यक होगा कि वह नेक व्यक्ति को प्रशंसा, प्यार और प्रोत्साहन दे तथा बुरे व्यक्ति को दण्ड, प्रताड़ना और धिक्कार भी दे । भगवान इसी नियम से सभी के कर्मों का लेखाजोखा रखते और तदनुसार फल देते हैं । हाइड्रोजन में भी दोनों प्रकार के तत्त्वों से मेलजोल की पद्धति ऐसी है ।

उसे अगर जलाया जाय तो आग के हलके सामीप्य से भी वह धधककर जल उठेगा । संसार की कोई भी वस्तु जलती है तो राख बनती है पर यह रही न विचित्र बात कि हाइड्रोजन जलता है तो पानी बनता है । ईश्वर में कठोरता या हिंसा तो है पर वह है उद्देश्यपूर्ण ही । सृष्टि को खराब होने से बचाने के लिये उन्हें हिंसा का भी आश्रय लेना पड़ता है, पर अन्ततः वह जल की तरह शीतल है । अब यह प्रत्येक मनुष्य की अपनी इच्छा है कि वह शीतलता प्राप्त करे या दूषित कर्म करे और ईश्वरीय का कोपभाजन बने । हाइड्रोजन में आग भी है, पानी भी । दया भी है, निर्दयता भी, पर यह सब लोक-नियन्त्रण के लिये है । यदि उन्होंने एक ही पक्ष पकड़ा होता तो संसार तो होता पर उसमें कोई हलचल न होती ।

ऐसा कहा भी जाता है कि जल केवल पृथ्वी पर है इसलिये प्राणधारी केवल पृथ्वी पर ही हैं । किन्तु हाइड्रोजन का प्रत्येक तत्त्व के साथ संयुक्त होकर सृष्टि की रचना में भाग लेना यह बताता है कि यदि वह पृथ्वी में दृश्य रूप से-ठोस रूप में सृष्टि करता है तो लोकोत्तर प्राणियों के शरीर स्थूल न होकर तरल और गैसीय स्थिति में भी हो सकते हैं । हाइड्रोजन में यह गुण है कि वह गैस होते हुए भी तरल और ठोस दोनों ही स्थितियों में प्राप्त किया जा सकता है ।

इन गुणों के साथ हाइड्रोजन की ईश्वर के इन गुणों से तुलना करें तो हमें यही मानना पड़ेगा कि हाइड्रोजन नहीं तो ऐसा कोई तत्त्व ही होगा जो सम्पूर्ण सृष्टि में आच्छादित होकर निर्माण और नाश की प्रक्रिया को सम्पन्न कर रहा होगा । यह गुण अथर्ववेद २/२/२ में वर्णित इस प्रकार है

दिवि स्पृष्टो यजतः सूर्यत्वगवयाता हरसो दैव्यस्य ।
मृडाद् गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यः सुशेवा ।।

अर्थात्-सूर्य और अग्न्यादि देवताओं को अपने अन्दर धारण किये तुम्हीं सब का पालन करते हो और सबको सुख देते हो ।

हाइड्रोजन सचमुच ऐसा ही तत्त्व है जो जल बनाकर जीवन की रक्षा भी करता है पर उसके प्रत्येक परमाणु में सूर्य जैसी ज्वलनशील आग्नेय-शक्ति का आधार भी है । हाइड्रोजन बम में इसी शक्ति का विस्फोट किया जाता है, तो वह शक्ति लाखों व्यक्तियों को भून डालने में भी समर्थ होती है । लोकों की बुरे तत्त्वों से सुरक्षा के लिये इस तरह की प्रचण्ड शक्ति नियामक सत्ता के हाथों होनी आवश्यक थी, वह हाइड्रोजन तत्त्व में भी सुरक्षित है ।

यह समानताएँ सम्भव है कि किसी दिन एक ऐसे तत्त्व को भी सामने ला दें जो हाइड्रोजन से बढ़कर भी समर्थ और ईश्वरीय क्षमताओं की तरह हो । यदि ईश्वर व्यक्ति या शरीर न होकर सचमुच कोई सर्वव्यापी तत्त्व है तो इस कथन को कोई भी अप्रासंगिक न कहेगा ।

लघुत्तम में महत्तम

बड़े बनने की महत्त्वाकांक्षा में मनुष्य इस तरह उलझ जाता है कि वह छोटों के मूल्य और उनकी महत्ता को समझ ही नहीं पाता । वह उनकी उपेक्षा करता है फलतः समाज में विषमता उत्पन्न होती है । वैज्ञानिक तथ्य यह है कि मनुष्य को छोटा बनना चाहिए, लघुता में प्रभुता अब मात्र साहित्यिक या भावनात्मक उक्ति नहीं रही वह एक वैज्ञानिक सत्य भी सिद्ध हो चुकी है ।

लघुता की गतिशीलता विराट् की गति से की जा सकती है । हीरा आदि ठोस पदार्थ दिखाई देते हैं, स्थूल होते हैं उनके अणुओं (मालेक्यूल्स) की गति प्रतिघण्टा ९६० मील होती है । तरल पदार्थों के अणुओं का कम्पन ठोस पदार्थों से ड्योढ़ा और दुगुना हो जाता है । 'दि मैकेनिज्म आफ नेबर' (एन्ड्राड लिखित) में लिखा है-१ औंस पानी में इतने परमाणु होते हैं कि संसार के सभी स्त्री, पुरुष व बच्चे उन्हें गिनें और एक सेकेण्ड में ५ की गति से गिनें और दिन-रात गिनें तो गणना ४० वर्ष में पूरी होती है, पर उस तरल को जब और भी सूक्ष्म छोटे-छोटे टुकड़ों में-गैस रूप में कर दिया जाता है तो अणुओं की संख्या और गतिशीलता लक्ष-लक्ष गुना अधिक हो जाती है । गैस के अणुओं के बीच की दूरी एक इंच के तीस लाखवें हिस्से से भी कम होती है फिर भी वह एक सेकेण्ड में ६ अरब बार परस्पर टकराते हैं । ठोस देखने में बड़ा लगता है पर उसकी गति स्थूल होती है । गैसें कई तो दिखाई भी नहीं देतीं पर इतनी क्रियाशील होती हैं कि उनके माध्यम से उनकी गतिशीलता के आधार पर लाखों मील दूर की बात को एक सेकेण्ड में जान लिया जाये । आगे इसी विज्ञान के विकास द्वारा लाखों वर्ष पूर्व की घटनाओं का चित्रण चलचित्र की भाँति सम्भव हो जाये तो कुछ असंभव नहीं । इसी को कहते हैं लघुता की महत्ता । प्रकाश का अणु आज तक पकड़ में नहीं आया पर वह सारे संसार को प्रकाश तथा गर्मी देता है, उसकी पहुँच इतनी विकट है कि वह एक सेकेण्ड में ही १८६००० मील पहुँच जाता है । मनुष्य का उतावला मन यदि स्थूल से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सूक्ष्म तथा उसे छोटा बनाया जा सके, बड़े होने के अहंकार से बचाकर उसे छोटे से छोटा बनाया जा सके तो उसमें एक सेकेण्ड के भी लाखवें हिस्से में सारे ब्रह्माण्ड का भ्रमण कर आने की क्षमता, सक्रियता विद्यमान प्रत्यक्ष देखी जा सकती है । सूक्ष्म बनाया हुआ मन ही त्रिकालदर्शी होता है । उल्लेखनीय है कि भारतीय दर्शन ने मन, आत्मा और परमात्मा को तत्त्व ही माना है ।

छोटा बनने से वजन कम नहीं हो जाता । भारतीय दर्शन की मान्यता यह है कि परमाणु आकाश में अपने सदृश परमाणुओं के साथ घनीभूत हो जाता है तो उसकी शक्ति का पारावार नहीं रहता । विज्ञान अभी उस स्थिति तक पहुँचा नहीं जिस दिन वह इस स्थिति में पहुँचेगा पायेगा कि कोई एक अत्यन्त सूक्ष्म किन्तु अत्यन्त घनीभूत सत्ता विश्व में विद्यमान् है उसकी महत्ता, उसके वजन का पारावार नहीं, मानवीय चेतना उस सूक्ष्म चेतना से मिलकर ही अपनी अणिमा को गरिमायुक्त बनाती है । एक वर्ग इंच टुकड़े लकड़ी का भार १ छटाँक से भी कम होता है, पर उतना ही लोहा एक छटाँक से अधिक होगा । प्लैटिनम लोहे से भी अधिक वजनदार होता है क्योंकि उसके परमाणुओं में सघनता होती है । 'आर्म चेयर साइन्स' लन्दन से निकलने वाले १९३७ के पत्र में बताया गया कि- आंकाश के कुछ सितारों के द्रव्य १ क्यूबिक इंच के हों तो भी उनका वजन २७ मन होगा, एक तारे के इतने ही द्रव्य का वजन १६७४० मन पाया गया । ज्येष्ठ तारे के बारे में कहा जाता है कि उसका नग अँगूठी में लगा दिया जाये तो उस अँगूठी का वजन ८ मन का होगा ।

छोटा बनने में व्यक्ति की सक्रियता बढ़ती है, उसका वजन बढ़ता है । मनुष्य छोटे से छोटा हो जाये तो उसे जीतना, उठा सकना कठिन हो जाये वह अपने आपको सारे संसार से बड़ा, वजनदार और विश्वव्यापी बना सकता है ।

परमाणु-शक्ति से बढ़कर जीवाणुसत्ता

पदार्थों को बड़ी मात्रा में एकत्रित करके अधिक वैभव, बल या सुख पाया जा सकता है यह मान्यता अब बहुत पुरानी हो गई । मात्रा की अपेक्षा अब गुण को महत्त्व मिलने लगा है जो उचित भी है । 'खोदा पहाड़ निकली चुहिया' वाली कहावत वहाँ लागू होती है जहाँ यह सोचा जाता है कि जो जितना बड़ा है-साधन सम्पन्न है वह उतना ही सशक्त है । शक्ति का स्रोत हर छोटे पदार्थ, व्यक्ति एवं साधन में मौजूद है । यदि हम बारीकी से ढूँढ़ना, परखना और सही रीति से प्रयुक्त करने की विद्या जान जाएँ तो थोड़ी-सी सामग्री से ही प्रचुर शक्तिसम्पन्न बन सकते हैं । हमारे छोटे-छोटे व्यक्तित्व ही ऐसे महान कार्य सम्पन्न कर सकते हैं जिन्हें देखकर दाँतों तले उँगली दबानी पड़े ।

अणु शक्ति इस तथ्य को प्रत्यक्ष रूप से प्रमाणित करती है । पदार्थ का छोटे से छोटा घटक 'अणु' कितना सशक्त है और वह कितने बड़े कार्य कर सकता है इसे देखने, समझने पर इस सच्चाई को हृदयंगम करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि छोटा समझा जाने वाला व्यक्ति भी यदि अपने को समझ सके तो जो कुछ वह है उतने का ही सही उपयोग कर सके तो वह कर सकता है जिसके लिए सामान्य बुद्धि, बहुत बड़े साधनों की आवश्यकता अनुभव करती है ।

अब परमाणु पदार्थ की सबसे छोटी इकाई नहीं रहा, उसके भीतर १०० से भी अधिक ऐलिमेन्टरी पार्टिकल-प्राथमिक कण-खोज निकाले गये हैं । इनको भी अन्तिम इकाई नहीं कहा जा सकता । इनके भीतर जो सूक्ष्मता के अनुपात से अधिक रहस्यमय स्पन्दन, स्फुरण भरे पड़े हैं , उनका रहस्योद्घाटन होना अभी शेष है । अब विज्ञान अधिक गहराई में प्रवेश कर रहा है । पिछले दशकों के प्रतिपादन अब झुठलाये जा रहे हैं । यथा-'ईथर' की कल्पना का अनस्तित्त्व पिछले दिनों मोर्स तथा माइकेलसन ने सिद्ध कर दिया है । शब्द-तरंगों को वहन करने वाले इस 'ईथर' की खोज पर फिट्राल्ड और लारेन्टज को बहुत ख्याति मिली थी और उनकी शोध को बड़ी उपयोगी मानकर सर्वत्र मान्यता मिली थी । पर अब उसके नकारात्मक प्रबल प्रतिपादन ने विज्ञान की अन्य मान्यताओं के भी खोखली होने की आशंका उत्पन्न कर दी है । आइन्स्टीन का सापेक्षवाद अब उतना उत्साहवर्द्धक नहीं रहा, उसमें बहुत सी शंकाओं और त्रुटियों की सम्भावना समझी जा रही है । गैलीलियो-न्यूटन आदि की मान्यताएँ अब पुरातनपंथी वर्ग की कल्पनाएँ ठहराई जा रही हैं ।

महर्षि कणादि ने अपने वैशेषिक दर्शन में अपने ढंग से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि संसार छोटे-छोटे कणों से मिलकर बना है । ईसा से ४०० वर्ष पूर्व यूनानी दार्शनिक देमोक्रितु भी अणुवाद का प्रतिपादन करते थे । इससे पूर्व यह जगत् पंचतत्त्वों का बना माना जाता था । अब पंचतत्त्व का बहुत मोटा वर्गीकरण है । पानी अपने आप में मूल सत्ता नहीं रहा उसे कुछ गैसों का सम्मिश्रण मात्र स्वीकार किया गया । पुरानी मान्यताएँ अपने समय में जो बहुत सम्मानित थीं, पर वे अब त्रुटि पूर्ण ठहरा दी गई हैं ।

न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त एक सीमा तक ही सही है । यदि कोई राकेट प्रकाश की गति से एक सेकिण्ड में ३००००० किलोमीटर उड़ने लगे तो वे गुरुत्वाकर्षण नियम गलत हो जाएँगे ।

रेडियम धातु द्वारा उत्पन्न होने वाले विकरण की खोज होने तक यही मान्यता थी कि पदार्थ को ऊर्जा में नहीं बदला जा सकता है, दोनों का अस्तित्त्व स्वतन्त्र है पर अब अणु विस्फोट के पश्चात् यह स्वीकार कर लिया गया है कि पदार्थ और ऊर्जा वस्तुतः एक ही सत्ता के दो रूप हैं और उन्हें आपस में बदला जा सकता है । क्वान्टम और मैक्सवैल के सिद्धान्तों को आइन्स्टाइन की नई खोजों ने बहुत पीछे छोड़ दिया है । चुम्बक सम्बन्धी पुरातन मान्यताओं में रेदरफोर्ड ने नये तथ्य जोड़े, उसने सिद्ध किया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कि रेडियमधर्मी विकरण का एक भाग जब एक दिशा में मुड़ता है तो उसे 'अल्फा' विपरीत दिशा में मुड़ता है तो 'बीटा' और बिलकुल न मुड़ने वाला प्रवाह 'गामा' किरणों के रूप में निसृजित होता है । यह तीनों प्रवाह अपने-अपने ढंग के अनोखे हैं । अल्फा विकरण को कागज की एक पतली झिल्ली में रोका जा सकता है किन्तु बीटा विकरण अल्यूमिनियम की कुछ मिलीमीटर मोटी चादर को भी पार कर सकता है । गामा विकरण को शीशे की मोटी परत ही शोषित कर सकती है ।

पुरानी मान्यता का परमाणु ठोस था । पीछे उसमें भी ढोल की पोल पाई गई है । आकाश में घूमने वाले पिण्डों की तरह परमाणु के गर्भ में कुछ प्राथमिक कण भ्रमण तो करते हैं, फिर भी उसमें खाली जगह बहुत बच जाती है । यदि इलेक्ट्रोन रहित परमाणुओं के नाभिकों को पूरी तरह सटा कर दबाया जा सके तो एक घन सेन्टीमीटर नाभिकीय द्रव्य का भार १० करोड़ टन के लगभग हो जाएगा ।

पुरानी मान्यताओं के अनुसार जीव तुच्छ, हेय, पापी, पतित, भव-बन्धनों में जकड़ा हुआ, जन्म-मरण के कुचक्र में बँधा हुआ नगण्य था । उसे अपने उद्धार व उत्थान के लिए किसी गुरु-मन्त्र या देवता की सहायता अपेक्षित थी, पर जब आत्म-सत्ता में सन्निहित गरिमा पर विचार किया जाता है तो स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि आत्मा अणु होते हुए भी परमात्मा विभु की समस्त विशेषताएँ अपने भीतर छिपाये हुए है । जीवात्मा के सम्बन्ध में अनेक पुरातन मान्यताओं को निरस्त करते हुए वेदान्त ने अयमात्मा ब्रह्म प्रज्ञान ब्रह्म-तत्त्व मसि, सोऽहम, शिवोहम का उद्घोष किया है तो वह अहम्मन्यता नहीं जैसी कि तथ्यपूर्ण यथार्थता परमाणु के सम्बन्ध में सामने आई है । धूल-मिट्टी का एक अत्यन्त छोटा घटक होने के कारण उसका प्रत्यक्ष मूल्य नगण्य है, पर यदि उसका वैज्ञानिक ढंग से उपयोग किया जाय तो उससे समस्त संसार का अभाव-दारिद्र्य दूर हो सकता है । शक्ति का असाधारण स्रोत हस्तगत किया जा सकता है ।

अणु-शक्ति की झाँकी तो कर ली गई है, पर साथ ही यह खतरा भी सामने है कि विस्फोट से जो हानिकारक विकरण उत्पन्न होगा उस पर नियन्त्रण कैसे किया जा सकेगा ? अणु-विज्ञान के उदयकाल में यह कल्पना की गई थी कि चने के बराबर प्लूटोनियम के इंजन लगाकर मोटरें चलाई जा सकेंगी । पर वह अब पूरी होती नहीं दीखती क्योंकि अणु-विस्फोट में जो नाभिकीय विकरण फैलता है वह न केवल पदार्थों को वरन् जीव-कोषों को भी नष्ट करके रख देता है । उससे बचाव करने के लिये चने की बराबर अणु-इंजन के लिए किले जैसी मोटी-दीवारें खड़ी करनी पड़ेंगी । ऐसी दशा में वह कल्पना की गई हलकी और सस्ती अणु-मोटर, मात्र मस्तिष्कीय उड़ान बनकर ही रह जाएगी ।

फिर भी अणु बिजलीघर बनाये जा रहे हैं और प्रयत्न किया जा रहा है कि इस शक्ति को वशवर्ती बनाकर मनुष्य की शक्ति आवश्यकता को पूरा किया जाय । इस दिशा में सफलता भी मिली है और आशा भी बँधी है । वह दिन दूर नहीं जब हानिरहित अणु बिजलीघर सामान्य बिजलीघरों की तरह ही कार्यान्वित होने लगेंगे । अब तक जितना यूरेनियम प्राप्त कर लिया गया है वह ९०० खरब टन कोयले से मिलने वाली शक्ति के बराबर है ।

अणु ऊर्जा-एटॉमिक इनर्जी-हमारे लिए कितने ही उपयोगी प्रयोजन सिद्ध कर सकती है । चिकित्सा जगत, कृषि उद्योग, यातायात-युद्ध कौशल आदि कितने ही प्रयोजन उससे चमत्कारी स्तर पर पूरे किये जा सकते हैं ।

कैन्सर चिकित्सा के लिए अणु शक्ति द्वारा विनिर्मित विशिष्ट 'कोवाल्ट' बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है । जहाँ एक्सरे यन्त्र काम नहीं करते वहाँ गेइनर काउन्टर वस्तुस्थिति का पता आसानी से लगा लेता है । रेडियो सक्रिय अणुओं के द्वारा एनीमिया-रक्ताल्पता का इलाज सफलतापूर्वक होने लगा है । पैलीसा इथोमिया वीरा नामक कष्ट-साध्य रक्त रोग के उपचार में रेडियो-सक्रिय फास्फोरस के इन्जेक्शन सफल रहे हैं । ऐंजिना पैक्टोरिस नामक हृदय रोग में तथा थाइराइड कैन्सर में रेडियो-सक्रिय आयोडीन अच्छा काम करता है । शरीर के पोले भागों में जहरीला पानी भर जाने की स्थिति रेडियो सक्रिय स्वर्ण, ट्यूमर और आँख के कैन्सर में रेडियोसक्रिय स्ट्रान्सियम ने चमत्कार दिखाया है । रेडियोसक्रिय आइसोटोपों से मनुष्यों तथा पशुओं के कितने ही रोगों की सफल चिकित्सा होने लगी है । अमेरिका में इस प्रकार के उपचारों के लिए विशेष रूप से अतिरिक्त आणविक अस्पताल ही खुले हुए हैं ।

कृषि क्षेत्र अणु ऊर्जा की सहायता से किस प्रकार अधिक मात्रा में और अधिक पौष्टिकता युक्त अन्न, शाक, फल आदि उगाने के सम्बन्ध में सुविस्तृत खोज हो रही है और पता लगाया जा रहा है कि बलिष्ठ पौध, सशक्त खाद, कीड़ों से फसल की रक्षा, अधिक उत्पादन के लिए अणु ऊर्जा किस प्रकार और किस हद तक सहायक हो सकती है । शोध-संस्थानों को आशा है कि अणु-शक्ति की सहायता से पौधों की ऐसी नस्लें पैदा की जा सकेंगी जो सर्दी, गर्मी, पानी और खाद की कमी तथा कीड़ों के आक्रमण का सामना करते हुए अपनी प्रगति का स्तर बनाये रह सके ।

अमेरिकी एटामिक इनर्जी ऐजेन्सी के अध्यक्ष ग्लीन सीवर्स ने अणु-विज्ञानियों की एक अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी में कहा था कि अणु-शक्ति की खोज बड़े मौके पर हो गई । यदि उसमें विलम्ब हुआ होता तो ईंधन के अभाव में समस्त संसार की प्रगति का क्रम बुरी तरह ठप्प पड़ जाता ।

अभी अणु-शक्ति उत्पादन में यूरेनियम धातु का उपयोग प्रधान रूप से होता है, पर आगे चलकर उसका स्थान थोरियम ले लेगा । यूरेनियम की कमी है, पर थोरियम आसानी से और अधिक मात्रा में उपलब्ध किया जा सकेगा ।

अब कोयले की कमी पड़ने की भावी चिन्ता से छुटकारा पाया जा सकेगा । ९ पौण्ड यूरेनियम से उतनी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऊर्जा प्राप्त की जा सकेगी जितनी १५०० टन कोयला जलाने पर प्राप्त होती है ।

अतीतकाल में जब आग मनुष्य के हाथ लगी थी तब भी उसके सामने यही समस्या थी कि उसकी हानियों से कैसे बचा जाय और लाभ कैसे उठाया जाय । देर-सबेर में उसने इसका रास्ता भी निकाल लिया । अब हम आग से बेखटके लाभ उठाते हैं और उसकी भयंकर सम्भावना से अपना बचाव कर लेते हैं । अगले दिनों अणु-ऊर्जा के सम्बन्ध में प्रस्तुत कठिनाई को भी हल कर लिया जाएगा और इस महादैत्य को मनुष्य की सेवा करने के लिए बाध्य किया जा सकेगा ।

मनुष्य के भीतर जड़ अणु-शक्ति से भी उच्चकोटि की जीवाणुशक्ति मौजूद है । जड़ से चेतन की गरिमा सर्वविदित है । अणु से जीवाणु की क्षमता अत्यधिक प्रचण्ड होना स्वाभाविक है । अणु समूह का थोड़ा-सा यूरेनियम जब इतनी शक्ति उत्पन्न कर सकता है तो असंख्य जीवाणुओं के समूह मानवी व्यक्तित्व की क्षमता कितनी महान हो सकती है, इसका अनुमान लगाया जाना कुछ कठिन नहीं होना चाहिए ।

प्रकृतिप्रदत्त शक्तिस्रोतों में झंझावात, कबन्ध हैं, आँधी, तूफान तथा ज्वार-भाटे अद्‌भुत हैं । इनमें सन्निहित शक्ति को यदि संग्रहीत करके किसी उपयोगी दिशा में लगाया जा सके तो उससे भी बहुत काम चलता है । औसत दर्जे की आँधी में प्रायः एक हजार अणु-बमों के बराबर शक्ति होती है ।

निस्सन्देह इस जड़जगत में सर्वत्र शक्ति का सागर भरा पड़ा है । पदार्थ के कण-कण में से ऊर्जा की प्रचण्ड लहरें उठ रही हैं । इस बिखराव को समेटने और सही ढंग से प्रयुक्त करने की विद्या जब मनुष्य के हाथ लग जाएगी तो फिर अशक्तिजन्य सभी कठिनाइयों का निवारण हो जाएगा । मनुष्य के हाथ में सामर्थ्य का अजस्र स्रोत होगा ।

निस्सन्देह यदि चेतनाजगत में संव्याप्त आनन्द और उल्लास से लेकर सिद्धियों, समृद्धियों और विभूतियों के वरदानों की उपलब्धि जिस समय मनुष्य के हाथ में आ जाएगी तब वह जीव-चेतना के प्रत्येक घटक जीवाणु में समाई सत्ता को देखना, परखना, समेटना और प्रयुक्त करने की कला में निष्णात बन जाएगा । इस स्थिति में पहुँचकर ही हम नर से नारायण रूप में विकसित हो सकेंगे और अपूर्णता से पीछा छुड़ाकर पूर्णता सम्पन्न होने का जीवन-लक्ष्य प्राप्त कर सकेंगे ।

धरती की तरह ही आत्म-सत्ता भी सामर्थ्य-पुञ्ज

जिस पृथ्वी में हम जन्मे हैं, पल रहे हैं और मरण के उपरान्त जिसकी धूल में मिलने वाले हैं उसके सम्बन्ध में भी अपनी जानकारी नगण्य जितनी ही होती है । अन्न, जल इस धरती की ही देन है । खनिज और ईंधन जैसी साधन-सामग्री जीवन की आधारभूत आवश्यकताएँ पूरी करती हैं इतने पर भी उसकी गरिमा और विशिष्टता से हम सब अपरिचित जैसे ही बने रहते हैं ।

२००० वर्ष से ऊपर हुये इराटस्थनीज नामक एक यूनानी विद्वान् ने सर्वप्रथम पृथ्वी के परिमाण की गणना की थी । उसकी गणना के अनुसार पृथ्वी की परिधि की लम्बाई ३००० मील आँकी गई थी । परन्तु आधुनिक वैज्ञानिकों ने लगभग सम्पूर्ण पृथ्वी तल को कई बार नाप डाला है । उनके अनुसार पृथ्वी की परिधि की लम्बाई लगभग २५,००० मील (ध्रुवों पर २४, ८६० तथा विषुवत् रेखा पर २४,९०२ मील) है ।

पृथ्वी के दोनों चपटे सिरे ध्रुव कहलाते हैं । ऊपर का सिरा उत्तरी ध्रुव तथा नीचे का सिरा दक्षिणी ध्रुव है । ध्रुवों के बीच पृथ्वी के व्यास की लम्बाई ७,८९९ मील है । मध्य में उसकी लपेट पर पूर्व पश्चिम का व्यास ७,९२६ मील के लगभग है । सम्पूर्ण धरातल का क्षेत्रफल १९,७०,००००० वर्ग मील है । धरती का दो तिहाई भाग जलमग्न रहता है और शेष स्थल भाग है ।

पृथ्वी के आकार और आधार के सम्बन्ध में विविध प्रकार के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है । कुछ का मत है कि यह खोखली है तो कुछ इसे बिल्कुल ठोस मानते हैं ।

मार्शल गार्डनर नामक एक प्रसिद्ध भू-विज्ञानवेत्ता के मतानुसार पृथ्वी खोखली है । इसकी ऊपरी परत (छिलका) ८०० मील मोटा है । इसके भीतर भी एक सूर्य विद्यमान है जो उसे गर्मी देता रहा है । रसायनविद् अरीनिहस के अनुसार धरती धातु का बना हुआ एक बड़ा भारी गोला है । इस गोले के गर्भ में तीव्र आँच से उत्तप्त पदार्थ वायव्य रूप में भरा पड़ा है । उनकी कल्पना ज्वालामुखी पर्वतों के विस्फोट पर आधारित है । उनका कहना है कि गुरुत्वाकर्षण से खिंचकर सोना, चाँदी, प्लेटिनम आदि धातुएँ पृथ्वी के अत्यन्त गहरे भागों में जमा हो गयी हैं । फारसी सभ्यता वालों की मान्यता है कि कारूँ अपने खजाने के साथ धरती में धँस गया था और आज भी धँसता जा रहा है । वह कारूँ का खजाना सम्भवतः यही है । इस अतुल धनराशि के चतुर्दिक वायव्य रूप में लोहे की बहुत बड़ी पर्त है । पृथ्वी का लगभग आधा पिण्ड लोहे का है । वायव्य लोहे के इस अग्नि-मण्डल का व्यास ६००० मील के लगभग है । इसके ६०० मील ऊपर तक चट्टानों का वायव्य स्तर है । इसके १६० मील ऊपर तक धधकती आँच से तपे हुए सफेद पिघले पत्थर की पर्त है । इन सबसे ऊपर लगभग १०० मील मोटी वह पर्त है जिस पर हम जी रहे हैं । आधुनिक वैज्ञानिक भी अरीनिउस के इस सिद्धान्त को अपने मत का आधार मानते है ।

सम्पत्ति धरती का उत्पादन है । लक्ष्मी इसी को कहते हैं । वह धरती की बेटी है । अब तक उसमें जो खोदा, उगाया गया उसी को मिल बाँटकर सम्पदा की तरह उपयोग करते और उन सुविधा-साधनों के बल पर मोद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनाते हैं । हर वर्ष उसका उत्पादन उतना अधिक है कि केवल मनुष्यों का ही नहीं वरन् अन्य समस्त प्राणियों का गुजारा भी इसी के बलबूते चलता है । प्रकारान्तर से प्राणियों के शरीर भी धरती के ही रासायनिक पदार्थों से बने हैं । मिट्टी से वनस्पति उगती है उसी के विभिन्न स्वरूप शाकाहारी एवं माँसाहारियों को निर्वाह सामग्री प्रदान करते हैं । खनिज, वृक्ष वनस्पति, प्राणिज पदार्थ, जल आदि का वार्षिक उत्पादन कितना है । धरती अपने पुत्रों को कितनी सम्पदा प्रदान करती है इसका लेखा-जोखा कठिन है । मनुष्य की जानकारी में विश्व की जो सम्पदा है उससे भी अधिक वह है जो पर्वतों, वनों, जलाशयों तथा अविज्ञात भू-प्रदेशों में बिखरी पड़ी है ।

यह ज्ञात वैभव की बात हुई । धरती के भीतर जो खनिज भरे पड़े हैं उस अविज्ञात का विस्तार सहस्त्रों गुना अधिक है ।

इतनी सम्पत्ति की स्वामिनी धरती पर निवास करते हुए भी-उसके पुत्र कहलाते हुए भी-अपनी माता के वैभव से लाभान्वित नहीं हो पाते । इतना ही नहीं उसकी जानकारी तक नहीं है । मात्र उस पर चलने-फिरने जितनी उपयोगिता ही ध्यान में रहती है । गहराई तक सोचना सम्भव हुआ होता तो प्रतीत होता है कि अपने ही पैरों के तले तथा इर्द-गिर्द कितना वैभव बिखरा पड़ा है ।

चर्चा इसलिए की जाती है कि धरती के समान्तर ही हमारी काय-सत्ता भी है । धरती जड़ है और काया चेतना । स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म की गरिमा कितनी अधिक होती है यह सभी जानते हैं । मानवी काय-सत्ता में सन्निहित सम्पदा चेतन स्तर की होने के कारण उसका मूल्य एवं महत्त्व और भी अधिक है । इसे यदि ठीक प्रकार जाना जा सके और उसे खोदने, उगाने का प्रबन्ध बन पड़े तो समझना चाहिए कि हर मनुष्य की अपनी निजी सत्ता धरती से अधिक मूल्य की सिद्ध हो सकती है । धरातल के वैभव से अपरिचित एवं असम्बद्ध लोग जिस प्रकार दुःखी, दरिद्र पाये जाते हैं उसी प्रकार जीवन के वैभव का स्वरूप एवं उपयोग न जानने के कारण भी हममें से अधिकांश को दीन-दयनीय स्थिति में पड़े रहना पड़ता है ।

धरातल पर पृथ्वी के केन्द्र से हम ४००० मील की ऊँचाई पर हैं । यदि किसी तरह हम आसमान में ४००० मील की ऊँचाई तक पहुँच जाय, तो पहले की अपेक्षा पृथ्वी के केन्द्र से हमारी दूरी दुगुनी हो जाएगी । अतः हमारा वजन भी पहले से चार गुना कम हो जावेगा । यदि जमीन पर हमारा वजन १ मन २० सेर है, तो ४००० मील ऊपर आकाश में हमारा वजन १५ सेर ही होगा । क्योंकि पृथ्वी से दूर हटने पर उसकी आकर्षण शक्ति कम होती जाती है । गुरुत्वाकर्षण इसी के वर्ग के अनुपात में घटता है ।

नर-पशुओं जैसे हेय स्तर का जीवनक्रम अस्वीकृत करके यदि उत्कृष्ट दृष्टिकोण एवं आदर्श व्यवहार अपनाया जा सके तो उस ऊँचाई पर पहुँचने के बाद मनुष्य अपने आपको नितान्त हलका-फुलका, प्रसन्न-उल्लसित अनुभव कर सकता है । बंधन-मुक्ति एवं प्रचण्ड-शक्ति इसी स्तर पर पहुँचने पर उपलब्ध होती है ।

पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति का मुद्दतों तक तो किसी को पता ही न चला । न्यूटन ने सर्वप्रथम उसके अस्तित्त्व की बात सोची और जाँच-परख करने के बाद लोगों को बताया । उस समय तक किसी को अनुमान भी न था कि हमारे इर्द-गिर्द इस रूप में सामर्थ्य का प्रचण्ड भण्डार भरा पड़ा है और उससे हम अनजाने ही अत्यधिक प्रभावित होते हैं ।

धरती का गुरुत्वाकर्षण सौर-मण्डल से लेकर ब्रह्माण्ड तक को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करता है और आदान-प्रदान के अनेकानेक आधार खड़े करता है । उदाहरण के लिए धरती का उपग्रह अपना चन्द्रमा इसी आकर्षण शक्ति से अधर में टँगा और अनवरत परिभ्रमण करता है ।

नारंगी की तरह पृथ्वी ध्रुवों पर चिपटी है । अतः विषुवत् रेखा पर स्थित स्थान ध्रुवों की अपेक्षा उसके केन्द्र से अधिक दूर है । अतएव पृथ्वी की आकर्षण शक्ति ध्रुवों पर ज्यादा और विषुवत् रेखा पर कम होती है । इसके अलावा पृथ्वी की काल्पनिक धुरी भी ध्रुवों से होकर गुजरती है । अतः विषुवत् रेखा पर के स्थान ध्रुवों की अपेक्षा अधिक तीव्रता से घूमते हैं और यहाँ आकर्षण शक्ति कम हो जाती है । विषवत् रेखा की परिधि लगभग २५००० मील है । अतः २४ घण्टे में विषुवत् रेखा पर स्थित स्थानों को लगभग २५००० मील का रास्ता तय करना पड़ता है, जबकि ध्रुव के निकट के स्थानों की कम ही दूरी तय करनी पड़ती है । विषुवत् रेखा पर के स्थानों की गति लगभग १००० मील प्रति घण्टा है । अतः विषुवत् रेखा के समीप के पदार्थों में ध्रुवों की अपेक्षा बाहर की ओर खिंचाव (सेन्टीफ्यूगल फोर्स) अधिक पैदा होता है । इस कारण भी इन पदार्थों पर काम करने वाली पृथ्वी की आकर्षण शक्ति कम पड़ जाती है ।

पृथ्वी के चारों ओर चन्द्रमा २,२८७ मील प्रति घण्टे की गति से परिक्रमा कर रहा है । गणितज्ञों ने हिसाब लगाया है कि यदि पृथ्वी की आकर्षण शक्ति संयोगवश लुप्त हो जाए तो पूर्ववत् चन्द्रमा से पृथ्वी की परिक्रमा कराने के लिए चन्द्रमा को पृथ्वी से ३७० मील चौड़े लोहे के डण्डे द्वारा बाँधना होगा ।

यह आकर्षण शक्ति मात्र पृथ्वी और चन्द्रमा तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सभी आकाशीय पिण्डों व पदार्थों में वह शक्ति मौजूद है । इस सर्वव्यापी आकर्षण शक्ति को गुरुत्वाकर्षण कहते हैं ।

मोटेतौर से इतना समझा जाता है कि भारी चीजों को ऊपर से नीचे घसीट लेने की क्षमता का नाम ही गुरुत्वाकर्षण शक्ति है । पर बात उतनी छोटी है नहीं । धरती का 'मैगनेट' इस प्रचण्ड सामर्थ्य से इतना सुसम्पन्न है कि उस पर करोड़ों बिजलीघर निछावर किये जा सकते हैं । इस सामर्थ्य का मनुष्य की इच्छानुसार यदि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयोग हो सके तो समझना चाहिए कि दरिद्रता एवं अशक्तता से इस धरती के निवासी को कष्ट सहन न करना पड़ेगा ।

सुविख्यात विज्ञान लेखक-'आर्थर क्लार्क' ने भविष्य कथन किया है कि सन् २०५० तक मनुष्य गुरुत्वाकर्षण-शक्ति पर विजय प्राप्त कर लेगा, तब वह प्रकाश की गति से ब्रह्माण्ड में अन्तर्ग्रही यात्राएँ कर सकेगा ।

अमेरिका में सौर-ऊर्जा के ऊपर अनुसंधान बहुत जोरों से चल रहे हैं, पर वैज्ञानिकों का कहना है कि ऊर्जा बटोरने वाली सौर-ऊर्जा से विद्युत-ऊर्जा उत्पादन पद्धति से ऊर्जा संकट के समाधान का विशेष हल नहीं मिल पायेगा । कुछ वैज्ञानिक लोगों का ध्यान गुरुत्वाकर्षण की ब्रह्माण्ड-व्यापी शक्ति का उपयोग करने की ओर गया है उनका कहना है कि जैसे चुम्बक में आकर्षण एवं प्रतिकर्षण दोनों ही प्रकार की शक्ति होती है, वैसा ही पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के सम्बन्ध में भी होना चाहिए । चन्द्रमा का वजन ७३ करोड़ ४० लाख खरब टन है, यदि इसकी घर्षण-शक्ति का एक करोड़वाँ भाग भी किसी तरीके से मिल सके तो संसार की एक वर्ष की ऊर्जा की समस्या हल हो जाएगी । वास्तव में जिस शक्ति के बल पर ब्रह्माण्ड टिका हुआ है यदि उस गुरुत्वाकर्षण शक्ति के उपयोग का रहस्य ज्ञात हो सके तब तो मनुष्य के लिए विस्मयकारी उपलब्धि होगी ।

यह प्रतिपादन भौतिकी के वैज्ञानिकों का है । आत्मिकी के विज्ञानी यह कहते हैं कि व्यक्ति में प्रतिभाषित ब्रह्म-सत्ता की गुरुता गरिमा का आभास अनुभव किया जा सके और उसे आत्मसात् करने की साधना की जा सके तो तुच्छ-सा दीखने वाला मनुष्य असीम सामर्थ्य का आगार बन सकता है ।

पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण अद्‌भुत है, साथ ही काया की रहस्यमयी चेतन-क्षमता भी उतनी ही विचित्र है । ब्रह्माण्डीय ऊर्जा की तनिक-सी झाँकी हमें अपने सूर्य-केन्द्र में सौर-मण्डल में परिलक्षित होती है । उसका समग्र स्वरूप तो कल्पनातीत है, ब्रह्म-चेतना का वैभव और भी अधिक है । उसके सहारे समस्त ब्रह्माण्ड गतिशील है । उस सत्ता के साथ आदान-प्रदान का द्वार खोलने वाले आत्म-विज्ञान के धनी जब ब्रह्म-सम्बन्ध स्थापित करने में सफल होते हैं तो उनकी तद्रूप स्थिति में कल्पनातीत सामर्थ्य से भरीपूरी दिखाई पड़ती है । ईंधन और आग के संयोग से दोनों की एकाग्रता प्रत्यक्ष है । आत्मा ही साधनात्मक घनिष्टता अपनाकर परमात्मा बनती और वैसी ही अभिप्रेत होती है ।

अन्तरिक्ष से लेकर वृक्ष वनस्पति तक फैली आत्मा

एक जिज्ञासु ने प्रश्न किया-आचार्य प्रवर विद्या और अविद्या में भेद क्या है ? श्वेताश्वतरोपनिषद का आचार्य उत्तर देता है-

"क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या ।"

हे तात ! नाशवान जड़ पदार्थ है वही अविद्या है तथा अविनाशी आत्मा ही विद्या रूप है ।

इसी उपनिषद में अविनाशी आत्मा की व्याख्या करते हुए बताया गया है कि-

अंगुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः संकल्पाहंकारसमन्वितो यः ।
बुद्धेर्गुणोनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रो ह्यपरोऽपि दृष्टः ॥
वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥

-श्वेताश्वतरोपनिषद ५/८/९

अर्थात्-हे तात ! वह अँगूठे जितना लघु होकर भी संकल्प-विकल्प युक्त (अर्थात् सोचता-विचारता है) तथा अपनी बुद्धि के गुण से और श्रेष्ठ कर्मों के गुण से सुई के अग्रभाग जैसे आकार वाला हो गया है, ऐसी सूर्य के समान तेजस्वी आत्मा भी ज्ञानियों ने देखी है । बाल के अग्रभाग के सौवें अंश से भी सौवें अंश परिमाण वाला भाग ही प्राणी का स्वरूप जानना चाहिए, वह सूक्ष्माति-सूक्ष्म परिमाण वाला आत्मा असीम गुणों वाला हो जाता है ।

इन दो ऋचाओं में शास्त्रकार ने जीवन के विराट दर्शन को सूत्र-रूप में पिरो दिया है । प्रकट है कि शरीर दो प्रकार के परमाणुओं से बनता है । एक होते हैं जड़ दूसरे चेतन । जड़-परमाणु चूँकि स्थूल हैं इसलिये वह दिखाई देते हैं किन्तु चेतना एक प्रकार की तरंग, शक्ति और प्रकाश रूप है और देह में इस प्रकार सोखी हुई है जिस प्रकार सूखी मिट्टी का ढेला जल को जज्ब (सोख लेता है) कर लेता है । उसके अस्तित्त्व का प्रमाण बुद्धि है उसी के न रहने पर शरीर सोचने-विचारने की क्रियाएँ बन्द कर देता है । इस शक्ति को सांसारिक प्रयोजनों में खर्च करते रहने से वह नष्ट होती रहती है और जीव छोटा से छोटा (शरीर से भी और योनियों से भी) होता चला जाता है । अनेक कल्पितरूपों में वह अनेक शरीरों में तब तक भ्रमण करता रहता है जब तक श्रेष्ठ कर्मों के गुण से वह फिर से शक्ति संचय करता हुआ सूर्य के समान असीम और तेजस्वी नहीं हो जाता । यह भी कहा है कि ज्ञानियों ने उसे देखा है-ज्ञानियो ! संबोधन का अर्थ ही है ज्ञान-अर्थात् वह ज्ञान से ही देखा जा सकता है । ज्ञान कोई पदार्थ नहीं है वह निरपेक्ष अवस्था है अर्थात् जिस समय पदार्थ, समय, गति और कारण सभी एकाकार हो जाते हैं ध्यान की उसी अनुभूति का नाम ज्ञान है । ध्यान द्वारा ही वह आत्मा अपने प्रकाश रूप में दिखाई देती है ।

आज का विज्ञान यों आत्मा के अस्तित्त्व तक पहुँच गया है, पर इसी ध्यान और अनुभूति (ज्ञान) के अभाव में वह इस तत्त्व को मानने को तैयार नहीं होता । मनुष्य शरीर जिन छोटी-छोटी प्रोटोप्लाज्मा की ईंटों से बना है वह दो भागों में विभक्त हैं-(१) नाभिक (न्यूक्लियस) (२) साइटोप्लाज्म के अन्तर्गत जल, कार्बन, नाइट्रोजन, आकाश आदि सभी पंचभौतिक ठोस, द्रव गैस अवस्था वाले पदार्थ पाये जाते हैं। विभिन्न प्राणधारियों का यहाँ तक कि मनुष्य-मनुष्य के साइटोप्लाज्म में फर्क होता है । यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

वंशानुगत आहार-पद्धति और जलवायु आदि पर आधारित है और परिवर्तनशील भी है । आहार के नियमों तथा एक स्थान से दूसरी जलवायु वाले स्थान में परिवर्तन के फल-स्वरूप हमारे शरीरों के स्थूल भाग से अन्तर आ सकता है पर अभी तक चेतन की अर्थात् नाभिक की क्रियाओं पर विज्ञान कोई नियंत्रण नहीं पा सका, अलबत्ता वैज्ञानिक शोधों से यह सिद्ध हो चुका है कि नाभिक में ही मनुष्य की सारी बौद्धिक चेतना काम करती है । उसमें न केवल अमर व अविनाशी गुणसूत्र विद्यमान हैं वरन् वह सूत्र सारे ब्रह्माण्ड को नाप सकने की क्षमता से परिपूर्ण हैं । सारे शरीर में यह चैतन्य तत्त्व एक शक्ति, एक तरंग की भाँति विद्यमान हैं, उसी के न रहने पर शरीर नहीं रहता ।

यह चेतना ही है जो मनुष्य शरीर से लेकर सृष्टि के स्थूल कणों तक में व्याप्त हो रही है । जहाँ तक चेतना का अंश प्राकृतिक परमाणुओं से शक्तिशाली होता है वहाँ तक तो जड़ और चेतन का अन्तर स्पष्ट प्रतीत होता रहता है पर एक अवस्था ऐसी आती है, जब जड़ता चेतनता पर पूरी तरह घटाटोप हो जाती है वही अवस्था है जब चेतना पूर्ण रूप से जड़ गुणों वाली अर्थात् कंकड़-पत्थर जैसी स्थिति में चला जाता है । मुख्य रूप से सृष्टि की चेतना एक ही है पर वह गुणों के द्वारा क्रमशः जड़ होती चली गई है जो जितना जड़ हो गया वह उतना ही उपभोग्य हो गया पर जिसने अपनी चेतना का जितना अधिक विकास किया वही उतना उपभोक्ता होता चला जाता है ।

विकासशास्त्रियों ने मनुष्य को अन्यान्य जीवों का विकसित रूप बताया है । कहा नहीं जा सकता यह सिद्धान्त कितना सच है किन्तु उन्होंने एक शरीर से दूसरे शरीर में विकास की जो कड़ियाँ बैठाई हैं वह दरअसल सराहनीय और परिश्रम का काम था । इसी सिद्धान्त से आज यह भी पुष्ट किया जा सकता है कि यह आत्मा ही जड़ व चेतन सर्वत्र गतिशील है । पेड़, पौधों को जड़ और चेतन के बीच की नीचे की कड़ी कहा जा सकता है और जीवित-ग्रहों को उच्च कड़ी । यह प्रतिपादन ही जड़ता से असीम चेतनता के विकास का प्रमाण माना जा सकता है ।

यही चेतना जड़ में भी जाती है इसका प्रमाण है वृक्ष, वृक्ष को शास्त्रों में जड़ व चेतन की संधि योनि माना गया है । यलोस्टोन नेशनल पार्क (अमरीका) में जहाँ उबलता पानी पृथ्वी से निकलता है वहाँ पर चारों ओर लाल रंग का किनारा बन गया है । बहुत दिनों तक यह लाल रंग वैज्ञानिकों को हैरान किये रहा । ऐसा किन्हीं जलाशयों के किनारे नहीं मिलता, फिर इस लाल रंग का रहस्य क्या ? यह जानने के लिये शोध प्रारम्भ हुई तब पता चला कि यह काई न होकर जीवित पदार्थ है । इतनी तेज गर्मी में जहाँ कि मनुष्य का हाथ झुलस जाता है, जीवन का अस्तित्त्व वैज्ञानिकों के लिये आश्चर्य की बात थी, इस आश्चर्य में एक और भी आश्चर्य बाद में समझ में आया वह यह था कि इस जीवित पदार्थ में जीवन और निर्जीवन दोनों के गुण विद्यमान हैं । यह फायलम स्यानोफाइटा वर्ग की एक 'अलगी' है सामान्यतः 'अलगी' में नीला हरा-सा रंगीन द्रव (पिगमेंट) क्लोरोफिल के साथ रहता है पर कुछ लाल रंग का भी द्रव होता है ।

फायलम यूग्लेनोफाइटा में भी पौधे व जन्तुओं दोनों के गुण पाये जाते हैं। इसमें 'क्लोरोप्लास्ट' (इसी में क्लोरोफिल नामक हरा द्रव्य होता है जो मुख्यतः वृक्षों का गुण है) रहता है वह इसके पौधा होने का प्रमाण है लेकिन जिस प्रकार पौधों के कोशों (सेल्स) में दीवार (सेलवाल) होती है, उस तरह की दीवार इनमें नहीं होती वरन् इनके चारों ओर पहुँचा भोजन एन्जाइम्स के द्वारा पचाया जाता है । एन्जाइम्स ये स्वयं निकालते हैं । यह भोजन अन्धेरे में पचा सकते हैं । इनकी वृद्धि भी एक कोश से दूसरे कोश में होती है, कोशीय भित्ति (सेलवाल) के स्थान पर इनमें लचीली कोशीय झिल्ली होती है वह ठोस भूमि पर संकुचित होती और फैलती है, तो इस क्रिया द्वारा वह चल भी लेती है । इनमें 'आई स्पॉट' भी होता है जिससे यह विश्वास किया जाता है कि यह देखते भी हैं । इसके ही पास में एक छिद्रवाहिनी (वेक्यूल) होती है वह पानी व भोजन चूसने तथा निकालने का भी काम करती है। वेक्यूल ज्यादातर एककोर्शाय जन्तुओं में होती है । इनमें एक जीवधारी के पोषण (न्यूट्रिशन) ग्रहण-पचाना (हालिजिक) तथा लैंगिक प्रजनन (सैक्सुअल रिप्रोडक्शन) गुण भी होते हैं । इन सभी उदारहणों से यह विदित होता है कि जिसे वनस्पति घटक माना जाता है वह भी एक जीव की ही कोई अवस्था है । इसी प्रकार जीव धीरे-धीरे अपनी चेतनता के रहे-सहे अंश को छोड़ता हुआ एक दिन पूर्ण जड़ स्थिति में चला जाता है ।

जीवात्मा के उच्च श्रेणी विकास का प्रमाण है-जीवित ग्रहों में 'प्लाज्मा' की उपस्थिति । पृथ्वी के सभी जीवधारियों के शरीर ठोस और द्रव पदार्थों से बने हैं। इन्हीं की एक अवस्था है-गैस । एक पदार्थ का आयतन जितना सघन होगा वस्तु उतनी ही ठोस होगी पर जितना-जितना वह द्रव तथा गैस रूप में आती जाएगी उसका आयतन बढ़ता जाएगा । ठोस की शक्ति से गैस की शक्ति बड़ी होती है, पर गुणों की दृष्टि से गैस में भी ठोस के गुण रहते हैं । वैज्ञानिक अब यह भी मानने लगे हैं कि जीवन केवल ठोस स्थिति में ही नहीं द्रव व गैस की अवस्था में भी रह सकता है । वैज्ञानिकों को वह प्रमाण मिले हैं कि जब पृथ्वी तप्त तवे के समान जल रही थी तब भी एककोशीय जीव पृथ्वी पर उपलब्ध थे और अब एक नई शक्ति 'प्लाज्मा' के ज्ञान ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि यदि गैस स्थिति में जीवन रह सकता है तो प्लाज्मा में भी रह सकता है । प्लाज्मा 'प्राण-शक्ति' का वैज्ञानिक नाम है। इसे सूक्ष्म-शरीर या प्रकाश-शरीर कहा जाता है । विज्ञान के अनुसार प्लाज्मा कोई विशिष्ट वस्तु न होकर ठोस, द्रव तथा गैस की तरह ही पदार्थ की चौथी अवस्था है (हिन्दी डाइजेस्ट सन् १९६२ अप्रैल अंक पेज ६९) आकाश में चमकते हुये तारे प्लाज्मा ही हैं । यह प्लाज्मा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक प्रकार का ईंधन या आहार ही है। तारागण उसे किस प्रकार ग्रहण करके अपना जीवन धारण किये हुए हैं अभी तक वैज्ञानिक यह जानने में समर्थ नहीं हो पाये पर विशिष्ट तत्त्वों से प्लाज्मा का निर्माण करके उन्होंने यह सिद्ध अवश्य कर दिया है कि जिस प्रकार हमारे शरीरों में नाभिकीय द्रव्य की उपस्थिति से ही साइटोप्लाज्मा का निर्माण होता है उसी प्रकार सितारों में भी नाभिकीय गुण होने चाहिए। यदि ऐसा है तो फिर उन्हें भी जीवधारी ही मानना चाहिए जैसा कि भारतीय आर्ष-ग्रन्थों में सूर्य को आत्मा, चन्द्रमा-पृथ्वी आदि को भी देवता कहा है ।

प्लाज्मा अत्यन्त सूक्ष्म होने पर भी अत्यन्त शक्तिशाली पदार्थ है । एक पौण्ड नाइट्रोजन का, प्लाज्मा से एक इंजिन पूरे एक वर्ष तक चल सकता है । गैस को अत्यधिक गर्म करने से इलेक्ट्रान तीव्र गति करते हैं और एक परमाणु का इलेक्ट्रान टूट कर अलग हो जाता है व अन्य परमाणु आयन बन जाता है । यह आयनीभूत गैस ही प्लाज्मा कहलाती है । आजकल विद्युत तारों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थानों पर ले जाई जाती है, पर प्लाज्मा के बारे में ज्ञान से वैज्ञानिक यह मानने लगे हैं कि यह विज्ञान जब पूरी तरह विकसित हो जाएगा तो तारों के झंझट से मुक्ति मिल जायेगी तब केवल चुम्बकीय आकर्षण द्वारा कहीं भी शक्ति पैदा कर ली जा सकेगी ।

प्लाज्मा एक प्रकार का प्रकाश और तापयुक्त प्राण ही है । मनुष्य शरीर से लेकर अन्य चेतना-धारियों में वही शक्ति जीवन का आधार है। इसी शक्ति के पतन से मनुष्य लघुतम बनता है, तो इसी के विकास से वह सूर्य जैसी महान् गुणों वाली चेतना में अपना विकास करके विराट् बन जाता है । इसी का नाम विद्या है। इस विद्या की प्राप्ति के लिये ही भारतीय आचार्यों ने अनेक साधनाएँ विकसित की हैं । प्लाज्मा की शक्ति से ही अनुमान किया जा सकता है कि आत्म-शक्ति के सूक्ष्म या प्रकाशीय विकास द्वारा मनुष्य कितना समर्थ व शक्तिशाली बन सकता है, जबकि आज का विज्ञान केवल जड़ की व्याख्या और उसी के यांत्रिक नियंत्रण में लगा है यही अविद्या है । अविद्या को हटाकर विद्या की प्राप्ति कर सकें तो शास्त्रकार के कथन के अनुसार अंगुष्ठ मात्र प्राणी सूर्य जैसा विराट् बन सकता है ।

अचेतन कुछ भी नहीं-जड़ भी चेतन

१९३१ तक वैज्ञानिक इतना ही जान सके थे कि एक अणु के नाभिक (न्यूक्लियस) में 'प्रोटोन' और न्यूट्रोन परमाणु होते हैं और उसके किनारे कई कक्षाओं में इलेक्ट्रोन चक्कर काटते रहते हैं । 'प्रोटोन' धन विद्युत्त कण और 'इलेक्ट्रोन' ऋण विद्युत कण होते हैं । न्यूट्रोन में भार होता है आवेश नहीं होता ।

लेकिन अगले वर्ष १९३२ में ही डा० सी० डी० एण्डरसन नामक वैज्ञानिक ने लोगों को यह कहकर चौंका दिया कि 'इलेक्ट्रान' ऋण आवेश कण ही नहीं होता धन विद्युत आवेश वाले 'इलेक्ट्रान' भी होते हैं । इनका नाम उसने 'पाजिट्रान' रखा । अभी तक पाजिट्रान के स्वरूप की कोई व्याख्या नहीं की गई, उसका अस्तित्व केवल मात्र 'ज्ञान' है ।

पाजिट्रान की खोज के ठीक २३ वर्ष बाद, १९५५ में एमिलियो सीगर नामक वैज्ञानिक ने एक ऐसे 'प्रोटान' की खोज की जो ऋण विद्युत आवेश युक्त था। इसका नाम 'एन्ट्री-प्रोटान' रखा गया । पर इसका आकार-प्रकार क्या है ? इस प्रश्न पर पुनः वही उत्तर-एकमात्र 'ज्ञान' । इस खोज से एक वर्ष पीछे 'सीगर' ने ही 'एण्टी-न्यूट्रोन' की भी खोज कर ली । वह भी केवल प्रभाव से जाना जा सका, यदि प्रभाव में वह 'न्यूट्रोन' से ठीक विपरीत नहीं होता, शायद समझ में भी नहीं आता । इस प्रकार पहली बार पता चला कि प्रत्येक अणु में पदार्थ ही नहीं अपदार्थ भी विद्यमान है । हर वस्तु के साथ प्रेत की तरह उसकी कोई एक सूक्ष्मतम छाया भी रहती है । जिसका अस्तित्व है, पर आकार नहीं । जब पदार्थ उसके संसर्ग में आता है तो उससे तत्काल 'गामा' किरण निकलती और उसकी उपस्थिति की सूचना देती है, पर अ-पदार्थ का आज तक कोई भी अस्तित्व पृथ्वी में नहीं पाया गया भले ही वह कहीं आकाश में ही क्यों न रहता हो ।

यह उपलब्धि अपना ध्यान बरबस ही योग-वासिष्ठ के उस कथन की ओर खींच ले जाती है जिसमें बताया है कि-

एतच्चित्तशरीरत्वं विद्धि सर्वगतोदयम् ।

-३/४०/२०

हे राम ! संसार की प्रत्येक वस्तु में चेतना (मन) ऐसे विद्यमान है जैसे-

यथा बीजेषु पुष्पादि मृदो राशौ घटो यथा ।

-६/१/१०/१९

बीज के भीतर पुष्प और मिट्टी में घड़ा ।

द्रव्येषु द्रव्यभावेन काठिन्येनेतरेषु च ।

-६/१/१०/२४

पदार्थ में पदार्थ भाव और कड़ी वस्तुओं में कठोरता के रूप में यह मन ही व्याप्त है ।

उसके स्वरूप का वर्णन इस प्रकार है ।

युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिंगम् ।।

-न्याय दर्शन १/१/१६

अर्थात् जिससे एक काल में दो पदार्थों का ग्रहण ज्ञान नहीं होता, केवल एक ही वस्तु ज्ञान में आती है वह 'मन' है । पदार्थ में चेतना ही मन है ऐसा कह सकते हैं ।

मन ही स्थूल पदार्थों के रूप में और वही सूक्ष्म हो जाता है तो सूक्ष्मतम तत्त्वों का वेधन करता हुआ आत्मा और परमात्मा को जान लेता है । इसीलिये मन को स्थूल पदार्थों से हटाकर प्रकाश रूप में ध्यान करने का शास्त्रीय आदेश है, क्योंकि प्रकाश में सर्वगमन, सर्वव्यापकता, शक्ति और तेजस्विता के सब गुण हैं । ईश्वरीय प्रकाश इन सबसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सूक्ष्म और शक्तिशाली है इसलिये ईश्वर तत्त्व के ध्यान की महत्ता सबसे अधिक बताई गई है ।

उपरोक्त तथ्य भी अब विज्ञान की कसौटी पर सत्य उतरते जा रहे हैं । हीरा, पन्ना, पुखराज आदि ठोस पदार्थ हैं । इनके अणुओं की गति ९६० मील प्रति घण्टा ही है, जबकि इलेक्ट्रॉन अपनी कक्षा में १३०० मील प्रति सेकण्ड की गति से चक्कर काटते हैं । गैसों तथा कुछ अन्य सूक्ष्म अणुओं वाले पदार्थों के अणुओं का कम्पन इतना तीव्र होता है कि दो अणुओं के बीच की दूरी १/३००००० इञ्च होने पर भी वह एक सेकण्ड में ६ अरब बार टक्कर खा जाते हैं । प्रकाश एक सेकेण्ड में १८६२०० मील की गति से छिटकता है। यह सब इस बात के प्रतीक हैं-कि जो जितना सूक्ष्म और हलका है, वह उतना ही चेतन और गतिशील है ।

पदार्थों का यह गतिशील भाग ही अपदार्थ, मन या चेतना है, वह जितना स्थूल होगा उतनी ही छोटी सीमा में प्रभावशील होगा, जबकि अधिक सूक्ष्म तत्त्व की चेतना या गति इतनी तक हो सकती है कि वह समय, ब्रह्माण्ड, गति और कारण नियमों (टाइम, स्पेस, मोशन तथा काजेशन) को भी पीछे छोड़कर प्रतिपल सारे ब्रह्माण्ड का परिभ्रमण कर सकने में समर्थ हो, ऐसे तत्त्व की ही कल्पना ईश्वर के रूप में की गई है । विज्ञान अभी उस तक पहुँचने में देर कर रहा है, क्योंकि वह भावना और ज्ञान का विषय होने के कारण मशीनों की पकड़ में नहीं आ पाता ।

सृष्टि के अणु-अणु में सक्रिय परमात्म-सत्ता

भौतिकतावाद ने अपनी भोगवादी पद्धति में ईश्वर को बाधा समझकर उसे सर्वथा अस्वीकार करने का हठ-सा बना लिया । अपने पक्ष में तर्क व प्रमाण जुटाने के लिए विज्ञान की वैशाखी का सहारा लिया । यह सहारा तभी तक रहा जब तक कि वैज्ञानिकों का मस्तिष्क अपरिपक्व रहा । इस अपरिपक्वता के कारण ही यह भाव उपजा कि प्रकृति स्व:संचालित है, न कोई उसका स्रजेता है न ही संचालक । इसमें कर्ता के रूप में ईश्वर एक आरोपित नाम है जिसका कहीं न तो कोई अस्तित्त्व है न विश्व-ब्रह्माण्ड से इसकी गतिविधि का कोई सम्बन्ध ।

पिछले दिनों विज्ञान के क्षेत्र में हुई शोधों ने इस सम्बन्ध में एक नवीन दृष्टि प्रदान की है । इस संन्दर्भ में पार्टिकल फिजिक्स में हाइजनवर्ग का 'अनिश्चितता का सिद्धान्त' बहुचर्चित रहा है । इसके अनुसार एक ही समय में एक ही तरह के कण किस तरह का व्यवहार करेंगे, यह नहीं जाना जा सकता । कण विशेष की गति एवं परिस्थिति के सम्बन्ध में कुछ भी कह पाना सम्भव नहीं । मात्र अनुमान भर लगाया जा सकता है और कोई अनुमान सही निकले यह आवश्यक भी नहीं । इस सम्बन्ध में अनेक प्रयोग किये गये कि किन परिस्थितियों में कौन से कण किस तरह व्यवहार करते हैं ? एक ही परिस्थिति में एक ही प्रक्रिया से, एक ही तरह के कणों का हजारों बार अध्ययन किया गया । किन्तु यह जानकर हैरानी हुई कि प्रत्येक बार हर कण का व्यवहार अनुमान से भिन्न था । इस आधार पर यह घोषणा करनी पड़ी कि पदार्थ की जैसी परिभाषा की जाती रही है वैसा कोई पदार्थ इस जगत में है ही नहीं । दूसरे शब्दों में यह घोषणा की गई कि पदार्थ मर गया । पहले कभी नास्तिकवादियों में अग्रणी फ्रेडिक नीत्शे ने घोषणा की थी कि 'ईश्वर मर गया' पर अब विज्ञान को यह घोषणा करनी पड़ रही है कि 'पदार्थ मर गया' विज्ञान-विदों को यह स्वीकार करना पड़ रहा है कि पदार्थ विज्ञान से बाहर भी एक विशाल, दुरूह एवं अज्ञात क्षेत्र रह जाता है जिसके अन्वेषण के लिए अभी तक कोई उपाय नहीं खोजा जा सका । पर यही क्षेत्र विज्ञान की सभी ज्ञात धाराओं का मूल स्रोत एवं नियंत्रणकर्ता है ।

विज्ञानवेत्ता मैकब्राइट का कथन है कि विश्व में परोक्ष में किसी ऐसी चेतन-सत्ता के होने की पूरी और निश्चित सम्भावना है जो ज्ञानयुक्त और इच्छायुक्त हो । उसी के कारण विश्व की गतिविधियाँ संचालित हो रही हैं । डॉ० मोर्डेल का मत है कि अणु और पदार्थ के सूक्ष्मतम कणों के इस विचित्र व्यवहार से यही सिद्ध होता है कि कोई चेतन-शक्ति है अवश्य, जिसके प्रभाव से ही अणु अथवा कणों का स्वभाव पकड़ में नहीं आता ।

विज्ञानविदों के लिए अविज्ञेय सत्ता ही ऋषि के द्वारा परमात्म-चेतना के रूप में जानी गई है । यह विश्व उसी चेतना से उत्पन्न हुआ है । उसी की सत्ता में स्थित है, उसी में मिलता-घुलता जा रहा है । जड़-चेतन की सम्पूर्ण सक्रियता का आधार वह परम-प्रभु है, जो सृष्टि की प्रत्येक कलाकृति में ओतप्रोत है । न तो कुछ परमात्मा से भिन्न है और न परमात्मा ही किसी से पृथक् है ।

पवन, अग्नि, जल, मृत्तिका चार व्यक्त एवं आकाश रूप एक अव्यक्त इन पाँच महाभूतों से विश्व विनिर्मित हुआ है। यह सभी पदार्थ अपने में जड़ और निर्जीव हैं । किन्तु उनमें एक जीवन, एक सक्रियता, सजीवता दृश्यमान होती है, उससे ही ईश्वरीय चेतना-शक्ति की उपस्थिति का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है । हवा की गतिशीलता, अग्नि की तेजस्विता, जल की तरलता, मिट्टी की उर्वरता का गुण उस सर्वशक्तिमान परमात्मा से ही सम्भव है अन्यथा किसी जड़ अथवा निर्जीव पदार्थ में सक्रियता की सम्भावना कहाँ ? अणु अथवा चेतनशील प्राण के रूप में विद्यमान परमात्मा की शक्ति का जब इन पदार्थों से तिरोधान हो जाता है तो ऐसी स्थिति में कोई भी पदार्थ सक्रियता का प्रमाण नहीं दे पाता ।

सृष्टि के किसी भी पदार्थ में अपनी कोई क्षमता अथवा अपना कोई गुण नहीं है । यह सब केवल उस चेतन-स्वरूप परमात्मा का ही चमत्कार है जो प्रत्येक अणु के गुण एवं सक्रियता के रूप में दृष्टिगोचर होता है । ऐसे सर्वव्यापक, सर्वसमर्थ चेतन-शक्ति के अस्तित्त्व से इनकार करना अपनी अज्ञानता का परिचय देना है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परमात्म-सत्ता की इच्छाशक्ति-आकाश-तत्त्व

आकाश शून्य है पर पोला नहीं । भारतीय तत्त्वदर्शन (फिलासफी) वैदिक काल से ही मानता और जानता रहा कि आकाश एक महत्त्वपूर्ण शक्तिशाली तत्त्व है । शेष चार तत्त्व वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी क्रमशः आकाश के ही स्थूलतर रूप हैं । आकाश-तत्त्व ईश्वर या आत्मा की निकटता की दृष्टि से सर्वप्रथम है, इसलिये उसकी शक्ति, ध्यान, फल भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं । योग - चूड़ामण्युपनिषद में कहा गया है-

तस्माज्जाता परा शक्तिः स्वयंज्योतिरात्मिका। आत्मन आकाशः सम्भूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । तेषां मनुष्यादीनां पंचभूतसमवायः शरीरम् ।

"ब्रह्म से स्वयं प्रकाशरूप आत्मा की उत्पत्ति हुई । आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई । इन पाँचों तत्त्वों से मिलकर ही मनुष्य-शरीर की रचना हुई है ।" यह पाँच तत्त्व ही मिलकर शरीर के स्थूल और सूक्ष्म अवयवों का निर्माण करते हैं । इन तत्त्वों की स्थिति ही क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म होती गई है । पृथ्वी से शरीर का दिखाई देने वाला भाग बनता है । जल से शरीर का विकास होता है । अग्नि से दृश्य की अनुभूति होती है । वायु से शरीर में प्राणों का संचार होता है। गति एवं चेतनता आती है । आकाश-तत्त्व इन सब से सूक्ष्म, अदृश्य एवं नियन्त्रक है । विचार, भावनाएँ और विज्ञान उसी से प्रादर्भूत होता है । शरीर के पोले भाग में भी यह आकाश-तत्त्व ही भरा हुआ है । उसकी शुद्धि से विचार और भावनाएँ ऊर्ध्वगामी होती हैं । यह पाँच कोश हैं, पाँच महातत्त्व हैं इनसे ही शरीर का निर्माण हुआ है और बाहर जो कुछ दिखाई देता है उस संसार का विस्तार भी इनसे ही हुआ है । इन पाँच आवरणों के बीच में ब्रह्म छुपा बैठा है, ऐसी भारतीय तत्त्वदर्शन की मीमांसा है ।

एक समय आया जब पाश्चात्य सभ्यतावादी और प्रारम्भिक स्तर के वैज्ञानिकों ने इस तत्त्व-दर्शन को अस्वीकार ही नहीं कर दिया वरन् उसका उपहास भी उड़ाया । लोगों ने कहा कि ग्रह-उपग्रहों के बीच में ब्रह्माण्ड का करोड़ों-करोड़ मील क्षेत्र पोला नहीं तो और क्या है । वह तो स्पष्ट ही दिखाई दे रहा है । जो वस्तु है ही नहीं वह शरीर रचना में भाग भी कैसे ले सकती है । इस तरह की बातों से भारतीय तत्त्वदर्शन को वाग्जाल कहकर उसे सब तरफ से अपदस्थ करने का प्रयत्न किया गया ।

इस भ्रान्त धारणा पर प्रहार सर्वप्रथम १२ दिसम्बर, १९०१ में रेडियो संसार के अन्वेषणकर्त्ता मारकोनी ने किया । उन्होंने इंग्लैण्ड के पोल्डू नामक स्थान में एक अल्पविकसित संप्रेषण यन्त्र (ट्रान्समीटर) लगाया और एक संग्राह्य यन्त्र (रिसेप्शन) लेकर अमेरिका के न्यूफाउण्डलैण्ड पहुँचे । उनका कहना था कि वायु-मण्डल से भी ऊँचाई पर भी कोई ऐसी व्यवस्था है जो रेडियो तरंगों को परावर्तित कर सकती है । इस कल्पना का अन्य वैज्ञानिकों ने ठीक उसी तरह उपहास किया जिस तरह भारतीय तत्त्व-दर्शन को ठुकराने का प्रयत्न किया गया था, तब रेडियो-संचार व्यवस्था का स्थापना काल था । मारकोनी के पास कोई विकसित यन्त्र न थे । एरियल का तब विकास नहीं हुआ था, इसलिये इंग्लैण्ड से प्रेरित होने वाले संकेतों को पकड़ने के लिये धातु के तार से उड़ने वाली पतंग को एरियल बनाया गया । उस पतंग को ४०० फीट ऊँचा उड़ाकर संग्राह्य यन्त्र (रिसीवर) से उसका सम्बन्ध जोड़ दिया गया । ठीक १२।। बजे मारकोनी ने ही नहीं अनेक वैज्ञानिकों ने भी इंग्लैण्ड से प्रसारित होने वाले तीन बिन्दुओं के संकेत सुने तो लोगों को मारकोनी के प्रमाणों के सम्मुख सिर झुकाना पड़ा और इस तरह पहली बार विश्व के बुद्धिमान लोगों ने यह माना कि वायुमण्डल के अतिरिक्त भी कोई शक्ति तरंगें विद्यमान हैं । आकाश-तत्त्व की जानकारी का यह श्रीगणेश मात्र था ।

सूर्य के ११ वर्षीय चक्र के अनुसार सन् १८७२ और १८८९ में पृथ्वी पर दो भयंकर चुम्बकीय तूफान (मैगनेटिक स्टार्मस) आये थे तब भी डा० स्टुअर्ट और डॉ० शूस्टर ने इस तरह का प्रतिपादन किया था, पर वह प्रामाणिकता के अभाव में सिद्ध न किया जा सका, पर मारकोनी के प्रयोग ने वैज्ञानिक अनुसंधान के लिये एक नई दिशा दी । इसके बाद इंग्लैण्ड के हैवीसाइड और अमरीका के वैज्ञानिक डा० कैनेली ने इस विज्ञान को आगे बढ़ाया और अनेक प्रयोगों से यह सिद्ध किया कि आकाश में विद्युत कणों की परतें हैं। इन्हें उन्होंने अपने नाम पर 'कैनेली हैवो साइड परत' का नाम दिया । इसके बाद डॉ० ब्रीट ट्यूब और डा० एडवर्ड एपल्टन आदि ने इस खोज को जारी रख कर यह सिद्ध किया है कि आकाश में विद्युत कणों की ऐसी अनेक परतें हैं । इन अनेक परतों को 'अयनमण्डल' (आइनोस्फियर) के नाम से पुकारा गया और तब से आइनोस्फियर सम्बन्धी एक स्वतन्त्र साइन्स बन गई है ।

आकाश-तत्त्व की व्याख्या करते हुये महर्षि वशिष्ठ लिखते हैं-

चित्ताकाशं चिदाकाशमाकाशं च तृतीयकम् ।
द्वाभ्यां शून्यतरं विद्धि चिदाकाशं वरानने ।।
देशदेशान्तरप्राप्ती संविदो मध्यमेव यत् ।
निमिषेणं चिदाकाशं तद्विद्धि वरवर्णिनि ।।
तस्मिन्निरन्तनिः शेषसंकल्पास्थितिमेधि चेत् ।
सर्वात्मकं पदं तत्वं तदाप्नोष्यशयम् ।।
चित्ताकाशंचिदाकाशमाकाश च तृतीयकम् ।
विद्येतत्त्रयमेक त्वमविद्याभ्रमभावशात् ।।

-योगवासिष्ठ ३/१७/१०,१२,१३,१९

अर्थात्-आकाश नाम का व्यापक तत्त्व आकाश, चित्ताकाश और चिदाकाश तीन रूपों में सर्वत्र व्याप्त है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

चिदाकाश जो ज्ञान का आश्रय है सबसे सूक्ष्म है । एक विषय से दूसरे विषय की प्राप्ति के मध्य में क्षणभर का जो अवकाश अनुभव में आता है वह चिदाकाश ही है । केवल वही संकल्परहित है उसमें स्थिर हो जाने से आत्मा परम-तत्त्व या परमपद की प्राप्ति होती है । यह तीनों आकाश एक ही तत्त्व के त्रिगुणात्मक रूप हैं ।

आकाश-तत्त्व के उपरोक्त विश्लेषण से यह पता चलता है कि ईश्वरीय सत्ता के सबसे समीप तत्त्व आकाश ही है। उसमें विराट् जगत् की सर्वव्यापकता समाहित है । अयन-मण्डल की खोजों के परिणामस्वरूप जो निष्कर्ष सामने आये हैं उनसे भी ऐसे ही अनेक रहस्यों का उद्घाटन होता चला आ रहा है । अयन-मण्डल बृहस्पति पर वलय की भाँति पृथ्वी को सभी ओर से घेरे हुए हैं या यों कहें हम और हमारी पृथ्वी आकाश में स्थित हैं । इस अयन-मण्डल (आयनोस्फियर) में विद्युत कणों की अनेक नियमित-अनियमित परतें हैं । वैज्ञानिकों के अनुसार भी उनमें से तीन प्रमुख हैं । इन परतों को एपल्टन ने 'ई' 'एफ' और 'डी' परतों का नाम दिया । धरती की ऊँचाई पर जहाँ वायुमण्डल का दबाव कम है वहाँ विचरण करने वाले अणु और परमाणु अपने ऋणाणु (इलेक्ट्रोन) खो देते हैं । इलेक्ट्रोनों को तोड़ने की यह क्रिया सूर्य सम्पन्न करता है यह क्रियाशीलता जिस सीमा तक तीव्र होती है, अयनमण्डल उतनी ही तीव्रता से पृथ्वी में जलवायु आदि का नियन्त्रण करता है । यही नहीं वह लोगों के मन, हृदय और गुणों को भी प्रभावित करता है । यह कार्य वह केन्द्रक शक्ति करती है जो इलेक्ट्रोन के खो जाने के पश्चात् शेष रहती है । इसी से पता चलता है कि केन्द्रक कोई मनोमय शक्ति है ।

एक निश्चित सीमा के बाद इन कणों की तीव्रता घटने लगती है । वायु-मण्डल का जितना दबाव बढ़ता जाता है अयन-मण्डल का सूक्ष्म प्रभाव घटता जाता है और पृथ्वी पर पहुँचते-पहुँचते उनकी सक्रियता में पृथ्वी के धूल और गैसें आदि के कण भी मिल जाते हैं, जिससे उनका प्रभाव कम होने लगता है । अधिक ऊँचाई पर अधिक स्वच्छ वायु से स्वास्थ्य पर जो प्रभाव पड़ा है उससे भी अधिक महत्त्व इन सूक्ष्म-कणों द्वारा चित को प्रसन्नता देने का है । हम जितना ऊपर उठते हैं उतना ही हमारी प्रसन्नता और अन्य गुण विकसित होते हैं । यह आकाश-तत्त्व की ही सूक्ष्म सक्रियता है ।

विज्ञान की यह खोज प्रारम्भिक स्तर की है । अब यह निरन्तर गहराई की ओर बढ़ रही है । कुछ समय पूर्व तक अयन-मण्डल को सूर्य से उत्सर्जित होने वाले कणों का ही आश्रय मानते थे किन्तु हाल ही में गैलेक्सी के केन्द्रीय क्षेत्र (विशाल तारा) विश्व जिसमें सूर्य जैसे कोई १० खरब और अब तक सिद्धान्ततः ज्ञात कुल तारों की संख्या १०× २४ (दस घात चौबीस) है । इस विस्तार को गैलक्सी कहते हैं । इसका अध्ययन करने वाले कुछ प्रमुख ज्योतिषी भौतिकशास्त्रियों (एस्ट्राफिजिसिस्ट्स) ने यह बताया कि इस केन्द्रीय क्षेत्र में कणों का विघटन तेजी से होता है । यह कण जो दिखाई नहीं देते वह अनेक तारों से निकलकर आते हैं और प्लाज्मा के रूप में उनसे अलग होकर पोला दीखने वाले क्षेत्र में अनेक प्रकार के क्षेत्र बनाते हुए फैल जाते हैं । विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र और गुरुत्वाकर्षण जैसी महत्वपूर्ण क्रियाएँ उसी से सम्पन्न होती हैं । यह आयनीकरण कृत (आइनोस्फेरिक प्लाज्मा) ही सारे सौर-जगत में विचरण करता रहता है । लाखों वर्षों से विचरण करते-करते यह कण भूल गये हैं कि वे कहाँ से आये हैं और इस तरह विभिन्न विचारों-प्रक्रियाओं, घटनाओं-दृश्यों वाला हलचलपूर्ण जगत आ गया है । यह पदार्थ निरन्तर हलचल में रहता है । ये भूले हुए कण ही कास्मिक किरणों के रूप में पृथ्वी की ओर भी आते रहते हैं । इन कणों में उच्च गति वाले प्रोटॉन, उन तत्त्वों के परमाणु आदि होते हैं, उनमें बहुत अधिक ऊर्जा होती है । इसलिये वह जैसे ही वायुमण्डल में प्रवेश करते हैं यहाँ हलचल पैदा कर देते हैं । उससे फैले हुये वायु शावरों (एक्स्टेन्डेट एअर शावर्स) का निर्माण होता है । इस तरह हम देखते हैं कि आकाश जो अनेक गुण, प्रकृति वाले कणों का समुद्र-सा है वही पृथ्वी की स्थूल हलचल का कारण है ।

योग-ग्रन्थों में जो वर्णन मिलते हैं उनसे पता चलता है कि उन्होंने आकाश-तत्त्व का ज्ञान उसी प्रकार प्राप्त किया था जिस तरह आज के वैज्ञानिकों ने परमाणु का । आकाश, परमाणु से भी सूक्ष्म है इसलिये उस शक्ति का कोई पारावार नहीं । योगकोडल्योपनिषद् में षट्चक्रों का वर्णन करते हुए बताया है कि शरीर में आकाश-तत्त्व का प्रतिनिधि चक्र विशुद्धाख्य कण्ठ में स्थित है । धूम्रवर्ण का एक तत्त्व उसमें भरा है उसका ध्यान करने से चित्त-शान्ति, त्रिकाल दर्शन, दीर्घ-जीवन, तेजस्विता एवं सर्वहित-परायणता का आत्मा में विकास होता है । योग-सूत्र (३-१७) में उससे 'भूतरुत ज्ञानम्' अर्थात् आकाश की तन्मात्रा पर अधिकार हो जाने पर प्राणिमात्र की भाषा समझ लेने की शक्ति आने का उल्लेख है । यह भाषा चाहे कोई जर्मनी बोले, अँग्रेजी, उड़िया या तमिल । शब्द का मूल भाव और भावनाओं के स्पन्दन अपनी-अपनी तरह के होते हैं शब्द तो उन्हें केवल व्यक्त करते हैं । आकाश तत्त्व की संसिद्धि से स्थूल शब्दों को न जानने पर भी उनका अर्थ ज्यों का त्यों समझ लिया जाता है । श्रोत्राकाशयोः संयमाद् दिव्यं श्रोतम् (भवति)-योगसूत्र (३-४१) में इसी तत्त्वदर्शन का संकेत किया गया है । जिन दिव्य-ध्वनियों को आज तक विज्ञान नहीं पकड़ सका आकाश-तत्त्व के वशित्व द्वारा उन्हें भारतीय योगियों ने करोड़ों वर्ष पूर्व ही जान लिया था । दूर से दूर की आवाज को भी वे परस्पर वार्तालाप की तरह सुन सकते थे । यह सब आकाश स्थित ज्ञानवाहक सूत्रों का मनुष्य-शरीर स्थित ज्ञानवाहक सूत्रों में परस्पर सम्बन्ध के द्वारा हो सम्भव होता था । ऐसे अनेक तन्मात्रा वाले परमाणु आकाश में भरे पड़े हैं उनका ज्ञान अब वैज्ञानिकों को भी हो चला है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कोई ३२ वर्ष पूर्व दो वैज्ञानिकों कोक्राफ्ट और वाल्टन ने एक एक्सोलरेटर का निर्माण कर यह बताया कि उससे दस लाख इलेक्ट्रान वोल्ट की ऊर्जा (विद्युत +प्रकाश और ताप) के कण उत्पन्न किये जा सकते हैं । इसी क्रम में सायक्लोट्रान और बीटाट्रान का निर्माण हुआ उनसे डेढ़ करोड़ इलेक्ट्रोन वोल्ट की ऊर्जा वाले कण उत्पन्न किये जा सकते हैं । इतनी शक्ति एक्सीलरेटर ही पृथ्वी की मोटरों से लेकर विशाल अन्तरिक्ष यानों को ढोकर कहीं का कहीं पहुँचा देते हैं । बाद में रूस और अमेरिका के वैज्ञानिकों ने अनेक अनुसन्धानों के आधार पर बताया कि प्रकृति में अपने आप बहुत ऊर्जा वाले कण विद्यमान हैं । उन्होंने 'कास्मिक' किरणों में पाये जाने वाले 'मेसान हायपरान' आदि अस्थिर कणों को पकड़कर उनकी प्रकृति और गुणों का प्रयोगशाला में अध्ययन कर बताया कि उनमें इतनी अधिक ऊर्जा है जितनी एक्सीलरेटरों के द्वारा कभी पैदा भी नहीं की जा सकती । वायु-शावरों (एअरशावर्स) के विस्तृत अध्ययन के बाद यह पाया कि उनमें लाखों-करोड़ों ऐसे उच्च ऊर्जा वाले कण विद्यमान हैं जिनकी हजारवें हिस्से की ही शक्ति से अन्तरिक्ष यान जैसे विशाल भार को चन्द क्षणों में ही किसी भी ग्रह-नक्षत्रों तक पहुँचाया जा सकता है । ऐसे कणों में इलेक्ट्रान और पाजिट्रान कण भी सम्मिलित हैं । जब ब्रह्माण्ड किरणें (कास्मिक रेज) वायुमण्डल पर पहुँचती हैं तो उन्हीं के द्वारा अनेक प्रकार के भौतिक पदार्थों की रचना सम्भव होती है । उन भौतिक पदार्थों की मानसिक प्रक्रिया का भी अध्ययन अब सम्भव हो गया है और वैज्ञानिक यह विश्वास करने लगे हैं कि स्थूल पदार्थों और शरीर के कणों में भी वह तत्त्व बीज रूप से विद्यमान हैं जो सृष्टि के आविर्भाव काल से ब्रह्माण्ड के अस्तित्त्व में है । विचारों की तरंगें वही पैदा करते हैं । अभी तो नहीं पर एक दिन निश्चित रूप से वैज्ञानिक यह मानने के लिये विवश होंगे कि यह विचार-तरंगें निरर्थक नहीं वरन् किसी संकल्प और गणितीय नियमों में सधे हुए होते हैं । तात्पर्य यह है कि ब्रह्माण्ड में देवताओं या ईश्वर जैसी चेतन-शक्तियाँ विद्यमान हैं और उनसे मानसिक सम्पर्क स्थापित कर अनेक तरह की सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं ।

आकाश में ऐसी तरंगें उत्पन्न करने वाले कण इतने सूक्ष्म होते हैं कि उनका जीवन काल २.२×१०-६ सेकिण्ड का ही होता है अर्थात् अस्तित्त्व में कब आते हैं और कब नष्ट हो जाते हैं इसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता । यह कण धन और ऋण दोनों आवेशों वाले होते हैं । उनकी संगति, विचार और भावनाओं के त्वरित निर्माण से स्पष्ट मेल खा जाती हैं । हम जिस देवता का ध्यान धारण करते हैं उसी तरह की क्षमताओं से सम्पन्न होने का रहस्य अपने अन्दर इस तरह के अत्यन्त सूक्ष्म करोड़ों टन वाली ऊर्जा के कणों का संचय ही है । जो शक्तियाँ जितनी बलवती होती हैं वह उतनी ही अधिक सिद्धि और सामर्थ्य अपने उपासक को दे जाती हैं । आत्मा और परमात्मा की शक्तियाँ इस तरह की मानी गई हैं । यह वस्तुतः नाभिकीय चेतनाएँ (न्यूक्लियर एक्टिविटीज) हैं । इनका कारण क्यू-मेसान, न्यूट्रिनो और पाई मेसान जैसे अत्यन्त सूक्ष्म कणों में से कोई हो सकते हैं । गैलेक्सी के चुम्बकीय क्षेत्र भी इन पर प्रभाव नहीं डाल सकते । इनकी क्रियाएँ बड़ी स्वतन्त्र हैं । आज-कल आस्ट्रेलिया के वैज्ञानिक इन आकाश-कणों की बड़ी तत्परतापूर्वक खोज करने में संलग्न हैं ।

बम्बई के टाटा इन्स्टीट्यूट के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० प्राइस ने अपनी हाल की खोजों में यह पता लगाया कि ब्रह्माण्ड-किरणों और अन्य ऊर्ध्वसित कण जब ठोस पदार्थों से गुजरते हैं तो वे उसमें अपना स्थायी प्रभाव छोड़ जाते हैं । इस छोड़े हुए प्रभाव को अब सूक्ष्मदर्शी यन्त्रों से देखा जाना सम्भव हो गया है । डॉ० प्राइस का कहना है कि जड़-पदार्थों में करोड़ों वर्ष पूर्व से विद्यमान इन चेतन किरणों का प्रभाव अभी भी विद्यमान है । उसके आधार पर कहीं भी बैठकर ब्रह्माण्ड में हो चुकी या अब जो हो रही है और सम्भव हुआ तो आगे करोड़ों वर्ष तक घटित होने वाली घटनाओं का दृश्य देखा जा सकेगा । यह स्थिति त्रिकाल दर्शन की नहीं तो और क्या होगी ? उसी बात को आकाश-तत्त्व से प्राप्त करने की बात भारतीय तत्त्ववेत्ता कहते हैं तो उससे इनकार क्यों किया जाता है ? यह ब्रह्माण्ड, किरणें भी कोई अधिक नहीं हैं । 'जिस तरह आकाश में तीन ही प्रकार के सूक्ष्म कण (ऊपर बताये गये) पाये जाते हैं उसी प्रकार इस तरह घिर प्रभाव वाली ब्रह्माण्ड किरणों की संख्या बहुत थोड़ी है, यह बात डॉ० प्राइस भी मानते हैं ।

विज्ञान की गहराई की तरह आकाश की गहराई भी अनन्त है, उसकी शक्तियाँ अनन्त हैं, सिद्धियाँ अनन्त हैं, अभी तक उनका कोई वैज्ञानिक उपयोग सम्भव नहीं हुआ किन्तु इनके अध्ययन से मानव प्रकृति के आन्तरिक गूढ़तम रहस्यों में प्रवेश कर सकेगा । इनके अध्ययन से एक ओर तो माइक्रोकोस्म के महत्त्वपूर्ण गुणों पर प्रकाश पड़ेगा तथा दूसरी ओर वायु-शावरों का अध्ययन हमारी गैलेक्सी में तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में होने वाली अद्भुत माइक्रोकोस्म घटनाओं को समझने में सहायक होगा ।

आकाश इन उच्च ऊर्जा और अदृश्य गुणों वाले सूक्ष्म कणों का पुंज है । उस तत्त्व से मानसिक सम्बन्ध जोड़कर ही भारतीय तत्त्वदर्शियों ने वह शक्तियाँ, सिद्धियाँ और सामर्थ्य विकसित की है जो आज के वैज्ञानिकों के लिये सम्भावनाएँ मात्र है । भारतीय तत्त्वदर्शन के इन अनुभवों का आधार लिया जा सके तो संसार के सभी मनुष्य उन लाभों को सुगमता से प्राप्त कर सकेंगे जो विज्ञान के द्वारा बहुत लम्बे समय के बाद कुछ साधन-सम्पन्न लोगों को ही मिल सकेंगे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दृश्य आयामों से परे जीवन जीकर तो देखें

दृश्यमान स्थूल आयामों के अतिरिक्त दिग्-काल के बोध रूप में एक अतिरिक्त अविज्ञात आयाम भी होता है । इसकी जानकारी जब वैज्ञानिकों को इस सदी के प्रारम्भिक दशकों में हुई तो उससे न केवल ब्रह्माण्ड भौतिकी अपितु मानवी काया एवं मन सम्बन्धी भी अनेक रहस्यमयी जानकारियाँ उभरकर सामने आईं । प्रारम्भ में छाया वैज्ञानिक चिन्तन को घेरा हुआ कुहासा, ज्यों ही क्रमशः मिटता चला जा रहा है, विचारणात्व बोध को मानवी स्वास्थ्य से जोड़ पाने में क्रमशः वैज्ञानिकों को सफलता हस्तगत होती जा रही है ।

जैसे हम देशकाल, कण-प्रतिकणों के विराट् साम्राज्य को साकार रूप नहीं दे सकते मात्र कल्पना ही कर पाते हैं ठीक उसी प्रकार मानवी मस्तिष्क के मनस् रूपी अदृश्य आयाम की, विचारों के स्वरूप की मात्र कल्पना भर ही कर पाते हैं । पिछले दिनों ''मनुष्य दीर्घायुष्य कैसे बने, इस मुद्दे पर स्वास्थ्यविज्ञानियों ने अनुसन्धान क्रमशः आरम्भ किया तो उन्हें भौतिकी के सापेक्षवाद सिद्धान्त को मानवी काया एवं चिन्तन पर आरोपित कर, इस माध्यम से विचारों के बोध-जगत का मनुष्य के जीवकोशों एवं चिन्तन-प्रवाह पर प्रभाव जानने की आवश्यकता जान पड़ी । इन चिकित्सा-विज्ञानियों का मत था कि बहुसंख्य तथाकथित शारीरिक रोगों की उत्पत्ति, जिनमें कैन्सर, हृदयाघात एवं उच्च रक्तचाप जैसी व्याधियों का बाहुल्य है, चौथे आयाम विचार-जगत में सर्वाधिक होती देखी जाती है । चाहे इनके कारणों हेतु आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियों, आहार-विहार का व्यतिक्रम परावलम्बी जीवनक्रम एवं प्रदूषणकारक तत्त्वों का वातावरण में बाहुल्य जैसों का नाम ले लिया जाय लेकिन ये सब मूलतः हर मनुष्य के चारों और छाये विचारमण्डल, जिसे डॉ० अर्नेस्ट बर्जन ने 'आयडियोस्फियर' नाम 'बायो' एवं 'आयनोस्फियर' की तरह दिया है में होने वाले असुन्तलन की ही प्रतिक्रिया है । इसे समझाने के लिये वे कहते हैं कि अच्छा होगा कि इस चिकित्सीय चतुर्थ आयाम की परिकल्पना को आइन्स्टीन के भौतिकी के बलों के एकीकरण व सापेक्षिकता सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में देखा जाय ।

दिककाल सम्बन्धी सापेक्षवाद के मनीषी आइन्स्टीन की वर्षों पुरानी मान्यता पर आज के वैज्ञानिक जितना गहराई से चिन्तन करते हैं, उन्हें अनेकानेक नई अनुभूतियाँ होती हैं, नये चिन्तन के आयाम खुलते चले जाते हैं । आइन्स्टीन की जन्म सदी पर पिछले दिनों प्रकाशित विज्ञान लेखक नीजेल काल्डर की पुस्तक 'आइन्स्टीन्स यूनीवर्स' में कई ऐसे अविज्ञात तथ्यों का उद्घाटन किया गया है, जो अभी तक सूत्र रूप में होने के कारण वैज्ञानिक समझ पाने में असफल रहे हैं । 'बायोलेन्ट यूनीवर्स' 'वेदर मशीन' 'स्पेसशीप ऑफ माइण्ड' 'द माइण्ड ऑफ मैन' एवं 'की टू यूनिवर्स' जैसी वेस्ट सेलर पराभौतिकी पर लिखी गयी पुस्तकों के लेखक डॉ० नीजेल काल्डर ने आइन्स्टीन को अतीन्द्रिय क्षमतासम्पन्न दैवी पुरुष माना है, जिन्होंने परोक्ष जगत की परिकल्पना करने तथा अदृश्य-जगत के अनुसन्धान हेतु मानवता को मार्ग सुझाया । न केवल ब्रह्माण्ड भौतिकी अपितु मानवी काया एवं मनस् के अविज्ञात आयामों को भी उन्होंने दृश्यमान रूप दिया, जिसे समझने का कार्य अब पैंसठ वर्ष बाद सम्पन्न हो रहा है ।

सापेक्षवाद की परिकल्पना के विषय में लिखते हुए काल्डर लिखते हैं कि इसे 'सापेक्षता' के स्थान पर इससे विपरीत 'इनवेरिएन्स थ्योरी' (स्थिरता या अपरिवर्तनीयता) नाम देना अलबर्ट आइन्स्टीन ने सर्वाधिक उपयुक्त समझा था । उन्होंने 'रिलेटिविटी' की नहीं अपितु 'एब्सॉल्यूट' की खोज की थी एवं इस पर वे बराबर जोर देते रहे । वैज्ञानिक उस परम (एब्साल्यूट) सत्य की शोध करने वालों की वृहद् शृंखला की एक कड़ी भर है, इसका बोध कराने के लिए उन्होंने रिलेटिविटी (सापेक्षिकता) नाम का प्रयोग भर किया था । उनका कथन था कि पदार्थ तो 'जमी हुई ऊर्जा' (फ्रीजन एनर्जी) भर है । ऐसे में दृश्यमान मस्तिष्कीय द्रव्य पदार्थ (ग्रे एवं व्हाइट मैटर) को ही सब कुछ नहीं मान लेना चाहिए । इस जमी ऊर्जा का रूपान्तरण चतुर्थ आयाम में जब विचार तरंगों के रूप में होता है तो वे अति शक्तिशाली ऊर्जा प्रवाह में बदल जाती व आसपास के वातावरण को प्रभावित करती हैं । आइन्स्टीन पर शोध करने वाले पिछले दशक के वैज्ञानिकों यथा डॉ० सिडनी ब्रेल, रॉजर पेनरोज एवं इर्विन शैपिरो का मत है कि क्वाण्टा-वेव-पार्टीकल के समुच्चय उस आयनोस्फियर की तरह ही आइन्स्टीन मनःक्षेत्र की इस जमी ऊर्जा को विचार प्रवाह के प्रभा-मण्डल-आयडियोस्फीयर के रूप में हर व्यक्ति पर छाया हुआ मानते थे । इसका नेगेटिव व पॉजीटिव होना ही व्यक्ति के स्वयं के चिन्तन, स्वास्थ्य एवं प्रभावोत्पादकता पर तथा आसपास के वातावरण पर तदनुरूप प्रभाव डालता है, ऐसा उनका मत था ।

महान वैज्ञानिक आइन्स्टीन के अनुसार विचार-तरंगों के कम्पन्न इतने तीव्र होते हैं कि उन्हें मापा नहीं जा सकता, मात्र उस तीव्रता एवं उसके सापेक्ष नहीं परम होने का बोध भर किया जा सकता है । वैज्ञानिकों के अनुसार आइन्स्टीन का विश्वास था कि मानवी विचार तरंगों के परिप्रेक्ष्य में उसके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों को देखा जाना चाहिए न कि जीवाणु-विषाणु प्रदूषण जैसे बाह्य-कारकोंजन्य प्रभाव को । उनका मत था कि स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी घटनाएँ अनुभव-बोध रूपी विचारलोक में घटती हैं । इसमें व्यतिरेक जब भी होता है जीवनी-शक्ति लड़खड़ाती है एवं रोग मनुष्य को आ घेरते हैं-कोशिकाएँ जल्दी बूढ़ी होने लगती हैं, मनुष्य स्वतः प्राकृतिक रूप में अथवा रोगों का शिकार होकर मृत्यु को प्राप्त होता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह विचारणीय तथ्य है कि अलबर्ट आइन्स्टीन एक भौतिकीविद् थे न कि चिकित्साशास्त्री । लेकिन स्पेसटाइम की उनकी परिकल्पना, अनुभव-बोध एवं विचार-मण्डल (आयडियोस्फियर) की संरचना के माध्यम से उन्होंने रोगों के कारणों के सिद्धान्त एवं दीर्घायुष्य होने के स्वरूप को सूत्र रूप में १९१३-१४ में ही लिखकर रख दिया था ।

आज हम पाते हैं कि वस्तुतः हमारे दैनन्दिन जीवन की घटनाओं के मूल में तेजी से दौड़ लगाने वाले विचार मण्डल के गतिप्रवाह की कितनी महती भूमिका है । रूसी चिकित्साशास्त्री एवं मनोवैज्ञानिक डॉ० पावलोव ने चूहे से लेकर मनुष्यों तक के ऊपर किए गए प्रयोग-परीक्षणों के आधार पर यह महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष शीघ्रता से करने-न करने, आवश्यकता की महत्ता समझने, न समझने, का बोध कराने वाली एक क्लाक (घड़ी) होती है जो समय-समय पर उसके द्वारा विनिर्मित विचार-मण्डल के अनुरूप उसे चेतावनी देने का कार्य करती है । अवचेतन में यह सतत् क्रियाशील रहती व मनुष्य को निर्णय लेने हेतु विवश करती रहती है । पावलोव का मत है कि हमारी इस आन्तरिक घड़ी को जब शीघ्रता से किसी कार्य को करने का बोध होता है तो वह एक निश्चित गतिलय पर काम करने वाली आकुंचन-प्रकुंचन, श्वास-प्रश्वास आदि प्रक्रियाओं की कम्पन्न गति तीव्र कर देती है । सन्तुलित मनःस्थिति वाले मन से संचालित शरीर की सभी क्रियाओं का संचालन करता है ।

वैज्ञानिकों का मत है कि समय की गतिशीलता का बोध विचारों पर प्रभाव डालकर रोगों के होने-न-होने के रूप में अपनी अभिव्यक्ति करता है । जिन व्यक्तियों पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ना एवं यह तनाव को जन्म देता है उन्हें टाइप 'ए' इनडिविजुअल कहा गया है । ऐसे व्यक्ति मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि में बहुत महत्त्वाकांक्षी होते हैं एवं स्वयं को उच्च उद्देश्यों-लक्ष्यों हेतु समर्पित कर सर्वोच्च सफलता हस्तगत करने की पात्रता रखते हैं । लेकिन इनमें जो स्वयं को सन्तुलित नहीं रख पाते, वे तनाव का सामना करने में अक्षम बने रहते हैं एवं बहुधा हृदय रोगों के शिकार होते हैं । अन्तर्मुखी प्रवृत्ति वाले ये व्यक्ति सर्वदा अपने बोध-अनुभूति के आयाम में कुछ कर गुजरने की, लक्ष्य पूर्ति की कामनाओं से घिरे रहकर बेचैनी एवं व्यथा युक्त जीवन जीते हैं । यहाँ तक कि विश्राम की अवस्था में भी इनकी हृदय की गति व रक्तचाप अधिक होता है । एड्रीनेलीन, नारएड्रीनेलिन, सिरोटोनिन, इन्सुलिन जैसे हारमोन्स सर्वदा उत्तेजना बनी रहने के कारण हरी सिकनेस से ग्रस्त इन व्यक्तियों के रक्त में सतत् स्रवित होते रहते हैं । इन टाइप 'ए' व्यक्तियों में आमाशय में अम्लाधिक्य, श्वास गति की वृद्धि, रक्त के वसा घटकों में वृद्धि, सारी माँस-पेशियों में तनाव, स्वेद ग्रन्थियों से पसीने का सतत् बहना जैसे लक्षण अधिक पाये जाते हैं । इन सब लक्षणों को जो सारे कायतन्त्र को प्रभावित करते हैं- 'टाइम सिण्ड्रोम' नाम दिया गया है ।

वैज्ञानिकद्वय कैनेथ ब्रेचर एवं डैनिस शियामा ने अपने शोध निष्कर्षों में लिखा है कि टाइप 'ए' व्यक्तियों को अन्य साधारण व्यक्तियों की तरह समय की द्रुतगामी चाल के प्रति चिन्तित न रहकर मध्यवर्ती समय बोध का जब अभ्यास कराया गया तो उनके रस द्रव्यों के स्रावों की गति में २५ से ४० प्रतिशत कमी होती देखी गयी । वायोफीडबैक द्वारा भी निर्देशन प्रक्रिया से तनाव-शैथिल्य की प्रक्रिया में उन्हें काफी मदद मिली । विशेष रूप से हृदय-रोग से ग्रस्त व्यक्ति समय आयाम के प्रति अधिक संवेदनशील पाए गए हैं । अब चिकित्सक औषधि उपचार के स्थान पर "समय कम नहीं है," "जीवन में जीने हेतु पर्याप्त समय" "जल्दबाजी की कोई आवश्यकता नहीं" जैसे सम्मोहनपरक निर्देश देकर उन्हें ऐसी अनुभूति कराते हैं कि वे वस्तुतः वर्तमान में जी रहे हैं, किसी से पिछड़ नहीं रहे । औषधि उपचार की तुलना में यह उपचार अधिक कारगर पाया गया है ।

वास्तविकता यही है कि इसमें से बहुसंख्य व्यक्ति जाने अनजाने इस 'टाइम सिण्ड्रोम' के शिकार हो जाते हैं । कारण केवल यही है कि हम वर्त्तमान में जीना नहीं जानते, आगत को सामने देखते हुए तुरन्त उसे पाने की चेष्टा करते हैं । जो कुछ दृश्यमान है, उससे परे बोध अनुभूति का जो आयाम विचार-मण्डल के रूप में हमारे चारों ओर छाया रहता है, उसे हम वांछित दिशा में मनोबल के सहारे बनाते रह सकते व तद्नुसार जीवन जी दीर्घायुष्य प्राप्त कर सकते हैं । यह जीवन बहुत लम्बा है, उसमें कई दिन हैं, उसमें भी कई घण्टे, मिनट व सैकण्ड हैं यदि इनका भली-भाँति सुनियोजन कर चिन्तन-प्रवाह को सही दिशा दी जा सके तो अकारण रोगग्रस्त न रहकर समस्वरता से भरी, हँसी-खुशी की उपलब्धियों से भरीपूरी जिन्दगी जीने में समर्थ हो सकते हैं ।

कल्पना-लोक में विचरण करने वाले-दिवास्वप्न देखने वाले तो स्वयं वैज्ञानिक मनीषी आइन्स्टाइन के अनुसार इस त्रिआयामी जगत को विकृत रूप में देखते हुए स्वयं पर आरोपित कर फलितार्थ भोगते हैं । आधुनिकता के इस युग में 'एजिंग' (वार्द्धक्य) को टालकर दीर्घायु प्राप्त करने की सही तकनीक मनोवैज्ञानिक कार्ल गुस्ताव के अनुसार समय-बोध के आयाम में सही-चिन्तन करने की ही है । इस तथ्य को हृदयंगम करने वाले ऋषि-मुनि सदैव इस सूक्ष्म-आयाम में ही जीवन जीते व अपने जीवन की सीमित अवधि को असीम बना लेते थे । उसी उपक्रम का आश्रय लेकर आज भी आयु को बढ़ा पाना एवं रोगों को टाल पाना सम्भव है, इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं होना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इंसान सर्वशक्तिमान माता-पिता की संतान

जिनमें एक ही प्रकार के गुण हों ऐसे तत्त्वों की कुल संख्या अब तक मुश्किल से १०१ तक पहुँची है । किन्तु विभिन्न परिमाण, ताप और वायु-दबाव आदि के साथ भिन्न-भिन्न तत्त्वों के मिश्रण से अब तक लगभग आठ लाख यौगिकों के निर्माण की पुष्टि हो चुकी है । यह विचित्र बात है कि तत्त्व परस्पर मिलकर एक ऐसी विलक्षण तीसरी रचना उत्पन्न कर देते हैं जिनमें न माँ के गुण हों न बाप के फिर भी उनमें दोनों ही विद्यमान रहते हैं ।

उदाहरण के लिये हाइड्रोजन व आक्सीजन दोनों ही गैसें हैं । दोनों ही ज्वलनशील हैं, किन्तु जब यही दोनों मिलकर एक हो जाते हैं तो न केवल वे गैस से तरल स्थिति में आ जाते हैं अपितु जलाने की अपेक्षा उसका गुण बुझाने का हो जाता है । इस स्थिति में ज्वलनशीलता नष्ट नहीं होती अपितु वह भीतर रहकर पोषण और शक्ति का आधार बन जाती है ।

मनुष्य भी इसी तरह परमात्मा व प्रकृति, विचार-सत्ता तथा पदार्थ-सत्ता दोनों की समन्वित सत्ता है । देखने में उसमें न परमात्मा का-सा उच्च प्रकाश है न गति-ऊर्जा, सक्रियता और सम्वेदनशीलता, न ही पूरी तरह जड़ता के गुण-इसी कारण उसे त्रैत्-संज्ञा अर्थात् जीव नाम से सम्बोधित किया जाता है । दोनों ही शक्तियाँ हमारे अन्दर हैं, हम चाहें तो परमात्म-तत्त्व को जाग्रत कर महापुरुषों की श्रेणी में पहुँचने का सम्मान प्राप्त कर लें या भौतिक गुरुता विकसित कर आर्थिक, औद्योगिक, स्वास्थ्य, खेलकूद, शिक्षा आदि किसी भी क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति कर अपना भौतिक-जीवन और भी सुखी-समुन्नत बना लें । दोनों को सन्तुलित रखकर भी क्रमशः आत्मोन्नति की सीढ़ियाँ पार की जा सकती हैं । एक दिशा यह भी है कि अपनी तामसिक प्रवृत्तियों में ही पड़े रहकर कृमि-कीटकों का सा परवर्ती और पीड़ित जीवन जियें । यह सब मनुष्य के अपने वश की बात है, वह कंचन बने या काँच ।

प्रख्यात वैज्ञानिक सर जे० जे० टामसन ने हिसाब लगाकर बताया है कि यदि किसी एक परमाणु के भीतर जो शक्ति संगठित है, वह बिखर जाय, तो क्षणांश में ही लन्दन जैसे घने बसे तीन बड़े शहर राख हो जाएँ । यह विद्युतअणुओं की शक्ति पर आधारित गणना थी । अब पता चला है कि इन विद्युतअणुओं की मूल इकाई अति सूक्ष्म प्रकाशाणु हैं, उनकी शक्ति अनेक गुना अधिक है ।

इन तथ्यों से पता चलता है कि हम मानसिक दुश्चिन्ताओं से, भौतिक आकांक्षाओं-लालसाओं से जितने हलके रहते हैं उतने ही शक्तिशाली और श्रेष्ठ बनते हैं । हमारे भीतर एक शक्ति-सम्पन्न राक्षस भी बैठा है -वह है अपना अहं-जब यह उग्र हो उठता है तो व्यक्तिगत जीवन में भयंकर कुण्ठाएँ, असम्मान तथा अमर्यादा के कारण घोर संघर्ष आ घेरता है, सामाजिक जीवन में वही अशान्ति, अव्यवस्था उत्पन्न करता है तथा ऐसे उपद्रव खड़े करता है जिससे विनाशकारी दृश्य उपस्थित होते देखे जाते हैं, पर यदि प्रकाश की तरह हलके हों तो हमारा दृष्टिकोण प्रकाश की तरह व्यापक निर्मल तथा गतिशील होता है हमारा चिन्तन अपने तक ही सीमित न रहकर प्राणि मात्र के हित की बात सोचने लगता है । यह स्थिति अपने आप में ही एक ऐसी आन्तरिक स्फुरणा प्रदान करती है, जिसमें शान्ति, शीतलता, सन्तोष और प्रसन्नता की निर्झरणी अपने भीतर ही फूटती प्रतीत होती है ।

आइन्स्टीन के 'शक्ति सिद्धान्त' के अनुसार एक परमाणु भार को यदि शक्ति में बदला जा सके तो उससे प्रकाश की गति × प्रकाश की गति अर्थात् -१८६००० × १८६००० प्रति सैकेण्ड=३४५९६०००००० कैलोरी ताप-शक्ति उत्पन्न होगी । एक कैलोरी का अर्थ एक ग्राम पानी को एक सेन्टीग्रेड ताप देने के बराबर होता है । उपरोक्त ताप का अर्थ हुआ कि एक परमाणु के भौतिक-द्रव्य में ही इतनी गर्मी होती है कि उससे ३४५९ कुन्टल ६० किलो पानी को १०० सेन्टीग्रेड तक खौलाया जा सकता है । १ पौण्ड पदार्थ की शक्ति उतनी होगी जितनी १४ लाख टन कोयला जलाने से होगी । अभी तक वैज्ञानिक इस तरह का कोई संसाधन प्राप्त नहीं कर सके, जिससे पदार्थ को पूर्णतः शक्ति में बदला जा सके तथापि यदि यह सम्भव हो सके तो एक पौण्ड पदार्थ की सूक्ष्म-शक्ति से सम्पूर्ण अमेरिका को १ माह तक विद्युत सप्लाई मिल सकती है । मन, शरीर के भौतिक द्रव्यमान की विद्युत इकाई या शक्ति प्रवाह है । जितने परिमाण में मन को एकाग्र किया जाता है । उतने ही परिमाण में शरीर के भौतिक-तत्त्व इस विद्युत में बदलने लगते हैं । सम्पूर्ण एकाग्रता की शक्ति का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि १२० पौण्ड वजन के शरीर से सारे अमेरिका को लगातार १० वर्ष तक विद्युत सप्लाई जारी रखी जा सकती है ।

हर व्यक्ति इस शक्ति का स्वामी है यह तब है जबकि अभी विज्ञान न तो पूरी तरह चेतना (परमात्मा), न प्रकृति को ही भली प्रकार समझ सका है । पूर्णता का तो अनुमान करना ही कठिन है । कल तक यह कहा जाता था-तत्त्व कुल ९२ हैं आज उनकी संख्या १०३ तक पहुँच गई है । कल तक अणु के अन्दर थोड़े से परमाणुओं की खोज की जा सकी थी किन्तु आज यह संख्या २०० से अधिक हो गई है । अब इन कणों के भी प्रति-कण, प्रति-द्रव्य, प्रति पदार्थ निकलते चले आ रहे हैं । तत्त्व सारिणी में अब तक यूरेनियम धातु सबसे भारी अर्थात ९२ आणविक संख्या की पाई जाती थी किन्तु अब फ्लोरिडा अमेरिका के वैज्ञानिक डॉ० टी० ए० कैहिल तथा उनके सन्निकट सहयोगी डा० आर० बी० जैटरी ने उससे भी भारी तीन नये तत्त्वों की खोज कर ली है इनके नामकरण तो नहीं हुए पर इनकी आणविक संख्या के आधार पर इनका नाम ११६, १२४ तथा १२८ रख दिया गया है । यह तत्त्व अनुमानतः १ अरब वर्ष आयु के हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस तरह अत्यन्त भार वाले तत्त्व भी, भले ही देर से ज्ञात हों-शक्ति के पुञ्ज हैं और सृष्टि के आविर्भाव से ही विद्यमान सूक्ष्म तत्त्व भी । दोनों तत्त्व परस्पर गुम्फित होने से जड़-पदार्थ तो दृश्य हो जाता है, चेतन अदृश्य रहता है । कारण यह है कि आत्यन्तिक वेग के कारण भार रहित पदार्थ भी भारयुक्त हो जाता है । सूर्य से आने वाली किरणें सूक्ष्म हैं किन्तु आकार की तुलना में उनका भार बहुत अधिक है । सूर्य से धरती पर बरसती रहने वाली प्रकाश-किरणों का भार यदि लिया जाये तो प्रतिदिन हजारों टन तथा वर्ष भर में लाखों टन भार निकले । प्रोफेसर एडिंग्टन ने तो उस भार का हिसाब भी लगाया है कि जो कण जितने ही सूक्ष्म हैं उनका वेग उतना ही अधिक है और जिनका वेग जितना अधिक है उनके आकार की तुलना में उनका भार उतना ही अधिक होगा ।

न तो यह गति ही आधुनिकतम यन्त्रों से नापी जा सकती है न भार, क्योंकि इन उपकरणों की एक सीमा है, जबकि यह तत्त्व असीम और अनन्त हैं । इस रूप, इस श्रेणी में मन, भावानुभूतियाँ तथा संकल्प ही आते हैं । इसी बात को यह कह सकते हैं कि परमात्मा ही अनादि, अनन्त, अद्भुत, सर्वव्यापी और प्रकृति में घुला हुआ एक मात्र चेतन-तत्त्व है हमें उसे समझने का भी प्रयत्न करना चाहिए । मात्र दृश्य व भौतिक पदार्थों की जड़ता में ही नहीं पड़े रहना चाहिए । प्रकाश से भार की तरह भौतिक शक्तियाँ तो उस तत्त्व की अनिवार्य उपलब्धियाँ हैं । खेती गेहूँ की होती है भूसा तो अपने आप मिलता है । हम अपनी आध्यात्मिकता सार्थक कर सकें तो भौतिक अभाव आज जो कष्ट देते हैं, वे कल अनुचर अनुगामी बनकर भी पीछे-पीछे चल सकते हैं । दोषी न तो परमात्मा है न प्रकृति । दोनों तत्त्व हमारी रचना, पोषण और विकास में लगे हैं, पर अपनी दृष्टि में ही कुछ ऐसे दोष हैं कि हम स्वयं उस प्राप्त करुणा को हृदयंगम करने से वंचित रह जाते हैं । ऐसे समर्थ माता-पिता का पुत्र होकर मनुष्य दीन-हीन जीवन जिये यह दुर्भाग्य है । उसका मूल कारण अज्ञान ही है यह अज्ञानता ही मिटाई जानी चाहिए ।

हम देख सकें, ऐसे प्रकाश-कणों की सघनता की एक सीमा है । जहाँ ये फोटोन बहुत सघन रूप में हों तथा प्रचुर परिमाण में हों, वहाँ वे हमारे लिए अगोचर हो जाएँगे, अतः प्रचण्ड प्रकाश की स्थिति वहाँ होने पर भी मानवीय दृष्टि से वहाँ घोर अन्धकार ही होगा । उस प्रचण्ड प्रकाश की तुलना में सूर्य का प्रकाश बहुत अधिक स्थूल है ।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय'-हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो तेजो वै तेजो मयि देहि दिव्य-प्रकाश रूप परमेश्वर हमें प्रकाश दें-इन प्रार्थनाओं में परमात्मा को उसी तरह के सूक्ष्म और सर्वव्यापी प्रकाश के रूप में अस्तित्त्व में सिद्ध किया है । वैज्ञानिक और वेदान्त दोनों का एक ही निष्कर्ष है कि हमें दिखाई देने वाला प्रकाश तो स्थूल है । सूक्ष्म-तत्त्व स्थूल आँखों से दर्शनीय न होने पर भी हमें चारों ओर से आच्छादित किये रहते हैं । उन्हें अनुभव करने के लिए ज्ञान की आत्म-ज्योति जाग्रत करने वाली साधनाओं की आवश्यकता होती है । अतएव उपासना और स्वाध्याय हमारे जीवन की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अपेक्षाएँ हैं, इनके बिना विवेक जाग्रत ही नहीं होता । स्थूल पदार्थों को ही देखते और उन्हीं में उलझे रहते हैं, सूक्ष्म तत्त्वों की अनुभूति के लिये हमारी उस तरह की तैयारी भी होनी चाहिए । हमारी पहुँच मन को नियन्त्रित रखने और उसे यथार्थ लक्ष्य की ओर नियोजित रखने की स्थिरता भी चाहिए ।

मन विचार और भावनाओं की सत्ता सर्वसमर्थ है यह न तो काल्पनिक है न ही ऐसे कि उन तक पहुँच न हो महान् वैज्ञानिक आइन्स्टीन की मान्यता यह थी कि संसार में प्रकाश ही सर्वोपरि वेग वाला तत्त्व है । किन्तु अमेरिका के ही एक अन्य वैज्ञानिक डॉ० गेरार्ड फीनवर्ग ने ऐसे द्रव्याणुओं की कल्पना का समर्थन किया है जिनकी गति प्रकाश के कणों से भी बहुत अधिक है अमेरिका की टैक्सास यूनिवर्सिटी में कार्यरत भारतीय वैज्ञानिक डॉ० ई० सी० जी० सुदर्शन ने तो यह बात और आधारभूत तथ्यों को व्यक्त करके सिद्ध कर दी है ।

बात चाहे वैज्ञानिक ढंग से कही जाये चाहे श्रद्धा, विश्वास और आस्तिक-आस्था के रूप में दोनों अन्ततः एक ही स्थान तक पहुँचते हैं । वैज्ञानिक कहते हैं कि अत्यन्त सूक्ष्म और सक्रिय परमाणुओं का एक अलग ब्रह्माण्ड है जहाँ पदार्थ नहीं अपदार्थ शक्ति ही शक्ति भरी है वेदान्त कहता है वह परमात्मा प्रकृति से भिन्न गुणों वाला है, पर उसने व्यवस्थाएँ प्रकृति के हाथों सौंप दी हैं और स्वयं प्रकृति रूप हो गया अर्थात् उन्हीं में समा गया । दोनों ही शक्ति के स्वामी, दोनों ही परम पोषक और कल्याणकारक हैं । व्यक्त रूप से हमारा पोषण अपनी माँ-प्रकृति से होने पर भी शक्ति का आधार पिता ही रहता है । हम माँ की उपासना उसी रूप में करें जिससे हमारी श्रद्धा अपने पिता के प्रति भी अभिव्यक्त होती रहे, जीवन की समस्वरता और आनन्द के लिये एक नहीं दोनों सत्ताएँ आवश्यक और अनिवार्य हैं इनमें से उपेक्षा एक की भी नहीं करनी चाहिए ।

विनाश नहीं, सतत विकास ही एकमात्र नियति

विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों और बुद्धिजीवियों के बीच इन दिनों प्रायः यही विवाद छिड़ा रहता है कि वर्तमान परिस्थितियों, पर्यावरण अध्ययनों और खगोलीय पर्यवेक्षणों से क्या ऐसा प्रतीत नहीं होता कि सृष्टि विनाश के कगार पर है ? सूर्य की ऊर्जा चुकती चली जा रही है और पृथ्वी भी अपनी आयु पूरी करती दृश्यमान हो रही है ? मानवी दुर्बुद्धि के कारण क्या यह धरती धूल में नहीं मिल जाएगी ?

इन समस्त आशंकाओं का समर्थन भौतिक विज्ञान का प्रसिद्ध सिद्धान्त भी करता है । थर्मोडायनामिक्स के दूसरे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

नियम के अनुसार विश्व, व्यवस्था से अव्यवस्था की ओर निरन्तर प्रवाहमान है । विराट से विराट और सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तर पर यह नियम समान रूप से लागू है । इस दृष्टि से विचार करें, तो इन दिनों हम जिस मानसिक अराजकता के दौर से गुजर रहे हैं, वह उसका एक हिस्सा है, ऐसा माना जा सकता है । ऋषिकाल में एक समय वह था, जब समाज मानसिक दृष्टि से अत्यंत सुव्यवस्थित, सुविकसित और श्रेष्ठ था, जबकि आज चिन्तन की दृष्टि से वह उतना ही निःकृष्ट है । दूसरे शब्दों में कहा जाय, तो विज्ञान का यह दूसरा नियम अक्षरशः इस स्तर पर भी काम कर रहा है । तथ्य यह भी है कि मानसिक अस्थिरता ही सामाजिक विपन्नता पैदा करती है । अशांत और अव्यवस्थित मानस सुव्यवस्था बने रहने देगा, ऐसा भी नहीं समझा जा सकता । तो क्या आज की मानसिक-अराजकता विश्व-विनाश को जन्म नहीं दे देगी ? क्या हमारा भाग्य विधान इन दिनों अभागों जैसा बनता नहीं दिखाई पड़ रहा है ? भावनात्मक पतन से उत्पन्न अस्तित्त्व संकट को क्या टाला जा सकना सम्भव है ?

उत्तर ताप-गति का पहला नियम देता है । उक्त नियम के अनुसार इस विश्व-ब्रह्माण्ड के समस्त पदार्थ और सारी ऊर्जा की मात्रा स्थिर है । दूसरी ओर विज्ञानवेत्ताओं का यह भी कहना है कि सूर्य के अन्दर जो गैसें हैं, वह सब चुकती चली जा रही हैं । हाइड्रोजन, हीलियम घटती जा रही है ऐसी स्थिति में उसका अंत निकट ही माना जा सकता है । वैज्ञानिकों के हिसाब से अपनी पृथ्वी की आयु पाँच अरब वर्ष है । खगोलविदों का कहना है कि बहुत पहले अपना ग्रह सूर्य का एक अंग था । बाद में वह टूट कर पृथक् हो गया । जब इस विशाल अवधि में इस ग्रह में अनेकानेक प्रकार के परिवर्तन हो गये । पहाड़ जलमग्न हो गये और जल की जगह हिमालय खड़ा हो गया, तो फिर पृथ्वी के जनक सूर्य को अपने अब तक के विशाल जीवन में खण्ड-खण्ड होकर बिखर जाना चाहिए अथवा जल कर नष्ट हो जाना चाहिए था, पर ऐसा नहीं हुआ । क्यों ?

इस सम्बन्ध में विश्व-उत्पत्ति सम्बन्धी अध्यात्म अवधारणा की तनिक चर्चा कर लेना अनुचित न होगा । सृष्टि-उत्पत्ति सम्बन्धी अध्यात्म-मान्यता है कि भगवान ने एक से अनेक होने की इच्छा प्रकट की और सृष्टि बनकर तैयार हो गई, विचित्र जीव और जन्तु पैदा हो गये, वनस्पतियाँ पैदा हो गईं । उनके जीवन धारण करने में सहायक तत्त्व भी साथ ही साथ उद्भूत हुए । विज्ञान जिस सृष्टि को तत्त्वों के संगठन-विघटन से विनिर्मित मानता और जिनके न रहने से विनाश की सम्भावना प्रकट करता है, उस बारे में अध्यात्म मान्यता दूसरी है । उसका कहना है कि यहाँ सब कुछ ईश्वरीय संकल्प के कारण उत्पन्न हुआ, तत्त्वों के मिलन-संयोग के फलस्वरूप नहीं । यह ठीक है कि सृष्टि में भौतिक स्तर पर रासायनिक प्रतिक्रियाएँ होती रहती हैं, पर स्रष्टा का यह अद्भुत सृजन भौतिक-प्रक्रिया का परिणाम है-ऐसा नहीं कहा जा सकता । अब यहाँ एक प्रश्न पैदा होता है-जिसका निर्माण भौतिक संयोग-वियोग के कारण नहीं हुआ, उसके नाश का निमित्त कारण भौतिक कैसे हो सकता है ? जो अलौकिक आकांक्षा का परिणाम है, उसका अंत लौकिक गतिविधियाँ कैसे कर सकती हैं ? निष्कर्ष यही निकल कर सामने आता है कि यह विश्व विनष्ट हो ही नहीं सकता । होता भासता लग सकता है, पर वस्तुतः ऐसा होता नहीं । इस बिन्दु पर विज्ञान और अध्यात्म परस्पर सहमत होते प्रतीत होते हैं । विज्ञान के हिसाब से सृष्टि जो आदि में थी, वही अब है (ताप-गति का पहला नियम) । परिवर्तन भले ही उसमें हो रहा हो, पर मूल-तत्त्व अपरिवर्तनीय और अक्षुण्ण बने हुए हैं । इस स्थिति में ही पदार्थ और ऊर्जा की मात्रा स्थिर रह सकती है । अध्यात्म का भी ऐसा ही मत है । उसके अनुसार यदि संसार नाश की ओर (व्यवस्था से अव्यवस्था की ओर) आरम्भ से ही अग्रसर हो रहा होता, तो यह सृष्टि कब की समाप्त हो गई होती, पर उत्पत्ति काल से अब तक यह बनी हुई है, यही इसकी अक्षुण्णता का सबसे बड़ा प्रमाण है । सच्चाई तो यह है कि जहाँ नाश जैसा दृश्य उपस्थित हो रहा होता है वहाँ दूसरी ओर निर्माण की सम्भावना भी फलवती होती रहती है । गर्भवती स्त्री गर्भकाल में बहुत भारीपन महसूस करती है, उदासी, उबकाई, अरुचि, उल्टी होती रहती है । भोजन ठीक नहीं मिलने पर दुबली भी होती दिखाई पड़ सकती है । इतने पर भी यह सच है कि वह बीमार नहीं होती, उसके रस-रक्त नष्ट नहीं हो रहे होते, वरन् नवनिर्माण की एक विशिष्ट भूमिका सम्पन्न कर रही होती है । वही रस-रक्त एक अभिनव सृजन के रूप में बाद में बाहर आते हैं । सूक्ष्मतापूर्वक विचारा जाय, तो ज्ञात होगा कि इसमें न तो कुछ नष्ट हुआ है, न विनिर्मित, वरन् परिवर्तन की एक क्रिया घटित हुई है । माता का रक्त एक स्थूल पिण्ड का आकार ग्रहण कर उससे अलग हो गया । जो पहले तरल और लाल था, अब उसका रूपाकार कुछ और है । स्वर्णाभूषणों के निर्माण में मात्र रूप और आकार को ही गलाया-ढाला जाता है । मूल स्वर्ण तत्त्व तो यथावत् बना रहता है ।

यही क्रिया विश्व-ब्रह्माण्ड में चलती रहती है । जब-जब जहाँ-जहाँ निर्माण की घटना घटित होती है, वहाँ दृश्य ऐसे ही उपस्थित होते हैं । प्रत्यक्ष आँखों को ऐसा मालूम हो सकता है कि विध्वंस हो रहा है, पर यह उसका धोखा है । कोई अपने सड़े अंग को ही ढोते रहने का दुराग्रह करे तो चिकित्सक इसे कैसे स्वीकार कर सकता है । वह तो अपने हिसाब से उसे काट-छाँट कर पृथक करेगा और रोगी को नवीन जीवन प्रदान करने का प्रयास करेगा, भले ही देखने में यह कितना ही नृशंस और क्रूरतापूर्ण क्यों न लगे, पर इतने से ही वह अपने कर्तव्य को त्याग तो नहीं देता ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में भी यह बात पूरी तरह लागू होती है । यहाँ नाश-निर्माण जैसे दृश्य चलते रहते हैं । जीर्ण-शीर्ण मकान को ढहाकर नये निर्माण खड़े करने पड़ते हैं । पुरानी मशीनें भी कहाँ काम आती हैं । टूटे बर्तन, फूटे भाँड़ भी किसी काम के नहीं होते । उन्हें गला-जला कर अभिनव सृजन करना पड़ता है । इन सबकी देख-भाल, साज-सँभाल मनुष्य को नियमित रूप से करनी पड़ती है । यंत्र के कल-पुर्जे टूट जाने पर वह उसे बदलता है । घर की दीवार कमजोर होने पर उसकी मजबूती का इंतजाम करता है । ऐसा कहाँ देखा जाता कि दीवार टूट रही और वह बेखबर सोया पड़ा हो, छत गिरने वाली हो और वह निश्चिंत बैठा हो । इसके पूर्व ही वह सतर्क होता और बरबादी से पहले सब कुछ ठीक कर लेता है ।

भगवान की रीति-नीति भी ऐसी ही है । वह 'प्वाइण्ट आफ नो रिटर्न' पहुँचने से पूर्व ही कमान अपने हाथ में लेता और सब कुछ ठीक कर देता है । इन दिनों हम जिस उथल-पुथल के दौर से गुजर रहे हैं, वह वास्तव में प्रसवकाल जैसी ही प्रक्रिया है, जिसमें मनुष्यों का विश्व का कायाकल्प जैसा बदलाव होना है । इस सम्बन्ध में एन कार्टराइट अपनी पुस्तक 'एन इटरनल गॉड ऐज दि काउज ऑफ दि यूनिवर्स' में लिखते हैं कि वैज्ञानिकों ने कुछ रासायनिक क्रिया-प्रक्रियाओं द्वारा कुछ एक पदार्थों की रचना कर ली, तो विज्ञानविद् यह मानने लगे कि यह विश्व ऐसी ही भौतिक प्रतिक्रिया की परिणति है, जबकि सत्य यह है कि यह किसी भौतिक क्रिया का परिणाम नहीं है । यदि ऐसा माना गया, तो अनेक ऐसे प्रश्न उठ खड़े होंगे, जिनका सहज में जवाब दे पाना कठिन होगा, यथा इतने कम समय में एक अमीबा से इतने प्रकार के जटिल जीवों का उद्भव कैसे हो गया ? और फिर अमीबा, अमीबा ही बना क्यों रह गया ? वे कहते हैं कि यदि कुछ क्षण के लिये यह मान भी लिया जाय कि यह सब विकासवादी प्रक्रिया के अंग हैं, तो फिर दूसरा सवाल पैदा होगा कि इस प्रक्रिया को प्रेरित करने वाला बल कौन था ? कैसे इतने सामान्य जीव से बुद्धि को आश्चर्य में डालने वाले प्राणी प्रकट हो गये ? मनुष्य के एक-एक अंग और तंत्र का गहराई से अध्ययन करने पर जो तथ्य सामने आते हैं, उनसे तो यही स्पष्ट होता है कि बारीक इंजीनियरिंग युक्त कौशलपूर्ण संरचना का निर्माण महज संयोग का परिणाम नहीं हो सकता । इसमें किसी कुशल अभियंता का हाथ होना चाहिए । फिर विज्ञान भी इस बात को स्वीकारता है कि भौतिक-जगत में कोई भी क्रिया बिना किसी कारण या बल के सम्भव नहीं । कुछ देर के लिए यदि इसे मान भी लें कि मनुष्य किसी संयोग का नतीजा है, तो तर्कवादी पुनः यह दलील दे सकते हैं कि संयोग सैकड़ों में एकाध घटित हो सकता है, पर हर मामले में संयोग का सिद्धान्त काम करेगा-यह किसी के गले कैसे उतरे ?

ऐसे में ईश्वरीय अवधारणा को मान लेने पर सारी मुश्किलों का समाधान सरलतापूर्वक हो जाता है । यदि यह स्वीकार कर लिया जाय कि भगवान इस सृष्टि की सर्वोपरि सत्ता है, उसी ने इसकी संरचना सुनियोजित ढंग से की है और कुशल माली की तरह इसकी देखरेख करता है । झाड़-झंखाड़ उग आने पर संसार रूपी उद्यान की सफाई करता, उनकी उखाड़-पछाड़ करता है और गुलाब जैसे पुष्पों का आरोपण कर मलयानिल की सुगंधित बयार बहाना और उसे सुवासित बनाये रखना भी उसी का काम है, तो फिर संसार के समाप्त हो जाने जैसे असमंजस की गुंजायश ही खत्म हो जाती है । भला कौन माली अपने बाग को वीरान बनते देख सकता है । यदि कभी दृश्य ऐसा दिखाई पड़े भी तो इसके पीछे उसकी कोई विशेष योजना ही समझी जानी चाहिए, जिसमें रुग्णों, बीमारों और अनुत्पादक वृक्षावलियों की जगह विशेष किस्म की उन्नत और आकर्षक पौधों को उगाने और लगाने की उसकी मंशा हो । इस मान्यता का मंडन 'क्रियेशन रिसर्च इन्स्टीट्यूट, सैनडियागो, कैलिफोर्निया' के एसोसियेट डायरेक्टर डूने टाल्बर्ट गिश ने भी जोरदार शब्दों में किया है ।

"प्रत्यक्ष जितना, जो कुछ जैसा भी दिखाई पड़े, पर यह सच है कि मनुष्य का भविष्य आकाश में चमचमाते गोले की तरह प्रकाशवान और उज्ज्वल है । आँखें जो कुछ देखतीं और बुद्धि जितना कुछ समझ पाती है, वह सब सर्वदा यथार्थ नहीं होते । इन दिनों दिखाई पड़ने वाली विनाश की सम्भावना भी मिथ्या साबित होकर रहेगी ऐसी आशा की जानी चाहिए ।"

तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः

यदि परब्रह्म की परिभाषा-व्याख्या करनी हो तो सृष्टि के कण-कण में संव्याप्त नियम चेतना, अनुशासन व्यवस्था को देखना होगा । सूक्ष्म-दृष्टि से देखने वाले पार्टीकल फिजिक्स के ज्ञाता कहते हैं कि पदार्थ के न दीख पड़ने वाले छोटे कणों से लेकर जीवाणु-विषाणु तक एवं तारा मण्डलों के समूहों में गतिमान फोटॉन-लक्सान कणों तक के बीच एक अत्यन्त सजग, अनुशासित विधि-व्यवस्था कार्यरत दिखाई पड़ती है । इकॉलाजी के इसी पक्ष को नियामक सत्ता को विज्ञान की दृष्टि में ईश्वर कह सकते हैं । आस्तिकता का यही एक प्रमाण ऐसा है जिसे पूर्णतः विज्ञानसम्मत कहा जा सकता है ।

नास्तिकतावादी दर्शन के प्रणेता-नीत्से ने आज से कोई सौ वर्ष पूर्व घोषणा की कि "ईश्वर अब अन्तिम रूप से मर गया है । उसका प्रादुर्भाव अब अतिमानवों की पीढ़ी के रूप में होगा ।" उसने कहा था कि तलाशने का कितना भी प्रयास किया जाय, ईश्वर के अस्तित्त्व का कोई प्रमाण नहीं दिखाई पड़ता । इस घोषणा ने एक महत्त्वपूर्ण घटना के रूप में तहलका तो मचा दिया पर वैज्ञानिकों को ईश्वर परब्रह्म की सही व्याख्या हेतु अनुसन्धान हेतु भी प्रेरित किया । पदार्थ -विज्ञान के ज्ञाता जब 'यूनिफिकेशन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ऑफ फोर्सेज' की चर्चा करते हैं तो ऊर्जा के रूप में पदार्थ में छिपी चेतना के स्वरूप की एक झाँकी देख पाते हैं एवं जितना इस रहस्य को खोजने का प्रयास करते हैं उतना ही गहरा इसे पाते हैं ।

गत सौ वर्षों की वैज्ञानिक प्रगति का इतिहास पदार्थ भौतिकी के उद्‌भव विकास का नहीं, कण-कण में संव्याप्त चेतन-सत्ता की प्रगति का इतिहास कहा जा सकता है । पदार्थ दिखाई पड़ता है, लेकिन उसमें छिपी ऊर्जा दृश्यमान नहीं है । शरीर दृष्टिगोचर होता है लेकिन आत्मा नहीं । कारण यह है कि पदार्थ व शरीर स्थूल है, अतः वह स्थूल नेत्र से दृष्टिगोचर हो जाता है तथा सहज ही उस पर विश्वास हो जाता है । इसके आगे सूक्ष्म-शरीर के अन्तर्गत मन आता है, जिसकी क्रिया से तो हम सब परिचित होते हैं, परन्तु उसे प्रत्यक्ष देखना सम्भव नहीं । इसी तरह अति सूक्ष्म आत्मा को देखना तो और भी दुष्कर है ।

कोई चीज दीखती नहीं इससे उसके अस्तित्त्व को झुठलाया नहीं जा सकता । मनुष्य की तो देखने व सुनने की भी सीमा है । एक खास वेवलेन्थ पर ही हम देख अथवा सुन सकते हैं । इससे कम अथवा अधिक वेवलेन्थ की ध्वनि अथवा दृश्य हमारे किसी काम के नहीं । प्राप्त जानकारी के अनुसार मनुष्य के कान केवल उतने ही ध्वनि कम्पन पकड़, सुन सकते हैं, जिनकी गति ३३ प्रति सैकिण्ड से लेकर ४० प्रति सैकिण्ड के बीच होती है । जबकि ब्रह्माण्ड में इससे अधिक गति के ध्वनि कम्पन, जो शरीर को नुकसान पहुँचा सकते हैं, सदा गुंजित होते रहते हैं । ७५ डेसीबल की ध्वनि मनुष्य के लिए असह्य हो जाती है । आमतौर से आपसी बातचीत का क्रम १०-२० डेसीबल पर चल जाता है । १५० डेसीबल पर शरीर में भारी विक्षोभ उत्पन्न होता है । एक तारे के टूटने मात्र से भयंकर गर्जना होती है, जो हमें बहरा बना दे सकती है, परन्तु वह हमें सुनाई ही नहीं देती ।

पानी में विद्यमान अगणित जीव-जन्तु, आसमान में छाए असंख्य तारे इन आँखों की पकड़ में नहीं आते । सूर्योदय-सूर्यास्त के समय आसमान में छाया रंग-बिरंगा वातावरण दृष्टि भ्रम ही होता है । वस्तुतः वहाँ कोई रंग का अस्तित्व ही नहीं होता । सिनेमा के पर्दे पर सिलसिलेवार चलने वाला दृश्य मात्र गतिशीलता का खेल है । उसकी तीव्र गति के कारण हम दो चित्रों के बीच के अन्तर को समझ नहीं पाते । रेगिस्तान में मृग मरीचिका का उदाहरण सर्वविदित है, जहाँ दृष्टि भ्रम के कारण सरोवर के अस्तित्व का बोध हो जाता है । चन्द्रमा से देखने पर पृथ्वी आसमान में स्थित दीखती है । रंग की पहचान दृष्टि भी, हर व्यक्ति में अलग-अलग होती है । सूर्य का रंग वास्तव में श्वेत होता है, परन्तु वायुमण्डल के धूल कण के कारण वह लाल-सा प्रतीत होता है । अनन्त आकाश से विद्युत चुम्बकीय किरणें सतत् पृथ्वी पर बरसती रहती हैं । इन्हें विज्ञान की भाषा में 'कॉस्मिक रेज' कहते हैं । मनुष्य को इसका कभी भान नहीं हो पाता ।

विज्ञान ने अब यह स्वीकार किया है कि यह जगत वास्तव में तरंगों का समुच्चय है । एक शब्द में यहाँ जो कुछ भी है सब तरंगमय है । जो भी दीखता अथवा जिसकी भी अनुभूति होती है, वह सब क्वाण्टा यानी तरंगों के समन्वित रूप के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है । भौतिक विज्ञान की एक शाखा पार्टिकल फिजिक्स के अनुसार प्रत्येक पदार्थ की संरचना इलेक्ट्रान, प्रोटोन, न्यूट्रान जैसे सूक्ष्म विद्युत कणों के आधार पर हुई है । इससे यह स्पष्ट होता है कि जगत की हरेक वस्तु एक दूसरे से सम्बन्धित ही नहीं वरन् एक ही है । जड़-चेतन सभी में एक ही सत्ता विद्यमान है तथा सबका उद्‌गम केन्द्र भी वही है । दूसरी तरफ शक्ति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणों का जीवन काल एक सैकिण्ड का दस करोड़वाँ हिस्सा तथा गति १ लाख ८६ हजार मील प्रति सैकिण्ड (प्रकाश की गति) बताई गई है । अतः इनके मापन अथवा वर्गीकरण में वैज्ञानिक असमर्थता व्यक्त करते हैं । फिर भी इस ओर और भी अधिक शोध प्रयास करने की आवश्यकता को अनुभव किया गया है । क्वान्ट्म थ्योरी विशेष रूप से इस विषय से सम्बन्धित अध्ययन में ही संलग्न है । यह थ्योरी शक्ति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणों का अध्ययन, विश्लेषण करती है । डॉ० यूनीन पी० विग्नर ने चेतना की जानकारी प्राप्त करने हेतु इसे एक महत्त्वपूर्ण माध्यम बतलाया है ।

वैज्ञानिक मैकब्राइट ने अपना अध्ययन निष्कर्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि परोक्ष जगत में एक ज्ञानयुक्त एवं इच्छायुक्त सत्ता के होने की पूरी सम्भावना है । विश्व की समस्त गतिविधियाँ उसी से संचालित हैं । डा० मोर्डेल ने भी कहा है कि अणु और पदार्थ के सूक्ष्मतम कणों के व्यवहार से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि परोक्ष जगत में कोई चेतन शक्ति अवश्य क्रियाशील है ।

प्रख्यात वैज्ञानिक इंगोल्ड ने भी कहा है कि-"सृष्टि में क्रियाशील चेतन-शक्ति के वास्तविक स्वरूप को समझने में अभी हम असमर्थ हैं ।"

भारतीय तत्त्वदर्शियों ने इस विषय में महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं । उन्होंने चेतना के व्यापक स्वरूप के विषय में यह दर्शन प्रतिपादित किया था-

एको देवः सर्वभूतेषुगूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।

-श्वेता श्वतरेः ६/११

अर्थात-वही एक देव सभी प्राणियों में अन्तरात्मा रूप में व्याप्त तथा समस्त कर्मों का नियामक संचालक है । निर्गुण होते हुए भी चेतना शक्तियुक्त है । समस्त क्रियाकलापों का साक्षी है ।

ईशावास्योपनिषद् में भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है कि, "वह गतिमान है, स्थिर भी है । दूर है और निकट भी है । वह हरेक के अन्दर और बाहर भी स्थित है ।" स्पष्ट है कि ऐसा सर्वव्यापक स्वरूप चेतन शक्ति-विद्युतीय ऊर्जा का ही हो सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वैज्ञानिकों ने मात्र इतना ही तो कहा है कि उनके वर्तमान साधनों से ईश्वर के अस्तित्व का परिचय नहीं मिलता । यह कभी नहीं कहा कि यह उनका अन्तिम निष्कर्ष है, ज्ञान की चरम सीमा है, जो जान लिया गया वही अन्तिम है । विनम्र शब्दों में कहा जाय तो यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि विज्ञान दुराग्रही नहीं है । भविष्य में सम्भावित नयी खोजों के लिये उसका द्वार हमेशा से खुला रहा है । बचपन का विज्ञान किशोरावस्था से गुजरकर अब जैसे-जैसे प्रौढ़-परिपक्व हो रहा है, जानकारियाँ अधिक सम्भावनाओं से भरी, संशोधित एवं नितनूतन उपलब्ध होती जा रही हैं । हर नवीन शोध पिछली को नकारती ही नहीं, नये प्रतिपादन प्रस्तुत कर प्रगति क्रम को और आगे बढ़ा देती है, ऐसी व्यवस्था न होती तो विज्ञान प्रगति कैसे कर पाता ? उसकी शोध अनुसंधान के अनेकानेक विषयों में एक खोज ईश्वर की, विधि व्यवस्था का संचालन करने वाले नियन्ता की भी है । यह सोचना अकारण नहीं है । वह दिन दूर नहीं जब साधनों से तो नहीं, अपने तर्क-प्रतिपादन-तथ्यों के सहारे दर्शन की वैशाखी पर चलकर पंगुविज्ञान अपनी इस मंजिल को अवश्य पूरी करेगा ।

दर्शन-शास्त्र के अनुसार ईश्वर का "एकोऽहम् बहुस्यामि" का उद्घोष इस बात का प्रमाण है कि ब्रह्मचेतना एक ही है । उसी का विस्तार इस जगत रूपी माया के स्वरूप में प्रकट हुआ है । बिजली की धारा से जिस तरह अनेकानेक कार्य लिये जा सकते हैं, उसी तरह ब्राह्मी चेतना का उपयोग अनेक रूपों में प्रकट होता है । विद्युत सूक्ष्म है परन्तु उसकी क्रियाशीलता स्थूल में अनुभव की जा सकती है । स्थूल का अस्तित्व भी विद्युत के आधार पर ही टिका रहता है । ठीक इसी प्रकार निराकार ब्रह्म-शक्ति को प्रत्यक्ष जगत की क्रियाशीलता में अनुभव किया जा सकता है तथा प्रत्यक्ष-जगत का प्राणाधार भी वही होता है ।

ऋषियों ने इस जगत के गूढ़-रहस्यों का अध्ययन यन्त्रों के आधार पर नहीं, अन्त-र्दृष्टि-आत्मज्ञान के आधार पर किया था । उनने प्रमाणित कर दिखाया था कि जो मनुष्य के भीतर है वही बाहर भी है तथा जो बाहर है वह भीतर भी है । उसने मानव मात्र के अन्तराल की खोज को समस्त ब्रह्माण्ड की खोज बतलायी थी । एक शब्द में उसने इस विषय को 'आत्मिकी' के नाम से पुकारा था । जिसका भावार्थ है अपने आप को-अपने अन्तरंग में छिपे गूढ़ रहस्यों को जानने की साधना । इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही ध्यान-साधना का रास्ता सुझाया गया था ।

जल की सतह पर यदि हलचल मची हो तो उसकी परत को देखना सम्भव नहीं । ठीक उसी प्रकार मन में ज्वार-भाटे उठते रहे तो उसके अन्तराल में सन्निहित दिव्य चेतना का अनुभव अत्यन्त ही मुश्किल है । इसके लिए तो संयमित व एकाग्र मन की आवश्यकता है जो ध्यान-साधना से ही सम्भव है । वैज्ञानिकों को चाहिए कि वे अपनी मनःशक्ति को माया रूपिणी प्रकृति को समझने में समय नष्ट न करके दिव्यात्मा के अनुभवों की खोज में प्रयुक्त करें, जिससे परम सत्य की जानकारी तथा मानव जीवन के परम उद्देश्य का उद्घाटन हो सके ।

सृजेता की एक अनुपम कृति यह सृष्टि

मोटी सृष्टि से यह सृष्टि अनगढ़, अव्यवस्थित और निष्प्रयोजन जान पड़ती है, पर गहराई से पर्यवेक्षण-अध्ययन करने वाले जानते हैं कि सर्वत्र सुव्यवस्था, सुगढ़ता का साम्राज्य है । अनगढ़, निष्प्रयोजन दीखने वाले घटकों की भी अपनी महत्ता-उपयोगिता है । विशालकाय समुद्र को देखकर यह प्रतीत हो सकता है कि उसने बेकार में भूमण्डल का एक बड़ा भाग घेर रखा है, पर इकालॉजी के विशेषज्ञ जानते हैं कि समुद्र का अस्तित्व न होता तो समय पर वर्षा, मौसम आदि की प्राकृतिक सुविधाएँ नहीं उपलब्ध होतीं । इस विराट सृष्टि में जो कुछ भी है, उपयोगी है उन घटकों में एक अद्भुत तारतम्य एवं सामंजस्य देखने को मिलता है । ऐसा लगता है जिसने भी सृष्टि बनायी, बड़ी सोच-समझकर बनायी होगी ।

गढ़ने एवं परस्पर एक दूसरे से तारतम्य स्थापित करने वाले स्रष्टा कलाकार की कलाकृति एवं व्यवस्था-बुद्धि को देखकर हैरत में पड़ जाना पड़ता है । गर्भकाल में जीवन को परिपोषित करने वाली एक तरह की परिस्थितियाँ उपलब्ध थीं जन्म होने पर समूची सत्ता ही बदली थी, पर तदनरूप दूसरे तरह की अनुकूल परिस्थितियाँ पहले से ही मौजूद थीं । शरीर को विभिन्न प्रकार की इन्द्रियाँ मिलीं, तो उनकी उपयोगिता को सार्थक करने वाले अनेक विषयों का भी अस्तित्व विद्यमान था । शरीर को दो छोटी आँखें मिलीं, तो उन आँखों को सार्थकता प्रदान करने वाला लाखों मील दूर प्रचण्ड सूर्य था, उससे भी दूर टिमटिमाते हुए नन्हें-नन्हें तारे थे । उनसे निस्सृत प्रकाश को हमारी आँखों ने देखा । प्रकाश का अस्तित्व न होता तो ये आँखें बेकार थीं । एकाकी वे देख पाने में कुछ भी समर्थ न हो पातीं । दायें-बायें कानों को सुनने के लिए ध्वनि की सत्ता मौजूद थी तभी कर्णेन्द्रियाँ उसे सुनने में समर्थ हो सकीं । ऐसा लगता है कि जिसने इन कानों की रचना की, मानो उसी ने ध्वनि उत्पादक स्रोतों में ध्वनि आविर्भाव की क्षमता भी प्रदान की । जिसने स्वादानुभूति के लिए जिह्वा दी उसी ने फलों, शाकों एवं खाद्यान्न में रस उत्पन्न किया । यही स्थिति घ्राणेन्द्रियों की है । इनकी सार्थकता के लिए ही पुष्पों एवं वनस्पतियों की सुगन्ध सम्भवतः अभिव्यक्त हुई । इस विलक्षण तादात्म्य को देखकर यह भान होता है कि गर्भावस्था की घोर अन्धकार तमिस्रा में बैठा जो इन्द्रियों की रचना कर रहा था, वह अवश्य ही कुशल तत्वदर्शी सृष्टि का दृष्टा रहा होगा, जिसे बाह्याभ्यन्तर जगत का परिपूर्ण ज्ञान था । जिसे इन्द्रियों को मात्र गढ़ना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ही अभीष्ट नहीं था वरन् उनका सुनिश्चित प्रयोजन भी उसके समक्ष स्पष्ट था ।

सुनिश्चित प्रयोजन और सुव्यवस्था का प्रमाण भूमण्डल पर उपलब्ध परिस्थितियाँ भी देती हैं । उन्हें देखकर लगता है कि सर्वज्ञ द्वारा ही जीवन को परिपोषित करने के लिए हर तरह की अनुकूलताओं का सृजन किया गया है । भौतिकीविदों के वह प्रतिपादन तर्कपूर्ण नहीं लगते कि पृथ्वी सृष्टि की आदि में जलता हुआ एक आग का गोला था जो कालान्तर में अनेकानेक परिवर्तनों से गुजरने के बाद अपने आप इस योग्य बन गया कि जीवधारी जीवनयापन कर सकें। जीवन धारण करने योग्य बनने के लिए पृथ्वी ने जितने रूप बदले हैं वे इतने अधिक एवं सुव्यवस्थित हैं कि उन्हें आकस्मिक नहीं माना जा सकता । एक निश्चित गति एवं कक्षा में पृथ्वी सतत् परिभ्रमणशील है । पृथ्वी सतत् अपनी धुरी पर घूमती रहती है, जिससे एक के बाद एक दिन और रात बनते हैं । सूर्य के चारों ओर पृथ्वी का घूमना एक दूसरे प्रकार की गति है । गैलीलियो तथा ब्रूनो ने इन्हीं दो गतियों की खोज की थी पर भारत में प्रख्यात ज्योतिर्विद् आर्यभट्ट ने सदियों पूर्व इन दोनों ही तरह की गतियों का वर्णन 'आयं गौः पृश्निर क्रमीदसदन्मातरंपुरः' मन्त्र में किया है इन दोनों गतियों के कारण ही पृथ्वी के परिभ्रमण में स्थिरता आती है । वह अपने ध्रुवीय अंशों पर घूमते हुए १३ अंश पर झुकी हुई है । ऋतुओं में नियमितता का कारण यह झुकाव ही है उल्लेखनीय है कि यदि झुकाव एवं गति की विशेषताएँ न होतीं तो पृथ्वी पर विविध प्रकार की वृक्ष-वनस्पतियों का अस्तित्व भी न होता । पृथ्वी की स्थिरता जड़ता को जन्म देती और वह 'सस्य श्यामला' नहीं दिखाई पड़ती । ध्रुवीय अक्ष पर पृथ्वी के झुकाव में पड़ने वाले थोड़े अन्तर से भी गम्भीर संकट उत्पन्न हो सकते हैं ।

जीवन धारण करने योग्य परिस्थितियों के निर्माण में भूमण्डल के वातावरण की सहायक गैस परतों का विशेष योगदान है । खगोलविज्ञानियों के अनुसार प्रतिदिन लगभग दो करोड़ उल्काएँ तीस मील प्रति सेकण्ड की गति से गिरती हैं । इनकी गति एवं प्रचण्ड ऊर्जा पृथ्वी को तहस-नहस करने के लिए पर्याप्त हैं । इनके अतिरिक्त सूर्य आदि पिण्डों से पोषक जीवन-तत्त्वों के साथ-साथ घातक किरणें भी आती हैं । सोलह सौ कि. मी. की मोटी गैस परतें उन हानिकारक प्रभावों से पृथ्वी की रक्षा करती हैं । ट्रोपोस्फीयर स्ट्रेटोस्फीयर, मीजोस्फीयर, थर्मोस्फीयर, आयनोस्फीयर जैसी विभिन्न परतें रक्षा कवच की भूमिका निभाती हैं । सूर्य की प्रचण्ड गर्मी का उपयोगी अंश पृथ्वी के जीवधारियों के लिए इन परतों से छनकर आता है । साथ ही समुद्र की विशाल जलराशि को वाष्पीकृत करने में भी इन परतों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है । वायुमण्डल के साथ मिलकर महासागर भी प्रकृति के सन्तुलन चक्र में सहयोग देते हैं ।

मूलतः जलवायु और प्रकाश पर सभी जीवधारियों का अस्तित्व टिका हुआ है । वृक्ष-वनस्पतियाँ जो प्राणियों की आहार हैं, भी इन्हीं तीनों के सहयोग से उगती, फूलती और फलती हैं । ये तीनों ही जीवनदायी तत्त्व पृथ्वी पर प्रचुर परिमाण में मौजूद हैं । न केवल मौजूद हैं वरन् उनका एक सुनिश्चित चक्र एवं सन्तुलन है, जिसके डगमगाते ही भारी संकट उत्पन्न हो सकता है । अन्यान्य ग्रहों पर ऐसी अनुकूल परिस्थितियाँ नहीं हैं कि जीवधारी वहाँ जीवित रह सकें । लम्बी खोज-बीन के बाद भी ऐसा कोई प्रमाण अब तक नहीं मिल सका है कि जीवन का अस्तित्व अन्य ग्रहों पर भी है । ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करके अन्यान्य ग्रहों पर बसने की योजनाएँ तो बन रही हैं, पर वे व्यावहारिक कम काल्पनिक अधिक हैं ।

न केवल जीवित रहने बल्कि प्रगति की दिशा में अनवरत बढ़ते रहने के लिए भी किसी दूरदर्शी सत्ता ने समस्त संशोधन प्रदान किये हैं । वन-सम्पदा, खनिज सम्पदा, पेट्रोलियम आदि का सभ्यता के विकास में विशेष योगदान है । वे मनुष्य को हाथ नहीं लगी होतीं तो उसकी बुद्धि की प्रखरता एक किनारे रखी रह जाती और आज भी वह आदिम युग की भाँति पत्थरों से खेलता होता । पर धन्यवाद उस स्रष्टा को-उस कलाकार को जिसने कि भूमण्डल को अनुकूलताएँ देकर अपनी महानता का परिचय दिया । पृथ्वी पर भी यदि चन्द्रमा, सूर्य अथवा मंगल जैसी दुरूह परिस्थितियाँ होतीं तो जीवन का अस्तित्व कभी का समाप्त हो गया होता और सर्वत्र श्मशान जैसी नीरवता का साम्राज्य होता ।

पृथ्वी की आकृति एवं प्रकृति को देखने से भी लगता है कि उसे सोच-समझकर इस योग्य बनाया गया है कि जीवधारी निवास कर सकें । यदि पृथ्वी का आकार अब की तुलना में छोटा, चन्द्रमा जितना होता तो उसका व्यास भी एक चौथाई होता । प्राप्त निष्कर्षों के अनुसार पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति से चन्द्रमा की गुरुत्व शक्ति छह गुनी कम है । पृथ्वी का आकार चन्द्रमा जितना हो जाने पर उसकी गुरुत्वाकर्षण-शक्ति भी अत्यन्त कम हो जाती । उल्लेखनीय है कि धरती के वायुमण्डल, जल एवं खनिज सम्पदा को सँभालने, सुरक्षित रखने में गुरुत्वबल का विशेष सहयोग है । उसमें कमी होते ही अनेक प्रकार के असन्तुलन का सामना करना पड़ता है । वायुमण्डल की रक्षा परतों में व्यतिरेक से ताप की मात्रा इतनी अधिक हो जाती कि जीवित रहना कठिन पड़ता । यदि पृथ्वी का व्यास वर्तमान व्यास का दुगुना होता तो भी अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होतीं । व्यास दूना होने से धरातल चौगुना हो जाता तथा पृथ्वी की गुरुत्वकर्षण शक्ति भी दुगनी हो जाती । परिणामस्वरूप १६ सौ कि. मी. की ऊँचाई तक फैला वायु-मण्डल खतरनाक रूप से सिकुड़कर कम हो जाता । वायुमण्डलीय गैसों का दबाव भी १५ से २० पौण्ड प्रति वर्ग इन्च तक बढ़ जाता, जिसका दुष्प्रभाव जीवन पर भी पड़ता । उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जैसी भीषण ठण्ड अधिकांश क्षेत्रों में पड़ती, फलतः जीना दूभर हो जाता ।

उपरोक्त वैज्ञानिक तथ्यों पर विस्तृत प्रकाश डालने वाले मानिटोवा (कनाडा) विश्वविद्यालय के जीव भौतिकीविद् फ्रेंक ऐलेन 'दी एवीडेन्स ऑफ गाड इन एक्सपेण्डिग यूनिवर्स' पुस्तक में लिखते हैं कि-''यह पृथ्वी किसी समर्थ सत्ता द्वारा बड़ी सोच-समझकर सत्प्रयोजन के लिए बनायी गयी है ताकि जीवों एवं पादपों का निर्वाह होता चले । यदि हमारी पृथ्वी का आकार सूरज जितना बड़ा होता तथा उसकी क्षमता यथावत् कायम रहती तो उसकी गुरुता १५० गुनी बढ़ जाती । फलस्वरूप वायुमण्डल की ऊँचाई घटकर मात्र चार मील रह जाती । यदि ऐसा हो तो यह एक स्थिति होगी जिसमें पानी का भाप बनकर उड़ना बन्द हो जाएगा । तब एक पौण्ड के प्राणी का वजन बढ़कर १५० पौण्ड हो जायेगा तथा मनुष्य, हाथी, शेर आदि का आकार घटकर अत्यन्त कम हो जाएगा ।'' फ्रेंक एलेन का मत है कि ''गिलहरी जैसी इस छोटी आकृति वाले मनुष्य में बौद्धिक क्षमता भी प्रायः समाप्त हो जाती । पर सचमुच ही वह सत्ता अत्यन्त महान है, जिसने उन प्रतिकूलताओं से धरती को बचाये रखा तथा अनुकूलताओं को जन्म देकर समस्त जीवों को विकसित होने का अवसर प्रदान किया ।''

आकार का ही नहीं पृथ्वी से अन्य ग्रहों की दूरी से भी धरती पर अनुकूल परिस्थितियों के निर्माण में घना तारतम्य एवं सम्बन्ध है । सूर्य को ही लें । उसकी दूरी पृथ्वी से इस समय जितनी है उससे यदि बढ़कर दूनी हो जाए तो सूर्य से मिलने वाला ताप घटकर चौथाई हो जाएगा । सर्दियों के मौसम की अवधि दुगुनी हो जाएगी । यह स्थिति हिमयुग को आमन्त्रित करेगी । इसके विपरीत यदि सूर्य से पृथ्वी की दूरी वर्तमान दूरी से घटकर आधी हो जाय तो सूर्य से मिलने वाली गर्मी चार गुनी बढ़ जाएगी । फलतः ऋतुओं की लम्बाई आधी रह जाएगी । धरती इतनी अधिक गरम हो जाएगी कि प्राणी, वृक्ष, पादप सभी जलकर खाक बन जाएँगे । इस समय पृथ्वी का जो आकार है, सूर्य से जितनी दूरी पर है, अयन में घूमने का उसका जो वर्तमान वेग है, वे सभी जीवन धारण करने में अनुकूल हैं । मनुष्य जाति अनेकानेक सुख-सुविधाओं का उपभोग करती हुई, आनन्द करती हुई आमोद-प्रमोद कर रही है, वह अनुकूलताओं का ही परिणाम है ।

जड़ परमाणुओं के संघात से सृष्टि के अकस्मात् बनने जैसे निराधार तथ्यों का प्रतिपादन करने वाले तथाकथित अल्पबुद्धि सम्पन्नों के लिए सदियों पूर्व प्रसिद्ध दार्शनिक फ्रांसिस ने कहा था कि ''थोड़ी वैज्ञानिक बुद्धि तथा दार्शनिकता आदमी को नास्तिकता की ओर ले जाती है पर गम्भीर शोध, बुद्धि एवं दार्शनिकता मनुष्य को आस्तिकता की ओर ले जाती है । अतएव सृष्टि की नियामक सत्ता के सन्दर्भ में इनकार करने के पूर्व गम्भीरता से विचार करना चाहिए ।''

सचमुच ही वह अन्वेषक दृष्टि विकसित हो जाय तथा गहराई से मनुष्य खोज-बीन करे तो अपने ही चारों ओर उसे समर्थ अदृश्य-सत्ता के अनेक प्रमाण मिल जायेंगे । तब यह चाहे वैज्ञानिक ही क्यों न हो, रसायन शास्त्री 'थामस डेविड पावर्स' की भाँति अपनी भाषा में कह उठेगा ''मेरे चारों ओर जितना भी यह दृश्य जगत है, मैं उसमें नियम और प्रयोजन देखता हूँ । मुझे वह मान्यता निराधार जान पड़ती है कि सभी पदार्थ एवं पदार्थों से युक्त यह सृष्टि अकस्मात्-मात्र परमाणुओं के संघात से बनी है । मैं तो सर्वत्र कण-कण में बुद्धि व्यवस्था का साम्राज्य देखता हूँ । एक ऐसी बुद्धि जो सुपर है, अचिन्त्य, अगोचर है । उस महती बुद्धि को ही मैं परमात्मा कहता हूँ ।

डेविड पावर्स के अनुसार-''एक रसायनविद् के लिए तत्त्वों की नियतकालिक व्यवस्था सबसे महत्त्वपूर्ण एवं आकर्षक अध्ययन का विषय होना चाहिए, न कि मात्र तत्त्वों के गुण-दोष का अध्ययन-विश्लेषण । कारण कि समाहित नियमबद्धता किसी निर्माणकर्त्ता 'सर्वसमर्थ' का प्रमाण स्वयं दे देगी ।'' पानी को उन्होंने एक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है । फार्मूला के अनुसार पानी का परमाणु भार १८ होता है । रसायन शास्त्र के सिद्धान्तानुसार सामान्य तापमान एवं दबाव पर इसे गैसीय अवस्था में होना चाहिए । कारण कि तत्त्वों की कालक्रम तालिका से यही निष्कर्ष निकलता है । अमोनिया का परमाणु भार १७ तथा वह ऋण ३३ सेंटीग्रेड जितने कम तापक्रम पर भी वायुमण्डल के दबाव में गैस है । कालक्रम तालिका में तत्त्वों की स्थिति के हिसाब से हाइड्रोजन का पानी से घनिष्ट सम्बन्ध है उसका परमाणु भार ३४ तथा ऋण ५९ सेंटीग्रेड पर भी वह गैस ही है किन्तु आश्चर्य यह है कि सामान्य तापमान पर भी वह सर्वथा द्रव्य अवस्था में रहता है यह एक ऐसी विलक्षण स्थिति है जो हर विचारशील को सोचने पर बाध्य करती है पर कोई कारण समझ में नहीं आता है, सिवाय इसके कि पानी की उपयोगिता पृथ्वी पर सर्वाधिक है । वृक्ष-वनस्पतियों तथा सभी के लिए वह अत्यन्त उपयोगी है । सम्भव है उसे अन्य पदार्थों से अलग विशिष्ट स्थिति सृजनकर्त्ता ने इसीलिए प्रदान की है ।

थोड़ी और गहराई में चलें तो पानी के इस विशिष्ट गुण की महत्ता और भी स्पष्ट होती है । भूमण्डल का तीन चौथाई हिस्सा पानी से ढका है । ऋतु चक्र एवं तापमान के सन्तुलन में इस विपुल जलसम्पदा का विशेष सहयोग है । तत्त्वों की क्रम-तालिका के अन्य तत्त्वों से अलग हटकर पानी की अपनी अलग विशेषताएँ न हों तो वायुमण्डलीय तापमान एवं प्रकृति सन्तुलन चक्र में भारी व्यतिरेक उत्पन्न हो सकता है । पानी को पिघलने के लिए अधिक गर्मी चाहिए । चिरकाल तक वह द्रवावस्था में बना रहता है । भाप के रूप में परिवर्तित होकर उड़ने के लिए और भी अधिक १०० अंश सें. ग्रे. तापक्रम चाहिए । तापक्रम के सामान्य परिवर्तनों में पानी अपनी अवस्था नहीं बदलता । यह उसकी महत्त्वपूर्ण विशेषता है । थोड़े तापक्रम पर यदि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भाप बनकर उड़ने लगे अथवा ताप की थोड़ी कमी होने पर बर्फ के रूप में जमने लगे तो गम्भीर संकट पैदा होने लगेंगे । सर्वत्र पानी का अभाव हो जाएगा ऐसी स्थिति में जीवन संकट में पड़ जाएगा । यदि पानी के अन्दर तापमान रोधक विशिष्ट क्षमता न होती तो पृथ्वी जीवन के लिए उतनी अनुकूल न होती ।

यह भी एक विलक्षण बात है कि जितने भी पदार्थ हैं उनमें एकमात्र पानी ही ऐसा द्रव है जो जमने पर हल्का हो जाता है । अन्यान्य द्रवों की स्थिति इसके विपरीत है । यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि जमने के बाद नदियाँ अथवा झीलों में डूब जाने के बजाय वह ऊपर सतह पर तैरता है और कठोर पिण्ड के रूप में बदल जाता है । पानी के सबसे ऊपरी सतह पर यह इन्सुलेशन की एक ऐसी सतह बना लेता है, जिसके कारण नीचे का तापक्रम जमाव बिन्दु से ऊपर बना रहता है । जलचर जीव तथा जलीय वनस्पतियाँ इसी कारण सुरक्षित व जीवित बने रहते हैं ।

पानी ही नहीं सृष्टि के ऐसे अनेक घटक हैं जो मस्तिष्क को हतप्रभ करते हैं । उनकी रचना का अध्ययन विश्लेषण तो भौतिक-विज्ञान द्वारा किया जा सकता है पर इसका कोई उत्तर नहीं मिलता कि उनमें वे आवश्यक विशेषताएँ क्योंकर उत्पन्न हुईं । विशेषकर भू-मण्डल के लिए ही क्यों ? उत्तर एवं समाधान के लिए डेविड थामस जैसे अनेकों मूर्धन्य वैज्ञानिकों की भाँति सोचना होगा कि "यह समूची सृष्टि किसी सर्वोच्च कुशल कलाकार की अद्‌भुत कलाकृति है, किसी प्रयोजन हेतु बनायी गयी है । वह परम-सत्ता अभिनन्दीय, वरणीय एवं श्रद्धा करने योग्य है । उससे सम्बन्ध जोड़कर, सहयोग प्राप्त कर मनुष्य अपनी सत्ता को भी ससीम से असीम, लघु से महान बना सकने का सौभाग्य प्राप्त कर सकता है ।"

"पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते"

तत्त्वदर्शी सृष्टि की प्रत्येक संरचना को परिपूर्ण मानते हैं तथा यह विश्वास करते हैं कि अनगढ़ होते हुए भी वे घटक महत्त्वपूर्ण तथा विशिष्ट प्रयोजन के लिए बनाये गये हैं । उनका यह प्रयास रहता है कि इस सृष्टि तथा उससे जुड़े जड़-चेतन उपादानों को सुगढ़ और अधिक सुन्दर बनाने का प्रयत्न करें । अनुदान एवं वरदान के रूप में जो प्रकृतिप्रदत्त परिस्थितियाँ मिली हैं, उन पर सन्तोष व्यक्त करते और उनका नियोजन-सदुपयोग प्राणी मात्र के विकास के लिए करते हैं । यही तत्वदृष्टि है, जिसके सहारे वे स्वयं आगे बढ़ते, ऊँचे उठते तथा सभी के कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहते हैं । अपनी सन्तुलित दृष्टि में वे जिस पूर्णता का सर्वदर्शन करते हैं उसे अधिकाधिक उजागर करने का प्रयास अपने अन्दर एवं चारों ओर की जुड़ी परिस्थितियों में करते रहते हैं । इस सत्प्रयत्न में उनका जीवन धन्य बनता और अनेक को धन्य बनाता है ।

दोषपूर्ण दृष्टि सर्वत्र अपूर्णता का रोना ही रोती रहती है । उसे चारों ओर दोष-दुर्गुणों का, अभावग्रस्त, विपन्न परिस्थितियों का ही दर्शन होता है । फलतः ऐसी दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति अपनी निषेधात्मक मनोवृत्ति के कारण सदा खीजते रहते, दुःखी रहते तथा अपनी प्रकृतिप्रदत्त प्रसन्नता को गँवा बैठते हैं । स्वयं के विकास के लिए वे जो प्रयत्न पुरुषार्थ कर सकते थे, उसका भी पल्ला छोड़ बैठते हैं । फलतः वह अपूर्णता जो उनकी कल्पना क्षेत्र में ही रहती है, वह साकार हो उठती है तथा तत्त्वतः वह न होते हुए भी सर्वत्र दिखायी पड़ने लगती है ।

तथ्यों को वैज्ञानिक कसौटी पर कसने पर तो सचमुच ही हर वस्तु अपूर्ण जान पड़ती है । अपूर्ण इस अर्थ में जो मापदण्ड के प्रचलित पैमाने हैं, वे अधूरे हैं । मापने के पैमाने एक सापेक्ष जानकारी ही दे पाते हैं । लम्बे समय तक मान्यता थी कि अनेक ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं और दीर्घवृत्त बनाते हैं । वृत्त का अर्थ-एक गोल संरचना । पर ग्रहों का यह परिक्रमा वृत्त गोल नहीं होता । सूर्य तथा अन्य सभी ग्रह अपने ध्रुव केन्द्र पर चपटे होते हैं फलतः बनने वाला वृत्त पूर्णतः गोल नहीं होता । पृथ्वी भी गोल नहीं है, उसका स्वरूप चपटा गोलाभ है । आइंस्टीन ने भी अपनी 'जनरल थ्योरी आफ रिलेटिविटी' में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि यदि किसी रेखा को अनन्त तक बढ़ाया जाय तो वह सीधी न रह सकेगी, एक झुके हुए स्वरूप में दृष्टिगोचर होगी । पूरी सतर्कता एवं सजगता में खींची जाने वाली शुद्ध सरल रेखा भी सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से देखने पर टेड़ी-मेड़ी दिखायी पड़ती है । गणितज्ञों ने पूर्ण संख्या की अपनी मान्यता प्रतिपादित की है, पर वह भी एक भ्रम मात्र है ।

कम्पोजर, संगीतज्ञ भी अष्टक के बीच स्वरान्तराल को पूर्ण बताते हैं पर वास्तव में वह पूर्ण नहीं है । इससे निखरित प्रथम ध्वनि से उसकी अपूर्णता ज्ञात होती है । जीव-विज्ञानियों के अनुसार जीवन का क्रमिक विकास भी त्रुटिपूर्ण है । उसमें आर. एन. ए., डी. एन. ए. को ही इकाई मानने की प्रणाली पूर्णतः सही नहीं है । चरम वैज्ञानिक कसौटी पर कसने के बाद वैज्ञानिकों ने यह स्वीकारना आरम्भ कर दिया है कि प्रकृति में कोई भी गोल अथवा पूर्ण सीधी रेखा नहीं है तो बाह्य जगत में रेखा गणितीय पूर्णता को पाना भी प्रायः असम्भव है । यदि पाया भी जा सकता है तो मात्र मानव मस्तिष्क में ।

वैज्ञानिक जैकोव ब्रोनोस्वी ने इस अपूर्णता को मानव जाति के लिए सौभाग्यसूचक माना है तथा कहा है कि इस अपूर्णता के कारण ही प्रकृति की खोज निरन्तर चलती रह सकेगी । फलतः विज्ञान का कभी अन्त नहीं होगा । ब्रह्माण्ड-विज्ञानियों को यह जगत हमेशा एक प्रश्न का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्तर पाने हेतु प्रेरित करता है कि इस ब्रह्माण्ड का क्यों व किस प्रकार उद्भव तथा विकास हुआ ? सदियों एवं युगों बाद भी सटीक उत्तर का न मिलना मानवी बुद्धि की अपूर्णता का परिचायक है ।

ऐसे कितने ही प्रश्न हैं जिनका सही उत्तर दे सकना कठिन है । संसार में सबसे अधिक सुन्दर कौन है अथवा कौन अब तक पैदा हो चुका है ? यह बता सकना अत्यन्त कठिन है । कारण कि सुन्दरता के मापदण्ड हर देश, समाज एवं सभ्यता के अलग-अलग हैं । सबसे कुरूप व्यक्ति की तलाश कर सकना भी उतना ही दुष्कर काम है । ऐसे बुद्धिमान की खोज करनी हो जो अपने में परिपूर्ण हो तो आइन्सटीन का उदाहरण देना भी समीचीन न होगा, क्योंकि सृष्टि के विराट् स्वरूप तथा रहस्यों को देखकर वे भी अपनी बुद्धि की तुच्छता-नगण्यता महसूस करते थे । जिन कार्यों के लिए किसी वैज्ञानिक, कलाकार, खिलाड़ी, मनीषी, समाजसेवी को सर्वश्रेष्ठ ठहराया जाता है तथा विभिन्न प्रकार की उपाधियाँ एवं पारितोषिक दिए जाते हैं, वे मान्यताएँ भी सामयिक ही होती हैं, चिरस्थायी नहीं रह पातीं ।

न्यूटन, डारविन, मेण्डलीफ के भौतिक एवं जैविकी सिद्धान्त कभी अपने में परिपूर्ण समझे जाते थे, पर नयी खोजों ने उनके सिद्धान्तों को उलट-पलट दिया । संगीत, गायन, वादन, बलिष्ठता, समर्थता, शारीरिक एवं मानसिक दक्षता के क्षेत्र में कितनी ही प्रतिस्पर्द्धाएँ समय-समय पर आयोजित होती रहती हैं । उनमें कितने ही नये रिकार्ड स्थापित होते तथा पुराने टूटते हैं । यह क्रम सतत् चलता रहेगा । उनमें सर्वश्रेष्ठता एवं पूर्णता का वर्चस्व किसी का भी सदा कायम रह सकना असम्भव है ।

बुद्धिवाद एवं प्रत्यक्षवाद की कसौटी पर कसने पर तो सृष्टि का हर घटक-हर संरचना अपने में अपूर्ण-अधूरी है । धार्मिक मान्यता के अनुसार ईश्वर पूर्ण है, सर्वज्ञ परन्तु जिन्होंने उसका साक्षात्कार नहीं किया, उनके लिए तो यह संसार ही ईश्वर का साक्षात् स्वरूप हो सकता है, जिसका भौतिक विश्लेषण करने पर अपूर्णता का ही दर्शन होता है, उस आधार पर तथाकथित बुद्धिजीवी उस सृष्टि को भी अपूर्ण घोषित कर सकते हैं ।

ऐसे तर्कों की कसौटी पर विश्लेषण करने पर तो हर उपयोग की वस्तु अथवा घटक का एक काला पक्ष नजर आता है । दिन के साथ रात का अविच्छिन्न पक्ष जुड़ा है । फूल के साथ काँटे गुँथे होते हैं । सूर्य की किरणें जीवनदायी-प्राणतत्व से परिपूर्ण होती हैं पर गर्मी की दुपहरी में उसका ताप असह्य एवं कष्टकारक मालूम पड़ता है । उस आधार पर तो सूर्य भी अपूर्ण जान पड़ता है । चन्द्रमा की शीतलता एवं धवल प्रकाश हर किसी के मन को पुलकित करने में सक्षम है, पर कलुषित दृष्टि को तो उसका काला दाग ही दिखायी देता है । सामान्य व्यवहार में भी भले व्यक्तियों में बुराइयाँ ढूँढ़ते रहने की प्रवृत्ति निषेधात्मक मनोवृत्ति का परिचायक है ।

सर्वत्र अपूर्णता ढूँढ़ते रहने की दोष-दृष्टि का परिमार्जन आवश्यक है । अधिक अच्छा है सृष्टि के प्रत्येक घटक को परिपूर्ण माना जाय । बन पड़े तो उसे सुन्दता एवं सुगढ़ता प्रदान करने का प्रयत्न किया जाय । मूल रूप से मनुष्य भी पूर्ण है । 'स्व' का रूप तमसाच्छन्न हो जाने के कारण अपूर्णता दिखायी पड़ती है । उस तमस् को हटाने तथा 'स्व' को प्रकाशित करने के लिए साधनात्मक प्रचण्ड पुरुषार्थ किया जाना चाहिए ।

विश्व का तात्विक स्वरूप जानने के लिए साधना की आवश्यकता

परिवर्तनशील सृष्टि में हर क्षण जीवन-मृत्यु का संघात चल रहा है ! सृजन में विनाश का क्रम अनिवार्य रूप से जुड़ा है । नये पौधे उगते हैं, जीव पैदा होते हैं, किन्तु देखते-देखते काल के गर्भ में समा जाते हैं । जीवन-मरण के इस चक्र को देखकर यह प्रश्न सदियों से मानव मन को आन्दोलित करता चला आ रहा है कि इन सबके पीछे सत्य क्या है ?

जीवन क्या है ? जड़ परमाणुओं का सम्मिश्रण मात्र या अन्य कुछ ? विलास, वैभव एवं शक्ति के क्षणिक सुखों के प्रभाव के कारण उस प्रश्न को भले ही भुला दिया जाय, किन्तु उनका आवेश कम होते ही वह पुनः उठ खड़ा होता है । आदिकाल से ही मनुष्यों को सृष्टि प्रवाह के सत्य को जानने की आकांक्षा रही है तथा जब तक इसका समाधान नहीं मिल जाता, बनी ही रहेगी । विज्ञान, मनोविज्ञान एवं दर्शन सभी अपने-अपने ढंग से समाधान प्रस्तुत करते हैं ।

प्रचलित मान्यताएँ तीन प्रकार की हैं ?

(१) शून्यवादियों के अनुसार सब कुछ शून्य है ।

(२) विज्ञान के अनुसार जीवन जड़-तत्त्वों का सम्मिश्रण मात्र है, जो तत्त्वों के संगठन-विघटन के साथ उत्पन्न तथा विनष्ट होता है ।

(३) दार्शनिकों के अनुसार जीवन का आधार भौतिक तत्त्व नहीं है । इससे परे उसकी सत्ता है । वह अविनाशी है ।

विश्व के सभी वैज्ञानिकों, दार्शनिकों, धर्मग्रन्थों की मान्यताएँ इन तीनों के ही इर्द-गिर्द घूमती तथा अपने स्तर पर प्रतिपादन करती हैं ।

शून्यवादियों का मत है कि संसार परिवर्तनशील है । हर क्षण प्रत्येक कण में परिवर्तन हो रहा है । कोई वस्तु स्थायी नहीं है । इस कारण किसी चीज का अस्तित्व नहीं है । सब शून्य है । भूत-भविष्य अस्तित्वरहित हैं,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वर्तमान ही सत्य है । शून्यवाद की यह मान्यता विचारणीय है ।

सापेक्षवाद के सिद्धान्त के अनुसार भूत, वर्तमान एवं भविष्य का अस्तित्व एक-दूसरे के सापेक्ष है । वर्तमान का स्वतन्त्र अस्तित्व सम्भव नहीं । 'भूत एवं भविष्य' को स्वीकार किये बिना 'वर्तमान' की कल्पना नहीं की जा सकती । वर्तमान को स्वीकार करने का अर्थ है परोक्ष रूप में भूत एवं भविष्य को स्वीकार करना । इनकी मान्यता उसी प्रकार है जैसे माता-पिता के अस्तित्व को अस्वीकार करके सन्तान के अस्तित्व को स्वीकार करना । शून्यवाद के मत का पक्ष यह है कि प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है, किसी में स्थायित्व नहीं है, इस कारण सब भ्रम है, शून्य है ? परिवर्तन के कारण प्रत्येक वस्तु का स्वरूप हर क्षण बदल रहा है, सत्य है । किन्तु मात्र परिवर्तन होते रहने के कारण से ही प्रत्येक वस्तु के अस्तित्व से इनकार कर देना विवेकसंगत नहीं है । यह मान्यता उसी प्रकार है जैसे यह कहा जाय कि एक बच्चे के शरीर में नित्य नये परिवर्तन हो रहे हैं, उसका स्वरूप एक-सा नहीं रहता । इसलिए बच्चे का अस्तित्व ही नहीं है । इस प्रकार का प्रतिपादन यदि कोई व्यक्ति करता है तो निश्चित ही उसको बुद्धिमान नहीं कहा जाएगा ।

संसार का प्रतिभासित होने वाला स्वरूप मिथ्या है, इस सीमा तक तो बात ठीक भी है, किन्तु उनके पीछे चल रहे प्रवाह को ही इनकार कर देना विवेकसंगत नहीं है । प्रवाह ही जीवन है जो अनन्त काल से प्रवाहित चला आ रहा है तथा अनन्त काल तक प्रवाहित होता रहेगा । पिण्ड से लेकर ब्रह्माण्ड तथा प्राणिजगत में उस चेतन-प्रवाह के अस्तित्व को इनकार कर दिया जाय तो भयंकर भूल होगी । शून्यता से गति असम्भव है । गति तो किसी चेतन कारण सत्ता से ही सम्भव है । जड़-वस्तुओं की हलचलों का जो कारण है वही चेतन-प्राणियों के जीवन का आधार है । उसी को आध्यात्मिक भाषा में आत्मा कहा गया है । वह सबके परिवर्तन का, हलचलों का कारण है । उसकी प्रकाश किरणें ही वस्तुओं पर प्रतिबिम्बित होकर उनके स्वरूप का आभास कराती हैं । सब परिवर्तनों का कारण होते हुए भी वह सदा अपरिवर्तित रहती है । शून्यवाद की मान्यता को यदि स्वीकार कर लिया जाय तो सृष्टि के कारणों की सन्तोषजनक व्याख्या सम्भव नहीं है ।

वैज्ञानिकों की मान्यता है कि सृष्टि की हलचलों का कारण परमाणुओं का परस्पर संगठन एवं संघात है । समस्त ब्रह्माण्ड में एक स्व-संचालित प्रक्रिया चल रही है । उनके अनुसार चेतना की उत्पत्ति भी जड़-परमाणुओं के परस्पर संगठन के कारण हुई है । आत्मा, मन जड़-शरीर के ही परिणाम हैं । शरीर के विनष्ट होते ही आत्मा का भी अस्तित्व नहीं रहता ।

यदि जड़-परमाणुओं के संगठन एवं हलचल मात्र से शरीर का गठन हो जाता है, तो वह कौन-सी शक्ति है जो परमाणुओं में हलचल उत्पन्न करती तथा उनको परस्पर संगठित करके सुन्दर शरीर में रूपान्तरित करती है । वह कौन-सी शक्ति है जो प्रकृति के कुछ परमाणुओं को लेकर एक प्रकार के शरीर तथा दूसरे से भिन्न प्रकार के शरीर बना देती है । विज्ञान के पास इसका कोई उत्तर नहीं है । यह कहना कि आत्मा की शक्ति जीवन का कारण भौतिक-तत्त्वों के परमाणुओं के विभिन्न संघातों का प्रतिफल है, अविवेकपूर्ण है । यदि यह सत्य है तो वैज्ञानिक उन तत्त्वों का जिनसे शरीर बना है, को लेकर जीव का निर्माण क्यों नहीं कर डालते ।

अब तक की वैज्ञानिक उपलब्धियाँ स्वयं साक्षी हैं कि प्रयोगशालाएँ एक क्षुद्र जीव का निर्माण नहीं कर सकीं । स्पष्ट है कि आत्मा जड़-परमाणुओं के परस्पर संघात का प्रतिफल नहीं वरन् एक स्वतन्त्र सत्ता है । जो शक्ति प्रकृति के तत्त्वों को लेकर सुन्दर शरीर के रूप में रूपान्तरित करती तथा जो शरीर के अन्दर चेतना के रूप में व्यक्त होती है, दोनों एक हैं । पिण्ड के अन्दर आत्मा तथा ब्रह्माण्ड में वह परमात्मा के रूप में क्रियाशील है । शारीरिक हलचलों का कारण होते हुए भी वह शरीर से परे है । शरीर के गठन, विघटन से उसका अस्तित्त्व समाप्त नहीं हो जाता, वह सदा एक रूप में बनी रहती है ।

चेतना के अस्तित्व को इनकार करने तथा जड़ वस्तुओं के साथ उसकी नश्वरता की मान्यता प्रतिपादित करने के स्थान पर यदि सत्य को जानने का प्रयास करें तो स्पष्ट होगा कि जड़ का ही अपना अस्तित्व नहीं है । जिसे हम जगत जड़ कहते हैं । वह वस्तुतः शक्ति की एक अवस्था विशेष ही है ।

उस अविनाशी तत्त्व को जो सदा एक रूप बना रहता है । दार्शनिकों ने आत्मा कहा है । जीवन का वही आधार है । जीवन-मृत्यु से वह रहित है । शरीर के अवयवों के नष्ट होने पर भी वह बना रहता है । उसका निश्चित रूप नहीं । देश-काल की सीमाओं से वह परे है । शरीर उसका देश नहीं, आयु उसका काल नहीं । काल का प्रारम्भ तो मन से होता है, देश भी मन के अन्तर्गत है । मन से-अतीत देश-काल से निमित्त से-वह परे है । वह अनादिकाल से विद्यमान है तथा अन्तकाल तक बना रहेगा । वह स्वयं अनन्त है । परिवर्तन ससीम वस्तुओं से होता है । आत्मा में परिवर्तन असम्भव है ।

यह मान्यता ही आस्तिकता है । जीवन की व्यापकता एवं आत्मा की अमरता ही सत्य है । सत्य का अनुसंधान एवं अनुभूति के लिए किया जाने वाला प्रयत्न साधना है साधना के सोपान पर चढ़ते हुए ही जीवन-मृत्यु के संघात के पीछे चल रहे सृष्टि-प्रवाह के सत्य को जाना एवं अनुभव किया जा सकता है ।

सैद्धान्तिक समाधान दार्शनिक विवेचनाओं के द्वारा हो भी जाय तो भी मन को सन्तोष नहीं मिल सकता । सत्य को जानने एवं अनुभव करने के लिए साधना के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रयोग-परीक्षणों से होकर ही गुजरना होगा । वास्तविक सत्य की अनुभूति तभी सम्भव है । यह दिव्य-दृष्टि एवं सम्वेदन क्षमता आत्मपरिष्कार के फलस्वरूप भीतर से उभरती और ऊपर से बरसती है । इसी के माध्यम से उस यथार्थ को जान सकना सम्भव होता है जो इस विश्व का तात्विक स्वरूप एवं आधारभूत कारण है ।

नियामक सत्ता के सुनियोजित क्रियाकलाप

रात्रि की नीरवता में जुगनुओं से बिछी टिमटिमाती एक चादर हमारे ऊपर छायी दिखायी पड़ती है । निखिल ब्रह्माण्ड के एक सौर-मण्डल की यह एक संक्षिप्त-सी झाँकी भर है । इस विराट् को देखकर मानवी-बुद्धि का हतप्रभ होना स्वाभाविक है । पर यह मात्र उतना ही नहीं है, यह भी एक सत्य है कि इतनी दूर अवस्थित ये ग्रह-पिण्ड-नीहारिकाएँ-पृथ्वी स्थित जीवधारियों को प्रकारान्तर से अपनी लाभकारी एवं हानिकार दोनों ही प्रकार की किरणों से प्रभावित भी करती हैं । ब्रह्माण्ड-भौतिकी के विद्वानों के अनुसार 'क्लीनिकल-इकॉलाजी' नामक एक सम्पूर्ण विधा ही अब विकसित हो रही है, जिसमें वैज्ञानिक ब्रह्माण्डीय प्रभावों का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकालते हैं कि कैसे इनके माध्यम से अन्तर्ग्रही प्रभावों की विभीषिका मिटा सकना संभव हो सकता है ।

एक सामान्य बुद्धि एवं समझ वाले व्यक्ति को तो यह प्रतीत होता है कि ब्रह्माण्ड के ग्रह-नक्षत्र अपना-अपना अलग अस्तित्व बनाये हुए अपनी कक्षाओं पर भ्रमण करते हुये अपना निर्धारित क्रिया-कलाप चला रहे हैं । किसी का किसी से कोई परस्पर सम्बन्ध नहीं है । यह बात मोटी समझ से ही सही हो सकती है । वास्तविकता कुछ और ही है । वस्तुतः यह सारे ग्रह-नक्षत्र एक ही सत्ता सूत्र में-धागों में मनकों की तरह पिरोये हुए हैं और ग्रह-नक्षत्र की माला एक ही दिशा में-एक ही नियन्त्रण में गतिशील हो रही है, इतना ही नहीं उनका परस्पर भी अति घनिष्ट सम्बन्ध है । सूर्य और चन्द्रमा के पृथ्वी पर पड़ने वाले प्रभाव को हम प्रत्यक्ष देखते हैं । अमावस्या और पूर्णमासी को आने वाले ज्वार-भाटे कृष्ण-पक्ष में वनस्पतियों का कम और शुक्ल पक्ष में अधिक बढ़ना-चन्द्रमा के पृथ्वी पर पड़ने वाले प्रभाव का ही परिणाम है । सूर्य के उदय होने पर गर्मी, रोशनी ही नहीं, सक्रियता भी बढ़ती है । हवा की चाल तेज हो जाती है, वनस्पतियों में हलचल शुरू हो जाती है और रात्रि की जो निद्रा सबको सताती थी वह अनायास ही समाप्त हो जाती है । शरीरों की रात्रि वाली शिथिलता प्रातःकाल होते ही क्रियाशीलता में बदल जाती है । ऐसे अनेक परिवर्तन सूर्य के निकलने से लेकर अस्त होने के बीच होते रहते हैं । परोक्ष परिवर्तनों का तो कहना ही क्या ? उनकी शृंखला को देखते हुए वैज्ञानिक चकराने लगते हैं और सोचते हैं कि जो कुछ इस धरती पर हो रहा है वस्तुतः सूर्य की ही प्रतिक्रिया मात्र है । समुद्र के समीप रहने वाले व अन्यान्य लोग यही अच्छी तरह जानते हैं कि चन्द्रमा और पृथ्वी एक-दूसरे के समीप हैं, इसलिये चन्द्रमा जब अपनी सोलहों कलाओं के साथ उदित होता है तो पृथ्वी के समुद्र का पानी उफनता है, परन्तु अब यह भी पता लगाया जा चुका है कि न केवल समुद्र ही वरन् मनुष्य भी प्रभावित होता है ।

अमेरिका के पागलखानों में किये गये सर्वेक्षण के अनुसार मानसिक रोगी पूर्णिमा के दिन अधिक विक्षिप्त हो जाते हैं । साधारण और कमजोर मनोभूमि के व्यक्तियों को भी इस दिन पागलपन के दौरे पड़ने लगते हैं और अमावस के दिन धरती पर लोग कम पागल होते हैं न केवल पूर्णिमा और अमावस के दिन वरन् चाँद के बढ़ने-घटने के साथ भी मनुष्यों में पागलपन बढ़ता-घटता है । विक्षिप्त मनुष्यों के साथ-साथ सामान्य स्वस्थ व्यक्तियों की चित्त दशा पर भी इन उतार-चढ़ावों का प्रभाव पड़ता है । सम्भवतः इसी कारण भारतीय तत्त्वदर्शियों ने प्रत्येक पूर्णिमा पर धर्म-कर्म में व्यस्त रहने का निर्देश दिया है ।

विभिन्न धर्मों में चन्द्रमा के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मान्यताएँ हैं । मुस्लिम धर्म में तो यह विशेष महत्व रखता है । मुसलमान ईद का चाँद देखकर अपना व्रत-उपवास पूर्ण करते हैं । ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार चन्द्रमा एक पूर्ण ग्रह है । उसे शास्त्राधार का मध्य बिन्दु मानकर ग्रह-गणित आगे चलता है, यात्रा-मुहूर्तों में चन्द्रमा की दिशा-स्थिति को ध्यान में रखा जाता है । मनुष्यों पर जब चन्द्र-दशा आती है अथवा जब अन्तर-प्रत्यन्तर आते हैं तब शुभ-लाभ का फलित बताया जाता है । सप्ताह का एक दिन चन्द्रमा के नाम पर ही निर्धारित है उस दिन को मंगलमय माना गया है । बच्चे उसे चन्दा मामा मानते रहे और माताएँ उस चन्द्र खिलौने को ला देने का आश्वासन न जाने कब से अपने नन्हें शिशुओं को देती रही हैं । ईसाई धर्म ग्रन्थों में भी चन्द्रमा व अन्यान्य ग्रहों की स्थिति व उनके सम्भावित प्रभावों पर मत व्यक्त किए गए हैं ।

न केवल सौर-मण्डल के सदस्यों में जिनमें पृथ्वी भी शामिल है, परस्पर दिखाई देने वाले और न दिखाई देने वाले तारे नक्षत्रादि भी पृथ्वी के जीवन पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं । विभिन्न विषयों में किये गए प्रयासों से अनायास ही जो निष्कर्ष सामने आये हैं उनसे वैज्ञानिकों का ध्यान सहज ही ब्रह्माण्ड-रसायन विधा की ओर आकृष्ट हुआ है । इस दिशा में जैसे-जैसे आगे बढ़ा जा रहा है, यह स्पष्ट होता चला जा रहा है कि व्यष्टि व समष्टि चेतना में गहन सम्बन्ध है । मात्र सूर्य और चन्द्रमा के द्वारा पृथ्वी पर पड़ने वाले प्रभाव की ही बात नहीं है । आगे चलकर इसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रतिक्रिया को समस्त ग्रह-नक्षत्रों के बीच परस्पर पड़ने वाले प्रभावों के आदान-प्रदान के रूप में देखा एवं समझा जा सकता है । सूर्य की चमक चन्द्रमा पर घटने-बढ़ने से वह कितना अतिशय ठण्डा और कितना अतिशय-गरम हो जाता है, उसकी नवीनतम जानकारियाँ चन्द्रशोधों ने स्पष्ट कर दी हैं । पृथ्वी पर चाँदनी भेज सकना चन्द्रमा के लिए सूर्य के अनुदान से ही सम्भव होता है । अन्य ग्रह भी परस्पर ऐसे ही आदान-प्रदान की व्यवस्था बनाये हुए हैं । एक-दूसरे पर अनेक स्तरों के आकर्षण-विकर्षण फेंकते और ग्रहण करते हैं । इसी आधार पर उनका वर्तमान स्तर और स्वरूप बना हुआ है यदि इस प्रक्रिया में अन्तर उत्पन्न हो जाय तो ग्रहों की वर्तमान स्थिति में भारी अन्तर आ जाएगा और अनका कलेवर, मार्ग, स्वरूप आदि में अप्रत्याशित परिवर्तन उत्पन्न हो जाएगा । यह थोड़ा-सा भी अन्तर अपने सौर-मण्डल की स्थिति को बदल सकता है फिर उस हलचल से अन्य सौर-मण्डल भी प्रभावित हो सकते हैं और उसका अन्त इतनी बड़ी प्रतिक्रिया के रूप में हो सकता है जिनसे सारा विश्व-ब्रह्माण्ड ही हिल जाय ।

अपने सौर-मण्डल के ग्रहों और उपग्रहों का परस्पर क्या सम्बन्ध है और एक-दूसरे को कितना प्रभावित करते हैं ? इसकी थोड़ी-बहुत जानकारी खगोलवेत्ताओं को उपलब्ध हो चली है । वे इस अनन्त ब्रह्माण्ड में बिखरे हुए असंख्य सौर-मण्डलों के परस्पर एक-दूसरे पर पड़ने वाले प्रभावों को भी स्वीकार करते हैं, लगता है कि एक ही परिवार के सदस्य जैसे मिल-जुलकर कुटुम्ब का एक ढाँचा बनाये रहते हैं, उसी प्रकार समस्त ग्रह-नक्षत्र एक-दूसरे के पूरक बने हुए हैं और परस्पर बहुत कुछ लेन-देन का क्रम चलाते हुए ब्रह्माण्ड की वर्तमान स्थिति बनाये हुए हैं । यह सब एक विश्व-व्यापी प्रेरक और नियामक सत्ता द्वारा ही सम्भव हो रहा है ।

वस्तुतः इस संसार में 'अकेला' नाम का कोई पदार्थ नहीं, यहाँ सब कुछ संगठित और सुसम्बद्ध है । पदार्थ की सबसे छोटी इकाई परमाणु भी अपने गर्भ में कितने ही घटक सँजोये हुए एक छोटे सौर-मण्डल परिवार की तरह प्रगतिशील रह रहा है । इलेक्ट्रान आदि घटकों की भी परतें खुलती जा रही हैं और पता लग रहा है कि उनके गर्भ में भी और कितने ही समूह वर्ग विराजमान हैं । शरीर एक इकाई है, पर उसके भीतर जीवाणुओं की इतनी संख्या है जितना इस समस्त संसार में जीवधारियों की भी मिली-जुली संख्या भी नहीं होगी । हर मनुष्य का व्यक्तित्व-असंख्य अन्यों के सहयोग एवं प्रभावों को लेकर विकसित हुआ है । उसमें अपना कम और दूसरों का अंश-सहयोग अधिक है ।

सृष्टि-चक्र में सर्वत्र 'अन्योन्याश्रय' का सिद्धान्त काम कर रहा है । जड़-चेतन से विनिर्मित यह समूचा विश्व-ब्रह्माण्ड एकता के सुदृढ़ बन्धनों में बँधा हुआ है । एक से दूसरे का पोषण होता है और हर किसी को दूसरों का सहयोगी होकर रहना पड़ रहा है । यह पारस्परिक बन्धन ही सृष्टि की शोभा-सौन्दर्य का, उसकी विभिन्न हलचलों का, उत्पादन-विकास एवं परिवर्तन का उद्गम केन्द्र है ।

वैज्ञानिक लुइस डे ब्रोगली के अनुसार ब्रह्माण्ड का कण-कण तरंगमय प्रकृति-चेतना से अभिपूरित है । उन्होंने इसे चारों और संव्याप्त क्वाण्टा ही एक अंग पदार्थ-तरंग माना । बताया है कि सभी ग्रह-पिण्ड परस्पर एक-दूसरे को इन्हीं तरंगों के माध्यम से प्रभावित करते हैं । पृथ्वी की तरंगों का कान्तिमान ३.६×१० की घात ३१ सेण्टीमीटर होता है । पृथ्वीवासियों को इसका अनुभव नहीं हो पाता, परन्तु सतत् इसके गर्भ में कम्पन ८२५×१० घात ६६ संख्या प्रति सेकण्ड की गति से होते रहते हैं । ६० किलोग्राम के एक व्यक्ति में भी १×१० घात ६६ नम्बर प्रति सेकण्ड का कम्पन सतत् होता रहता है, पर यह अनुभूति स्तर तक नहीं आ पाता । उनके अनुसार नवीनतम प्रतिपादन यह है कि यह तरंग समुच्चय ग्रह-पिण्डों से आने वाली किरणों के प्रभावों का मूल स्रोत है । पृथ्वी इसी ऊर्जा पुंज के रूप में अनुदान अन्यान्य ग्रहों से ग्रहण करती है ।

विश्व-ब्रह्माण्ड के कण-कण में संव्याप्त इस पारस्परिक निर्भरता और सहकारिता के सिद्धान्तों को समझने का प्रयत्न किया गया जाय तो इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि यहाँ अकेला कोई नहीं । 'मैं' का कोई अस्तित्व नहीं जो कुछ है वह सामूहिक है । हम सब की भाषा से ही सोचा जाय और उसी प्रकार का क्रिया-कलाप अपनाया जाय तो समझना चाहिए कि सृष्टि के उस रहस्य और निर्देश से अवगत हुए, जिसके आधार पर सुव्यवस्था बनी रह सकती है और प्रगति का चक्र अग्रगामी हो सकता है ।

वेदान्त की भाषा में परमात्म-सत्ता का काव्य

अनंत आकाश के गर्भ में यह सारा दृश्य पदार्थ एक छोटे-से घटक रूप में रह रहा है । यहाँ जो कुछ समग्र है, वह व्यापक है । उसकी इकाइयाँ दीखती तो अलग-अलग हैं, पर वे परस्पर इतनी गुँथी हुई हैं कि उन्हें तत्वतः पृथक कर सकना किसी भी प्रकार संभव नहीं । मोटेतौर पर किसी भी पदार्थ को तोड़ा और बिखेरा जा सकता है।

चाहे परमाणु की अन्तर्देशीय संरचना पर दृष्टि डालें, चाहे सौर-परिवार की गतिविधियों को देखें अथवा ब्रह्माण्डीय ग्रह-तारकों या नीहारिकाओं को, सर्वत्र एक ही नियम काम करता दिखाई देगा । इसी प्रकार स्थूल की परिधि से आगे जितना गहराई में उतरते चले जाएँगे, उतना ही यह स्पष्ट होता जायेगा कि इस विश्व में मात्र एक ही दिव्य-शक्ति संचारित हो रही है । उसी की हलचलें तरह-तरह के पदार्थ एवं दृश्य उपस्थित करती रहती हैं । उसी में सृजन, अभिवर्द्धन और परिवर्तन का त्रिविध क्रियाकलाप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चलता रहता है । इन सब प्रसार विस्तार पर गहराई में उतरने पर मात्र एक ही तत्व शेष रह जाता है, जिसे ब्रह्म प्रकृति अथवा दोनों की संयुक्त सत्ता-अर्द्धनारी नटेश्वर पुरुष प्रकृति का गुंथन ही कहा जा सकता है।

प्रगतिशील-विज्ञान अब वयोवृद्ध-वेदान्त के साथ विचार-विमर्श कर रहा है और लड़ाई समाप्त करके चिरस्थायी समझौते की तैयारी कर रहा है । नवीनतम खोजें पदार्थ की जड़ तक पहुँचते-पहुँचते मात्र एक ही शक्ति का अस्तित्व शेष बचता देखती हैं । यह शक्ति जड़ नहीं, वरन् विचारपूर्ण है । व्यवस्था और संतुलन उसकी नीति है । ऐसा कर सकना विवेकशील के लिए ही संभव हो सकता है । विवेकयुक्त सर्वव्यापी शक्ति को ब्रह्म नाम दिया जाय या और कोई । निष्कर्ष वहीं पहुँचता है जहाँ एक ही सर्वव्यापी शक्ति के क्रीड़ा-कल्लोल के अतिरिक्त और कुछ भी शेष नहीं रह जाता ।

सामान्यतः भले ही किसी अनजान द्वारा इस तथ्य पर विस्मय व्यक्त किया जाय कि परमाणु का अधिकांश भाग रिक्त (स्पेस) है और शेष अत्यल्प हिस्से में ही इलेक्ट्रान, प्रोटान, न्यूट्रॉन आदि प्रवाह हैं, किंतु वेदान्त के अनुयायियों के लिए यह कोई नवीन तथ्य नहीं है । वेदान्त के अनुसार द्रव्य का उद्‌गम आकाश से हुआ है, इसीलिए द्रव्यमान जगत की प्रत्येक वस्तु तथा प्रत्येक कण में आकाश (स्पेस) की उपस्थिति अनिवार्य है । परमाणु के शेष हिस्से में विभिन्न विद्युत प्रवाहों की सक्रियता ऊर्जा का ही सूक्ष्म रूप है । वेदान्त की भाषा में यही प्राण है ।

विकिरण यद्यपि अतिसूक्ष्म तथा वेगवान होता है तो भी द्रव्य के ही स्तर का है । वेदान्त की मान्यता है कि प्रकाश दिक् तथा काल में ही विस्तृत व क्रियाशील रहता है । सर्वोच्च सत्ता रेडियेशन के क्षेत्र से परे है । कठोपनिषद् में उसका वर्णन करते हुए कहा गया है "वहाँ न तो सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्रमा और न नक्षत्रगण ही।" प्रकाश के ये प्रवाह नहीं पहुँच सकते, फिर नाशवान अग्नि की तो बात ही क्या ।

पदार्थ-विज्ञान भी आज चेतना-तरंगों के अनंत विस्तार के द्वार पर आ पहुँचा है । डाल्टन ने जब परमाणु की धारणा विज्ञान जगत को दी, उस समय से परमाणु को पदार्थ का मूल कारण माना जाता रहा, पर अब यह धारणा सम्पूर्णतः ध्वस्त हो चुकी है ।

एक सामान्य व्यक्ति की अनुभूति यही होती है कि यह वस्तु-जगत रूप, रंग और ठोसपन से बना है, किंतु यह अवास्तविक है-यह समझ अब विज्ञान की धीरे-धीरे विकसित होती जा रही है । संभवतः इसी कारण से पदार्थविज्ञानी एडिंग्टन ने अपनी रचना 'दि नेचर ऑफ दि फिजिकल वर्ल्ड' में लिखा है-"पदार्थ की तीन अवस्थाओं के अतिरिक्त एक चौथी प्लाज्मा अवस्था है । इस अवस्था में द्रव्य को और अधिक तापमान देने से वह अदृश्य-शक्ति में रूपान्तरित हो जाती है । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि पदार्थ की मूल-सत्ता अव्यक्त है । जो व्यक्त है, वह उसकी छाया जैसा है ।"

पहले जो परमाणु अविभाज्य माना जाता था, आज उसका विभाजन और विस्फोट अनंत-शक्ति और ज्ञान का स्रोत बन गया है । यह पाया गया कि परमाणु में दो विद्युत धाराएँ हैं । केन्द्रीय नाभिक तथा परमाणु के मुख्य भाग में धनात्मक विद्युत होती है और केन्द्रीय भाग के बाहरी हिस्से के चारों ओर ऋणात्मक विद्युतधारा से भरे इलेक्ट्रॉन होते हैं । केन्द्रीय नाभिक में भी दो भिन्न-भिन्न कण होते हैं, जिन्हें न्यूट्रॉन और प्रोटॉन कहते हैं । अपने स्वाभाविक रूप में परमाणु विद्युतावेशी नहीं होता, क्योंकि उसके भीतर की धनात्मक और ऋणात्मक विद्युत धाराएँ सदा समान होती हैं । ऋणावेशी इलेक्ट्रॉन और धनावेशी प्रोटॉन परस्पर संतुलन कायम रखते हैं । इस प्रकार परमाणु सौर-व्यवस्था का एक लघु बिंब मात्र होता है ।

लेकिन परमाणु-सिद्धांत के क्षेत्र में सर्वाधिक रोमांचकारी खोज तब हुई, जब वैज्ञानिकों ने गैस की तह से अवयवों को गुजारा । अवयव आर-पार हो गये । तब परमाणु के ठोस होने की धारणा खंडित हो गई, क्योंकि ये अवयव कहीं भी न तो टकराये, न ही किसी अवरोध द्वारा रोके जा सके । परीक्षणों से यह भी ज्ञात हुआ कि परमाणु का नाभिक सूर्य की तरह और उसके चतुर्दिक परिक्रमारत इलेक्ट्रॉन ग्रह-नक्षत्रों जैसे हैं । इस प्रकार परमाणु सौर-मंडल का ही एक छोटा नमूना सिद्ध हुआ । यह भी ज्ञात हुआ कि एक इलेक्ट्रॉन का व्यास संपूर्ण परमाणु के व्यास का ५० हजारवाँ हिस्सा है और नाभिक का व्यास भी लगभग उतना ही है। इस प्रकार पूरे परमाणु का करीब शत-प्रतिशत हिस्सा 'स्पेस' है । यदि मनुष्य के शरीर के भीतर के समस्त परमाणुओं को इस प्रकार दबाया जाय कि उनमें से प्रत्येक का यह रिक्त 'स्पेस' भर जाय तथा वे परस्पर अधिकतम सघन हो जाएँ तो फिर मनुष्य का शरीर एक छोट-से धब्बे या बिन्दु की तरह हो जाएगा कि वह किसी श्रेष्ठ अति संवेदनशील 'इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप' से ही देखा जा सके ।

प्रयोगों से यह भी विदित हुआ कि पदार्थ का सारभूत अंश, कण के रूप में नहीं तरंगों के ही रूप में है । इसी आशय का मंतव्य प्रकट करते हुए 'दि लिमिटेशन ऑफ साइंस' में विज्ञानवेत्ता डी. सुलीवान लिखते हैं-"इस प्रकार यह पहला संकेत था, जो कि आधुनिक विज्ञान की ओर से आया कि पदार्थ जगत का मूलभूत स्वरूप वस्तुतः पदार्थ कण के रूप में नहीं, अपितु तरंगों के रूप में है। विश्लेषण की अंतिम अवस्था में पदार्थ बिलकुल क्षीण हो गया और उसकी सत्ता अज्ञात तरंगों में समाहित होती दीखने लगी ।"

'दि फिलासफी ऑफ फिजिकल साइन्स' में एडिंग्टन लिखते हैं- पदार्थ की मूलसत्ता कण और तरंग दोनों रूपों में है । कण इसलिये कि वह पदार्थ का हिस्सा है और तरंग इसलिए कि वह अत्यन्त सूक्ष्म है । 'दि मिस्टीरियस यूनिवर्स' में जेम्स जोन्स भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं । वे कहते हैं कि वस्तुतः हम जिस पदार्थ की दुनिया में रहते हैं, उसका आदि रूप तरंग है । वस्तुएँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विखण्डित होने के उपरांत अंतत: इसी तरंग में परिवर्तित हो जाती हैं ।

प्रयत्न और परिश्रम से किये गये प्रयोगों तथा एकत्रित और विश्लेषित आँकड़ों एवं नितनवीन अनुसंधानों द्वारा भौतिक-विज्ञानी जिस तथ्य के निकट पहुँचे हैं, वह यही कि विश्व-ब्रह्माण्ड की संरचना में समरसता और आंतरिक संगीत है और वह अत्यन्त सूक्ष्म, अति निपुण गणितीय मस्तिष्क का ही सुन्दर सुविस्तृत प्रकाशन है । प्रकृति राज्य की नियामक शक्तियों के रूप में वे कारण और क्रम-व्यवस्था ही पाते हैं । विज्ञान के विभिन्न सिद्धांतों, नियमों का समन्वय अद्वैत वेदांत की दिशा में ही होता दीख रहा है । वैज्ञानिक, दार्शनिक पॉल आर. हेल का कथन है- ''सम्पूर्ण सृष्टि की एक अंतिम सुनिश्चित व्याख्या की खोज करता हुआ वैज्ञानिक चिंतन अद्वैतवादी है ।''

मैटर के कण 'इलेक्ट्रॉन' द्रव्य कण भी हैं तथा तरंग भी । उसी प्रकार 'रेडियेशन' के पार्टिकल 'फोटॉन' तरंग भी हैं तथा द्रव्य भी । इस प्रकार मैटर और रेडिएशन की प्रथक सत्ताएँ खतरे में पड़ गई हैं और वे दोनों एक ही मूल सत्ता, एक ही यथार्थ के अंग मात्र प्रतीत होते हैं । इसीलिए वाल्टर फ्रैंकलीन अपनी रचना 'क्वाण्टम गौड' में लिखते हैं-''पदार्थ और प्रकाश भले ही बाह्य-दृष्टि के दो प्रथक अस्तित्व जान पड़ते हों, पर मूलत: वे एक ही सत्ता की दो भिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं । इसे अब विज्ञान भलीभाँति स्वीकारने लगा है और यह भी पुष्टि हो चला है कि विशेष परिस्थितियों में एक का दूसरे में रूपान्तरण संभव है ।'' इस प्रकार विज्ञान ने भी लगभग अंगीकार कर लिया है कि मैटर और रेडियेशन दो भिन्न वस्तु न होकर एक ही मूलसत्ता के दो पहलू हैं । वह सत्ता समयानुसार दोनों में से कोई भी रूपाकार कभी ग्रहण कर सकती है पर इन सभी परिवर्तनों के बीच सदा वही मूलसत्ता विद्यमान रहती है । उसका संपूर्ण योग सदा एक-सा बना रहता है-ऐसी विज्ञान के पदार्थ संरक्षण के महत्वपूर्ण सिद्धांत की मान्यता है । स्पष्टत: यह वेदान्त की प्रसिद्ध अवधारणा ''पूर्णमद: पूर्णमिदं'' के ही अनुरूप है, जिसमें कहा गया है-''पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।''

चेतना और पदार्थ का द्वैता भाव अब मिट चला है । विश्व का निर्माण और नियंत्रण करने वाली शक्ति का अनुभव आधुनिक वैज्ञानिकों को होने लगा है तथा इस शक्ति से मानवीय चेतना की समानता की अनुभूति की जा रही है । विज्ञान ''एकोब्रह्म द्वितीयो नास्ति'' की पुष्टि और समर्थन के द्वार पर आ पहुँचा है-विज्ञान और अध्यात्म की मिलन वेला आ उपस्थित हुई है ।

सृष्टि के स्वरूप में झाँकती अदृश्य-सत्ता

एक व्यक्ति ने ताजमहल देखा । अनुपम कलाकृति को देखकर उसका मन पुलकित हो गया । ऐसी सुन्दर कृति उसने कभी नहीं देखी थी । उसके मन में तीन प्रकार के विचार उत्पन्न हुए । (१) यह कृति अपने आप बन गई (२) अकस्मात् बनकर तैयार हो गई (३) इसको किसी विचारशील मनुष्य ने बनाया है । सामान्यतया किसी भी व्यक्ति से पूछा जाय कि इन तीनों प्रकार के विचारों में कौन सही है ? तो प्रत्येक का उत्तर होगा प्रथम दोनों निराधार तथा तृतीय सत्य है । प्रथम तथा द्वितीय के समर्थन करने वालों को विवेकरहित, मूर्ख कहा जाएगा और उनका उपहास किया जाएगा ।

सृष्टि रचना को लेकर भी समय-समय पर इसी प्रकार के प्रश्न उठते हैं ? मानवकृत रचनाओं के सन्दर्भ में तो सबका ही एकमत होगा । किन्तु सृष्टि रचना के विषय में विभिन्न प्रकार की मान्यताएँ प्रचलित हैं जो निराधार हैं । पर आश्चर्य यह है कि तथाकथित अपने को बुद्धिमान कहने वाले व्यक्ति इस प्रकार की निराधार मान्यताओं के प्रति दुराग्रहपूर्ण समर्थन करते देखे जाते हैं । सृष्टि के उद्भव के सन्दर्भ में प्रचलित मान्यताएँ निम्न हैं -

(१) सृष्टि अपने आप बन गई । अनादि काल से यह अपने आप बनती-बिगड़ती चली आ रही है ।

(२) सृष्टि अकस्मात बन गई ।

(३) सृष्टि का कारण प्रकृति (नेचर) है ।

(४) इसको बनाने वाली कोई समर्थ ज्ञानमय-सत्ता है ।

यथार्थ की जानकारी के लिए इन मान्यताओं की विवेचना आवश्यक है ।

कारण-सत्ता के बिना कार्य सम्भव नहीं, इस तथ्य से कोई इनकार नहीं कर सकता चाहे वह नास्तिक हो अथवा आस्तिक । किन्तु देखा यह जाता है कि यह सिद्धान्त मानवकृत रचनाओं, क्रियाओं के लिए तो स्वीकार किया जाता है किन्तु सृष्टि के लिए नहीं । एक सुन्दर मकान को देखकर ध्यान सहज ही उन कारीगरों की ओर चला जाता है, जिनके कला-कौशल मकान के भीतर झलकते दिखायी देते हैं । आकर्षक मूर्ति को देखकर कलाकार का भान होता है । मोटर, हवाई जहाज, रेल आदि में मानवी श्रम एवं बौद्धिक क्षमता के योगदान की बात स्वीकार की जाती है । वैज्ञानिक उपलब्धियों में वैज्ञानिकों की गहरी सूझ-बूझ एवं अथक श्रम का परिचय मिलता है । इन संरचनाओं को देखकर हर कोई अनुमान लगाता है कि इनको बनाने वाला कोई न कोई है ?

विशाल सृष्टि एवं उसकी सुव्यवस्थित क्रिया प्रणाली देखकर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या इसको बनाने एवं संचालन करने वाली कोई कारणभूत सत्ता है ?

एक मान्यता यह है कि सृष्टि अपने आप बन गई । वैज्ञानिकों के अनुसार सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व एक सूक्ष्म-द्रव्य आकाश में फैला था । सूर्य, चन्द्रमा किसी का भी अस्तित्व नहीं था । कुछ काल बाद यह द्रव्य केन्द्र स्थानों पर सघन हो गया । केन्द्रों में गति उत्पन्न हो गई । गति से प्रत्येक केन्द्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गोले में परिवर्तित होकर अपनी धुरी पर तेजी से घूमने लगा । तीव्र गति के कारण गोले के भाग टूट कर अलग होने लगे । इन अंशों से ग्रह, उपग्रह का निर्माण हुआ, जो बाद में एक निर्धारित कक्षा में घूमने लगे । सूर्य, चन्द्रमा, मंगल आदि ग्रहों का निर्माण आदि काल के विशाल गोलों से हुआ ।

प्रकृति के परमाणुओं के गतिशील होने तथा गतिशील होकर सृष्टि-निर्माण की बात यदि स्वीकार भी करली जाय तो भी समाधान इतने मात्र से नहीं हो जाता । परमाणुओं में गति कैसे उत्पन्न हो गई, इसका उत्तर विज्ञान के पास नहीं है । उपरोक्त कथन उसी प्रकार है जैसे मकान को देखकर कहा जाय कि मिट्टी के कणों में गति उत्पन्न हो गई । ये कण पानी के साथ मिलकर ईंटों में परिवर्तित हो गये । इन ईंटों को शान्त बैठे रहना अच्छा नहीं लगा, उनमें पुनः गति उत्पन्न हुई । सीमेन्ट, लोहे से समझौता किया । परस्पर एक-दूसरे के ऊपर सजते हुए चले गये । सीमेन्ट ने जोड़ने का कार्य आरम्भ कर दिया ? लोहे ने इस त्याग-वृत्ति का अनुकरण किया तथा मकान के बोझ को सँभालने का उत्तरदायित्व वहन किया । जिसके फलस्वरूप मकान बनकर तैयार हो गया । मनुष्य द्वारा बनायी गई वस्तुओं के सन्दर्भ में इस प्रकार का यदि प्रतिपादन किया जाय तो उसे अविवेकपूर्ण कहा जायेगा, पर सृष्टि रचना के विषय में इस प्रकार का प्रतिपादन किया जाता है तो उसे क्या कहा जाय ?

सृष्टि के अपने आप बनने-बिगड़ने की मान्यता में एक तर्क यह दिया जाता है कि यह परमाणुओं का स्वभाव है किन्तु कोई भी स्वभाव क्रिया में परिणत तभी हो सकता है जबकि उसमें कोई गति देने वाला हो । इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है । चीनी का स्वभाव है मीठा होना-नमक का नमकीन । आटा, पानी, घी का अपना अलग-अलग स्वभाव है । इन वस्तुओं को यदि एक स्थान पर रख दिया जाय और सोचा जाय कि ये वस्तुएँ अपने स्वभाव से प्रेरित होकर गतिशील हो जाएँगी । इस प्रकार मिष्ठान अथवा पकवान बनकर तैयार हो जायेगा । यह सर्वथा असम्भव है । वस्तुओं के अन्दर अपनी विशेषताएँ तो हैं किन्तु उनके स्वयं के अन्दर कोई प्रेरक शक्ति नहीं है जो गति दे सके । मिठाई तो तभी बनती है जब हलवाई एक निश्चित मात्रा में उन वस्तुओं को एक निश्चित क्रम से मिलाता है । प्रकृति के परमाणुओं में स्वभाव की विशेषता होते हुए भी अपने को निश्चित आकार-प्रकार में परिवर्तित कर सकने की असमर्थता है । उन्हें संयुक्त करने, अभीष्ट आकार प्रदान करने में किसी समर्थ विचारशील चेतन-सत्ता के हाथ होने की बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है ।

सृष्टि-रचना के सन्दर्भ में दूसरे प्रकार की मान्यता है कि यह अकस्मात् बन गई । इसके पूर्व कि इस मान्यता की विवेचना की जाय, अकस्मात् शब्द की व्याख्या करना कहीं अधिक आवश्यक है ? इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है । एक व्यक्ति बम्बई पहुँचा । वहाँ पर उसकी भेंट अपने पुराने मित्र से हुई, जो दिल्ली में रहता था । प्रचलित मान्यता इसी को अकस्मात की संज्ञा देती है । किन्तु गहराई में जाने का प्रयत्न करें तो स्पष्ट होगा कि आकस्मिक मिलन का निमित्त कारण दोनों की इच्छाशक्ति थी जिससे प्रेरित होकर वे बम्बई पहुँचे । स्पष्ट है कि कोई भी घटना अकस्मात नहीं घटित होती उसके पीछे कोई न कोई कारण होता है । तूफान अचानक आता है किन्तु उसकी भूमिका वायुमण्डल में पहले ही बन जाती है । वर्षा होती है । लगता तो है कि यह आकस्मिक घटना है किन्तु इसके पूर्व बादलों का बनना, हवा का चलना आदि प्रक्रिया सम्पन्न होती है तब कहीं वर्षा होती दिखायी देती है । घटनाएँ तो विभिन्न क्रियाओं की शृंखला का परिणाम हैं । पहले सम्पन्न हुई क्रियाओं को न देख पाने के कारण ही कहा जाता है कि अमुक घटना अकस्मात् घटित हो गई ।

सृष्टि-रचना के विषय में अकस्मात् की मान्यता कुछ इसी प्रकार है । इस सिद्धान्त का अभिप्राय यह होगा कि सृष्टि की विभिन्न घटनाएँ स्वतन्त्र तथा असम्बद्ध इच्छाशक्तियों द्वारा नियन्त्रित एवं संचालित हैं, जो परस्पर मिलकर सृष्टि को बनाती हैं । एक शक्ति बादल बना रही है तो दूसरी नदी एवं समुद्र । तीसरी पहाड़ बनाने में संलग्न है । चौथी ग्रह-नक्षत्र । पाँचवीं हवा चलाने में व्यस्त है । इस क्रम में बढ़ते जाएँ तो असंख्य प्रकार की रचनाओं के लिए असंख्य तरह की शक्तियों की आवश्यकता होगी । इस पर विवेक-दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि इच्छा-शक्ति की बात विभिन्न प्रकार की शक्तियों में परोक्ष रूप से स्वीकार की गई है । इस प्रकार एक सृष्टिकर्त्ता की बात को स्वीकार न करके ऐसे प्रतिपादन द्वारा असंख्यों प्रकार के इच्छा-शक्ति वाले ईश्वर के अस्तित्त्व को स्वीकार किया गया । सृष्टि रचना में किसी समर्थ विचारशील-सत्ता के अस्तित्व का समर्थन यह प्रतिपादन स्वयं करता है ।

स्पष्ट है कि परमाणुओं के आकस्मिक संयोग से इतनी सुन्दर, व्यवस्थित सृष्टि का निर्माण सम्भव नहीं । इसे विज्ञान एवं विचारशीलता का अंध-विश्वास ही कहा जाना चाहिए जिसमें सृष्टि के अकस्मात् सृजन की बात कही जाती है । यदि परमाणुओं के परस्पर उलट-फेर से सूर्य, चन्द्र, मंगल तथा अन्यान्य ग्रह, उपग्रह बन सकते हैं तो एक सामान्य मकान अपने आप बनकर तैयार क्यों नहीं हो जाता । समुद्र, नदी, पहाड़ बन सकते हैं तो एक कुआँ क्यों नहीं बन जाता । 'अकस्मात्' बनने की बात यदि सृष्टि के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विषय में कही जाती है तो मानवकृत रचनाओं के लिए भी स्वीकार किया जाना चाहिए । किन्तु यह सर्वथा असम्भव है ।

तीसरे प्रकार के समर्थकों का कहना है कि संसार का निर्माण स्वयं प्रकृति करती है ? यह मान्यता उपरोक्त दोनों से भी अधिक अविवेकपूर्ण है । आकार-प्रकार की दृष्टि से प्रकृति की अपनी कोई स्वतन्त्र-सत्ता नहीं है । प्रकृति से अभिप्राय यहाँ सृष्टि-नियम से माना जाय तो सृष्टि-नियम को सृष्टिकर्ता मानना बहुत बड़ी भूल होगी । पाश्चात्य जगत के प्रसिद्ध विचारक फ्लिन्ट अपनी पुस्तक 'फ्लिन्ट्स थिज्म' में लिखते हैं कि, 'सृष्टि रचाना एवं उसकी सुव्यवस्थित क्रिया-प्रणाली का कारण सृष्टि-नियम बताना, वस्तुतः टालमटोल करना है । नियम-व्यवस्था बिना किसी चेतन-सत्ता के सम्भव नहीं है ।''

प्रो० हवैविल का कहना है कि, ''किन्ही घटनाओं का सम्बन्ध बताने वाले, उन पर शासन करने वाले नियम यह बताते हैं कि कोई व्यवस्थापक, ज्ञानमय सत्ता है । नियम प्रबन्ध के कारण नहीं हो सकते वरन् इस बात के सूचक हैं कि कोई नियामक सत्ता है ।

उपरोक्त मान्यताओं के विवेचन से स्पष्ट है कि सृष्टि को बनाने वाली कोई चेतन-सत्ता है । जो विचारशील ही नहीं शक्ति-सम्पन्न भी है । चौथी प्रकार की मान्यता की पुष्टि इन तीनों की विवेचना द्वारा होती है ।

हमारा अस्तित्त्व इस बात का प्रमाण है कि उसकी आदि कारण-सत्ता भी है ? जीवन है तो उसका स्रोत चेतना है तो उसका आदि-स्थल भी है । सृष्टि स्वयं प्रमाण है कि सृष्टिकर्ता है । जड़-चेतन का सृजन, अभिवर्द्धन एवं परिवर्तन की प्रक्रिया सम्पन्न करने वाली शक्ति उद्‌गम रहित नहीं हो सकती । जो सबका कारण, जीवन-शक्ति, ज्ञान, आनन्द का आदि स्रोत है वही परमात्मा है । उसी को विभिन्न धर्म-सम्प्रदाय भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं ?

उस परम-सत्ता को समझ न सकने के कारण ही इस प्रकार की अविवेकपूर्ण मान्यताएँ बनायी जाती हैं । जिन्होंने अन्वेषण किया, साधना में प्रवृत्त हुए उन्होंने न केवल सृष्टि की आदि कारण-सत्ता को जाना वरन् उसके सान्निध्य का लाभ भी उठाया । दिव्य-आलिंगन का अनुभव किया । उस आनन्द की मस्ती में कह उठे.....''भौतिक-जगत के सारे सुख उस आनन्द के समक्ष कुछ भी नहीं हैं ।''

संत, महात्मा, ऋषि व महर्षियों के ज्वलंत इतिहास इस बात के प्रमाण हैं । जिनके जीवन की पवित्रता, व्यक्तित्त्व की श्रेष्ठता सहज ही जन-सामान्य को आकर्षित कर लेती है, उनके आत्मबल की सम्पन्नता सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को प्रेरणा ही नहीं देती वरन् उनकी गतिविधियों में भी आमूल-चूल परिवर्तन करके श्रेष्ठता की ओर बढ़ने के लिए बाध्य करती है । उसी शक्ति की छोटी चिनगारी अपनी अन्तरात्मा में जलती देखी । दिव्य-सत्ता को सम्पूर्ण चराचर में ओत-प्रोत देखा तथा सृष्टि की सुव्यवस्था में उसका प्रवाह अनुभव किया । उन महान् आत्माओं के पद-चिह्नों पर चला जा सके तो सृष्टि की आदिकारण सत्ता को जाना ही नहीं अनुभव भी किया जा सकता है जिसको अनुभव करने के उपरान्त किसी प्रकार की कामना शेष नहीं रह जाती है । यह जीवन की सर्वोत्तम उपलब्धि है । मानव-जीवन का परम-लक्ष्य यही है ।

स्रष्टा की अगम्य संरचना

शरीर के अन्तराल में जीवकोश, तन्त्रिकाएँ, ऊतक, द्रव रसायन, रक्त-कण, हारमोन्स, जीन्स-प्रभृति आँख से न दीख पड़ने वाले असंख्य पदार्थों से यह शरीर बना है । इतने पतले मोतियों से यह माला गूँथी है कि देखकर आश्चर्य होता है कि बनाने वाले औजार और हाथ कितने नन्हें होंगे । चावल के दाना पर गायत्री मन्त्र लिख देने वाले कई कारीगर अपनी कृतियों को जिसे भेंट करते हैं उससे अच्छा पुरस्कार पाते हैं । पर चावल की तरह निर्जीव नहीं, अरबों-खरबों घटकों को निरन्तर क्रमबद्ध गतिशीलता बनाये रखने वाले जिन जीव-कणों की रचना हुई है उसे देखते हुए लगता है कि इनका स्रजेता कोई बहुत ही लघु आकार का होगा ।

पशु-पक्षियों और चलते-फिरते गतिशील प्राणियों की बात छोड़िये मिट्‌टी पानी में मिले हुए सूक्ष्म-जीवी, वैक्टीरिया और वायरस जैसे अदृश्य किन्तु शरीर में उथल-पुथल मचा देने वाले दैत्य जैसी सामर्थ्यों से भरे-पूरे अदृश्य जीव-कणों की संरचना और कार्य-पद्धति पर जब नजर डाली जाती है तो लगता है स्रजेता भी प्रायः इतना ही छोटा होगा । परमाणुओं के भीतर एक समूचा सौर-मण्डल नियोजित करके उसे भी नियमित गति से चलने वाला-और विस्फोट के समय प्रलय खड़ी कर देने वाला तत्त्व कितना छोटा है कि उसका परिचय अनुमान के आधार पर ही हस्तगत हो सका है । इसीलिए उसे नियन्ता की 'अणोरणीयान' अणुओं का भी अणु, छोटे से भी छोटा कहा गया है ।

किन्तु जब दूसरी ओर नजर पसार कर देखते हैं तो ब्रह्माण्ड की विशालता देखते हुए लगता है कि इतने बड़े-बड़े घटक जिस कुम्हार ने अपने चाक को घुमाते हुए बनाये होंगे उसका कारखाना और आवाँ कितना बड़ा होगा । जिसमें सृजन ही नहीं होता वरन् उनमें से किसी को भी चैन से न बैठने देने वाली-निरन्तर द्रुतगति से दौड़ने वाले पिण्डों में असीम सामर्थ्य भर दी है वह स्वयं आकार में कितना बड़ा होगा । उसकी कारीगरी एवं कुशलता देखते हुए सहज विश्वास होता है कि उसे महतो महीयान् की उपमा दिया जाना सर्वथा सार्थक है ।

ब्रह्माण्ड की विशालता की कल्पना करने मात्र से बुद्धि थकित और चकित रह जाती है और सोचना पड़ता है कि इतने विशाल घटकों की संरचना और उनकी बिना परस्पर टकराये निरन्तर गतिशील घुड़दौड़ की व्यवस्था बनाने में कितनी कारीगरी और दूरदर्शिता का समावेश हुआ है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे जाँचना, समझना तो दूर कल्पना मात्र कर सकने में मानवी-बुद्धि अपने को असमर्थ पाती है । जिधर भी आँख उठाकर देखते हैं भीतर और बाहर आश्चर्य ही आश्चर्य दृष्टिगोचर होता है । गीताकार ठीक ही कहता था कि **'आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेन'** ।

यह देखना और कहना तथ्य को देखते हुए इतना स्वल्प है कि उसे समग्रता की तुलना में राई-रत्ती का भी लाख करोड़वाँ भाग कह सकते हैं ।

पदार्थ-विज्ञान की वर्णमाला पढ़ने वाले जब ब्रह्माण्ड की गुरुता और पिण्ड की लघुता को देखते हैं तो अपनी तोतली वाणी में छोटे बच्चों की तरह कुछ ऐसा बोलते हैं जो स्वयं उनकी समझ में नहीं आता । फिर दूसरों को वे किस प्रकार समझा सकेंगे ।

हर कोई जानता है कि प्राणी में जीवन-सत्ता काम करती है । उसका अन्त होते ही मृत्यु घोषित कर दी जाती है पर यह जीवन आखिर है क्या ? इसका जान सकना अभी तक उनके लिए सम्भव न हो सका । यह कह देना सरल है कि मनुष्य एक चलता-फिरता पेड़-पौधा है । शरीर के अन्त के साथ ही उसका अन्त हो जाता है । पर यह बात भी गले नहीं उतरती क्योंकि मरने के बाद यदि शरीर को किसी उपयुक्त विधि से समाप्त न किया जाय तो उसके भीतर से ही असंख्य छोटे-बड़े कृमि उत्पन्न हो जाते हैं और काया के सरंजाम को स्वयं ही खा-पीकर वह बराबर कर देते हैं । जब मृत शरीर में अनेक प्राणियों का जन्म हो सकता है तो उसे जड़-पदार्थ कैसे कहा जाय और यदि शरीर के रासायनिक पदार्थों को जीवन-स्रोत कहा जाय तो मृत शरीर फिर पूर्ववत् काम करने योग्य क्यों नहीं रहता ? जीवन की पहली चेतना की विलक्षणता की अभी तक कोई व्याख्या नहीं की जा सकी तो उसकी सत्ता का स्रोत और भविष्य का विवेचन कर सकना तो और भी कठिन है । यन्त्र-उपकरणों, आविष्कारों के जो छोटे-मोटे खिलौने बन पड़े हैं उन पर विज्ञान जगत को अहंकार करना ऐसा ही है जैसा गीली बालू का महल बनाने वाले का अपने को बहुज्ञ इन्जीनियर मानना ।

प्रकृति जड़ है और यह सारा उसी ने अनायास ही बनाकर खड़ा कर दिया है । यदि ऐसा है तो उसके भीतर परस्पर पूरक और सहयोग सन्तुलन बनाये रहने वाली क्षमता किस प्रकार उत्पन्न हो गई । अनगढ़ और निर्जीव वस्तुएँ घर में भी आये दिन जरा से आघात से टूटती-फूटती रहती हैं । फिर इतने छोटे और इतने बड़े घटकों में निरन्तर टकराव होना चाहिए था वह क्यों नहीं होता ? शरीर के जीवकोश और ब्रह्माण्ड के ग्रह-नक्षत्र आपस में टकराते क्यों नहीं ? अपनी-अपनी निर्धारित कक्षा पर नियत चाल से क्यों कर चलते रहते हैं । यदि प्रकृति निर्जीव है तो उसकी कृतियाँ भी 'घुणाक्षर न्यान' के अनुसार जैसी-तैसी बनानी चाहिए और उनके बीच कोई पारस्परिक तालमेल नहीं होना चाहिए जबकि इकालॉजी के सिद्धान्त को सर्वत्र लागू हुआ देखते हैं । ऐसी दशा में यह कहना कि सृष्टि क्रम प्रकृति द्वारा स्वयंमेव संचालित हो रहा है, इसमें किसी चेतन-सत्ता का दखल होने की आवश्यकता नहीं पड़ी । यह कथन सर्वथा उपहासास्पद ही कहा जा सकता है ।

शरीर के जीवकोश जल्दी-जल्दी मरते और नई वंश वृद्धि करते हुए रिक्तता की पूर्ति करते रहते हैं । एक का दूसरे घटक के साथ दूरदर्शितापूर्ण सहयोग है तभी जीवन क्रम चल पाता है ।

ब्रह्माण्ड की गतिविधियों पर तनिक-सी दृष्टि डालने पर प्रतीत होता है कि यह सब कितना जटिल और कितना अद्भुत है । अपने सौरमण्डल को ही लें । उसके ग्रह और उपग्रह कितनी चमत्कारी छटा दिखाते हैं कि उसकी विलक्षणता किसी जादूगर के तमाशे जैसी हैरत में डालने वाली प्रतीत होती है ।

सूर्य पृथ्वी से कितनी दूर है पर उसकी किरणें ही यहाँ आकर जीवन और हरीतिमा की परिस्थितियाँ प्राप्त करती है । ब्रह्माण्डीय किरणों की बौछार से पृथ्वी अपना सन्तुलन न गँवा बैठे इसके लिए उसके ऊपर एक से एक अद्भुत कवच चढ़े हुए हैं । उत्तर ध्रुव अन्तर्ग्रही ही अनुदानों में से जितने उपयोग करने के बाद जो कचरा बचता है उसे दक्षिण ध्रुव के द्वारा निखिल अन्तरिक्ष में धकेल देता है । यदि यह व्यवस्था न होती तो पृथ्वी भी अन्य निर्जीव पिण्डों की तरह ही एक होती और यहाँ जो अनुपम सौन्दर्य एवं वैभव बिखरा पड़ा है उसका कहीं अता-पता भी न होता ।

सूर्य अपने साथ नौ ग्रह और ४३ चन्द्रमाओं का परिवार साथ लेकर एक महासूर्य की परिक्रमा के लिए निकला है । यह यात्रा लाखों वर्षों में पूरी होगी । इस बीच कोई बाल-बच्चा बिछुड़ न जाय इसलिए उन सबको अपने साथ एक चुम्बकीय रस्सी से बाँध रखा है । इतना ही नहीं उनमें क्रियाशीलता बनाये रखने के लिए आवश्यक ऊर्जा भी भेजता रहता है ।

पृथ्वी से सूर्य १०९ गुना है । दोनों के बीच की दूरी ९३०००००० मील है । सूर्य की परिक्रमा वह एक वर्ष में पूरी करती है । उसमें उसकी गति प्रति घण्टा १००१९१ मील होती है । समूचे सौर-मण्डल का व्यास १ शंख १८ खरब किलोमीटर है । इतने क्षेत्र की साज-सँभाल रखे रहने की जिम्मेदारी अपने सूर्य की है । सौर परिवार न केवल सूर्य से बँधा है वरन् उनके सम्बन्ध परस्पर भी इतने घनिष्ट हैं कि बिना किसी टकराव के वे परस्पर एक दूसरे की अनेक प्रकार से सहायता करते रहते हैं ।

समूचा ब्रह्माण्ड कितना बड़ा है । इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि आसमान में जो तारे दीख पड़ते हैं वे हम से लाखों प्रकाश वर्ष दूर हैं । प्रकाश वर्ष एक पैमाना है जिसे प्रकाश की चाल एक सैकिण्ड में एक लाख छियासी हजार मील के हिसाब से माना जाता है । इस हिसाब से एक दिन, एक महीना या एक वर्ष कितनी दूरी का बोध है । इसका हिसाब लगाने में ढेरों कागज खप जाएगा । फिर इतने प्रकाश वर्षों का तो कहना ही क्या जितनी कि दूरी उन सबके बीच में है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्माण्ड तेजी से फूल और फैल रहा है । उसके मध्यवर्ती करोड़ों नीहारिकाएँ और उन नीहारिकाओं में करोड़ों सौर-मण्डलों का होना, इतने पर भी उन सबका एक दूसरे से दूर हटते आगे बढ़ते जाना यह असमंजस उत्पन्न करता है कि यह फुलाव और फैलाव आखिर कितना आगे तक बढ़ेगा और उसके लिए अन्तरिक्ष की विशालता कितनी होनी चाहिए । सन्तोष उसी सिद्धान्त से होता है कि ब्रह्माण्ड की बनावट गोलाई की है इसलिए फैलते चलते हुए नीहारिका मण्डल और सौर मण्डल भी परिभ्रमण की गति अपना लेंगे और एक सीमित अन्तरिक्ष में ही चक्कर काटते रहेंगे ।

ब्रह्माण्ड में नीहारिकाओं में अभी अनगढ़ मसाला भरा पड़ा है । उनमें विस्फोट हो सकता है और नये सौर मण्डलों की सृष्टि हो सकती है । वर्तमान ग्रह-नक्षत्रों में से कितनों की ही स्थिति पृथ्वी जैसी भी हो सकती है और उन में साधारण जीवधारियों से लेकर-मनुष्य से भी अधिक ज्ञान-विज्ञान के धनी हो सकते हैं । यह प्रश्न भी विचाराधीन है कि ब्रह्माण्ड भर के बुद्धिमान मनुष्यों में परस्पर तालमेल बैठने से वर्तमान सृष्टि में से सजीव और निर्जीव-पिण्डों की गतिविधियों में असाधारण परिवर्तन हो सकता है । स्थिति को देखते हुए उस पुरातन मान्यता को भी बल मिलता है जिसके अनुसार कि लोक-लोकान्तरों में अन्य सशक्त देवताओं की उपस्थिति अन्य लोकों में मानी गई है और उनकी सहायता मनुष्यों को मिलते रहने की बात कही गई है । ग्रहों की नीहारिकाओं की उथल-पुथल से पृथ्वी वालों को क्या लाभ मिलता है और किन संकटों की आशंका रहती है । इस सन्दर्भ में ब्लैक होल, धूमकेतु आदि एक से एक बढ़कर आश्चर्यजनक रहस्य भौतिक-विज्ञानियों की पकड़ में आते जा रहे हैं और भविष्य में अन्तरिक्ष की अधिक शोध बन पड़ने पर मनुष्य के ज्ञान सीमा असीम हो जाएगी ।

यहाँ तो हम सबको इतना ही जानना पर्याप्त होगा कि लघुतम पिण्ड घटकों और विशालतम ब्रह्माण्ड सदस्यों की संरचना करने वाले उस स्रष्टा को मान्यता मिलनी चाहिए जो मनुष्य को मर्यादाओं में रखना चाहता है और कर्मों का प्रतिफल देने में किसी प्रकार का पक्षपात किसी के साथ नहीं करता ।

गणितीय नियमों से संचालित स्रष्टा के क्रिया-कलाप

स्रष्टा को, नियन्ता को अनिर्वचनीय, अगम्य कहकर सम्बोधित किया गया है एवं यह कहा जाता रहा है कि उसके खेल निराले हैं । यह सही है, किन्तु एक और तथ्य अपनी जगह सत्य है, वह यह कि उसका हर क्रिया-कलाप सुव्यवस्थित, क्रमबद्ध है । समष्टि के एक घटक मनुष्य को ही लें तो हम पाते हैं कि जिस प्रकार गणितीय प्रक्रिया में प्रश्न उत्तर की जटिलता के बावजूद एक से नौ तक के अंक की संख्याओं का ही सुनियोजित सोद्देश्य प्रयोग होता है, उसी प्रकार मानवी कार्यप्रणाली भी एक स्थिर गणित के आसपास घूमती है । चाहे हृदय की धड़कन हो, रक्त का प्रवाह हो अथवा ग्रंथियों का रसस्राव, हर प्रक्रिया गणितीय नियमों से संचालित है । जैसे ही यह गणित गड़बड़ाता है, स्वस्थ काया विकृति को प्राप्त हो रुग्णता को जन्म देने लगती है । वस्तुतः चेतन-सत्ता सृष्टि के हर घटक के मूल में चाहे वह विज्ञात हो अथवा अविज्ञात, सतत् सक्रिय है । इसी नियमबद्धता, सुव्यवस्था के कारण मनीषी वैज्ञानिक श्रुतियों-ग्रन्थों में स्रजेता की सत्ता की महत्ता का गान करते आये हैं ।

चेतन-सत्ता की सुव्यवस्था की एक छोटी-सी झलक मानव काया के अवयवों की सुनियोजित क्रियाशीलता के रूप में देखी जा सकती है । ये अंग-अवयव मात्र उपकरण हैं जिनके माध्यम से चेतना अपनी क्षमता का विकास कर महान लक्ष्य की ओर अग्रसर होती है ।

मानव हृदय का भार पूरी काया के भार का ०.५ प्रतिशत होता है । हृदय की सक्रिय रूप से सतत् रक्त की पम्पिंग, आकुंचन-संकुचन प्रक्रिया, विभिन्न परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ तालमेल बिठाने की क्षमता वैज्ञानिक सूझबूझ से परे के स्तर की कला व सौन्दर्ययुक्त बुद्धिमत्ता की परिचायक है । कवियों-दार्शनिकों ने हृदय को भावनाओं की केन्द्रस्थली माना है । शरीर में दिल की तरह हमारे जीवन में संवेदनशीलता की भी एक निश्चित मात्रा की आवश्यकता है । उसके बिना आदमी, आदमी नहीं रहता । यदि यह मात्रा कम हो गयी तो व्यवहार में पशुता बढ़ जाती है और यदि वह अनियंत्रित रूप से बढ़ गई तो अव्यवहारिकता को जन्म देती, अतिभावुकताजन्य मनोरोगों को आमंत्रण देती है । बड़ा और छोटा दिल दोनों ही विकृति के सूचक हैं । हृदय में निहित भावनाओं की उत्कृष्टता ही उसे देवतुल्य जगत्वंद्य महामानव बना देती है । वस्तुतः जो भी कुछ नियन्ता ने प्रदत्त किया है उसकी न्यूनाधिकता ही सारी गड़बड़ी का कारण होती है । किसी एक क्षेत्र में अधिक क्रियाशीलता तथा अन्य क्षेत्रों की उपेक्षा विघटनकारी होती है ।

दिल की धड़कन का गणित बहुत ही विचित्र है । प्रसिद्ध चिकित्सा-विज्ञानी डॉ० अलेक्सीस कैटेल लिखते हैं कि यह समस्त प्रक्रिया इतनी विलक्षण है कि देखकर आश्चर्य होता है कि कैसे बिना किसी दृश्य संचालक के यह सब क्रियाव्यापार इतना सुव्यवस्थित रूप में चल रहा है । जब बालक गर्भाशय में पल रहा होता है, उसके हृदय की धड़कन ११० से १४० प्रतिमिनट होती है । यह एक असामान्य गति है । जन्मोपरांत यह थोड़ी कम होती है व फिर उम्र तथा स्वास्थ्य के अनुरूप ७० तथा ८० के बीच स्वतः निर्धारित हो जाती है । शारीरिक अथवा मानसिक दबाव के पड़ने व बढ़ने पर हृदय की गति भी बढ़ जाती है । चिन्ता, आतुरता की स्थिति में दिल धक-धक करता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । विश्रान्ति, शिथिलीकरण, धैर्य एवं मानसिक समस्वरता की स्थिति में हृदय अपनी स्वाभाविक अथवा थोड़ी कम ही गति से धड़कता है जो कि शुभ चिह्न है । एक विशिष्ट दबाव पर ही हृदय सिकुड़ता व फैलता है व यही दबाव रक्तचाप (ब्लड प्रेशर) कहलाता है । इसमें थोड़ा भी व्यतिरेक आने पर यह लो या हाई ब्लड प्रेशर की बीमारी में बदल जाता है । केवल सही हृदय की गति एवं सही रक्तदाब ही शरीर व मस्तिष्क के सभी अवयवों-जीवकोशों का समुचित पोषण कर पाते हैं । दिल एक सीमा तक ही अपने गणित को घटा-बढ़ा सकने की क्षमता रखता है । उस सीमा के परे जाते ही वह चीख उठता है-छाती में दर्द होता है एवं इस स्थिति को दिल का दौरा पड़ना अथवा हार्ट अटैक कहा जाता है । उसके स्वयं की माँसपेशियों का रक्त-संचार एवं अंग-अवयवों की आक्सीजन रूपी प्राण-शक्ति की पूर्ति इससे प्रभावित होती है । हृदय का गति-चक्र हमें एक अनुशासन सिखाता है कि अपना उद्देश्य भुलाकर अनुशासन तोड़ते ही स्रष्टा की व्यवस्था हमें दण्ड दे सकती है । हम अपने कर्त्तव्य व उत्तरदायित्वों की उपेक्षा किसी भी स्थिति में न करें । यदि हुई तो जीवन के दैनन्दिन क्रियाकलापों में वैसा ही झटका लगने की सम्भावना है, जैसा कि दिल के दौरे के समय शरीर को लगता व वह बिस्तर पकड़ लेता है । दिल शायद बिना चीखे मायोकार्डियल इन्फार्कशन के रूप में उसमें स्थायी विकृति को जन्म दे दे पर जीवात्मा की चीख, अन्तरात्मा का रुदन उसे अधोगति की ओर ही ले जाएँगे । शरीर की सूक्ष्म संरचना रासायनिक क्रिया-प्रतिक्रिया, जीवकोषों में विद्युतावेश का परिवहन तथा अवयवों में सम्भावित व हो चुके परिवर्तन वैज्ञानिकों द्वारा देखे समझे तो जाते हैं, पर यह जटिल प्रक्रिया किसी असीम सर्वोच्च-सत्ता के इशारे पर चल रहा कठपुतली का खेल है, यह विचार सतत् मन में आते रहना चाहिए । चेतन-सत्ता से सम्बन्धित स्वयं को मानने पर ही स्वयं के क्रिया-कलाप तदनुरूप बन पड़ते हैं । हम शरीर के दुःख को ही सब कुछ मान बैठते हैं किन्तु यदि शरीर की तन्मात्राओं से प्राप्त ज्ञान का परिष्कार कर आत्म-सत्ता का विस्तार किया जा सके तो हम मात्र शरीर नहीं रहते, चेतना की अनन्तता से जुड़ जाते हैं ।

रक्त में पाये जाने वाले श्वेत कोशों (डब्ल्यू. बी. सी) की संख्या सामान्यतया ४५०० से ११००० प्रति क्यूबिक मिलीमीटर तथा उनका जीवनकाल ३० से १२० दिन का होता है । इस गणित में थोड़ा-सा भी बदलाव आने पर हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली सीधे प्रभावित होती है । विभिन्न प्रकार के वायरस शरीर पर आक्रमण कर देते हैं । कैंसर जैसे असाध्य रोग शरीर में घर कर लेते हैं । रक्तकोशों की संख्या निर्धारित संख्या से कम हो तो भी घातक व सीमा रेखा से अधिक हो जाएँ तो भी शरीर को ल्यूकोमिया (रक्त कैंसर) होने का खतरा है । हर क्षेत्र में शरीर गणितीय नियमों से संचालित है ।

पेट में खाना पचाने के लिए अम्ल की आवश्यकता पड़ती है । उसकी स्रवित होने वाली मात्रा तथा अम्ल शक्ति एन वायटेन (एन./१०) सुनिश्चित होती है । इस गणित में थोड़ा भी परिवर्तन हुआ तो पाचन-क्रिया विकृत हो जाती है । भूख नहीं लगती, खट्टी डकारें आती हैं, खाना खाने को मन नहीं करता व फिर नाना प्रकार की उलझनें जन्मती चली जाती हैं । पेट में पाये जाने वाले अल्सर का निदान एक्सरे में देखे जाने से पूर्व ही अम्लता का मापन कर सम्भव है । उपचार भी अम्लता की मात्रा के गणित को सही कर देने पर पूर्ण-रूपेण हो जाता है । अधिक मात्रा में स्रवित होने वाले अम्ल को विभिन्न औषधियाँ उस सीमा तक कम कर देती हैं जहाँ तक कि अनिवार्य है । कष्ट आगे बढ़ नहीं पाता । किन्तु इसके बावजूद मनुष्य का खानपान में व्यतिरेक के रूप में खिलवाड़ जारी रहता है तो अल्सर बढ़ता ही जाता है एवं खून की उल्टी द्वारा अथवा पेट में अन्दर फूटकर अंतिम चेतावनी दे देता है । शल्य-क्रिया ही तब सहारा रह जाती है । शरीर जिस प्रकार स्वस्थ रहने के लिए गणितीय संतुलन की माँग करता है, मन व अंतःकरण अपनी स्थिरता बनाये रखने तथा गुणों के विकास हेतु सतत् आत्मिक पोषण की माँग करते हैं ताकि देवत्व का गणित गड़बड़ाने न पाए ।

शरीर का साधारण ताप ९८ डिग्री फारनेहाइट के लगभग होता है जबकि रक्त का तापमान १०० डिग्री फारनेहाइट । गर्म तथा शीतलतम स्थान पर भी रक्ततापमें १-२ से एक डिग्री का भी अन्तर नहीं आता । थर्मोस्टेटिक व्यवस्था द्वारा रक्तवाही नलिकाओं के संकुचन व फैलाव द्वारा ताप का संतुलन बिठा लिया जाता है । बाहर चाहे कितनी भी प्रतिकूलताएँ आएँ, हम अपने आपे को, मनः-संतुलन को बनाये रखें, साहस व जिजीविषा को विचलित न होने दें, रक्त तापमान का गणित अनायास ही यह शिक्षण दे जाता है ।

दिनभर में हम लगभग १५०० मिलीलीटर जल ग्रहण करते हैं एवं इतनी ही मात्रा प्रश्वास, त्वचा तथा मूत्र के माध्यम से निकाल देते हैं । इसमें जरा भी व्यतिक्रम आते ही शरीर का जल लवण (एसिड बेस) संतुलन लड़खड़ा जाता है । यह शरीरगत क्रियापद्धति को ही नहीं मन को भी प्रभावित करता व कभी-कभी 'कोमा' की स्थिति ला देता है । इस संतुलन को यथावत् बनाये रखने के लिए नाना प्रकार के लवण, एन्जाइम्स तथा विद्युत्रासायनिक प्रक्रियाओं का जटिल जाल क्रियाशील रहता है । यह इतना विस्तृत, सूक्ष्मतम एवं सुनियोजित है कि इसकी क्रियापद्धति वैज्ञानिकों को भी हैरत में डाल देती है । एक चेतन सत्ता प्यास को बढ़ाकर कम कर अथवा विसर्जन की मात्रा को कम-अधिक कर रक्तवाही नलिकाओं को प्रभावित कर गणित संतुलन बिठाये रखती है । यह एक सीमा तक ही होता है । इससे परे जाते ही सुव्यवस्था के पाये चरमरा जाते हैं । जल-लवण संतुलन की तरह ही मनुष्य के अन्दर श्रद्धा एवं भावुकता का विवेकसम्मत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

संतुलन होना चाहिए । यदि दुराचारी के प्रति सम्वेदनशील हों एवं गलत व्यक्ति के प्रति मन में श्रद्धा बिठाली तो रोगी काया की तरह हमारा जीवन भी विकारग्रस्त होकर ही रहेगा ।

काया में जहाँ कहीं देखें, गणित का ही खेल दिखाई पड़ता है । रक्त में प्रोटीन, वसा, शर्करा, कैल्शियम, पोटेशियम, सोडियम आदि की मात्रा गणितीय आधार पर ही ग्रहण की एवं स्थिर रखी जाती है । शरीर को जितना चाहिए, भोजन में से उतना ग्रहण कर शेष को बाहर निकाल देता है । रक्त में कैल्शियम ९ से ११ मिलीग्राम प्रति १०० मिलीलीटर तथा शर्करा ८० से १२० मिलीग्राम प्रति १०० मिली लीटर की सीमा निर्धारित है । रक्त का धर्म अपरिग्रह का है । यदि उसे परिग्रही होने पर विवश कर दिया जाय तो मधुमेह व गुर्दे की बीमारी परिणति के रूप में हो जाते हैं । आहार का व्यतिक्रम शरीर का सुव्यवस्थितपरिकर बर्दाश्त नहीं कर पाता व अंततः विद्रोह कर बैठता है क्योंकि अनुशासन की अवहेलना की गयी । सत्पुरुष संग्रही नहीं होते, अनावश्यक अपव्यय नहीं करते, जितना ब्राह्मणोचित है, उतना ही ग्रहण करते हैं । इसी कारण वे बिना किसी विकार से ग्रस्त हुए अपनी संत प्रकृति सादगी के होते, बनाये रहते व अपनी विभूतियों से दूसरों को लाभान्वित करते रहते हैं ।

शरीर का रेखागणित तो और भी विचित्र है । हमारे पैरों में जो हड्डियों का आर्च बना हुआ है, वह इतना सुनियोजित है कि शरीर भार का पूरा संतुलन बनाये रखने एवं किसी भी प्रकार के 'शाक्स' को झेलने की क्षमता रखता है । ऐसा लगता है किसी गणितज्ञ ने निश्चित कोण पर विभिन्न बिन्दु एवं त्रिभुज निर्धारित कर सारा ढाँचा रचा हो । रीढ़ की हड्डियों का कर्वेचर, उँगलियों का नुकीलापन, हथेली में गद्दी तथा सीने का पेट से आगे बढ़ा हुआ होना प्रकृति की सुव्यवस्था का ही संकेत है । इस नियम में, रेखागणित की व्यवस्था में जब कभी गड़बड़ी कर दी जाती है, हमारे क्रियाकलाप प्रभावित होते हैं, संतुलन बुरी तरह डगमगा जाता है ।

गणित के नियमों का परिपालन परिस्थितियों के अनुकूल स्वयं को बनाने के लिए रक्त के लाल व श्वेत-कोश भी करते हैं । प्रतिकूल परिस्थितियों में कई श्वेत कोश मिलकर बड़े जायण्ट सेल (दैत्य कोश) बन जाते हैं जो कि एक विशेष भूमिका के लिए जन्म लेते हैं । इनमें कई नाभिक होते हैं । जीवनी-शक्ति बढ़ाने में इनकी मेक्रोफेज तथा मास्टसेल्स की बड़ी महती भूमिका होती है । टी० बी० के जीवाणु का मुकाबला करने के लिए जहाँ टी० बी० दैत्य जन्म लेते हैं, वहाँ बाहर के किसी विजातीय विकारों से निबटने हेतु फारेन बॉडी जायण्ट सेल्स की उत्पत्ति होती है । बहुधा इनके आकार व स्वरूप के आधार पर ही बीमारी का निदान होता है ।

मानवी काया के दृश्य क्रियाकलापों में चेतन सत्ता ही मूलतः क्रियाशील होती है । यह एक नियमबद्ध गणितीय प्रणाली में कार्य करती है एवं एक ही संकेत देती है कि यहाँ कुछ भी निरुद्देश्य एवं अनगढ़ नहीं है । जो कुछ भी हलचलें मानवी-सत्ता, जीव-जगत, प्रकृति आदि में दृश्यमान हैं, वे एक बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवस्था का ही अंग हैं । इस तथ्य को समझते हुए हमें उस अविज्ञात, अनिर्वचनीय सत्ता के अनुशासन का मानना व जीवन में भी उतारना चाहिए । यही मूलतः आस्तिकता का तत्त्वदर्शन है ।

जीव वस्तुतः ब्रह्म का ही एक घटक है

व्यक्ति की निजी चेतना का अस्तित्व, बल, वैभव, सौन्दर्य सब कुछ है, पर स्मरण रखा जाय यह अनुदान ब्रह्म-चेतना का है । यहाँ ब्रह्म-चेतना और ब्रह्माण्डीय चेतना में जो थोड़ा-सा अन्तर है उसे भी समझ लेना चाहिए । ब्रह्म-चेतना वह है जिसे विशुद्ध चेतना कहा जा सकता है । आत्माओं का समष्टि रूप परमात्मा है । इसी को विराट्-ब्रह्म या विश्व-मानव कहते हैं । ब्रह्माण्डीय चेतना से तात्पर्य प्रकृति के अन्तराल में सन्निहित भौतिक सामर्थ्य है । यही पिण्ड और ब्रह्माण्ड की विभिन्न हलचलों का स्रोत है, एनर्जी फोर्स-पावर-ऊर्जा आदि अनेक नामों से उसे पुकारते हैं । विज्ञानियों का शोध-क्षेत्र यही है, वे इसी समुद्र में गोते लगा कर कई प्रकार के रत्न ढूँढ़ते और आविष्कार करते हैं ।

शरीर ही नहीं मस्तिष्क भी इसी ब्रह्माण्डीय चेतना के प्रभाव क्षेत्र में आता है । ऋतुओं का प्रभाव शरीर पर पड़ता है और परिस्थितियों से मस्तिष्क प्रभावित होता है । शरीर के छोटे घटक-जीवाणु-अपनी प्रकृति के अनुरूप काम करते हैं । नस, नाड़ियाँ एवं हृदय, वृक्क, यकृत आदि अवयव अपनी गतिविधियाँ चलाने में निरत रहते हैं । यह हलचलें अचेतन मन से संचालित होती हैं । आकुंचन-प्रकुंचन, श्वास-प्रश्वास, निमेष-उन्मेष आदि उसी की क्षमता एवं प्रेरणा से गतिशील रहते हैं । चेतन मन का प्रभाव इन्द्रिय-चेतना में देखा जा सकता है । कल्पना, इच्छा, निर्णय आदि उसी को करने पड़ते हैं । प्रत्येक इकाई अपने आप में स्वतन्त्र है और अपनी शक्ति तथा सत्ता का प्रत्यक्ष परिचय देती है, फिर भी गम्भीर दृष्टि से देखने पर उसे सुविस्तृत शृंखला की एक कड़ी ही माना जा सकता है । समुद्र की हर लहर स्वतन्त्र है । उसके आकार, बल एवं क्रियाकलाप का मूल्यांकन स्वतन्त्र रूप से किया जा सकता है । किन्तु वस्तुतः वह विशाल समुद्र का अविच्छिन्न अंग है । उसकी स्वतन्त्रता सागर की परतन्त्रता में जुड़ी हुई है । लहर को सागर से पृथक कर दिया जाय तो उसकी सुन्दर और सुव्यवस्थित उछलकूद का अन्त ही हो जाएगा । तब वह अपने अस्तित्व को उस तरह अनन्त काल तक अक्षुण्ण बनाये न रह सकेगी जैसे कि सम्बद्ध स्थिति में था । पृथक होने पर हवा और गर्मी के मामूली से दबाव भर से उसकी सत्ता समाप्त हो जाएगी । उसकी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वतन्त्रता सत्य है, पर यह स्वतन्त्रता सागर की परतन्त्रता के साथ ही सार्थक भी है और सम्भव भी ।

चेतना में बीज रूप से अपनी निजी शक्ति भी असीम है । पिण्ड को ब्रह्माण्ड का प्रतीक माना जा सकता है । सौर-मण्डल की सारी गतिविधियाँ ठीक इसी क्रम से परमाणु घटक के अन्तराल में चलती हुई देखी जा सकती हैं । 'अणोरणीयान्महतो महीयान्' की उभयपक्षीय सत्ता आकृति में तो लघु और विभु की तरह देखी जा सकती है, पर उसकी प्रकृति में कोई अन्तर नहीं । अणुविस्फोट में अधिकांश शक्ति तो अन्तरिक्ष में ही विलीन हो जाती है जो प्रभाव एवं परिचय में आती है, वह अति स्वल्प है । अणु को एक छोंटा-किन्तु उन्ही विशेषताओं से सम्पन्न पूर्ण सूर्य पुरुष माना जा सकता है । बीज में वृक्ष की और शुक्राणु में पूर्ण का समग्र अस्तित्व मौजूद है । इन कणों को विकास का अवसर मिले तो वे अपना सुविस्तृत एवं सक्षम परिचय प्रस्तुत कर सकते हैं । ठीक इसी प्रकार जीवचेतना को अवसर मिले तो वह अपने विराट् एवं विभु रूप का परिचय दे सकता है ।

तनिक गहराई में प्रवेश करके देखें तो जड़-चेतन का प्रत्येक घटक-अपने से ऊँचे घटकों के साथ सम्बद्ध होकर उससे पोषण प्राप्त करता दृष्टिगोचर होगा । बच्चा माँ का अंचल पकड़ता है-माता पति का आश्रय पाती है-पति फैक्ट्री में काम करके आजीविका पाता है-फैक्ट्री शेयर होल्डरों की पूँजी से बनी है-शेयर होल्डरों ने वह सम्पदा किसी अन्य साधन से कमाई और उस साधन का स्रोत कहीं अन्यत्र है । इस प्रकार प्रत्येक घटक आगे ऊँचे आधारों का अवलम्बन ग्रहण करके अपना काम चला रहा है । उपलब्धियों का अनुदान जितना बढ़ा-चढ़ा होता है उतना ही वह घटक बलिष्ठ होता चला जाता है ।

अणुओं को पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से परिभ्रमण की क्षमता प्राप्त होती है-पृथ्वी को सूर्य से पोषण मिलता है-सूर्य महासूर्य की ऊर्जा पर आश्रित है-इस प्रकार यह क्रम बढ़ते-बढ़ते ब्रह्माण्ड-व्यापी महाऊर्जा की सुविस्तृत छत्र-छाया तक जा पहुँचता है और वहीं से क्रमशः छोटों को-उससे छोटों को प्रश्रय मिलता चला जाता है । यों इस विश्व को स्वतन्त्र कहा जा सकता है, पर वह सौरमण्डल का ही एक अविच्छिन्न अंग है । यह हमारा सौरपरिवार प्रति सैकिण्ड १३ मील की गति से स्थानीय नक्षत्र प्रणाली के अन्तर्गत घूम रहा है । जबकि स्थानीय नक्षत्र प्रणाली आकाशगंगा के अन्तर्गत प्रति सैकिण्ड २०० मील की गति से चल रही है । ब्रह्माण्ड में १९ अरब आकाशगंगाएँ या मन्दाकिनियाँ हैं । हर मन्दाकिनी में प्रायः १० अरब तारे हैं । ये सभी आकाशगंगाएँ दूरस्थ बाह्य ज्योतिर्मालाओं के अन्तर्गत प्रति सैकिण्ड १०० मील की गति से विभिन्न दिशा में घूम रही हैं । इस प्रकार यह हमारा विश्व स्वतन्त्र तो है, पर ब्रह्माण्ड की परतन्त्रता के साथ ही ।

इसी तरह व्यष्टि-चेतना स्वतन्त्र तो है, पर समष्टि चेतना के अंश के ही रूप में । व्यष्टि-चेतना के साथ तादात्म्यता की प्रखर अनुभूति की दिशा में आगे बढ़ना ।

जिस प्रकार मन के दो भाग चेतन और अचेतन कहे जाते हैं । उसी प्रकार ब्रह्माण्डीय चेतना का एक पक्ष वह है जिसे स्थूल प्रकृति कहते हैं और जो वैज्ञानिक पर्यवेक्षण के क्षेत्र में आ गई है । सूक्ष्म प्रकृति वह है जो अभी तक मनुष्य के लिए प्रत्यक्ष नहीं है किन्तु अपने अस्तित्व का परिचय समय-समय पर देती रहती है । यन्त्रों की पकड़ में यह क्षेत्र अभी नहीं आया है, पर मस्तिष्कीय उपकरण उसके साथ यदा-कदा सम्बन्ध बना लेते हैं और वहाँ जो कुछ विद्यमान है-बच रहा है उसे देखने-समझने में समर्थ हो जाते हैं । ऐसे ही असामान्य अनुभवों को अतीन्द्रिय अद्भुत चमत्कार एवं ऋद्धि-सिद्धि आदि नामों से पुकारा जाता है ।

संसार में विभिन्न हलचलें होती है । इनका स्थूल स्वरूप और सूक्ष्मकरण हुआ है । दृश्य शरीर स्थूल है प्रत्यक्षतः वही समस्त हलचलें करता दीखता है । प्रेरक सत्ता मन है, पर वह दीखता नहीं । ठीक इसी प्रकार पदार्थों के स्वरूप और उनकी जिन हलचलों को इन्द्रिय शक्ति अथवा उपकरणों के सहारे प्रत्यक्ष किया जा सकता है उन्हें स्थूल कह सकते हैं । नितान्त प्रेरक एवं सशक्त होते हुए भी प्रकृति का जो अंश प्रत्यक्ष नहीं हो सकता उसे सूक्ष्म कहते हैं । समष्टि मन-तत्त्व को सूक्ष्म कह सकते हैं तथा प्रकृति के वे प्रवाह जिनमें घटनाओं की भूतकालीन, वर्तमान तथा भावी सम्भावनाओं की छायाएँ काम करती हैं । ब्रह्माण्डीय-चेतना के-प्रकृति क्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं ।

कारखाने में लगी मोटर चलती तो स्वयं ही है । उसी की बिजली उसे चलाती है, पर वस्तुतः वह दूरवर्ती किसी बड़े बिजलीघर से तारों द्वारा सम्बद्ध होती है । बड़ा बिजलीघर ही इस छोटी मोटर को आवश्यक मात्रा में शक्ति प्रदान करता है और उसी के सहारे वह अपनी गतिविधियों को संचालित कर सकने में समर्थ होती है । व्यक्ति की स्थूल सत्ता-शरीर और मन में काम करने वाली वे हलचलें जिन्हें जीवन-यात्रा के लिए अभीष्ट कहा जा सकता है, भौतिक प्रकृति के अन्तराल में काम करने वाली ब्रह्माण्डीय-चेतना का अनुदान समझी जा सकती हैं ।

विराट-ब्रह्म का भावनात्मक पार-दर्शन

एक बार देवी कौशिल्या ने शिशु राम को स्नान कराया । पालने में बालक को लिटा कर स्वयं स्नान किया । पूजा की, नैवेद्य चढ़ाया । फिर पाकशाला गई । वहाँ बालक राम को भोजन करते देखा तो वह सशंकित हो उठीं । राम को पालने में छोड़ आई हूँ, वह यहाँ कैसे ? तब वह पुनः पालने के पास आईं । वहाँ राम सानन्द सोये थे । दो स्थानों पर एक ही बालक । कौशिल्या घबरा गई । तब-

दिखरावा मातहिं निज, अद्भुत रूप अखंड ।
रोम रोम प्रति लागे, कोटि-कोटि ब्रह्मण्ड ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अगणित रवि-शशि शिव चतुरानन ।
बहुगिरि सरित सिंधु महिकानन ।।
काल कर्म गुण दोष सुभाऊ ।
सोउ देखा जो सुना न काऊ ।।

भगवान् का यह विराट् स्वरूप देखकर कौशिल्या भयभीत हो उठीं । उन्होंने स्तुति की हे प्रभो ! वह ज्ञान दो, वह प्रकाश दो कि मैं शारीरिक सुख, स्वार्थ, अहंता, मोहमाया की भावनाओं से विरत होकर धर्मपरायण बनूँ और अन्त में आपको प्राप्त करूँ ।

एक बार कौरवों-पाण्डवों में युद्ध का वातावरण बन गया । दोनों सेनाएँ महाभारत के लिये समुपस्थित हो गईं । अर्जुन ने दोनों सेनाओं के मध्य खड़े होकर देखा कि इस युद्ध में मुझे अपने ही भाई, बन्धु, पिता, साले, श्वसुर से युद्ध करना है तो उसका धैर्य जाता रहा, उसने अन्याय और अनीति के आगे हार मानकर गांडीव फेंक दिया । न्याय के लिये युद्धरत होने, कर्म करने की दृढ़ता नष्ट हो गई ।

अर्जुन का वह नपुंसक रूप देखकर भगवान् कृष्ण ने अपना विराट् स्वरूप दिखाया -

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्त्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ।।
पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ।।

-गीता ११/५.६

अर्थ-हे अर्जुन ! मेरे सैकड़ों-हजारों नाना प्रकार के और अनेक वर्ण तथा आकृति वाले अलौकिक रूपों को देख । मुझ में ही १२ आदित्य, ८ वसु और ११ रुद्रों को दोनों अश्विनी कुमार और ४९ मरुद्गणों को देख । जो पहले कभी नहीं देखा वह भी देख ।

अर्जुन ने देखा-

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगा ।।

११/२९

अर्थात्-जिस तरह पतंगा अज्ञानवश होकर नष्ट होने के लिये प्रज्वलित अग्नि में कूद जाता है, वैसे ही सारा संसार भगवान् के शरीर में नष्ट हो रहा है ।

परमात्मा के मुख में अत्यन्त विराट् विश्व का दिग्दर्शन कर अर्जुन की मोह निद्रा टूटी और उसने धर्म के लिये युद्ध करना स्वीकार किया ।

एक थे, काक-भुसुण्डि जी ! उन्हें सर्वज्ञानी होने का दम्भ था । अपनी ही बात उन्हें सत्य लगती, पराई नहीं । ऐसे व्यक्ति को शास्त्र और उपनिषद् क्या ज्ञान दे सकते हैं, जो अपने आपको परिपूर्ण माने बैठा हो ?

एक दिन उन्हें आशंका हुई मनुष्य शरीर में ब्रह्म का अवतरण कैसे हो सकता है । वे अवध आये । राम की परीक्षा लेने । फिर काकभुसुण्डि के ही शब्दों में -

मोहिं विलोकि राम मुसुकाहीं ।
विहसत तुरत गयउँ मुख माहीं ।।
उदर मांझ सुनु अंडज राया ।
देखेऊँ बहु ब्रह्माण्ड निकाया ।।
कोटिन चतुरानन गौरीशा ।
अगनित उडुगन र वि रजनीशा ।।
अगणित लोकपाल यम काला ।
अगणित भूधर भूमि विशाला ।।
सागर सरिसर विपिन अपारा ।
नाना भाँति सृष्टि विस्तारा ।।
जो नहिं देखा नहिं सुना, जो मनहुँ न समाइ ।
सो अद्भुत तहँ देखेऊँ बरनि कवनि विधि जाइ ।।

"जो कुछ ब्रह्माण्ड में है वह सब पिण्ड (शरीर) में है।" यदि शास्त्रकार का यह कथन है सत्य है तो उपरोक्त घटनाएँ भी सत्य रही होंगी पर बुद्धि इन बातों को ग्रहण नहीं करती । पेट में आकाश-पाताल, सूर्य चन्द्रमा के दर्शन कुछ असम्भव-सा लगता है, यदि भगवान् कृष्ण का यह कथन-

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामिते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ।।

-११/८

अर्थ-हे अर्जुन ! तू मुझे (मेरे विराट् स्वरूप को) इन प्राकृत आँखों से नहीं देख सकता, इसलिये मैं तुझे दिव्य चक्षु प्रदान करता हूँ, उससे तू मेरे विस्तार प्रभाव और योग-शक्ति को देख ।

इस दिव्य-चक्षु का दूसरा नाम ज्ञान भी हो सकता है । मनुष्य के अन्तःकरण में यदि दम्भ न हो, कुछ जानने के लिये उसकी जिज्ञासा मृत न हुई हो तो वह प्रत्येक पदार्थ का विश्लेषण करके देख सकता है और संसार के निर्माण एवं व्यवस्था की विचित्र किन्तु नियमबद्ध परम्परा को जान और समझ सकता है । संसार में भारी हलचल हो रही है, जिसे हमारी आँखें देख नहीं पातीं । लोगों का जीवन बहुत संकीर्ण हो गया तथा ज्ञान वाली आँख फूट गई, जिससे सर्वत्र अज्ञान ही अज्ञान, मोह ही मोह, भ्रम, माया, कामना-वासना और स्वार्थ की परिस्थिति बढ़ रही है । मनुष्य इस संकीर्णता में कीट-पतंगों का सा गन्दा और गलीज, लड़ाई-झगड़े वाला संघर्ष और अशांति वाला जीवन बिताता है । वह दिव्यता नहीं आ पाती, जो जीवन में प्रेम, विश्वास, आत्म-भाव, विश्व-बन्धुत्व, न्याय, धर्म, शील, सच्चरित्रता जाग्रत कर दे । यह आनन्द, सन्तोष एवं शांतिप्रद स्थित भी उपलब्ध हो सकती है पर हमें पहले विराट् परमात्मा का दर्शन करना होगा और अपने आपको उसका एक लघु घटक, अणुमात्र या प्रतिनिधि मानना होगा ।

अब इस कार्य को विज्ञान ने बहुत कुछ सरल कर दिया है । भगवान् ने जिस तरह कौशिल्या, काक-भुसुण्डि अर्जुन, यशोदा आदि को अपने विराट् स्वरूप के दर्शन कराये उसी तरह के दर्शन आज कराये भी जा सकते हैं।

एक दर्शन रूस के यूरी गैगरिन ने किया । अभी कुछ ही दिन पूर्व मृत्यु से पहले उन्होंने अन्तरिक्ष यात्रा पर अपने संस्मरण लिखे हैं, वह उस विराट्-ब्रह्म की कल्पना से कम नहीं हैं । गैगरिन लिखते हैं -

"मैं पृथ्वी से बहुत ऊपर उठ चुका था । मुझे पृथ्वी पीले आकार का एक चन्द्रमा जैसी लग रही थी । कल्पना भी न की थी कि जिस पृथ्वी पर करोड़ों रंग-बिरंगे वस्त्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूषण धारण किये हुए मनुष्य रहते हैं, अरबों, नीलों रहे वृक्ष, वन-पर्वत, नदियाँ बह रही हैं, वह ऊपर से एक नन्हा-सा पिण्ड मात्र लगेगी । इसके बाद मैंने एक दिन में ही १७ बार सूर्योदय के दर्शन किये । एक दिन में १७ बार पृथ्वी के चक्कर लगाने के कारण १७ बार सूर्य पृथ्वी के पीठ में गया, तब रात हो जाती थी, जितनी देर सूर्य का प्रकाश यान पर पड़ता रहता था, उतनी देर दिन रहता था । विशाल नील-गगन में खरबों नक्षत्रों के बीच अपनी तुलना करता था तो ऐसा लगता था, इस संसार की तुलना में मेरा अस्तित्व ऐसा ही है, जैसे सारी धरती की तुलना में चींटी के सिर का सौवाँ भाग ।''

जोड़ी में अन्तरिक्ष यात्रा करने वाले मिचेल कौलिंस और जान यंग के संस्मरण पढ़िये -

''उड़ते ही गये, उड़ते ही गये, ऊपर और ऊपर दिल धड़कते जा रहे थे, फिर भी हम उस ऊँचाई तक पहुँचे, जहाँ उस दिन तक पृथ्वी का कोई भी जीवित प्राणी नहीं पहुँचा था । ४७४ हजार मील की ऊँचाई तक हम पहुँचे थे, ७१ घण्टे की उड़ान में पृथ्वी के ४३ चक्कर लगाये ।''

शेपर्डग्रशम, कारपेन्टर, निकोलार्वव पोपोविच, शीरा, कूपर, फियोकिस्तोद् योगीरोव, कोमोनेव, तेरेस्कोवा बोर मैन, जेम्स स्टेफोर्ड आदि अन्तरिक्ष यात्रियों से कोई पूछे तो वे यही कहेंगे कि इन यात्राओं से सिद्ध हो चुका है कि संसार बड़ा विराट् और विलक्षण है, उसमें मनुष्य क्या सारे धरतीवासियों की स्थिति ऐसी ही है जैसे हिमालय पर्वत पर रहने वाली एक छोटी-सी दीमक ।

यात्री सरेनान ने ब्रह्माण्ड को बहुत उन्मुक्त अवस्था में देखा है । वे यान से अलग होकर १२८ मिनट तक शून्य अन्तरिक्ष में विचरण करते रहे । उनका कथन है-''वहाँ से पृथ्वी इतनी सुन्दर दीखती थी, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती, उस दर्शन का आनन्द इतना अधिक था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता उसे तो अन्तर्चेतना ही अनुभव कर रही थी ।'' यंग को भी इसी तरह का अनुभव तब हुआ जब उन्हें अपने यान से निकलकर एगेना से वह डिब्बा उठाकर लाना था, जिसमें चन्द्रमा की खोदी हुई मिट्टी थी ।

यह दर्शन तो अभी सूर्य-चन्द्रमा और पृथ्वी या अधिक से अधिक शुक्र-मंगल तक ही सीमित है, हमारे सौर-मण्डल में ही कई खरब नक्षत्र हैं, सूर्य उन सबको लेकर कृत्तिका की ओर बढ़ रहा है । कृत्तिका के पास अपना कई सौर-मण्डलों का अलग परिवार है, वह अपने परिवार सहित अभिजित की ओर बढ़ रहा है । कहते हैं सृष्टि की व्यवस्था के लिये सात सत्ता-केन्द्र हैं, सृष्टि के अन्दर के सब सितारे जो क्रमोन्नति से बड़े-बड़े जंगलों के मध्य-बिन्दु हैं, उनमें से हर एक इन्हीं सात सत्ता-केन्द्रों में से किसी न किसी के साथ सम्बन्ध रखता है । ये सितारे चैतन्य ईश्वर का कोई न कोई अंश हैं ।

इस परिभ्रमण में बेशुमार सृष्टियाँ हैं । हर सृष्टि में अनेक सूर्य होते हैं । इनका संचालन सूर्य-मण्डल का स्वामी (सोलर-लॉगस) करता है । सूर्य-मण्डल में वह शक्ति है, जिसकी ईश्वर में कल्पना की जाती है । वह सम्पूर्ण सूर्य-मण्डल में व्यापक है और मण्डल भर में कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसमें वह न हो । वह हर वस्तु में है और हर वस्तु उसमें है ।

लास एन्जिल्स (अमरीका) में एक प्रदर्शनी में काँच के ६ फुट के गोले के रूप में मनुष्य के एक रोम का आकार ब्रह्माण्ड-सा प्रतीत होता था, इसमें ब्रह्माण्ड के अणु थे, इसके द्वारा वैज्ञानिकों ने साबित किया था कि मनुष्य-पिण्ड में अगणित जीवित परमाणु निवास करते हैं । उन परमाणुओं के लिये मनुष्य देह एक प्रकार से ब्रह्माण्ड जैसी ही है ।

ब्रह्माण्डों की हलचल और भी भीषण और कौतूहल वर्द्धक है । बुध ८८ दिन में सूर्य की ओर ८८ दिन में ही अपनी परिक्रमा करता है, ३००० मील व्यास का बुध सूर्य से ३६ लाख मील दूर है । शुक्र का व्यास ७६०० मील और दूरी ६७ लाख मील है, वह सूर्य की २२५ दिन में और अपनी ३० दिन में परिक्रमा करता है । पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस और प्लूटो क्रमशः ७९००, ४२००, ८७०००, ७१५००, २९५००, ३६०० लाख मील ब्यास के हैं और ये क्रमशः सूर्य से ९३, १४२, ४८३, ८८६, १७८३ और ३६७१ लाख मील दूर हैं । सूर्य की परिक्रमा में इन्हें ३६५ १/४ दिन, ६८७ दिन, १२ वर्ष साढ़े २९ वर्ष, ८४ वर्ष, १६५ वर्ष और २४८ वर्ष समय लग जाता है । इनमें कई अपनी धुरी पर बहुत तेज घूमते हैं, पृथ्वी २३ घण्टा ५६ मिनट पर घूमती है, मंगल २४ घण्टा ३७ मिनट, बृहस्पति का भारी व्यास होते हुए भी वह कुल ९ घण्टा ५० मिनट में अपना चक्कर पूरा कर लेता है ।

किसी शांत और एकान्त स्थान में बैठने को मिले जहाँ से यह सब दृश्य देखने को मिल सकते हों तो मनुष्य वस्तुतः विराट् ब्रह्म के दर्शन की अनुभूति कर सकता है । यह देखकर, सुनकर, समझकर उसे माया, मद, मोह अहंकार रह जाता होगा तो उस जैसा क्षुद्र-प्राणी इस संसार में दूसरा न होगा ।

सृष्टि के अन्दर सृष्टि और अनन्त सृष्टि-शृंखला

योगवासिष्ठ में एक बहुत महत्वपूर्ण आख्यायिका आती है । यह उपाख्यान जीवन के अदृश्य रहस्यों और मृत्यु के उपरान्त जीवन परम्परा पर प्रकाश डालता है इसलिये समीक्षाकार इसे योगवासिष्ठ की सर्वाधिक उपयोगी आख्यायिका मानते हैं । वर्णन इस प्रकार है-

किसी समय आर्यावर्त में पद्म नाम का एक राजा राज्य करता था । लीला नामक उसकी धर्म-शीला पत्नी उसे बहुत प्यार करती थी । जब कभी वह मृत्यु की बात सोचती वियोग की कल्पना से घबरा उठती । कोई उपाय न देखकर उसने भगवती सरस्वती की उपासना की और यह वर प्राप्त कर लिया कि यदि उसके पति की पहले मृत्यु हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाये तो पति की अन्तर्चेतना राजमहल से बाहर न जाये । सरस्वती ने यह भी आशीर्वाद दिया कि तुम जब चाहोगी अपने पति से भेंट भी कर सकोगी । कुछ दिन बीते पद्म का देहान्त हो गया । लीला ने पति का शव सुरक्षित रखवाकर भगवती सरस्वती का ध्यान किया सरस्वती ने उपस्थित होकर कहा-भद्रे ! दुःख न करो तुम्हारे पति इस समय यही हैं पर वे दूसरी सृष्टि में हैं, उनसे भेंट करने के लिए तुम्हें भी उसी सृष्टि वाले शरीर (मानसिक-कल्पना) में प्रवेश करना चाहिए ।

लीला ने अपने मन को एकाग्र किया, अपने पति की याद की और उस लोक में प्रवेश किया जिसमें पद्म की अन्तर्चेतना विद्यमान थी । लीला ने जाकर जो कुछ दृश्य देखा उससे बड़ी आश्चर्यचकित हुई । उस समय सम्राट पद्म इस लोक के १६ वर्ष के महाराज थे और एक विस्तृत क्षेत्र में शासन कर रहे थे । लीला को अपने ही कमरे में इतना बड़ा साम्राज्य और एक ही क्षण के भीतर १६ वर्ष व्यतीत हो गये देखकर बड़ा विस्मय हुआ । भगवती सरस्वती ने समझाया भद्रे-

सर्गे-सर्गे पृथग्रूपं सन्ति सर्गान्तराण्यपि ।
तेष्वप्यन्तस्थसर्गौघाः कदलीदलपीठवत् ।।
-*योगवासिष्ठ ४/१८/१६-१७*

आकाशे परमाण्वन्तर्द्रव्यादेरणुकेऽपि च ।
जीवाणुर्यत्र तत्रेदं जगद्वेत्ति निजं वपुः ।।
-*योगवासिष्ठ ३/४४/३४-३५*

अर्थात्- "हे लीला ! जिस प्रकार केले के तने के अन्दर एक के बाद एक परत निकलती चली आती है उसी प्रकार प्रत्येक सृष्टि के भीतर नाना प्रकार के सृष्टि क्रम विद्यमान हैं । इस प्रकार एक के अन्दर अनेक सृष्टियों का क्रम चलता है । संसार में व्याप्त चेतना के प्रत्येक परमाणु में जिस प्रकार स्वप्नलोक विद्यमान हैं उसी प्रकार जगत में अनन्त द्रव्य के अनन्त परमाणुओं के भीतर अनेक प्रकार के जीव और उनके जगत विद्यमान हैं ।"

अपने कथन की पुष्टि में एक जगत दिखाने के बाद कहा-देवी तुम्हारे पति की मृत्यु ७० वर्ष की आयु में हुई है ऐसा तुम मानती हो इससे पहले तुम्हारे पति एक ब्राह्मण थे और तुम उनकी पत्नी । ब्राह्मण की कुटिया में उसका मरा हुआ शव अभी भी विद्यमान है, यह कहकर भगवती सरस्वती लीला को और भी सूक्ष्म-जगत में ले गई लीला ने वहाँ अपने पति का मृत शरीर देखा-उनकी उस जीवन की स्मृतियाँ भी याद हो आईं और उससे भी बड़ा आश्चर्य यह हुआ कि जिसे वह ७० वर्ष की आयु समझे हुए थीं वह और इतने जीवन काल में घटित सारी घटनाएँ उस कल्प के कुल ७ दिनों के बराबर थी । लीला ने देखा-उस समय मेरा नाम अरुन्धती था-एक दिन एक राजा की सवारी निकली उसे देखते ही मुझे राजसी भोग भोगने की इच्छा हुई । उस वासना के फलस्वरूप ही उसने लीला का शरीर प्राप्त किया और राजा पद्म को प्राप्त हुई । इसी समय भगवती सरस्वती को प्रेरणा से राजा पद्म जो अन्य कल्प में था उसे फिर से पद्म के रूप में राज्य-भोग की वासना जाग उठी, लीला को उसी समय फिर पूर्ववर्ती भोग की वासना ने प्रेरित किया फलस्वरूप वह भी अपने व्यक्त शरीर में आ गई और राजा पद्म भी अपने शव में प्रविष्ट होकर जी उठा फिर कुछ दिन तक उन्होंने राज्य-भोग भोगे और अन्त में मृत्यु को प्राप्त हुए ।

इस कथानक में महर्षि वशिष्ठ ने मन की वासना के अनुसार जीवन की अनवरत यात्रा, मनुष्येतर योनियों में भ्रमण समय और ब्रह्माण्ड (टाइम एण्ड स्पेस) में चेतना के अभ्युदय और अस्तित्व तथा प्राण-विद्या के गूढ़ रहस्यों पर बड़ा ही रोचक और बोधगम्य प्रकाश डाला है । पढ़ने सुनने में कथानक परियों की सी कथा या जादुई चिराग जैसा लगता है किन्तु भारतीय दर्शन की उस सूक्ष्मतम खोज आज विज्ञान का हर क्षेत्र कर रहा है । प्रस्तुत पंक्तियों में दिये गये वैज्ञानिक उद्धरण उसकी पुष्टि करेंगे, विस्मय भी होगा कि भारतीय योगियों ने इस सूक्ष्मतम विज्ञान को बिना किसी यन्त्र की सहायता के कैसे जाना ?

देखने में लगता है कि आप भारतवर्ष के निवासी हैं, पर उसी समय आप पृथ्वी के भी निवासी हैं, उसी समय सौर-मण्डल के भी । सूर्य एक सेकण्ड में २०० ट्रिलियन अर्थात् १००० मिलियन (१००००००००० किलोवाट) किलोवाट ऊर्जा पृथ्वी पर फेंकता है । वह ऊर्जा इतनी अधिक होती है कि उससे नीपर जैसे १ करोड़ बिजलीघर स्थापित हो सकते हैं । सारी पृथ्वी की एक खरब आबादी तथा चींटी मक्खी, कौवे, भेड़, बकरी, गाय, हाथी, शेर, पेड़-पौधे, बादल, समुद्र सभी इस शक्ति से ही गतिशील हैं जिसमें यह शक्ति जितनी अधिक है (प्राणतत्त्व की अधिकता) वह उतना ही शक्तिशाली और वैभव का स्वामी है । कीड़े-मकोड़े उसके एक कण से ही जीवित हैं तो वृक्ष-वनस्पतियाँ उसका सबसे अधिक भाग उपयोग में लाते हैं । मनुष्य इन सबसे भाग्यशाली है क्योंकि वह इस शक्ति के सुरक्षित और संचित कोष को भी प्राणायाम और योग-साधनाओं द्वारा मनचाही मात्रा में प्राप्त भी कर सकता है ।

हमारे लिये वर्ष ३६५ १/४ दिन का होता है पर सूर्य के लिये वह अपनी एक हजार किरणों के घूमने भर का समय सूर्य का प्रकाश हर क्षण पृथ्वी के आधे भाग पर पड़ता है अर्थात् सूर्य का एक सेकण्ड पृथ्वी के निवासी के लिये १२ घण्टे । कीट-पतंगों के लिये तो उसे कल्प ही कहना चाहिए । सूर्य अरबों वर्षों से जी रहा है और करोड़ों वर्ष तक जियेगा पर इतनी अवधि में तो मनुष्यों की लाखों पीढ़ियाँ मरखप चुकी होंगी । यदि सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर अब तक जितने लोग जन्म ले चुके उन सबके नाम लिखना सम्भव हो तो उसके लिये पृथ्वी के भार से कम कागज की आवश्यकता न पड़ेगी । सूर्य का एक जन्म इतना बड़ा है कि मनुष्य उसकी तुलना में अरबवें हिस्से की भी जिन्दगी नहीं ले पाया ।

ठीक यही बात मनुष्य की तुलना में कीट-पतंगों की है । वायुमण्डल में ऐसे जीव हैं जो इतने सूक्ष्म हैं कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनको इलेक्ट्रानिक सूक्ष्मदर्शी से ही देखना सम्भव है उनमें एक ही कोष (सेल) होता है । उसमें केन्द्रक सूर्य का ही एक कण होता है अन्य तत्त्वों में कोई भी खनिज, लवण या प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट मिलेंगे अर्थात् जीव-चेतना और प्रकृति का समन्वय ही दृश्य-जगत है । मनुष्य में गर्मी अधिक है, १०० वर्ष का जीवन उसे प्राप्त है पर कीड़े-मकोड़े शक्ति के एक अणु और शरीर के एक कोश से ही मनुष्य जैसी आयु भोग लेते हैं । मनुष्य जितने दिन में एक आयु भोगता है उतने में कीट-पतंगों के कई कल्प हो जाते हैं । प्रसिद्ध रूसी वैज्ञानिक एन. एस. श्चेरविनोवस्की एक कृषि-विशेषज्ञ थे उन्होंने ५० वर्ष तक कीट-पतंगों के जीवन के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण खोजें की । उन्हीं खोजों में भारतीय दर्शन को प्रमाणित करने वाले तथ्य भी प्रकाश में आये । वे लिखते हैं-टिड्डियों की सामूहिक वंशवृद्धि की अवधि सूर्य के एक चक्र अर्थात् ११ वर्ष से है अर्थात् ११ वर्ष में उनकी प्रलय और नई सृष्टि का एक क्रम पूरा हो जाता है । वीविल जो चुकन्दर कुतरने वाला कीड़ा होता है वह भी ११ वर्षीय चक्र से सम्बन्धित है, पर कुछ कीड़ों की सामूहिक वृद्धि २२ वर्ष, कुछ की ३३ वर्ष है इस आधार पर उन्होंने लिखा है कि पृथ्वी का सारा जीवन ही सूर्य पर आधारित है । सिद्ध होता है कि नन्हें-नन्हें जीवाणु बैक्टीरिया तथा विषाणु वायरस सभी का जीवन कोश (नाभिक) या (न्यूक्लियस) सूर्य का ही प्रकाश स्फुलिङ्ग और चेतन परमाणु है, जबकि उनके कोशिका सार (साइटोप्लाज्म) में अन्य पार्थिव-तत्त्व । जीवन-चेतना सर्वत्र एक सी है, परिभ्रमण केवल मन की वासना के अनुसार ही चलता रहता है ।

नाभिक में भी नाभिक (न्यूक्लिओलस) होते हैं जिससे यह भी सिद्ध होता है कि जिस प्रकार कोशिका सार (साइटोप्लाज्म) का सूर्य नाभिक होता, नाभिक अग्नि तत्त्व होता है, अग्नि या प्राण में ही मन होता है उसी प्रकार मन की चेतना में ही विश्व-चेतना या ईश्वरीय चेतना समासीन होनी चाहिए । प्रत्यक्ष में सूर्य भी स्व-प्रकाशित नहीं वह आकाशगङ्गा और नीहारिकाओं के माध्यम से किसी सुदूर केन्द्रक से ही जीवन प्राप्त कर रहा है अर्थात् सृष्टि के समस्त मूल में एक सर्वोपरि शक्ति है उसे ही परमात्मा माना गया है वही चेतना पदार्थ के संयोग से जीवों के रूप में व्यक्त होती है श्री शंकराचार्य ने तत्त्वबोध में इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए लिखा है-

नित्य शुद्ध विमुक्तैक मखण्डानन्दमद्वयम ।
सत्यं ज्ञानमनन्तं यत्परं ब्रह्माहमेवतत् ।।
एवं निरन्ताराभ्यस्ता ब्रह्मैवास्मीति वासना ।
हरत्यविद्या विक्षेपान रोगानिव रसायनम् ।।

-तत्त्वबोध ३६-३७

अर्थात्-जो तीनों कालों में रहने वाला, कभी नाश नहीं होता जिसका, जो मल रहित और संसार से विरक्त, एक और अखण्ड, अद्वितीय आनन्द रूप है वही ब्रह्म है किन्तु वही ईश्वरीय चेतना 'मैं हूँ' के अहंकार भाव के निरन्तर अभ्यास से उत्पन्न हुई वासना रोगों को रसायन के समान अविद्या से उत्पन्न होने वाले चित्त विक्षेप के कारण वास्तविक ज्ञान को नष्ट कर देती है और ईश्वरीय-चेतना जीव रूप में काम करती हुई वासनाओं की पूर्ति में कभी या कभी वह शरीर धारण करती भ्रमण करने लगती है ।

हमें मालूम है कि सूर्य ही नहीं चन्द्रमा, बृहस्पति शुक्र, शनि तथा सभी तारागण तक विकरण करते हैं । किसी भी एक बिन्दु को ले लें और कल्पना करें कि वहाँ सभी विकरण आड़ी-टेढ़ी दिशा में गमन कर रहे हैं तो पता चलेगा कि एक ही स्थान पर सूर्य प्रकाश का कण चन्द्रमा के कण को, चन्द्रमा का बृहस्पति के कण को बृहस्पति का शनि के कण को पार कर रहा होगा-फिर यह क्रम निरन्तर चल रहा होगा अर्थात् सिनेमा के पर्दे की तरह की गति और दृश्य उस समय हर ग्रह-नक्षत्र के अन्तवर्ती क्षेत्र का विद्यमान होगा । जिस प्रकार सूर्य के रासायनिक आकाश-मण्डल में हाइड्रोजन, हीलियम, कार्बन, नाइट्रोजन, आक्सीजन, सोडियम, सिलिकन, गन्धक, टाइटैनियम, मैगनीज, कोवाल्ट, निकिल, जिंक आदि २४ रासायनिक तत्त्व विद्यमान हैं, उसी प्रकार हर ग्रह के आकाश क्षेत्र में भिन्न जाति के आकाश मण्डल हैं । यह तत्त्व ही ब्रह्माण्ड का निर्माण करते हैं । विकिरण उनका प्रभाव क्षेत्र लिये होंगे अर्थात् वातावरण के हर बिन्दु पर विश्व का हर दृश्य विद्यमान है । मूल-चेतना उनमें से अपनी इच्छा (इच्छा आकाश स्वरूप है) और वासना के क्षेत्र में विद्यमान रहती होगी तो कुछ आश्चर्य नहीं । यदि वह पृथ्वी के ही किसी आकाश में रहकर भी किसी अन्य ग्रह के दृश्यों और रासायनिक अनुभूतियों का रस ले रही हो । भले ही जैसा कि योगवासिष्ठ में उनके काल और ब्रह्माण्ड की कल्पना की है उनका संसार कैसा भी क्यों न हो पर उस अणु में भी जीव-चेतना के लिये विराट् ब्रह्माण्ड दिखता होगा ।

वायुमण्डल ही नहीं जीवन से रिक्त कोई स्थान नहीं । प्रसिद्ध डच व्यापारी एन्टान वान लीवेनहोक को जब भी अवकाश मिलता वह शीशों के कोने रगड़-रगड़ कर लेन्स बनाया करता । उसने एकबार एक ऐसा लेन्स बनाया जो वस्तु को २७० गुना बड़ा करके दिखा सकता था । उसने पहली बार गन्दे पानी और सड़े अन्न में हजारों जीवों की सृष्टि देखी । कौतूहलवश एक बार उसने वर्षा का शुद्ध जल एकत्रित किया, उसकी मंशा यह जानने की थी कि शुद्ध जल में भी कीटाणु होते हैं क्या, वह यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि उसमें भी जीवाणु उपस्थित थे उसने अपनी पुत्री मारिया को बुलाकर एक विलक्षण संसार दिखाया-यह जीवाणु जल में तैर ही नहीं रहे थे तरह-तरह की क्रीड़ायें करते हुए यह दिखा रहे थे कि उनमें यह इच्छाएँ, आकांक्षाएँ मनुष्य के समान ही हैं भले ही मनुष्य जटिल कोश प्रणाली वाला जीव क्यों न हो पर चेतना के गुणों की दृष्टि से मनुष्य और उन छोटे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जीवाणुओं में कोई अन्तर नहीं था । यह जीवाणु हवा से पानी में आये थे ।

१८३८ में पौधों की संरचना का परीक्षण करते समय वैज्ञानिक माथियास शेलिडेन ने देखा कि पौधे भी कोशिकाओं से बने हैं और यह कोशिकाएँ भी बड़े जीव के भीतर एक जीवित जीव हैं । इस प्रकार हर योनिधारी का शरीर ब्रह्माण्ड है और उनमें रह रहे अनेक चेतन-कोश जीव जो अपनी वासना के अनुसार काम करते हैं । हर कोश में विराट् ब्रह्माण्ड की बात विज्ञान भी स्वीकार करता है ।

यह इलेक्ट्रानिक प्रकाश की बौछार से ही देखे जा सकते हैं, इलेक्ट्रानिक्स विद्युताणु होते हैं । मन भी एक प्रकार का सचेतन विद्युत परमाणु है-योग ग्रन्थों में उसे 'अग्नि स्फुल्लिंग' कहा जाता है उसे ध्यान की एकाग्रता के समय अत्यन्त सूक्ष्म किन्तु दिव्य प्रकाश-कण के रूप में त्रिकुटी-दोनों भौंहों के बीच आज्ञाचक्र नामक स्थान में देखा भी जाता है । यही कीट-पतंगों में भी मन और मन की विशेषताओं के होने का प्रमाण है, जो किसी भी विज्ञान से कम महत्त्व का नहीं ।

कोशिका के अन्दर के दोनों भाग (१) केन्द्रक (न्यूक्लियस) और (२) कोशिकासार अर्थात् कोश को जीवित रखने वाले समस्त रसायन (साइटोप्लाज्म) भिन्न तत्त्व हैं एक दर्शक है, चेतन है और चेतना के सभी गुणों को धारण करके रखता है-वह नाभिक हुआ । कोशिकासार का समस्त रासायनिक पदार्थ-जैसे कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, बसा, लवण (सोडियम क्लोराइड) खनिज (लोहा आदि), कार्बन, तत्त्व (कार्बनिक कम्पाउण्ड) एक विशिष्ट झिल्ली से घिरा हुआ होता है । इस झिल्ली में अत्यन्त बारीक छेद होते हैं जिसमें से होकर आक्सीजन अन्दर जाता है और कोशिका के जीवन को सुरक्षित रखता तथा कोशिका की रासायनिक क्रियाओं को जारी रखता है । कोशिकासार के परमाणु इन छेदों से बड़े होते हैं इसी कारण वे झिल्ली के भीतर रह पाते हैं अन्यथा सभी रासायनिक पदार्थ बह जाते और कोशिका मर कर नष्ट हो जाती । कोशिका स्वयं अत्यन्त सूक्ष्म इकाई है । फिर उसके संघटक रासायनिक तत्त्वों के अणु तो और भी सूक्ष्म हुए । वे १००००० गुना बड़े करके ही इलेक्ट्रानिक सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखे जा सकते हैं फिर इन छेदों की लघुता की तो कल्पना ही नही हो सकती । सूक्ष्मदर्शी से देखने पर ही कोशिका के वह दृश्य दिखाई भी देते हैं, जिनकी योगवासिष्ठकार ने व्याख्या दी है पर कोशिका में प्रवाहित उन्मुक्त चेतना अन्दर के मन और उसकी चेष्टाओं का विज्ञान आज की फ्रायड और एडलर की साइकोलाजी नहीं भारतीय दर्शन की प्रतिस्थापनाएँ या भारतीय साधनापरक मनोविज्ञान ही दे सकता है ।

माना कि मनुष्य को ईश्वरीय अनुदान अधिक मिले हैं किन्तु यदि केवल वासना और इच्छापूर्ति ही उसका लक्ष्य है तो वह तो इतर मानव योनियाँ भी मनुष्य की तरह ही भोगती हैं, उसमें कोई विशेषता नहीं । मनुष्य की तरह ही मनुष्य ने सूक्ष्म-बुद्धि और विवेक की क्षमता प्राप्त की है तो उसे अन्तर्जगत के सत्यों को समझना और आत्म-कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना ही उसकी बुद्धिमानी हो सकती है, अन्यथा मनुष्य जीवन भी एक प्रकार शिश्नोदर परायण कीट-जीवन में पड़ा इन मानवेतर सृष्टियों में चक्कर काटता रहता है जहाँ उसको इच्छापूर्ति के साधन मिल सकते हैं आत्मोद्धार के नहीं ।

भारतीय-दर्शन का विस्तार व वैज्ञानिक विश्लेषण

आत्मा का स्वरूप जितना जटिल है रहस्यपूर्ण है, उतना ही रुचिकर भी है । वह एक कला, एक विज्ञान, एक शक्ति और पूर्णता का अध्याय है, उसे जान लेने और प्राप्त कर लेने के बाद साधारण मनुष्य भी असाधारण क्षमताओं से सम्पन्न हो जाता है ।

विज्ञान यह बताता है कि शब्द को, आकार ही नहीं भावनाओं और स्वप्नों को भी विद्युत-चुम्बकीय शक्ति प्रवाह में हजारों-लाखों मील दूर तक दौड़ाया जा सकता है । टेलीफोन, टेलीग्राफ, टेलीविजन, रेडियो, टेलीस्टार लेजर आदि यन्त्र उसी की पुष्टि करते हैं । अब प्रकाश के बारे में यह जाना गया है कि वह इस शक्ति-प्रवाह में भी हस्तक्षेप करके उसे घटा-बढ़ा सकता है । फोटो इलेक्ट्रिक सेल एक प्रकार का बाल्व जैसा यन्त्र होता है, जिसमें प्रकाश की किरणें डालने से विद्युत-धारा का मान घटाया या बढ़ाया जा सकता है । आटोमेटिक (स्वचालित) पंखे , रेडियो, घड़ियाँ और दरवाजों के खुलने तथा बन्द होने में इसका उपयोग इन दिनों हो रहा है, चोर घन्टी (बरगलर एलार्म) भी इसी आधार पर बनी है । एक ऐसा यन्त्र जो प्रकाश-किरणों के बीच में पड़ने को अनुभव करता है और घन्टी बजाने लगती है, उसी को बरगलर एलार्म कहते हैं इससे चोर के आने का पता चल जाता है ।

एक्स-किरणें प्रकाश-कणों की भेदन-शक्ति का परिचय देती हैं । प्रकाश की अत्यन्त सूक्ष्म और दिव्य-सत्ता में यह गुण और भी विलक्षण पाये जाते हैं इनमें विश्व के किसी भी भाग में होने वाली हलचल के रेखा-चित्र और आकार बनते-बिगड़ते रहते हैं, यदि हम उनका नियन्त्रण आत्मा के प्रकाश के रूप में कर सकने की स्थिति में हों तो जो कुछ भी यन्त्रों के द्वारा आश्चर्यजनक देखा-सुना और प्राप्त किया जा सकता है, वह सब आत्म-चेतना द्वारा बिना किसी यन्त्र के प्राप्त किया जा सकता है ।

स्वामी रामतीर्थ ने एक घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है-भारत में राम का एक मित्र था जो कि बड़ा धर्मनिष्ठ था । एक बार उसकी आँख बन्द करके उसे एक स्थान पर ले जाया गया । उसके सामने गणित की एक पुस्तक रखी गई । इस पुस्तक को उसने पहले कभी नहीं देखा था फिर भी वह आँख बन्द किये ही उसे पढ़ता चला गया । इस पुस्तक में कुछ ऐसे नाम और गणित के चिह्न थे,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिन्हें वह व्यक्ति नहीं जानता था तो भी उन सबको उसने एक कागज पर लिखकर बता दिया कि इस स्थान पर ऐसा अंकित है । उस व्यक्ति में विचारों को पढ़ने की भी क्षमता थी । सच बात तो यह है कि वैज्ञानिक कोई नई वस्तु बनाता ही नहीं, वह तो जो कुछ भी मस्तिष्क में है उसे उतार भर देता है, ज्ञान की स्वामी आत्मा स्वयं ही भूत भविष्य सबका ज्ञाता है । क्या दूर, क्या पास उसे जानने के लिये किसी भी बाह्य उपकरण की आवश्यकता नहीं । पर सामान्य स्थिति में हम उस पवित्रता को निहार नहीं पाते, जिसमें यह सिद्धियाँ सन्निहित हैं । आत्मा के ऊपर चढ़ा अज्ञानान्धकार, हमें भटकाता रहता है और हम मानवेतर प्राणियों जैसा निकृष्ट जीवन जीते रहते हैं ।

भारतीय दर्शन की तीसरी मान्यता यह है कि आत्मा सम्पूर्ण शक्तियों की स्वामी है । स्थूल रूप से इन्द्रियों की जितनी क्षमता है, वह सारी सूक्ष्म रूप से लाखों गुना अधिक आत्मा की शक्ति के रूप में विद्यमान है ।

आज तक पदार्थ को ही शक्ति का मूल-स्रोत माना जाता रहा है, पर अब जो तथ्य प्रकाश में आये, उनसे यह पता चलता है, चेतना पदार्थ को भी नियन्त्रित और हस्तान्तरित कर सकती है । ७ दिसम्बर, १९६९ के 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' रहस्य रोमांच अंक में महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज का एक लेख 'विपुल प्रकृति और सृष्टि-प्रक्रिया का रहस्य' छपा था उसमें विद्वान् लेखक ने बताया है कि आत्मा प्रत्येक समय प्रत्येक वस्तु से परिपूर्ण है वह अदृश्य वस्तुओं को भी किसी भी समय कहीं भी प्रकट कर सकती है । परमहंस स्वामी विशुद्धानन्द जी का उदाहरण देते हुए लिखते हैं-वह बोले देखो यह मेज पर किस वस्तु का फूल रखा है । मैंने कहा गन्ध-फूल (मेरीगोल्ड) । इसके बाद वे उस फूल को हाथ में लेकर हिलाने लगे । उन्होंने बताया अब मैं आत्म-शक्ति से इस फूल में गुलाब के फूल के परमाणु आकर्षित करता हूँ । थोड़ी ही देर में उन्होंने हाथ खोलकर दिखाया तो वस्तुतः फूल गुलाब के रूप और गन्ध में बदल चुका था । फिर इसी फूल को उन्होंने जबाकुसुम में बदल दिया । उन्होंने बताया इस प्रकार सृष्टि के किसी भी स्थान के किसी भी परमाणुओं को मनोमय शक्ति के द्वारा आकर्षित कर लेने की क्षमता आत्मा में है । हम अज्ञानवश अपनी ही क्षमताओं का उपयोग नहीं कर पाते अन्यथा कोई भी व्यक्ति अभावपूर्ण स्थिति में नहीं जन्मा । अज्ञान ही शक्ति का अभाव है, यदि हम अपने आत्म-प्रकाश को जाग्रत कर लें तो हमारे लिये संसार में सब कुछ आनन्द ही आनन्द, मंगल ही मंगल है ।

अभी तक इन बातों पर विश्वास करने वाला अन्ध-श्रद्धालु कहा जाता था पर विज्ञान ने कहा-वस्तुतः यह अन्ध-श्रद्धा नहीं, सृष्टि का एक विलक्षण सत्य है । रूस के 'रसायन संश्लेषण संस्थान' ने 'प्लाज्मोट्रान' नामक एक ऐसी युक्ति का आविष्कार किया है, जिसकी सहायता से अनेक रसायन पदार्थों का निर्माण एक सेकिण्ड के दस हजारवें हिस्से से भी कम समय में किया जा सकेगा । प्लाज्मोरसायन का उद्योग पर तीव्र प्रभाव पड़ने का अनुमान है, उससे चौबीस घण्टे में इतना पदार्थ तैयार किया जा सकेगा, जो कई वर्षों तक भी खाने से न चुकेगा । भारतवर्ष में कई अलौकिक और रहस्यमय भोजों की कथाएँ प्रचलित हैं, वह इसी विज्ञान पर आधारित हैं ।

यह घटनाएँ भारतीय दर्शन के आत्म-विज्ञान को सत्य सिद्ध करती हैं, वहाँ लोगों की आत्मा जैसी अलभ्य वस्तु को प्राप्त करने की प्रेरणा भी देती हैं । यों यह विद्याएँ योग से उपलब्ध होती हैं पर इन्हें गृहस्थ के कर्त्तव्यों का पालन करते हुए भी सीखा और समझा जा सकता है । स्वामी विशुद्धानन्द स्वयं गृहस्थ थे । उनका जन्म १४ मार्च, १८५६ को हुआ, ११ जुलाई, १९३७ को अपने मृत्यु दिवस तक का उनका सारा ही जीवन आत्म-तत्त्व की शोध में लगा । श्री पं० गोपीनाथ जी को उन्हीं की कृपा से आत्म-ज्ञान हुआ ।

आत्मा के अस्तित्व को मानने के बाद तीसरी मान्यता हिन्दू दर्शन की यही है कि मनुष्य भौतिक इच्छाएँ और महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति करता हुआ भी आत्म-कल्याण की आवश्यकता को सर्वोपरि माने और उसके लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहे । इस प्रयत्न में लगाया हुआ समय और साधन उसे भौतिक लाभों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण लाभ दे सकता है । यह ऊपर के कथानकों से साफ व्यक्त है, व्यक्ति-पदार्थ पर स्वाधीन नियन्त्रण प्राप्त कर ले, सर्वदृष्टा और सर्वशक्तिमत्ता प्राप्त कर ले, इसकी तुलना में कोई भी बड़े से बड़ा पद, यश और वैभव भी नगण्य एवं तुच्छ ही कहा जा सकता है ।

पदार्थ की तरह काल भी आत्मा में ही समाहित है । समय कोई वस्तु नहीं वरन् वह आत्मा का विस्तार मात्र है, इसलिये यदि कोई आत्मा का मूलोच्छेद कर लेता है तो वह समय की सीमाओं और प्रतिबन्धों को तोड़ लेता है । उसके लिये भूत भी वर्तमान है और भविष्यत् भी । वह आगे पीछे का सब कुछ देख सकता है । सन् १९२४ में एक महान् गृहस्थ योगी श्री रामचन्द्र ने अतीन्द्रिय स्थिति में एक पुस्तक 'सत्य का उदय' (रियलिटी एट डान) लिखी थी, उसमें उन्होंने लिखा था कि- इंग्लैण्ड का भाग्य दुर्भाग्यपूर्ण रहेगा, इसका दक्षिणी भाग समुद्र में धँस जाएगा । लन्दन के बीचोबीच एक ज्वालामुखी छिपे तौर से काम कर रही है, वह थोड़े समय में ज्वालामुखी के रूप में फूट पड़ेगी ।

यह बात तब हँसी की समझी गई, किन्तु जब पिछले दिनों जून, २९ को साइन्स जनरल में भूगर्भ शोधों के हवालों से यही सूचना दी गई तो लोग आश्चर्यचकित रह गये । साइन्स जनरल में लिखा है-उत्तरी वेल्स के दक्षिण में यार्कशायर तक पूरा ब्रिटेन धीरे-धीरे इंगलिश चैनेल और उत्तरी सागर में डूबता जा रहा है जबकि देश के उत्तरी क्षेत्र का आधा भाग और स्काटलैण्ड धीरे-धीरे समुद्र से उठते जा रहे हैं । पत्र ने यह भी दावा किया है कि १५०० वर्षों के अन्दर लन्दन के कुछ जिले तो समुद्र के गर्भ में विलीन हो जाएँगे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह जानकारियाँ कई बार इससे भी अधिक सामयिक और रोमांचकारी होती हैं, तब पता चलता है कि अवश्य ही जीवन-प्रवाह के रूप में कोई ऐसी सत्ता काम कर रही है, जो भूत, भविष्य के पल-पल को जानती है । उदाहरण के लिये कुछ दिन पहले रायबरेली की एक बालिका और एक राहगीर में कुछ कहा-सुनी हो गई । राहगीर एक धार्मिक व्यक्ति था । बालिका ने उसे गालियाँ दीं और कहा-"तू मर जा" वह सज्जन हँसे और बोले बेटी- "मेरी मृत्यु को तो अभी समय है पर मुझे दुःख है, आज का दिन तेरे जीवन का अन्तिम दिन है ।" इसे विधि की विडम्बना कहें या आत्मा की विलक्षण क्षमता बालिका शाम को कुएँ पर पानी भरने गई वहाँ उसका पाँव फिसल गया और कुएँ में गिरकर उसकी मृत्यु हो गई ।

यह अनेक घटनाएँ और प्रमाण यह बताते हैं कि हम कोई नगण्य शरीर और इन्द्रियों के परकोटे मात्र नहीं हैं, यह शरीर तो एक दुर्ग है, जिसमें वैभवशाली आत्मा निवास करती है, जो उसकी सान्निध्यता प्राप्त करता है, यह आत्मा उसे महामंत्री, सेनापति, प्रजापति और अलौकिक-शक्तियों का स्वामी बना देती है ।

ब्रह्म-सत्ता का अस्तित्व है या नहीं ?

पिछली शताब्दियों में बुद्धिवाद का-प्रत्यक्षवाद का बहुत जोर रहा है । विज्ञान का विकास इसी खोज और जिज्ञासा के लिए उत्पन्न हुई व्याकुलता का परिणाम है । शास्त्र-वचनों को सब कुछ माने बैठे रहने और परम्परागत मान्यताओं को जकड़े बैठे रहने की वृत्ति शिथिल न की गई होती, नये सिरे से सारी परख करने के लिए अविश्वास मन लेकर न चला गया होता तो निश्चय ही हम दस हजार वर्ष पूर्व की दुनिया में रहे होते, तब परम्परागत यथास्थिति बनाये रहने का ही आग्रह होता-सुधार, विकास, परिवर्तन के चिह्न बहुत मन्द गति से उभरते हैं । ऐसी दशा में प्रगति चक्र इतनी तेजी से न घूमता जिसने लाखों वर्षों में सम्भव न हो सकने वाली प्रगति-यात्रा को तीन शताब्दियों में मूर्तिमान करके दिखा दिया ।

इस बुद्धिबाद ने चिर-प्रचलित 'ईश्वर के अस्तित्व' विषय पर भी प्रत्यक्षवादी आधार पर खोज की । पर प्रयोगशालाओं में उसकी सत्ता सिद्ध न हो सकी । इन्द्रिय शक्ति ने भी इस सन्दर्भ में कुछ न किया । मस्तिष्क भी प्रमाण न खोज सका और यान्त्रिकी, भौतिकी ने भी अपनी हार स्वीकार कर ली । ऐसी दशा में स्वाभाविक ही था कि बुद्धिवाद ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार करता । प्रकृति की क्रम व्यवस्था सुसम्बद्ध और सुनियोजित है ऐसा तो माना गया, पर उसे स्वसंचालित कहकर सन्तोष कर लिया गया । इसके लिए किसी स्रष्टा का हाथ हो सकता है, इस बात से शोधकर्त्ताओं ने इनकार कर दिया । नास्तिकवाद की प्रचण्ड लहर इसी वैज्ञानिक इनकारों में उत्पन्न हुई और आँधी-तूफान की तरह बौद्धिक जगत पर अपना अधिकार जमाती चली गई । पिछले दिनों ईश्वर की अस्वीकृति का प्रतिपादन प्रगतिशीलता का चिह्न बनकर रहता रहा है । 'नीत्से' जैसे अनेक दार्शनिकों ने मान्यताओं और तर्कों का परिशोधन करने वाले तत्व-दर्शन को एक नई दिशा दी, जिसमें आस्तिकता की मान्यताओं को निरर्थक ही नहीं हानिकारक सिद्ध करने का भी ऐड़ी-चोटी प्रयत्न किया गया है ।

पिछली तीन शताब्दियों में नास्तिकता के प्रतिपादन को आँधी-तूफान की तरह विकसित और व्यापक होने का अवसर मिला है । साम्यवादी शासन-सत्ता ने प्रस्तुत अनास्था की जड़ें और भी अधिक गहरी जमाईं, पर लगता है वह उन्माद ठण्डा पड़ने लग गया है । विज्ञान को नये सिरे से अपने निर्णय पर विचार करने के लिए पीछे लौटना पड़ रहा है । जड़-पदार्थ अपने आप नियमित हलचलें करते रह सकते हैं, यह आग्रह किसी समय पूरे जोश खरोश से किया गया, पर अब पुरातनपंथियों की तरह तथाकथित प्रगतिशीलों को भी यह सोचना पड़ रहा है कि सृष्टि-संतुलन के जिन रहस्यों का-इकोलौजी विज्ञान के आधार पर प्रतिपादन होता चला जा रहा है वह अनायास एवं संयोगवश चल रहा है-यह बात पूरी तरह गले नहीं उतरती । स्रष्टा कोई नहीं-उसकी कुछ भी आवश्यकता नहीं-यह बात आवेश में तो कही जा सकती है, पर गहराई में उतरते ही सन्देह उत्पन्न होता है कि इतनी क्रमबद्ध-परस्पर पूरक और सोद्देश्य गतिविधियाँ किसी चेतना के बिना नियन्त्रण किये ही किस प्रकार चलती रह सकती हैं ?

माना कि यान्त्रिकी और भौतिकी के साथ-साथ बौद्धिकी भी प्रत्यक्षवादी उपकरणों के आधार पर ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित नहीं कर पा रही है, पर न मानने भर से भी तो समाधान नहीं होता है । सृष्टि के संचालन क्रम में इतनी अधिक सुसम्बद्धता का होना अनायास ही चल रहा है तो यह अनायास ही स्रष्टा होना चाहिए । कर्ता के बिना कर्म, प्रेरणा के बिना हलचल, नियन्त्रण के बिना व्यवस्था क्यों कर बनी ? स्वसंचालित यन्त्रों पर भी तो आखिर संचालक नियुक्त रहते हैं । फिर सृष्टि जैसे विशाल संयन्त्र किस प्रकार बिना किसी बुद्धिमान सत्ता का आधार लिये -क्यों कर चलता रह सकता है ? यह प्रश्न पिछड़े कहे जाने वालों से लेकर प्रगतिशीलों तक को समान रूप से संक्षोभ उत्पन्न करता है । प्रमाण रहित को क्यों मानें ? तर्क उचित है । पर न मानने की बात तो और भी अधिक भारी पड़ती है । निगलने का बहुत प्रयत्न करने पर भी वह गले में ही अटकी रह जाती है ।

अणु से लेकर सौर-मण्डलों तक का प्रत्येक छोटा-बड़ा घटक अपने नियत कर्त्तव्य, उत्तरदायित्व को तत्परतापूर्वक निर्वाह करने में संलग्न है । उनके बीच सघन सहयोग काम कर रहा है, नीति-शास्त्र और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समाज-शास्त्र के जो सिद्धान्त मनुष्य को प्रयत्नपूर्वक सिखाये जाते हैं, उन्हें जड़ कहे जाने वाले पदार्थ अधिक अच्छी तरह समझे और अपनाये हुए हैं, इस तथ्य को जितना स्पष्ट अब अनुभव किया जा रहा है उतना पहले कभी नहीं किया गया था । ऐसी दशा में बुद्धि को स्रष्टा के अस्तित्व को अस्वीकृत करने वाली पूर्व घोषणा पर पुनर्विचार करना पड़ रहा है ।

एक के बाद एक प्रमाण इस स्तर के मिल रहे हैं जिनसे इस ब्रह्माण्ड में एक व्यापक चेतन-तत्व का समुद्र भरा हुआ सिद्ध होता है । जैसे शब्द, ताप, ध्वनि प्रवाह ईश्वर के महासागर में दौड़ लगाते हैं । ठीक इसी प्रकार चेतना का भी अपना प्रभाव और क्षेत्र है । विचार और भावना तत्व किसी भौतिक शक्ति से कम समर्थ नहीं है । उनकी प्रतिक्रिया मनःस्थिति पर ही नहीं परिस्थिति पर भी समान रूप से होती है । सृष्टि-सन्तुलन का नियन्त्रण समष्टि मन करता है । यह नवीनतम वैज्ञानिक शोधों का परिणाम है । इसे प्रकारान्तर से ब्रह्म-सत्ता की स्वीकृति ही कह सकते हैं ।

विज्ञान ने जड़ के अन्तराल में समाई हुई एक ऐसी शक्ति को स्वीकार किया है जो व्यापक भी है और बुद्धिमान भी । यह प्राकृतिक है या आध्यात्मिक इस प्रश्न पर विचार करने का अभी समय नहीं आया, पर 'ब्रह्माण्डीय चेतना' का अस्तित्व अब विज्ञान क्षेत्र में मान्यता प्राप्त करता चला जा रहा है । इस सर्वव्यापी चेतना ने सृष्टि की हलचलों के साथ स्नेह, सौन्दर्य एवं आनन्द की अनुभूति जुड़ी रह सके और जीवधारी इस प्रवास यात्रा का समुचित आनन्द ले सकें, ऐसी व्यवस्था भी जोड़कर रखी हुई है । उत्पादन, अभिवर्धन, ढलान और परिवर्तन का चक्र अपनी धुरी पर घूमता है । ग्रह-नक्षत्रों से लेकर अणु-परमाणु तक के छोड़े-बड़े सृष्टि-घटक अपने निर्धारित गति-चक्र में तत्परतापूर्वक भ्रमण करते हैं । क्रिया की प्रतिक्रिया सुनिश्चित है । पेण्डुलम की तरह यहाँ आगे बढ़ना और पीछे हटना भी होता रहता है । लगता है किसी बुद्धिरहित ने अनगढ़ सृष्टि नहीं रची है, वरन् उसके पीछे सुव्यवस्था के ऐसे तार कस दिये हैं कि गड़बड़ी होते-होते स्वयमेव सँभल जाती है ।

आइंस्टाइन जैसे विचारशील व्यक्ति इसीलिए उस अदृश्य-सत्ता की अनुभूति कर कह उठते हैं-"पदार्थ की सूक्ष्मतर-सत्ता तक पहुँचकर मेरी कल्पना-शक्ति एवं अनुभव-शक्ति इस विश्वास को जन्म देती है कि वहाँ विचार एवं परिवर्तन करने वाली कोई चेतन-सत्ता पहले से ही विद्यमान है । मैंने तो बस उस चेतन-सत्ता के साथ एकाकारिता की स्थिति प्राप्त कर ही इस सूक्ष्मतर सत्ता का बोध प्राप्त किया है । अब मुझे विश्वास होने लगा है कि यह चेतन-सत्ता अदृश्य-जगत की सूक्ष्म, किन्तु महान् शक्तिशाली सत्ता है ।"

जीवन की सृजनात्मक प्रक्रिया के प्रारम्भ होने की तो विज्ञान यह व्याख्या कर सकता है कि 'एमीनो एसिड प्रोटीन' नामक पदार्थ ने सहसा अपने पड़ोसी तत्वों को अपनी ओर आकर्षित करना और पचाना प्रारम्भ कर दिया, लेकिन ऐसा क्यों और कब हुआ, इसका उत्तर विज्ञान नहीं दे पाया है ? प्रोटोन, न्यूट्रोन, इलेक्ट्रोन अथवा इनसे भी सूक्ष्म प्रकृति का कोई तत्व, जिसके साथ उसे गतिशील करने वाली शक्ति अदृश्य रूप से घुली हुई है, परस्पर सम्बद्ध और अन्तर्निविपृट है । अस्तित्व चाहे वह ईश्वर का हो, प्रकृति का अथवा बुद्धि का, पूर्णतः अविभाज्य है । इसका प्रत्येक अंश सूक्ष्म है, अदृश्य है और इन्द्रियानुभूति से परे है । इसका प्रत्येक अंश दूसरे को प्रभावित कर रहा है और प्रत्येक दूसरे अंश से प्रभावित हो रहा है ।

जड़ के अन्तराल में काम करने वाली चेतना को पिछली शताब्दियों की तुलना में अब अधिक अच्छी तरह समझ सकने के लिए साधन बने और आधार खड़े हुए हैं । शरीर में काम करने वाले जीवाणुओं की संरचना और क्रिया-पद्धति को समझने का प्रयत्न करने पर प्रतीत होता है कि इनके भीतर मात्र गति ही नहीं बुद्धिमत्ता एवं इच्छाशक्ति भी काम कर रही है ।

शरीर का प्रत्येक जीवाणु स्वतन्त्र चिन्तन की भी क्षमता रखता है । लेकिन सम्पूर्ण शरीर के निर्माण के लिए शरीरस्थ सभी जीवाणु मिलकर कार्य करते हैं । इनका नेतृत्व करता है 'सुपरईगो' या अहं-तत्व । वही सबका संचालक, निर्देशक है । वह कमाण्डर है, लेकिन फौज के प्रत्येक जवान में, शरीरस्थ हर एक जीवाणु में स्वतन्त्र विचार-शक्ति भी है । उन्हें मालूम है कि हमारे लक्ष्य की प्राप्ति तभी सम्भव है, जब हम नेता का, कमाण्डर का, अहं-तत्व का निर्देश पूरी तरह मानें । यह बोध उन्हें समर्पण की प्रेरणा देता है । समर्पण की दिव्य-भावना से निरन्तर क्रियाशील प्रत्येक जीवाणु 'अहं' की आज्ञा का ही अनुसरण करते हैं । इस 'मैं' का सुख ही, सभी जीवाणुओं का सुख और उसका दुःख, सबका दुःख बन जाता है । 'मैं' की विचार-विद्युत शरीर के सभी जीवाणुओं में तीव्रतम वेग से कौंध जाती है । मैं का उल्लास, उत्साह उन्हें स्फूर्ति, उमंग और ओज से भर देता है और 'मैं' की हताश निराशा उन्हें पीत-मुख श्लथ-तन, उदास और निष्क्रिय बना जाती है । मानो हर जीवाणु एक छोटा स्टेशन है जो अपने मुख्य स्टेशन 'अहं-तत्व' से जुड़ा है ।

मस्तिष्क के जीवाणु अन्य देहाङ्गों के जीवाणुओं से अधिक-प्राण-शक्ति सम्पन्न होते हैं । उनमें सुदीर्घ अनुभवों की स्मृतियाँ संचित होती हैं अतः वे सभी जीवाणुओं के नेता होते हैं । किन्तु देह के सभी जीवाणु परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध होते हैं । तीव्र क्षुधा-ज्वाला से दग्ध एक व्यक्ति सुखद व्यंजनों के थाल के सामने बैठकर पहला ग्रास तोड़ता है कि तभी उसके किसी परम आत्मीय की मृत्यु की सूचना स्वरूप टेलीग्राम उसे मिलता है । तार पढ़ते ही उस व्यक्ति का हृदय जैसे निष्प्राण हो जाता है । शरीर के सभी अंगों में ऐठन-सी मच जाती है । लगता है जैसे पूरे शरीर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

की ज्योति अत्यन्त मन्द हो चली है । भूख का कहीं अता-पता नहीं । जीभ सूख जाती है । मस्तिष्क में एक स्तब्धता-सी छाने लगती है । अब विचार करें कि क्षुधा को शान्त करने की तीव्र प्रेरणा देने वाले जीवाणुओं का वह जोश कहाँ खो गया ? वे भी मन-मस्तिष्क के घनीभूत विषाद से समरस हो गए और अपनी प्रचण्ड आकांक्षा तक भुला बैठे ।

इसमें दो निष्कर्ष हमारे सामने आते हैं । पहला यह कि अपनी अन्तश्चेतना ही शरीर के समस्त जीवाणुओं पर प्रभाव डालती है । अतः इन जीवाणुओं को पुष्ट, प्रसन्न प्रफुल्ल और प्रगतिशील रखने के लिए चित्त में स्फूर्ति और उल्लास का सातत्य आवश्यक है । मन की दरिद्रता, दैन्य या दुराशा देह भर में जीवाणुओं के क्षोभ व क्षीणता का कारण बनती है । अपने शरीर के अंगों और जीवाणुओं पर सदा सन्देह मत कीजिए अन्यथा वे सचमुच ही संदिग्ध व संकीर्ण बुद्धि के, शिथिल और सिमटे हुए से अर्थात् अल्प प्राण हो जाएँगे । अपने आप पर विश्वास करें, यह आत्म-विश्वास उन्हें अदम्य स्फूर्ति, उल्लास और आवेग देगा । वे प्रस्तुत बाधाओं को चीरते हुए, शरीर को स्वस्थ, प्रसन्न रखने के लिए सदा सक्रिय रहेंगे ।

शरीर का कोई भी अंग काटकर शरीर से अलग कर लिया जाए और फिर उसे किसी विषैले रसायन या घातक औषधि के समीप रखा जाए, तो उस कटे अंग के अणुओं में एक तीव्र हलचल मच उठेगी और वे अपनी शक्ति भर उससे दूर जाने की कोशिश करेंगे । इस प्रयास में वह कटा हुआ अंग उक्त घातक औषधि या जहरीले रसायन से तनिक-सा दूर स्वतः ही सरक सकता है । इसी तरह, यदि कोई लाभदायक औषधि या पुष्टिकर रसायन के पास ऐसा कटा हुआ अंग रखा जाए, तो उसके अणु ऐसी औषधि या रसायन के निकट खिंचने की चेष्टा करेंगे । इससे स्पष्ट है कि शरीरस्थ अणुओं में भी विचार-शक्ति है ।

रक्त की एक बूँद में हजारों कोशिकाएँ होती हैं । एक सेल में प्रोटोप्लाज्म भरा होता है, जिसमें कार्बन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, सल्फर, कैल्शियम, पोटेशियम, मैग्नीशियम, लोहा, फास्फोरस, क्लोरीन और सोडियम ये १२ तत्व होते हैं ।

छोटी-छोटी लाल रक्त-कोशिकाओं में हीमोग्लोबीन भरा रहता है । श्वेत रक्त-कोशिकाओं में आत्म-रक्षा और प्रतिशोध क्षमता का विवेक होता है, उन्हें अचेतन कैसे कहा जाए ? इस तरह ये प्रत्येक कोशिकाएँ भी वस्तुतः एक स्वतन्त्र जीवधारी हैं तथा शरीर इन अनेक चेतन घटकों का संघटित समूह कहा जा सकता है ।

सामान्यतः मस्तिष्क को बुद्धि का एकमात्र स्थान माना जाता है । किन्तु बुद्धि वस्तुतः एक वैद्युतिक ऊर्जा है । वह सम्पूर्ण शरीर में परिव्याप्त है । मस्तिष्क उसका मुख्यालय है । किन्तु यह मुख्यालय भी मात्र शरीर की दृष्टि से ही है। क्योंकि स्वयं मस्तिष्क विश्व की चेतना, ऊर्मियों से प्रतिपल प्रभावित होता है ।

धातुओं, पाषाण आदि में भी प्रसुप्त चेतना पाई गई है । जड़-पदार्थों को भी अति न्यून जीवनी-शक्ति सम्पन्न प्राणी कहा जा सकता है । प्रत्येक जड़-पदार्थ में चेतन की इस झाँकी को उसकी विकास-आकांक्षा कहा जा सकता है । ऐसा परिलक्षित होता है कि सभी जड़ तत्व चेतना का स्तर अधिकाधिक विकसित करने का निरन्तर प्रयास कर रहे हैं । धातुओं में जंग लगना, पानी की सतह पर काई उत्पन्न होना, जल-जन्तुओं का उद्भव, वनस्पति में जीव-जन्तुओं का उत्पन्न होना, मिट्टी से उर्वरक जीवाणुओं का पाया जाना, पत्थर से शिलाजीत जैसे पदार्थों का निकलना यह बताता है कि इनमें भी जीवन मौजूद है और वह क्रमशः शैशव, यौवन, वृद्धता एवं मृत्यु की धुरी पर अपनी निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार भ्रमण कर रहे हैं ।

वृक्ष-वनस्पतियों का जीवन-क्रम भी अन्य प्राणियों जैसा ही है । उन्हें स्थिर एवं पिछड़े कहा जाना तो ठीक हो सकता है, पर यह सोचना गलत है कि उनमें अनुभूतियों एवं सम्वेदनाओं का सर्वथा अभाव है । भारत के मूर्धन्य वैज्ञानिक जगदीश चन्द बोस ने यह सिद्ध किया था कि पौध भी सोचते, इच्छा करते और परिस्थितियों से प्रभावित होकर सुख-दुःख मानते हैं । संगीत और शोर का जो भला-बुरा प्रभाव वनस्पतियों पर पड़ता है उसने भी यही सिद्ध किया है कि उनमें भी सम्वेदना मौजूद है । स्तर न्यूनाधिक हो सकता है, पर वैज्ञानिकों की भाषा में नया नामकरण मिली 'ब्रह्माण्डीय चेतना' का, पुरातन अध्यात्म की भाषा में पुकारी जाने वाली ब्रह्म-सत्ता का अभाव कहीं नहीं है । ऐसे व्यापक और प्रत्यक्ष तत्व को-बुद्धिवाद तथा प्रत्यक्षवाद भी स्वीकार करने ही जा रहा है । देर केवल इतनी ही है कि उस पर मुहर कल लगनी है या परसों ।

ईश्वर सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान है

एक रहस्यमय शक्ति है, जो स्थूल नेत्रों से अदृश्य और अनिर्वचनीय है, तथापि वह संसार के कण-कण में विद्यमान है । वह इन्द्रियातीत सत्ता दिखाई तो नहीं देती, पर उसे भावनाओं के द्वारा अनुभव जरूर किया जा सकता है । आत्म-निरोध और संकल्प-शक्ति के द्वारा उसे प्राप्त भी किया जा सकता है ।

एक सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी सत्ता की स्वीकारोक्ति आज विज्ञान ने न की होती तो सम्भवतः हिन्दू धर्म का यह विश्वास ही लड़खड़ा गया होता । हम दीपक जला कर रखते हैं, तो कमरे का प्रत्येक कण चमक उठता है । दीपक का प्रकाश अपने आप में एक क्रियाशील परमाणु होता है, तथापि उसमें जीवन की स्वायत्तता नहीं कही जा सकती, पर अब यह तेजी से अनुभव किया जा रहा है कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चेतना अपने प्रकाशीय आकार में ही सर्वत्र विद्यमान है । वही एक मूल स्रोत से प्रवाहित होता हुआ सृष्टि के कण-कण में झिलमिल-झिलमिल कर रहा है ।

शतपथ ब्राह्मण ७/१/१/३७ में पृथ्वी को-"परिमण्डल उ वा अयं (पृथ्वी) लोकः" अर्थात् यह पृथ्वी परिमण्डल है, ऐसा कहा है । परिमण्डल का अर्थ गोलाकार तथा और चारों ओर से घिरा हुआ भी होता है । पृथ्वी आकाश में तैर रही है । अपने इस रूप में वह एक इकाई है और जीवन की अनेक विभक्तियों से मुक्त हुई-सी प्रतीत होती है । यदि इस विराट् दृष्टि से देखें तब पता चलता है कि पृथ्वी में जीवन का सम्पूर्ण आधार सूर्य है । यदि यह सूर्य थोड़ा-सा भी आगे पीछे हो जाये तो पृथ्वी न जाने कहाँ चली जाये । सूर्य में इतनी अधिक शक्ति है कि यदि उस पर पचास फीट मोटी बर्फ की तह चिपका दी जाये, तो वह उसे पिघला कर खाली कर देने में एक सेकेण्ड से अधिक समय नहीं लेगा, जबकि इतने के लिये उसे कुल २१२ डिग्री सेन्टीग्रेड ताप से काम लेना पड़ेगा । सूर्य की कुछ ही किरणें दोनों ध्रुवों को पिघलाकर समुद्र बना सकती हैं, जबकि उसकी मूल-शक्ति ३६०००० डिग्री से भी अधिक है । शक्ति का यह भण्डार उसने छिपा कर रखा है । यदि सब कुछ प्राकृतिक नियमानुसार न रहा होता तो कभी भी अग्निदाह या जल-प्रलय की स्थिति आ सकती है, पर ऐसा नहीं होता । अखिल आकाश में तैरते हुए भी हम एक क्रम-व्यवस्था अनुभव करते हैं । यह सब अनायास ही नहीं, विधिपूर्वक और विचारपूर्वक है, इसलिये यह कहने में संकोच नहीं होना चाहिए कि पृथ्वी के सभी क्रिया-व्यापार किसी एक प्रतिनिधि चेतना द्वारा सञ्चालित किये जा रहे हैं ।

हम साँस लेते हैं, उस एक साँस में ही ३ करोड़ अरब से भी अधिक अणु हम अपने भीतर भर लेते हैं । इनमें से प्रत्येक अणु सैकड़ों मील प्रति घण्टे की गति से चञ्चल हैं । प्रत्येक अणु में इतनी विद्युत-शक्ति भरी है कि उससे सैकड़ों हार्स पावर की मशीनें चलाई जा सकती हैं । अब यदि हम यह कहें कि हमारे भीतर जो चेतना का प्रवाह उमड़ रहा है, वह इतना अधिक शक्तिशाली है कि यदि उसे नियन्त्रित करके किसी पृथ्वी जैसे ब्रह्माण्ड में झोंक दिया जाये तो उसे को पल भर में ही जलाकर खाक किया जा सकता है, तो उसे अतिशयोक्ति नहीं माना जाना चाहिए । यह कण ही चेतना को शक्ति प्रदान करते हैं । प्रत्येक चेतन अणु की यह सामर्थ्य यह बताती है कि जहाँ से यह कण निःसृत हो रहे हैं, वह तत्व सर्वव्यापी ही नहीं, सर्वशक्तिमान भी अवश्य होना चाहिए ।

सूर्य भी किसी नीहारिका (नोबुला) से प्रकाश ले रहा है । अर्थात् वह विश्वव्यापी चेतना का एक प्रतिनिधि मात्र है । उसकी शक्ति कहीं और से आ रही है । यह शक्ति-कण ही विद्युत धाराएँ, तेज और वायु बनाते हैं । उन्हीं के माध्यम से हम रेडियो, ध्वनियों, चित्र और मौसम सम्बन्धी पूर्व जानकारियाँ अर्जित करते हैं अर्थात् इन कणों में शब्द, आकार, ऊर्जा, स्वामित्व की शक्तियाँ भरी पड़ी हैं । व्यष्टि रूप से हर कण में यदि कोई ऐसी विलक्षण शक्तियाँ हैं, तो उनकी केन्द्रीयभूत सत्ता में वह सब कुछ अवश्य होना चाहिए यह दर्शन ही परमात्मा पर विश्वास का एक ठोस आधार है ।

इस विश्वास के आधार पर ही जब हम उस परम सत्ता से भावनात्मक सम्बन्ध जोड़ते हैं, तो मिलने वाले फलितार्थ उस विश्वास की पुष्टि कर देते हैं । भक्त प्रह्लाद का अग्नि से जीवित बचकर निकल आना, मीरा का विष पीकर भी जीवित बने रहना, रैदास का कठौती से कड़ा निकाल देना-यह ऐसे उदाहरण हैं जो हमारे विश्वास की पुष्टि करते हैं पर यदि इन्हें पुरानी घटनाएँ कहा जाये तो आज भी सैकड़ों उदाहरण ऐसे दिये जा सकते हैं , जब लोगों के ऐसे विश्वास प्रतिफलित होते देखे गये हैं ।

योस्मीन नेशनल पार्क में फारेस्ट रेन्जर के पद पर काम करने वाले स्टार जेकिंस नामक एक कर्मचारी को १९५६ में एक ऐसे स्थान का पता लगाने को भेजा गया, जहाँ बिजली गिरी थी । उस स्थान का पता लगाने के लिये श्री जेकिंस अपने घोड़े पर चढ़कर चले । यह स्थान दस हजार फुट की ऊँचाई पर कहीं था । बीहड़ वनस्थली, ऊँचे-नीचे पहाड़, कटाव, नदियाँ, नाले उतने कष्टदायक नहीं थे, जितनी कि वर्षा, हिमपात और क्षण-क्षण पर गिरने वाली बिजली ।

इस सर्वेक्षण के दौरान स्टार जेकिंस को मरने वाली विपत्तियों का सामना करना पड़ा । एक बार तो उसके पास कुल १०० गज की दूरी पर ही बिजली गिरी । घोड़ा बिदक गया । सामने नदी थी । बीहड़ सुनसान में जेकिंस बुरी तरह भटक गया । मृत्यु बिलकुल समीप थी ।

तब उसने सम्पूर्ण एकाग्रता से उस परम-सत्ता का ध्यान किया । जेकिंस ने अपनी अनुभूति 'प्रार्थना फल गई' शीर्षक में बड़े मार्मिक शब्दों में व्यक्त करते हुए लिखा है कि मुझे एकाएक धैर्य आया, आधी रोटी खाकर दो कप पानी पिया । मृत्यु की विभीषिका के मध्य एक प्रकाशीय घेरे में अपने आपको पूर्ण सुरक्षित अनुभव कर रहा था । मालूम नहीं किस कोने से, पर मेरे भीतर अपने आप ही एक ज्ञान उदय हो गया कि मुझे इस दिशा में जाना चाहिए । उधर नदी बढ़ी हुई थी तो भी घोड़े ने उसे कैसे पार कर लिया मैं उस स्थान तक कैसे पहुँच गया, जहाँ बिजली गिरी थी-उसका स्मरण करता हूँ तो उस परम सत्ता की दया के प्रति अनुगृहीत हो उठता हूँ । उस दिन परमात्मा ने राह न दिखाई होती, तो मैं कहीं-का-कहीं भटककर मृत्यु के मुख में चला गया होता ।

ऐसी अदृश्य सहायताएँ सदैव क्यों नहीं मिलतीं ? परमात्मा की कर्म-व्यवस्था का आधार क्या है ? यह देर से समझ में आने वाली बात है, पर हिन्दू-दर्शन के प्रथम अध्याय में ईश्वर के अस्तित्व और उसके सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान होने में कोई सन्देह नहीं है । यहीं से हिन्दू-धर्म का विश्व-कल्याणकारी अमृत-झरना फूटता है और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

एक दिव्य-विज्ञान के रूप में सारे संसार को आत्मोत्कर्ष का प्रकाश देता हुआ आगे बढ़ता है । हम ईश्वर को सर्वत्र व्याप्त होता हुआ देखें और उसे ही प्राप्त करने का प्रयत्न करें-इस मूल सिद्धान्त को स्वीकार कर लें, तो हमारा मृत्योन्मुखी जीवन भी अमृत-कणों से आविर्भूत हो सकता है ।

भूल-भटक कर भेंट हुई भगवान से

२ फरवरी, १९४७ के नेशनल हेराल्ड में एक लेख छपा था-वैज्ञानिक भगवान में विश्वास क्यों करते हैं (व्हाई साईंटिस्ट्स विलीब इन गॉड) विद्वान लेखक ने उसमें यह बताने का प्रयत्न किया है कि संसार का हर परमाणु एक निर्धारित नियम पर काम करता है, यदि उनमें व्यवस्था और अनुशासन न होता तो इतना विराट् ब्रह्माण्ड एक क्षण को भी टिक न सकता । एक कण के विस्फोट से ही अनन्त प्रकृति में आग लग जाती और तब संसार अग्नि ज्वालाओं के अतिरिक्त और कुछ भी न होता ।

इस सूर्य के अनन्त अन्तरिक्ष का एक नन्हा-सा तारा, इससे तो १५ हजार गुना बड़ा रीजल तारा ही है उससे भी बड़ा 'अन्टेयर्स' नामक लाल सूर्य जो अपने भीतर ३ करोड़ साठ लाख को बैठाकर भोजन दे सकता है । जबकि उससे भी बड़े तारे ब्रह्माण्ड में हैं । जून १९६७ के 'साइंस टूडे' अंक में 'ग्राह्म बेरी' ने लिखा है कि पृथ्वी से छोटे ग्रह भी इस संसार में हैं और ५ खरब मील की परिधि वाले भीमकाय नक्षत्र भी हैं । यह बड़े तारे तो ३० लाख वर्ष ही जीवित रहते हैं जबकि ऐसे छोटे नक्षत्र भी हैं मृत्यु जिनका ३० पद्म वर्ष तक भी कुछ बिगाड़ न सकेगी । इतना विराट् ब्रह्माण्ड भी गणित के नियम पर कितनी सुन्दरता के साथ चल रहा है उसे देखकर यही प्रतीत होता है कि जिस तरह सूर्य अपने गुरुत्वाकर्षण और अपनी प्राण शक्ति से सौरमण्डल को नियमपूर्वक चला रहा है उसी प्रकार अनन्त ब्रह्माण्ड का भी कोई नायक होना अवश्य चाहिए जो सारे विश्व को एक क्रम व्यवस्था में चला रहा है ।

इसी प्रकार पृथ्वी प्रति घण्टे १ मील की गति से घूमती है कहीं यह गति ५० मील प्रति घण्टे की हो जाती तो रात और दिन २४०-२४० घण्टे के होते । १२० घण्टे में आकाश में चढ़कर आये सूर्य की प्रचण्ड गर्मी और आधी रात की प्रचण्ड शीत पृथ्वी को भी चन्द्रमा बना देते । यहाँ सुदूर लोकों के लोग अपने पद-चिह्न अपने झण्डे छोड़ जाते और कहते कि पृथ्वी में छोड़ आये ये उपकरण १ लाख वर्ष तक अमिट बने रहेंगे । चन्द्रमा भी इसी प्रकार थोड़ा नीचा हो जाता तो समुद्री ज्वार भाटे हिन्द महासागर से चलते और गौरीशंकर शिखर तक की प्रत्येक वस्तु को समेट ले जाकर समुद्री खजाने में जमा कर देते ।

सूर्य चन्द्रमा की बात छोड़ दीजिये हम परमाणुओं के जिस तालाब में जलचरों की तरह जीते और साँस लेते हैं उसके एक परमाणु में ही २७ लाख किलो कैलोरी ताप है यदि इस विद्युत-शक्ति को परमाणु की प्रकृति ने शोषित और प्रसुप्त करके न रखा होता तो जीवन का अस्तित्व एक क्षण भी टिकना सम्भव न रहा होता । इन परमाणुओं की गति का तो कहना ही क्या । परमाणु नाभिक के समीप वाला इलेक्ट्रान १३५००० किलोमीटर प्रति सेकण्ड की प्रचण्ड गति से चलता है यदि प्रकृति में यह चाल क्रियाशील रही होती तो हम कुल १६ सेकण्ड में पृथ्वी से उड़कर सूर्य तक जा पहुँचे होते । ऐसी विद्युत चुम्बकीय आँधी चलती जो समस्त ब्रह्माण्ड को झकझोर कर सेकण्डों में पीस देती ।

प्रकट पदार्थों और जीवों में ही विलक्षण वैचम्य है । एक बार आस्ट्रेलिया का एक जीवशास्त्री भारतवर्ष से नागफनी का पौधा ले गया और उसने सुरक्षा के लिये खेतों की मेड़ों पर लगा दिया । नागफनी बढ़ने लगी और इस तरह बढ़ी कि हजारों एकड़ जमीन इसी से पट गई तब एक छोटा-सा कीड़ा ले जाया गया, जिसने कुछ ही दिनों में नागफनी को खा-पीकर बराबर कर दिया । पोलियो खतरनाक बीमारी है । पिन की एक नोक पर पोलियो के विषाणु (वायरस) करोड़ों की संख्या में आ सकते हैं ऐसे सूक्ष्म विषाणु हजारों की संख्या में मुक्त भ्रमण कर रहे हैं फिर भी जगत में जीवन क्रम सानन्द चल रहा है और यह बता रहा है कि संसार में जन्म देने वाला बड़ा बुद्धिमान है यह निर्माण और विनाश के झूले में झूलते संसार के पालन और पोषण का उत्तरदायित्व बड़ी ही सूझ-बूझ से निभाता चला जा रहा है ।

संसार में कोई न कोई विधायक सत्ता है अवश्य यदि वह न होती तो संसार की भीषण, विपरीत परिस्थितियाँ यहाँ कुछ भी रहने न देतीं । या तो सर्वत्र दहकती हुई आग होती या चमकता हुआ सूरज और नाचते हुये इलेक्ट्रान नियम व्यवस्थाएँ ईश्वर के विधान हैं वैज्ञानिक भूल भटक कर उसी भगवान् तक पहुँचे तो आश्चर्य नहीं आज की प्रगति उसी दिशा में है भले ही वह ध्वंस और संघर्ष प्रधान हो, कदाचित ईश्वर को, भावनाओं के द्वारा जाना जाता तो मनुष्य की सामर्थ्य का कुछ ठिकाना न होता क्योंकि वह भी तो उसी महत् संकल्प और परा-तत्व का अंश है ।

मायापति विष्णु और उनकी योगमाया

सर्वव्यापक सत्ता का पौराणिक नाम विष्णु है । वही परम-सत्ता एवं परम-सत्य है । उपनिषदों में उसी चिन्मय सत्ता को महेश्वर कहा गया है । पौराणिक काल में प्रतिपादन के शैली भेद से उसी अद्वैत-सत्ता को शैवों ने शिव, परमशिव, पशुपति, महादेव, महेश, महेश्वर आदि कहा तो वैष्णवों ने विष्णु, देवाधिपति, हरि, परमात्मा, मायापति आदि विशेषणों से उसकी स्तुति की । उन्हीं विष्णु के बारे में कहा गया है -

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"यस्माद्विश्वमिदं सर्वं तस्य शक्त्या महात्मनः ।
तस्मादे वोच्यते विष्णुः विशुधातेः प्रवेशनात् ।।

अर्थात्-विष् या विशु धातु में नुक प्रत्यय लगाने पर विष्णु शब्द बनता है, यह शब्द उस सत्ता के लिए है जिसकी शक्ति से यह सम्पूर्ण विश्व है ।

वही अविनाशी शक्ति अपने संकल्प से सृष्टि का सृजन करती है । उपनिषदकार ऋषि ने इसी प्रक्रिया का वर्णन यों किया है-

"यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च
यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति ।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि
तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ।।"

-मुण्डक उ० १/१/७

अर्थात् जैसे मकड़ी अपने ही शरीर से तन्तु उत्पन्न करती है और फिर उन्हें ही समेटकर ग्रहण कर लेती है, जैसे वनस्पतियाँ, औषधियाँ धरती से पैदा होतीं और उसी में मिल जाती हैं, जैसे व्यक्ति के शरीर से बाल निकलते हैं, उसी प्रकार अविनाशी चैतन्य ऊर्जा से, अक्षर ब्रह्म से यह विश्व उत्पन्न होता है ।

इस प्रकार प्रकृति का आदि स्रोत वह चिन्मय सत्ता ही है किन्तु स्वयं यह चिन्मय सत्ता, अचिन्त्य, अज्ञेय, अनिर्देश्य है इसलिए प्रकृति का आविर्भाव काल भी अज्ञेय है । इसी कारण उसे अनादि कहा जाता है । उसका आदिकाल जानना असम्भव है । इसी बात को वैदिक ऋषि ने विलक्षण शैली में व्यक्त किया है -

"इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वै न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अंग वेद यदि वा न वेद ।।

-ऋ० १०/१०/१२९ *अन्तिम ऋचा*

अर्थात् जिससे यह सृष्टि आविर्भूत हुई उसने इसे बनाया या नहीं बनाया (यानी केशलोमवत अथवा मकड़ी के जाले की तरह स्वतः उत्पन्न हो गई) । यह तो परम व्योम में व्याप्त जो इस सृष्टि का अध्यक्ष है, नियन्ता है, वही जानता है या शायद वह भी न जानता हो ।

परमेश्वर, परमात्मा की बीजशक्ति जिससे यह प्रकृति उत्पन्न है और जिसमें यह सृष्टि या प्रकृति अवस्थित है, उसी का नाम 'माया' है ।

जो माया का स्वरूप है, वही प्रकृति का स्वरूप है । माया और प्रकृति दोनों त्रिगुणात्मक हैं । वस्तुतः माया और प्रकृति में कोई भेद नहीं मानना चाहिए । माया उस चित्-शक्ति का नाम है, जो प्रकृति का बोध कराती है । वस्तु जगत की आदिरूपा एवं समष्टिरूपा प्रकृति है । उसी प्रकार मनोजगत या विज्ञानजगत की आदिरूपा, समष्टिरूपा 'माया' है । जीव-सत्ता को प्रकृति का बोध माया की ही शक्ति से होता है, इसीलिए जीवमात्र को माया के स्वरूप के ही अनुसार प्रकृति का बोध होना सम्भव है । इसी कारण व्यष्टि-चेतना की दृष्टि से माया एवं प्रकृति में कोई भी भेद नहीं । श्वेताश्वतर उपनिषद् में इसी से कहा है-

"मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।

-श्वेता० उ० ४/१०

अर्थात् माया को ही प्रकृति समझना चाहिए और मायापति को महेश्वर ।

जो लोग विष्णु की माया को कोई कौतुक चेष्टा समझते हैं, उन्हें न तो शास्त्र का ज्ञान है, न ही सत् का । माया किसी नियम-मर्यादाविहीन कलाबाजी का नाम नहीं है और न ही मायापति का अर्थ कोई शरारती जादूगर होता है । सामान्य जादूगर भी जादू का खेल तभी दिखा पाता है जब वह जादू के नियमों को जाने तथा उनका पालन करे । सर्वव्यापी चेतन-सत्ता तो स्वयं ही सृष्टि संचालक नियमों की सर्जक है, अतः वह उन नियमों की अवहेलना कैसे सहन कर सकती है ? मायाशक्ति स्वयं ही नियमबद्ध है, नियमों की प्रतिष्ठापिका, शासिका है वह प्रकृति से अभिन्न है । प्रकृति जिन नियमों से संचालित होती है, वे माया-शक्ति के ही नियम हैं । जो प्रकृति की शक्तियों को नियमों को जितना अधिक जानता है, वह माया के लीला नियमों का उतना ही अधिक ज्ञाता है । प्रकृति के सम्पूर्ण स्वरूप को, उसके वास्तविक आधार को जानना ही माया को जानना है ।

जो लोग मायावाद का अर्थ यह समझते हैं कि यह संसार माया है यानी असत् है, वे न तो माया का अर्थ जानते हैं और न ही मायावाद का स्वरूप समझते हैं ।

माया या प्रकृति असत् नहीं है । अपितु वह अनिर्वचनीय कही गई है, अर्थात् ऐसी जिसका शब्दों द्वारा विवेचन सम्भव ही नहीं । आज आधुनिक वैज्ञानिक भी तो यही कह रहे हैं । प्रख्यात वैज्ञानिक एडिंगटन ने कहा है 'वस्तु-जगत' का सारभूत अंश पिघलकर छायावत् बन गया है । वह एक अज्ञात परिमाण मात्र रह गया है जिसके लिए गणितीय संकेत 'क्ष' का प्रयोग किया जा सकता है । मात्र वह संकेत, जो अनिर्वचनीय है, अमूर्त है, अव्यक्त है, वही यथार्थ है । जो रंग हम देखते हैं, जो ध्वनि हम सुनते और अंकित करते हैं, जो उष्मा हम महसूस करते हैं, जो प्रकाश हमारे देखने का माध्यम बनता है, वह सब अन्ततः हमारी दिमागी बनावट है । यही बात डॉ० वर्टन ने कही है "मनुष्य के प्रक्षेपण के तल में यथार्थ जगत प्रतीकों का एक ढाँचा मात्र है ।"

अब यह सर्वस्वीकृत वैज्ञानिक तथ्य है कि नाना रूपों, नाना वेशों, नाना नामों वाले, नर-नारी, पशु-पक्षी, प्राणी पौधे, पहाड़, नदी-नाले नक्षत्र, फल-फूल, संगीत-शब्द, आदि सभी कुछ वैज्ञानिक विश्लेषण में मात्र विद्युत प्रवाह या अव्यक्त-अनिर्वचनीय तरंग प्रवाह बनकर रह जाता है । तब क्या यह सब असत्य हैं ? तब तो स्वयं वैज्ञानिक भी असत्य है उनके उपकरण असत्य हैं, क्योंकि वे सब तरंगें प्रवाह मात्र हैं । स्पष्ट है कि कोई भी वैज्ञानिक स्वयं को अपने प्रयोगों को असत्य नहीं मानता । न ही संसार को असत्य मानता है । किन्तु साथ ही वह पदार्थों के वर्तमान रूपों को अंतिम सत्य भी नहीं मानता । व्यावहारिक दृष्टि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से वे सत्य हैं, किन्तु पारमार्थिक दृष्टि से चरम अर्थों में वे इस रूप में सत्य नहीं हैं । उस दृष्टि से उनका वास्तविक रूप भिन्न है । यही अनिर्वचनीयता की स्थिति है, जो मायावादी प्रतिपादन का भी निष्कर्ष है ।

जगत् को सत्य न मानने का कारण, मनीषी पूर्वजों की सत्य की भिन्न परिभाषा थी । सत्य की शास्त्रीय परिभाषा यह है कि-

"त्रिकालाबाध्यम् सत्यम्"

भूत, वर्तमान और भविष्य इन तीनों कालों में, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों दशाओं जो एक ही रूप में अवस्थित रहे, जिसका रूप बाधित न हो वह सत्य है । आचार्य शंकर ने कहा है-

"यदरूपेण यन्निश्चितं तद् रूपं न व्यभिचरति यत् सत्यम् ।।"

अर्थात् "जिसका जो रूप निश्चित है उसका वह रूप कभी भी अन्यथा न हो, तब वही सत्य है ।" सामान्य अर्थों में जिसे सत्य कहा जाता है, वह सापेक्ष सत्य है । निरपेक्ष दृष्टि से वह सत्य नहीं है, किन्तु वह असत्य भी नहीं है । इस गम्भीर दार्शनिक प्रतिपादन को न समझने वाले मूढ़मति, कल्पनाजीवी ब्रह्मसत्य जगत्मिथ्या जैसे कथनों की आड़ में मनमानी व्याख्याएँ और मनमाने आचरण करते रहते हैं ।

त्रिकालवाधित निरपेक्ष सत्य एक ही है सर्वव्यापी भूमा प्राण, चैतन्य-ऊर्जा, परम सत्ता विष्णु । वही एक है, अद्वितीय है । शेष सब सापेक्ष सत्य हैं । इस सापेक्ष सत्य का बोध कराने वाली शक्ति माया है । वह माया सृजन और संहार के बीच के नाना नाम-रूपों वाली नाना क्रियाओं का जो बोध कराती है उसे ही व्यक्ति सत्य मानता रहता है जबकि इस सृष्टि का जगत नाम ही इसलिए पड़ा कि यहाँ हर वस्तु निरन्तर गतिशील है । परिणाम प्रवृत्ति या परिवर्तन जगत का स्वभाव है । एक क्षण के लिए भी जगत प्रवृत्ति शून्य नहीं रहता । परिवर्तन की प्रक्रिया यहाँ अविराम चलती रहती है । इस प्रतिक्षण परिणामी, नियत परिवर्तनशील, सतत चञ्चल जगत के तात्कालिक अनुभवों को जीवधारी, माया-शक्ति के कारण स्थिर सत्य समझ बैठते हैं ।

इस प्रकार सापेक्षसत्य को स्थिर सत्य मान बैठने की प्रवृत्ति ही माया बन्धन है । जगत की सत्ता है ही नहीं, ऐसा वेदान्तविद् कभी नहीं कहते । वे मात्र यही कहते हैं कि जगत की व्यावहारिक सत्ता है । पारमार्थिक दृष्टि से जगत सत्य नहीं है, न ही असत्य है अपितु वह मिथ्या है । यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि वेदान्त में मिथ्या का अर्थ असत् नहीं, अपितु अनिर्वचनीय होता है ।

त्रिकालावाधित सत्य एक ही है-ब्रह्म या विष्णु । जगत मिथ्या या अनिर्वचनीय है । उसकी स्वयं में सत्ता तो वास्तविक है । किन्तु वह सत्ता सतत परिवर्तनशील है, परिणामशील है । व्यक्ति जब इस परिवर्तनशील जगत के किसी अनुभव विशेष को परम सत्य मान बैठता है, तो वह भ्रम में होता है, माया-पाश से बँधा होता है । स्पष्ट है कि यह प्रतिपादन आधुनिक विज्ञान के अन्वेषणों से भी खरा उतरता है ।

सर्वव्यापी चैतन्य ऊर्जा विष्णु है । इस विष्णु की चार भुजाएँ या चार चेतनात्मक प्रवृत्तियाँ हैं । सम्भूति और असम्भूति उनकी दाहिनी भुजाएँ हैं और विद्या एवं अविद्या वाम भुजाएँ हैं । यह फोटान कणों आदि से भी परे चित्-शक्ति प्रवृत्तियाँ हैं । सम्भूति का प्रतीक है-चक्र एवं असम्भूति का प्रतीक है गदा । ये दोनों भूमा प्राण की अभिव्यक्तियाँ हैं, जो सृजन एवं संहार की क्रियाशक्ति का आधार है ।

सम्भूति-शक्ति से प्राण-ऊर्जा तथा असम्भूति-शक्ति से अपान-ऊर्जा प्रस्फुटित होती है । दोनों ही शक्तियाँ भूमा प्राण का अंश है, जो सर्वव्यापक है । छांदोग्य उपनिषद् के अध्याय २४ मण्डल १ में सनत्कुमार ने नारदजी से स्पष्ट किया है-

"यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति
नान्यद्विजानाति स भूमाथ ।।"

अर्थात्-जहाँ और कुछ नहीं देखता, कुछ और नहीं सुनता तथा कुछ और नहीं जानता, वह भूमा है । भूमा सर्वत्र है । वह अपनी ही महिमा में प्रतिष्ठित है । वही विष्णु शक्ति है ।

"विसिनोति सर्वान प्राणिनः विशति वा सर्वेषु प्राणिषु इति विष्णुः ।"

अर्थात् जो सभी प्राणियों को परस्पर अविच्छिन्न सूत्र में संग्रहीत किये है और जो सबके भीतर भी विद्यमान है, वह विष्णु है । चराचर जगत की सभी गतिविधियाँ इसी भूमा प्राण या विष्णु के आधीन हैं । इनकी दो मौलिक प्रवृत्तियाँ हैं (१) स्थितिक ऊर्जा (२) गतिज ऊर्जा यानी असम्भूति एवं सम्भूति । गतिज ऊर्जा या सम्भूति निर्बाध प्रसार की ओर प्रवृत्त रहती है । स्थितिक ऊर्जा सदा शून्य में समाहित होने की ओर प्रवृत्त रहती है । ब्रह्माण्ड निरन्तर फैल रहा है और सतत शून्य में भी समाहित हो रहा है, यह अर्वाचीन विज्ञान की एक प्रसिद्ध अवधारणा है ।

सृजन और संहार एकांगी प्रक्रियाएँ नहीं हैं । उत्पत्ति और विनाश सदा साथ रहते हैं । जन्म के साथ ही मृत्यु की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है । ब्रह्माण्ड विस्तार और ब्रह्माण्ड विलय साथ-साथ हो रहा है । यह संसार अनादि काल से सृष्टि और प्रलय के मध्य दोलायमान है । सृजन के अधिदेव ब्रह्मा सम्भूति-शक्ति के प्रतिनिधि हैं और संहार के अधिदेव रुद्र असम्भूति शक्ति के प्रतिनिधि हैं । सृष्टि और लय का यह समन्वित क्रम सतत गतिशील है । इन्हीं दो छोरों के बीच मानो पेन्डुलम की तरह संसार निरन्तर दोलायमान है । प्रत्येक क्षण-सृजन-संहार का, जन्म-मरण का, बुद्धि-क्षय का, उत्कर्ष-अपकर्ष का यह क्रम चल रहा है । आधुनिक विज्ञान की भाषा में असम्भूति को स्थितिक ऊर्जा और सम्भूति को गतिज-ऊर्जा कहते हैं । दोनों का अविकल द्वन्द्व जारी है । दोनों का प्रत्याहरण-बल सदा ही मध्य-बिन्दु की ओर उन्हें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निर्देशित करता रहता है । चेतना मनुष्य में यही द्वन्द्व संस्कार एवं वासना के रूप में उभरती है । संस्कार का आधार स्थितिक ऊर्जा है और वासना गतिज-ऊर्जा से संचालित होती है । इन दोनों के बीच निरन्तर दोलन ही मायापति विष्णु की योगमाया का आकर्षण है । सम्भूति-शक्ति को रजोगुण एवं असम्भूति-शक्ति को तमोगुण भी कहा जाता है । इन दोनों का ही प्रकाशन या बोध सतोगुण है । उस बोध से प्राणी में आत्मिक-सुख का भाव उत्पन्न होता है ।

सम्भूति-शक्ति संकल्पमूलक तथा आसक्तिमूलक आवेग बनकर व्यक्ति में प्रकट होती है । यह रागात्मक वृत्ति है जो प्राणी को कर्म में प्रवृत्त कराती है ।

असम्भूति शक्ति मोह एवं मूढ़ता-भाव के रूप में अभिव्यक्त होती है । वह जड़तामूलक वृत्ति है । स्थिति एवं धृति के रूप में वह प्राणी में देखी जाती है । दोनों का यथार्थ-बोध सतोगुण है, जो सन्तुलन की शक्ति देता है तथा सत् के चिदानन्द-स्वरूप के निकटतर ले जाता है । विष्णु की बायीं भुजाएँ हैं विद्या और अविद्या । विद्या का प्रतीक है-शंख । अविद्या के स्रोत से शक्ति प्राप्त कर चेतना की दिशा में अभिमुख होने का प्रतीक है- पंकज जो कि पंक में होता है, किन्तु सविता की किरणों का साधक-आराधक होता है । यहाँ भी विद्या में प्रवृत्ति रजोगुणी है, सतोगुणी बोध में ही उसकी सार्थकता है अन्यथा विद्या भी बन्धनकारक है । अविद्या वस्तुतः असत् की प्रतीति है । इस प्रतीति का सही-सही रूप जानने पर वह भी चेतना अभिज्ञान में सार्थक एवं सहायक सिद्ध हो सकती है । कमल इसी सार्थकता का प्रतीक है । यदि अविद्या का ऐसा सार्थक उपयोग नहीं किया गया और उसके द्वारा चेतना के मूल स्वरूप की उपासना में सहायता नहीं ली गई, तब पद्म का प्रस्फुटन सम्भव नहीं, तब तो बस कीचड़ ही कीचड़ होगा, जिसमें जोंक आदि पैदा होगी, कमल नहीं खिलेगा । व्यक्ति चेतना में विद्या और अविद्या के बीच निरन्तर द्वन्द्व चलता रहता है । इसी चिन्मूलक द्वन्द्व का नाम माया है । ईशावास्य उपनिषद् में कहा है कि सत्य का मुख हिरण्मय पात्र से ढका है :-

"हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।"

यही हिरण्मय पात्र या आवरण माया है । माया को एक चकाचौंध कहा जा सकता है, जो अपने तीव्र एवं चपल प्रकाश से आँखों में ऐसा प्रभाव डालती है कि उसमें वस्तुएँ दीखती तो हैं किन्तु ठीक से नहीं देखी जा सकतीं । विद्या और अविद्या, सत् और असत्, सम्भूति और असम्भूति के इस द्वन्द्व के यथार्थ स्वरूप को समझ लेने पर ही व्यक्ति माया के स्वरूप को तथा मायापति विष्णु को समझता है । उसी स्थिति में नानात्य के मूल में सक्रिय एकत्व का साक्षात्कार होता है । ईशोपनिषद् में इसी तथ्य का निर्देश करते हुए कहा गया है:-

"विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं स ह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ।।"

"सम्भूतिं च विनार्श च यस्तद्वेदोभयं सह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते ।।"

अर्थात्-"जो विद्या और अविद्या को साथ-साथ जानना है, वही अविद्या द्वारा मृत्यु को पार कर विद्या की शक्ति से अमृतत्व को प्राप्त करता है ।"

जो सम्भूति असम्भूति दोनों का यथार्थ सम्यक ज्ञान प्राप्त कर लेता है वह असम्भूति से मृत्यु को पार कर सम्भूति से अमृतत्व को प्राप्त करता है । इस प्रकार सर्वव्यापी विष्णु की उभयात्मक शक्तियों का यथार्थ स्वरूप जानना और निरन्तर सक्रियता के बीच भी सनातन चित् तत्व का ध्यान रखना ही विष्णु पूजा है । संस्काररूपी स्थितिक ऊर्जा या सम्भूति और वासना रूपी गतिज-ऊर्जा या सम्भूति दोनों के यथार्थ स्वरूप को जानकर वासनाओं को श्रेष्ठ कामनाओं में रूपान्तरित करते हुए, संस्कारों का सतत परिष्कार करते हुए भूमा की उपासना में प्रवृत्त रहने में ही जीवन की सार्थकता है । माया-बन्धन से मुक्ति का वही मार्ग है । दोनों ही प्रकार की शक्तियों की संचालक विष्णु सत्ता सूक्ष्म रूप में प्रत्येक प्राणी के हृदयाकाश में सच्चिदानन्द रूप में विद्यमान है । उस चेतन-तत्व का प्रकाश जीवन में अधिकाधिक संव्याप्त होता चले, यही प्रयास मनुष्य का पुरुषार्थ है, कर्त्तव्य है ।

प्रकाश प्रवेश की भूमिका और परमात्मा के दर्शन

ऊष्मा (हीट), ऊर्जा (एनर्जी), प्लाज्मा (पदार्थ की चौथी अवस्था) तथा विद्युत ऐसे हैं जिनका कोई स्वरूप नहीं है फिर भी वैज्ञानिक उनके प्रभाव के कारण उनका अस्तित्व स्वीकार करते हैं यही नहीं यह शक्तियाँ हमारे जीवन के हर क्षेत्र में क्रियाशील भी हो गई हैं । हमारे लिये ताप, ऊर्जा, प्लाज्मा और विद्युत साधारण सी वस्तुएँ हो गई हैं उनकी उपस्थिति सभी अनुभव करते हैं पर उन्हें आज तक कोई खुली आँखों देख नहीं सका ।

अस्तित्व में होने के लिये दृश्य होना कोई आवश्यक बात नहीं । इलेक्ट्रॉन, प्रोट्रॉन, पाजिट्रॉन हैं पर दिखाई नहीं देते ,उसी प्रकार ईश्वर के बारे में की गई समस्त कल्पनाएँ भी सूक्ष्मता के दायरे में आती हैं उसे भी देखा नहीं जा सकता उसके प्रभाव को अनुभव किया जा सकता है । आज का विज्ञान इस बात की पुष्टि करता है कि सार्वभौमिक चेतना के रूप में परमात्मा प्रकाश के किसी अदृश्य घेरे में सचमुच निवास करता हो तो कुछ आश्चर्य नहीं । ईसाई धर्म की मान्यताएँ भी यही हैं । बौद्ध और जैन मत भी ऐसे ही हैं । भारतीय योगी और तत्वदर्शी तो स्पष्ट कहते हैं-

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

-ऋग्वेद १०/१२१/१ ।

प्रकाश स्वरूप जिसके गर्भ में अनेक तेजस्वी पदार्थ समासीन हैं वह परमात्मा ही आदिकाल से संसार का स्वामी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है, उसी ने पृथ्वी को धारण किया है, वही द्युलोक को धारण करता है, हम उसी आनन्द स्वरूप को प्राप्त करें

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि ।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत ।।

-यजुर्वेद ३२/२

अर्थात्-उस परम तेजस्वी सृष्टि में सर्वत्र व्यापक परमात्मा से कोई भी क्षण रिक्त नहीं वह ऊपर, नीचे, तिरछा आड़े सर्वत्र पूर्णता से ग्रहण कर सकता है ।

सन्नप्यसन्नो जगति यो देहस्थोऽपि दूरगः ।
चित्प्रकाशो ह्ययं यस्मादालोक इव भास्वतः ।।

-योग वाशिष्ठ ३/५/८

अर्थात् शरीर में रहते हुए भी अत्यन्त दूर वह ऐसा प्रकाश है जिससे सूर्य का प्रकाश भी उदित होता है ।

इन सभी उद्धरणों में परमात्मा के प्रकाश में अवस्थित होने की बात कही गई है । साथ ही उसके पूर्ण पुरातन, सर्वव्यापी नियामक आदि होने की बात भी कही गई है । जिस तरह स्थूल परमाणु के भीतरी क्रिया-कलाप को जानना सम्भव हो गया है । अत्यधिक क्रियाशील होने के कारण प्रकाश के कण (फोटोन्स) का अध्ययन और उसकी आन्तरिक रचना का ज्ञान प्राप्त कर सकना तो अभी तक वैज्ञानिकों के लिये सम्भव नहीं हो पाया पर ज्योतिर्विज्ञान की प्रगति से यह साफ हो गया है कि संसार में उत्पत्ति से लेकर विनाश और प्रलय तक की सारी क्रियाओं में अन्दरूनी हाथ प्रकाश का ही है । 'दी यूनिवर्स एण्ड डॉ० आइन्स्टीन' पुस्तक में वैज्ञानिक डॉ० वार्नेट ने लिखा है कि "सृष्टि का प्रारम्भ किसी नीहारिका के विस्फोट से होता है यह नीहारिका प्रारम्भ में प्रकाश और पदार्थ का 'प्लाज्मा' जैसा रूप थी । धीरे-धीरे एक ध्वनि के साथ यह पदार्थ मन्दाकिनियों के द्वारा बहना और सृष्टि का विस्तार होना प्रारम्भ होता है ।" वह यह भी लिखते हैं कि विद्युतधारा के साथ चुम्बकीय शक्ति वर्तमान रहती है । दोनों के सम्मिलन से आकाश में प्रकाशरश्मियाँ अपना काम करती हैं ।"

अब जैसे-जैसे प्रकाश के अन्य विलक्षण स्रोतों की जानकारी होती जाती है वैसे-वैसे जीवन तत्व और प्रकाश में विद्यमान विद्युत चुम्बकीय गुणों की एकता का पता चलता जाता है । 'क्वासार' प्रकाश ने इस दिशा में गजब की हलचल पैदा की है । वैज्ञानिक जहाँ विभ्रमित हो रहे हैं वहाँ अब जीवन-तत्व के बारे में नई धारणाएँ भी बन रही हैं । 'एवप्लाजन इन एस्ट्रानामी' के लेखक ग्राहम बेरी ने साइंस टूडे' ।के जून, १९६७ के अंक में द्वितीय पैराग्राफ में स्पष्ट लिखा है-"सुन्दर शरीर वास्तव में क्वासार है । ४० वर्ष पूर्व आकाश गंगा की खोज होने पर इन 'क्वासार किरणों' ने ज्योतिर्विदों में सबसे बड़ा विवाद खड़ा कर दिया है । आकाश में नीला तारा पदार्थ वैतन्तुक तारा पुंज तथा एक्सरे स्रोत भी पाये जाते हैं जो संसार में एक सर्वभेदी और सर्वशक्तिमान तत्व की उपस्थिति प्रमाणित करते हैं । साथ ही क्वासार तथा, नील तारा पदार्थ एक ऐसे दीर्घइच्छित पदार्थ माने जाते हैं, जो संसार के सुदूर भागों को भी प्रकाशित कर दें (सर्वव्यापकता का गुण) और जिससे हम देख सकें कि वहाँ क्या हो रहा है यहाँ तक कि बहुत पहले वहाँ क्या हो रहा था वह भी देख सकें ।" यह त्रिकालज्ञता तथा अनादि होने के गुण हैं और वह भारतीय दर्शन के ईश्वरवाद के नियम की बड़ी समीपता से पुष्टि करते हैं ।

ऐतरेयोपनिषद में देवताओं की उपस्थिति और शरीर की उत्पत्ति सम्बन्धी बड़ी ही महत्वपूर्ण आख्यायिका आती है । इसमें बताया गया है कि जब शरीर में सभी देवताओं के निवास की व्यवस्था हो गई तब परमात्मा ने विचार किया कि-मनुष्य मेरे बिना कैसे रहेगा, विभिन्न भौतिक इच्छाओं की पूर्ति में व्यस्त मनुष्य शरीर कहीं देवताओं की इच्छाओं में द्वन्द्व का अखाड़ा न बन जाये अतः उसने शरीर में अपनी उपस्थिति अनिवार्य समझी तब से 'एतमेव सीमानं विदार्यैतया द्वारा प्रापद्यत' उसने मूर्धा को चीरकर स्वयं प्रवेश किया इस तरह उसने ब्रह्माण्ड में उपस्थित रहकर भी मूर्धा में वास किया ।

अभी तक सहस्रार में ब्रह्म को प्राप्त करने की विद्या योगीजन ही जानते थे पर अब विज्ञान भी इस तथ्य की पुष्टि करता है ।

मनुष्य की मृत्यु तब तक क्लीनिकल मृत्यु मानी जाती है पूर्ण नहीं, जब तक कि मस्तिष्क के ग्रे मैटर (भूरी राख की शक्ल का पदार्थ) वाले कोश नष्ट नहीं होते । यह पदार्थ एक विलक्षण आश्चर्य है । मस्तिष्क में उनमें सर्वव्यापकता भरी हुई है यह विज्ञान भी जान गया है । यदि भारतीय दर्शन के अनुसार वहाँ ईश्वरीय प्रकाश की उपस्थिति है तो भूरी राख की उपस्थिति जीवन के साम्य प्रकाश-स्रोतों में भी होनी चाहिए । यह बात भी अब प्रकाश में आ गई है । उपरोक्त लेख के लेखक ने उसी लेख में लिखा है कि सभी नक्षत्र हाइड्रोजन बादल से भरे हुए हैं जो आकर्षण शक्ति से गैस को थोड़े-थोड़े घेरे में गाढ़ा कर जाते हैं जब गैस के परमाणु निकट आते हैं- टकराते और उनके टुकड़े गर्मी पैदा करते हैं तब इन बादलों के भीतरी भाग का तापमान ५ लाख डिग्रीफारेनहाइट तक हो जाता है । समाधि अवस्था के परीक्षण इस बात के साक्षी हैं कि उस समय मस्तिष्क का शिखा वाला भाग बहुत अधिक गर्म हो उठता है क्योंकि उस समय विचार क्षेत्र में अत्यधिक क्रियाशीलता से वहाँ के कोशों में असाधारण गर्मी उत्पन्न हो जाती है । जब न्यष्टि अग्नि भीतरी भाग में सुलग जाती है तब हाइड्रोजन ईंधन राख के रूप में बदल जाता है । मस्तिष्क में शून्य स्थान (वेन्ट्रिकल्स) के द्रव्यमान के फलस्वरूप यह क्रिया सम्पन्न होती है और उससे असाधारण शक्ति का विस्तार होता है । योगी सिद्धजन इस शक्ति को पाकर ही ईश्वरीय क्षमताओं से ओत-प्रोत हो जाते हैं । हाइड्रोजन का राख में बदलना नक्षत्रों को अधिकांश जीवन देना है । हाइड्रोजन समाप्त हो जाने पर नक्षत्र फैलने लगते हैं और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वे लाल शैतान की तरह हो जाते हैं । सूर्य की ५५ खरब वर्ष की आयु का अनुमान इसी बात से किया जाता है । योगीजन भी इसी प्रकार मस्तिष्कीय द्रव्य और बौद्धिक क्षमता के आधार पर किसी भी व्यक्ति के जीवन-मरण का हाल किताब में लिखे अक्षरों की भाँति पढ़ लेते हैं यह एक ईश्वरीय गुण है, जो सृष्टि में सर्वत्र प्रकाश के रूप में व्याप्त है ।

वैज्ञानिक गवेषणा के लिये अभी प्रकाश तत्व का सुविशाल क्षेत्र वैज्ञानिकों के सामने परीक्षण के लिये पड़ा हुआ है । आये दिन नये-नये ज्योति स्रोतों का पता चलता जा रहा है । कौन जाने किसी दिन किसी ऐसे तारे की, प्रकाश स्रोत की खोज हो जाये जो पूरी तरह ईश्वरीय गुणों से ओत-प्रोत हो, भारतीय तत्वदर्शियों ने अपनी योगदृष्टि से उसका पता बहुत पहले ही लगा लिया है और लिखा है-

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ।।
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत ।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ।।
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ।।

अर्थात् सर्वत्र प्रदीप्त तपस शक्ति के अनन्त स्रोत, से ऋत (क्वान्त क्षेत्रों का स्पन्दन) और सत्य (धन व ऋण आवेश) उत्पन्न हुआ । उससे समूचे विश्व को बनाने वाला द्रव्य उत्पन्न हुआ यह प्रदीप्त तत्व बहकर तारे, अहोरात्र और संवत्सर का निर्माण हुआ । उसी से विधाता ने सूर्य, चन्द्रमा, अन्तरिक्ष, आकाश और पृथ्वी की रचना की ।

इस तरह यह स्पष्ट है कि भारतीयों ने परमात्मा की जो कल्पना की है वह कोई कल्पना नहीं वरन् एक दर्शन है आज नहीं तो कल विज्ञान उसी मूल-बिन्दु पर पहुँचेगा भले ही उसके लिये कुछ देर क्यों न लगे ।

** *

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भटकते न फिरें, ध्रुव के साथ जुड़ें

तर्कों की भाषा से परे है ईश्वर की सत्ता

ईश्वर अनादि और अनन्त है-इसे प्रायः सभी स्वीकारते हैं, पर अनीश्वरवादी इसे यह कहकर अमान्य कर देते हैं कि यदि ईश्वर अनादि और अनन्त होता, तो उसकी सृष्टि नाशवान क्यों होती ? अनन्त सत्ता की रचना भी अनन्त होनी चाहिए, पर ऐसा कहाँ देखा जाता है ? उसके क्रिया-कौतुक तो सीमित होते हैं, फिर उसके कर्त्ता को अनन्त कैसे माना जाय ?

इन प्रश्नों पर यदि गम्भीरता से विचार किया जाय, तो इन तर्कों में निहित भ्रान्ति स्पष्ट हो जाती है । वस्तुतः मनुष्य का ज्ञान स्वल्प है । उसे जो कुछ दिखाई पड़ता है, उसे ही सब कुछ मान बैठता है । इस संसार में हम नित नई-नई घटनाएँ घटित होते देखते रहते हैं, किन्तु उन घटनाओं के कई पक्ष होते हैं जो अविज्ञात होते हैं । सीमित इन्द्रिय-सामर्थ्य के कारण हम उन्हें जान नहीं पाते । इस पर कोई दृश्य पक्ष को ही पूर्ण मानकर उसकी विवेचना करे, तो यह उसकी भूल ही होगी । सूर्य किरणों में कितनी ही प्रकार की किरणों, विकिरणों का समावेश होता है, पर इन सब को हम आँखों से देख-समझ कहाँ पाते हैं ? पदार्थ के बाह्यस्वरूप को देखकर कोई यदि इनके मूल कारणों से इनकार कर दे, तो विज्ञान की नींव ही ध्वस्त हो जायेगी । फिर तो परमाणु बम का सिद्धान्त ही गलत हो जाये । मगर विज्ञान-जगत इनके अस्तित्व को स्वीकारता है, भले ही प्रत्यक्ष रूप से हम इनका अनुभव न कर सकें ।

सृष्टि व पदार्थ सम्बन्धी ऐसे कितने ही नियम हैं, जिन्हें हम अभी जान नहीं पाये हैं । विज्ञान इन्हीं के उद्घाटन में लगा हुआ है । दस साल बाद वह जिन रहस्यों को जान सकेगा, उसे अभी वे ज्ञात नहीं हैं । इस पर विज्ञान यदि इस बात पर गर्व करे कि उसने पदार्थ जगत के सम्पूर्ण रहस्यों को समझ लिया है, उचित न होगा । वस्तुतः अब तक इस संसार को जितना कुछ जाना-समझा गया है, वह उसका एक स्वल्प अंश मात्र है । जिस भी पदार्थ के बारे में हम उसके पूर्णज्ञान का दावा करते हैं, वास्तव में उस संदर्भ में हमारा ज्ञान अधूरा होता है । उसका कोई-न-कोई पक्ष ऐसा होता है, जो अविज्ञात रहता है । जब उस पक्ष की जानकारी प्राप्त करते हैं, तो कोई अन्य अधूरापन सामने आता है, फिर कोई अन्य । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि इस सृष्टि की प्रत्येक घटना व पदार्थ में अनन्त नियमों का समावेश है । जब सृष्टि में अनन्त नियम हैं, तो उसका सृजेता सादि और परिमित कैसे हो सकता है ?

सम्भव है, कुछ लोग ध्वंस व निर्माण की प्रक्रिया को देख कर सृष्टि को नाशवान अथवा सादि समझ बैठे हों, पर यह तो इसका स्वभाव है । रात-दिन और जन्म-मृत्यु की भाँति बनना-बिगड़ना तो सृष्टि का स्वाभाविक क्रम है । जिस प्रकार रात के बिना दिन और मृत्यु के बिना जन्म की कल्पना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार ध्वंस के बिना सृजन कैसे सम्भव हो सकता है ? समग्रता तो दोनों के मिलने से बनती है । भूल तभी हो जाती है जब हम दोनों क्रियाओं को दो पृथक् घटना मान बैठते हैं । वस्तुतः ये एक ही घटना के दो पक्ष हैं । एक के बाद दूसरा अवश्य घटित होता है । इस प्रकार यह एक प्रवाह का निर्माण करते हैं, जो सदा प्रवाहमान रहता है । यदि कोई यह कहे कि इस सृष्टि से पूर्व कोई सृष्टि थी ही नहीं, अथवा इसके बाद रहेगी ही नहीं, तो यह कैसे सम्भव है ? ध्वंस और सृजन का यह प्रवाह तो अनादि काल से चलता आ रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा । इसी को संसार का गति चक्र कहा गया है । यह इसलिए, क्योंकि जिस प्रकार रथ के पहिये का कोई आदि-अन्त नहीं होता, वैसा ही यह सृष्टि प्रवाह है । अतः सृष्टि को सादि कहना ठीक न होगा । यदि ऐसा मान भी लिया जाय, तो अनेक ऐसे प्रश्न उठ खड़े होंगे, जिनका उत्तर दे पाना सम्भव न होगा । यथा यदि ईश्वर की यह पहली रचना है, तो अब तक वह चुप क्यों बैठा रहा ? फिर अचानक संसार-सृजन की प्रेरणा उसे कहाँ से मिली ? इससे सम्बन्धित अनुभव कहाँ से प्राप्त हुआ ? ज्ञान और क्रिया कैसे उत्पन्न हुई ? क्रिया और शक्ति यदि आरम्भ से ही थी, तो अब तक निष्क्रिय क्यों पड़ी रही ? आदि-आदि । अस्तु यह मानना ही पड़ेगा कि यह भगवत सत्ता अनन्त है ।

यह तो काल सम्बन्धी सृष्टि की अनन्तता हुई । आकाश सम्बन्धी अनन्तता पर विचार करने से भी यही निष्कर्ष सामने आता है कि यह विश्व-ब्रह्माण्ड विशाल है । इसकी अनन्तता का दिग्दर्शन भगवान राम ने एक बार माता कौशल्या एवं काकभुशुण्डि को कराया था । वस्तुतः इस सृष्टि में अनेकानेक स्थूल-सूक्ष्म सृष्टियाँ हैं । हम लोग अभी इस दृश्य जगत को ही भली-भाँति नहीं समझ पाये हैं, तो सूक्ष्म जगत को कैसे जान-समझ पायेंगे ? इन्द्रिय सामर्थ्य के अभाव में ही हमें उनकी प्रतीति नहीं हो पाती और स्थूल संसार को ही हम सब कुछ मान कर उसे सादि समझ बैठते हैं, पर वास्तविकता ऐसी है नहीं । इस प्रकार जब सृष्टि की अनन्तता सिद्ध हो गई, तो उसे बनाने वाला अनादि अनन्त नहीं होगा-यह कैसे कहा जा सकता है ? सच तो यह है कि जो अनन्त नहीं है, वह अनन्त सृष्टि की रचना कर ही नहीं सकता ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यजुर्वेद में इसी बात को स्वीकारते हुए भगवतसत्ता को अनन्त सिर वाला, अनन्त नेत्रों और पैरों वाला बताया गया है और कहा गया है कि वह सत्ता सृष्टि को हर ओर से घेरे हुए है । एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि यह सम्पूर्ण सृष्टि उसका एक चौथाई भाग है । तिगुना अंश तो अमृत है । तात्पर्य यह है कि हम जो कुछ देखते हैं, वह उस विराट् सत्ता की स्थूल व नगण्य अभिव्यक्ति मात्र है । इसका अधिकांश अमृत भाग तो हमें दिखाई ही नहीं पड़ता । सृष्टि तो अनित्य है । इसमें उस महत् सत्ता का अमृत दिखाई भी कैसे पड़ सकता है ? जो सृष्टि के विनाश व निर्माण की प्रक्रिया को देखकर उसके निर्माता को भी ऐसा मान बैठते हैं, वे भूल करते हैं । शरीर मरणधर्मा है-इस आधार पर कोई आत्मा को भी नाशवान बताये, तो यह उसकी अल्पज्ञता होगी ।

शरीर तो आत्मा का उपकरण मात्र है । इसी प्रकार परमात्मा का उपकरण यह सृष्टि है । यदि सृष्टि न होती तो उसे जान-समझ ही कौन पाता ? अतः सृष्टि के आधार पर उसके नियन्ता के गुण-स्वरूप निर्धारित करना समीचीन न होगा । सृष्टा अनन्त है । उसकी अनन्तता उसके अमृत में समाहित है क्योंकि अमृतत्व परिमितता की निशानी है । अथर्ववेद इसी का उद्घोष करते हुए कहता है कि "**यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति**" अर्थात् ईश्वर तीनों कालों से परे है ।

कुछ लोगों का कहना है कि मनुष्य सीमित-परिमित है, फिर वह अनन्त ईश्वर को समझने का दावा किस आधार पर करता है ? कोई चींटी हिमालय की विशालता को कैसे जान सकती है ?

प्रश्न वस्तुतः सही है पर विलक्षण मानवी मस्तिष्क को दृष्टिगत रख इसका उत्तर दिया जाना चाहिए न कि तर्क द्वारा । प्रायः अनन्त उसे कहा जाता है, जिसके अन्त का या तो हमें अनुभव नहीं होता अथवा जिसे तर्क द्वारा हम सिद्ध नहीं कर सकते । किन्तु हमारी बुद्धि इन दोनों कामों को सरलतापूर्वक कर सकती है । हम जिस कुर्सी पर बैठते हैं, उसमें लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई है । वह सीमित जगह घेरती है । अतः देश अथवा आकाश की तुलना में वह अनन्त नहीं है, क्योंकि हमें उसकी निश्चित सीमा का पता है । इसी प्रकार काल की दृष्टि से भी वह अनादि नहीं है, क्योंकि किसी ने अवश्य उसे बनाया है । जब सृजन हुआ है, तो निश्चय ही उसका अन्त भी होगा । हम चाहें जब कभी भी उसे तोड़ सकते हैं । इस तरह मस्तिष्क ने इसे भली प्रकार जान लिया कि कुर्सी के आदि और अन्त दोनों छोर हैं, अतः वह अनन्त न होकर परिमित वस्तु है । आकार की दृष्टि से यह छोटी होती है और इसका बनना-बिगड़ना भी हमारी आँखों के सामने घटित होता है, अस्तु इसके सादि होने में कोई संदेह नहीं रह जाता । पर जब हम किसी पहाड़ के निकट जाते हैं, तो न तो हमें उसका कोई ओर-छोर दिखाई पड़ता है, न उसके ध्वंस-सृजन की प्रक्रिया हमारे आँखों के सामने होती है, फिर हम उसे अनादि-अनन्त कहाँ मान लेते हैं ? यदि ओर-छोर का दिखाई न पड़ना ही अनन्तता का सूचक होता, तो निश्चय ही हमारा मस्तिष्क पहाड़ को अनन्त मान लेता, पर व्यवहार में ऐसा होता नहीं देखा जाता है, अतः यह कहना कि मस्तिष्क सादि-अनादि में विभेद नहीं कर सकता, गलत है । समुद्र के निकट जाकर दृष्टि दौड़ाने से जल-ही जल दिखाई पड़ता है । इतने पर भी मन-मस्तिष्क उसे अनन्त स्वीकार नहीं करता ।

इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि ईश्वर और उसका सृष्टि-प्रवाह अनन्त है । यदि उसे अनादि के स्थान पर सादि मान भी लिया जाय, तो फिर प्रश्न उठेगा कि ईश्वर को बनाने वाला कौन है ? जिसने उसे बनाया, उसे किसने बनाया ? इस प्रकार के प्रश्नों का कोई अन्त नहीं होगा । यदि यह माना जाय कि ईश्वर को किसी ने बनाया नहीं, वह स्वतः उत्पन्न हो गया, तो सृष्टि रचना के लिए उसकी आवश्यकता क्यों ? वह भी स्वयं क्यों नहीं हो जाती । फिर तो यह तर्क भी प्रस्तुत किया जाने लगेगा कि जिस ईश्वर को स्वयं उत्पन्न होने की आवश्यकता पड़ती है, वह इतनी सुन्दर और सुव्यवस्थित दुनिया कैसे बना सकता है ? यह सही भी है । इस प्रकार इन तर्कों से ईश्वर की उत्पत्ति किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं होती । जो वस्तु उत्पन्न हुई नहीं, वह अवश्य ही अनादि-अनन्त है, इसमें तनिक भी संशय नहीं किया जाना चाहिए । संशय ही सभी विभ्रमों-कुतर्कों का मूल है । आस्तिकता विज्ञानसम्मत तो है ही, पर वह हमें चिन्तन के आयाम से ऊँचा उठकर भावनात्मक धरातल पर उठने की प्रेरणा देती तथा भ्रान्तियों से भी मुक्त करती है ।

क्या ईश्वरीय सत्ता सर्वव्यापी नहीं है ?

ईश्वर सर्वव्यापी है-कई लोग ऐसा नहीं मानते और आक्षेप लगाते हैं कि उसकी व्यापकता की मान्यता मानी ही नहीं जा सकती । इन सब में जान स्टुअर्ट मिल अग्रणी हैं । उनका तर्क है कि मानवीकृत वस्तुओं में उन्हें बनाने वाला व्यक्ति व्यापक कहाँ होता है ? इतने पर भी क्या वह वस्तु काम करना बन्द कर देती है अथवा अस्तित्व में ही नहीं रह पाती ? महल बनाने वाले इंजीनियर प्रायः निर्माण के बाद फिर कहीं अन्यत्र इमारत बनाने के लिए चले जाते हैं, तो क्या वह मकान उनके जाते ही ढह पड़ता है ? इंजन अपने निर्माण के बाद भी अपना अस्तित्व बनाये रखता है, जबकि वह निर्माता से कोसों दूर रहता है । पुस्तक अपने सृजेता से पृथक् रहकर भी क्या अपने प्रयोजन पूरे करती नहीं रहती है ? उनका कहना है कि जब मानव निर्मित यंत्र-उपकरण निर्माण के उपरान्त कर्ता के बिना भी अपने उद्देश्य पूरे करते रह सकते हैं तो यह सर्वव्यापकता सम्बन्धी नियम ईश्वर पर ही क्यों थोपा जाय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जबकि उसे मनुष्य से असंख्य गुना ज्ञानवान-बलवान बताया जाता है । उनका मत है कि यदि ईश्वर है, तो उसे सर्वव्यापी होने की आवश्यकता नहीं है । इसी प्रकार के अभिमत अन्य मतावलम्बियों के हैं । कुछ ईश्वर को ऊपर कहीं आसमान में बताते हैं, तो कुछ इसकी तुलना सूर्य से करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार सूर्य एक स्थान पर रहते हुए भी समस्त संसार को प्रकाशित कर रहा है, उसी प्रकार यह ईश्वर है । वह एक स्थान पर रहकर पूरी सृष्टि का संचालन करता है ।

स्थूल दृष्टि से देखा जाय तो मिल और अन्यों के कथन सत्य जान पड़ते हैं कि संसार में मनुष्य द्वारा रचित सारी वस्तुएँ जब उसकी व्यापकता के बिना ही क्रिया करती रहती हैं, तो परमात्मा की व्यापकता सृष्टि के कण-कण में क्यों आवश्यक है ? ऐसा विचार करते समय हम तथ्य की गहराई में नहीं उतरते, अन्यथा इसका उत्तर स्वतः मिल जाता कि क्रिया में परमेश्वर की उपस्थिति के बिना कोई कार्य सम्भव ही नहीं हो सकता । जब हम किसी मानवी क्रिया का उद्धरण प्रस्तुत करते हैं तो शायद यह भूल जाते हैं कि हमने क्रिया के सिर्फ एक अंश पर विचार किया है और दूसरे की उपेक्षा कर दी अथवा हमारी बुद्धि की पहुँच उस गहराई तक हुई ही नहीं ।

वस्तुतः ऐसी क्रिया में मनुष्य और ईश्वर दोनों की व्यापकता होती है । यदि कोई यंत्र का निर्माण किसी व्यक्ति के जिम्मे है और वह उसके निर्माण में जुटे ही नहीं तो वह अस्तित्व में ही कैसे आ पायेगा ? उसका अस्तित्व में आना ही यह सिद्ध करता है कि उस दौरान कोई मानवी सत्ता निश्चय ही उसमें व्यापक रही होगी । बाद का कोई कार्य चूँकि उसके वश का नहीं होता, अतः उसका संचालन ईश्वरीय-सत्ता करती है ।

इसे भली-भाँति समझने के लिए हमें सर्वप्रथम कार्य-कारण सिद्धान्त समझना होगा । सर्वविदित है कि किसी भी क्रिया का सम्पादन निमित्त कारण की उपस्थिति में ही सम्भव हो पाता है । हलवाई की दुकान में बेसन, चीनी, मैदा, घी, सब वस्तुएँ अलग-अलग रखी रहती हैं, पर हलवाई की इच्छा व क्रिया के बिना मिठाइयाँ नहीं बन पातीं । इसके लिए हलवाई को प्रयासपूर्वक उन्हें आपस में मिलाना पड़ता है, तब कहीं जाकर वे बन पाती हैं । यहाँ तक की क्रिया हलवाई की थी और इस क्रिया का निमित्त कारण वह स्वयं था । इसमें उसकी व्यापकता भी थी । पर यदि कोई पूछे कि बनाने वाले ने मिठाई को जो आकार दिया, उसके परमाणु उस आकार में चिपके क्यों रह गए ? किस शक्ति ने उन्हें परस्पर बाँधे रख कर वह आकार बनाये रखने में सहयोग किया अथवा कोई मिठाई जल्दी एवं कोई विलम्ब से क्यों खराब हुई ? इसका उत्तर हलवाई न दे सकेगा, क्योंकि वह क्रियाएँ उसके अधीन नहीं होतीं । यह अभौतिक क्रियाएँ हैं और किसी भौतिक शक्ति के नियंत्रण में नहीं रहतीं । इसका नियन्ता कोई अदृश्य व्यापक सत्ता ही हो सकती है, जो हर वक्त हर जगह व्याप्य में व्याप्त होती है और समय, परिस्थिति व आवश्यकता के अनुरूप कार्य करती है ।

इसी प्रकार मूर्तिकार यदि मूर्ति बनाता है तो यह उस पर निर्भर करता है कि वह उसे पत्थर की बनाये या मिट्टी, संगमरमर की, पर प्रश्न यह है कि मिट्टी के परमाणु पत्थर एवं संगमरमर की तुलना में जल्दी टूट कर बिखर क्यों जाते हैं ? मूर्तिकार इसे भली प्रकार जानता है, अस्तु वह पत्थर अथवा संगमरमर की ही मूर्ति बनाना पसंद करता है, क्योंकि वह टिकाऊ होती है । यह मजबूती या कमजोरी विग्रह को संगतरास द्वारा नहीं मिलती । वह तो मात्र वस्तु को एक आकार प्रदान करता है । परमाणुओं के कमजोर अथवा मजबूत बन्धन के लिए वह कदापि जिम्मेदार नहीं है, कारण कि न तो वह परमाणुओं को मिलाता है, न उनके संयोग को स्थिर रखता है । मात्र वह उस स्थिति का लाभ उठाता है । अतः यह कहना कि व्याप्य में अगोचर व्यापक सत्ता का सर्वथा अभाव है, उचित न होगा ।

इसी प्रकार घड़ी-साज विभिन्न पुर्जों को इकट्ठा करके घड़ी बना देता है, पर उनका चलना उसकी मर्जी पर निर्भर नहीं करता । घड़ी के रूप में उनके चलने के लिए घड़ीसाज उत्तरदायी नहीं है, न इसमें जो नियम काम करता है उसे ही उसने बनाया है । वह नियम पहले से ही विद्यमान था और उसका संचालन भी एक अदृश्य शक्ति के अधीन था । यहाँ भी घड़ीसाज की व्यापकता कार्य में बनी रहती है । हाँ, इतना अवश्य है कि उसकी यह व्यापकता पुर्जों के अस्तित्व काल तक न रहकर सिर्फ निर्माणकाल तक रहती है, पर रहती अवश्य है ।

यदि सचमुच ही ईश्वर सर्वत्र व्यापक नहीं है, तो यह सृष्टि हमें इस रूप में नहीं दिखाई पड़ती । फिर उसे इसके संचालन के लिए राजा की भाँति अनेकानेक मातहत, सत्ताओं, सामन्तों का आश्रय लेना पड़ता और इसके अलग-अलग विभाग पृथक्-पृथक् सत्ताओं की देख-रेख में चलते । चूँकि राजा का अपनी प्रजा और नौकरों के मस्तिष्क पर नियंत्रण नहीं होता है, फलतः यदा-कदा वे स्वेच्छाचार बरतते और मनमानी करते भी देखे जाते हैं, जिसका समय-समय पर उन्हें उचित दण्ड मिलता है । चूँकि राजा अपने राज्य में सर्वत्र व्यापक नहीं होता, ऐसी अगणित बातें हो सकती हैं, जो राज्य प्रशासन के विरुद्ध हों और राजा की नियमावली का उल्लंघन करती हों । यदि ईश्वरीयसत्ता भी किसी एक स्थान पर रहकर अपनी सृष्टि को चलाती तो निश्चय ही ऐसी अव्यवस्था एवं अराजकता कभी-कभी उत्पन्न हो जाती; पर विश्व ब्रह्माण्ड की घटनाओं को देखने से उसमें किसी भी प्रकार की नियमविरुद्धता, असम्बद्धता अथवा अव्यवस्था कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती ।

ईश्वर की निराकार सत्ता भी उसकी सर्वव्यापकता को सिद्ध करती है । ईश्वर को किसी ने देखा नहीं । जो निराकार है, वही सर्वव्यापी हो सकता है । हवा हमें

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिखाई नहीं पड़ती, उसका अनुभव कर सकते हैं । इतने पर भी यह कहना कि कमरे के भीतर हमें वायु की अनुभूति नहीं हो रही है, अतः कमरे में हवा नहीं है और बाहर पेड़-पौधे हिलते-दीख रहे हैं, अतः यहीं केवल उसकी मौजूदगी है, किसी भी प्रकार सही न होगा । हमारा जीवित बना रहना, समस्त शारीरिक क्रियाओं का यथावत् चलते रहना ही उसके अस्तित्व प्रमाण के लिए काफी होगा ।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवद् सत्ता सर्वव्यापी है, जिसे मनुष्य यह कह कर गर्व करता है कि यह मेरी रचना है, प्रकारान्तर से उसमें भी उसकी उपस्थिति होती है । सच पूछा जाय तो उसकी विद्यमानता के बिना कोई कार्य सम्पादित हो ही नहीं सकता । जो मानवी कार्यों के साथ ईश्वर की तुलना कर उसका वास एक स्थान पर बताते हैं, वे व्यापकता सम्बन्धी नियम पर विचार करने में भूल करते हैं । इसी कारण यह भ्रम पैदा हो जाता है । वस्तुतः मनुष्य भी अपने कार्य की पूर्ति हेतु कुछ समय के लिए अस्तित्व में आता है और शेष कार्य ईश्वर अपनी सर्वव्यापकता द्वारा सिद्ध करता है । ऋषियों ने भी इसी का समर्थन करते हुए "ईशावास्यमिदं सर्वं" का उद्घोष किया है ।

क्या सचमुच ईश्वर पक्षपात करता है ?

ईश्वर समदृष्टा है, वह कल्याणकारी, न्यायकारी व दयालु है । कुछ लोग ऐसा नहीं मानते और कहते हैं कि यदि उसमें समत्व का भाव रहा होता, तो यह संसार दुःखों का पिटारा न होता । तब हम किसी को मौज-मस्ती करते और किसी को दुःखों का पहाड़ उठाते नहीं देखते । सर्वत्र समता दृष्टिगोचर होती । वे तर्क प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि यदि वह दयालु होता तो इस सृष्टि के प्राणियों को रोग-शोक और प्रकृति-प्रकोप की मार नहीं झेलनी पड़ती ।

प्रथम दृष्टि में अनीश्वरवादियों के ये कथन सत्य जान पड़ते हैं, पर तनिक सूक्ष्म-बुद्धि का प्रयोग करने से कथन की निरर्थकता और आधारहीनता स्पष्ट झलकने लगती है । दुःख-दर्द सर्वदा दाता की क्रूरता के परिचायक नहीं होते । इसके पीछे कल्याणकारी भावना भी छिपी रह सकती है । पिता जब पुत्र को बुरे कार्य करते, कुमार्गगामी बनते देखता है, तो वह उसे दण्ड देता है, ताकि वह ऐसा करना छोड़ दे, अपना सुधार करे और उन्नति-प्रगति के लिए उत्तम मार्ग चुने । इसकी प्रतिक्रिया भी अनुकूल होती है और इस नियंत्रण से बालक सुधरता दिखाई पड़ता है । कारण न जानने वालों को इसमें पिता की गलती और नृशंसता दिखाई पड़ सकती है, पर जो कारण जानते हैं, जिन्हें बालक की उच्छृंखलता का पता है, वे पिता को कदापि दोष न देंगे । अतः किसी मनुष्य को दुःख भोगते देखकर यह कहना कि ईश्वर पक्षपाती है, उचित न होगा, क्योंकि हमारे ये स्थूल, नेत्र मनुष्य की सम्पूर्ण विकास यात्रा को कहाँ देख-समझ पाते हैं ? पिछले जन्म में उसने कैसे कर्म किए ? इसे जानने की सामर्थ्य इन चर्म चक्षुओं में कहाँ है ? अस्तु, कारण को समझे बिना ईश्वर पर दोषारोपण करना किसी भी प्रकार समीचीन न होगा । मानवी दुःखों पर यदि गहराई पूर्वक विचार किया जाय, तो उससे हमें दो बातें मालूम होंगी-प्रथम यह कि वह व्यक्ति को विकास के लिए उद्यत करता है और दूसरे पाप से रोकता है । पहले प्रकार के दुःख में व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रयास और परिश्रम करना पड़ता है । यदि व्यक्ति गरीब है, भोजन और वस्त्र का अभाव है, तो उसे इनका उपार्जन करना पड़ता है, तभी वह अपनी दुरवस्था से उबर पाता है, पर मनुष्य अपनी विपन्नता को, अभाव की स्थिति व उपार्जन के परिश्रम को दुःख मान बैठता है । यदि वह किसी प्रकार की क्रिया न कर, काम से जी चुराए और निष्क्रिय बना बैठा रहे, तो उसकी शारीरिक-मानसिक क्षमताओं का विकास कैसे होगा ? विकास के लिए आवश्यक है कि उन क्षमताओं का उपयोग हो और उपयोग तभी सम्भव है, जब वैसी परिस्थिति हो, जिसमें उनका उपयोग बन पड़े । अभाव ग्रस्तता-विपन्नता ऐसी ही परिस्थितियाँ हैं, जिनमें मानवी क्षमताओं को विकसित होने का भरपूर अवसर मिलता है और इन्हें सुविकसित कर व्यक्ति अन्ततः अपनी अभावग्रस्तता से मुक्ति पाता है । अतः इस दुरवस्था को दुःख समझ लेना एक प्रकार की भूल है । ऐसा मान लेने से तो व्यक्ति प्रयत्न व पुरुषार्थ त्याग कर अकर्मण्य बन बैठेगा । ज्ञातव्य है-कोई व्यक्ति इस दुनिया में धन-दौलत लेकर नहीं आता । वह सदा खाली हाथ आता है । सम्पत्ति तो उसे प्रयास और परिश्रमपूर्वक कमानी पड़ती है, क्योंकि इस जीवन-सकट को गतिवान रखने के लिए हर व्यक्ति की यह प्रथम आवश्यकता है, जिसे सभी को पूरी करनी पड़ती है । अतः यह दुःख नहीं, वरन् आवश्यकता पूर्ति है, जिसके दौरान क्षमताओं का निश्चय ही विकास होता है । देखा जाता है कि कोई जीविकोपार्जन के लिए शिल्पकला अपना लेता है, तो कोई साहित्य-सृजन । कोई चित्रकारी करके अपना पेट भरता है, तो कोई कृषि करता है । यदि किसी ऐसे व्यक्ति से कोई मूर्ति गढ़ने, निबन्ध लिखने, चित्र बनाने या कृषि सम्बन्धी कार्य करने के लिए कहा जाय, जिसका यह व्यवसाय नहीं हैं, तो इन कार्यों में वह निपुणता प्रदर्शित नहीं कर सकेगा, जो इनके पेशेवर व्यवसायी कर सकते हैं, क्योंकि उन्होंने लगातार अपने-अपने क्षेत्र में अपनी-अपनी क्षमताओं को उन्नत बनाया है ।

इसके विपरीत जिन्हें विरासत में सम्पत्ति मिली हुई है और जिसे प्राप्त करने के लिए उन्हें तनिक भी हाथ-पैर चलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, वे व्यसनों में पड़ कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

३.५ ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ

धीरे-धीरे अपनी शक्तियाँ गँवाने लगते हैं । संसार में ऐसी अनेक जातियाँ, राजा और व्यक्ति हुए हैं, जिन्होंने ऐश्वर्य के मद में आकर अपना सर्वनाश कर डाला । ऐसे भी उदाहरणों की कमी नहीं, जिसमें व्यक्ति माली स्थिति से सर्व सम्पन्नता की स्थिति में जा पहुँचे हों । आरामतलब आराम फरमाने के कारण कुछ करने योग्य भी नहीं रहते । धनिकों का इतिहास देखने से ज्ञात होगा कि उनके बाप-दादों ने कंगाली की स्थिति में घोर परिश्रम द्वारा धन इकट्ठा किया था, जिसे अब वे मौज-मस्ती में उड़ा रहे हैं । क्या उनमें अपने पूर्वजों जैसे प्रबल पुरुषार्थ और जीवट जैसे गुण शेष रह जाते हैं ? यदि नहीं तो क्या यह अवगति नहीं हुई ? व्यक्ति को यदि हर प्रकार के सुख अनायास ही मिल जाएँ, तो फिर उसकी उन्नति की प्रवृत्ति ही समाप्त हो जाएगी । विजय हमेशा युद्ध लड़ने वालों को ही मिलती है और कष्ट सहने वाले ही सदा यश के भागी बनते हैं । लड़ाई लड़ना और कष्ट-कठिनाई उठाना दुःख नहीं, वरन् सुख प्रदाता है । इन्हें दुःख कहना, निश्चय ही एक भारी भूल है ।

दूसरे प्रकार की व्यथा हमें पाप से बचाती है । व्यक्ति जब अनाचार-अत्याचार पर उतारू होता है तो भगवान की ओर से उसे उसका अन्यान्य प्रकार से दण्ड भी मिलता है । जब किये की सजा पाता है, तो व्यक्ति फिर वैसे पाप-कर्म करने का साहस नहीं कर पाता और इस प्रकार कुकर्मों से बचा रहता है । इस तरह एक प्रकार की अवस्था मनुष्यों को परिश्रम के लिए प्रेरित करके उन्नति का कारण बनती है, तो दूसरे प्रकार की अनेकानेक अवस्थाएँ उन्हें दण्ड स्वरूप मिली होती हैं । दण्ड को दुःख कैसे माना जाय । यदि ऐसा मान भी लिया जाय, तो इसका जिम्मेदार व्यक्ति स्वयं होता है । यह स्थिति उसकी खुद की बनायी होती है । कोई व्यक्ति अपराध की सजा पाकर जेल जाता है और इसे वह अपना दुःख मान लेता है तो यह उसकी नासमझी ही होगी । यह तो उसके बुरे कर्म का परिणाम है । अधिकारीगण हर किसी को जेल में कहाँ बन्द कर देते हैं । जो अपराध वृत्ति अपनाते हैं जेल भी उन्हें ही भुगतनी पड़ती है । ईश्वर के यहाँ पापकर्म के लिए सजा और पुण्य के लिए पारितोषिक का प्रावधान है । पर ईश्वरीय न्याय व्यवस्था में दुष्कर्म की सजा के लिए प्रतिकार का भाव नहीं होता, न ही उसमें क्रूरता-कठोरता की निशानी होती है । दण्ड सदा सुधार भावना से दिया जाता है और वह उसी स्तर का होता है, जिस स्तर का अपराध । इस प्रकार देखा जाय तो इसमें उसकी दयालुता का ही पुट मिलती है । कोई कोमल हृदय माता भी अपने प्रिय पुत्र को ऐसी दयालुता से दण्ड नहीं दे पाती, जैसा ईश्वर नियम-भंग करने वालों को देता है । दोनों में इतना ही अन्तर है कि व्यामोह बन्धन में जकड़ी माता अपनी सन्तान को कुमार्गगामी बनने का साहस दे बैठती है, किन्तु ईश्वरीय सत्ता ऐसा नहीं करती । इस प्रकार यह कहना कि इस संसार में दुःख-ही-दुःख भरा पड़ा है, अथवा भगवत् सत्ता न्यायकारी-कल्याणकारी नहीं है अनुचित होगा ।

सच तो यह है कि जितना हम दुःखों पर ध्यान देते हैं, उतना ईश्वर प्रदत्त सुखों पर विचार करते ही नहीं । यदि ऐसा होता, तो परमसत्ता को कोसने की बजाय हम सदा उसके आभारी बने रहते । शायद हमने कभी सोचा ही नहीं कि विभिन्न प्रकार की इन्द्रियों के माध्यम से जो हमें आनन्दानुभूति प्राप्त होती है, क्या वह ईश्वर की महती कृपा नहीं है ? क्या इसमें उसकी दयालुता छिपी नहीं है ? इन आँखों से हम कितने सुन्दर-सुन्दर दृश्य निहारते हैं, स्रष्टा की अनुपम रचना देख कर हमें कितना सुख मिलता है, इसे तो किसी अन्धे से पूछकर ही जाना जा सकता है । यदि स्वाद के लिए जीभ न मिली होती, तो हम जायकेदार व्यंजनों का रसास्वादन नहीं कर पाते । फिर गुड़ और गोबर हमें एक जैसे प्रतीत होते । कान के अभाव में हम संगीत और शब्दों का आनन्द-लाभ कैसे ले पाते ? नाक नहीं होती तो विभिन्न प्रकार की वस्तुओं और फूलों की खुशबू बेकार साबित होती । तब खुशबू और बदबू में भेद प्रकट नहीं हो पाता और एक के प्रति सुख व आकर्षण एवं दूसरे के प्रति घृणा की अभिव्यक्ति नहीं हो पाती ।

इतना ही नहीं, सर्वेश्वर ने हर जीव की सुरक्षा का प्रबन्ध भी किया है । समर्थ और शक्तिशाली प्राणियों को शत्रु से अपनी रक्षा के लिए उपयुक्त अंग-अवयव प्रदान किये हैं, जबकि वैसे प्राणी जो निर्बल और कमजोर हैं, उनको शरीर की बनावट और रूप-रंग ही ऐसे मिले हैं जिससे वे शत्रुओं की नजरों से बचे रह सकें । कितने ही प्रकार के कृमि-कीटकों और पक्षियों के रंग ठीक वैसे ही होते हैं, जिस वातावरण अथवा पेड़-पौधों, वृक्ष-वनस्पतियों में वे निवास करते हैं । फूलों पर बैठी रहने वाली तितलियों को कभी-कभी उनसे पृथक् पहचानना कठिन हो जाता है । झाड़ियों में रहने वाले खरगोशों और तोतों का रंग अपने-अपने आवास के अनुरूप होता है । इसके अतिरिक्त वह अपनी स्वाभाविक अवस्था में दुर्घटनाओं के शिकार भी कम ही होते हैं । बन्दर, चिम्पाजी व लंगूर के ऊँचे-ऊँचे पेड़ों से नीचे कूद पड़ने पर भी चोट नहीं लगती । उनके वृक्षीय आवास के हिसाब से उनमें यह क्षमता होनी आवश्यक थी, जिसका समावेश किया गया । गिद्ध सदा ऊँचे आकाश में मँडराता रहता है । यदि उसे तीक्ष्ण दृष्टि न मिली होती, तो वह अपने भोजन की व्यवस्था न कर पाता और सम्भव है अपना अस्तित्व ही गँवा बैठा होता, पर ऐसा नहीं देखा जाता है । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि परमेश्वर ने बड़े ही विवेक और न्यायशीलता का परिचय देते हुए प्रत्येक जीव में उसकी आवश्यकता के अनुरूप योग्यता, क्षमता और सामर्थ्य का समावेश किया है । फिर ईश्वर कठोर और अन्यायकारी कैसे है ?

यदि परमसत्ता सचमुच ही कठोर और अन्यायी होती, तो संकट की घड़ी में उसके प्रति श्रद्धा न उपजती । प्रायः देखा जाता है कि जब कोई भारी विपत्ति हमारे सामने प्रस्तुत होती है और उससे उबरने का कोई मार्ग सूझ नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ता, हाथ-पैर फूलने लगते हैं, तो घोर निराशा की स्थिति में आशा की किरण एक ही ओर से आती दिखाई पड़ती है, वह है-ईश्वरीय सत्ता । मरीज की स्थिति जब गम्भीर हो जाती है एवं उसके स्वस्थ होने के सभी उपाय-उपचार विफल होने लगते हैं, तो डाक्टर भी दवा के बदले दुआ की सलाह देता है और उस महान सत्ता के जिम्मे सब कुछ छोड़ देता है । इस प्रकार की आशा-अपेक्षा किसी नेक से ही की जा सकती है और ऐसी ही सत्ता के प्रति प्रेम भी प्रदर्शित किया जाता है । चोर, डाकू, अपराधी के प्रति कोई प्रेम-श्रद्धा कहाँ दिखा पाता है ? प्यार-प्रेम तो दूर, उनके नाम लेने में भी लोग भय का अनुभव करते हैं । यदि ईश्वर में ऐसी ही बदी होती तो उनके प्रति लोग ऐसे भाव प्रदर्शित नहीं करते ।

सम्भव है अनीश्वरवादियों ने उस महत् सत्ता के प्रति ऐसे आरोप इसलिए लगाये हों, क्योंकि उन्होंने मनुष्य और संसार के सिर्फ एक पक्ष को देखा हो । यदि कोई रात की कालिमा को देखकर दुनिया को अन्धकारमय बताये, तो उसे उसका अपूर्ण ज्ञान ही कहा जाएगा । वस्तुतः रात दिन की तरह दुःख-सुख मनुष्य की नियति है । कोई व्यक्ति न तो सदा-सर्वदा दुःखी ही बना रहता है, न सुख में ही डूबा रहता है । दोनों स्थितियाँ आती-जाती रहती हैं । भगवान की ओर से यदि किसी को प्रताड़ना मिलती है, तो वह दण्डस्वरूप होती है। न तो वह इतनी अधिक होती है कि व्यक्ति उसके बोझ से ही दब जाय, न इतनी कम कि उसका उस पर कोई प्रभाव ही न पड़े । वास्तव में वह संतुलित होती है, जिसमें उसकी एक आँख प्यार की दूसरी सुधार की वाली नीति ही प्रमुख होती है । अतः संसार को दुःखमय बताना और ईश्वर को पक्षपाती कहना सर्वथा भूल है ।

क्या ईश्वर पर मुकदमा चलाया जा सकता है ?

कभी-कभी असमंजस होता है परमेश्वर की रीति-नीति को देखकर कि उसने कोटि-कोटि प्राणियों से भरी हुई इस विश्व-वसुन्धरा में मात्र मनुष्य को ही विशेष प्रकार की, समुन्नत स्तर की विभूतियाँ क्यों प्रदान कीं ? जबकि सृष्टि के अन्यान्य प्राणी उन सुविधाओं से वंचित ही बने रहते हैं । ऐसा लचकदार, हाथ पैरों की असाधारण संरचना वाला, सर्वांग सुन्दर खड़े होकर चलने वाला और अगणित प्रकार के, असाधारण स्तर के कलाकौशल को सम्पन्न करने वाला शरीर और किसका है । इसकी खोजबीन करने पर एक ही निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य के अतिरिक्त और कोई जीवधारी इस स्तर का सृजा नहीं गया ।

काय-कलेवर की परत उघाड़ कर कुछ गहराई तक उतरने पर प्रतीत होता है कि मात्र शरीर ही विलक्षण नहीं, वरन् उसकी भीतरी परत में एक विलक्षण स्तर का मनःसंस्थान भी है । खोपड़ी की कड़ी चहारदीवारी के भीतर उसका निवास होने से आँखों द्वारा उसे प्रत्यक्ष तो नहीं देखा जा सकता, पर उसकी चिन्तनपरक क्षमताओं को देखते हुए प्रतीत होता है कि यह जादुई पिटारे से कम आश्चर्यजनक किसी भी प्रकार है नहीं । कल्पना, विचारणा, निर्धारणा, भाव-संवेदना, मान्यता, आस्था जैसी अगणित परतें इस पिटारी के भीतर विद्यमान हैं । यदि वे प्रसुप्त, मूर्छित स्थिति में पड़ी रहें तो बात दूसरी है, अन्यथा यदि उन्हें तनिक भी समुन्नत स्तर तक उठने का अवसर मिल जाय, तो मनुष्य अगणित सफलताएँ अर्जित कर सकने वाला सिद्ध पुरुष बन सकता है । यदि कुछ और उभार आ सके, तो इसे ओजस्वी, तेजस्वी, मनस्वी होने में देर न लगे । ज्ञान और विज्ञान से सम्बन्धित उसकी अनेकों विशेषताएँ उभर पड़ें तो मनीषियों, दिव्यदर्शियों जैसी उच्चस्तरीय भूमिका निभाते उसे देखा जा सकता है । इंजीनियर, डॉक्टर, आर्किटेक्ट, योजनाकार, कलाकार स्तर की अनेकों विशेषताओं से सम्पन्न लोग तो मस्तिष्क को तनिक-सा विकसित कर लेने भर से बनते देखे जा सकते हैं ।

प्रश्न यह है कि ऐसे ही सुविधासम्पन्न शरीर और मस्तिष्क अन्यान्य प्राणियों को क्यों नहीं मिले ? यदि स्रष्टा को समदर्शी और न्यायनिष्ठ कहा जाता है तो उसने ऐसी अनीति क्यों बरती कि एक ही प्राणी को सृष्टि का मुकुटमणि बन सकने जैसी सुविधा प्रदान कर दी और अन्य सभी को अनगढ़ स्थिति में समय गुजारने जैसे तुच्छ स्तर के कलेवर देकर बहका कर भगा दिया गया ।

मोटी दृष्टि से विचार करने वाले नास्तिक विचारधारा के लोगों का कहना है कि ऐसे अनेकों प्रश्न उठ खड़े होते हैं, जिनके कारण स्रष्टा में इतनी भी न्याय निष्ठा नहीं दीख पड़ती जितनी कि सामान्य लोगों में अपनी संतानों के बीच एक बड़ी सीमा तक निष्पक्षता के रूप में देखी जाती है । नैतिकता-नीति निष्ठा गँवा बैठने पर तो कोई सत्ता ऐसी नहीं रह जाती, जिसके प्रति निष्ठा उपजे, जिसकी भक्ति करने के लिए विचार बने, जिसकी पूजा-अभ्यर्थना करने के लिए अन्तःकरण हुलसित हो । वे कहते हैं कि समर्थता ही तो सब कुछ नहीं है। अतीव में शक्तिसम्पन्न महादैत्यों तक के नमन-वंदन के लिए जब उनका प्रचण्ड दमन सामने रहने पर भी मनुष्य ने सिर नहीं झुकाया तो फिर ईश्वर का सर्वशक्तिमान होना भी वह निमित्त कारण नहीं बन सकता, जिसके लिए उसे उपास्य या आराध्य ठहराया जा सके । मनुष्य का अपना भी तो विवेक है । उसने स्वयं भले ही अनीति बरती हो, पर समर्थों का अन्याय तो उसने कठिन, प्रबल विरोध किए बिना छोड़ा नहीं है । फिर ईश्वर ही तर्कों के इस आक्रोश से क्यों कर बच सकेगा ?

बात यहीं तक सीमित नहीं है । जीवधारियों का पक्ष लेने वाले तथा मनुष्य को मिले अधिकारों को चुनौती देने वाले तो यह कहते हैं कि जो मनुष्य अतिरिक्त रूप से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उत्पन्न हुई विभूतियों का पग-पग पर दुरुपयोग करने के लिए उतारू रहता है, छल, प्रपंच, अनाचार, शोषण उत्पीड़न जैसे कुकर्मों का ताना-बाना बुनता रहता है, उसी को भगवान ने यह छूट कैसे दे दी कि जिस प्रकार अन्यान्यों को बहका-फुसला कर अपना उल्लू सीधा करता रहता है, वही कुचक्र पूजा-पाठ का रूप बनाकर ईश्वर को भी वशवर्ती बना सकता है और उससे वैसे ही लाभ वरदान रूप में पा सकता है जैसे कि पालतू पशुओं को बन्धनों से जकड़ कर मनचाहा लाभ उठाया जाता है । ईश्वर इतना भोला कैसे बन गया ? उपासना कराने की ऐसी क्या ललक उस पर चढ़ दौड़ी कि वह चाटुकारों की मनुहार के पीछे छद्म को नहीं समझ सका ?

यों ये आक्षेप कम वजनदार नहीं हैं । यदि धर्मराज की अदालत में ईश्वर पर दो मुकदमे चलाये जा सकें तो व्यवस्था का दावेदार बनने वाले ईश्वर पर उपर्युक्त दोनों ही अभियोगों द्वारा तर्क और तथ्य को आधार बनाने वाला वकील इस प्रकार इलजाम सिद्ध कर सकता है कि अभियोग की यथार्थता सिद्ध हो सके और भगवान को अभियुक्तों के कटघरे में खड़ा होना पड़े । इस पूरे प्रकरण को किसी नास्तिक की बकवास कहकर टाला भी तो नहीं जा सकता ।

इन आरोपों का जवाब देना ईश्वर का नहीं, इसकी सत्ता का प्रतिपादन करने वालों का कर्त्तव्य है । ईश्वर की सच्ची परिभाषा जिसने समझी होगी, वह इसका वकील सही अर्थों में बनकर यह मुकदमा लड़ सकता है । ईश्वर सत्प्रवृत्तियों के समुच्चय, उत्कृष्टता की, श्रेष्ठता की प्रतिमूर्ति का नाम है । ईश्वर अनुशासन का, विधि-व्यवस्था का-नीतिमत्ता का, सुव्यवस्था का नाम है । वह निराकाररूप में कहीं है तो इसी रूप में विद्यमान है । मनुष्य को उसने बुद्धि तो दी पर नर-पशु का, नर-पामर का अथवा देव मानव का, ऋषि का जीवन जीने की स्थिति का चयन करने की स्वतंत्रता भी दे दी । यह मनुष्य की विवेक-बुद्धि पर निर्भर है कि वह किस मार्ग पर अवलम्बन करता है ।

अन्यान्य प्राणियों में चेतना है, अतीन्द्रिय क्षमता है, इस्टीक्ट्स है, साथ ही भावनाएँ भी । यदि उन्हें मनुष्य की तरह बुद्धि मिलती तो वे भी कुटिलता के षड्यंत्रों के शिकार होकर एक दूसरे के लिए दुरभिसंन्धियाँ रच रहे होते । इस प्रकार प्राणियों में भी मानवी सद्गुण हैं एवं मानव में भी पाशविकता के सभी लक्षण । जो भी उस सृजेता द्वारा प्रदत्त विभूतियों का सुनियोजन करता है, वह आत्मिक प्रगति का पथ प्रशस्त करता चला जाता है एवं जो दुरुपयोग करता है वह पतन के गर्त में चला जाता है ।

निष्ठुरता-सहृदयता, दुर्बुद्धि-सद्बुद्धि-सद्विवेक, दुष्कर्म सभी अपने चयन पर निर्भर हैं । इस तरह दोषी ईश्वर नहीं, उसकी वह कृति है जो मनचाहा दुरुपयोग करने की उच्छृंखलता बरतने लगती है, पात्रता का ध्यान किये बिना उपासना का ढोंग रचकर उपहासास्पद विडम्बना रचती है । मुकदमा ईश्वर पर नहीं, मनुष्य पर चलाया जाना चाहिए, जिसने अपने हाथों इस विश्वउद्यान को सुरम्य बनाने के स्थान पर भग्नावशेषों में बदल डाला है । जिस दिन यह मर्म समझ में आ जाएगा तभी व्यक्ति मनःस्थिति बदलकर सही अध्यात्म पर चलने का मार्ग सीख जाएगा । फिर वह परिस्थितियों पर दोष न मढ़कर अपने चिन्तन को बदलने की कला को जीवन में स्थान देगा ।

परमसत्ता न तो अदूरदर्शी है, न अविवेकी ही

परमसत्ता की इस सृष्टि में जहाँ एक ओर प्रगति के प्रचुर आधार भरे पड़े हैं और सुख-साधनों की भरमार है, वहाँ विकृतियों और अवांछनीयताओं की भी कमी नहीं । यहाँ सत्प्रवृत्तियों की तरह दुष्टता और दुर्बुद्धि का भी वैभव-विस्तार छाया दीखता है । कई बार यह दुविधा होती है कि परमसत्ता ने इस विश्ववाटिका को ऐसी विसंगतियों से क्यों भर दिया कि एक ओर जहाँ श्रेष्ठता का अभाव नहीं, दूसरी ओर वहाँ दुष्टता भी सृष्टि-सौन्दर्य को निगल जाने के मनसूबे बाँधती रहती है । जब नीति बनी, तो अनीति के अस्तित्व की क्या आवश्यकता थी ? जब देव मौजूद थे, तो दैत्यों का प्रकटीकरण किसलिए हुआ ?

उपभोक्तावादी दृष्टिकोण से हमारा यह सोचना ठीक हो सकता है, पर यदि हम निर्माता की स्थिति में होते, तो समस्या दूसरे ही रूप में सामने होती और उसका समाधान करने के लिए कदाचित् हमें भी वही करना पड़ता, जो परमेश्वर को करना पड़ा है । अनुदान कितने ही कीमती क्यों न हों, उनका महत्व समझना और उनके उपयोग में सतर्कता बरतना तब तक सम्भव नहीं हो सकता, जब तक कि अभाव या प्रतिकूलता की स्थिति सामने न हो । केवल सरलता संसार में बनी रहे, तब तो कठिनाई की कल्पना ही न होगी और तुलना करने के लिए कोई आधार न रहने पर उपलब्धि का न तो कोई मूल्य समझा जायेगा, न उसमें किसी प्रकार का आनन्द रह जायेगा । जिन लोगों को प्रचुर सुविधाएँ उपलब्ध होती रहती हैं, उन्हें वे भार प्रतीत होने लगती हैं और वैसा रस नहीं आता जैसा कि अभावग्रस्त स्थिति वालों को उसी को हस्तगत करने में स्वर्ग-सौभाग्य जैसा आनन्द आता है । रसास्वादन में जितना श्रेय सुख-साधनों को है, उतनी ही महत्ता उस अभावग्रस्त स्थिति की है, जिसके कारण उन पदार्थों की तीव्र अभीप्सा बनी रहती है । कड़ी भूख लगने और रतजगा होने पर रूखी-सूखी रोटी और पत्थर का बिछावन भी स्वादिष्ट और सुखकर लगते हैं, जबकि पेट भरा होने तथा नींद की खुराक पूरी होने पर सुस्वादु व्यंजनों पर भी नाक-भौं सिकोड़नी पड़ती हैं एवं आरामदायक बिस्तर भी सामान्य लगता है । भोजन की स्वादिष्टता और बिस्तर की उत्तमता का जितना मूल्य है, उनसे अधिक कड़ाके की भूख लगने और गहरी नींद

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आने का है । इस मूल्यांकन के कारण ही संतोष और आनन्द मिलता है । इस आनन्द के लिए ही उत्कृष्ट अभीप्सा उत्पन्न होती है और उसे प्राप्त करने के लिए कठोर परिश्रम करने का साहस उठता है । प्राणियों को विभिन्न प्रकार की हलचलें करने की प्रेरणा इसी से मिलती है । मस्तिष्क को उसके आधार पर खड़े करने के लिए सोच-विचार करना पड़ता है । शरीर की तत्परता और मन की तन्मयता का प्रेरणा-केन्द्र अभीष्ट उपलब्धियों की आकांक्षा ही रहती है और उन आकांक्षाओं का उभार अभाव की कल्पना में उठता है । कंगाली की कठिनाइयों के चिंतन से सफलता बटोरने के लिए उत्साह उमगता है । रोगग्रस्तता और निर्बलता की दशा में शरीर की जो दुसह्य दुर्गति होती है, उससे डर कर ही लोग स्वस्थता प्राप्ति की व्यग्रता जताते हैं । यदि अक्षुण्ण स्वास्थ्य की निश्चिंतता रहे, तो फिर आरोग्य-संवर्धन के लिये जो किया और सोचा जाता है, उसकी किसी को आवश्यकता ही न पड़ेगी । फिर आरोग्य स्वाभाविक रहने और उसमें किसी प्रकार का संकट उत्पन्न होने का खतरा न रहने से उसका महत्व भी प्रतीत न होगा । ऐसी स्थिति में कोई उसके लिए फिर प्रयत्नशील क्यों रहेगा ? प्रयत्न की बात तो दूर कोई उस संदर्भ में चर्चा तक करना पसंद न करेगा । ऐसी दशा में सुदृढ़ स्वास्थ्य के कारण जो गर्व-गौरव एवं आनन्द प्राप्त होता है, उसका भी अंत हो जायेगा । इस संसार में से मरण का अस्तित्व समाप्त हो जाय, तो भला, जीवन से मोह किसको रह जायेगा ? यहाँ कुरूपता के कारण ही सौन्दर्य की पूजा होती है । जब सर्वत्र सौदर्य-ही-सौन्दर्य रहे, कुरूपता न रहे, तो जिस तुलना से आँखें सुन्दरता का स्वाद चखती और आनन्द विभोर होती हैं, वह स्थिति बनी न रह सकेगी और दुनिया नीरस-निरानंद बन जायेगी ।

रात के बिना दिन की उपयोगिता किसकी समझ में आती है ? न दिन का महत्त्व मालूम पड़ेगा, न उन घंटों के एक-एक क्षण के निष्ठापूर्वक उपयोग की आवश्यकता महसूस होगी । परिणाम यह होगा कि इन दिनों दिन के उजाले में काम पूरा करने की जो जल्दी मनुष्य को रहती है, वह तब न दिखाई पड़ेगी एवं लोग अकर्मण्य शिथिल-से बने रहेंगे । मानवी उत्साह तो अतिरिक्त लाभ पाने के लिए अथवा सम्भावित कठिनाई से बचने के लिए उत्पन्न होता है । उत्साह एक उत्तेजना है, जो लाभ कमाने एवं भय से बचने की कल्पना के सहारे उठती है । महामानवों और महापुरुषों में भी जो उत्कृष्ट साहस और पुरुषार्थ प्रकट होते हैं, उनके मूल में भी यही तथ्य काम करते हैं । यह बात दूसरी है कि उनके लाभ की परिभाषा सर्वसाधारण की तद्विषयक परिभाषा से भिन्न है । वे प्रायः व्यक्तिगत सुविधा के स्थान पर सामूहिक सुविधा की बात सोचते और आध्यात्मिक लाभ को प्रधानता देते हैं । इसी प्रकार वे भी सार्वजनिक विनाश और भौतिकता के नरक तुल्य दुःखों की विभीषिका को ध्यान में रखते हुए जन-जन का उत्साह उभारते हैं । यह स्तर भर का अंतर है । उत्साह जिसे शक्ति का स्रोत कह सकते हैं, बिना किसी लोभ या भय के उभरता ही नहीं । स्पष्ट है कि उत्साह की उत्तेजना ही मूर्च्छित व्यक्तित्व को जगाती, उभारती और सक्रिय बनाती है, उसे प्रगति के पथ में धकेलती और महत्वपूर्ण कार्य कराती है । यदि उमंगें न उपजें तो मनुष्य को शरीरचर्या की सामान्य क्रिया करते रहने के अतिरिक्त और कुछ करते-धरते न बन पड़ेगा । ऐसी अवस्था में उसकी दशा अर्द्ध-मृतकों-अर्द्धमूर्च्छितों जैसी बन जाएगी और सिवाय खाने-पीने के अतिरिक्त और कुछ सोचते-करते न बनेगा । उस साहसी मनोभूमि का वरदान पाने से वंचित ही बना रहेगा, जिसके सहारे तिनके आकाश चूमने लगते हैं और तुच्छ व्यक्तियों की गणना उच्चस्तरीय महा-मानवों में होने लगती है ।

अनुकूलता और प्रतिकूलता दोनों के ही अपने-अपने लाभ हैं । अनुकूलता, सुविधा एवं सफलता प्राप्त होने से मनुष्य को आत्म-गौरव की अनुभूति होती है । सफलता पर गर्व करने के साथ-साथ वह अपने व्यक्तित्व के वर्चस्व की अनुभूति भी करता है । यह आत्माभिमान, आत्मावलम्बन का विश्वास दिलाता है और अपनी क्षमता के बारे में यह मान्यता बनाने का अवसर मिलता है कि आगे भी बड़े काम करने और बड़े लाभ पाने की स्थिति आनी है । यह अवधारणा जिस भी अंतराल में पूरी तरह हृदयंगम हो जाती है, निश्चय ही वह असाधारण सामर्थ्यवान बन जाता है । मनुष्य में आत्मबल सर्वोपरि बल है, उससे बड़ा और कोई बल नहीं । आत्मबल आत्मविश्वास पर ही अवलंबित है, पर आत्मबल इस आत्मबल का ही पूरक बल है ।

संसार में अब तक जो अद्‌भुत और आश्चर्यजनक कार्य हुए हैं, उनकी सफलता का सूत्र तलाशा जाय, तो उन सब में मनोबल की ही प्रधान भूमिका दृष्टिगोचर होती प्रतीत होगी । उसी की प्रेरणा से शरीर अथक परिश्रम करता है-मस्तिष्क में उमंगें छायी रहती हैं और अन्तःकरण में सफलता की आशा सुदृढ़ बनी रहती है । महामानवों के जीवन-इतिहास का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि जिस प्रचंड मनोबल का परिचय उनके उत्तरार्ध जीवन में दिखाई पड़ता है, वस्तुतः वह प्रारम्भिक जीवन छोटे-छोटे प्रयासों, प्रयोगों और सफलताओं के आधार पर ही विनिर्मित होता है । वह कहीं आकाश से नहीं टपकता । यदि ऐसी बात रही होती तो आरम्भिक जीवन में उन्हें कठोर संघर्ष करते नहीं देखा जाता । इससे स्पष्ट है कि छोटे कार्य और छोटे कदम की आरम्भिक कक्षा क्रमशः उत्तीर्ण करता चले, तो मनुष्य शनैः-शनैः अधिक आत्मविश्वासी बनता जाता है और इस आधार पर विकसित हुई प्रतिभा के सहारे स्वयं को क्रियाशील बनाकर इस स्थिति में जा पहुँचता है कि उसे असाधारण महत्व एवं सामर्थ्य का व्यक्ति समझा जा सके।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

३.९ ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ

यह सुविधा पक्ष हुआ । असुविधा एवं प्रतिकूलता की उपयोगिता इससे भी अधिक है, पर वह कष्टकारक रहने से रुचिकारक नहीं लगती और आमतौर से लोग उससे डरते-बचते देखे जाते हैं । इतने पर भी उसका मूल्य किसी प्रकार कम नहीं होता । आवश्यकता को आविष्कारों की जननी कहा गया है । प्राणिशास्त्र के आचार्य कहते हैं कि विभिन्न जीवधारियों के जो रूप-रंग, आकार-प्रकार एवं शरीर-संरचना इन दिनों है, वैसी बनावट विकासकाल के आरम्भिक दिनों में उनकी न रही होगी । तब वे कुछ और डील-डौल के रहे होंगे । वर्तमान रूप तो उनकी भीतरी आकांक्षा और बाहरी आवश्यकता के अनुरूप हुए क्रमिक परिवर्तन का परिणाम है । मन जिस वस्तु या स्थिति को पाने के लिए मचलता है, उसके लिए भीतर से क्षमताएँ उभरती हैं और बाहर से साधन जुटते हैं । चेतना की अद्‌भुत शक्ति का इसे चमत्कार समझा जा सकता है । चेतना का यह चमत्कार यदि न हुआ होता तो सृष्टि संरचना से अब तक की जीवनयात्रा के दौरान न जाने कितने जीव, कठिनाइयों और कठिन परिस्थितियों की मार के कारण विलुप्त हो गये होते और जो मुट्ठी भर शेष रहते, उनका इतिहास बहुत पुराना न होता, किन्तु ऐसा न हुआ । शाकाहारी प्राणियों ने आत्मरक्षा के लिए और माँसाहारियों ने शिकार पर सफल आक्रमण करने के लिए अपने शरीरों में क्रमशः परिवर्तन किये और उनकी वंशावलियाँ आगे बढ़ती चली गईं । इस परिवर्तन का एकमात्र कारण जीवशास्त्रियों के शोध-निष्कर्ष से यही सिद्ध हुआ है कि उनकी अंतःचेतना में प्रस्तुत कठिनाइयों के समाधान की अकुलाहट और अधिक अनुकूलता की अभिलाषा उत्पन्न हुई । उसके दबाव से शरीर और मस्तिष्क ने तदनुरूप ढलना शुरू किया और एक के बाद एक परिवर्तन होते चले गये । अन्य प्राणियों की तरह मानवी प्रगति का इतिहास भी यही है । यह प्रखरता प्रतिकूलताओं के साथ होने वाली टकराहट की प्रतिक्रियाओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ।

भोंथरे आयुधों की धार तेज करने के लिए उन्हें पत्थर पर रगड़ना पड़ता है । रगड़ यों प्रत्यक्षतः अप्रिय और कष्टकर प्रतीत होती है । ऐसा लगता है कि इससे व्यक्ति और वस्तु घटते-मिटते हैं । मोटी दृष्टि से ऐसा लगते हुए भी वस्तुस्थिति इसके विपरीत है । इस घर्षण में जो प्रखरता और समर्थता बढ़ती है, उसकी तुलना में रगड़ की कठिनाई अत्यन्त न्यून है । यदि वह स्वीकार न हो, तो औजारों की धार रखने और व्यक्तियों की प्रखरता बढ़ाकर उन्हें प्रतिभाशाली बनाने की आशा छोड़नी पड़ेगी । व्यायाम से शरीर पर दबाव पड़ता है और कष्ट होता है । आरामतलबी के अभ्यस्त लोगों के लिए यह भारी दण्ड भुगतने की तरह ही कष्टकारक प्रतीत होगा, पर जिन्हें बलवान-पहलवान बनना है, वे दण्ड-बैठक आदि कष्टकारक क्रियाएँ शरीर के असुविधा अनुभव करने पर भी किये ही चले जाते हैं । शिल्पी और कलाकार अपने विषयों में निष्णात बनने के लिए किस प्रकार मन मार कर अभ्यास करते हैं-यह उनके साथ रहकर जाना जा सकता है । जो इस तत्परता में प्रमाद बरतते हैं, उनकी सफलता उसी अनुपात में अनिश्चित बनती जाती है ।

यदि सब सरलतापूर्वक होता चले, तो मनोरथ भले ही किसी प्रकार पूरे हो जाएँ, पर प्रतिभा विकास का रास्ता एक प्रकार से बंद होता चला जायेगा । अमीरों की संतानें आमतौर से आलसी और दुर्व्यसनी होती हैं, जबकि इसके विपरीत कठिनाइयों में पलने वाले गरीबों की संतानें आश्चर्यजनक प्रगति करती देखी जाती हैं । इस प्रकार की घटनाओं में प्रतिकूलताओं से टकराने पर उत्पन्न होने वाली शक्ति की कमी-वेशी ही अपनी-अपनी भूमिका निभाती देखी जा सकती है ।

अमीरी को अपनाकर निकम्मा बन बैठना जितना अशोभनीय है, उससे भी अधिक घातक गरीबी को अंगीकार करना है । जो इस संदर्भ में यह तर्क देते हैं कि गरीबी, दरिद्रता, उत्पीड़न, पिछड़ेपन की स्थिति में पड़े रहने से तपश्चर्या होती है, इसलिए कष्टकर स्थिति में पड़े रहना और संतोष करना उचित है-ऐसी बुद्धि पर तरस आता है । वस्तुतः ऐसा सोच बैठना अर्थ का अनर्थ करना हो जाएगा । कष्ट में शक्ति नहीं, वह तो उलटा मनोबल तोड़ता है । शक्ति तो टकराने से उत्पन्न होती है । कठिनाइयों से जितनी तीव्रता से टकराया जायेगा, उतनी ही सामर्थ्य पैदा होगी । यदि प्रतिकूलताओं के समक्ष सिर झुका लिया गया तो फिर यही समझना चाहिए कि धीमी आत्महत्या जैसा कृत्य अपना लिया गया । टकराने और शक्ति उपार्जित करने के लिए प्रतिकूलता चाहिए, अतः ऐसे अवसर जब भी उपस्थित हों, रोने-खीजने की आवश्यकता नहीं, वरन् यह समझा जाना चाहिए कि मनोबल बढ़ाने और प्रखरता सँजोने का एक अवसर सामने आया । खोजने वाले विष में से भी अमृत खोज लेते हैं । अपनी सोच यह होनी चाहिए कि निःसर्ग-व्यवस्था से जो कठिनाइयाँ सामने आ धमकीं, उसे पछाड़कर अपनी वरिष्ठता सिद्ध करने का लाभ कमाया जाय । इस प्रकार का चिंतन ही अतिवादिता को निरुत्साहित कर तथ्यों को संतुलित रीति से ग्रहण करने की समझ देता है ।

सृष्टि में कठिनाइयाँ और प्रतिकूलताएँ देखकर हमें स्रष्टा की अदूरदर्शिता का असमंजस नहीं करना चाहिए । सोचना यही चाहिए कि हमारे लिए प्रगति के महत्वपूर्ण साधन के रूप में उन्हें सृजा गया है । उन्हें उसी रूप में देखना, समझना चाहिए और प्रबल प्रतिपक्षी की भावना से दबाने-दबोचने का मानस बनाये रखना चाहिये । उन्नति का यही आधार है और विसंगतियों के पीछे का तत्वदर्शन भी ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भगवान से सफाई किस बात की माँगें ?

ईश्वर संबन्धी वर्तमान मान्यताओं एवं उपासना से जुड़ी भ्रान्तियों से घिरे आज के समाज को देखकर मन में कई प्रश्न उठते हैं कि क्या वास्तव में ईश्वर ऐसा ही है ? यदि वह पुजारियों को निहाल करने की मान्यता का प्रतिवाद नहीं करता, विदूषकों-चारणों-बहुरूपियों को-कर्त्तव्य पालन में उपेक्षा बरतने वालों को प्रश्रय देता है तो उस पर न्यायनिष्ठ ईश सन्तानों को पक्षपात का महाअभियोग उसी तरह लगाना चाहिए जैसा कि कभी-कभी राष्ट्रपति-प्रधानमंत्रियों पर लगाने की चर्चा होती रही है ।

इन दिनों यह मान्यता पनपकर प्रौढ़ होती चली गयी है कि जो भजन के नाम पर अपना सारा समय आलस्य-प्रमाद में गुजार देते हैं और जनता से अपने शानदार निर्वाह के लिए चन्दा वसूल कर डकार तक नहीं लेते, अपने को भगवान का मध्यवर्ती एजेण्ट बताते हैं, उन्हें ही ईश्वरभक्त कहा जाना चाहिए । मन में एक प्रश्न उठता है कि जो ईश्वर अन्तर्यामी है, वह भावसंवेदनाओं, आकांक्षाओं, उद्देश्यों, आदर्शों को देख-परख कर ही किसी के भले-बुरे, भक्त-अभक्त होने का निर्णय क्यों नहीं कर लेता ? जो ईश्वर इलहाम कर सकता है, धर्मधारणा के नियम-उपनियम बना सकता है, ऋषियों को प्रेरणा दे सकता है, मनीषियों को अशुभ निवारण हेतु उत्तेजित कर सकता है, वह अपने ऊपर लगने वाले इन आक्षेपों का निराकरण करने के लिए कोई कदम क्यों नहीं उठाता ? यह क्यों नहीं स्पष्ट करता कि उसकी सरकार में सत्ता के दलालों के लिए कोई स्थान नहीं है ?

जब वह सर्वज्ञ है, सभी भाषाओं का विद्वान है तो फिर कोई व्यक्ति अपनी मातृभाषा में ही क्यों नहीं अपने मन की बात कह सकता । क्यों उसे बाइबिल के लिए सहस्राब्दी पुरानी अँग्रेजी तथा आर्षग्रन्थों के लिए जटिल व दुरूह भाषा ही सुहाती है ? अपने शिष्टाचार-सम्मान हेतु वह भावनात्मक आदान-प्रदान के स्थान पर झंझट भरे कर्मकाण्डों का आश्रय क्यों लेता है ?

भजन और कर्म में से किसे प्रमुखता दी जाय ? इस सीधे किन्तु इन दिनों अति जटिल बने हुए प्रचलन में गहरी जड़ जमाए बैठे, एक प्रकार की ग्रन्थि बने हुए मन्तव्य पर कोई दो टूक निर्णय क्यों नहीं किया जाता ? इस मौन साधना से, मूकदर्शक बने रहने से लोगों की यह सहज मान्यता बनती है कि 'मौन को अर्द्धस्वीकृति' क्यों न मान लिया जाय और ईश्वर को क्यों न उसका समर्थक मान लिया जाय ?

बड़ों की बड़ी बातें छोटों की समझ में नहीं आतीं, कहकर उत्कृष्ट जिज्ञासा वालों को भी चुप तो किया जा सकता है, पर इस भ्रम-संदेह की आग को भीतर-ही-भीतर सुलगने से नहीं रोका जा सकता है कि जो समय, श्रम-साधना द्वारा सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन में लग सकता था उसे भजनपरक विडम्बनाओं में इस हद तक क्यों सहन किया जाता है कि प्रायः साठ लाख पूरे समय के पेशेवर और न्यूनाधिक मात्रा में उसी के लिए ढेरों समय लगाने वाले कोटि-कोटि व्यक्ति नाम रटन को ही ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्ति का एकमात्र साधन मान लें । बहाना मिल जाने पर प्रायः पूरा ही समय उसी प्रयोजन में गुजारते रहें ?

हर मनुष्य जब अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जब अपने ही श्रम साधना में निर्वाह के आवश्यक साधन जुटा लेता है तो फिर कुछ लोग इस प्रकार का दावा क्यों करते रहे कि उन्हें भजन समर्थक होने के कारण यह छूट मिल गई है कि वे जनता को इसी एक कारण को सब कुछ बतायें और अपने लिए मुफ्त में खर्चीले साधन जुटायें ? यदि इस प्रवाह की दिशा बदली जा सकी होती तो लाखों-करोड़ों परमार्थ-प्रेमी सृजन प्रयोजनों में लग सकते थे और अपने खाली समय का ऐसा सुनियोजित उपक्रम अपना सकते थे कि उतने भर से दोष-दुर्गुणों में, अभाव-अनाचार में भारी कटौती हो सकी होती और ऐसे आधार खड़े हो सकते थे कि संव्याप्त अवांछनीयता के स्थान पर नवजीवन संचार के लिए बहुत कुछ बन पड़ा होता ।

ईश्वर की पूजा-प्रार्थना के बदले मनोकामनाएँ पूरा कर देने की मान्यता अब इतनी प्रबल हो गई है कि अधिकांश उपासना केन्द्र अब इसी एक बिन्दु पर केन्द्रित होकर रह गये हैं । यह प्रवाह प्रचलन दिन-दिन अधिक तेजी से चलने वाले तूफान की तरह बढ़ रहा है । मनोकामना पूरी करने का दावा करने वाले देवी-देवताओं, जंतर-मंतर और तथाकथित सिद्धपुरुषों की, दाढ़ीवाले भगवाधारियों की ऐसी बाढ़ आई है कि जल-थल उसी में डूब गए प्रतीत होते हैं । वरदान आशीर्वाद पाने का प्रमुख माध्यम उसी प्रतिपादन को माना जाने लगा है । फलतः उसी निमित्त धनशक्ति, समयशक्ति और भाव-चेतना का नियोजन होते रहना स्वाभाविक सा बन गया है । स्थिति की तूफानी बाढ़ को देखते हुए हर विचारशील का शंकासहित मन यह जानना चाहता है कि आखिर वस्तुस्थिति का निर्णय निर्धारण क्यों नहीं हो पा रहा है ?

वस्तुतः उपर्युक्त सारे प्रश्नों का समाधान एवं महाभियोग लगाने की आतुरता का प्रत्युत्तर तब मिलने लगता है जब मनःस्थिति को थोड़ा-सा मोड़ देकर विचार किया जाय । मनोकामना की पूर्ति वाला ईश्वर तो मनुष्य ने ही गढ़ा है न, किसी और ने तो नहीं, फिर वह उसी अपनी कृति पर आरोप कैसे लगा सकता है ? परमेश्वर परब्रह्म, परमात्मा जिन्हें अचिन्त्य, अगोचर, अगम्य कहा गया है, तो वे हैं जिन्होंने इस सृष्टि के कण-कण की, वृक्ष वनस्पतियों की, जन-जन की, काया व मन की, गहन क्षेत्रों की अनुशासन रूपी सीमेण्ट से संरचना की है । यह परब्रह्म वह है जिसने सारी सृष्टि को सृजा है । उसी का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

स्पन्दन जड़चेतन के कण-कण में सतत् होता रहता है । यह स्पष्टीकरण ईश्वर तो करने से रहा कि "मुझ से सम्बन्धी मान्यताओं के भ्रमजंजालों में फँसे हे मनुष्यो! कम से कम विचार करके तो देखो कि सही मायने में मेरी सत्ता कौन सी है, क्या है ?" यह तो हमें ही अपनी दूरदर्शी विवेकशीलता को जगाकर, औचित्य की स्थापना कर, अपने ही हृदय में झाँककर तलाशना होगा कि सच्चा भगवान कौन सा है ?

यदि निराकर परब्रह्म को समझने में हमें, हमारी बुद्धि को कुछ कठिनाई आती हो तो हमें वेदान्त के कुछ सूत्रों **'सोऽहम्' 'अयमात्मा ब्रह्म' 'सच्चिदानन्दोऽहम्' 'तत्वमसि' 'जीवोब्रह्मैव, नापरः'** का चिन्तन-मनन कर लेना चाहिए एवं अपनी जिज्ञासा का समाधान करते हुए भ्रमजंजालों की मृग-मरीचिका से उबर आना चाहिए ।

पाप और ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी से मत डरिये

संकट भयंकर तब लगता है जब तक उसके साथ मुठभेड़ नहीं होती । जब उसके साथ गुँथ जाया जाता है और मानसिक सन्तुलन बिगड़ने नहीं दिया जाता तो प्रतीत होता है कि जितना सोचा गया था-उससे आधी चौथाई भी उसकी वास्तविक भयानकता नहीं थी । संकटों के साथ गुँथने का जैसे-जैसे अभ्यास होता जाता है, वैसे-वैसे वे स्वाभाविक दैनिक कार्यों की तरह सरल प्रतीत होने लगते हैं ।

अपने लिये साँप और शेर बहुत भयंकर होते हैं पर बहुत से लोगों का धन्धा ही उन्हें पकड़ना, मारना है । सपेरे रोज ही काले विषधर नाग पकड़ते हैं, शिकारी आये दिन शेर बाघ का शिकार करते हैं, उन्हें वे जरा भी डरावने नहीं लगते वरन् उन्हें ढूँढ़ते रहते हैं और मिल जाने पर प्रसन्न होते हैं । जबकि अजनबी व्यक्ति को साँप शेर की तस्वीर देखते और चर्चा सुनने भर से पसीना छूटता है ।

अँधेरे में घुसने से डर लगता है। सुनसान में प्रवेश करते हुए पैर काँपते हैं। मन में तरह-तरह की आशंकाएँ उठती हैं कि उस अँधेरे-सुनसान में-न जाने क्या विपत्ति होगी। शेर, साँप, बिच्छू, भूत आदि की कितनी आशंकाएँ सामने आती हैं और दिल धड़कने लगता है। पर जब उसमें निधड़क प्रवेश किया जाता है-दीपक लेकर देखा जाता है तो प्रतीत होता है कि वहाँ डरने जैसा कुछ भी नहीं था। मन की दुर्बलता ही है जो जरा-सा आधार मिलते ही तिल की ताड़ बनाती है। काल्पनिक भय गढ़ कर उन्हें इस तरह विचित्र करती है मानो प्राणघाती सर्वनाशी संकट आ गया। अब बचना कठिन है। जबकि वस्तुतः जरा-सा कारण ही वहाँ रहा होता है और वह भी इतना छोटा कि उसके साथ आसानी से निपटा जा सके।

दुनिया में लाखों-करोड़ों लोग अँधेरे में रहते और आते जाते हैं । वन्य प्रदेशों में यदाकदा ही दीपक का प्रयोग होता है । किसान खेतों पर सोते हैं और रात को रखवाली करते हैं । छोटी झोपड़ियाँ बनाकर सघन जंगलों में लोग परिवारों समेत रहते हैं । धनी लोग सघन बस्ती से हटकर खुले बँगलों में रहते हैं । चोर, डाकू, साँप, बिच्छू, शेर, बाघ, भूत-पलीत कहाँ किसको खाते हैं । यदाकदा तो दुर्घटनाएँ दिन-दहाड़े बाजार में भी हो सकती हैं । संकट के वास्तविक अवसर कम ही आते हैं । अधिकतर तो लोग काल्पनिक संकट गढ़ते हैं और अपने बनाये उस खिलौने को देख-देखकर डरते मरते रहते हैं ।

भय वस्तुतः कायरता की प्रतिकृति है । अपना मुँह जैसा भी होगा वैसा ही दर्पण में दीखेगा । आँखों पर पीले काँच का चश्मा पहन लिया जाय तो हर चीज पीली दिखाई देगी । कायर मनुष्य की आन्तरिक दुर्बलता संसार रूपी दर्पण में विपत्ति बनकर दीखती है । संकट का सामना करने की-उससे उलझने, निपटने की क्षमता अपने में नहीं है, यह मान लेने के बाद ही डर आरम्भ होता है । जिसे यह भरोसा है कि कठिन अवसर आवेंगे तो सूझबूझ के साथ उनका मुकाबिला करेंगे । उन्हें हटाने के लिए जूझेंगे । इसके लिये अवश्य समझ और बल अपने पास है । मित्र और सहायक भी काम आयेंगे और ईश्वर साथ देगा । इस प्रकार की हिम्मत यदि अपने में मौजूद हो तो काल्पनिक डरों से छुटकारा मिल जाता है और तीन चौथाई मन का बोझ हल्का हो जाता है । वास्तविक कारण एक चौथाई होते हैं सो उनके साथ अपने शौर्य को बढ़ाने का व्यायाम समझकर लड़ा जा सकता है । तैरना, कूदना, मोटर चलाना, व्यायाम प्रतियोगिता, वन पर्वत की यात्रा यह सभी जोखिम भरे काम हैं । इनमें थोड़ी-सी चूक कठिनाई खड़ी कर सकती है पर उस आशंका के कारण कौन उन साहसिक कार्यों का आनन्द छोड़ता है । डर से बचने के उपाय सोचते रहने पर भी उनसे बचे ही रहेंगे इस बात का कोई निश्चय नहीं । बीमारी कौन चाहता है ? मौत किसे सुहाती है पर जब आने की घड़ी आ पहुँचती है तो बचने की सारी तरकीबें बेकार चली जाती हैं । निःशंक होकर रहना और जब जो संकट आवेगा उससे निपट लिया जायेगा ऐसी हिम्मत रखना, बस संसार में चैन से रहने का यही तरीका है ।

भय एक प्रकार की अकड़न है । अकड़न की बीमारी सारे शरीर को जकड़ देती है । अंग सीधे ही नहीं होते, चलना उठना कठिन हो जाता है । रक्त ठण्डा पड़ जाता है और दिमाग सोचना बन्द कर देता है । चाहने पर भी शरीर कुछ काम नहीं करता । लकवा, गठिया जैसे रोग ऐसे ही होते हैं जो जीवित मनुष्य को मृतक बना देते हैं । उन्हीं में से एक रोग है-भय । डर का अर्थ है-पुरुषार्थ की शक्ति रहते हुए भी उसका कुण्ठित हो जाना । सिंह को देखकर हिरन चौकड़ी भरना भूल जाते हैं-खड़े हो जाते हैं और बेमौत मारे जाते हैं । यदि उनमें हिम्मत बनी रहती और

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छलाँग भरते तो प्राणिशास्त्रियों के अनुसार हिरन शेर की अपेक्षा अधिक दौड़ सकता है और उसकी पकड़ से बच सकता है । पर डर को क्या किया जाय । हिम्मत हार जाने पर तो मौत के मुँह में जाने के अलावा और कुछ रास्ता बचता नहीं ।

कथा है कि-एक बार यमराज ने महामारी को पृथ्वी पर भेजा और पाँच हजार मनुष्य मार लाने के लिये आदेश किया । बीमारी गई और अपना काम पूरा करके लौट आई । मृतक गिने गये तो वे पन्द्रह हजार थे । यमराज ने डाँटा और पूछा-आदेश से तिगुने मृतक क्यों ? महामारी ने गम्भीरतापूर्वक कहा-उसने केवल पाँच हजार ही मारे हैं । शेष तो डर के मारे खुद ही मर गये हैं ।

मानसिक दुर्बलता के अतिरिक्त डर का एक और कारण है-अनैतिकता। जिसकी अन्तरात्मा कलुषित और पाप कर्म में लिप्त है वह कभी चैन की नींद न सो सकेगा। उसे दूसरे की ओर से तरह-तरह की आशंकाएँ रहेंगी। उन्हें उनसे धोखा होने का-बदला लेने का-फँसा देने का डर बना ही रहेगा। पोल खुल जाने पर बदनामी फैलेगी और लोग सतर्क होकर उसके जाल में फँसने तथा साथ देने से अलग हो जायेंगे। निन्दा और असहयोग की स्थिति में उसका भविष्य ही अन्धकारमय हो जायेगा। इस डर से उसका मन सदा आशंकित रहता है। पाप कर्म के फलस्वरूप समाज का दण्ड, राजदण्ड तथा ईश्वरीय-दण्ड मिलते हैं। तीनों इकट्ठे होकर या अलग-अलग वे कभी न कभी मिलकर ही रहेंगे। इस भय से भीतर ही भीतर बड़ी बेचैनी रहती है। इस आत्मदेव की पीड़ा उसे निरन्तर टोंचती रहती है। बाहर वाले दण्ड मिलने में तो देर-सवेर भी हो सकती है पर आत्म-दण्ड तो कुमार्ग पर कदम धरते ही मिलना आरम्भ हो जाता है और वह निरन्तर दुःख देता रहता है ।

बेईमान और झूठा मनुष्य आँखें मिलाकर दूसरों को नहीं देख सकता और न जी खोलकर बात करने की हिम्मत पड़ती है । बनावटी उथली-उखड़ी बातें करते हुए उसका ओछापन प्रत्यक्ष प्रकट होता रहता है और उसकी मुखाकृति, चेष्टा, भावभंगिमा, गतिविधियाँ वास्तविकता प्रकट करती रहती हैं । अपना आपा-ही चुगली करता है और मूक वाणी से यह घोषित करता रहता है-कि यहाँ धोखा ही धोखा है ।

कर्जदार अकसर अनैतिक लोग ही होते हैं । आमदनी से अधिक खर्च करना-चोरी, उठाईगिरी की तरह सर्वथा अनैतिक है । अपनी हैसियत, औकात, आमदनी से बढ़कर ठाट-बाट बनाना, दूसरों को ठगने जैसी कुचेष्टा ही है । ऐसे फिजूल खर्च लोग कर्जदार हो जाते हैं, चुका पाते नहीं, मित्रों के बीच न उनका विश्वास रह जाता है न सम्मान । जिनका पैसा चाहिए उनसे आँखें चुराते हैं और नये शिकार तलाश करते हैं । ऐसे लोग पग-पग पर डरते रहते हैं कि कर्जदार उनकी इज्जत खराब न कर दें ।

सचमुच, किसी आकस्मिक मुसीबत में फँस जाने वाला व्यक्ति मित्रों की सहानुभूति का पात्र होता है । वस्तुस्थिति समझ कर लोग उसका सम्मान कम नहीं करते । पर जो फिजूलखर्ची की अनैतिकता अपनाकर कर्जदार बना है उसे हर जगह शर्मिन्दगी और लानत का ही सामना करना पड़ेगा । अनैतिकता का हर कदम डराने वाला होता है । चोर और व्यभिचारी, बेईमान और अनाचारी व्यक्ति पग-पग पर अपने आस-पास संकट मँडराता देखते हैं । हर किसी को आशंका भरी दृष्टि से देखते हैं कि कहीं किसी को उसके कपट-जाल का पता न चल गया हो और कोई उसका भंडाफोड़ न कर दे । यह आशंका अपने आप में इतनी डरावनी है कि मिलने वाले दण्ड की अपेक्षा वह पहले ही मानसिक श्रेष्ठता, स्वभाव और सद्गुणों का नाश कर चुकी होती है ।

डर का एक बड़ा कारण अज्ञान भी है । आदिम काल में मनुष्य को सूर्य ग्रहण, बिजली की कड़क, पुच्छल तारे आदि के बारे में कुछ पता न था । वह इनसे डरता था और देवता समझ कर उनके कोप से बचने के लिये तरह-तरह के पूजन, बलिदान करता था । पीछे जब वास्तविकता समझ में आ गई तो वह डर सहज ही चला गया । भूत-पलीतों का डर अब धीरे-धीरे समाप्त होता चला जाता है।

ग्रह दशा- जन्म कुण्डली जैसी फलित-ज्योतिष की मान्यताएँ भी लगभग ऐसी ही हैं । कभी सोचा जाता था कि आसमान में रहने वाले ग्रह-नक्षत्र मनुष्यों पर कोप अनुग्रह करते हैं, इसी से उन्हें सुख दुःख मिलते हैं । अब यह प्रकट हो गया है कि यह आकाश में स्थित पिण्ड निर्जीव हैं बहुत दूर हैं और व्यक्तिगत रूप से उनका किसी को दुःख-सुख पहुँचा सकना असम्भव है । यह तथ्य समझ में आने पर लोगों ने ग्रह-नक्षत्रों से, कल्पित देवी-देवताओं से डरना छोड़ दिया है । ज्ञान की वृद्धि के साथ-साथ अनेक प्रकार के डर स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं ।

जिसका भय करना चाहिए उसका नहीं किया जाता और जिनका डर करने की कतई जरूरत नहीं, उनसें डरते रहते हैं । पाप से डरना चाहिए, कर्मफल से डरना चाहिए और ईश्वर के न्याय से । पर इनसे कौन डरता है । चोरी करते हुए, भोले लोगों को ठगते हुए, छल-प्रपंच रचते हुए, नशेबाजी, व्यभिचार, बेईमानी, असत्य भाषण करते हुए कौन डरता है ? डरते हैं मिट्टी के पुतले मनुष्य से-लोहे के टुकड़ों से बने हथियारों से-काल्पनिक भूत-पलीतों से और दीन-दुर्बल, कुकर्मी-आतंकवादियों से-हमें अपने इस अज्ञान को समझना चाहिए । मनुष्य की गरिमा को समझना चाहिए और उन अकिंचन व्यक्तियों, वस्तुओं और परिस्थितियों से-डरने से इनकार कर देना चाहिए जो वस्तुतः तुच्छ और असमर्थ हैं । डरना ही हो तो ईश्वर की दण्ड व्यवस्था और दुष्प्रवृत्तियों से डरना चाहिए। दुःख तो हमें इन्हीं के कारण मिल सकता है ।

ईश्वर क्षमा कर दे तो भी पाप दण्ड नहीं मिटेगा

लोग नीति-अनीति बरतते हैं, दूसरों का शोषण करते हैं, अन्यायपूर्वक धन कमाते हैं और उसका एक अंश पूजा-पाठ, दान-दक्षिणा, भजन-पूजन, मन्दिर, देवालय में व्यय करके सोचते हैं कि इससे पाप कर्मों का प्रक्षालन हो गया । प्रथम तो यह सोचना ही गलत है । पूजा-पाठ, दान-दक्षिणा और भजन-पूजन का जो पुरस्कार मिल सकता है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

तो वह पाप कर्मों के प्रक्षालन में नहीं, अन्तःचेतना के विकसित होने के रूप में मिलता है । उसके बदले किये गये पाप-कर्मों के दण्ड से क्षमा मिल जाने का विधान ईश्वरीय न्याय-व्यवस्था में कहीं भी नहीं है । ईश्वर की न्याय व्यवस्था बहुत ही सूक्ष्म और तटस्थ है । एक हाथ आग में डालने की बात यह मानकर सोची जाय कि दूसरा हाथ पानी में डाल देंगे और जलने से मुक्ति मिल जायेगी तो ऐसा कहीं नहीं होता । आग में हाथ डालने का परिणाम जलने के रूप में भोगना ही पड़ेगा, जो हाथ पानी में डाला गया, वह भले ही ठण्डक महसूस करता रहे परन्तु आग से तो जलना ही पड़ेगा । पाप और दुष्कर्म किये गये हैं तो उनका दण्ड भुगतना ही पड़ेगा, भले ही दान-दक्षिणा का पुरस्कार मिलता हो । उस पुरस्कार के बदले दण्ड से छुटकारा पाने, कर्मफल से मुक्त हो जाने का कोई उपाय ही नहीं है ।

ईश्वरीय न्याय-व्यवस्था में कहीं भी ढील-ढाल न होने की बात मानते हुए भी एक क्षण को यह मान लिया जाय कि ईश्वर हमारे पापों को क्षमा कर देगा । लेकिन अपने भीतर बैठी हुई उस चेतना का, उस व्यवस्था का क्या कीजियेगा ? जो प्रत्येक भले-बुरे कर्मों का निरीक्षण करती रहती है और अपने लिए उसी आधार पर परिणाम निर्धारित करती है । उसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए प्रसिद्ध विचारक और वैज्ञानिक विलियम जेम्स ने कहा है-"हो सकता है भगवान हमारे पापों को क्षमा कर दे किन्तु अपने भीतर काम कर रही वह व्यवस्था हमें हरगिज नहीं बख्शती, जो सत्कर्मों में विकृतियों के रूप में प्रभावित होती है और दुष्कर्मों की ग्रन्थियाँ बनाती है तथा पीड़ा देती रहती है ।"

डा० होप का कथन है कि "पाप और बीमारी में कोई अन्तर नहीं है । बीमारियाँ पैदा ही इसलिए होती हैं कि मनुष्य आन्तरिक विकृतियों से त्रस्त रहता है और विकृतियाँ मनुष्य द्वारा किये जाने वाले दुष्कृत्यों के परिणाम स्वरूप जन्मती हैं ।" इस तथ्य को तो अब वैज्ञानिक भी स्वीकार करने लगे हैं कि शारीरिक रोगों की जड़ मनुष्य के मनःसंस्थान में छिपी रहती है । शरीर पर मन का नियन्त्रण है, इस तथ्य को प्रतिक्षण अनुभव किया जा सकता है । मस्तिष्क की इच्छा, प्रेरणा और संकेतों के अनुसार प्रत्येक अंग-अवयव काम करता है । प्रत्यक्ष रूप में दिखाई देने वाले क्रिया-कलापों की प्रेरणा पहले मनः-संस्थान में उठती है, यह तो सभी कोई जानता और अनुभव करता है । जो कार्य अपनी इच्छा के बिना सम्पन्न होते दिखाई देते हैं, जिन हलचलों पर अपना कोई नियन्त्रण प्रतीत नहीं होता वे भी वस्तुतः हमारे अचेतन मन की क्षमता और प्रवीणता के अनुसार संचालित होते हैं । श्वास-प्रश्वास, रक्त-संचार, आकुंचन-प्रकुंचन, हृदय-स्पन्दन, पाचन आदि क्रियाएँ जिन पर अपनी इच्छा-आकांक्षा का कोई वश नहीं है, इस अचेतन मन द्वारा ही गतिशील रहती है ।

शरीरविज्ञानियों के अनुसार मन यदि उद्विग्न और आकुल असन्तुलित रहता है तो रोग बीमारियों का होना निश्चित है । डा० डब्लू० सी० डालवीरिस के मेयोक्लीनिक में पन्द्रह हजार उदर रोगियों का उपचार करने के साथ उनके रोग का गहन अध्ययन किया गया । इस शोध अनुसंधान से यह निष्कर्ष सामने आया कि ७० प्रतिशत रोगी परिस्थितियों के साथ तालमेल न बिठा पाने के कारण उत्पन्न हुई मानसिक उद्विग्नता की वजह से अपने पेट को रोगी बना बैठे । औद्योगिक क्षेत्रों के अमेरिकी डाक्टरों के वार्षिक सम्मेलन में एक अनुभवी चिकित्सक डॉ० हेराल्ड सी० ऐर्जन ने अपने विश्लेषण का सार प्रस्तुत करते हुए कहा है कि व्यवसायियों में से ४४ प्रतिशत रक्तचाप और उदर रोगों से पीड़ित हैं । इसका कारण उनकी मानसिक स्थिति का तनावपूर्ण होना है । उन्होंने यह भी कहा कि प्रशासनिक जिम्मेदारियाँ वहन करने वालों में से आधे आदमी ढलती आयु तक पहुँचने से पहले स्नायविक रोगों के शिकार बन जाते हैं । इसका कारण उनका निरन्तर चिन्तित और उद्विग्न रहना ही होता है ।

संसार के मूर्धन्य शरीरशास्त्री और चिकित्साविज्ञानी भी अब इस निष्कर्ष पर पहुँचने लगे हैं कि अस्वस्थता की जड़ें शारीरिक पदार्थों एवं अवयवों में ढूँढ़ते रहने से ही काम नहीं चलेगा । जब मस्तिष्कीय स्थिति को भी निदान एवं उपचार में प्रमुखता दी जानी चाहिए, क्योंकि दो तिहाई से अधिक रोग पेट से या रक्त से नहीं, वरन् मस्तिष्क से उत्पन्न होते हैं । इस सन्दर्भ में 'साइकोसोमेटिक' नामक एक स्वतन्त्र शास्त्र विकसित किया जा रहा है । विख्यात चिकित्सक ओ० एफ० ग्रोवर बारह वर्ष तक उदर व्रण से पीड़ित रहे । बहुत उपचार कराने के बाद भी उन्हें निराशा ही हाथ लगी, तो वे एक मनोविज्ञानवेत्ता के पास गये । उसने बताया कि यदि आप चिन्ता मुक्त हँसता-हँसाता जीवन जीने लगें तो आसन्न व्यथा से छुटकारा मिल सकता है ।

मनोयोगपूर्वक डा० ग्रोवर अपने मस्तिष्क और स्वभाव में परिवर्तन लाने के लिए लग गये तथा जब वे अपने प्रयासों में सफल हो गये तो रोग ने भी उनका पिण्ड छोड़ दिया । इसके उपरान्त उन्होंने अपने रोगियों को भी वैसा ही परामर्श देना आरम्भ कर दिया । फलतः उपचार की सफलता आश्चर्यजनक रूप से बढ़ती गई । उनके मरीज उनकी चिकित्सा से पहले की अपेक्षा अधिक लाभान्वित होने लगे । अपने अनुभवों का निचोड़ बताते हुए डा० ग्रोवर ने लिखा है कि यदि रोगियों की मनःस्थिति को चिन्ता मुक्त एवं हलका-फुलका बनाया जा सके तो औषधोपचार की सफलता कई गुना अधिक बढ़ सकती है । मेरा यह दृढ़ मत है कि स्नायु दौर्बल्य, हृदयरोग, अजीर्ण, अनिद्रा, गठिया तथा रक्तचाप जैसे जटिल रोगों की जड़ वास्तव में उद्विग्न मनः-स्थिति में ही होती है । शरीर पर मन का असाधारण रूप से अधिकार है । इस तथ्य को जितनी अच्छी तरह हृदयंगम किया जा सके उतना ही अच्छा है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अलसर, संसार में व्याप्त उदर रोगों में प्रथम स्थान प्राप्त करता है । एक सर्वेक्षण के अनुसार उदर रोगों से ग्रस्त व्यक्तियों में पन्द्रह प्रतिशत इसी रोग के मरीज हैं । यह व्याधि खर्चीले उपचारों को भी अँगूठा दिखाती हुई गहरी जड़ें जमाये बैठी रहती है और टस से मस नहीं होती । इस रोग के विशेषज्ञ जोसेफ एफ० मोस्टग्युमरी ने अपनी पुस्तक 'नर्वस स्टमक ट्रवल' में लिखा है कि महाव्याधि आहार सम्बन्धी विकृतियों से उतनी नहीं होती जितनी कि चिन्ता, आशंका और भयाक्रान्त मनःस्थिति के कारण होती है ।

नोबेल पुरस्कार विजेता एलेग्जी केरेल का कथन है कि संसार में जितने लोग शारीरिक विकृतियों से मरते हैं, उससे कहीं अधिक की अकाल मृत्यु मनोविकारों के कारण होती है । उनके अनुसार रोगों की रोकथाम के लिए औषधि उपचार एवं शल्य चिकित्सा जैसे प्रयत्नों से ही काम नहीं चलेगा वरन् यह रहस्य भी लोगों के गले उतारना होगा कि किस प्रकार चिन्ताओं से मुक्त रहा जा सकता है ? लम्बे समय तक स्नायु दौर्बल्य से पीड़ित रोगियों की मरणोत्तर पोस्टमार्टम द्वारा जाँच-पड़ताल की गई तो पता चला कि उनके स्नायु संस्थान तो साधारण मनुष्यों के समान ही निर्दोष थे, पर वे जो कष्ट भुगत रहे थे इसका कारण मस्तिष्कीय विकृतियों की प्रतिक्रिया मात्र थी ।

'स्टॉप वरी एंड गेट वेल' नामक ग्रन्थ के लेखक डा० एडवर्ड पोडोलन ने रक्तचाप, गठिया, जुकाम, मधुमेह, उदर विकार जैसे रोगों का मूल कारण मानसिक उद्विग्नता को बताया है और कहा है कि भली-चंगी शारीरिक स्थिति के लोग भी मानसिक सन्तुलन खोने पर इन या ऐसे ही अन्य रोगों के शिकार होते देखे गए हैं । यूरोप और अमेरिका के सभ्यताभिमानी देशों में जिन पाँच प्रमुख कारणों या रोगों से लोग मरते हैं, उनमें 'आत्महत्या' भी एक है । कहने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए कि आत्म-हत्या का प्रमुख कारण मानसिक उद्वेग है । दूसरे विश्वयुद्ध में तीन लाख से कुछ अधिक व्यक्ति लड़ाई के मैदान में मरे थे, पर उन्हीं दिनों दस लाख से अधिक व्यक्ति हृदय रोग से आक्रान्त होकर काल-कलवित हो गये। हृदय रोग में अचानक आई इस बाढ़ का क्या कारण है? यह तलाशा गया तो विदित हुआ कि युद्धजन्य विभीषिका से भयभीत और उद्विग्न होकर ही अधिकांश लोग अपना सन्तुलन खोने लगे और इस महाव्याधि के चंगुल में फँसकर अपनी जान गँवा बैठे ।

क्यों उत्पन्न होती है यह मानसिक उद्विग्नता, लोग अपना मानसिक सन्तुलन क्यों खो बैठते हैं ? इसके उत्तर में परिस्थितियों को कारण बताया जाता है । पर वास्तविकता इससे एकदम भिन्न है । मानसिक कुसंस्कारों के कारण चिन्तन की सही रीति-नीति से अपरिचित रहने के कारण ही तरह-तरह के विक्षोभ घेरते हैं अन्यथा संसार में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है जो अनेक समस्याओं और कठिनाइयों से घिरे रहने के बावजूद भी अपनी मनःस्थिति को बिक्षुब्ध नहीं होने देते और हँसते-हँसाते सामने आई उलझनों को सुलझाने के लिए धैर्य और साहसपूर्वक जुटे रहते हैं। उसके विपरीत ऐसे लोगों की कमी नहीं जो राई बराबर कठिनाइयों को भी पहाड़ के बराबर मान लेते हैं और तिल का ताड़ बनाकर निरन्तर उद्विग्न बने रहते हैं ।

यह सब मानसिक दुर्बलता के कारण ही है और मानसिक दुर्बलता का कारण व्यक्ति द्वारा स्वयं ही भले-बुरे कर्मों से आमंत्रित की गई आत्म-प्रताड़ना है । यह आत्म-प्रताड़ना अच्छी-खासी मनोभूमि को घुन की तरह खोखला कर देती है । इसीलिए कहा गया है कि एक बार ईश्वर भले ही किये गये दुष्कर्मों को क्षमा कर दे परन्तु मनुष्य की आत्म-चेतना उसे कभी क्षमा नहीं करती ।

जो ईश्वर से डरेगा उसे और किसी से नहीं डरना है

मनीषियों की उक्ति है कि जो ईश्वर से डरता है उसे और किसी से डरने की आवश्यकता नहीं पड़ती ।

ईश्वर से डरने का मतलब है-उसके नियम, आदेशों को पालन करने की आवश्यकता अनुभव करना और यह अंगीकार करना कि प्रगति की विधाओं का उल्लंघन करना उसके हित में नहीं है । यह तथ्य जिसने समझ लिया वस्तुतः वही सच्चा आस्तिक है । आस्तिक का अर्थ है-विश्वासी । ईश्वर का आस्तिक भर स्वीकार करना उसके नियम का उल्लंघन करने की धृष्टता करना तो अविश्वासी के लिए ही सम्भव है । ईश्वर के अस्तित्व और उसके विधान को पृथक् करके नहीं देखा जा सकता । भक्तों की मर्यादाएँ उल्लंघन करते रहने की छूट है वे यह तरीके अपनाकर अवांछनीयता के दण्ड से बच सकते हैं-क्षमा प्राप्त कर सकते हैं यह मान्यता वस्तुतः एक विशेष प्रकार की प्रच्छन्न नास्तिकता ही है ।

ईश्वर से डरने वाला उसके विधान के प्रति भी आस्थावान होगा । स्पष्ट है कि भगवान दयालु ही नहीं निर्दय भी है । इस दयालुता और निर्दयता में से जिसे जिसकी आवश्यकता हो वह उसे सहज ही प्राप्त कर सकता है । आग और बिजली से लाभ वे उठाते हैं जो उसके विधान के अनुकूल चलते हैं । इनके साथ उद्दण्डता बरतने वाले स्वयं ही खतरे में पड़ते हैं। ईश्वर से भी आग और बिजली की तरह ही आस्थावान डरते हैं वे अपनी आस्था और भक्तिभावना का परिचय नियम-निर्देशों का पालन करते हुए देते हैं ।

जो ईश्वर से डरता है अर्थात् उसकी विधि-व्यवस्था के अनुरूप अपनी गतिविधियों का निर्धारण करता है उसे फिर और किसी से डरने की आवश्यकता नहीं रह जाती ।

इस संसार में डरावना कुछ भी नहीं है । इस सृष्टि की संरचना सत्य, शिव और सुन्दर के समन्वय के साथ की गई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। जो कठोर और प्रतिकूल दीखता है वह भी इसलिए है कि हमारी सतर्कता, सजगता एवं साहसिकता को विकसित एवं परिपुष्ट होते रहने का समुचित आधार उपलब्ध होता रहे । यदि यहाँ सब कुछ सरल ही होता तो शौर्य, साहस, पुरुषार्थ एवं कौशल की कोई आवश्यकता ही न रह जाती । कहना न होगा कि इन सद्गुणों को परिपुष्ट, परिष्कृत बनाकर ही कोई व्यक्ति उच्चस्तरीय भूमिका में प्रवेश करने का गौरव प्राप्त कर सकता है ।

शत्रुओं के आक्रमण, मित्रों के छल-प्रपंच एवं स्वजनों के असहयोग से अधिकतम इतना ही हो सकता है कि सफलता की सम्भावना विलम्बित हो जाय । उसमें कुछ विशेष हर्ज है नहीं । असफलता कभी भी स्थायी नहीं होती । जिन कारणों से असफल रहना पड़ा उन्हें सुधार लेने पर आगे पीछे उपयुक्त आधार पर बनाई गई योजनायें सफल होकर ही रहती हैं । शत्रुओं के आघात से उन्हीं को हानि उठानी पड़ती है जो डरते हैं, आक्रमणकारी उस डर को ताड़ लेते हैं और यह जान लेते हैं कि इस डरपोक को आसानी से डराया जा सकता है । यदि उन्हें यह पता हो कि सामने वाला डटकर मुकाबिला करेगा तो उनके हौंसले पस्त हो जाते हैं । आमतौर से आक्रमणकारी कायर ही होते हैं। वे भी सामना करने वाले के प्रतिकार का साहस नहीं करते । आदमी अपनी निज की कमजोरियों से ही डरता है, जिसने उसे दूर कर दिया उसे फिर संसार में कहीं भी किसी से भी डरने की आवश्यकता न पड़ेगी ।

कर्मण्येवाधिकारस्ते

मनुष्य का अधिकार कहाँ तक है और अनधिकार कहाँ तक ? इसका विश्लेषण करते हुए गीता में भगवान् कहते हैं-

कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन् ।

अर्थात्-"तेरा अधिकार कर्म तक ही सीमित है । फल तक नहीं । इसलिए फल की आकांक्षा करते हुए कर्म न कर ।"

यों हर आदमी किसी फल की इच्छा से परिणाम की आकांक्षा से कर्म करता है । यह उचित भी है और आवश्यक भी । कोई वज्र मूर्ख या योगी परमहंस ही बिना विचारे काम कर सकता है । जो करेगा सो पीछे पछताता फिरेगा । कहा भी है-"बिना विचारे जो करे सो पीछे पछताय ।" काम करने से पूर्व कई बातों पर विचार करना पड़ता है । अपनी योग्यता उतनी है या नहीं । उसके लिए आवश्यक साधन हैं या नहीं । अवसर है या नहीं । कृषि से लेकर व्यवसाय तक में हाथ डालने से पूर्व इन बातों पर विचार करना पड़ता है । जमीन न हो, बीज न हो, बोने का मौसम न हो तो जो भी कृषि करने का साहस करेगा वह मूर्ख कहलायेगा । यही बात व्यवसाय के सम्बन्ध में है । अनुभव, पूँजी, ग्राहक आदि का विचार करना पड़ता है तभी कोई व्यवसाय में हाथ डालता है । ऐसा कुछ भी विचार न करे और चाहे जब, चाहे जो व्यवसाय करने लगे तो पूँजी गँवाने, उपहास कराने के अतिरिक्त और क्या हाथ आने वाला है । सभी छोटे-बड़े कामों की योजनाएँ बनती हैं और उसके उपरान्त ही उसका सरंजाम जुटाया जाता है । यही उचित और उपयुक्त भी है । अभीष्ट परिणाम की इसके बिना कोई आशा नहीं करता ।

किन्तु प्रश्न वहाँ पेचीदा होता है, जहाँ यह मानकर चला जाता है कि यह प्रतिफल तो निश्चितरूप से हस्तगत हो ही जाएगा । इतना ही नहीं, आतुरता इतनी बढ़ी-चढ़ी होती है कि जितनी बड़ी आशा की गई है उतनी हस्तगत न हो तो मानसिक सन्तुलन गँवा बैठा जाय । इतना शोक किया जाय कि विचार तन्त्र ही गड़बड़ाने लगे और यह भी न सूझ पड़े कि अब क्या करना और क्या नहीं करना चाहिए ?

उदाहरण के लिए कोई छात्र परीक्षा देने जाता है । उसके लिए आवश्यक तैयारी भी करता है पर किसी कारणवश उत्तीर्ण नहीं होता तो इतना शोकाकुल होने लगता है कि आत्म-हत्या की बात सोचता है या अगले वर्ग पढ़ने का विधान ही छोड़ देता है अथवा जिस-तिस पर दोषारोपण करने लगता है । अभिभावकों पर, अध्यापकों पर, प्रश्न-पत्र बनाने या जाँचने वालों पर दोष मढ़ता है । गृह दशा खोटी बताता है । भाग्य को दोष देता है । यह सब विचार ऐसे हैं, जो उस विचार-शक्ति को नष्ट कर देते हैं जो यह बता सकती है कि ऐसी दशा में क्या करना चाहिए ।

सफलता मिलने पर आगे क्या करना चाहिए यह सोचने में किसी को कोई कठिनाई नहीं होती, पर असफलता मिलने की दशा में अगला कदम क्या हो, इसका निर्णय करने के लिए बढ़ी-चढ़ी सूझ-बूझ चाहिए। जो धक्का लगा है उसे सहन करने, सम्हालने और पहले से भी अधिक सावधानी के साथ काम को नये सिरे से आरम्भ करने के लिए सन्तुलित मस्तिष्क की आवश्यकता है अन्यथा शोकाकुल, अर्ध विक्षिप्त मनः-स्थिति में किये गये काम के सम्बन्ध में पहले की भाँति ही असफलता मिलने की सम्भावना है । ऐसी दशा में दूनी चोट लगेगी और सम्भावना यहाँ तक हो सकती है कि कोई विद्यार्थी पढ़ना ही छोड़ बैठे । कोई व्यापारी दुकान ही उठा दे और काम को छोड़ बैठने पर बेकारी की स्थिति में जो नाना प्रकार के कुविचार मस्तिष्क में आते हैं, उस स्थिति में कोई अनर्थ ही कर बैठे ।

सफलता की आशा करना बहुत अच्छी बात है । उसके लिए पूरी सामर्थ्य भर कोशिश करना और भी अधिक आवश्यक है । इतने पर भी ऐसे कितने ही कारण हैं, जिनके कारण असफलता हाथ लगे । प्रश्न पत्र ऐसा आ जाय जो विषय पढ़ा ही नहीं था या अध्यापकों ने लापरवाही से पढ़ाया ही नहीं था । पर्चा जाँचने वाले का या बनाने वाले का अपना काम करते समय मूड खराब रहा हो । उत्तर लिखते समय बात को सही रीति से समझाने में अपने में ही भूल रही हो । उस समय तबियत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खराब हो गई हो या किसी लड़ाई की वजह से मूड गड़बड़ा गया हो । ऐसे में से अनेक कारण अनुत्तीर्ण होने के हो सकते हैं । जो हो गया सो हो गया । महत्त्व की बात यह है कि बिगड़ी को बनाया कैसे जाय । लांगफेले कहते थे कि हर असफलता के बाद सोचा जाना चाहिए कि पहले की अपेक्षा दूनी तत्परता के साथ काम करने की आवश्यकता है ।

असफल होने पर उस राजा की कहानी याद करनी चाहिए जो बारह बार लड़ाई हारा था और छिपकर गुफा में बैठा था । उसने देखा मकड़ी जाला बुन रही है और वह हर बार टूट जाता है । बारह बार असफल रहने के बाद उसे तेरहवीं बार सफलता मिली । राजा ब्रूसो ने उस घटना से प्रेरणा ली कि जब मकड़ी ने तेरहवीं बार सफलता प्राप्त कर ली तो वह क्यों नहीं वैसा करेगा ? तेरहवीं बार उसने फिर तैयारी की और इस बार जीत गया ।

सफल होने पर अगला कदम उठाने के लिए जितनी बुद्धिमानी और हिम्मत की जरूरत है, हार जाने-असफल हो जाने पर नये कदम का फैसला करने के लिए उससे कहीं अधिक समझदारी चाहिए ।

सफलता किसी भी काम में सुनिश्चित नहीं है । जो चाहा गया है, वह हस्तगत हो ही जाएगा इसका कोई भरोसा नहीं । ऐसी दशा में अपना भविष्य ही बिगाड़ बैठना, हिम्मत छोड़ बैठना समझदारी नहीं है । एक बुद्धिमान का कहना है कि भविष्य के लिए अच्छी से अच्छी आशा करनी चाहिए किन्तु बुरी से बुरी सम्भावना के लिए तैयार रहना चाहिए । अच्छा यही है कि पहले से ही बढ़-चढ़कर आशा न की जाय ।

अच्छा तरीका यह है कि जो करना चाहिए उसे पूरी मेहनत, लगन और दिलचस्पी के साथ किया जाय । अपने काम में इतना अधिक रस लिया जाय कि उसे करते समय इतना आनन्द आये कि हम जो कर सकते थे पूरी ईमानदारी और जिम्मेदारी के साथ किया है । प्रसन्न होने के लिए इतना ही पर्याप्त है ।

जो असफलता मिलने पर भी चेहरे पर उदासी नहीं आने देता, मन को मलीन नहीं होने देता, हिम्मत को टूटने नहीं देता, वस्तुतः वही सच्चा समझदार और बहादुर है । दूसरे आदमी सहानुभूति दिखाने आयें तो उनसे कहना चाहिए हमने पूरी मेहनत से काम किया फिर अपना क्या कसूर, जिसके लिए कोई सहानुभूति दिखाये । यदि मेहनत या सावधानी में कमी रखी है तो कहना चाहिए कि अपनी भूल का नतीजा सामने है । इसके लिए सहानुभूति न दिखायें, वरन् हिम्मत बढ़ाइये ताकि अगली बार अच्छे स्तर की सफलता प्राप्त कर सकें । जो लड़के एक साल फेल हो जाते हैं वे अच्छी मेहनत करने पर अगले वर्ष प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होते हैं । क्योंकि उन्हें एक ही कक्षा में दो वर्ष पढ़ने का अवसर मिला, मनोबल उन्होंने खोया नहीं । अच्छा डिवीजन आना सौभाग्य का चिह्न है । इससे हर काम में भविष्य उज्ज्वल बनता है । खराब डिवीजन मिलने की अपेक्षा फेल होना अच्छा । क्योंकि डिवीजन खराब होने से भविष्य में कोई अच्छा अवसर मिलने की आशा नहीं की जाती ।

अपनी प्रसन्नता सदा सुरक्षित रखने के लिये अच्छा यह है कि अपनी मेहनत और कोशिश को ही सफलता माना जाय । उसी पर सन्तोष किया जाय । ऐसी मनःस्थिति रखने पर सफलता मिले तो भी प्रसन्नता और असफलता मिले तो भी प्रसन्नता । गीताकार ने इसीलिए कहा है कि कर्म पर ही अपना अधिकार है, फल पर नहीं । इस मान्यता को अपना लेने पर आदमी कभी उदास नहीं होता और अगला कदम उठाने में कभी खिन्नता अनुभव नहीं करता ।

ईश्वर का आह्वान और आमंत्रण स्वीकार करें

परमात्मा हमें अपनी गोदी में लेने के लिए-छाती से लगाने के लिए दोनों भुजाएँ पसार कर खड़ा है। एक भुजा है पीड़ितों, पतितों और पिछड़े हुओं का क्रन्दन। दूसरी भुजा है-सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन की पुकार । यह निनाद दिशाओं के अन्तराल में गूँजता रहता है। बहरे कान उसे सुन नहीं पाते-जो इन निनादों को सुन सके समझना चाहिए, उसके कानों ने ईश्वर का सन्देश सुन लिया ।

परमात्मा के पास एक ही सर्वोपरि उपहार था-मानव शरीर । इससे बढ़कर और कोई बड़ी सम्पदा उसके भंडार में है नहीं । जिस प्राणी को यह उपहार मिला, समझना चाहिए जो सुविधाएँ उपलब्ध हैं, वे मनुष्य को मिली हैं । यह उसी का काम है कि इस विभूति का बुद्धिमत्तापूर्वक उपयोग करके उस उच्चस्तर तक जा पहुँचे जहाँ स्वयं परमात्मा विराजमान है । चेतना के साथ जुड़े हुए बहुमूल्य साधनों का मूल्यांकन न कर पाने और उनके सदुपयोग की व्यवस्था न बना पाने के कारण ही हमें दुख-दैन्य की कँटीली झाड़ियों में भटकना पड़ता है । जीवन-लक्ष्य को समझना और उसके लिए समुचित प्रयास करना यदि किसी के लिए सम्भव हो सके तो निश्चित रूप से उसे नर-पशु से आगे बढ़कर नर-देव की दिव्य भूमिका में प्रवेश करने का सुअवसर मिल सकता है ।

मनुष्य शरीर का अनुपम उपहार देने के उपरान्त परमात्मा अपने अन्तिम अनुग्रह का एक और अनुदान देने का इच्छुक है। इसी के लिए वह अपने लाड़लों को पास बुलाना चाहता है, गोदी में लेना चाहता है, छाती से लगाना चाहता है और उसे उस अनुदान को देना चाहता है, जिसे प्राप्त करने के बाद और कुछ पाना शेष नहीं रह जाता, इसी आमन्त्रण के लिए उसने अपनी भुजाएँ पसारी हुई हैं। जो उनमें आबद्ध हो सका वही प्रभु की समीपता और उसकी दुलार भरी मनुहार का अधिकारी बन सका।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पतन और पीड़ा से ग्रसित पिछड़े हुए मनुष्य भले ही अपने अकर्म या अज्ञान का फल भुगत रहे हों, पर वे हमारी दृष्टि में इसी उद्देश्य से आते हैं कि सहानुभूति और सेवा, सहयोग द्वारा उन्हें ऊँचा उठाने-सहारा देने का प्रयास करते हुए अपनी बहुमूल्य आत्मिक-चेतना को उभारें । दया, करुणा, उदारता, सेवा जैसी दिव्य-संपदाओं में अपने को सुसज्जित करें । इस प्रकार के प्रयासों में जो समय, श्रम, मनोयोग एवं धन खर्च होता है उसकी तुलना में लाखों गुने मूल्य का आत्मबल और आत्म-सन्तोष मिलता है । व्यक्तित्व में देवत्व का उदय होता है । प्रयत्नों में हुए खर्च और परिणाम में मिले लाभ को यदि ठीक तरह तोला जा सके तो प्रतीत होगा कि जो खोया गया उससे लाखों गुना पा लिया ।

भगवान की पहली भुजा संसार में व्याप्त अधःपतन के प्रति अधिकाधिक सहृदय होने का आमन्त्रण लेकर पसारी हुई है । दूसरी भुजा का आह्वान यह है कि इस विश्व-वसुधा को सुन्दर-समुन्नत बनाने वाली सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन में योगदान दिया गया । कोई व्यक्ति एकाकी सुख-सम्पदा एकत्रित करके सुखी नहीं बन सकता । कुटुम्ब, परिवार को सुखी बनाने का प्रयत्न करते हुए मनुष्य अपनी सुखानुभूति को कई गुना बढ़ाता है । यदि ऐसा न होता तो परिवार-पालन में जो कष्ट उठाना पड़ता है और त्याग करना पड़ता है उसके लिए कोई कदापि तैयार न हुआ होता । इस सुख का जितना अधिक विस्तार करना अभीष्ट हो, उतना ही अधिक विस्तृत क्षेत्र में अपनी आत्मीयता को विस्तृत करना पड़ता है । यह आत्मविस्तार सहज ही अधिक लोगों का अधिक सुख किस प्रकार सम्भव हो यही सोचता है और अपनी क्षमता का बड़ा भाग इसी के लिए नियोजित करता है । कहना न होगा कि सत्प्रवृत्तियों और सद्भावनाओं के अभिवर्धन से ही व्यक्ति और समाज की सर्वतोमुखी प्रगति का पथ-प्रशस्त होता है ।

ईश्वर को पाने के लिए हमें अपनी ओर से कुछ नहीं करना है केवल उसकी पसारी हुई भुजाओं में प्रवेश करना है । उसके आह्वान को सुनना और उसके आमन्त्रण को स्वीकार करना भर ईश्वर मिलन का प्रयोजन पूरा करने के लिए पर्याप्त है ।

ईश्वर से माँगिए

कई लोग समझते हैं कि ईश्वर केवल निस्वार्थ भक्ति करने योग्य तत्त्व है । अत्यन्त उच्च और मोक्ष प्राप्त करने की दृष्टि से यह ठीक भी है, क्योंकि किसी से कुछ न माँगना यहाँ तक कि परमात्मा से भी कुछ न माँगना परम सन्तोष प्राप्त करने का अभ्यास करना है । ऐसे अभ्यास से जीव संसार से विरक्त होता जाता है और अपने अन्दर ही आत्म-सन्तोष प्राप्त करता हुआ परम तत्व में लीन हो जाता है । यह हुई ऊँची कक्षा; परन्तु ऊँची कक्षा का अभ्यास ऊँची दशा का है । जब हम आत्म-ज्ञान की भूमिका में आगे बढ़ चलें, तो अवश्य ही अयाचक बन जाना चाहिए । साधारण या आरम्भिक स्थिति में ऐसा नहीं हो सकता । लोकव्यवहार में माँगना और देना दोनों ही एक सी वस्तुएँ हैं । हमारे दरवाजे पर जब कोई अतिथि या भिक्षुक आता है, तो उसे देते हैं, देते समय किसी प्रकार का भय संकोच नहीं होता और न लज्जा ही आती है, क्योंकि दूसरे लोगों के पास जिन वस्तुओं का अभाव है, उन्हें वह वस्तु देने में कुछ भी बुराई प्रतीत नहीं होती, बल्कि अपना कर्त्तव्य पालन करने के कारण प्रसन्नता होती है; किन्तु किसी से माँगते समय ऐसी स्थिति नहीं रहती । जब हम स्वयं भिक्षुक की तरह किसी से कुछ माँगने जाते हैं, तो बड़ी लज्जा आती है, हाथ पसारते समय बड़ा संकोच होता है और याचना के साथ-साथ अपने अन्दर परास्त होने, दीन होने के विचार उदय होते हैं । तुम जानते हो कि देने और लेने में इस प्रकार का अन्तर होने का कारण क्या है कारण यह है, देते समय किसी हद तक हम अपने को देने में समर्थ समझते हैं ? और विश्वास करते हैं कि हमारे अन्दर देने की योग्यता है । इससे आत्मोदय होता है और प्रसन्नता बढ़ती है , किन्तु यदि कोई याचक माँगने आवे और तुम्हारी देने की सामर्थ्य न हो, तो भी भय, लज्जा और दीनता के भाव तुम्हारे मन में उठेंगे और अपनी अशक्ति पर दुःख प्रकट करोगे । तात्पर्य यह है कि देने और लेने की क्रियाओं में जो भलाई, बुराई है वह सामर्थ्य और असमर्थता के कारण है ।

माँगने में लज्जा इसलिए आती है कि हमारा गुप्त मन जानता है कि जिसके आगे हम हाथ फैलावेंगे, उसमें उतनी सामर्थ्य न होगी । यदि वस्तु उसके पास है तो भी अनुदारता या लोभ वृत्ति के कारण वह अपाहिज बन रहा होगा और शायद हमें न दे या कम दे । दूसरे उसके पास जरूरत भर ही वस्तुएँ हुईं, तो देने में उसे कष्ट होगा । लेने और माँगने में लज्जा, संकोच, दीनता और अधर्म मानने का असली हेतु यही है । जहाँ देने योग्य वस्तु की प्रचुरता होती है और उदारता का पता लगता है, वहाँ से लेने में कुछ भी संकोच नहीं है । लेने से अपनी जरूरतें पूरी होती हैं । इससे सुख मिलता है, देने की अपेक्षा लेना सब को प्रिय होता है, परन्तु लेने में जो लज्जा आती है, वह और किसी कारण नहीं, केवल देने वाले की असमर्थता के कारण ही होती है, गर्मी के दिनों में दूसरों के लगाये हुए बगीचों में आराम करते हैं, दान से चलने वाली प्याऊ पर पानी पीते हैं । धर्मशालाओं में ठहरते हैं, निःशुल्क वाचनालय में अखबार, पुस्तकें पढ़ते हैं । इसमें किसी को लज्जा या संकोच नहीं होता, क्योंकि हम जानते हैं कि इससे देने वाले को कोई कष्ट नहीं होगा और वह इन चीजों को देने में समर्थ है ।

हमें तरह-तरह की जरूरतें रोज रहती हैं । कई झूठी और तृष्णा के कारण होती हैं । पर कई सच्ची और वास्तविक भी होती हैं । इन आवश्यकताओं की पूर्ति के

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए ईश्वर से याचना करनी चाहिए, क्योंकि वह देने में समर्थ है, उसके पास सब कुछ है और तुम्हें थोड़ा-सा दे देने पर उसके भंडार में कुछ भी कमी नहीं आती । असमर्थता और अनुदारता भी ईश्वर में नहीं है । फिर ईश्वर से माँगने में क्या हर्ज है ? बच्चे को जिस चीज की जरूरत होती है, उसे बाहर के व्यक्तियों से न माँग कर केवल माता से ही माँगता है, क्योंकि वह जानता है कि माता दे देगी । ईश्वर हर घड़ी हमें देता है । जरा ध्यान पूर्वक देखें और शान्त चित्त से विचार करें, तो हमारे पास जितनी वस्तुएँ धन सम्पदा आदि है, वह ईश्वर का ही दिया हुआ मालूम पड़ेगा । क्योंकि अपने प्रयत्न से तो हम कोट का एक बटन भी नहीं बना सकते, जलाने के लिए एक वृक्ष भी नहीं उत्पन्न कर सकते, फिर हवा, पानी, भोजन एवं आनन्द की असीम वस्तुओं का तो कहना ही क्या ? एक पैसा देने वाले को दानी समझा जाता है, तब जो बिना माँगे ऐसी-ऐसी वस्तुएँ प्रचुर परिमाण में देता है, जिसका एक-एक कण करोड़ों रुपये की कीमत का हो सकता है, उसे तो बहुत ही बड़ा दानी मानना चाहिए । ऐसे दानी के दरबार में हम क्यों खाली हाथ खड़े रहें, जब सभी लोग अपनी इच्छानुसार माल खजाना उसके भण्डार में से बिना रोक-टोक ले रहे हैं, तो हम ही क्यों अभावों से दुःखी रहें ?

वेदों का आधा भाग ऐसे मन्त्रों से भरा हुआ है, जिससे बल, बुद्धि, विद्या, धन, सन्तान, सुख, सौभाग्य आदि के लिए ईश्वर से याचना की गई है । प्रार्थना या उपासना में सब लोग अपनी इच्छानुसार कुछ न कुछ माँगते हैं । फिर क्या कारण है कि हम अपनी जरूरत की वस्तुओं को उससे न माँगें ? यहाँ एक सन्देह उत्पन्न होता है कि क्या ईश्वर यह वस्तुएँ दे सकता है या देगा ? शास्त्रों के पन्ने-पन्ने पर इसका उत्तर लिखा हुआ है । रावण, कुम्भकर्ण, हिरण्यकश्यप, भस्मासुर आदि असुरों ने भी जब माँगा था, तो उन्हें मिला था । पार्वती ने तो आग्रहपूर्वक शंकर जैसे योगी और काम के शत्रु को पति रूप में प्राप्त कर लिया था । तपस्या से प्राचीनकाल में कितने ही लोगों ने अनेक प्रकार के वरदान प्राप्त किये थे और आज भी प्राप्त करते देखे जाते हैं । ईश्वर को विशेष रूप से प्रसन्न करके विशेष प्रकार की वस्तुएँ मिलती हैं । तपस्या ईश्वर की सबसे प्रिय वस्तु है, जो इस भेंट से उन्हें प्रसन्न कर लेता है, उसे वे खजाने की ताली दे देते हैं कि इसमें से तुम्हें जिस वस्तु की जितनी आवश्यकता हो ले जाओ ।

भौतिक-शास्त्र के अन्वेषक, जड़-विज्ञान-शास्त्र के उपासक, वैज्ञानिक कहते हैं कि ईश्वर कोई वस्तु नहीं है, प्रकृति का सब काम अपने आप होता है । प्रकृति किसी के साथ में कोई रियायत नहीं कर सकती, वह नियमबद्ध है, नियम तोड़कर वह कोई काम नहीं करती । लेकिन वे दूसरे ही क्षण मनोविज्ञान का विवेचन करते हुए बताते हैं कि जिस वस्तु की हम बार-बार याचना करते हैं-विशेष इच्छा करते हैं, उसके लिए मस्तिष्क में एक प्रकार का घर्षण होता है और एक चुम्बकशक्ति ऐसी पैदा होती है, जो इच्छित पदार्थ के सूक्ष्म परमाणुओं की अनन्त आकाश में से अपनी ओर आकर्षित करती है । यदि हृदय में उत्कट इच्छा है और मन में अन्य प्रकार के विचार नहीं आते एवं एकाग्रतापूर्वक उसी सम्बन्ध की विचार लहरें उठती रहती हैं तो यह आकर्षण इतना प्रबल हो जाता है कि वह पदार्थ खिंचते हुए बहुत तीव्र गति से निकट आ जाते हैं और सफलता मिल जाती है ।

हमें वैज्ञानिकों से भी लड़ाई मोल नहीं लेनी है, क्योंकि वे भी हमारी सब बातों पर पूर्णतः सहमत हैं। अन्तर केवल शब्दों का है । 'प्रार्थना' के लिए यदि वे तीव्र इच्छा शब्द का उपयोग करते हैं और 'तपस्या' को वे 'एकाग्रता' कहते हैं, तो यह केवल शब्दों का ही तो अन्तर हुआ। बात एक ही है- अर्थ एक ही है। हम प्रार्थना करें-सच्चे हृदय से चाहें, तपस्या करें-एकाग्रता पूर्वक प्रयत्न करें, तो हमारे समस्त अभाव मिट सकते हैं। हमारी सच्ची कामनाएँ पूरी हो सकती हैं ।

ईश्वर से अपने लिये क्या माँगें ?

आत्मा का सम्बन्ध परमात्मा से जुड़ता है और शरीर की निर्भरता पंचतत्त्वों से बने इस भौतिक संसार पर है। दोनों ही पक्षों के मिलन से व्यक्ति का समग्र स्वरूप बनता है । साथ ही उसे दोनों क्षेत्रों से मार्गदर्शन एवं अनुदान मिलता है । इस समन्वय से ही समग्र सहयोग बन पड़ता है। हमें एकपक्षीय अवलम्बन नहीं अपनाना चाहिए । पक्षी दोनों पंखों से उड़ता है । गाड़ी दो पहियों से चलती है । हमें भी अपनी सुरक्षा और प्रगति के लिए दोनों ही क्षेत्रों से अवलम्बन ग्रहण करना चाहिए ।

भौतिक-जीवन में हमें पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है । वस्तुओं की पग-पग पर आवश्यकता रहती है । शरीर, वस्त्र, आच्छादन जैसी अनिवार्य आवश्यकताओं के साधन प्रचुर परिमाण में इस संसार में भरे पड़े हैं, किन्तु वे अनायास ही दौड़कर शरीर से नहीं लिपट जाते, उन्हें प्राप्त करने के लिए शारीरिक श्रम एवं बुद्धि-कौशल का समुचित उपयोग करना पड़ता है । इसी को पुरुषार्थ कहते हैं । शारीरिक प्रयत्न कहते हैं, जिनके साथ ग्यारहवीं इन्द्रिय मन को भी जुड़ा रहना पड़ता है । अपनी तत्परता एवं श्रमशीलता के बलबूते उन पदार्थों को प्राप्त करते हैं जिनकी शरीर को आवश्यकता रहती है अथवा विशेष आवश्यकता के भी, मन की तृष्णा या महत्वाकांक्षा व्याकुल करती है । यह तो नहीं कहा जा सकता है कि हर किसी की बढ़ी-चढ़ी मनोवांछाओं की पूर्ति हो ही जाती है, पर इतना कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि संसार के बाजार में हर वस्तु मौजूद है और उसे पुरुषार्थ का उचित मूल्य देकर सहज ही खरीदा जा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकता है । मनुष्य अपने बहिरंग भाग्य का निर्माता आप है । प्रमाद से ग्रसित होकर वह दरिद्रता और अभाव ग्रस्तता के दल-दल में भी फँस सकता है और प्रयत्नरत रहकर अपनी प्रगति एवं समृद्धि को बढ़ाते चलने में समर्थ हो सकता है । शारीरिक संरचना प्रभु ने अनायास ही इस प्रकार की दी है कि उसे निर्वाह की किसी उचित सामग्री के लिए तरसना न पड़े ।

अर्थशास्त्र का एक सर्वोपरि नियम है- आदान-प्रदान । किसान अपना गेहूँ तेली को देकर तेल खरीदता है । तेली अपने उत्पादन के बदले कपड़े खरीदता है । इसी प्रकार सामाजिक व्यवहार भी मिलजुल कर चलता है । हमारे घर में किसी की लड़की पत्नी बनकर प्रवेश करती है । यह उपलब्धि है, पर आगे चलकर वैसा ही हमें भी करना पड़ता है । अपनी पुत्री दूसरों का घर बसाने के लिए भेजनी पड़ती है । श्रम और समय का प्रतिफल पैसे के रूप में संग्रहीत किया जाता है और फिर जब कभी किसी को श्रम या पदार्थ की आवश्यकता होती है तो उस पैसे को देकर आवश्यकतानुरूप पदार्थ या श्रम खरीद लेते हैं । इस प्रकार समूचा लोकजीवन आदान-प्रदान के आधार पर सहयोग, सहकारिता के भरोसे गतिशील है । इसकी आधारशिला तब बनती है जब लेने के लिए बदले में देने के लिए अपने पास कुछ हो । यह उपार्जन परिश्रम, कौशल एवं पुरुषार्थ के सहारे ही अर्जित किया जाता है । उसके लिए यदि आनाकानी की जाय-आलस्य-प्रमाद बरता जाय तो खाली हाथ होने की दशा में बदले की कोई वस्तु हस्तगत न हो सकेगी और दरिद्रता, विपन्नता से घिरा रहना पड़ेगा । यही बात सहकार के सम्बन्ध में भी है। शरीर-यात्रा के लिए जिन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है उनमें से अधिकांश दूसरों द्वारा उत्पादित होती हैं। कोई ऐसा नहीं जो मात्र एकाकी प्रयास से अपनी आवश्यकता पूरी कर सके । अन्न, वस्त्र, पुस्तक, माचिस जैसे छोटी-छोटी वस्तुओं के लिए हमें दूसरों पर आश्रित रहना पड़ता है । साथ ही दूसरे हमारे ऊपर भी आश्रित रहते हैं । मिलजुल कर ही सहयोगपूर्वक जीवनचर्या अधिक सुविधा सम्पन्न बनती है । यही प्रचलन है, यही व्यवहार है और यही उत्कर्ष का विधि-विधान ।

शरीर हमारा दृश्यमात्र है । दूसरा चेतन अदृश्य पक्ष इसे प्राण प्रवाह या जीव सत्ता भी कहते हैं। इसकी महिमा और गरिमा असाधारण है । शरीर से भी कहीं अधिक । प्राणान्त हो जाने पर शरीर देखते-देखते सड़-गलकर समाप्त हो जाता है, किन्तु आत्मा, बिना स्थूल शरीर, सूक्ष्म और कारण शरीर के भी अपना अस्तित्व बनाये रह सकती है । वह लोक-लोकान्तरों में भ्रमण करती हुई अपनी सत्ता का परिचय देती रह सकती है । शरीर का जन्म-मरण इसी जीव-सत्ता के अधीन है, पर वह शरीर में निवास करती हुई भी उससे अलग है । सराय में मनुष्य ठहरता है फिर उसे छोड़कर आगे चल देता है । कपड़ा पुराना हो जाने पर, पसंद न आने पर उसे भी बदल लिया जाता है । इसी प्रकार आत्मा सीमित अवधि तक शरीर में टिकती है और वह समय पूरा होने पर छोड़कर चली जाती है । इससे प्रकट है कि आत्मा का उद्गम शरीर नहीं, वरन् परमात्मा है । परमात्मा से वह उच्च विभूतियों को प्राप्त करती है जिसके सहारे मात्र मनुष्य न रहकर महामानव, देवात्मा, सिद्ध पुरुष एवं अंश अवतारी बनता है । पुरुष से पुरुषोत्तम और नर से नारायण स्तर की सफलताएँ प्राप्त करने में सफल होता है। यह इस बात पर निर्भर है कि आत्मा ने परमात्मा के साथ कितनी घनिष्टता जोड़ी और कितनी एकात्मता प्राप्त की ।

आत्मा चेतन है । उसका सहधर्मी महाचेतन है, जो इस निखिल विश्व-ब्रह्माण्ड में समाया हुआ है । उसमें उच्चस्तरीय विभूतियाँ और दिव्य सिद्धियाँ ही भरी पड़ी हैं । विकृतियाँ तो लोकजीवन की देन हैं । उसकी सड़न से पाप, दोष उत्पन्न होते हैं । परमात्मा तो सत्-चित-आनन्द स्वरूप है। उन्हें निराकार, निर्विकार, न्यायकारी भी कहा जा सकता है । उसके साथ घनिष्टता स्थापित करने के लिए हमारी पवित्रता एवं प्रामाणिकता बढ़ी-चढ़ी होनी चाहिए । दूध में शक्कर घुल सकती है, बालू नहीं । इस प्रकार परमात्मा के साथ तादात्म्य भाव वे ही स्थापित कर सकते हैं जिनमें बहिरंग में उत्कृष्टता, चिन्तन में आदर्श और चरित्र में सज्जनोचित व्यवहार का समावेश है ।

ईश्वर का अंश इतनी सीमित मात्रा में सभी के अंदर है जिसके सहारे वह शरीरचर्या चला सके । उसके लिए आवश्यक साधन जुटाकर सुखपूर्वक रह सके, किन्तु यदि ऊँचा उठना, आगे बढ़ना है तो उसका एक ही उपाय है कि भावनात्मक दृष्टि से ईश्वर के प्रति अपना समर्पण किया जाय । द्वैत मिटाकर अद्वैत की स्थिति तक पहुँचा जाय । नाले का नदी में विसर्जित हो जाने की तरह अपनी चेतना को इस स्तर तक विकसित किया जाय कि भेदभाव की गुंजाइश ही न रहे । ईश्वर के आदेश ही अपने मनोरथ बन जाएँ । ईश्वर जैसा परमार्थ-परायण बनने में हमारी प्रवृत्ति हो । शरीर के साथ रहते-रहते, लोकप्रचलनों में ढलते-ढलते जो दुष्प्रवृत्तियाँ अपने में सभा गई हैं उनको निरास्त-परास्त किया जाय । इसके लिए संयम की, तपश्चर्या और उत्कृष्ट चिन्तन में निमग्न रहने की योग साधना का आश्रय लेना पड़ता है ।

ईश्वर से क्या माँगें ? क्या प्रार्थना करें ? क्या चाहें ? क्या आशा रखें ? इस संदर्भ में अपनी मनोभूमि को सुनियोजित कर लेना चाहिए । दृष्टिकोण को परिष्कृत कर लेना चाहिए । सांसारिक वस्तुएँ तो पुरुषार्थ और पात्रता पर निर्भर हैं । अपनी क्षमता-योग्यता बढ़ायें, तन्मयता-तत्परता बरतें और सत्प्रयोजनों के लिए प्रबल पुरुषार्थ करें? इतने भर से औसत नागरिक स्तर की सभी आवश्यकताएँ पूरी होती रहेंगी । तृष्णाओं, लिप्साओं की पूर्ति के लिए महत्त्वाकांक्षाएँ गढ़ना और उनकी पूर्ति के लिए ईश्वर की मनुहार, उपहार से ललचाकर उन मनोरथों की पूर्ति के लिए आग्रह करना अनावश्यक है, जिनकी वस्तुतः मनुष्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को जरूरत है नहीं । ईश्वर से पवित्रता और पात्रता ही माँगी जा सकती है, उससे उत्कृष्टता और आदर्शवादिता का अनुरोध ही किया जा सकता है, ऐसी ही प्रार्थनाएँ स्वीकृत भी होती हैं ।

भगवत् प्रेम का त्रिकोण

प्रेम को एक त्रिकोण के रूप से दिखाया जा सकता है । उसका प्रत्येक कोना मानो उसके एक-एक समूचे रूप को प्रकट करता है । तीन कोने के बिना कोई त्रिकोण नहीं हो सकता, इसी प्रकार तीन गुणों के बिना प्रेम-प्रकृत अथवा सच्चा प्रेम-भी नहीं हो सकता । प्रेम रूप त्रिकोण का एक कोना यह है कि प्रेम में किसी प्रकार का क्रय-विक्रय, लेवा-बेची का भाव नहीं है । जहाँ किसी बदले की आशा रहती है वहाँ सच्चा प्रेम नहीं उत्पन्न हो सकता । वह एक दुकानदारी-सी हो जाती है । जब तक हमारे हृदय में भगवान् पर भय, निश्चित भक्ति और उसकी आज्ञापालन के बदले में उससे किसी प्रकार के वर पाने की इच्छा रहती है तब तक हमारे हृदय में प्रकृत-प्रेम पैदा नहीं हो सकता । जो लोग कुछ पाने की आशा से भगवान् की उपासना करते हैं वे वर-प्राप्ति की आशा न रहने पर उपासना न करेंगे, किन्तु भक्त तो भगवान् को प्रेमास्पद जान प्रेम करता है ।

प्रकृतभक्त के इस देववांछित प्रेमोच्छ्वास में कोई और स्वार्थ नहीं होता । एक कथा है कि किसी समय वन में एक राजा की एक साधु से भेंट हुई । थोड़ी देर बातें करने पर साधु की पवित्रता और ज्ञान का परिचय पाकर राजा को संतोष हुआ और राजा ने साधु को कुछ देना चाहा और प्रार्थना की कि मुझे कृतार्थ करने के लिए कुछ ग्रहण कीजिये । किन्तु साधु ने स्वीकार नहीं किया -"वन के फल मेरे भोजन के लिये बहुत हैं, पर्वत से निकला हुआ पवित्र जल मेरे पीने को काफी है, पहनने को पेड़ों की छालें बहुत हैं और रहने को पर्वत-कन्दरा यथेष्ठ है, फिर मैं क्यों आप से या किसी से कुछ लेने लगा ।" राजा ने फिर विनय की और कहा-"भगवान्, मुझे कृतार्थ करने के लिये ही मेरे हाथ से कुछ ग्रहण कीजिये, मेरे साथ राजधानी में पधारिये।" बहुत अनुरोध के बाद साधु राजा के साथ गया। राजा साधु को कुछ दान देने के पहले उससे बार-बार वर माँगने लगा-"प्रभो, मेरे बाल-बच्चे बढ़ें, धन दौलत बढ़े, मेरा राज्य बढ़े, मेरा शरीर नीरोग रहे।" इत्यादि। राजा की प्रार्थना समाप्त होने के पहले ही साधु चुपचाप उठकर जाने लगा। यह देखकर राजा चकित हो गया तथा उसके पीछे-पीछे चला और पुकारने लगा-"महात्मन्, जा रहे हो ? मेरा दान नहीं ग्रहण किया!" साधु ने उसकी ओर फिरकर कहा-"अरे भिखमंगे मैं भिखमंगे से भिक्षा नहीं लेता । तुम स्वयं एक भिक्षुक हो, तुम मुझे क्या दे सकते हो ? मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ कि तुम्हारे जैसे भिक्षुक से भिक्षा लूँ । जाओ, मेरे पीछे न लगो ।"

इस उदाहरण में भिक्षुक और भगवान् के सच्चे-प्रेमी का अच्छा भेद दिखलाया गया है । और तो और मुक्ति प्राप्ति के लिए भगवान् की उपासना करना भी अधर्म बताया गया है । प्रेम किसी लाभ की आकांक्षा नहीं रखता । प्रेम केवल प्रेम के लिए ही होता है । भक्त, भगवान् से प्रेम इसलिए करता है कि वह प्रेम किये बिना रह ही नहीं सकता । तुम एक सुन्दर प्राकृतिक दृश्य देखकर उससे प्रेम करने लगते हो, तुम इस दृश्य से कुछ माँगते नहीं हो और न दृश्य ही तुमसे कुछ प्रार्थना करता है । दृश्य के दर्शन से हृदय में आनन्द का उदय हो जाता है, यह आनन्द अशान्ति दूर करके मन को शान्त कर देता है और एक प्रकार क्षण भर के लिए प्रकृति से बाहर ले जाकर स्वर्गीय आनन्द से आनन्दित कर देता है । प्रेम का यह भाव ऊपर कहे हुए त्रिकोणात्मक प्रेम का एक कोना है । प्रेम का बदला भी न चाहो, बस केवल देते चले जाओ, भगवान को अपना प्रेम दो, पर उससे भी इसके बदले में कुछ न चाहो ।

प्रेमरूप त्रिकोण का दूसरा कोना यह है कि प्रेम में किसी प्रकार का भय नहीं है । जो भगवान को भय से प्रेम करते हैं वे अधम मनुष्य हैं । उनमें मनुष्यत्व का अभी तक भी विकास नहीं हुआ । वे दण्ड के भय से भगवान् की उपासना करते हैं । उनका ख्याल है कि भगवान् एक बड़े आदमी हैं, उनके एक हाथ में सोटा और दूसरे हाथ में चाबुक है, उनका हुकुम न मानने से डंडा पड़ने लगेगा । दण्ड के भय से की हुई उपासना अत्यन्त नीच श्रेणी की है । उपासना को यदि उपासना के नाम से ही पुकारना हो तो कहना पड़ेगा कि यह प्रेम की अत्यन्त विकसित अवस्था है । जब तक हृदय में किसी प्रकार का भय बना हुआ है तब तक प्रेम का विकास कैसे हो सकता है ? प्रेम स्वभाव से ही सम्पूर्ण भय का नाश कर देता है । मान लीजिए एक स्त्री रास्ते में खड़ी है, किसी कुत्ते के भौंकते ही वह डरी और पास के घर में चली गयी । किन्तु सोचिये, यदि माँ के साथ उसका बच्चा होता और सिंह बच्चे के ऊपर झपट पड़ता तो माँ कहाँ जाती ? अवश्य सिंह के मुँह में आ जाती । प्रेम वास्तव में सम्पूर्ण भय का नाश कर डालता है । कहीं संसार से नाता टूट जाएगा, ऐसे ही किसी स्वार्थ-भाव के भय से उत्पन्न होता है ।

हम अपने को जितना ही अधिक तुच्छ और स्वार्थी बना लेंगे, हमारा भय भी उतना ही अधिक हो जाएगा । यदि कोई सोचे कि मैं कोई चीज नहीं हूँ, तो अवश्य वह भयभीत होगा । मनुष्य अपनी तुच्छता को जितना कम सोचेगा उतना ही उसका भय कम हो जाएगा । जब तक तुममें तनिक-सा भी भय बना हुआ है तब तक तुम में प्रेम नहीं रह सकता । प्रेम और भय दो विपरीत भाव हैं । जो भगवान् से प्रेम करता है वह कभी उससे भयभीत नहीं होता । सच्चा भगवत्-प्रेमी भगवान् का नाम वृथा न लेना-यह आदेश सुनकर हँस पड़ता है । प्रेम-धर्म में भगवतनिन्दा का क्या काम ? किस रूप में हो, भगवान् का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

नाम जितना ही ले सको, उतना ही भला है । तुम उसे चाहते हो इसी से उसका नाम जपते हो ।

प्रेम रूप त्रिकोण का तीसरा कोना यह है कि प्रेमी का कोई दूसरा प्रेम पात्र न रहे, क्योंकि यही प्रेमी का सर्वोच्च आदर्श होगा । जब तक प्रेमपात्र सबसे ऊँचे आदर्श के रूप में नहीं देख पड़ता तब तक प्रकृत प्रेम नहीं उत्पन्न होता । हो सकता है कि अनेक स्थलों में मानवीय प्रेम असत् मार्ग में जा रहा हो, किन्तु प्रेमी के लिये उसकी प्रिय वस्तु ही सर्वोच्च आदर्श होती है, कोई तो अत्यन्त नीच मनुष्य में अपने उच्च आदर्श को देखता है और कोई अत्यन्त उच्च मनुष्य में, किन्तु सर्वत्र ही प्रकृत और प्रगाढ़ रूप से अपने आदर्शों को प्यार किया जाता है । प्रत्येक व्यक्ति के उच्चतम आदर्श को ही ईश्वर कहते हैं । ज्ञानी, अज्ञानी, साधु, असाधु, पुरुष, स्त्री, शिक्षित-अशिक्षित-मनुष्य मात्र का उच्चतम आदर्श ईश्वर है । सम्पूर्ण सौन्दर्य, महत्त्व और शक्ति को उच्चतम आदर्शों के मिले हुए रूप में प्रेममय और प्रेमास्पद भगवान् का पूर्णभाव पाया जाता है। ये आदर्श किसी न किसी रूप में प्रत्येक व्यक्ति के मन में स्वभावतः वर्तमान हैं और ऐसे वर्तमान हैं कि मानो मन के अंग या अंशविशेष बन गये हैं । मानव प्रकृति में जिन क्रियाओं का विकास देख पड़ता है वे सब आदर्शों को व्यावहारिक जीवन में परिणत करने की चेष्टा-स्वरूप हैं।

समाज में जितने काम और आन्दोलन होते हुए देख पड़ते हैं वे सब केवल भिन्न-भिन्न आत्माओं के भिन्न-भिन्न आदर्शों को कार्य में परिणत करने की चेष्टाओं के परिणाम हैं । जो भीतर है वह बाहर आना चाहता है । मानव-हृदय में आदर्शों का यह प्रबल प्रभाव ही सर्वयंत्री महाशक्ति है, उसकी क्रिया मानव-जाति में सदा होती रहती है । सम्भव है सैकड़ों जन्म में सहस्रों वर्ष तक चेष्टा करने पर मनुष्य यह समझ सके कि आभ्यन्तरिक आदर्श बाहर की अवस्थाओं के साथ पूर्णरूप से नहीं मिल सकता । किन्तु जब समझ जायेगा तब बाह्य जगत् को अपने आदर्श के अनुसार गढ़ने की चेष्टा छोड़ देगा और उच्चतम प्रेम के साथ अपने आदर्श की उपासना आदर्श रूप में करना प्रारम्भ कर देगा । वह समझ लेगा के अन्य सब आदर्श इस आदर्श के भीतर ही हैं ।

वैष्णव की करुणा भरी आत्मीयता

नरसी मेहता का प्रसिद्ध भजन है-"**वैष्णव जन तो तेने कहिए,जो पीर पराई जाने रे**"। इस छोटे से पद में भगवद भक्ति और ईश्वरपरायणता का सार कूट-कूट कर भर दिया है ।

जिसे सर्वव्यापी ईश्वर पर विश्वास है और उसे सब में समाया हुआ देखता है । प्रियतम की साकार प्रतिमा सभी प्राणियों में विचरण करती दिखाई पड़ती है । प्रिय पात्र को सुखी बनाने की-उसके दुःख निवारण की स्वाभाविक इच्छा होती है । अपने प्रिय के प्रति कोई निष्ठुर कैसे हो सकता है ? सताने की बात कैसे सोच सकता है ?

सच्चे ईश्वर भक्त की दो मान्यताएँ अविचल, अटूट रहती हैं । एक 'वसुधैव कुटुम्बकम्' दूसरी 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' । यह समस्त विश्व अपना ही परिवार है और अपनी जैसी आत्मा ही हर किसी में ओत-प्रोत है । इन दो भावनाओं को जो जितनी गहराई में उतार सके, समझना चाहिए कि वह उतना ही सच्चा ईश्वर भक्त है । जब हम ईश्वर के प्रिय परिवार में सम्मिलित होना चाहते हैं तो स्वभावतः इसके लिए इतना तो करना ही पड़ेगा कि ईश्वर के परिवार को अपना परिवार मानें । यदि उसकी उपेक्षा करते हैं, रस नहीं लेते । सुख में सुखी और दुःख में दुःखी नहीं होते तो यह कहने का अधिकार कहाँ मिलता है कि हम ईश्वर के भक्त, उसके परिवार के सदस्य हैं। पारिवारिकता के साथ आत्मीयता जुड़ी रहती है । घर के सदस्यों को हम अपना मानते हैं । उनके सुख-दुःख में सदा साथी-सहायक रहते हैं। बढ़ाने और समुन्नत बनाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। अपनी कमाई को मिल-बाँट कर खाते हैं । ऐसा नहीं करते कि जो अपना है सो तो है ही-इसके अतिरिक्त दूसरों के खीसे में जो कुछ है, उसे भी किसी प्रकार बहका-फुसला कर हड़प लिया जाय । ऐसा तो विरानों के साथ ही बन पड़ता है। जब ईश्वर भक्ति अन्तःकरण में आती है तो एक ही ज्योति सामने जगमगाती दीखती है। प्रतीत होता है कि एक ही सूर्य का प्रतिबिम्ब लहरों में से प्रत्येक के ऊपर अलग-अलग दीखता रहता है। वस्तुतः लहरों की झिलमिलाहट का केन्द्र एक ही है। जो है सो अपना प्रिय पात्र है। ऐसी दशा में उसके प्रतिबिम्बों के प्रति भी विरानापन कैसे माना जा सकता है?

सन्तजन स्वयं कष्ट उठाकर दूसरों को सुखी बनाते हैं । सेवा धर्म अपनाते हैं । पुण्य-परमार्थ में निरत रहते हैं । पर यदि इसके लिए उदारता, करुणा न उभरे तो भी इतना तो मानना ही चाहिए कि सब में अपनी ही जैसी आत्मा है । हम दूसरों से जिस प्रकार के व्यवहार की आशा करते हैं निश्चय ही दूसरे भी हमसे वैसी ही आशा रखते होंगे । अपने शरीर में कहीं चोट लग जाने या पीड़ा उठने से बेचैनी होती है, उसका उपचार करने दौड़ते हैं । यदि सब में अपनी आत्मा ही व्यापक अनुभव किया गया है तो फिर अन्यान्यों की आवश्यकताएँ भी अपनी आवश्यकता प्रतीत होंगी और उनकी पूर्ति के लिए वैसा ही प्रयास चल पड़ेगा ।

हो सकता है कि संसार में कितने ही दुष्ट-दुरात्मा भी हों ? यहाँ उनकी आत्मा को और दुष्टता को अलग-अलग करके मानना चाहिए । डाक्टर रोग को मारने वाली दवा देते हैं, पर रोगी के प्रति उनकी सद्भावना ही रहती है । उसे बचाने के लिए वह सामर्थ्य भर प्रयत्न करता है । रोग और रोगी को एक मानकर दोनों का सफाया करने की

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बात नहीं सोचते । इसी प्रकार दुरात्माओं के दुर्गुण छुड़ाने की हित-कामना ही मन में रहनी चाहिए । उस विद्वेष का उदय नहीं होना चाहिए जो आक्रामक रूप धारण करता है । सिर में जुँए पड़ जाने पर कोई सिर नहीं काटता । खाट में खटमल हो जान पर चारपाई को जलाया नहीं जाता । इतना विवेक बनाये रखा जाता है कि जो अवांछनीय है मात्र उसे ही हटाया जाय । जो उचित एवं आवश्यक है उसे बचा लिया जाय । उसे क्षति न पहुँचने दी जाय । अवांछनीयता के साथ असहयोग, विरोध से लेकर संघर्ष तक किया जा सकता है । इतने पर भी यह अन्तर समझ ही लेना चाहिए कि व्यक्ति को क्षति न पहुँचे । उसके दुर्गुणों पर ही चोट पड़े ।

अबोध बालक शिष्टाचार को नहीं समझते और पग-पग पर बेतुकी हरकतें करते रहते हैं । उन्हें देखकर अभिभावक उग्र नहीं हो उठते । क्षमा करते और सिखाते हैं, कि उन्हें क्या करना चाहिए, क्या नहीं ? न मानने पर फिर कभी के लिए अपनी सिखवन सुरक्षित रख लेते हैं । गलती करने वालों को बहिष्कृत-तिरस्कृत न करके उन्हें समझाना-सुधारना है यह भावना मन में रहे तो अनगढ़ लोगों के प्रति वैसा ही भाव उठेगा जैसा अनगढ़ बाल-बुद्धि वालों के प्रति उठना चाहिए । कई व्यक्ति आयु की दृष्टि से बड़े हो जाते हैं, पर विचारों और आदतों की दृष्टि से उन पर पिछड़ापन ही छाया रहता है । तीव्र ज्वर की सन्निपात की स्थिति में अपने घर के रोगी भी अण्ड-बण्ड बकने लगते हैं । उनके शब्दों पर ध्यान नहीं दिया जाता, वरन् स्थिति को समझते हुए प्रत्युत्तर देने, प्रत्याक्रमण करने का प्रयत्न नहीं होता वरन् आत्मीयता की करुणा ही काम करती है । क्षमा स्वयमेव उठ आती है, इसलिए रोगी को शर्मिन्दा करने या क्षमा माँगने के लिए बाधित करने के लिए कुछ सोचा नहीं जाता ।

इस संसार में अनगढ़ ही भरे पड़े हैं । रोगी भी और अनाड़ी भी। उनके व्यवहार को देखकर वैसी ही प्रतिक्रिया अपनाई जाय तो समझदारी और सज्जनता कहाँ रही ? चिकित्सक और रोगी की मनःस्थिति में तो अन्तर रहना ही चाहिए। बालकों और बड़ों की रीति-नीति में तो अन्तर रहेगा ही। दोनों ही एक जैसा व्यवहार करने लगें त समझना चाहिए कि समझदारी हार गई और नासमझी जीत गई । ऐसी स्थिति उत्पन्न होने से बचाव ही करना चाहिए ।

वैष्णवजन की पहिचान उसके तिलक, छाप, वेश, परिवेश, पूजा-पाठ से नहीं हो सकती । उन्हें तो कोई पाखण्डी भी अपना सकता है । यह सस्ती अवधारणा ईश्वर का हृदय नहीं जीत सकती । न कोई उसका प्रिय पात्र कहला सकता है । नाटक के पात्र राजा होने के परिधान भी पहनते हैं और वैसा ही अभिनय भी करते हैं । इतने पर भी वे किसी राज्य के अधिपति नहीं बन पाते । साधारण अभिनय कर्मचारी ही रहते हैं । इसी प्रकार पूजा-पाठ की अपनी आवश्यकता एवं मर्यादा होते हुए भी उसी को ईश्वर भक्ति का आधार नहीं माना जा सकता ।

वैष्णव-ईश्वरभक्त वह है जो पराई पीर जानता है । जानता ही नहीं, अनुभव भी करता है । अनुभव ही नहीं करता, वरन् उसे दूर करने की चेष्टा भी करता है । चेष्टा ही नहीं करता, वरन् उसमें रस भी लेता तथा संतोष भी अनुभव करता है । उत्साहित-उल्लसित भी रहता है । इसी सहृदयता को भक्ति-भावना कहते हैं ।

उपर्युक्त पद का अगला चरण है-"पर दुखे उपकार करे तोऊ मन अभिमान न आवे रे ।" इसका तात्पर्य है करुणा और सेवा का चरितार्थ करने वाले के मन में उपकारी होने जैसा अहंकार नहीं आना चाहिए । न बदले में आशा ही करनी चाहिए । उपकार करके उसका बदला चाहना और प्रशंसा सुनना कृतज्ञता की अभिव्यक्ति जैसी अपेक्षा करना भी बदला माँगने जैसा है । ईश्वरभक्ति निष्काम होती है । दूसरी उदार करुणा भी निर्मल और निष्काम ही होनी चाहिए । भक्ति, व्यवहार और आचरण में परिलक्षित रहनी चाहिए ।

भगवान का असीम दान

आज हमारे पास जो कुछ है भले ही उसे तुम्हारी बुद्धि ने, तुम्हारे श्रम ने कमाया हो, परन्तु उसको देने वाली न तुम्हारी बुद्धि है और न तुम्हारा श्रम । तुमसे भी बड़े-बड़े बुद्धिमान दुनिया में हैं और तुमसे भी अधिक श्रम करने वाले दुनिया में हैं, लेकिन तुम्हारी कमाई उनसे भिन्न है । यदि सब कुछ बुद्धि या श्रम से ही कमाई होती तो सारे बुद्धिमानों एवं श्रम करने वालों की कमाई एक जैसी होती लेकिन ऐसा नहीं देखा जाता । इससे स्पष्ट हो जाता है कि देने वाला तो कोई और ही है, हाँ देने के रास्ते बुद्धि या श्रम हैं । लेकिन यह देने वाला है कौन ?

प्रायः सुना जाता है देखा भी गया है कि जब मनुष्य का बुद्धिबल, श्रमबल, धनबल थक जाता है या चुक जाता है तब वह अपने लिए भगवान से माँगता है और यह माँग उसकी पूरी होती है । लेकिन भगवान से हम चाहे माँगें चाहे न माँगें भगवान तो निरन्तर हमें दे रहे हैं । हाँ यदि हम माँगेंगे तो भी जो कुछ मिलेगा। उसके देने वाले भगवान ही होंगे, भले ही उसकी प्राप्ति में हम अपने ही किसी पुरुषार्थ को शामिल कर लें परन्तु इस पुरुषार्थ रूपी विचित्र पदार्थ के दाता भी तो एकमात्र भगवान ही हैं।

पहली चीज तो यह है कि भगवान स्वयं ही दाता रूप में मानव के अन्तस्तल में, हृदय देश में बैठे हुए मनुष्य की सारी कामनाएँ पूरी करते रहते हैं । जब प्राणी मात्र को उत्पन्न करने वाले स्वयं भगवान हैं तब उसका भरण-पोषण भी तो वे करेंगे और करते हुए प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं । जब प्राणी का जन्म होता है तब उसके योगक्षेम के लिए माता के स्तनों में दूध उत्पन्न कर देते हैं । यदि दूध वे उत्पन्न नहीं करते तो कौन-सी प्रक्रिया है जिससे माँ के स्तनों में दूध भर दिया जाता है । क्या किसी मानव ने या किसी वैज्ञानिक ने ऐसा कोई आविष्कार किया है जिससे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मानव यंत्र बनाकर उसमें अपने आप उत्पन्न होने वाले दूध को भर दिया हो ।

मस्तिष्क में बुद्धि, मन आदि तत्त्वों को देकर प्राणी को क्रियावान बनाना भगवान की प्राणी को महत्त्वपूर्ण देन है । शरीर में बल का संचार कौन कर जाता है, जिससे शरीर क्रियावान होकर काम-धाम करता है । उपयोग में आने वाले हवा-पानी-अग्नि को किसने बनाया है । क्या कोई व्यक्ति इन्हें बना सकता है । मनुष्य में ज्ञान की भावना को उत्पन्न करने वाला सिवाय भगवान के और कौन हो सकता है । तात्पर्य यह है कि देने में भगवान ने कतई कंजूसी का उपयोग नहीं किया । उन्होंने जो कुछ दिया है और सृष्टि में जो कुछ बनाया है, वह सारा का सारा मुक्त-हस्त होकर प्राणी के उपयोग के लिए दे डाला है ।

प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर जीवन और जीवन-शक्तियाँ बीज रूप से भगवान ने दे डाली हैं । बीज का जब तक उपयोग न किया जावे, जब तक उसकी शक्तियों को जगाया न जावे तब तक यह मूर्च्छित अवस्था में ही रहता है । मनुष्य के पास भगवान ने जो कुछ दिया है, वह महान है, अनन्त है, लेकिन मूर्च्छित अवस्था में जो उसे जगाकर उसका उपयोग करना जानते हैं, दुनिया में उनके लिए किसी प्रकार का भी अभाव नहीं रहता लेकिन जो बिना जगाये हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं, वे भगवान की कृपा के अनधिकारी होने के कारण उनकी दी हुई शक्ति को अपने लिए पंगु बना डालते हैं ।

भगवान पूर्ण हैं और शक्ति के खजाने हैं जितनी शक्तियाँ भगवान में हैं, जो काम भगवान कर सकते हैं उन सबको बीज रूप से भगवान ने प्राणी को दे डाला है । इसीलिए उसके अन्दर अगाध ज्ञान का भंडार है, अगाध कर्म शक्ति है । जिस प्रकार माँ के स्तनों में दूध का भंडार भरा रहता है पर बालक जब तक उन्हें अपने मुँह से लगाकर उसे अपनी ओर आकर्षित नहीं करता है तब तक स्तनों में दूध भरा रहने पर भी बच्चे को वह प्राप्त नहीं होता है, उसी प्रकार कर्मशक्ति और ज्ञानशक्ति का निवास होने पर भी जब तक उनको दुहने की कला से प्राणी अपरिचित रहता है, तब तक भगवान की इस दिव्य देन का वह उपयोग नहीं कर पाता ।

जिसे कि हम शिक्षा कहते हैं, वह भगवान की दी हुई शक्तियों को जो कि प्रत्येक प्राणी में बीज रूप से मूर्च्छित अवस्था में मौजूद हैं, उनको जगाकर काम में लेने की विद्या सिखाती है । उपयोग में लाने की कला का हमें जितना अधिक ज्ञान होगा प्राप्त शक्तियों को जगाकर हम उतने ही अधिक शक्तिमान हो सकते हैं ।

यह हम पर निर्भर है कि हम उन शक्तियों का कितना उपयोग कर सकते हैं । भगवान ने शक्तियों का दान देने में किसी पक्षपात का आश्रय नहीं लिया है, उन्होंने जो कुछ दिया है, समस्त प्राणियों को समान रूप से दिया है जैसे कि एक पिता अपने पुत्रों को अपनी सम्पत्ति का बँटवारा समान रूप से करता है । लेकिन सम्पत्ति की रक्षा करना पिता पर नहीं पुत्र पर ही निर्भर करता है । कोई पुत्र उस सम्पत्ति को चौगुनी अठगुनी क्या सौ गुनी अधिक कर लेता है और कोई अपना सर्वस्व तक खो देता है । इसी प्रकार भगवान से पाई हुई शक्तियों का हाल है । जो उन शक्तियों को जगाकर उसका उपयोग करते हैं वे संसार के महान से महान व्यक्ति बन जाते हैं पर जो उन शक्तियों का दुरुपयोग करते हैं वे पतन के गहरे गड्ढे में गिर पड़ते हैं तथा उन्हें जगाते ही नहीं, यों ही हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते तथा भगवान को अथवा अपने भाग्य को कोसते रहते हैं वे अकर्मण्य पुरुष दुनिया में जैसे आते हैं वैसे ही चले जाते हैं । उनकी वे शक्तियाँ उनके साथ ही सुप्तावस्था में समाप्त हो जाती हैं ।

दानदाता ने तो प्राणी को इतना दिया है कि फिर उसे कहीं से कुछ माँगने अथवा पाने की आवश्यकता नहीं है लेकिन मूढ़ता एवं अज्ञानतावश प्राणी आज भी भिखारी बना हुआ है। उसने अपने भीतर के अपार श्रद्धा स्रोत को सुखाकर भगवान की ओर से पीठ फेर ली है । जो शक्ति मानव के भीतर भरी हुई है और बाहर निकल कर उसे मालामाल कर देने के लिए उछल रही है उसकी उपेक्षा करके मानव दर-दर का भिखारी न बनेगा तो और क्या करेगा? भगवान को भूल कर उनकी शक्तियों को जाग्रत कर लेना कदापि सम्भव नहीं है। जिस दाता ने अपनी सम्पत्ति का दान दिया है उसकी कुंजी उसने अपने ही पास रख छोड़ी है और वह तभी प्राप्त हो सकती है जब मनुष्य श्रद्धापूर्वक उसकी ओर मुड़े। क्या कोई बालक माँ की ओर पीठ फेर कर उसके स्तनों से दूध प्राप्त कर सकता है? दूध पाने के लिए सिर्फ रोना ही पर्याप्त नहीं होता, बल्कि माँ की ओर मुँह करके स्तन चूसना भी आवश्यक हो जाता है। यही उसके उपयोग करने का तरीका तथा सोई हुई शक्तियों को जगाने का ढंग है। भगवान की ओर मुड़कर श्रद्धापूर्वक उसके साथ सम्बन्ध स्थापित करके ही मनुष्य भगवान की दी हुई शक्तियों को जाग्रत कर सकता है।

भगवान की शक्तियाँ जब भगवान के साथ सम्बन्ध स्थापित करके जाग्रत कर ली जाती हैं और उनका उपयोग भगवान के लिए ही किया जाता है तो मनुष्य में अनेक दैवी गुणों की उत्पत्ति होना आरम्भ हो जाता है । जैसे-जैसे इन गुणों की वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे मनुष्य का हृदय दैवीभावनाओं से भर जाता है, यहाँ तक कि एक दिन ऐसा आता है जबकि वह भगवान के निवास करने की दिव्य पीठ बन जाता है, उस समय मनुष्य आनन्द की मूर्ति बना हुआ अपने आस-पास के सभी प्राणियों को मुक्त हस्त होकर आनन्द का वितरण करता है । तब दुःख और शोक नष्ट होकर भगवान के ताल स्वर के साथ मनुष्य अपने ताल स्वर को मिलाकर नाचता हुआ अपनी जीवन लीला का संवरण करता है ।

भगवान की सम्पत्ति के पा लेने पर भी जो भगवान के लिए व्यय करने में कोताही करते हैं या उससे मुँह मोड़

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेते हैं, वे देकर विकास करने की कला से अनभिज्ञ रहने के कारण प्राप्त सम्पत्ति को निरन्तर संकुचित करते रहते हैं और एक दिन ऐसा होता है जबकि उनके पास कुछ भी नहीं बचता ।

जितनी सम्पत्ति है, जितनी शक्तियाँ हैं-समस्त भगवान की हैं, भगवान ने ही उसे दिया है लेकिन भगवान को भूलकर अज्ञानी लोग अपने अहंकार से देने की क्रिया भुलाकर अपने आनन्द को नित्य प्रति खोते रहते हैं और अपने लिए शोक और दुःख का बीज बोते रहते हैं । दाता की सम्पत्ति का उसकी इच्छानुसार वितरण न करके मनुष्य अपने इस लोक के सुखों से तो वंचित होता ही है साथ-साथ परलोक को भी बिगाड़ देता है ।

भगवान ने संसार के समस्त प्राणियों को अपार आनन्द-शक्ति का दान दिया है लेकिन मानव अपनी ही मूढ़ता से उसका वितरण न करके उसे खो बैठता है । बिना वितरण किये उसे स्वयं भी आनन्द का अनुभव नहीं हो पाता । इस प्रकार वह नित्यप्रति मृत्यु का आह्वान करता रहता है । लेकिन मानव जीवन का लक्ष्य मृत्यु नहीं है, लक्ष्य है अमरता । परन्तु भगवान को भुलाकर जहाँ वह उनकी देन को ठुकराता है वहाँ वह अपने लक्ष्य से भी हट जाता है ।

विश्व प्रेम ही ईश्वर प्रेम है

''आनन्दादहयेव खाल्विमानि भूतानि जायन्ते।''

यह सारी सृष्टि आनन्द से ही उत्पन्न हो रही है । आनन्द ही इसका उद्देश्य है । उपनिषदों में इस सृष्टि को उस रस स्वरूप से ओत-प्रोत बताया है । प्रत्येक मनुष्य के हृदय में उस आनन्दस्वरूप का निवास है और आनन्द की पूर्ण प्राप्ति ही उसका चरम लक्ष्य है । मनुष्य के हृदय में विकारों के बीच भी वह रस स्वरूप निवास करता है जो सत्य है और चिरस्थायी है । किन्तु बहुत कम लोग उस आनन्द स्वरूप को रसस्वरूप परम सत्य का अपने में दर्शन कर पाते हैं। अधिकांश उसे भुलाकर यत्र-तत्र दुःख, पीड़ा, अशान्ति, कलह की नारकीय यातनाएँ सहते रहते हैं ।

उस आनन्द स्वरूप, रस स्वरूप की प्राप्ति के लिए प्रेम ही एकमात्र मार्ग है । प्रेम के पथ का अवलम्बन लेकर ही उस प्रेमस्वरूप रस का दर्शन किया जा सकता है । प्रेम की साधना ही हमारे हृदयों में स्थित ही उस प्रेम स्वरूप के दर्शन का राजमार्ग है । ज्यों-ज्यों प्रेम विकसित होगा त्यों-त्यों उसका स्वरूप अधिक स्पष्ट होता जाएगा और अन्त में एकाकार होकर वह प्रेम अबाधित हो सर्वत्र बिखर जाएगा जहाँ आनन्दमय-प्रेम-स्वरूप के सिवा और कुछ होगा ही नहीं । जिधर दृष्टि पड़ेगी वहाँ वह दिखाई देगा और हमारे अन्तःकरणों में भी वही अपने निर्मल एवं उज्ज्वल प्रकाश से प्रकाशित हो उठेगा ।

प्रेम द्वारा उस प्रेम स्वरूप की प्राप्ति में ही जीवन की सार्थकता है। इच्छा की अन्तिम चरितार्थता प्रेम में ही है । साधारण दृष्टि से देखने पर मालूम होता है कि प्रत्येक प्राणी प्रेमी है। वह किसी न किसी से प्रेम करता ही है। माँ- बाप अपने बच्चों से, पुरुष स्त्री से , मित्र मित्र से, साथी साथी से । कोई धन, कीर्ति, यश, भव्य-भवनों से प्रेम करता है तो कोई प्रकृति से, तो कोई ईश्वर से । तात्पर्य यह है कि सृष्टि का कार्य संचालन प्रेम के माध्यम से ही हो रहा है । इस विश्व भुवन में प्रेम उपासना प्राणीमात्र का स्वाभाविक धर्म है। इसके बिना जीवन का अस्तित्त्व कायम नहीं रहता ।

प्रेम-साधना के पथ पर बढ़ता हुआ मनुष्य जब उन्नति की ओर अग्रसर होता है तो वह अन्त में उस प्रेम स्वरूप के दर्शन करता है जहाँ सर्वत्र प्रेम से शून्य कुछ है ही नहीं । इसे ही विश्वप्रेम भी कहते हैं । इस विश्वप्रेम की प्राप्ति कैसे हो ? इसका मर्म बहुत कम लोग जानते हैं और उनमें से भी बहुत कम इसको प्राप्त कर पाते हैं ।

त्याग और प्रेम का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। प्रेम तो बिना दिए जी नहीं सकता । '' आप लीजिए मुझे नहीं चाहिए ।'' इस नीति से प्रेम की प्राप्ति की जा सकती है । '' मैं ही लूँगा आपको नहीं दूँगा'' की नीति से प्रेमस्वरूप की प्राप्ति तो दूर परस्पर का प्रेम भी समाप्त हो जाता है । उत्सर्ग पर ही-त्याग पर ही-प्रेम जीवित है । परमपिता परमात्मा का हमसे कितना प्रेम है, उसने हमारे लिए अपने अमूल्य भण्डारों को खोल रखा है । हम भी जो कुछ हमारे पास है उसे दे डालें । तन, मन, धन, योग्यता जो कुछ हो दूसरों के हित-साधन के लिए समर्पित करें ।

इसे देने में, उत्सर्ग के मार्ग में, व्यावसायिक बुद्धि को बीच में न आने दिया जाय । जो कुछ दें उसके बदले में कुछ प्राप्ति की आशा न रखें । जो अपने पास है उसे देते रहें, निस्वार्थ भाव से उत्सर्ग करते रहें । आप देखेंगे विश्व-प्रेम का स्रोत आप में उमड़ पड़ेगा । आप आनन्दित हो उठेंगे । स्वयं ही नहीं सारे वातावरण को प्रेममय बना देंगे । लेने ही लेने की प्रवृत्ति में प्रेम का विकास ही असम्भव है । लेने की प्रवृत्ति के कारण कुछ ही समय में कैकई ने राजतिलक उत्सव को शोक में परिणत कर दिया था । किन्तु उसके विपरीत राम और भरत के त्याग ने प्रेम की नई लहर बहा दी ।

निस्वार्थ त्याग के पथ पर चलकर भेड़ चराने वाला बालक ईसामसीह बन गया । त्याग के पथ का अवलम्बन लेकर ही महात्मा गाँधी, सेन्टपाल आदि ने जन-जन में उस प्रेम स्वरूप के दर्शन किए । निस्वार्थ त्याग ही प्रेम स्वरूप की उपलब्धि करा सकता है । अतः अपने पास जो कुछ है उसे उन्मुक्त भाव से लुटा दीजिए दूसरों के लिए । अपना सर्वस्व अर्पण कर दीजिए । आप का त्याग और निस्वार्थ भाव जितना उच्च होगा उतना ही आप में ईश्वरीय-प्रेम, विश्व-प्रेम का पुण्य प्रकाश प्रस्फुटित होगा जिससे दिव्य प्रकाश से अपना जीवन धन्य बन जाएगा ।

अहंकारी, अभिमानी, स्वार्थी एवं महत्त्वाकांक्षी के हृदय में विश्व-प्रेम की अनुभूति नहीं हो सकती । विश्व-प्रेम के लिए अपने अहंकार को मारना होगा । ''अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हृदय को खाली करो-मैं उसे प्रेम से भर दूँगा ।'' इस ईश्वरीय महावाक्य में स्पष्ट संकेत है कि अहंकार को निकाल देने पर हृदय में ईश्वरीय-प्रेम की प्रतिष्ठापना हो सकती है ।

अहंकारी मनुष्य की शक्ति से विश्वप्रेम दूर होता है । अहंकार किसका-धन, दौलत, वैभव ऐश्वर्य का ? नहीं यह सब यहीं छोड़ना पड़ेगा । नाम, पद, प्रतिष्ठा का अहंकार है तो यह रंगीन चोला यहीं उतारना पड़ेगा। बड़े-बड़े शक्तिवान, सामर्थ्यवान इस धूल में मिल गये हैं । फिर किसका अभिमान ? अपने आपको इन्कार के नागपाश से विमुक्त करके अपने हृदय में विश्व-प्रेम की प्रतिष्ठापना कर अपना तथा अन्य लोगों का जीवन धन्य बनाइये । अपनी नई सृष्टि बसाने की कोशिश में जीवन न खोया जाय, क्योंकि यह अस्वाभाविक है, असंगत है, ईश्वरीय विधान के विपरीत है, परिणाम दु:खदायी और विनाश ही है ।

संसार के प्रत्येक तत्त्व में भलाई-बुराई सन्निहित हैं । न कोई पूर्णत: बुरा है और न कोई भला । मनुष्य के हृदय में भी विकारों के बीच ही प्रेम की जड़ जमी हुई है । शुभ तत्त्व बीज रूप में सभी में स्थित है । ऐसी दशा में बुराइयाँ ही देखना अथवा दूषित दृष्टिकोण को अपनाकर घृणा, निन्दा को गले लगाना प्रेम-साधना के पथ में भारी विघ्न है । अपना दृष्टिकोण बदल जाने पर जो दूषित और बुरे तत्त्व हैं उनमें भी अच्छाई, उस ईश्वरीय-तत्त्व की झाँकी दृष्टिगत होती है । वहाँ भी उस प्रेम-स्वरूप के दर्शन होते हैं, क्योंकि विश्व-प्रेम की प्राप्ति में कहीं दोष, बुराइयाँ, कमजोरियाँ रहती ही नहीं हैं । घृणा, परनिन्दा से प्रेम मर जाता है । अत: यह दृष्टिकोण त्याज्य है । इसके विपरीत अच्छाई का दर्शन करना आवश्यक है ।

प्रेम-उपासना के लिए हृदय शुद्धि भी अत्यावश्यक है । अपने विकारों को समझकर यथावत् उन्हें दूर करने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए । इसके अतिरिक्त दूसरों के लिए अपना हृदय सदैव खुला रखना चाहिए । दुराव, छिपाव प्रेम-साधना में बाधक है । हृदय द्वारा ही दूसरों के हृदय पर आधिपत्य किया जा सकता है । बुद्धि की दौड़ तर्क-वितर्क, चालाकी, प्रतिभा के प्रदर्शन से मित्र को भी पराया बना देती है । शुद्ध हृदय और निष्कपट व्यवहार से शत्रु को भी मित्र बनाया जा सकता है । अत: भूलकर भी चालाकी, दुराव, छिपाव से काम न लेकर सबसे निष्कपट व्यवहार एवं सहृदयता के सम्बन्ध कायम करने चाहिए ।

प्रेम की साधना आत्मभावों को जोड़ना और उनके विस्तार में ही है । साधारणतया मनुष्य जिन वस्तुओं से प्रेम करता है जिन्हें वह अपनी समझता है । जो उसे अच्छी लगती हैं जिनसे वह प्यार करता है । अच्छी लगने वाली वस्तुओं के मूल में वह आत्मभाव ही है जो उनसे जुड़ा हुआ है । कोई अपने मकान सम्पत्ति से, कोई अपने बाल-बच्चों से, कोई अन्य चीजों से प्रेम करते हैं और दूसरों के बाल-बच्चों, धन, चीजों मकान आदि से प्रेम नहीं करते क्योंकि उनमें उसका आत्मभाव स्थित नहीं है, वह उन्हें अपनी नहीं समझता । किसी भी वस्तु के आकर्षण में आत्मभाव जोड़ देने पर ही वह अच्छी लगती है । इसलिए विश्व-प्रेम के लिए, सर्वत्र उस प्रेम स्वरूप के दर्शन के लिए अपने आत्मभाव को चारों ओर जोड़ देना आवश्यक है ।

हमको चारों ओर आत्मभाव आरोपित करके अपने-पराये की भेद दृष्टि हटा देनी चाहिए । सभी बच्चों, स्त्री-पुरुषों, पशु-पक्षियों से आत्मभाव स्थापित किए जाएँ । इससे सर्वत्र अपना ही अपना नजर आयेगा और उनसे प्रेम-सम्बन्ध कायम होंगे । सभी को अपना समझने का अभ्यास डालना चाहिए। यदि कोई किसी अर्थ में बुरा भी हैं तो घृणा, निन्दा न की जाय क्योंकि जैसे कोई व्यक्ति अपनी सन्तान, भाई-बन्धु की बुराई को क्षमा करता हुआ उसे प्रकाश में नहीं लाता, उसी प्रकार प्रशंसाजनक बातों को ही प्रधानता देता है। यही भाव अन्य सभी से बनाना आवश्यक है ।

प्रेम टूटे हृदयों को जोड़ता है, बिछुड़ों को मिलाता है, विद्वेष को शान्त करता है । यदि उसमें वास्तविकता, सच्चाई हो, मायाचार कृत्रिमता एवं बुद्धि व्यापार न हो । इस तरह का सच्चाप्रेम सीधा मनुष्य के हृदय पर अधिकार करता है और उसे जीतता है । इसके विपरीत बनावटी, कृत्रिम, दिखावटी प्रेम उल्टा सम्बन्धों में विष-बीज को बो देता है । अत: इससे सावधान रहना चाहिए ।

विश्व-प्रेम की साधना में मूल आधार है अपने आत्मभाव का विस्तार । इसका नियमित अभ्यास डालना आवश्यक है । इसका प्रारम्भ अपने घर-पड़ोस से करना चाहिए । सर्वप्रथम अपने घर के लोगों से ही आत्मीयता के सम्बन्ध कायम करने चाहिए । उससे बढ़कर अपने पड़ोस, मुहल्ले, प्रान्त, देश समाज तक अपने आत्मभाव का विस्तार करना चाहिए और एक दिन यही भाव विश्व मानव के साथ स्थापित हो जाता है । पवित्र प्रेम का अभ्यास पहले अपने घर से ही प्रारम्भ करना चाहिए । प्रेम की प्रारम्भिक पाठशाला घर ही है और इससे बढ़कर फिर अपना क्षेत्र विस्तृत करते रहना चाहिए ।

सेवा भी प्रेमोपासना का एक आवश्यक अंग है । दूसरों को अपने से जितनी बने उतनी भरपूर सेवा करनी चाहिए । वृद्ध, रोगी, बाल-बच्चों की खूब सेवा करनी चाहिए । इस सम्बन्ध में अपने जीवन से दूसरों को कुछ न कुछ देते रहने की नीति अपनानी चाहिए । जीवन का उद्देश्य यही होना चाहिए ।

प्रेम ही जीवन है । प्रेम-साधना ही जीवन का उद्देश्य है । निखिल विश्व में उस अनन्त, रसस्वरूप, प्रेम-स्वरूप की दिव्य अनुभूति प्राप्त करना हृदय में विश्व-प्रेम को प्रतिष्ठापित करना ही आत्मा का उद्देश्य है ।

प्रेमोपासाना के पथ पर आशापूर्ण उत्साह से बढ़ते हुए हमें उस दिन की प्रतीक्षा में रहना चाहिए जिस दिन मृत्यु और कष्टों में भी उस प्रेमस्वरूप की दिव्यधारा दिखाई देगी। तब सर्वत्र प्रेम ही प्रेम होगा । सब कुछ अपना ही अपना लगेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रेम में परमेश्वर

भगवान सत्यनारायण के हाथ में प्रेमरूप कमलपुष्प और दूसरे हाथ में न्याय गदा अवस्थित है । पुष्प की उपमा प्रेम से बहुत सोच-समझकर दी गई है । निर्दोष, पवित्र, सुन्दर, कोमल, सुगन्ध, चित्ताकर्षक गुणों वाला पुष्प दिखाई पड़ते ही हृदय में एक गुदगुदी पैदा करता है, बरबस चित्त चाहता है कि उसे जी भर कर देखे, पास रखे और स्पर्श करें । प्रकृति की आध्यात्मिक-चेतना का पुष्प ही प्रतिनिधित्व करते हैं वे इस बात की सूचना देते हैं कि हमारे पीछे महत्त्वपूर्ण फल इसी डंठल पर आ रहे हैं और उन फलों के अन्तर्गत हमारे जैसे अनेकानेक पुष्प हर फसल में खिलाने की क्षमता होगी । संसार में कोई ऐसा नहीं है जिसे पुष्प प्रिय न हों, क्योंकि उसके अन्दर मिठास का बड़ा भारी भण्डार छिपा हुआ पड़ा है । देखने में मिठास, छूने में मिठास, सूँघने में मिठास, चारों ओर उनमें मिठास ही मिठास है । मधुमक्खियाँ तो इस सूक्ष्म मिठास को स्थूल रूप में ले आती हैं; फूलों को चूस-चूसकर शहद से अपने छत्ते भर लेती हैं ।

प्रेम, चैतन्य-आत्मा के सर्वोत्तम गुणों का प्रतिनिधित्व करता है । जड़ वस्तुओं का यह नियम है कि वे खिंचकर आपस में एक दूसरे से मिलने का प्रयत्न करती हैं, धूलि में मिले हुए धातुओं के कण आपसी आकर्षणशक्ति के बल से खिंच-खिंच कर एक स्थान पर इकट्ठे होने शुरू होते हैं और एक दिन बड़ी खानें जमा हो जाती हैं । यह आकर्षण-शक्ति चैतन्यतत्त्वों में और भी तीव्र होती है । जड-तत्त्वों को देखिए उनका जीवन एक दूसरे को कुछ दान करने और प्रेम से निकटस्थ होने के लिए हर घड़ी क्रियाशील हो रहा है । नाले-नदियों के साथ अपने को आत्मसात् कर देने के लिए दौड़ रहे हैं और नदियाँ सागर की ओर भागी जा रही हैं । इनमें से कोई भी अपने संकुचित स्वार्थ में तल्लीन होकर **'अधिकस्य अधिकम् फलम्'** का लाभ उठाने के लिए उद्योगशील नहीं हैं । जब पानी के छोटे-बड़े संभी स्रोत समुद्र के लिए सर्वतो भावेन् दौड़ते हैं तो समुद्र भी उसी नीति का अनुसरण करता है । बादलों को वह अपनी सम्पत्ति देता है और वे प्रेमी बादल उस भार को अपने कंधे पर लादकर सृष्टि के ऊपर बरसा देते हैं, इस प्रकार उन नदी-नालों का तारतम्य यथावत् जारी रहता है । यह अखण्ड प्रवाह जिस दिन खंडित हो जाएगा, उसी दिन संसार में त्राहि-त्राहि मच जाएगी । अपनी योग्यताओं को जड़ जगत में कोई भी अपने लिए नहीं रोक रखता, वरन् पवित्र हृदय से दूसरों के देने के लिए निरन्तर उद्योगीशील रहता है । आत्मा सबसे चैतन्य तत्त्व है,यह आकर्षण उसमें सबसे अधिक है । दूसरों के पक्ष में अपने क्षणिक स्वार्थ को त्याग कर उसके साथ आत्मसात् होने का उसमें ईश्वरदत्त स्वभाव शाश्वत काल से चला आता है । एक मनुष्य दूसरे को अपनी योग्यताएँ सदैव देता है । घर-घर में देखिए माता, पिता अपनी सन्तान के लिए कितना आत्मत्याग करते हैं । पति, पत्नी आपस में कितने उदार दानी होते हैं । यह अखण्ड-प्रवाह सृष्टि को सुव्यवस्थित रखे हुए हैं । जिस दिन आत्मदान की शृंखला टूट जाएगी उसी दिन प्रलय के दृश्य उपस्थित हो जाएँगे ।

अखण्ड आत्मीयता प्रेम की दूसरी सीढ़ी है । संसार में विभिन्न आकृति के प्राणी दृष्टिगोचर होते हैं, फिर भी उनकी आत्मीयता अखण्ड है । पराया इस दुनिया में कुछ नहीं, सब अपना है, या अपना कुछ नहीं सब पराया है, चाहे जैसे कहिएं भाव एक ही है । परिवार का सब से बड़ा और उत्तरदायी वृद्ध पुरुष सारे परिवार को समझता है । इसलिए उसे अपना ध्यान बहुत ही कम रहता है और कुटुम्ब वालों की समस्याएँ सुलझाने में सारी शक्ति खर्च करता है । वह बीमार है उसे दवा चाहिए । उसे स्कूल जाना है फीस चाहिए। उसका विवाह है कपड़े चाहिए आदि सब किसी का ध्यान रखता है और यथावत् सारी व्यवस्था करता है । इस प्रकार सारी सृष्टि के साथ आत्मीयता जोड़ लेने से दूसरों का सुख-दुःख अपना सुख-दुःख बन जाता है । वह जानता है कि सारी जाति एक ही सूत्र में बँधी हुई है, जब तक संसार में पाप बढ़े हुए हैं तब तक मेरा भी छुटकारा नहीं हो सकता । हम में से हर एक इस उत्तरदायित्व से बँधा हुआ है कि पड़ोसियों की शान्ति और सुव्यवस्था में अधिक से अधिक सहयोग दे । जो अपने कर्त्तव्य को भूलकर दूसरों को पाप-पंक में फँसने देता है, वह स्वयं ही उसके लिये उत्तरदायी बनता है और उसका फल भोगता है । किसी के पड़ोस में आग लगे और वह खड़ा-खड़ा तमाशा देखता रहे तो कुछ देर बाद वह अग्नि उसके घर की तरफ बढ़ेगी ओर पड़ोसी के समान उसे भी वैसे ही जला देगी । दैवी दुर्घटनाएँ ऐसे ही सार्वभौम पापों का परिणाम होती हैं । जब संसार में पाप अधिक बढ़ते हैं तो उनकी दुर्गन्धि से अखिल आकाश भर जाता है फिर उसकी प्रतिक्रिया से जब दुर्भिक्ष, भूकम्प महामारी, युद्ध आदि दैवी दुर्घटनाएँ होती हैं तो उसका फल सभी को भोगना पड़ता है । बहुत से निर्दोष व्यक्ति भी इस चक्र में पिस जाते हैं । वास्तव में वे निर्दोष नहीं हैं, क्योंकि एक के पापों का फल दूसरों को भी भोगना पड़ता है । पिता का कर्ज जब पुत्र से वसूल कर लिया जाता है तो भाई के अपराध का दंड भाई को भी दिया जा सकता है। प्रभु ने हमें अपना राजकुमार बनाकर इस सृष्टि में सुव्यवस्था रखने के लिए भेजा है । यदि हम अपना कर्त्तव्य भुला दें और पाप-तापों को बढ़ाने दें तो पिता के दरबार में हमें वैसे ही दोषी ठहराया जाएगा, जैसे भागी हुई सेना के सेनापति को अपमानित किया जाता है । जिसके बगीचे में पेड़ों की दुरवस्था हो रही हो, अच्छे पेड़ सूख रहे हों और कटीले झाड़-झंकाड़ बढ़ रहे हों, उस माली को उसका मालिक कभी अच्छी दृष्टि से नहीं देखेगा । परमात्मा को प्रसन्न करने का यही तरीका है कि हम उसकी फुलवारी को हरा-भरा रखें और अधिक से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अधिक सुन्दर बनाने में अपनी सारी शक्ति लगा दें । दूसरों को अपना समझ कर हम उन्हें एक प्रकार से खरीद लेते हैं, जिसे हम अपना समझते हैं वह अवश्य ही हमें अपना समझेगा । इस प्रकार जितना ही हम प्रेम सम्बन्ध अधिक बढ़ाते हैं उतना ही खुदगर्जी को दूर करके अपनी महत्ता का अभ्यास बढ़ाते हैं । परमात्मा से प्रेम करने का यही तरीका है कि उसकी चलती-फिरती प्रतिमाओं से प्रेम करें । जो चैतन्य नर-नारायणों की सेवा करना छोड़ कर जड़ पदार्थों के टुकड़ों पर सिर पटकता फिरता है, उसकी बुद्धि को जड़ ही कहा जाएगा । दूसरों को अपना समझना और उनके साथ आत्मीयता का व्यवहार करना इसमें धर्म का सारा मर्म छिपा हुआ है ।

प्रेम का तीसरा स्वरूप है अखण्ड ब्रह्मयज्ञ । साधारण शुभ-कर्मों में और यज्ञ में यह अन्तर है कि साधारण कामों को तो सब लोग स्थूल नेत्रों से देख लेते हैं और उसकी भलाई-बुराई का मोटी बुद्धि से निर्णय कर लेते हैं पर यज्ञ के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है । अग्निहोत्रों को यज्ञ कहा जाता है पर केवल वह ही यज्ञ नहीं है, दूसरे यज्ञ भी हैं । गीता में ज्ञानयज्ञ, ब्रह्म-यज्ञ, जप-यज्ञ अनेक प्रकार के यज्ञ बताये गये हैं । हाँ अग्निहोत्रों से यज्ञ के वास्तविक स्वरूप का निर्णय किया जा सकता है । अग्नि में बहुमूल्य सामिग्री को हवन करना स्थूल बुद्धि वालों की दृष्टि में एक प्रकार का व्यर्थ काम है, इसमें उन्हें शायद ही कुछ लाभ प्रतीत हो । परन्तु विवेकवान् तत्त्वदर्शी जानते हैं कि इससे अधिक लाभप्रद और कोई कार्य शायद ही हो । हवन किये हुए पदार्थ सूक्ष्म होकर उच्चरित मन्त्रों की सद्भावना के साथ मिश्रित होकर अखिल आकाश तत्त्व में व्याप्त हो जाते हैं और सृष्टि के अगणित, जीवों को नाना प्रकार के सुख पहुँचाते हैं । इस प्रकार एक रुपये की हवन सामिग्री से संसार का जितना लाभ हो सकता है, वह स्थूल प्रकार के हजारों रुपये के लाभ से अधिक है । पर इस महत्त्व को समझने वाले बहुत ही कम होते हैं । इसी प्रकार शुभ संकल्पों का यज्ञ इतना उच्चकोटि का है कि इसकी समता में बड़े-बड़े सेवा-उपकार और दान-पुण्य तुच्छ हैं । सदैव शुभ विचारों को सामिग्री व जीवन-यज्ञ में होमने का ब्राह्म-यज्ञ विश्व के सम्पूर्ण यज्ञों में ऊँची से ऊँची कोटि का है । विचार एक मूर्तिमान पदार्थ है, जो भाप की तरह उड़ता है और बादलों की तरह बरसता है । जब हमारे मस्तिष्क में से कोई भला या बुरा विचार निकलता है, तो वह आकाश में उड़ जाता है और इधर-उधर घूमता फिरता है । रेडियो स्टेशन से ब्रौडकास्ट की हुई लहरें उन स्थानों पर साफ-साफ सुनाई देती हैं, जहाँ रेडियो सैट लगे हुए हों । इसी प्रकार से विचार उन लोगों के मस्तिष्कों से टकराते हैं, जिनके मन में कुछ-कुछ वैसे ही भाव उठ रहे हों । यदि हम सदैव भले विचार करते हैं तो वे विचार उन लोगों को बहुत बड़ा प्रोत्साहन देंगे, जो भलाई करने की बात कुछ-कुछ सोचते हैं । विचारों का कभी नाश नहीं होता और उनकी दौड़ने की शक्ति इतनी तेज है कि कुछ ही क्षण में पृथ्वी एक के सिरे से दूसरे सिरे तक पहुँच जाते हैं । कोई व्यक्ति सत्य-मार्ग पर चलने का विचार करता है, उसी समय आपका किसी अन्य समय में फैलाये हुआ शुभ विचार उसके पास पहुँचता है-उसे दूना उत्साहित कर देता है । फलस्वरूप वह शुभ कर्म करता है और आगे के लिए भी उसी मार्ग का अभ्यासी हो जाता है। उसके प्रयत्न से अन्य लोगों का ऐसे ही उपकार होता है, यह बेल बढ़ती है और संसार में दैवी-सम्पत्ति का विकास होता है । धर्म की उन्नति होती है । दुनिया में सुख-शान्ति बढ़ती है । इतना बड़ा काम आपके उस छोटे से विचार से ही हुआ था, इसलिए उसका बहुत बड़ा पुण्य फल आपको मिलेगा ।

स्वयं सदैव शुभ विचार करना, सत्य, प्रेम, न्याय, उदारता, सहानुभूति, दया आदि की भावनाएँ मन में धारण करना और ऐसे ही विचार दूसरों के मन में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भरने का प्रयत्न करते रहना ब्रह्मयज्ञ है। अखण्ड शब्द इसके साथ में इसलिए जोड़ा गया है कि कभी शुभ और कभी अशुभ, कभी भले, कभी बुरे विचार करने से उतना लाभ नहीं होता । जैसे भले विचार संसार का कल्याण करते हैं, वैसे ही बुरे विचार अनिष्ट भी करते हैं । कभी इष्ट कभी अनिष्ट, कभी पूरब को कभी पच्छिम को, यह तो कोई अच्छी बात नहीं हुई । इसलिए जो कार्य करना चाहिए, उसमें न तो ढील होनी चाहिए और न उपेक्षा । जैसे हम रोज शौच जाते हैं, स्नान करते हैं, भोजन करते हैं, सोते हैं वैसे स्वयं अच्छे विचार करें और दूसरों को अच्छे-अच्छे उपदेश करें । विचारों की अनन्त शक्ति का अनुभव करें और उनके प्रचार करने का जब भी अवसर मिले, तभी प्रयत्न करें । घर का, बाहर का, परिचित, अपरिचत, विद्वान, मूर्ख किसी से भी वार्तालाप करने का अवसर मिले तभी उससे सत्य, प्रेम और न्याय की चर्चा करें । उसे बुराइयाँ छोड़ने और भलाइयाँ सीखने की सलाह दें । इस सुधार द्वारा हम उसके साथ सच्चे प्रेम का परिचय दे सकेंगे । किसी को मिठाई दी जाय, तो वह समझेगा कि इसने मुझसे प्रेम किया । किन्तु ब्राह्मण इस मूर्खता को पहचानता है और वह मिठाई के द्वारा नहीं विचारों के द्वारा उसे ठोस लाभ पहुँचाना चाहता है । दुनिया यज्ञ का महत्त्व नहीं समझती, न समझे, पर एक आध्यात्मिक व्यक्ति को उसके अन्दर बड़ा भारी लाभ दृष्टिगोचर होता है । हम अखण्ड ब्रह्मयज्ञ को निरन्तर चालू रखकर प्राणी मात्र के साथ सर्वोच्च कोटि का प्रेम प्रदर्शन करते हुए अपना कल्याण कर सकते हैं ।

प्रेम की तीन अंगी उपासना कर, इस त्रिवेणी में जब हम आस्था को स्नान करावेंगे, तब पुण्य-पूत दृष्टि द्वारा परमेश्वर की सन्निकटता प्रत्यक्ष दिखाई देगी ।

प्रेममय परमेश्वर

मुझे शक्ति दो सर्वशक्तिमान् ! यह संसार शक्तिशाली को पूजा और प्यार करता है, मुझे लोग प्रेम करें इसलिये मैंने शक्ति माँगी । वह सब कुछ मुझे दो जिससे संसार में मेरी महत्ता बनी रहे। सर्वेश ! यह संसार महत्ता को गले लगाता है, इसीलिए मैंने तुझसे महत्ता की कामना की ।

अब जब न मेरे पास धन है, न बल, सौन्दर्य है न प्रभुता, तब मुझे कोई अपना नहीं दिखाई देता । सर्वेश्वर ! भटकता हुआ आज फिर तुम्हारे ही द्वार आ खड़ा हुआ हूँ, अब मुझे धन, बल, पुत्र-कलत्र, पद-प्रतिष्ठा कुछ नहीं

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिए । भक्ति चाहिए, प्रेम चाहिए, मुझे भक्ति दो, प्रेम दो प्रभुवर ! मुझे शक्ति दो, शान्ति दो, बस और कुछ नहीं नाथ !

तुम तो प्रेम के वश हुए द्वार-द्वार भटकते हो, प्रेमी के हाथों थोड़े से दामों में बिक जाते हो । विशुद्ध प्रेम देखकर तुम्हें अपनी प्रभुता का भी तो ज्ञान नहीं रहता । जैसे बच्चा अपनी माँ के पीछे-पीछे घूमता और दुग्धपान के लिये रोता-बिलखता है, वैसे ही तुम प्रेम के प्यासे होकर भक्त के पीछे-पीछे चल पड़ते हो । कितना निश्छल प्रेम है तुम्हारा, तुम प्रेम के अतिरिक्त कुछ भी तो नहीं चाहते ।

संसार में जो कुछ भी रस है, वह तुम्हीं हो । रस के उत्पादक तुम्हीं हो, उसका आनन्द लेने वाले रसिक भी तो तुम्हीं हो । संसार में जो कुछ भी रस-सौन्दर्य है, तुम उसके पूर्ण ज्ञाता हो । किन्तु यह कैसी छलना है प्रभु ! वही रस जब तुम्हारे लिये मेरे हृदय में जाग्रत हुआ, तब तुम अपने रूप-रस को भूल गये । मुझे नहीं ज्ञात कि तुम मुझमें क्या देखते हो, मैं तो तुम्हारी रसिकता में खो गया हूँ ।

तुम गुणों की खान हो । गुणों के ज्ञाता भी तुम्हीं हो । संसार को सद्गुण बाँटने वाले भी तुम्हीं हो । एक क्षण के लिये भी जो तुम्हारे समीप आ जाता है, श्रद्धा और भक्ति के सरोवर में डूब जाता है, ऐसा है तुम्हारा गुणागार स्वरूप । किन्तु जब तुमने अपने भक्त में सद्गुण की एक छोटी-सी ही रेखा देखी तो ऐसा क्या था, जो तुमने उस एक गुण के लिये अपने आपको न्योछावर कर दिया । तुम्हारा प्रेम बड़ा रहस्यमय है, प्रभुवर !

जब तक मैं संसार में सुख और संताप ढूँढ़ता रहा, तब तक तुम्हें जानकर भी नहीं जान पाया । यह तो तुम्हारी ही कृपा थी, जो मेरे अन्तःकरण में श्रद्धा जगी । वैराग्य प्रस्फुटित हुआ । भक्ति उमड़ पड़ी । अपना सम्पूर्ण और सर्वस्व तुम्हारे चरणों में समर्पित करता हूँ । अब तुम मेरे पास आ गये, तुम्हें पाकर अब कुछ और पाने की इच्छा शेष नहीं रही ।

प्रेम के लिये प्यासे दीन-हीन मुझमें कोई रस नहीं है, जो मैं तुम्हें सादर भेंट करता । मुझमें एक गुण भी तो नहीं है, जिससे तुम्हें रिझाने का प्रयत्न करता । मुझमें दोष ही दोष भरे हैं । मुझमें दुर्गुण ही दुर्गुण भरे हैं । सांसारिकता को मैं कहाँ छोड़ पाता हूँ ? बार-बार जागतिक आकर्षणों में भटकता रहता हूँ । तुम्हें पीठ दिये ही तो चलता रहता हूँ पर तुमने मुझे कितना प्यार दिया । एक ही बार तो डबडबाई आँखों से श्रद्धापूर्वक तुम्हारी ओर देखा था । एक क्षण के लिये ही भक्ति का प्रकाश अन्तःकरण में प्रस्फुटित हुआ था, तब से तुम अपनी ममता मुझ पर उँड़ेलते मेरे पीछे-पीछे फिर रहे हो प्रभु ! तुम्हारी इस कृपा का, इस अनन्त अनुग्रह का मूल्य कैसे चुकाऊँ । बहुत सरल हो तुम, बहुत भोले हो तुम, तुम्हारी उदारता अवर्णनीय है । कैसा मधुर स्वभाव है तुम्हारा कि दोषी में भी गुणों का भाण्डागार देखते हो । मुझे तो तुमसे भाँति-भाँति की याचनाएँ हैं, पर तुमने बिना किसी इच्छा और आकांक्षा के मुझे इतना प्रेम और ममत्व प्रदान किया है । यह देखकर मेरे अन्तःकरण में कब से अन्तर्द्वन्द्व जाग पड़ा है, अब मुझे संसार नीरस लगता है । तुम्हारे प्रेम के लिये मैं दर-दर भटकने के लिये तैयार हूँ । मुझे कहीं भी ले चलो । चाहे कैसी भी अवस्था में रखो किन्तु अपने प्रेम से वंचित न करना प्रभुवर ! मेरी लाज अब तुम्हारे ही हाथ है । बड़े तूफान उठ रहे हैं, बड़ा विषमत्व है जीवन में । आधार एकमात्र तुम्हीं हो चाहे पार लगा दो, चाहे डुबा दो और अब मैं जाऊँ भी तो किसके दरवाजे जाऊँ ।

जाने यह मेरी ही भावना है कि सत्य-पर मुझे ऐसा दिखाई दे रहा है कि तुमने मेरे लिये अपनेपन का विशेष पक्षपात किया है । मेरी भूलों का दण्ड मुझे ही भुगतना चाहिए था पर तुम तो उसे निरन्तर क्षमा ही करते जा रहे हो । सारा संसार ही तो कहता है कि मैं दोषी हूँ, मैंने बड़े अपराध किये हैं, तुम तब भी मेरे लिये क्षमा भरा उदार पक्षपात करते हो, तुम्हारी इस ममता के लिये मुझे बार-बार जन्म लेकर तुम्हारे चरणों में पड़ा रहना पड़े तो भी मुझे स्वीकार है, तुम्हारा जैसा निर्बाध और निश्छल प्रेम और कहाँ मिलेगा ।

तुमने मुझे अपना मान लिया है । अब मैं भी तुम्हें अधिकारपूर्वक देखता हूँ । मुझे दिन-रात तुम्हीं दिखाई देते हो, तुम्ही मेरे जीवन के सर्वस्व, प्राणाधार और प्रियतम हो, अपने ही प्रेम-स्वरूप से मुझे इतना प्यार देने वाले प्रभु! तुम मुझसे अलग न हो जाना । मैं सदैव तुम्हारे ही प्रेम का आश्रित तुम्हारे ही गुण गाया करूँ ।

तुम्हारे ही विश्वास के सहारे जी रहे हैं, अपने प्राणों की डोर तुम्हारे हाथों सौंपकर निश्चिन्त हो गये हैं । उत्सुक नेत्रों से तेरी लीला देखने में ही मन रम गया है। संसार कितना बड़ा है, इस सबमें सर्वत्र तुम्हारा प्यार ही तो छलक रहा है । समुद्र लहराता है, वह तुम्हारे प्यार की मस्ती है, पर्वत हरियाली की गोद में छुपे ऊपर उठते जा रहे हैं, वह तुम्हारे ही प्रेम का आकर्षण है, फूलों का सौन्दर्य तुम्हारा प्रेम ही है, उनकी सुगन्ध के रूप में तुम्हारा प्रेम ही दिग्-दिगन्त में भर रहा है । सूर्य, चन्द्रमा और तारागण तुम्हारे ही प्रेम की यश गाथा गा रहे हैं । तुम मुझे दिखाई नहीं देते पर तुम्हारी यह छवियाँ मेरे नयनों में बस गई हैं। मेरा रोम-रोम तुम्हारे प्रेम की अनुभूति में पुलकित हो रहा है। कभी तो वह दिन आयेगा, जब मेरे प्रेम की पीड़ा तुम्हें उतनी दूर से खींचकर ले आयेगी । तब तुम्हारे प्रेम के सागर में डूबकर संसार की भव-बाधाओं से भी मुक्त हो जाऊँगा ।

कभी तो तुम्हारे दर्शन होंगे ही, इसी आशा से अब तुम्हारा नाम ले-लेकर जी रहे हैं । अन्तःकरण में तुम्हारे प्रेम की पीड़ा विरह बरसात बनकर घुमड़ रही है । अंधकार छा गया है । कुछ सूझता नहीं है प्रभु ! तुझसे मिलने के लिये टीस, तड़पन और कसक भर गई है । अपनी कृपा की एक किरण का सहारा देते रहना प्रभु ! तुम्हारा राही मध्य मार्ग में भटकने न पाये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कृपा के सिन्धु, करुणा के सागर प्रेम-धाम तुम्हारी कृपा, करुणा और प्रेम ही मेरे लिये सर्वस्व है । तुम प्रेममय हो, अपने अन्त:करण में मिलाकर मुझे भी प्रेमास्पद बना दो, मुझे भी प्रेम करना सिखा दो, जिससे क्षुद्र वासनाओं में फिर न भटकूँ, फिर जगत् के मिथ्यात्व में विचरण न करूँ ।

स्रष्टा के अनुदानों की उपेक्षा न हो

प्रगतिशीलता का तकाजा यह है कि वह अपनी उपलब्धियों का श्रेष्ठतम सदुपयोग करे । अभाव का चिन्तन करने और अपने से अधिक सुविधा सम्पन्न लोगों के साथ तुलना करते हुए अपने दुर्भाग्य को कोसा ही जा सकता है । दरिद्रता के लिए भाग्य को दोष दिया जा सकता है । पर यदि यह देखा जाय कि हमारे पास जो है, जितना है उतना भी असंख्यों को उपलब्ध नहीं है, तो हर कोई संतोष की साँस ले सकता है और अपने को आर्थिक दृष्टि से न सही अन्य अनेक क्षेत्रों में अपनी स्थिति को सराहनीय मान सकता है ।

मनुष्य जन्म अपने आप में एक विभूति है । करोड़ों की संख्या में पाई जाने वाली जीव प्रजातियों से यह धरती भरी पड़ी है, पर उनमें अकेला मनुष्य ही ऐसा है जिसे प्रकृति ने, परमात्मा ने अपने सर्वोत्तम कलाकृति के रूप में गढ़ा है । इतना सर्वांग सुन्दर उपयोगी और बहुमुखी क्षमताओं से परिपूर्ण शरीर और किसे मिला है ? चिन्तन की एक क्षमता और किस प्राणी को आती है ? आन्तरिक उल्लास और उत्साह किसके भीतर से फूटता है ? उचित-अनुचित का विभेद करने वाली और औचित्य अपनाने की प्रेरणा किसके भीतर से उभरती है । यह अधिकार केवल मनुष्य को मिला है कि वह अपने भाग्य की संरचना मन-चाहे ढंग से, मनचाही दिशा में कर सके । ऐसी दशा में बुद्धिमान वे ही हैं जो अकारण असंतोष की आग में नहीं जलते और गर्व-गौरव अनुभव करते हैं कि हमें मनुष्य जीवन मिला ।

यह स्रष्टा का अनुग्रह है कि मनुष्य जन्म कैसा अनुपम उपहार मिला । अब अपनी बारी है कि उसका सदुपयोग करके दिखायें और उस प्रयास का हाथों-हाथ आनन्द उठाते हुए भविष्य को उज्ज्वल बनायें ।

स्रष्टा के प्रत्यक्ष अनुदानों में ही प्रमुख है एक समय, दूसरा श्रम । समय के छोटे-छोटे घटकों को मिलाकर ही जीवन बना है । उसमें से एक तो ऐसे ही सोने में, नित्य कर्म में, आलस्य-प्रमाद में खप जाता है पर जितना उपयोगी कार्य कर सकने की स्थिति में हैं, हम उसका भी एक बहुत छोटा अंश काम में ला पाते हैं । यदि उस जीवन सम्पदा के एक-एक क्षण को हिसाब लगाने की आदत हो तो पता चलेगा कि हम समय देवता की कितनी अवज्ञा-उपेक्षा करते हैं और उसे किस प्रकार प्रमाद में ढील-पोल बरतने में नष्ट कर देते हैं । यदि इसे सम्हाला सँजोया गया होता तो निश्चय ही उतने भर से अपना ज्ञान बढ़ाने और व्यक्तित्व निखारने में कितनी सहायता मिल सकती थी ?

दूसरी उपलब्धि है श्रम । श्रम का ही दूसरा नाम धन है । धन से सुविधा-सामग्री उपलब्ध होती है और इसी आधार पर दूसरों की भी सहायता की जा सकती है । श्रम यों स्नायु संचालन और स्वेद बिन्दुओं के रूप में दिखता है पर उसी का घनीभूत स्वरूप सम्पदा के रूप में परिणत होता है । आकाश से बरसने और जमीन फाड़कर निकल पड़ने के रूप में तो सम्पदा किन्हीं-किन्हीं को ही मिलती है । पर उसमें गुणवत्ता नहीं होती वरन् ऐसी विषाक्तता रहती है कि जहाँ भी वह रुके वहीं तेजाब की तरह जला कर जर्जरता उत्पन्न कर दे । धन वही है जो श्रमपूर्वक, नीतिपूर्वक कमाया गया हो । उसी के सहारे मनुष्य सुखी रहता और समुन्नत बनता है । किन्तु देखा गया है अधिकांश लोग अविवेकी भाग इस तरह खर्च करते हैं जिससे प्रतिगामिता ही उपजती है और ऐसा ही कुछ बन पड़ता है जिसे मूर्खतापूर्ण कहा जा सके और अवसर निकल जाने पर पश्चात्ताप करना पड़े । वस्तुस्थिति का पता तब चलता है जब मरण का दिन आ पहुँचता है और बीते हुए का लेखा-जोखा लेने पर अनुभव होता है कि बहुमूल्य विभूतियाँ व्यर्थ ही चली गईं । यदि उनका महामानवों की तरह उपयोग किया गया होता तो न केवल परिस्थितियाँ ही बदल जातीं वरन् ऐसा भी कुछ बन पड़ता जिस पर अपने को आत्मसंतोष होता और दूसरों को अनुकरण करते हुए आगे बढ़ने का अवसर मिलता । शरीर न रहने पर भी यश बना रहता ।

कठिनाई एक ही है कि समीक्षा-बुद्धि पर सदा कुहासा छाया रहता है । वह दूसरे भर के लिए काम करती है पर जब आत्म-निरीक्षण का अवसर आता है तो अपने को अयोग्य, असमर्थ मान बैठती है । अपने सभी कृत्य उचित प्रतीत होते हैं, भले ही वे कितने ही अवांछनीय या अनुपयुक्त क्यों न हों ।

अन्य प्रसंगों में भले ही भूल-चूक होती रहे पर समय और श्रम (धन) के एक-एक छोटे घटक का हिसाब रखा जाना चाहिए । डायरी छापने, रखने और लिखने का यही उद्देश्य नहीं है कि उसमें किए गये उल्लेख के आधार पर महत्त्वपूर्ण निर्धारणों या कार्यों की स्मृति बनी रहे । वरन् यह भी है कि बहीखाते की तरह समय और पैसे का हिसाब लिखा जाय । इस लेखन का उद्देश्य एक चिन्ह-पूजा से निपट लेना भर नहीं है । किन्तु यह है कि समीक्षा के लिए प्रमाणित तथ्य हस्तगत हो और एकाग्र चित्त से यह विचार करने का अवसर मिले कि इन दोनों विभूतियों का कितना सदुपयोग बन पड़ा, कितना दुरुपयोग और कितना क्या निरर्थक आलस्य-प्रमाद में चला गया ? जो कार्य जितने समय में हो सकता है उसे उतने से अधिक देर में अन्यमनस्कतापूर्वक बेगार भुगतते हुए अस्त-व्यस्त ढंग से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया जाय तो समझना चाहिए कि समय को काम में लगाये रहते हुए भी उसका वास्तविक लाभ आधा-चौथाई ही हस्तगत हो सका ।

यही बात धन के सम्बन्ध में भी है । अपव्यय समझ में नहीं आते । कई बार तो वे आवश्यकता जैसे प्रतीत होते हैं । पर विवेकशीलता यह बताती है कि दूसरों को फुसलाने की अपेक्षा यह पैसा यदि अमुक कार्य में लगा होता तो उससे अपना, परिवार का तथा समाज का कितना हित-साधन बन पड़ा होता । सुधारने का समय तब आता है, जब भूल, भूल प्रतीत हो और अमुक कार्य करने की अपेक्षा अमुक कदम उठाने की बात सूझ पड़े । इसी पर्यवेक्षण में सहायता देने के लिए डायरी लिखी जाती है और उसमें समय तथा पैसे का राई-रत्ती हिसाब अंकित किया जाता है ।

जीवन रूपी पुष्प समय और साधनों की छोटी-छोटी पंखुड़ियों से मिलकर बना है । उसकी शोभा इनके सही तरह से व्यवस्थित रहने एवं खिलने में ही है । यदि उन्हें कुचली-मसली स्थिति में रहने दिया जाय या आलस्य-प्रमाद के हाथों कुचल-मसलकर फेंक दिया जाय तो समझना चाहिए कि ऐसी भूल चल पड़ी जिसके लिए भविष्य में पश्चात्ताप ही शेष रह जाएगा । ऐसी स्थिति न आने पाये इसलिए जीवन को अधिकतम उपयोगी जीने के इच्छुकों को डायरी रखनी तथा नियमित रूप से लिखनी चाहिए । साथ ही नियमित रूप से यह समीक्षा भी करनी चाहिए कि वर्तमान ढर्रे में भविष्य में क्या सुधार-परिवर्तन किया जाना चाहिए ?

प्राण ही परमेश्वर है

शास्त्रों में प्राण को ईश्वर का ही स्वरूप माना गया है । शरीर में भी ईश्वर प्राण देवता के रूप में ही है । इसलिए हमें जानना चाहिए कि प्राण तत्त्व कोई साधारण वस्तु नहीं वरन् वह जिसकी महिमा महान से महानतम बताई गई है । उपनिषद्कार का कथन है-

प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च

-छान्दोग्य

अर्थात् प्राण ही बड़ा है । प्राण ही श्रेष्ठ है ।

कतम् एको देव इति । प्राण इति स ब्रह्म नद्रित्याचक्षते ।।

-बृहदारण्यक

अर्थात्- वह एकदेव कौन सा है ? वह प्राण है । ऐसा कौषितकी ऋषि ने व्यक्त किया है ।

'प्राणो ब्रह्म' इति स्माहपैदृश्य ।'

अर्थात्- पैज्य ऋषि ने कहा है प्राण ही ब्रह्म है ।

वेदों में प्राणतत्त्व की महिमा का गान करते हुए उसे इस विश्व की सर्वोपरि शक्ति माना है ।

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते ।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ।।

-अथर्व

अर्थात्- प्राण विराट् है, सबका प्रेरक है । इसी से सब उसकी उपासना करते हैं । प्राण ही सूर्य, चन्द्र और प्रजापति है ।

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे ।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्तसर्वं प्रतिष्ठितम् ।

-अथर्व

अर्थात्- जिसके आधीन यह सारा जगत है, उस प्राण को नमस्कार है । वही सबका स्वामी है, उसी में यह सारा जगत प्रतिष्ठित है ।

ब्राह्मण ग्रन्थों और आरण्यकों में भी प्राणी की महत्ता का गान एक स्वर में किया गया है-उसे ही विश्व का आदि निर्माण, सबमें व्यापक और पोषक माना है । जो कुछ भी हलचल इस जगत में दृष्टिगोचर होती है उसका मूलहेतु प्राण ही है । देखिए:-

सोऽयमाकाशः प्राणेन वृहत्याविष्टब्ध तध्वथा यमाकाशः प्राणेन वृहत्याविष्टब्ध एवं सर्वाणि भूतानि अपि पीलिकाभ्यः प्राणेन वृहत्याविष्टब्धानी त्येवं विद्यात् ।

-एतरेय २ १ ६

अर्थात्- प्राण ही विश्व को धारण करने वाला है । प्राण की शक्ति से ही यह ब्रह्माण्ड अपने स्थान पर टिका हुआ है । चींटी से लेकर हाथी तक सब प्राणी इस प्राण के ही आश्रित हैं । यदि प्राण न होता तो जो कुछ हम देखते हैं कुछ भी न दीखता ।

प्राण एव प्रज्ञात्मा । इदं शरीरं परिगृह्य उत्थापयति । यो व प्राणः सा प्रज्ञ, या वा प्रज्ञा स प्राणः ।

-शाखायन आरण्यक ५ १

अर्थात् इस समस्त संसार में तथा इस शरीर में जो कुछ प्रज्ञा है, वह प्राण ही है । जो प्राण है, वही प्रज्ञा है । जो प्रज्ञा है वही प्राण है ।

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि:-

प्राणोहि प्रजापतिः ४ ५ ५ १३
प्राण उ वै प्रजापतिः ८ ४ १ १४
प्राणः प्रजापतिः । ६ ३ १ १

अर्थात्- प्राण ही प्रजापति परमेश्वर है ।

सर्व ह्रीदं प्राणदावृतम् । *-एतरेय*

अर्थात्- यह सारा जगत प्राण से आदृत है ।

प्रश्नोपनिषद् में प्राणतत्त्व का अधिक विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है:-

स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्द्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्न मन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम च ।

-प्रश्नोपनिषद् ६ ४

अर्थात्- परमात्मा ने सबसे प्रथम प्राण की रचना की । इसके बाद श्रद्धा उत्पन्न की । तब आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी यह पाँच तत्व बनाये । इसके उपरान्त क्रमशः मन, इन्द्रिय समूह, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र और कर्मों का निर्माण हुआ । तदन्तर विभिन्न लोक बने ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
ऋचो यजूंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ।।६।।
प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे ।
तुभ्यं प्राण प्रजास्त्वमा बलिं हरन्ति यः
प्राणैः प्रतितिष्ठसि ।।७।।
देवानामसि वन्हितमः पितृणां प्रथमःया स्वधा ।
ऋषीणां चरितं सत्यमथर्वाङ्गिरसामसि ।।८।।
इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता ।
त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः ।।९।।
यदा त्वमिवर्षस्यग्रेमाः प्राणते प्रजाः ।
आनन्दरूपास्तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्यतीति ।।
व्रात्यस्त्वं प्राणैकर्षिरत्ता ता विश्वस्य सत्पतिः । १०
वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातरिश्व नः ।।११।।
या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षुषि ।
या च मनसि संतता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः ।।१२।।
प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम् ।
मातेव पुत्रान्रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति ।।१३।।

-प्रश्नोपनिषद् -२

अर्थात्- रथ के पहिये की नाभि में जैसे अरे लगे रहते हैं उसी प्रकार चारों वेद, यज्ञ, ज्ञान, बल ये सब प्राण में लगे हैं ।।६।। हे प्राण आप ही प्रजापति हैं आप ही गर्भ में विचरते हैं । जन्म लेते हैं । प्राणी तुझमें ही मिल जाते हैं तुम्हारे ही साथ स्थित रहते हैं ।।७।। हे प्राण आप ही देवताओं को हवि पहुँचाने वाली अग्नि हैं । ऋषियों द्वारा अनुभूत सत्य आप ही हैं । ।।८।। हे प्राण, आप ही सर्वशक्ति सम्पन्न इन्द्र हैं । आप ही प्रलय काल में रुद्र रूप होकर सबका संहार करते हैं । आप ही सबकी रक्षा करते हैं । वायु, अग्नि, चन्द्र, नक्षत्र तथा सूर्य आप ही हैं ।।।९।। हे प्राण आप ही मेघ बनकर वर्षा करते हैं । उसी में प्राणियों का जीवन निर्वाह करने वाला अग्नि पैदा होती है । उसी से प्रजा प्रसन्न होती है ।।१०।। हे प्राण आप ही संस्कार रहित शुद्ध, सबको पवित्र करने वाले, सर्वश्रेष्ठ ऋषि हैं । आप ही हमारे पिता हैं, आपसे ही हम पैदा हुए ।११। हे प्राण आप ही वाणी, श्रोत्र, चक्षु, मन, अन्तःकरण आदि सबमें व्यक्त हैं । आप ही इन्हें कल्याणमय बनाइये । हमें सावधान और शान्त रखिए । हमारे शरीर से बाहर न जाइए ।।१२।। इस संसार में तथा स्वर्ग में जो कुछ है वह प्राण के ही अधीन है । जिस प्रकार माता अपने पुत्रों की रक्षा करती है वैसे ही आप हमारी रक्षा कीजिए । हमें श्री, क्रान्ति, शक्ति और प्रज्ञा प्रदान कीजिए ।।१३।।

प्राण शक्ति के भाण्डागार वाले स्वरूप को जान लेने पर ऋषियों ने कहा है कि कुछ भी जानना शेष नहीं रहता है । भृगुतन्त्र में कहा गया है-

उत्पत्तिं मायतिं स्थानं विभुत्वं चैव पंचधा ।
अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञाया मृतमश्नुते ।।

अर्थात्- प्राण कहाँ से उत्पन्न होता है ? कहाँ से शरीर में आता है ? कहाँ रहता है ? किस प्रकार व्यापक होता है ? उसका अध्यात्म क्या है ? जो इन पाँच बातों को जान जाता है वह अमृत को प्राप्त कर लेता है ।

हे परम प्रभु हमें पवित्र बना दे

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ।।

-ऋग्वेद ५।८२।५

हे सकल जगत के उत्पन्न करने वाले ईश्वर ! तू हम सबों के पापों को दूर कर और जो कल्याणकारी विचार हैं, उन्हें हमें प्रदान कर । हे कृपानिधे हमारे अन्तःकरणों को पवित्र कर हमें शुद्ध-बुद्ध और पवित्र बना ।

ऋग्वेद की उपर्युक्त ऋचा में ऋषि ने परमात्मा से प्रार्थना की है । इसमें पहली माँग है कि हे परमपिता परमेश्वर! पहले हमारे पापों को दूर कर दे । यह बात एक दम स्वाभाविक है कि यदि हम कोई चीज बाहर से कड़ी मेहनत के बाद कमा कर लाते हैं तो उसके रखने को पहले सोचते हैं । उसके लिए जगह बनाते हैं । किसान जब फसल काटता है तथा अन्न निकाल लेता है तब उस अन्न को जहाँ-तहाँ नहीं फेंकता । उसको रखने के लिए महीनों पूर्व एक बखार के लिए घर की सफाई करता है, कोठिला या अन्नागार बनाता है। उसका नीम आदि की पत्ती जलाकर शोधन करता है । आजकल तो तरह-तरह की रासायनिक दवाएँ मिलने लगी हैं, अन्नागार या अन्न गोदाम को शोधने के लिए । इससे रखे जाने वाले अन्न में कीड़े-मकोड़े नहीं लगते । वर्षा का पानी नुकसान नहीं करता तथा जो कुछ रखा जाता है, उसे हम अपनी इच्छानुसार सुरक्षित रख पाते हैं । किन्तु यदि प्रमादवश उस गाढ़ी कमाई को जहाँ-तहाँ बिना सुरक्षा का ध्यान किये फेंक देंगे तो परिणाम भी तत्काल भुगतना पड़ेगा । अन्न में कीड़े लग सकते हैं या सीलन से दाने सड़ने-घुनने लगते हैं । अतः महीनों जिसे कमाने में अपनी मेहनत लगाई, थोड़ी-सी सर्तकता न बरतने के कारण हम उसे गँवा बैठते हैं ।

हमारे ऋषियों का पहला ध्यान रहा है कि ईश्वर भजन और तप से जो कुछ भी विचार की या बुद्धि की ऊर्जा वरदान स्वरूप मिले उससे पहले हे प्रभो ! हमारे संचित पापों को हमसे दूर कर दो । पाप तो हमारे मन की वृत्ति है । जो संस्कार स्वरूप हमारे अचेतन मन में दबी पड़ी है तथा जैसे ही अवसर आता है वह अहंकार पर सवार होकर हमारी बुद्धि को भ्रमित कर देती है । जब बुद्धि भ्रमित हो जाएगी तो हम उस वृत्ति के अनुसार वैसे कर्म भी कर डालेंगे जो हमें स्वयं पसन्द नहीं । किन्तु लाचार हैं हम अपनी आदत से । अतः ऋषि इस पाप की वृत्ति से सजग हैं तथा सर्वशक्तिमान् से पहला वरदान माँगते हैं कि प्रभो पहले हमें पाप और उसकी वृत्ति से मुक्त करो । क्योंकि जब तक पाप और उसकी प्रवृत्ति बनी रहेगी तब तक न हमसे भक्ति होगी न सद्कर्म ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाप निवृत्ति के बाद ऋषि की प्रार्थना है कि कल्याणकारी विचार हमारे मन में जगें । विचार मन में उठे उस भाव को कहते हैं जिसका अनुगमन कर हमारी कर्मेन्द्रियाँ क्रिया स्वरूप करती हैं । यदि यह बुद्धि और विवेकसम्मत होगा तो अकल्याणकारी होगा या नहीं किसी मानसिक आवेग से निकला होगा तो कल्याणकारी होगा । ध्यान देने की बात है कि ऋषि ने मन्त्र दर्शन करते समय समष्टि का ध्यान पहले रखा तथा जो कुछ भी प्रार्थना की वह बहुवचन में यानि समग्र समाज का प्रतिनिधि होकर न कि केवल अपने लिए । यह बात स्वाभाविक है कि जब उसका या पूरे समाज का कल्याण होगा तो हम उससे बरी नहीं रहेंगे । अतः वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना अवश्य रही होगी । नहीं तो ऋषि कहते कि हे प्रभो केवल मुझमें ही अच्छे विचार जगें ।

किन्तु इस तरह की एकांगी प्रार्थना कर और वरदान पाकर क्या कोई सुखी रह सकता है ? कदापि नहीं । यदि अथाह धन कमाते जाएँ महल, अटारी उठाते जाएँ । मुझमें तो अच्छे विचार प्रभु कृपा से जगें किन्तु पड़ोसियों में पाप बढ़ता जाय तथा कुविचार उपजते जाएँ भक्त होने के बावजूद भी समाज के आचरण का भोग हमें भी भोगना ही पड़ेगा । पड़ोस के लोग हमारे धन से जलेंगे । हमारी आनन्द की स्थिति से जलन करेंगे और किसी दिन महल में डाका डाल मुझे बरबाद कर सकते हैं । किन्तु धन न बढ़ा तो क्या लेकिन पड़ोस के सभी लोगों के विचार अच्छे हो जाएँ, सबमें अच्छी बातें आ जाएँ तो हमारी गरीबी भी स्वर्ग ला देगी । हम सभी मिलकर आनन्दपूर्वक पूरा जीवन बिता सकेंगे ।

यह उदात्त मनःस्थिति ही मानव और पशु में भेद करती है । हमारा सारा सामाजिक ढाँचा ऋषि की केवल एक माँग पर अवस्थित है । यदि सद्विचार की भावना हमारे अन्दर से एकाएक गायब हो जाय, यह सारा का सारा वैभव नष्ट हो जाय । कोई विकास भी नहीं होगा । जैसा हम पशुओं में देखते हैं कि वहाँ अपने सामूहिक स्वार्थ की बात नहीं होती सभी अपने पेट के पीछे पड़े रहते हैं । वैसे चींटी और मधुमक्खी इसके अपवाद हैं । दूसरी ओर मानव है । जुलाहा कपड़ा बुनता है, तकनीकी में विकास करता है, सैनिक रक्षा करता है तथा समग्र राष्ट्र की रक्षा के लिए मरता-जीता है, वैज्ञानिक रात-दिन एक कर अन्वेषण करते हैं तथा इसी प्रकार अन्य पेशों वाले दूसरों का काम करते रहते हैं । प्रत्यक्ष हम देखते हैं कि मानव समाज में हम एक दूसरे की सेवा करते हैं और परोक्षतः सबको आवश्यकतानुसार यथेष्ठ सहायता मिल जाती है । इस प्रकार समाज की गाड़ी चल रही है । हमारा विकास दिन-प्रतिदिन हो रहा है । हमारी सुख-सुविधाएँ बढ़ रही हैं । इस सारे विकास का एकमात्र कारण है कि हमारे मन में कल्याणकारी विचार हैं ।

किन्तु जिस दिन मानव के हृदय से कल्याणकारी विचार उठ जायेंगे, हमारे मन में केवल कुत्सा, संकीर्णता और घृणा जगह बना लेगी तो विनाश होने से कोई बचा नहीं सकता । त्रेता में केवल रावण के कारण एक द्वीप की पूरी आबादी नष्ट हो गयी । द्वापर में दुर्योधन के अन्दर कुविचार उठने से महाभारत जैसा भयंकर युद्ध हुआ तथा प्रथम और द्वितीय महायुद्ध कुविचारों के ही परिणाम थे। अतः हमारे ऋषियों को पता था कि कल्याणकारी विचार के बदले कोई और चीज माँगी गयी तो वह भी निरर्थक है क्योंकि उत्कृष्ट मनःस्थिति न होने पर प्रत्येक सम्पदा हमारे लिए विपत्ति का कारण बनेगी। इसके विपरीत यदि सद्भावनाओं का बाहुल्य होगा तो समस्त उपयोगी सुख-साधन स्वतः ही उपलब्ध होते चले जाएँगे। अतः केवल ऋषि ने एक ही माँग की कि प्रभो हम यानी पूरी मानव समाज में कल्याणकारी विचार भर दो ।

मुख्य पूँजी ऋषि ने माँगी कल्याणकारी विचार की । किन्तु इस विचार का तभी फल होगा जब पुनः इसको पाप ताप से बचाकर पवित्रता और विवेक से रक्षा की जाय । हम बड़ी मेहनत से किसी ऐसे दुर्लभ पेड़ का बीज अपने घर लाये हैं, उसको अपने खेत में लगाकर उसका फल चखना चाहते हैं तो आवश्यक है कि उसके लिए उपयुक्त भूमि तैयार करें । फिर उसकी रक्षा की पूरी व्यवस्था करें । भूमि और रक्षा ही पर्याप्त नहीं है, सिंचाई का भी प्रबन्ध करें । अन्त में ऋषि प्रभु से पुनः प्रार्थना करते हैं कि हमारी अन्तरात्मा पवित्र बनी रहे । जब अन्तःकरण शुद्ध रहेगा तो जो कल्याणकारी विचार वरदान स्वरूप मिला है उससे अच्छे कर्म फूटेंगे और जब सद्कर्म होंगे तो पूरे समाज को अच्छा परिणाम भी मिलेगा । जिससे सभी सुखी और प्रसन्न होंगे तो प्रभो हमें भी वह प्रसाद अवश्य मिलेगा । अतएव हे परमपिता परमेश्वर हमारे अन्तःकरणों को पवित्र कर हमें शुद्ध-बुद्ध और पवित्र बना ।

हम उत्कृष्टता की ओर अनवरत गति से अग्रसर हों

मानव-शरीर भगवान की सर्वोत्कृष्ट रचना है । अन्य प्राणियों की तुलना में भगवान ने उसे ऐसे अनेक साधन एवं अनुदान दिये हैं जो दूसरे प्राणियों को प्रयत्न करके भी नहीं प्राप्त होते हैं, भोजन की निश्चिन्तता, आवास की सुविधा, वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग, रक्षा सामग्री, मनोरंजन के साधन, न्याय, शासन तंत्र, सेना आदि ऐसी अनेक सुविधाएँ मनुष्य को प्राप्त हैं जिनका कि लाख और करोड़वाँ भाग भी अन्य जीवों के पास नहीं है । 'मनुष्य प्रकृति का मुकुटमणि है' यह कथन अक्षरशः सत्य है । अन्य योनियों में भ्रमण करने वाले जीवों को अपना सम्पूर्ण जीवन भोजन की तलाश तथा आये क्षण शत्रुओं से बचाव करते रहते ही व्यतीत करना पड़ता है । जैसे कि देवलोक की काल्पनिक सुख-सुविधाओं के लिए हमारा मन लालायित बना रहता है उसी प्रकार दूसरे जीव भी हमारी जैसी सुविधाएँ प्राप्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

करने के लिए लालायित हों तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं । कुत्ता, बिल्ली, चूहा, कीड़े, पतंगे आदि की जीवन सम्बन्धी असुविधाओं को देखते हुए हम अपने सम्बन्ध में विचार करें तो हमें मानना पड़ेगा कि मानव जीवन जैसा जीवन कोई दूसरा नहीं है ।

मानव शरीर मिलने के बाद परमात्मा से हमें जो दूसरा महान् उपहार प्राप्त हुआ है, वह है, "मानवी अन्तः-करण"। जिसे यह मिल गया वह इस सृष्टि के कण-कण में स्वर्गीय आनन्द का उपभोग करता हुआ अपने को धन्य समझता है। देवता, ऋषि, मुनि तथा अवतार-जिन्हें हम ईश्वर के ही प्रतिरूप मानते हैं-शरीर से तो हम जैसे ही थे परन्तु उनमें 'अन्तःकरण का विकास' सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक था-उन्होंने जीवन का सदुपयोग करना सीखा था। अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए-लोक-कल्याण के लिए उन्होंने जीवन जिया था, चन्दन के वृक्ष की तरह उनका सम्पूर्ण जीवन स्वयं तो सुगन्धित रहा ही वे अपने चारों ओर का वातावरण भी सुगन्धित करते रहे तथा उन्होंने काटने वाले की कुल्हाड़ी को भी सुगन्धित बना दिया। वे तो सच्चे पारसमणि थे जिनके संसर्ग में आने वाला गला-सड़ा लोहा भी स्वर्ण बन गया और इसीलिए हमने उन्हें देवता की संज्ञा दी। वे महापुरुष बने और अवतारों की तरह उनकी पूजा हुई। वे आज भी हमारे सम्मान और श्रद्धा के पात्र बने हुए हैं ।

जिसने इस मानवीय अन्तःकरण का सदुपयोग करना नहीं सीखा वह नर-पशु कहलाया । खाने-पीने, बच्चा पैदा करने और सोने की मस्ती में बहुमूल्य जीवन को कौड़ियों के मोल बहा देने वाले मनुष्यों को नर-पशु न कहा जाये तो क्या कहें ? ईश्वर की महतीकृपा के फलस्वरूप प्राप्त होने वाला यह जीवन यदि इसी प्रकार निरर्थक, व्यर्थ की बातों में बरबाद होता रहा तो यह हमारा बहुत बड़ा दुर्भाग्य कहा जाएगा । मानवता का प्रकाश यदि अन्तः-करण में नहीं आ सका तो शारीरिक सुख के लिए संग्रहीत सारे साधन एवं सामान, बिजली, कल-कारखाने, मोटर, रेल, वायुयान और सुरक्षा के लिए करोड़ों रुपये बरबाद कर बनाये गये अणुबम, उद्जन बम सभी कुछ निरर्थक हैं। यह सभी मानवता के रक्षक नहीं, वरन् भक्षक हैं ।

मानवता के अनुरूप ही यदि हमारे विचार बन जावें-हमारी प्रवृत्ति सतोगुणी बन जाये तो निश्चय ही जीवन सार्थक हो गया । सद्भावनाएँ, उदारता, सज्जनता, मधुरता, नम्रता एवं ममता आदि वृत्तियों का विकास जब हमारे अन्दर होता है, तब हम देवत्व की कोटि में पहुँच जाते हैं और जब स्वार्थपरता, संकीर्णता, आलस्य, काम-क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि के चक्कर में फँसकर अपने कर्त्तव्यों को भूल जाते हैं तो हमारी स्थिति नर-पिशाच, असुर और नीच पशु जैसी हो जाती है ।

पशुता का प्रधान लक्षण है-तमोगुणी वृत्ति का विकास-सदैव अपनी ही बात सोचना । जब हम अनुचित-उचित का ध्यान न करते हुए धर्म और अधर्म का विचार किये बिना केवल अपने लाभ की ही बात सोचते हैं तो हमें उस समय 'असुर' की संज्ञा मिल जाती है । इस प्रकार का 'असुरत्व' आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में फैला हुआ है ।

मानवता का दूसरा लक्षण है कि दूसरों की सुख-सुविधाओं का ध्यान रखते हुए अपने सुख एवं उन्नति की व्यवस्था करना । हम आगे तो बढ़ें पर ध्यान रहे कि हमारी दौड़ से दूसरे का पतन तो नहीं हो रहा है । जो अपने सुख को तिलांजलि देकर दूसरों की सुख-सुविधा के लिए प्रयत्न करते हैं, उन्हें देवता कहा जाता है । देवता देने वाला । जिन्होंने अपनी शक्तियों को-शरीर, धन, बल, बुद्धि, विवेक आदि को लोककल्याण के लिए विसर्जन करना सीख लिया निश्चय ही वे देवता हैं । जिस घर, गाँव या देश में ऐसे व्यक्तियों का निवास हो जाता है निश्चय ही वह घर, गाँव या देश स्वर्ग बन जाता है । वहाँ सदैव सुख और समृद्धि की वर्षा होती रहती है । दुःख-दारिद्र्य पास नहीं फटकते ।

मानव-जीवन की एक और बड़ी विशेषता उसकी चेतनाशक्ति का विकास है । यदि हमारी चेतनाशक्ति अविकसित एवं मुर्झाई हुई रही तो फिर जीवन की सार्थकता कहाँ रही ? शरीर की सुविधा के लिए तो हमने मकान, वस्त्र, वाहन, नौकर तथा अनेक प्रकार के उपकरण जीवन भर जुटाये परन्तु उसके स्वामी आत्मा की क्षुधा शान्त करने के लिए नहीं कुछ नहीं किया । हम इन्द्रियों के स्वामी हैं, दास नहीं, परन्तु व्यवहार में इन्द्रियाँ स्वामी बनकर रहीं और हम उनके सेवक । 'रथ' की साज-सज्जा में जीवन भर ध्यान देते रहे, परन्तु 'रथी' की उपेक्षा ही बनी रही तो यह कहाँ की बुद्धिमानी रही ?

आत्मा की भूख तो सद्गुणों के विकास से तृप्ति होती है। सद्गुणों की सच्ची सम्पत्ति पाकर के ही आत्मा अपने को समुन्नत समझती है । सद्गुणों से शून्य हृदय तो श्मशान की तरह डरावना लगता है और उसमें आनन्द और उल्लास के बीज तो बोये ही नहीं जा सकते हैं ।

अन्तःकरण में जब उच्च विचार उत्पन्न होंगे तो हमारे कार्य भी उत्कृष्ट होंगे । उत्कृष्ट विचार मस्तिष्क रूपी गुफा में बन्द कर नहीं रखे जा सकते हैं, वे तो सूर्य की किरणों के प्रकाश की तरह सारे अन्तरिक्ष एवं वायुमण्डल को आलोकित कर देंगे । विचारों की अभिव्यक्ति कर्म का रूप धारण करती है । कर्म की उत्कृष्टता या निष्कृष्टता विचारों की ही प्रतिक्रिया होती है । अतः जीवन सुखमय एवं सुन्दर बनाने के लिए विचार और कर्म में एकरूपता होनी चाहिए । कर्मों को देखकर ही किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का पता आसानी से लगाया जा सकता है । सत्कर्मों की प्रेरणा सद्भावनाओं से प्राप्त होती है तथा कुकर्म-दुर्भावनाओं के बीच जन्म लेते हैं । यश-अपयश, पाप-पुण्य, अपकार-उपकार दण्ड-पुरस्कार कर्मों के फलस्वरूप ही प्राप्त हुआ करते हैं । भावनाओं की

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्कृष्टता तथा कर्मों की सजीवता ये दोनों मिलकर ही जीवन को सार्थक बनाते हैं ।

क्रियमाण कर्म ही तो संस्कारों के जनक हैं और संस्कारों के आधार पर ही तो स्वर्ग, नरक एवं पुनर्जन्म की स्थिति का निर्माण होता है । हमारी भाग्य-लिपि तो पूर्व जन्म में किये गये कर्मों की अमिट निशानी है, जन्म के बाद आने वाले संस्कार हमारे पूर्व जन्म में किये गये कर्म ही तो हैं । अगले जीवन की तैयारी भी हमें अभी से करना प्रारम्भ कर देनी चाहिए । जिन्हें नारकीय यातनाओं, राग-द्वेष, ईर्ष्या, कलह, मार-पीट, लूट-खसोट, रक्तपात आदि के भोगने में किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव न होता हो तो उन्हें कुकर्म करने की खुली छूट है तथा इसके विपरीत जिन्हें स्वर्गीय सुख-शान्ति प्राप्ति करने की उत्कट आकांक्षा हो उनके लिए सत्कर्मों को जीवन में उतारना चाहिए । सद्भावनाओं एवं सत्कर्मों के समन्वय से मिलने वाला आनन्द अवर्णनीय होता है और उसकी यदि उपलब्धि हो जाये तो समझना चाहिए कि हमारा जीवन सार्थक हो गया ।

समुद्र की तरह हमारा अंतरंग भी महान है

जो कुछ आँखों से दीखता है, आमतौर से हमारी रुचि उसी में होती है और उसी के बारे में जानने की तथा उसी को पाने की इच्छा होती है । जो चर्म-चक्षुओं की परिधि से बाहर है उसकी ओर से प्रायः उदासीनता, उपेक्षा ही बनी रहती है । जबकि होना यह चाहिए कि जहाँ कहीं भी-जो कुछ भी-महत्त्वपूर्ण हो उसे समझने, पकड़ने के लिए हम प्रयत्नशील रहें । इसे अदूरदर्शिता ही कहना चाहिए कि सामने अथवा निकटवर्ती पदार्थों तक ही लोग सीमाबद्ध होकर रह जाते हैं ।

समुद्र को ही लें तो प्रतीत होगा कि वह जमीन से कई गुना अधिक विस्तृत है वरन् उसके गर्भ में छिपी सम्पदाएँ भी भूतल की तुलना में कहीं अधिक हैं । हमारी धरती का ७० प्रतिशत भाग पानी में डूबा हुआ समुद्र भाग है । खुली जमीन तो मात्र ३० प्रतिशत है । विभूतियाँ भी इसी अनुपात में बहिरंग और अन्तःरंग जीवन में भरी हैं, इसके गर्भ में जो मर्म छिपे हैं वे ऐसे हैं जिन्हें समझ कर अपूर्ण जानकारी की पूर्णता की दिशा में बहुत हद तक आगे बढ़ सकता है ।

सूक्ष्म और स्थूल को-बहिरंग और अन्तरंग की तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो भूतल से लेकर आकाश तक के प्रत्यक्ष दीखने वाले भाग को वैसा स्थूल एवं बहिरंग ठहरा सकते हैं, जैसा कि मनुष्य जीवन का नित्य अनुभव में आने वाला संसार । समुद्र की तुलना अन्तरंग और अप्रत्यक्ष जीवन से कर सकते हैं । जो प्रत्यक्ष की तुलना में कहीं अधिक गहरा बड़ा और सम्पत्तिवान, विभूतिवान है । समुद्र को 'रत्नाकर' कहा जाता है । इसका अर्थ यह है कि पृथ्वी पर पाये जाने वाली रत्न सम्पदा की अपेक्षा समुद्र में कहीं अधिक ऐसी रत्नराशि भरी पड़ी है जो अनायास ही चर्म चक्षुओं को दिखाई नहीं पड़ती ।

जितनी खोजबीन आकाश की-सामने प्रस्तुत की गई है, इतनी ही यदि समुद्र की, की जाती तो जो कुछ ऊपर उड़ने में पाया गया है उससे कहीं अधिक गहरे उतरने की दिशा में चलकर पाया जा सकता है । बाह्य जीवन को सुसम्पन्न बनाने के लिए भौतिक जगत की सम्पदाओं के संग्रह में अपनी जितनी दिलचस्पी है उतनी ही यदि अपना अन्तर खोजने की-उसमें दबी विभूतियों को समझने की-और पुरुषार्थपूर्वक अन्तःसम्पदा को हस्तगत करने की अपेक्षा रही होती तो हम घटिया स्तर का जीवन न जी रहे होते वरन् इतनी विभूतियों से सम्पन्न होते कि सुसम्पन्न-सुविकसित महामानवों की पंक्ति में बैठकर हम गौरवान्वित हुए होते ।

प्रशान्त महासागर का १० प्रतिशत भाग इन्हीं पहाड़ों और खाइयों से पटा पड़ा है । समुद्र तल से उनकी ऊँचाई चौदह हजार फुट तक नापी गई है । अटलांटिक सागर-हिन्द महासागर में इनका बाहुल्य है । पानी में भीतर डूबे हुए ऐसे १५ द्वीपों का भी अब तक पता लगाया जा चुका है जो कभी जमीन पर उभरे हुए थे किन्तु भूगर्भीय हलचलों ने उन्हें इस रसातल में डुबो दिया । समुद्र की गहराई ३६२०९ फुट तक पाई गई है ।

हमारे भीतर विभूतियों के उच्च शिखर वाले ऐसे पर्वतों की-इतनी बड़ी शृंखला है जिसे हम धरती के पर्वतों की तुलना में कहीं अधिक विशालकाय देख सकते हैं । पृथ्वी के पर्वतों की खनिज और वन सम्पदा से हमें लाभ मिलता है । प्रयत्न किया गया होता तो समुद्र के गर्भ में दबे पर्वत इससे कम नहीं अधिक ही लाभ दे सकते हैं, यही बात अन्तरंग जीवन में दबे छिपे विभूति-पर्वतों के बारे में लागू होती है । आत्मान्वेषी इस अनुसंधान में निरत होते हैं तो उन्हें इतना कुछ हाथ लगता है जिससे रत्नाकर शब्द की अक्षरशः सार्थकता समझी जा सके ।

समुद्रों के भीतर उत्तुंग शिखरों वाली पर्वत शृंखलाएँ भी फैली पड़ी हैं । इनकी लम्बाई प्रायः चालीस हजार मील है । इनके बीच-बीच में ८ से लेकर ३० कि० मी० तक चौड़ी और सैकड़ों फुट गहरी दरारें भी हैं । समुद्र शास्त्री चेलेन्जर से लेकर अब तक के शोधकर्त्ता इन पर्वत शृंखलाओं की विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रयत्नरत रहे हैं ।

समुद्र जल खारापन उन लवणों के कारण है जो नदियों द्वारा पृथ्वी में से बहाकर लाये जाते हैं । किन्तु ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि उसमें केवल खारा नमक ही भरा पड़ा है । उसमें मैगनीशियम क्लोराइड, गन्धक, कैलशियम, पोटाशियम जैसे प्रायः ५२ प्रकार के खनिज पदार्थ और भी पाये जाते हैं । एक जर्मन रसायनशास्त्री फ्रिज हेवर ने दावा किया था कि वह समुद्र जल में विद्यमान विपुल स्वर्ण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भण्डार को पानी से अलग करके जर्मनी को धन कुबेर बना सकता है । इसके लिए उसने सन् १९२५ से १९३६ तक भारी प्रयत्न किये । यद्यपि ऐसी विधि ढूँढ़ी नहीं जा सकी जिससे लागत कम लगे और स्वर्ण प्राप्ति हो, फिर भी यह तथ्य जहाँ का तहाँ मौजूद है कि समुद्र जल में सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा जैसे खनिज पदार्थ विपुल मात्रा में घुले हुए हैं । इस दृष्टि से समुद्र धरती की अपेक्षा कहीं अधिक अमीर है ।

मोटी दृष्टि इस खारेपन को देखकर ही उदासीन हो जाती है, पर अन्वेषी उसमें भरी बहुमूल्य सम्पदा को देखते हैं । अन्तरंग जीवन में मोटी दृष्टि से कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण हाथ नहीं लगता जो कुछ है सो सब कुछ बाहर ही दीखता है पर जिन्हें समझ है वे जानते हैं कि खारी समुद्रजल में-अप्रत्यक्ष अन्तरंग में-कितना कुछ दबा भरा पड़ा है ।

जल दो भाग उद्जन और एक भाग ओषजन गैस के मिलने से बनता है । अपने में वस्तुओं को घुला लेने की क्षमता जल में सबसे अधिक है । वह हवा से ८०० गुना अधिक सघन होता है और ३०० गुना अधिक ताप संग्रह कर सकता है । धरती के तापमान को और मौसम को नियन्त्रित रखने में जल भाण्डागार समुद्र की महती भूमिका है । ग्रीष्म आतप से तप्त पृथ्वी की शीतलता और अत्यधिक शीत में आवश्यक गर्मी देने का कर्त्तव्य समुद्र द्वारा जिस सुव्यवस्था के साथ किया जाता है उसी से धरती की स्थिति संतुलित बनी रहती है । सूर्य ताप से जब समुद्र जल सामान्य स्थिति से अधिक गरम या ठण्डा होने लगता है तो हवाओं की गति में असाधारण उतार-चढ़ाव आते हैं और आँधी-तूफान या सनसनाती हवाओं का अनुभव किया जाता है ।

बाहरी परिस्थितियाँ तरह-तरह के विक्षोभ उत्पन्न करती हैं पर यदि अन्तरंग समुद्र की तरह सुव्यवस्थित हो तो बाह्य जीवन को सुसन्तुलित रखने में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकता है । हम अपनी आन्तरिक गहराई और सरसता बढ़ा लें तो परिस्थितियों और व्यक्तियों द्वारा समय-समय पर पहुँचाई जाने वाली गर्मी को पचाया जा सकता है और उसके कारण उद्वेगों की आग में जल मरने की विपत्ति से बचा जा सकता है ।

जल ओषजन और उद्जन गैस का सम्मिश्रण है, आत्मबल भी विवेक और कर्त्तव्य के सम्मिश्रण से मिलता है । बाहरी समुद्र को देखकर हमें अपने भीतरी समुद्र को देखना चाहिए और यदि वह दृष्टि से ओझल हो गया हो तो फिर उस ओर ध्यान देना चाहिए ।

जमीन पर बहने वाली नदियों की तरह समुद्र के भीतर भी तीव्र सरिताएँ बहती हैं । इनमें से कुछ तो इतनी विशाल हैं कि उनमें धरती पर बहने वाली विशालतम नदी 'मिसीसिपी' जैसी पचास नदियाँ समा जाएँ । इनका उद्गम और अन्त सागर में ही होता है। इन्हें 'समुद्र धाराएँ-ओसियन करेन्टस्-कहते हैं। उत्तरी भूमध्य-रेखीय धारा-दक्षिण भूमध्य-रेखीय धारा लेब्राडोर-धारा-गल्फ स्ट्रीम आदि नाम उनके कार्यक्षेत्र के हिसाब से दिये गये हैं। ये समस्त सागरों और महासागरों में निर्द्वन्द्व विचरती हैं। इन धाराओं के प्रवाह से समुद्रों का जल प्रायः एक से दूसरे में जाने बदलने का क्रम चलता रहता है और प्रायः १६५ वर्ष में एक समुद्र का पानी दूसरे में चला जाता है।

धन, वैभव, विद्या, प्रतिभा, स्वस्थता, समर्थता जैसी सम्पदाएँ बहिरंग जीवन में भी नदियों की तरह बहती हैं और उनसे लाभ उठाया जाता है, पर अन्तरंग में सद्गुणों की-सत्प्रवृत्तियों की-सद्भावनाओं की समुद्री सरिताएँ बहती हैं । बाहरी नदियों से लाभ उठाना जिस तरह सीखा गया इसी प्रकार इस अन्तरंग जीवन के समुद्र में प्रचण्ड वेग से बहने वाली महानदी से यदि सम्पर्क बनाया जाय तो अणुशक्ति के उद्भव प्रयासों की अपेक्षा कहीं अधिक शक्ति हमें सहज ही मिल सकती है ।

समुद्रों की तरह भीतर भी षटचक्र हैं, उनकी शक्ति को एक दूसरे में हस्तांतरित करने वाली इड़ा पिंगला सुषुम्ना सरीखी दस महानदियाँ प्रवाहित होती हैं। इनके प्रवाह का संचय करके दृश्यमान बिजलीघरों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रचण्ड विद्युत का उत्पादन अपने भीतर किया जा सकता है ।

इन दिनों शहरों की सारी गन्दगी नदी-नालों में होती हुई समुद्र में पहुँच रही है। पहले जब आबादी विरल बसी होती थी तो यह कचरा उसी क्षेत्र में खाद बनकर जमीन में खप जाता था, पर अब मीलों लम्बे शहरों की घनी आबादी के द्वारा निसृत इस गन्दगी को नदियों में बहाना ही एकमात्र उपाय रह गया है और वह बहते-बहते अन्ततः समुद्र में ही जा पहुँचती है। कारखानों से निकले हुए कार्बन द्विओषद मिश्रित गन्दगी, भट्टियों से निकाला गया सीसा-आणविक भट्टियों द्वारा निकाले गये रेडियोधर्मी पदार्थ, निरन्तर समुद्र में पड़ रहे हैं इससे उसकी स्वाभाविक स्थिति का सन्तुलन बिगड़ता चला जा रहा है।

खतरा स्पष्ट है यदि समुद्र जल में काबर्न-द्वि-ओषद की मात्रा बढ़ेगी तो वह सूर्य ताप को वापिस लौटाने में असमर्थ हो जाएगी और अधिक मात्रा में गर्मी अपने भीतर संग्रह करने लगेगी । इससे वायुमण्डल का तापमान बढ़ेगा । फलस्वरूप मौसम की स्थिति में भयंकर हेर-फेर और वर्षा की कोई ऐसी व्यवस्थित रीति-नीति न रहेगी जिससे फसल के लिए उचित समय पर उपयुक्त मात्रा में वर्षा का जल उपलब्ध होने की आशा की जा सके ।

बाहर की गन्दगी रोज ही साफ की जाती है पर देखते हैं कि दोषग्राही और छिद्रान्वेषी प्रकृति अपने भीतर द्वेष-दुर्भावों की मात्रा दिन-दिन अधिक बढ़ाती चली जाती है और अन्तर में बढ़ती हुई गन्दगी के कारण जीवन विश्व का सन्तुलन ही लड़खड़ाता जाता है । यह आन्तरिक विषाक्तता यदि बढ़ती रही तो वह दिन दूर नहीं जब आन्तरिक असन्तोष, उद्वेग उफन पड़ेगा और सौन्दर्य भरे तट प्रदेशों को डुबोकर रख देगा । समुद्र में गिरने

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वाले कूड़े-करकट से उत्पन्न खतरे को समझा जा रहा है पर अन्तर में बढ़ती हुई गन्दगी से उत्पन्न हो सकने वाली विभीषिकाओं की ओर से न जाने क्यों आँखें मूँद ली गई हैं ।

समुद्र जल का तापमान औसतन ४० अंश फारेनहाइट के लगभग रहता है । यों हिन्द महासागर में वह ८० और लाल सागर में ९० फारेनहाइट तक पहुँच जाता है ।

यह सोचना उचित नहीं कि छूने में ठंडा लगने वाला समुद्र जल अशक्त जैसा होगा, उसके गर्भ में छिपी गर्मी भी कम नहीं है । हम निकम्मे और निरर्थक दीखते हैं पर बारीकी से देखें तो प्रगति के पथ पर बढ़ सकने योग्य क्षमता की गर्मी भी कम मात्रा में नहीं है ।

शून्य सेन्टीग्रेड तापमान आरम्भ होते ही समुद्र तल में बर्फ जम जाती है और वह उस तल पर तैरती रहती है । फलस्वरूप उसके आवरण से ढका नीचे का पानी ४ से० ग्रे० गर्म रहता है और वह बर्फ नहीं बनता । दूसरों शब्दों में इसी बात को यों कह सकते हैं कि समुद्र के गहन अन्तराल और शून्य से ऊपर के समुद्र के बीच एक रहस्य रखा है जहाँ बर्फ की एक मोटी सतह तैरती रहती है । इस स्थिति का लाभ यह होता है कि उस हिम परत के नीचे भी जल-जीवों का अस्तित्व बना रहता है ।

प्रतिकूलताओं के निराशाजनक वातावरण की ठंडक से अन्तस्तल में खिन्नता और शिथिलता आ घुसती है और समुद्र तल में जमने वाली बर्फ की मोटी सतह जैसी प्रतीत होती है। इतने पर भी यह नहीं भूल जाना चाहिए उस अन्तराल में इतनी गर्मी बनी रहती है ताकि उस क्षेत्र में रहने वाले जलचरों की जीवन-रक्षा रह सके। असफलताओं और विपन्नताओं की कड़क ठंडी सब कुछ जमा देने वाली लगे भले ही पर उसके अन्तराल में भविष्य की उज्ज्वल सम्भावनाओं का परिपूर्ण अवसर विद्यमान रहता है। अवरोधों की हिमाच्छादित परत कितनी ही मोटी क्यों न हो मानवी भविष्य को उज्ज्वल, अक्षुण्ण बनाये रह सकने योग्य गर्मी का अस्तित्व हर हालत में बना ही रहता है ।

कैलीफोर्निया के मत्स्य अन्वेषण अधिकारी थियोब्राउन ने अपनी खोजबीन का एक निष्कर्ष यह बताया है कि अवांछनीय कोलाहल सुनकर समुद्र की शार्क मछलियाँ विक्षिप्त हो उठती हैं और चट्टानों से सिर पटक कर आत्म- हत्या कर लेती हैं । उनके परीक्षण जब फ्रांसीसी पोलीनीशिया केरोंगरोआ एटोस में चल रहे थे तब उन्होंने गहरे समुद्र तल में अपना ध्वनि प्रवाहक ट्रांसमीटर डुबोया । जब तक मधुर ध्वनि निसृत होती रही तब तक मछलियाँ उसके इर्द-गिर्द हर्षपूर्वक चक्कर काटती रहीं, मानो उन्हें यह सब रुचिकर लग रहा हो । किन्तु जब तीव्र कर्कश ध्वनि की गई तो उनमें बेतरह भगदड़ मच गई, एक दूसरे पर हमला कर बैठीं और अपने सिर चट्टानों पर पटक कर आत्महत्या करने लगीं ।

आन्तरिक जीवन में यदि उद्वेग और दुर्भावों का कोलाहल बढ़ने लगा तो उससे अति महत्त्वपूर्ण क्षमताओं और विभूतियों की अगणित मछलियाँ दम तोड़ देने के लिए विवश हो जाएँगी । उन्हें स्नेह, सन्तोष, विवेक, उदारता जैसी मधुर राग-रागनियों का आनन्द मिलता रहे, तो अन्तः-क्षेत्र की प्रसन्नता बढ़ेगी और उसमें आन्तरिक विभूतियाँ उसी प्रकार प्रसन्न होंगी जैसी कि मधुर ध्वनि से जलजीवी मछलियाँ आनन्दित होती हैं । कर्कशता के वातावरण में तो इन विभूतियों को चट्टानों से सिर फोड़कर आत्म-हत्या करनी पड़ती है ।

समुद्र और अन्तःजीवन की तुलना करें तो दोनों में अद्भुत साम्य-सामंजस्य सिद्ध करने वाले अगणित आधार सामने आते हैं। अन्तरिक्ष में उड़ना कठिन है पर समुद्र तल में डुबकी लगाकर मणि-मुक्ताओं से घर भर लेना सामान्य मछियारों की तरह स्वल्प प्रयत्न और साधारण अभ्यास से ही सीखा जा सकता है ।

अन्तरात्मा परमात्मा का प्रतीक-प्रतिनिधि

मनुष्य में जहाँ शारीरिक-मानसिक स्तर की अनेक विशेषताएँ हैं, वहीं उसकी वरिष्ठता इस आधार पर भी है कि उसमें 'अन्तरात्मा' कहा जाने वाला एक विशेष तत्त्व पाया जाता है। उसमें उत्कृष्टता का समर्थन और निकृष्टता का विरोध करने की ऐसी क्षमता है, जो अन्य किसी प्राणी में नहीं पायी जाती । जीव-जन्तुओं में उनकी इच्छा या आवश्यकता की पूर्ति के निमित्त ही कई प्रकार की प्रेरणाएँ उठती हैं। इसमें उन्हें नीति-अनीति से कोई मतलब नहीं रहता। उदारता नाम की वस्तुमात्र मात्राओं में उस सीमा या समय तक पाई जाती है, जब तक कि उनकी सन्तानें असमर्थ रहती या स्वावलम्बी नहीं बनतीं । इस अवधि के समाप्त होने पर उनका ममत्व समाप्त हो जाता है । यौन कार्य के समय भी नर-मादा में कुछ आकर्षण या सहयोग जैसा सौजन्य उभरता है। आवश्यकता पूर्ण होने पर वह भी आमतौर से विस्मृत होते देखा गया है। जोड़ा मिलकर देर तक साथ-साथ रहने वाले तो कुछ पक्षी ही पाये गये हैं ।

मनुष्यों में यह स्नेह-सौजन्य, औचित्य, न्याय एवं उदारता, सद्भावना से भरे गुण पाये जाते हैं । यह किसी स्वार्थ या लोभ से प्रेरित होकर नहीं वरन् अन्तराल की गहरी परतों से उद्भूत होता और इतना प्रखर रहता है कि आदर्शवादिता के निमित्त कष्ट सहने या घाटा उठाने के लिये भी तत्परता बरती जा सके । यही अन्तरात्मा है, जो सत्कर्म करने पर भीतर ही भीतर प्रसन्न होती, गर्व-सन्तोष प्रकट करती हुई देखी जाती है । अनीति अपनाते समय अन्तर्द्वन्द्व विक्षुब्ध होता है और आत्म-प्रताड़ना की पीड़ा अपने आप ही सहनी पड़ती है । भर्त्सना, प्रताड़ना का भय न हो तो भी दुष्कर्म करते समय भीतर जी काटता-कचोटता है । यही अन्तरात्मा है । उसका प्रोत्साहन यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

रहता है कि आदर्शवादिता अपनाई जाय और दूसरों के सामने अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किये जाएँ।

तर्क या अर्थ-विज्ञान की दृष्टि से अन्तरात्मा की पुकारें, घाटा देने वाली और झंझट में फँसाने वाली होती हैं। इतने पर भी कुछ ऐसी उमंगें उठती हैं, जिनके कारण मनुष्य उस कष्ट को तप, सेवा, पुण्य-परमार्थ कहकर उत्साहपूर्वक सहन-वहन कर लेता है। जबकि पशु प्रवृत्ति में ऐसी उदारता अपनाने की कोई गुंजाइश नहीं है। यदि है भी तो इतनी उथली और क्षणिक जिसके कारण वे कोई इस प्रकार का महत्त्वपूर्ण कदम नहीं उठा सकते। दूसरी ओर मनुष्य है जो इसी अन्त:प्रेरणा से अनुप्राणित होकर त्याग-बलिदान भरे उच्चस्तरीय उदाहरण प्रस्तुत करता और न्याय रक्षा के लिए निजी स्वार्थ न होने पर भी कष्ट-झेलने का साहस करता देखा गया है । अन्तरात्मा ही मनुष्य में विराजमान परमात्मा का प्रतीक प्रतिनिधि माना गया है ।

प्रसिद्ध दार्शनिक 'इमेनुअल कान्ट' महोदय ने नैतिकता का आधार अन्त:अनुभूति को माना है, जिसे उन्होंने 'कैटेगोरिकल इम्पेरेटिव' अर्थात् 'अनिवार्य आज्ञा' नाम की संज्ञा दी है। यह व्यक्ति को उसकी अन्तरात्मा से प्राप्त होती है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'दी क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन' में लिखा है कि मनुष्य की बुद्धि एवं तार्किक विचार सांसारिक कार्यों को समझने के साधन हैं । आत्मा, परमात्मा या अन्य दार्शनिक समस्याओं का समाधान बुद्धि की सीमाओं से परे है ।

कान्ट महोदय के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में सदाचरण के लिए तार्किक विचारों से नहीं वरन् उसके अन्तस्तल से प्रेरणा मिलती है । त्याग, बलिदान के लिए भाव-सम्वेदनाएँ अन्दर से उछलती हैं । मानव-स्वभाव दो प्रकार के तत्त्वों से विनिर्मित है-एक स्वार्थ प्रधान रागात्मक-दूसरा विवेक परक जो व्यक्ति को परमार्थी बनाता है । स्वार्थ प्रधान रागात्मक वृत्ति तो मनुष्य को विषय-भोगों की ओर ले जाती है और विवेकात्मक तत्त्व न्यायप्रियता एवं आत्म-विकास की ओर अग्रसर करता है । वस्तुत: अन्तरात्मा की 'अनिवार्य आज्ञा' अथवा 'विवेक' ही मनुष्य की नैतिक उन्नति करता है ।

विवेकशीलता के आधार पर ही नैतिक नियमों का निर्धारण कर सकना सम्भव होता है । नैतिक नियमों के पालन से आन्तरिक-सन्तोष की उपलब्धि होती है । मनुष्य को आध्यात्मिक उपलब्धियों, विवेक या अन्तरात्मा की आवाज की अनुकूल आचरण करने से मिलती है । जब व्यक्ति किसी बाहरी सत्ता के दबाव या प्रलोभन से कोई कार्य करता है, तो वह अपने नैतिक स्तर से गिर जाता है । यहाँ तक कि यदि अन्तरात्मा की पुकार किसी राजनैतिक सत्ता या नियम के विरुद्ध उठती है तो उन नियमों का प्रतिकार करना ही नैतिकता है, जैसे कि गाँधी जी आदि सत्याग्रहियों ने किया था ।

कान्ट महोदय ने उच्च उद्देश्य या हेतु से किये गये कार्यों को नैतिक बताया है । कार्यों के परिणाम से नैतिकता का मापदण्ड नहीं किया जाना चाहिए। यदि कार्य उच्च उद्देश्यों से प्रेरित है तो नैतिक और निम्न हेतु से प्रेरित कार्य निम्न है । भौतिक सुखवादी लोग किसी कार्य-के परिणाम को देखकर नैतिकता का मापदण्ड करते हैं, वस्तुत: नैतिकता का सम्बन्ध कार्यों के हेतु से है ।

किसी भी कार्य के भीतरी एवं बाहरी दो परिणाम होते हैं । आन्तरिक परिणाम चिंता का परिष्कार और बाह्य परिणाम घटना के रूप में आता है । आन्तरिक परिणाम मनुष्य के नियन्त्रण में है, परन्तु बाह्य उसके वश में नहीं, वह प्रकृति की परिस्थितियों पर निर्भर है । इसीलिए कान्ट महोदय ने नैतिकता का आधार कार्यों का बाहरी परिणाम नहीं प्रत्युत् आन्तरिक परिणाम माना है । उनका कहना है कि प्रत्येक शुभ एवं उच्च हेतु शुभ आन्तरिक परिणाम ही देता है, जबकि उसका बाहरी परिणाम अच्छा या बुरा भी हो सकता है । इसी प्रकार प्रत्येक अशुभ या निम्न हेतु का आन्तरिक परिणाम अशुभ ही होता है । उसका बाहरी परिणाम अच्छा या अशुभ दोनों हो सकते हैं ।

अस्तु ! कान्ट महोदय के अनुसार व्यक्ति के नैतिक उत्थान के लिए उसके कार्यों के हेतु पवित्र व शुद्ध हों । उच्च उद्देश्यों के निमित्त किये गये कार्य ही अन्तत: मनुष्य को महामानव (सुपरमैन) बनने की ओर अग्रसर करते हैं ।

मार्टिनो के अनुसार- "जीवन को उत्कृष्ट बनाने, श्रेष्ठ व्यक्तित्व सम्पन्न बनाने के लिए सहज प्रेम या नि:स्वार्थ प्रेम भाव एक प्रधान कारक है । सहज प्रेम दूसरे व्यक्तियों के प्रति आत्मभावना से उभरता है । आत्मीयता के भावों से अभिप्रेरित नि:स्वार्थ प्रेम के विविध रूप हैं । मातृभाव, समाजभाव एवं करुणा, उदारता इस सहज प्रेम से ही उद्भूत सद्गुण हैं, जो सामान्य व्यक्ति को महामानव बनने में अमूल्य योगदान प्रस्तुत करते हैं ।"

सहज आत्मीयता के भावों से मनुष्य में ऐसी सत्प्रवृत्तियाँ उभरती हैं जो अपने सुख की परवाह न करके दूसरों के हितों को ध्यान में रखकर आचरण करने की प्रेरणा देती रहती हैं । सहज नि:स्वार्थ-प्रेम से मानव में उन स्थायी भावों का प्रादुर्भाव होता है जो उच्च आदर्शों एवं सिद्धान्तों पर चलने के लिए प्रेरणा और उत्साह देते रहते हैं। ये तीन प्रकार के स्थायी भाव ज्ञान प्रधान, भाव प्रधान और क्रिया प्रधान हैं, जो मनुष्य को सत्यान्वेषण, सौन्दर्यानुभूति और शिवत्व-परोपकार में प्रवृत्त करते हैं। विद्या, कला और धर्म के प्रति अभिरुचि एवं प्रेम भी मानव के चारित्रिक विकास के लिए आवश्यक है। मनुष्य में ये अभिरुचियाँ सहज या नि:स्वार्थ प्रेम-भावना से उद्भूत होती हैं और मनुष्य के भीतर देवत्व के उदय में बहुत कुछ सहयोग करती हैं ।

कान्ट ने मानव को महामानव बनाने में नैतिक नियमों का पालन अनिवार्य माना है । उनके अनुसार नैतिक नियमों में तीन प्रकार की विशेषताएँ हैं-(१)स्वतन्त्र इच्छाशक्ति जो अन्तरात्मा की आवाज पर निर्भर है

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(२)सभी के लिए समान रूप से उपयोगी सबके द्वारा आचरण में लाने योग्य व्यापक दर्शन एवं (३)मानव मात्र के हित का लक्ष्य ।

कान्ट ने मानव-जीवन का भौतिक आदर्श कठोर तप-त्यागमय बताया है । वासनाओं, तृष्णाओं एवं आकांक्षाओं के अभाव को ही उन्होंने विवेक युक्त कहा है । इच्छाओं से राग-द्वेष का होना स्वाभाविक है, जो विवेक के प्रतिकूल है। उनके अनुसार विवेक वैयक्तिक नहीं वरन् व्यापक वस्तु है । सभी के विवेक द्वारा लिये गये नैतिक निर्णय समान होते हैं । कान्ट महोदय ने कहा है कि मनुष्य की अन्तरात्मा भूल कभी नहीं करती, नैतिक भूल का कारण अन्तः की आवाज की अवहेलना होती है । उन्होंने भूल करने वाली अन्तरात्मा को मात्र कल्पना भर कहा है ।

कान्ट के कथनानुसार नैतिकता के औचित्य का निर्णय करने का कार्य अन्तःअनुभूति-अन्तःप्रेरणा ही करती है । यह अन्तर की ध्वनि एक व्यापक वस्तु-ईश्वर की आवाज है, जो देश-काल से परे है । किसी संकट की स्थिति में भिन्न-भिन्न देशों के लोगों के नैतिक-निर्णयों में समानता होती है । नैतिकता के आधार पर ही मानव समाज की एकता सार्थक एवं शक्य है ।

व्यक्ति की अन्तरात्मा सदैव यही प्रेरणा देती है कि वह मात्र अपने हित के लिए नहीं वरन् मानव मात्र के कल्याण के लिए कार्य करे । उसके अनुसार वही आचरण नैतिक है, जो सब लोगों के लिए सब समय में उचित हो । ईसा, सुकरात, बुद्ध, गान्धी, विवेकानन्द एवं अन्य भारतीय ऋषियों ने इसी को सर्वोत्तम नैतिक नियम बताया । सभी की अन्तःअनुभूति या अन्तरात्मा की आवाज व्यापकता की ओर ले जाती है । महानता का सच्चा पथ भी यही है। 'महाजनो येन गतः स पन्थः' इसी के लिए प्रयुक्त किया गया है ।

मनुष्य का विवेक जब जाग्रत होता है, तब वह अपना एक निश्चित नैतिक ध्येय निर्मित करता है । उसके विचारों में परिपक्वता आने लगती है । विचारों में प्रौढ़ता आने से वह उचित-अनुचित, नीति-अनीति, सत्-असत्, धर्म-अधर्म आदि का निर्णय कर सकने में सक्षम हो जाता है । कुछ नीतिविदों का कहना है कि मनुष्य की तार्किक बुद्धि की प्रवीणता के अनुपात में ही उसका विवेक जाग्रत होता है, जो अपने कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निर्णय कर लक्ष्य को प्राप्त करने की चेष्टा करता है । जिस अनुपात में व्यक्ति का विवेक जाग्रत होता जाता है, उसी अनुपात में उसका चरित्र विकसित होता जाता है । वह अपनी विवेक शक्ति से प्रारम्भ में भले ही सांसारिक वस्तुओं, विषय-सुखों को उपलब्धि की चेष्टा करे, परन्तु शीघ्र ही उनकी निस्सारता समझकर सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु-आत्म-सन्तोष, आध्यात्मिक पूर्णता की ओर उन्मुख हो जाता है । वह फिर समस्त समस्याओं का समाधान अपने अन्दर से ढूँढ निकालता है और आन्तरिक पूर्णता उपलब्ध करने का प्रयास करता है ।

नीति-शास्त्रियों ने तर्क-शक्ति व विवेक-शक्ति के द्वारा लक्ष्य-निर्धारण कर उस पथ पर चल पड़ने को 'लक्ष्यवाद' के नाम से सम्बोधित किया है । यह लक्ष्यवाद-मनुष्य का विवेक उसे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की ओर प्रेरित करता है । वह वैयक्तिक सुखों से सुखी नहीं होता, वरन् समस्त मानव जाति को सुखी देखना चाहता है और उसके लिए प्रयास करता है । विवेकवान मानेव के जीवन का लक्ष्य मात्र वैयक्तिक पूर्णता नहीं, वरन् सभी की पूर्णता प्राप्त करने का रहता है । वे किसी व्यक्ति, विशेष की पूर्णता को सच्ची पूर्णता नहीं मानते । ऐसे ही व्यक्ति को 'पूर्ण मानव' की संज्ञा दी जा सकती है और उस विवेकपूर्ण मार्ग का अवलम्बन ही मनुष्य को परिपूर्ण मानव बना सकता है ।

भगवान मनुष्य की अन्तरात्मा में ओत-प्रोत है

विज्ञान क्षेत्र के युगऋषि आइन्सटीन ने ईश्वर के अस्तित्व सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर देते हुए एक भेंटकर्त्ता से कहा था- मेरी दृष्टि में ईश्वर इस संसार में संव्याप्त एक महान नियम है । मेरी मान्यता के अनुसार ईश्वर सत्य-अन्तिम सत्य है। यों उसका स्पष्ट रूप निर्धारित कर सकना आज की स्थिति में अत्यन्त कठिन है । इसकी खोज जारी है । अन्तिम सत्य की खोज ही विज्ञान का परम लक्ष्य है । अपने मार्ग पर चलते हुए विज्ञान ने जो तथ्य ढूँढ़े और सत्य स्वीकारे हैं, उन्हें देखते हुए भविष्य में और भी बड़े सत्यों का रहस्योद्घाटन होता रहेगा । यह कार्य वैज्ञानिक शोध-पद्धति से ही सम्भव है ।

सिद्धान्तों, यन्त्रों और आविष्कारों में विज्ञान झाँकता भर दिखाई देता है । उन्हें उसकी उपलब्धियाँ भर कह सकते हैं । वस्तुतः विज्ञान एक जीवन्त प्रवृत्ति है, जो सत्य की शोध को अपना लक्ष्य मानती है । भले ही इसके फलस्वरूप पूर्व मान्यताओं पर आँच आती हो अथवा किसी वर्ग विशेष का हित-अनहित होता हो । सत्य को सत्य ही रहना चाहिए । विज्ञान की दृष्टि में ईश्वर 'सत्य' है । उसकी साधना को सत्य की खोज कह सकते हैं । इस प्रकार विज्ञान को अपने ढंग का 'आस्तिक' और उसकी शोध-साधना को ईश्वर उपासना कहा जा सकता है ।

आइन्सटीन के मतानुसार पदार्थ एवं जीवन का स्वरूप समझना ही नहीं उनका दूरदर्शितापूर्ण सदुपयोग करने का उपाय सोचना भी विज्ञान क्षेत्र में आता है । तत्त्वदर्शन को विज्ञान की एक शाखा मानते हैं और जीवन क्षेत्र में रुचि रखने वालों को परामर्श देते हैं ।

जिज्ञासा को जीवन्त रखो और सोचो कि तुम क्या कर रहे हो और क्यों कर रहे हो ? श्रेष्ठ व्यक्ति बनने का प्रयत्न करो । बिना दिये पाने का प्रयत्न मत करो । श्रेष्ठ व्यक्ति जीवन से अथवा व्यक्तियों से जितना लेता है उससे अनेक गुना उन्हें वापिस करने के प्रयत्न में लगा रहता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

३.२९ ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ

केनोपनिषद् के ऋषि ने परब्रह्म की व्याख्या आइन्सटीन से मिलती-जुलती ही की है । उसका प्रतिपादन है -

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।
यच्छ्रोत्रेण न शृण्वोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।
यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।

-केनोपनिषद १/३

अर्थात् परब्रह्म ऐसा कोई विचारणीय पदार्थ नहीं जिसे मन द्वारा ग्रहण किया जा सके । वह तो ऐसा तथ्य है जिसके आधार पर मन को मनन शक्ति प्राप्त होती है । उस परमतत्त्व की सामर्थ्य से ही मन को मनन कर सकने की क्षमता प्राप्त होती है । वह परब्रह्म ही नेत्रों को देखने की, कानों को सुनने की, प्राणों को जीने की शक्ति प्रदान करता है । परब्रह्म ऐसा नहीं है जिसे इन्द्रियों से देखना और मन से समझना सम्भव हो सके । वह सर्वान्तर्यामी और निरपेक्ष है । वह कोई देवता नहीं है और न वैसा है जिसकी परब्रह्म नाम से उपासना की जाती है ।

मुण्डकोपनिषद् के ऋषि का अभिमत भी इसी से मिलता-जुलता है । उनका कथन है-

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा
नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा ।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं
पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ।।

-मुण्डकोपनिषद २/७

अर्थात् आँखों से, जीभ से अथवा अन्य इन्द्रियों से उसे जाना नहीं जा सकता । मात्र तप और कर्मकाण्ड भी उसकी अनुभूति नहीं कराते । जिसका मन पवित्र और शान्त है, वह निर्मल ज्ञान की सहायता से गम्भीर ध्यान का आश्रय लेकर उसकी प्रतीति कर सकता है ।

ज्ञान और अन्तर्ज्ञान के अन्तर एवं कार्य क्षेत्र सम्बन्धी पूछे गये एक प्रश्न के उत्तर में आइन्सटीन ने कहा था-

ज्ञान आवश्यक है । उसी के सहारे दैनिक क्रिया-कलापों का संचालन और निर्णयों का निर्धारण होता है । फिर भी अन्तर्ज्ञान का अपना क्षेत्र और अस्तित्त्व है । हमारा मस्तिष्क मात्र वहीं तक सहारा देता है जहाँ तक कि उसकी जानकारी है अथवा तर्क की उड़ान उड़ती है । लेकिन एक स्थिति ऐसी भी आती है जहाँ चेतना उछल कर किसी ऐसे स्थान पर जा पहुँचती है जहाँ मस्तिष्क के सहारे पहुँच सकना कठिन है । संसार के महान् आविष्कार इसी रहस्यमयी अन्तःप्रज्ञा के आधार पर सम्भव हुए हैं । वहाँ से उनको प्रकाश मिला है । प्रमाणित करने वाले अन्वेषण का कार्य तो यह प्रकाश मिलने के उपरान्त आरम्भ होता है ।

ज्ञान उपलब्धि के तीन प्रसंग हैं-एक वह जो माता की गोदी से लेकर परिवार एवं सम्पर्क क्षेत्र की गतिविधियों के आधार पर संचित होता है और स्वभाव का अंग बनता है । दूसरा वह जो स्कूली तथा व्यवहार क्षेत्र में अनेकों अध्यापकों द्वारा प्रशिक्षण के रूप में प्राप्त होता रहता है । तीसरा अन्तिम चरण वह है जिसमें आत्मबोध होता है । जीवन का स्वरूप, उद्देश्य एवं उपयोग मस्तिष्क की जानकारी तक सीमित न रहकर जब आस्था बनकर परिपुष्ट होता है तब उसे आत्मबोध कहते हैं । यह वह उपलब्धि है जिसे पाकर एक सामान्य-सा राजकुमार महान् बुद्ध के रूप में साक्षात् भगवान बन गया था । इस तत्त्व की छोटी-सी मात्रा भी मनुष्य को अपने साथियों की तुलना में कहीं अधिक ऊँचा और कहीं अधिक सफल बनाती है । ज्ञान-भूमिका का यह तीसरा चरण आत्म-साक्षात्कार एवं ईश्वर दर्शन के रूप में माना गया है । आत्मा का एकाकी अस्तित्त्व आदर्शविहीन और नीरस ही रह जाता है, उसमें सरसता का संचार ईश्वर के समन्वय से ही सम्भव होता है । आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान को एक ही तथ्य का उद्बोधक माना गया है । ईश्वर विश्वास के साथ जुड़ा हुआ आत्म-विश्वास जब विकसित होता है तो उस पर उच्चस्तरीय आदर्शवादिता छाई रहती है । यह आच्छादन सामान्य दृष्टि से भले ही नगण्य-सा प्रतीत होता हो, पर उसका प्रतिफल क्रमशः अधिकाधिक श्रेय, फलदायक सिद्ध होता चला जाता है ।

जीवन की हर परिस्थिति में ईश्वर-विश्वास सहायक होता है वह असन्तुलन को सन्तुलन में बदलता है । निराशा के क्षणों में उसकी वह ज्योति चमकती है जिसे दीनबन्धु, भक्त-वत्सल, अशरण-शरण आदि नामों से पुकारते हैं और मातृतुल्य वात्सल्य प्रदान करने की, अंचल में आश्रय देने की कल्पना करते हैं । सफलताओं के साथ-साथ एक उन्मादी अहंकार आता है जिसमें स्वेच्छाचार की प्रवृत्ति पनपती है और मर्यादाओं की नीति-नियमों की चिन्ता न करते हुए स्वार्थ-साधना एवं अहमन्यता की पूर्ति के लिए कुछ भी कर गुजरने की उच्छृंखलता अपनाता है तो उसे आस्तिकता की भावना ही डराती है । वह कहती है यहाँ स्वेच्छाचार की किसी को भी छूट नहीं है । सबके ऊपर एक नियामक शक्ति मौजूद है और कर्मफल की दण्ड व्यवस्था भी मौजूद है जो इतनी कठोर है कि मर्यादा तोड़ने वाले को भली प्रकार सबक सिखा सकती है। भगवान की भयानकता से डरकर उच्छृंखलता पर बहुत कुछ नियन्त्रण होता रहता है । आस्तिकता में ईश्वर के गुणानवादों का कथन, श्रवण, मनन, चिन्तन, जुड़ा हुआ है । ईश्वर सद्गुणों का पुञ्ज है । पवित्रता, करुणा, ममता, उदारता जैसी सद्भावनाएँ ईश्वरीय अनुकम्पा के फलस्वरूप उपलब्ध होने वाली विभूतियाँ हैं । इस मान्यता से ईश्वर सान्निध्य के लिए-उपासना आदि प्रयास करते हुए मनुष्य अधिकाधिक चरित्र-निष्ठ और समाज-निष्ठ बनने का प्रयत्न करता है । समाज-निष्ठा को धार्मिकता और सभ्यता

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहते हैं । चरित्र-निष्ठा का दर्शन अध्यात्म कहलाता है उसी का दूसरा नाम संस्कृति भी है । इन्हीं के आधार पर मनुष्य प्रामाणिक और पराक्रमी बनता है । प्रगति के यही दो चरण हैं जिनके सहारे लोग भौतिक एवं आत्मिक क्षेत्र में आगे बढ़ते हैं । ईश्वर की मान्यता का प्रभाव न्यूनाधिक मात्रा में सदाशयता और शालीनता की अभिवृद्धि में ही दृष्टिगोचर होता है । यों बुराइयाँ तो आस्तिकों में भी पाई जाती हैं, पर नास्तिकता अपना लेने पर तो मनुष्य मर्यादा उल्लंघन के सम्बन्ध में और भी अधिक निर्भय हो जाता है । सम्भावनाओं की दृष्टि से देखा जाय तो आस्तिक की तुलना में नास्तिक के अनाचार मार्ग पर चल पड़ने की अधिक सम्भावना है । श्रेष्ठ मार्ग पर कदम बढ़ाने वाले के लिए ईश्वर विश्वास एक सुयोग्य एवं सुसम्पन्न साथी की तरह सहायक सिद्ध होता है, वह सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रोत्साहन ही नहीं, वरन् सहायता के आश्वासन भी देता है । इन दोनों आन्तरिक उपलब्धियों के सहारे चलने वाले का साहस प्रतिकूलताओं के बीच भी अविचल बना रहता है । नास्तिक ऐसी किसी सहायता की आशा नहीं करता, साथ ही अपनी दुर्बलताओं एवं कठिनाइयों को देखता रहता है । ऐसी दशा में उसे ऐसी अन्तःस्फुरणा का लाभ नहीं मिलता जो अग्रगमन के लिए अनुकूल साधनों से भी अधिक मूल्यवान होती है ।

बुद्धि की एक सीमा है। प्रत्येक प्राणी को वह उसकी आवश्यकता के अनुरूप ही मिली है । उसके आधार पर चेतना के परतों को समझना तो दूर पदार्थ के प्रत्यक्ष दर्शन से आगे की-उसकी सूक्ष्म क्षमताओं तक की पूरी जानकारी नहीं हो सकी । प्रकृति के अनेक रहस्यों को जानने में मनुष्य ने आश्चर्यजनक सफलता पाई है, पर अभी जो जाना गया है उसकी तुलना में अविज्ञात का विस्तार अत्यधिक है । प्रकृति के नये-नये रहस्यों का उद्घाटन आये दिन होता रहता है । यह क्रम आगे भी चलता रहेगा किन्तु इस भौतिकजगत की सूक्ष्मतम परिस्थितियों को पूर्णतया जान सकना कभी भी सम्भव न हो सकेगा, क्योंकि प्रकृति के विस्तार की तुलना में मानवी बुद्धि की एक सीमा और मर्यादा है उससे आगे बढ़ सकना उसके लिए सम्भव नहीं है ।

इस सन्दर्भ में दार्शनिक विज्ञानवेत्ता हिंटक ने अपनी पुस्तक 'साइन्टिफिक रोमांसेज' में प्राणियों की बुद्धि सीमा-बन्धन के कितने ही उदाहरण दिये हैं । वे आँख से न दीख सकने वाले एक जीव 'माइक्रोब' का उल्लेख करते हुए बताते हैं कि उसे केवल लम्बाई-चौड़ाई की दो दिशाओं का ही ज्ञान है । ऊँचाई से वह परिचित नहीं है । उसे समतल फर्श पर रख जाय तो वह चलता ही रहेगा किन्तु यदि आगे कोई तख्ती खड़ी कर दी जाय तो रुक भर जाएगा। उसका कारण न समझ सकेगा और न उससे बच निकलने का कोई उपाय ही करेगा । यदि तख्ती हटा दी जाय तो फिर चलने लगेगा किन्तु उस अवरोध के खड़े होने या हटने से उसकी गति पर क्यों प्रभाव पड़ा, इसका कुछ भी कारण न समझ सकेगा। तख्ती खड़ी होने या हटने के क्रिया-कलाप के सम्बन्ध में कोई कल्पना तक कर सकना उसके लिए सम्भव न होगा। इतने पर भी माइक्रोब के अतिरिक्त अन्य प्राणी यह तो स्वीकार नहीं ही करेंगे कि ऊँचाई का कोई आयाम ही नहीं होता। लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई के तीन आयाम सर्वविदित हैं। चौथा आयाम बुद्धि का भी है। बुद्धि की भी एक सीमा-मर्यादा है। वह न तो असीम है-न निर्भ्रान्त और न सर्वज्ञ है। हर प्राणी की आवश्यकता को देखते हुए प्रकृति ने उसे कामचलाऊ मात्रा में इस उपहार से सुसज्जित किया है। उसमें घट-बढ़ भी एक सीमित मात्रा में ही हो सकती है। मानसिक अपंगों की बात दूसरी है ।

कर्मफल न चाहते हुए भी मिलते हैं । कोई नहीं चाहता कि उसे अशुभ कर्मों के फलस्वरूप दण्ड मिले । कोई नहीं चाहता कि पुरुषार्थ के अनुपात से ही सफलता मिले। हर कोई दुःख से बचना और सुख का अधिकाधिक लाभ पाना चाहता है। पर यह इच्छा कहाँ पूरी होती है ? नियामक शक्ति द्वारा पदार्थों की तरह ही प्राणियों पर भी अंकुश रखा जाता है और जहाँ भी वे आलस्य-प्रमाद बरतते हैं वहीं असफलताओं की, पिछड़ेपन की हानि उठाते हैं । व्यवस्था तोड़ते ही ठोकर खाते और दण्ड पाते हैं। विष खाना और पानी में कूदना अपने हाथ की बात है, पर उसके दुष्परिणामों से बच सकना कभी-कभी संयोगवश ही होता है । अपनी ही चेतना की सूक्ष्म परतों में ऐसी व्यवस्था 'फिट' है कि वह कुविचारों, कुकर्मों का प्रतिफल स्वसंचालित पद्धति से अपने आप ही प्रस्तुत करती रहती है । इसे झुठलाना या इससे बच निकलना भी किसी के हाथ में नहीं । देर तो होती है, पर अन्धेर की तनिक भी गुंजाइश नहीं है । आज के कर्मों का फल कल मिले इसमें देरी तो हो सकती है किन्तु कुछ भी करते रहने और मनचाहे प्रतिफल पाने की छूट किसी को भी नहीं है। उत्पादन, अभिवर्द्धन और परिवर्तन की प्रक्रिया से सभी को असुविधा अनुभव होती है । सभी सुविधाजनक स्थिति में रहना चाहते हैं, पर सृष्टि-क्रम के आगे किसी की भी मर्जी नहीं चलती । इस व्यवस्था प्रवाह को ईश्वर समझा जा सकता है ।

अन्तःकरण में एक ऐसी शक्ति काम करती है जो सन्मार्ग पर चलने से प्रसन्न, सन्तुष्ट हुई दिखाई पड़ती है और कुपंथ अपनाने पर खिन्नता, उद्विग्नता का अनुभव करती है । अन्तरात्मा की इसी परत में ईश्वर झाँकता हुआ देखा जा सकता है ।

मानव जीवन में समता, सहयोग, शिक्षा, साहस, चरित्र और सुरक्षा जैसे उच्चस्तरीय तत्वों के अभिवर्धन की आवश्यकता है । यह मनन स्थितियाँ भी हैं और परिस्थितियाँ भी । इन्हें आस्थाओं की गहराई में प्रवेश करने के लिए जिस दर्शन की आवश्यकता है वह आस्तिकता का ही हो सकता है । निजी और तात्कालिक संकीर्ण स्वार्थपरता पर अंकुश लगाकर ही सामाजिक और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आदर्शवादी मूल्यों का परिपोषण हो सकता है । प्रत्यक्षवाद का दबाव यह रहता है कि अपना सामयिक स्वार्थ, सिद्ध किया जाय भले ही उसके फलस्वरूप भविष्य में अपने को ही हानि उठानी पड़े अथवा सार्वजनिक अहित करना पड़े । इस पशु प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने से ही मानवी आदर्शों की नींव रखी जा सकती है । इस स्तर की आस्थाएँ उत्पन्न करने में आस्तिकतावादी दर्शन से बढ़कर और कोई मनोवैज्ञानिक स्थापना हो नहीं सकेगी । देश-भक्ति, समाज-निष्ठा, अति मानव आदि के कितने ही विकल्प इसके लिए रखे गये और प्रयुक्त होते रहे हैं, पर उनसे बौद्धिकता अधिक और आध्यात्मिकता स्वल्प रहने से आस्था न बन सकी और नीति के रूप में जो जाना-माना गया था वह संचित कुसंस्कारों की पशुप्रवृत्ति के सामने ठहर न सका । मानव-जीवन की गरिमा और सामाजिक सुव्यवस्था के लिए साधनों की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी आस्थाओं की है । आस्तिकता का मूलभूत आधार इसी स्तर की आस्थाएँ उत्पन्न करता है ।

विभूतिवान व्यक्तियों का अभिवर्द्धन आवश्यक

मनुष्य को यदि जन्म से ही अकेला छोड़ दिया जाय तो वह बुद्धि और भावना की दृष्टि से नितान्त पशु सदृश होगा । उसमें मनुष्योचित स्वभाव, संस्कार, विचार एवं क्रिया-कलाप का कोई चिह्न न मिलेगा । हम आज जो कुछ भी हैं सामाजिक अनुदानों की विभूतियों से लाभान्वित होने के कारण हैं । विशाल-मानव-समुदाय की सदस्यता का जो लाभ मिला है उसी के कारण विविध प्रकार की भौतिक और आत्मिक उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकने में सफल हुए हैं ।

थोड़ा अधिक विचारपूर्वक देखें तो पता चलेगा कि मनुष्य लगभग पूर्णतया परोपजीवी है। उसकी जीवन प्रक्रिया दूसरों की सहायता से चल रही है। हम दूसरों का उगाया अन्न खाते हैं । दूसरों के तैयार किये कपड़े पहनते हैं। दूसरों के बनाये घरों में निवास करते हैं । दूसरों की बनाई भाषा में बोलते हैं । दूसरों की लिखी पुस्तकों के सहारे अध्ययन करते हैं । जिन उपकरणों का हम उपयोग करते हैं उनमें अपने बनाये हुए कितने होते हैं । मित्र मण्डली, परिवार के सदस्य, हितू-सम्बन्धी, सभी तो दूसरे हैं उन्हीं के सहारे दैनिक-जीवन में व्यवस्था और सरसता रहती है। आजीविका के लिये दूसरों के सहयोग पर निर्भर रहना पड़ता है । मानवी बुद्धिमत्ता को बहुत महत्त्व दिया जाता है सो ठीक है । पर यह ध्यान रखना चाहिए कि सहयोग की मूल प्रवृत्ति ने ही बुद्धिमत्ता को विकसित किया है । मस्तिष्क कितना ही तीव्र क्यों न हो यदि उपयुक्त वातावरण न मिले, जनसहयोग उपलब्ध न हो तो मस्तिष्कीय क्षमता ऊसर में उगे अंकुर की तरह मुरझा कर नष्ट ही हो जाएगी । अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य की जो अतिरिक्त विशेषता है उसे बुद्धिमत्तापूर्ण सहकारिता के नाम से ही पुकारा जाना चाहिए ।

समाज में जो कुछ भौतिक और आध्यात्मिक विशिष्ट उपलब्धियाँ दृष्टिगोचर होती हैं वे सृजनशील व्यक्तित्वों द्वारा, अगणित पीढ़ियों द्वारा उपार्जित और प्रदत्त अनुदान हैं । किसी ने आग को खोजा, किसी ने कृषि, किसी ने पशुपालन, किसी ने चिकित्सा, किसी ने वस्त्र, किसी ने भाषा का सृजन किया । साहित्य की तरह विज्ञान की भी अगणित धाराएँ हैं । उनका क्रमिक विकास सृजनशील मस्तिष्क ही करते आये हैं । शासन, नीति, शास्त्र, धर्म, और अध्यात्म का ढाँचा भी दूरदर्शी और चिन्तनशील मनुष्यों ने ही किया है । हमारी आज की चिन्तन प्रक्रिया ऐसी लगती है मानो वह स्वतन्त्र एवं उपार्जित है पर सच तो यह है कि हम किन्हीं अन्य लोगों द्वारा सृजन किये विचारों की लहरों पर ही तैरते रहते हैं । विशुद्ध स्वतन्त्र चिन्तन तो कदाचित ही किसी के पल्ले पड़ता है ।

न्याय और औचित्य सम्बन्धी हमारी मान्यताएँ भी अपनी नहीं हैं । उन्हें सामुदायिक प्रवाह ने नदी-नहरों की तरह बनाया है हम तो उसके बहाव में घास-फूस की तरह तैरते भर हैं । व्यक्ति के विकास में समाज का असाधारण योगदान है । यह सुनिश्चित है । पर यह बात उससे भी अधिक सही है कि समाज का जैसा भी कुछ भला-बुरा ढाँचा सामने है उसे सृजनशील व्यक्तित्वों ने खड़ा किया है। समाज बड़ी बात है । पर उससे भी बड़ी बात है सृजनशील व्यक्तित्वों की सत्ता ।

हम इस सुन्दर संसार को अगणित सुविधा-साधनों से भरा-पूरा देखते हैं और सुख-सन्तोष के प्रचुर आधारों का उपयोग व उपभोग करते हैं । बारीकी से देखें तो इन उपलब्धियों के पीछे किन्हीं सृजनशील व्यक्तियों के अथक और तत्पर प्रयत्न ही झाँकते दिखाई देंगे ।

निस्सन्देह हम प्रगति और समृद्धि के युग में रह रहे हैं । वैज्ञानिक आविष्कारों की धूम है । समृद्धि के साधन बढ़ रहे हैं । शिक्षा एवं विचार विस्तार का क्षेत्र भी सुविस्तृत हो रहा है पर यह सब कुछ मशीनी ढंग से हो रहा है, यह सब प्रसन्नता के कारण है पर साथ ही यह दारुण दुःख भी बढ़ रहा है कि युग की परिस्थितियों पर दूरगामी चिन्तन करने वाले और समाज को दिशा देने वाले सृजनशील व्यक्तियों की संख्या घटती चली जा रही है । मस्तिष्क विकसित होते रहें किन्तु उर्ध्वगामी प्रखरता सम्पन्न व्यक्तित्व घटते रहे तो हमारी सारी समृद्धि अन्ततः विपत्ति के रूप में ही परिणत होगी । अदूरदर्शी बुद्धिमत्ता की अपेक्षा निकट मूर्खता कम विघातक होती है । चतुर किन्तु दुष्ट से बढ़कर कदाचित ही कोई विघातक तत्व इस धरती पर हो सकता है ।

धरती के कोने-कोने में आबादी आँधी-तूफान की तरह बढ़ रही है । किन्तु ऐसे लोगों की संख्या निरन्तर घटती चली जा रही है जो समाज को नैतिक और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मिक उपलब्धियाँ प्रदान कर सकें । धन उपार्जन और विज्ञान के विकास पर लोगों का ध्यान केन्द्रित है । फलस्वरूप विभूतिवान व्यक्तित्वों का प्रवाह उसी दिशा में मुड़ चला है । लगता है नैतिक और सामाजिक मूल्यों की उपयोगिता भुला दी गई है और उस क्षेत्र में बढ़-चढ़ कर काम करने की आवश्यकता नहीं समझी जा रही है । अब ऐसे अग्रिणी लोग उँगलियों पर गिने जाने जितने ही मिलेंगे जिनका व्यक्तित्व मानवी चिन्तन को अधिक पवित्र और अधिक लोकोपयोगी बनाने की तप-साधना में निरत हो ।

उद्योग और विज्ञान के क्षेत्र में संगठित संस्थानों का बोल-बाला है । उनके अन्तर्गत काम करने वाले व्यक्ति क्रमशः उपकरण मात्र बनते चले जाते हैं । अच्छे वेतन और अच्छे पुरस्कार की लालसा से वे काम करते हैं और साथ के साथ अपने कर्तृत्व का मूल्य चुकाते रहते हैं । ऐसी दशा में न तो वे स्वयं अनुभव करते हैं और न समाज ही ऐसा मानता है कि उनने किसी आदर्श की स्थापना की अथवा कोई अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया । इस प्रकार की अन्तःतुष्टि के बिना व्यक्तियों में महानता उभरती ही नहीं । हम देखते हैं कि महान व्यक्तित्वों की दृष्टि से यह धरती क्रमशः बन्ध्या होती चली जा रही है ।

कला के क्षेत्र में अब सच्चे कला साधकों का अभाव होता चला जा रहा है । चित्रकार, साहित्यकार-कवि और गायकों के क्षेत्र में जब इस उद्देश्य से दृष्टि दौड़ाई जाय कि किनकी उद्देश्य पूर्ण साधना थी तो निराशा ही हाथ लगेगी । प्रलोभन के लिए उछल-कूद करने वालों की संख्या बढ़ी है पर इससे कला का स्तर तनिक भी ऊँचा नहीं उठा । उसके प्रति विचारशील वर्ग के आकर्षण में बुरी तरह गिरावट आई है । आश्चर्य नहीं कलाकार और कला प्रेमियों को अगले दिनों 'बजारू' कहा जाने लगे ।

शासन-तन्त्र चलाने वाले राजनीति के क्षेत्र में बहुत हैं, पर जनता के हृदय पर शासन करने की विभूति से वे लोग क्षीण होते चले जा रहे हैं । लोकमानस में से स्वतन्त्र चेतना, दूरदर्शिता और न्याय-बुद्धि की मात्रा घट जाने का परिणाम यह हुआ है कि राजसत्ताओं की जड़ें खोखली हो रही हैं । गृहकलह और अन्तर्द्वन्द्वों में राष्ट्रीय सामर्थ्य का जिस तरह क्षरण हो रहा है उसे देखते हुए लगता है कि सृजन के लिए भावनात्मक उभार की मात्रा नगण्य-सी ही बच पायेगी ।

यही बात धर्म के क्षेत्र में है । जगद्गुरु अथवा अवतारी कहलाने की धृष्टता पूर्ण आतुरता कितनों को ही व्यग्र किये हुए है । मठाधीशों के वैभव बढ़ रहे हैं । पर उज्ज्वल, चरित्र, अगाध-ज्ञान और सेवा-साधना के आधार पर जन-साधारण की सहज श्रद्धा अर्जित करने वाले धर्मात्मा आज कहाँ हैं ?

जहाँ प्रखर व्यक्तित्व होंगे, वहाँ समाज का स्तर समुन्नत होगा और जहाँ समुन्नत समाज होगा, वहाँ विभूतिवान व्यक्तित्व आगे आयेंगे। दोनों के परस्पर आदान-प्रदान से ही शान्ति और समृद्धि की आधारशिला रखी जाती है, न कि साधनों के अभिवर्धन होने से ।

हमें तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए विशेषतया मानव जाति के उज्ज्वल भविष्य का विश्व-व्यापी सुख-शान्ति का-चिन्तन करते हुए । विभूतिवान व्यक्तित्वों का अभिवर्धन करने पर यदि समुचित ध्यान दिया जाय तो ही वह सब प्राप्त हो सकेगा जिसकी कि आज वस्तुतः आवश्यकता है ।

अणुशक्ति से अधिक सामर्थ्यवान आत्मशक्ति

विश्व का कण-कण शक्ति से भरा पड़ा है । पर दुर्भाग्य-वश हम उसके अभाव में और कष्ट अनुभव कर रहे हैं । अणु की शक्ति का क्या ठिकाना सूर्य तो शक्ति का स्रोत ही है । गामा किरणें, कास्मिक किरणें, रेडियो किरणें, एक्स प्रभृति किरणें कितनी ही शक्ति धाराएँ लोकलोकान्तरों से इस पृथ्वी पर आती रहती हैं, उनका एक बहुत छोटा अंश प्रयुक्त होता है, शेष ऐसे ही अस्त-व्यस्त होकर विनष्ट हो जाता है ।

शक्तिशाली बनने के लिए हमें दो कदम उठाने पड़ेंगे-एक, आस-पास बिखरी हुई शक्ति का संचय; दूसरे उसका सदुपयोग। संचय कर सकने की क्षमता न होने से घोर जल वर्षा होते रहने पर भी एक बूँद चुल्लू पानी नहीं मिलता और हाथ मलते रह जाते हैं । इस प्रकार प्रस्तुत वस्तुओं का यदि सदुपयोग न हो सके तो भी लाभदायक स्थिति प्राप्त करने से वंचित ही रहना पड़ता है। यदि शक्ति की व्यापकता और प्रचुरमात्रा में उपस्थिति से परिचित होने के साथ-साथ उसका संग्रह और सदुपयोग विधान भी समझ में आ जाय तो समझना चाहिए कि हम सर्वशक्तिमान न सही अतीव शक्तिशाली अवश्य बन सकते हैं और आज की दयनीय स्थिति से कहीं आगे बढ़ सकते हैं ।

अणु के स्वरूप, बल तथा बाहुल्य पर दृष्टिपात करें तो आश्चर्य होता है कि अपने अति समीप अतिशय शक्ति भंडार प्रस्तुत है, किन्तु उससे लाभ उठाते नहीं बन पड़ रहा है । अणु-शक्ति की संक्षिप्त जानकारी भी हमें आश्चर्य में डाल देती है ।

अणु का आकार एक इन्च के २० करोड़वें भाग के बराबर होता है । अब तक बने सूक्ष्मदर्शक यन्त्रों में से कोई भी अणु को अकेला नहीं देख सकता । उसे तोलने की कोई तराजू भी नहीं बनी है । फिर भी गणित के आधार पर उसकी नाप-तौल, आकृति-प्रकृति आदि का बहुत कुछ विवरण जान लिया गया है । परमाणु को एक ब्रह्माण्ड कह सकते हैं। उसके भीतर ग्रह-नक्षत्र भी हैं और आकाश भी। बीचों बीच एक 'केन्द्रक' है। प्रोटोन और न्यूट्रान से बना बाकी खाली मैदान पड़ा है, जिसके इलेक्ट्रान चक्कर लगाते रहते हैं। 'केन्द्रक' को यदि एक गेंद के बराबर माना जाय तो पूरे परमाणु कलेवर को २००० फुट व्यास का मानना पड़ेगा। भ्रमणशील इलेक्ट्रानों का भार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न्यूट्रान या प्रोट्रोन की अपेक्षा १८५० अंश ही होता है। सभी परमाणुओं में इन उपअणुओं की संख्या समान नहीं होती। किसी तत्व में वे कम होते हैं किसी में अधिक।

भूतकाल में यह मान्यता थी कि यह समस्त संसार पाँच तत्वों से मिलकर बना है । उन पाँच तत्वों के नाम पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश माने जाते थे । पर ज्ञान के अभिवर्धन के साथ उपरोक्त मान्यता को झुठला दिया है । नये प्रतिपादन यह बताते हैं कि पूर्व मान्यता वाले तथा कथित पञ्च तत्व मौलिक तत्व नहीं हैं । वे एक प्रकार के सम्मिश्रण हैं । जल कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं । वह कुछ गैसों का सम्मिश्रण है । यही बात शेष चार तत्वों के सम्बन्ध में कही गई है ।

भौतिक-तत्वों की शोध का क्रम चल ही रहा है । वह अभी पूर्ण नहीं हुआ । पिछले दिनों १०४ मौलिक तत्व ज्ञात किये जा चुके हैं । इनमें भी कुछ सर्वथा मौलिक हैं, कुछ सम्मिश्रित, इनमें से ९२ को सर्वथा प्राकृतिक माना जाता है शेष को मिश्रित या कृत्रिम । अगले दिनों इन तत्वों की संख्या और भी बढ़ने की सम्भावना व्यक्त की जा रही है ।

मौलिक तत्वों के शोध प्रयास में 'परमाणु' को 'अविभाज्य' तत्व की मान्यता मिली हुई थी पर पीछे उसे भी एक सम्मिश्रण सिद्ध कर दिया गया । विज्ञानी प्राउट ने उसे धनावेश और ऋणावेश दो घटकों में विभक्त बताया । धनावेश को 'प्रोटोन' नाम दिया गया और ऋणावेश को-इलेक्ट्रान । पीछे क्यूरी दम्पत्ति ने परमाणु में एक और तत्व की खोज की जिसे 'न्यूट्रान' नाम दिया गया, इसे आवेश रहित बताया गया । सी. डी. टन्डरसन ने इलेक्ट्रान के समतुल्य किन्तु आवेश में विपरीत स्थिति के एक और नये कण की खोज की उसका नाम 'पाजीट्रान' पड़ा । जापानी वैज्ञानिक युकावा ने उसी परमाणु परिवार के मेसान कणों की खोज की, इन्हें पाई-मेसान, के-मेसान, क्यूमेसान नाम दिया गया है ।

परमाणु के उपरोक्त अंग-प्रत्यंगों में भी अब भेद उपभेद निकलते चले आ रहे हैं । हाइपेरान परिवार के 'लैक्वडा कण, ऐन्टा हाइयेरान, सिग्मा केस्केड, फोटान, न्यूट्रिनो आदि परमाणु के उपभेद इन दिनों विशेष शोध के विषय बने हुए हैं । इन मौलिक तत्वों के अतिरिक्त लगभग वैसी ही विशेषताओं से युक्त नये तत्व-कणों का कृत्रिम सम्मिश्रण तैयार किया जा रहा है । इन सब एटामिक कणों की आकृति और प्रकृति में अति आश्चर्यजनक नवीनताएँ प्रकट होती चली जा रही हैं ।

भावी शक्ति-स्रोत के लिए इन दिनों परमाणुशक्ति पर निगाह लगी हुई है और उसका सुलभ उपयोग तलाश किया जा रहा है । आश्चर्य है कि परमाणु जैसी नगण्य इकाई-तुच्छ सी वस्तु किस प्रकार, किस शक्ति का प्रचण्ड स्रोत बनकर मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति में महत्व-पूर्ण भूमिका सम्पादित कर सकेगी ।

परमाणु में शक्ति उत्पन्न करने का क्रिया-कलाप है-अणु-बिखण्डन । इसके लिए मूल तथा यूरेनियम का प्रयोग किया जाता है । उस पर न्यूट्राणुओं का आघात करने से आसानी से टूट जाता है । उपलब्ध यूरेनियम का सर्वांश बिखण्डन के योग्य नहीं होता । उसमें ०. ७१ प्रतिशत ही विखंडनीय अंश है शेष तो अन्य वस्तुएँ ही उसमें मिली हुई हैं-जिन्हें उर्वर कहा जा सकता है । प्रयत्न यह हो रहा है कि इस उर्वर अंश को भी बिखण्डन में सहायता देने योग्य बनाया जाय । वैज्ञानिकों की भाषा में शुद्ध अंश को यूरेनियम-२३५ और अशुद्ध अंश को-२३८ कहा जाता है । इस २३८ अंश पर न्यूट्राणुओं का आधार करके उसे भी एक नये पदार्थ-प्लूटोनियम-२३९ में परिणत कर लिया जाता है । इस प्रकार लगभग यह सारा ही मसाला घुमा फिरा कर परमाणु शक्ति उत्पन्न करने में प्रयुक्त हो सकने योग्य बना लिया जाएगा ।

एक घन फुट यूरेनियम से इतनी शक्ति उत्पन्न की जा सकती है जितनी १७ लाख टन कोयले में से अथवा ७२ लाख बैरल तेल में होती है । इसे ३२० खरब घनफुट प्राकृतिक गैस के बराबर भी समझा जा सकता है ।

अणु शक्ति का न केवल बिजली उत्पन्न करने में उपयोग है वरन् केन्सर सरीखे जटिल रोगों की चिकित्सा में भी उसे प्रयुक्त किया जाता है । बम्बई के टाटा संस्थान ने इस दिशा में बहुत प्रगति की है ।

परमाणु को अँग्रेजी में 'एटम' कहते हैं । यह मूलतः ग्रीक भाषा का शब्द है-जिसका अर्थ होता है-'अविभाज्य'। ग्रीक ही क्यों सर्वत्र यही मान्यता थी । अणु को पदार्थ की सबसे छोटी इकाई माना जाता था पर अब वह लगभग ३० इकाइयों का-एक प्रकार का राष्ट्र मण्डल है । इसे ३० ग्रहनक्षत्रों वाला परिभ्रमण-शील और परिवार भी कहा जाता है ।

अणु बम, पनडुब्बियों के संचालन, बर्फ तोड़ने आदि में उसका प्रयोग काफी दिनों से चल रहा है । अन्तःग्रह नक्षत्रों में यात्रा करने वाले राकेटों में अणु शक्ति का भारी योगदान है । आगे तो वह सर्वसाधारण की दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सर्वसुलभ ही बनने जा रही है ।

यूरेनियम में अग्नि और रेडियम सक्रियता के दोनों गुण हैं । इसलिए उसके निर्माण एवं उपयोग में पूरी-पूरी सावधानी बरतनी पड़ती है । तनिक-सी असावधानी से भयंकर अग्निकाण्ड हो सकता है और रेडियो-सक्रियता फैल पड़े तो महाविनाश उत्पन्न कर सकती है । जहाँ यह प्रयोग होते हैं वहाँ ऐसे विशिष्ट उपकरण लगाये जाते हैं जिनसे हवा में यूरेनियम के धूलि कण जमा न होने पायें ।

अणुशक्ति की तरह ही मनुष्य की चेतना शक्ति है जिसके अन्तर्गत मन, बुद्धि, चित्त, आत्मबोध को अन्तः-करण के रूप में जाना जाता है । लगन, तत्परता, एकाग्रता, तन्मयता, निष्ठा, दृढ़ता, हिम्मत जैसे मानसिक गुण ऐसे हैं जिनके आधार पर अणु शक्ति से भी करोड़ों गुनी अधिक प्रखर आत्मिक शक्ति को जगाया, बढ़ाया, रोका, सँभाला और प्रयुक्त किया जा सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अणुविज्ञान से बढ़कर आत्म-विज्ञान है । जड़ अणु में जब इतनी शक्ति विद्यमान है तो जड़ की तुलना में चेतन को जो अनुपात है उसी हिसाब से आत्मशक्ति की महत्ता होनी चाहिए । अणुविज्ञानी अपनी उपलब्धियों पर गर्वान्वित हैं और उस सामर्थ्य को युद्ध अस्त्र से लेकर बिजली की कमी को पूरा करने जैसी योजनाओं में प्रयुक्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं । आत्मविज्ञानियों का कर्त्तव्य है कि वे उसी लगन और तत्परता के साथ आत्म-शक्ति की महत्ता और उपयोगिता को इस प्रकार प्रमाणित करें कि सर्वसाधारण को उसकी गरिमा समझ सकना सम्भव हो सके ।

महामानव वस्तुतः एक जीवन्त प्रयोग-परीक्षण हैं। जिन्हें आत्मशक्ति के संग्रह और सदुपयोग कर सकना आया और उस प्रयोग के द्वारा प्रगति पथ पर बढ़ चलने का लाभ उठाया । ज्ञान-शक्ति, इच्छा-शक्ति और क्रिया-शक्ति की त्रिवेणी को केन्द्रित कर उससे उत्पन्न सामर्थ्य को रचनात्मक दिशा में प्रयुक्त कर सकने की विधि-व्यवस्था को अध्यात्म-विज्ञान कहते हैं । मध्यकाल में उसका स्वरूप अन्धविश्वासी जनता और श्रद्धा शोषक साधना व्यवसायी लोगों द्वारा विकृत अवश्य हो गया और उससे अनास्था भी फैली, पर उससे मूल तथ्य पर कोई आँच नहीं आती । सत्य जहाँ था वहाँ का वहीं मौजूद है ।

अणुशक्ति की ऊर्जा बिखर जाने से हानि होती है । आत्मशक्ति का रावण, कुम्भकरण, भस्मासुर, हिरण्यकश्यपु की तरह दुरुपयोग होने का खतरा है । सिद्धि चमत्कारों के हास-परिहास में उसे कौतुक-कौतूहल के बाजारू स्तर पर रखकर उपहासास्पद भी बताया जा सकता है ; पर यदि उसे ठीक तरह समझा और सम्हाला जाय-वैयक्तिक विकास और सामाजिक उत्कर्ष में उसका सुविज्ञ व्यक्तियों द्वारा उपयोग किया जाय तो उसकी गरिमा अणुशक्ति की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है ।

सर्वोपरि और सर्वशक्तिमान सत्ता-परमात्मा

ॐ अणोरणीयानहमेव तद्वन्महानहं
विश्वमहं विचित्रम् ।
पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशो
हिरण्मयोऽहं शिवरूपमस्मि ॥
अपाणि पादोऽहमचिन्त्यशक्तिः
पश्याम्यचक्षुः स शृणोम्यकर्णः ।
अहं विजानामि विविक्तरूपो
न चास्ति वेत्ता मम चित्सदाहम् ॥

-कैवल्योपनिषद २०,२१

अर्थात्-मैं छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा हूँ । इस अद्भुत संसार को मेरा ही स्वरूप मानना चाहिए, मैं ही शिव और ब्रह्मा का स्वरूप हूँ, मैं ही परमात्मा और विराट् पुरुष हूँ, वह शक्ति जिसके न हाथ है, न पैर, जिसके सम्बन्ध में चिन्तन किया जा सकता है, वह परब्रह्म मैं ही हूँ, मैं सर्वदा चितस्वरूप रहता हूँ, मुझे कोई जान और समझ नहीं सकता । मैं बुद्धि के बिना ही सब कुछ जानने, स्थूल कानों के बिना सब कुछ सुनने और स्थूल आँखों के बिना सब कुछ देखने की सामर्थ्य रखता हूँ ।

उपनिषद्कार की इस अनुभूति को साधकों, योगियों और तत्व-दर्शियों ने अनेक प्रकार से निरूपित करके परमात्मा की उपस्थिति प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है । हमारी भूल यह है कि मनुष्य देह में धारण होने के कारण हमारी बुद्धि भी मानवीय हो गई है, अर्थात् संसार की प्रत्येक वस्तु को मानवीय लाभ, मानवीय स्वार्थ और यहाँ तक कि ईश्वर और सूक्ष्म दैवीशक्तियों को भी मानवीय स्थूलता से जोड़ने का प्रयत्न करते हैं, इसीलिये संसार के रहस्य समझने से रह जाते हैं ।

वस्तुतः हमें अपने आपको एक बौद्धिक सत्ता मानकर विचार करना चाहिए, जिस दिन इस शरीर को सृष्टि के शेष प्राणियों के साथ बैठा देने की बुद्धि जाग्रत हो जाती है और अपने-अपने को कोई ऐसा प्रकाश कण अनुभव करने की सूक्ष्म दृष्टि आ जाती है, जो केवल इच्छा और संकल्प मात्र से सर्वत्र गमन कर सकता है । सुख-दुःख आदि की अनुभूति कर सकता है और उसी रूप में विश्व-दर्शन कर सकता है, उस दिन परमात्मा को समझना सरल हो जाता है । अपने आपको, अपने जीवन-लक्ष्य को भी समझना सरल हो जाता है ।

उपनिषद्कार के उक्त भाष्य को समझने के लिये चलिये, सर्वप्रथम यह मान लें, हम कोई शरीर नहीं वरन् एक कल्पना या विचार-शक्ति मात्र हैं । आइये सर्वप्रथम परमात्मा के अणु-स्वरूप का चिन्तन करें । क्या सचमुच कोई ऐसी सत्ता है, जो अणु प्रतीत हो पर उसमें ब्रह्माण्ड की सी चेतना सन्निहित हो ?

'शक्ति का भण्डार परमाणु' इस शीर्षक से लेखक श्री वेदमित्र ने साप्ताहिक हिन्दुस्तान के १७ नवम्बर, १९६८ अंक में परमाणु संरचना के पाँच चित्र बनाकर इस महाशक्ति का परिचय कराया है । वे लिखते हैं-

"किसी तत्व के छोटे से कण को परमाणु कहते हैं, इसमें उस तत्व के सभी गुण मौजूद होते हैं, लोहे के गोले में जो गुण हैं, वे सभी लोहे के नन्हें से परमाणु में तुम्हें मिलेंगे । परमाणु पदार्थ की सबसे छोटी इकाई है । वह एक इन्च के २०करोड़वें भाग के बराबर होता है । दुनिया की सबसे बड़ी दुरबीन भी एक अणु को अकेला नहीं देख सकती । परमाणु को तोल लेने लायक तराजू मनुष्य नहीं बना सका है । फिर भी वैज्ञानिकों ने जो जानकारियाँ उपलब्ध की हैं, वह असाधारण हैं ।

१ इन्च के २० करोड़वें भाग को तुम बहुत छोटा समझ रहे होंगे, जरा उसके भीतर झाँक कर देखो । वहाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तो खाली मैदान पड़ा हुआ है । बीच में छोटा-सा स्थान घिरा है, इसे 'नाभिक' कहते हैं । यह नाभिक प्रोटान और न्यूट्रान दो तत्वों से मिलकर बना है । अब परमाणु के अन्दर ब्रह्माण्ड का पता लगाओ । यह जो खाली स्थान (पोला) है उसका क्षेत्रफल देखना । नाभिक को यदि एक छोटी-सी गेंद मान लें तो उसकी तुलना में खाली स्थान का व्यास २००० फुट होगा ।

इससे परमाणु के छोटे से छोटे और बड़े से बड़े स्वरूप की कल्पना की आकांक्षा अभी विज्ञान पूरी नहीं कर सका, क्योंकि अभी नाभिक का विश्लेषण नहीं हो पाया और लगता है, उसका मशीनी-एनालिसिस सम्भव भी नहीं है, क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं, उसे जानने के लिये तो उतनी ही सूक्ष्म चेतना-शक्ति चाहिए जो अनुभवों को लिखकर या बोलकर बता सके, जबकि भारतीय तत्त्वज्ञ कहते हैं कि वह अनुभूति इतनी विलक्षण और विशाल है कि जो मनुष्य उसे पा लेता है, वह स्वयं भगवान् हो जाता है ।

तुम्हें भगवान पूछते फिरते हैं

को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति।
भूम्या असुरसृगात्मावव्वित्को विद्वांसमुप गात्प्रष्टुमेतत् ।

-ऋ० १६४।४

(यत्) जिसको (अनास्था) अस्थिरहित अभौतिक (बिभर्ति) धारण करता है, उस (प्रथमम्) आदि (जायमानम्) उत्पन्न होने वाले को (कः) कौन (ददर्श) देखता है ? ये (असुः) प्राण तथा (असृक) रुधिर तो (भूम्याः) भूमि से, प्रकृति से होते है । (आत्मा) आत्मा (क्वचित्) कहाँ है ? (सतत्) इस तत्व को (प्रष्टुम्) पूछने के लिए (कः) कौन (विद्वांसम्) विद्वान के (उपगात्) पास जाता है ?

ढूँढ़ने में, खोज करने में, रहस्य का पता लगाने में मानव बुद्धि बड़ी आतुर रहती है । प्रकृति के सूक्ष्म तत्वों की विज्ञानशालाओं में खोज हो रही है, परमाणुओं की सूक्ष्म गतिविधियों का, शक्तियों का पता लगाने के लिए भारी प्रयत्न हो रहे हैं । इन खोजों के परिणामस्वरूप नित नये आश्चर्यजनक आविष्कार सामने आ रहे हैं । यह प्रयत्न हर दिशा में चल रहे हैं । आरोग्य-शास्त्र की नई शोध हो रही है, शिल्प के भेद-प्रभेदों को मालूम किया जा रहा है, आकाश स्थित ग्रह-नक्षत्रों की गतिविधि का पता लगाया जा रहा है, पृथ्वी के गर्भ में छिपे हुए खनिज पदार्थों को ढूँढ़ा जा रहा है, समुद्र को छान-छान कर उसके अन्दर छिपे हुए पदार्थों को तलाश किया जा रहा है । हिम से आच्छादित ध्रुवों की, आकाशचुम्बी पर्वत शिखिरों की शोध हो रही है । गणित, भूगोल इतिहास, पुरातत्व, रसायन, मनोविज्ञान आदि विविध दिशाओं में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त करने के लिए मनुष्य जाति बड़ी बेचैनी के साथ लगी है ।

विविध रहस्यों का पता लगाने के लिए मानव-बुद्धि छटपटा रही है । अगणित स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय खुले हुए हैं, जिनमें लाखों अध्यापक पढ़ाते हैं और करोड़ों छात्र पढ़ते हैं । इन शिक्षा संस्थानों में एक बड़ी जनसंख्या पूछने और बताने के लिए एकत्रित होती है । छात्रों की जिज्ञासा का अध्यापक लोग समाधान करते हैं । प्रकृति के विविध विषयों पर चर्चाएँ होती हैं । अशिक्षित, जानकारी से रहित बालक जानकार और विद्वान होकर निकलते हैं । इस आयोजन में समय, शक्ति और धन को प्रचुर मात्रा में लगाया जाता है ।

नित्य करोड़ों की संख्या में छपने वाले अखबार-जनता के इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए निकलते हैं कि आज संसार में क्या हो रहा है? पत्र-पत्रिकाओं का, पुस्तक पुस्तिकाओं का भारी प्रकाशन, जनसाधारण की जिज्ञासाओं का समाधान करने के लिए होता है, प्रवचनों द्वारा, व्याख्यानों द्वारा, सत्संगों द्वारा वे जानकारियाँ प्रकट की जाती हैं, जिनको जानने की मनुष्य की इच्छा है । वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास एवं धर्मग्रन्थों का निर्माण भी इसी प्रयोजन के लिए हुआ है । "हम जानना चाहते हैं," इस इच्छा के कारण ही जानकारी के विविध साधनों का निर्माण हुआ और हो रहा है । आपसी वार्तालापों का प्रयोजन भी यही होता है । एक मनुष्य दूसरे की जानकारी बढ़ाने के लिए ही कुछ कहता है और कोई किसी की बात इसी दृष्टि से सुनता है । बिना इस कारण के कोई वार्तालाप या तो होता ही नहीं यदि होता है तो उसके लिए अरुचि एवं अपेक्षा व्यवहृत होती है ।

यह सब बातें हमें बताती हैं कि मनुष्य को जानने की बड़ी आकांक्षा है, जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त, सदैव वह जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है । कभी उससे अघाता नहीं, कभी उससे थकता नहीं । यह भूख ऐसी है जो कभी तृप्त ही नहीं होती । पूछने और जानने की रुचि कभी मन्द नहीं पड़ती ।

इतना सब होते हुए भी एक सबसे बड़ी, सबसे आवश्यक समस्या की ओर हम ध्यान नहीं देते और उसके सम्बन्ध में पूछने का प्रयत्न नहीं करते । उसकी ओर वेद भगवान हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं । ऋग्वेद का उपर्युक्त मंत्र पूछता है कि उस आदि में उत्पन्न हुए, अस्थिरहित अभौतिक आत्मा को कौन देखता है ? मनुष्यो ! बताओ तो सही, तुममें से उसे कौन देखता है ? विविध प्रकार के दृश्यों को, पदार्थों को तुम बड़ी रुचि पूर्वक देखते हो, पर उस आत्मा को क्यों नहीं देखते ? अपने आपको-अन्तर में मुँह डालकर देखने का प्रयत्न क्यों नहीं करते ? यदि कहो कि मैं अपने को देख तो रहा हूँ, यह शरीर मुझे दीखता तो है । तो यह उत्तर ठीक नहीं, क्योंकि यह प्राण वायु, रुधिर आदि का शरीर तो पृथ्वी आदि पंच तत्वों से बना हुआ है । तत्व अचेतन है उनमें चेतना शक्ति, विचार, ज्ञान, जिज्ञासा, इच्छाशक्ति कहाँ से आई ? यह शरीर आत्मा कहाँ है ? जो इस शरीर से भिन्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है, वह कैसा है ? कौन है ? कहाँ है ? इस तत्व को पूछने के लिए हम में से कौन-विद्वानों के पास जाता है ? वेद भगवान इस मंत्र में उसको तलाश करते हैं जो आत्मा को पूछने विद्वानों के पास जाता है ।

अपनी प्रिय वस्तु को सभी तलाश करते हैं । वेद भी अपने प्यारे की तलाश करते हैं । वे उसको ढूँढ़ते हैं जो आत्मज्ञान की चर्चा करने के लिए विद्वानों के पास जाते हैं । क्योंकि ऐसे ही सच्चे जिज्ञासु वेद को पहचानते हैं, और प्राप्त करते हैं, जिसका जिस पर सच्चा प्रेम होता है, वह उसे प्राप्त होकर रहता है । भक्त,भगवान को अपना आत्म-समर्पण करता है, इसलिए भगवान भी भक्त को अपना आत्म-समर्पण कर देते हैं । जो सांसारिक वस्तुओं की ही जानकारी में नहीं उलझा रहता, वरन् आत्मज्ञान के लिए विद्वान के पास जाता है, ऐसा जिज्ञासु वेद का वास्तविक भक्त है । सच्चा भक्त है । ऐसे भक्त को छाती से लगा लेने के लिए बाहु पसार कर वेद भगवान पुकारते हैं- वह कौन है ? जो आदि में उत्पन्न हुए, अस्थि रहित, अभौतिक आत्मा को देखता है ? वह कौन है ? जो आत्मा की तलाश करने विद्वान के पास जाता है ? जो ऐसा हो वह आये, उसकी मुझे तलाश है, उसे मैं छाती से लगाऊँगा । अपना सारा मर्म उसके अन्तस् में उँड़ेल दूँगा । जो ऐसा जिज्ञासु हो, आगे बढ़कर आवे और भगवान के गले लग जाय ।

ऐ दुनिया वालो, तुम बहुत पूछते हो, तरह-तरह की बातें जानने के लिए विद्यालयों में, सभाओं में, गोष्ठियों में जाते हो, विविध प्रकार से पढ़ते और सुनते हो, पर यह सब होता भौतिक, नश्वर, बाह्य संसार के बारे में ही है । कभी अपने आपके बारे में आत्मा के बारे में न तो किसी दूसरे से पूछते हो न अपने आपसे विचार करते हो । यह बड़े खेद की बात है । काजी जी शहर के अन्देशों से दुर्बल हुए जा रहे हैं पर अपने घर की खबर ही नहीं । शरीर क्षय से घुल रहा है, उसकी चिन्ता न करके पोशाकों की डिजायनें पसन्द करने की माथापच्ची करना कौन बुद्धिमानी है । आवश्यक कार्य की उपेक्षा करके साधारण कामों में जो उलझा रहता है, उसे बालबुद्धि वाला कहा जाता है । उपनिषद्कार को ऐसे ही बालबुद्धि वालों की अधिकता देख कर बड़ी निराशा और आश्चर्य होता है । कठोपनिषद कहती है -

"श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः । आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः । १।२।७

इस आत्मतत्व को बहुत से तो सुनते ही नहीं, बहुत से इसे सुनते हैं पर समझते नहीं, बहुत से सुनते-समझते हैं पर उसे प्राप्त नहीं करते । उसे वस्तुतः कहने वाले, सुनने वाले और प्राप्त करने वाले कुशल बुद्धिमान् कोई विरले ही होते हैं ।

अपनी भूखी-प्यासी गौ को बाड़े में बन्द करके, आकाश में उड़ने वाली पतंगों को गिनने वाले मनचले बालकों की तरह लोग तरह-तरह की जानकारी प्राप्त करने में, बातें पूछने में तन्मय हो रहे हैं । पर ऐसे कुशल-चतुर कोई विरले ही होते हैं जो विद्वान् के पास यह पूछने जावें कि वह आत्मा कैसा है ? उसे प्राप्त कैसे करें ? जो ऐसे कुशल हैं वेद भगवान उन्हें ही ढूँढ़ते हैं । उन्हें ही पूछते हैं, उन्हीं का पता लगाते हैं ।

आत्मज्ञान, सर्वोपरि ज्ञान है । इसके द्वारा ही सुख-शान्ति के दर्शन होते हैं, इसी के द्वारा जन्म-मरण की फाँसी कटती है, इसी से स्वर्ग एवं मुक्ति की प्राप्ति होती है। इसी से भगवान मिलते हैं । जीवन की पूर्णता, सफलता इस आत्मज्ञान पर ही निर्भर है । इसीलिए बृहदारण्यक उपनिषद ने कहा है-

"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो ....."

अरे ! ओ !! इस आत्मा को देखो, इस आत्मा को सुनो, इस आत्मा का मनन करो, इसी का निदिध्यासन करो ।

बाहरी ज्ञान कितना ही क्यों न इकट्ठा कर लिया जावे पर उससे आत्म-कल्याण नहीं हो सकता, कानून, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, रसायन, खगोल, गणित, भूगर्भ, साइन्स, राजनीति, धर्म-साहित्य, व्यापार आदि का कोई कितना ही बड़ा ज्ञाता, विद्वान, विशेषज्ञ क्यों न हो जाय, सांसारिक वैभवों से कुबेर और इन्द्र के समान सम्पन्न क्यों न हो जाय, पर उसे शान्ति नहीं मिल सकती ।

वेद भगवान पूछते हैं वह कौन है जो आत्म-ज्ञान के लिये विद्वान के पास जाता है ? ऐसे व्यक्ति की तलाश करते हुए वे कब से पुकार-पुकार कर पूछ रहे हैं । क्या तुम ऐसे सच्चे जिज्ञासु हो ? यदि हो तो जाओ भगवान की छाती से लग जाओ, वे कब से बाहु पसार कर तुम्हें अपनी गोदी में लेने के लिए खड़े हैं ।

घट-घटवासी उस परमसत्ता के प्रति निष्ठा

ईश्वरनिष्ठा का प्रत्यक्ष स्वरूप तो पूजा-अर्चा है, पर उसका दार्शनिक रूप यह है कि ईश्वर की सत्ता पर पूर्ण विश्वास किया जाय । उसकी नियम व्यवस्था को अटूट एवं अकाट्य माना जाय । उसका सर्वव्यापी और न्यायनिष्ठ होना यदि हमारी भावनाओं की गहराई तक पहुँच सके तो उसका परिणाम यह होगा कि कोई स्वेच्छाचार, अनाचार न बरत सकेगा । इससे यह विश्वास बना रहेगा कि सत्कर्मों का सत्परिणाम और दुष्कर्मों का दुःखद प्रतिफल मिल कर रहेगा ।

किसान और माली जानते हैं कि जो बोया जाता है सो काटा जाता है । करनी अपना प्रतिफल देकर रहती है । लोगों की आस्था प्रायः इसलिए डगमगा जाती है कि किए हुए का प्रतिफल तत्काल नहीं मिलता । उसमें विलम्ब हो जाता है । अधीर व्यक्ति समझने लगते हैं कि यह तो अबूझ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

राजा की अँधेर नगरी है । कर्मफल से विश्वास उठ जाने का यही कारण है कि लोग अनाचार में प्रवृत्त होते, कुकर्म करते पाए जाते हैं । यदि यह विश्वास दृढ़तर हो कि नियन्ता की सृष्टि-व्यवस्था में क्रिया की प्रतिक्रिया होने का विधान सुनिश्चित है तो लोग पाप कर्म करते हुए डरें । पुण्य के सत्परिणामों को समझें । सन्मार्ग पर चलें और पुण्य-परमार्थ की दिशा अपनाएँ ।

क्रिया की प्रतिक्रिया उत्पन्न होने में कुछ देर अवश्य लगती है । खाया हुआ अन्न का रक्त बनने में कुछ समय लगता है । किसान की बोई फसल पकने में कई महीने लगते हैं । आज का जमाया दूध कल दही बनता है । बरगद के अंकुर की सामर्थ्य वृक्ष बनने में लम्बा समय लग जाता है । इतने पर भी कोई अविश्वास नहीं करता कि जो किया है उसका प्रतिफल न मिलेगा । यदि ऐसा होता तो कोई भी किसान कृषि न करता, कोई माली बगीचा न लगाता, कोई विद्यार्थी कालेज की पढ़ाई तक पढ़ने में न लगा रहता क्योंकि इन कृत्यों का तत्काल फल नहीं मिलता। उनकी परिणति उत्पन्न होने में देर लग जाती है ।

इस अधीरताजन्य अंधविश्वास को दूर करने के लिए ईश्वर की न्यायशीलता पर गहरा विश्वास होना आवश्यक है । जीवन मरने के साथ ही समाप्त नहीं हो जाता । वह बाद में भी विद्यमान रहता है । कर्मफल परलोक में भी भुगते जा सकते हैं और पुनर्जन्म के रूप में भी । इसलिए ईश्वर की सर्वव्यापकता, न्यायनिष्ठा, कर्मफल प्रक्रिया तीनों ही ऐसे हैं, जिन्हें हर आस्तिक को मानना चाहिए । मानना ही नहीं, उन पर विश्वास भी करना चाहिए । इतने भर से व्यक्ति के निजी जीवन में तथा समाज की सत्परम्पराओं में नीति और न्याय का प्रचलन बना रहता है । इसके फलस्वरूप यह हो सकता है कि लोग कुकर्म से डरें और सन्मार्ग पर चलने में ही अपना हित अनुभव करें ।

एक अनर्थमूलक मान्यता ईश्वर के सम्बन्ध में यह बन चली है कि जो उसका स्तवन करता है, पूजा के साथ-साथ भोग-प्रसाद अर्पण करता है उससे ईश्वर प्रसन्न होता है और उसकी मनोकामनाएँ पूर्ण करता है । यह एक प्रकार से ईश्वर को बदनाम करना है । उसे प्रशंसा की मनुहार और भेंट-पूजा के उपहारों से अहंकारियों, रिश्वतखोरों की तरह प्रसन्न किया जा सकता है तथा प्रलोभनों और दबावों के आधार पर उसे कठपुतली की तरह नचाया जा सकता है, इन दिनों ऐसे ही प्रशंसा के भूखे और उपहारों के प्यासे भगवानों का बोलबाला है? इस मान्यता से तो लोग और भी अधिक ढीठ बनते हैं । सोचते हैं, देवदर्शन करने भर से भोगों से निवृत्ति मिल सकती है और छुटपुट कर्मकाण्डों के बलबूते स्वर्ग में रहने के लिए स्थान निश्चित कराया जा सकता है । पर वस्तुतः ईश्वर ऐसा तुच्छ नहीं कि कोई क्रिया-कुशल व्यक्ति उसे अपनी उँगलियों पर नचा सके ।

गुप्त रूप से किए गए कार्य, चिन्तन क्षेत्र में विचरण करने वाले संकल्प भी परमेश्वर से छिपे नहीं रहते । घट-घटवासी सब जानता है । बाहर के लोगों को तो किसी चतुरता के सहारे धोखे में रखा जा सकता है । वस्तुस्थिति उनसे छिपाई जा सकती है । सरकार की, समाज की, दण्ड व्यवस्था से तो बचा भी जा सकता है पर जो घट-घट वासी है सर्वत्र समाया हुआ है उसकी जानकारी में सब कुछ है । ऐसी दशा में यह कैसे सम्भव हो सकेगा कि गुप्त कुकर्मों या अज्ञात विचारों की हीनता उसकी दृष्टि से बची रहे और उस प्रमाद के धपले में अपने पाप-कर्मों को गया-आया कर सके या पाप चुकते हो जाएँ ।

ईश्वर मान्यता से व्यक्तिगत चरित्र को पवित्र बनाया जाता है, साथ ही समाजनिष्ठा के उभयपक्षीय सत्परिणाम व्यापक रूप से मिलते रह सकते हैं । उसका इतना लाभ मिल सकता है जिसे देखते हुए शासकीय दण्ड व्यवस्था भी हलकी पड़ती है जो शक का प्रमाण मिलने पर ही किसी को अपराधी ठहराती और दण्ड व्यवस्था करती है । ईश्वर की नजर तो सर्वत्र है । उससे किसी के कार्य और विचार छिपे नहीं रहते । साथ ही उसकी परिवार व्यवस्था में भी किसी के साथ राग-द्वेष बरते जाने की गुंजाइश नहीं है । इसी रूप में ईश्वर पर विश्वास किया जा सके तो व्यक्ति और समाज को सुसंस्कृत-सुव्यवस्थित रखे जाने के समस्त अवरोध दूर हो जाते हैं ।

स्वर्ग और नरक की, मरणोत्तर जीवन में कर्मों का प्रतिफल मिलने की, पुनर्जन्म वर्तमान के कृत्यों के अनुरूप मिलने की आस्था को जितना सुनिश्चित और जितना परिपक्व बनाया जा सकेगा, उसी सीमा तक सर्वसाधारण को नीतिवान-चरित्रवान बनाया जा सकेगा । यह सर्वसाधारण के लिए इतना अधिक महत्वपूर्ण है कि उस आधार पर विश्व-शान्ति के लिए सर्वजनीन सुख-शान्ति और प्रगति के लिए बहुत कुछ किया जा सकता है । भूतकाल में जिस प्रकार आस्तिकता ने भारतभूमि को स्वर्गादपि गरीयसी बनाया था, उसकी पुनरावृत्ति फिर से हो सकती है, यदि ईश्वर का वास्तविक स्वरूप और उसका अनुशासन सर्वसाधारण के अन्तराल में गहराई तक जमाया जा सके ।

ईश्वर ने मनुष्य जीवन अपने कोष के सर्वोपरि उपहार के रूप में प्रदान किया है । इस अनुग्रह के साथ-साथ उसने यह भी आशा की है कि इस अनुदान का उपयोग मात्र सत्प्रयोजनों में किया जाएगा । सत्प्रयोजन मुख्यतः दो गिनाए गए हैं, एक आत्मोत्कर्ष-दूसरा लोकमंगल । आत्मोत्कर्ष का प्रमुख साधन है-संयम । संयमों में इन्द्रिय संयम, समय संयम, अर्थ संयम और विचार संयम, इन चारों की गणना होती है । लोकमंगल में संसार को समुन्नत और सुसंस्कृत बनाने की प्रक्रिया आती है । इन्हीं दोनों को पुण्य-परमार्थ भी कहा गया है । ईश्वर-भक्ति इसी ढाँचे में अपने को ढालने से बन पड़ती है । इसी पर उसकी प्रसन्नता एवं अनुकम्पा अवलम्बित है । मनुष्य पद से ऊँचा उठकर महामानव, देवात्मा, अवतार स्तर तक मनुष्य अपने स्तर के अनुरूप प्रगति कर सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपासना का उद्देश्य परमात्मा और आत्मा की पारस्परिक एकता और आदान-प्रदान की व्यवस्था का स्मरण करना है । स्मरण का प्रयोजन है तथ्य को निरन्तर हृदयगंम करते रहना और जीवन के सभी पक्षों को उच्चतर बनाते चलना, सभी गतिविधियों को उत्कृष्टतम बनाकर रहना ।

जीवन को अवांछनीयताओं से बचाए रहना और औचित्य की अधिकाधिक अवधारणा करना, यही है ईश्वर की उपलब्धि एवं समीपता का सुनिश्चित सोपान । माता बच्चे को तभी गोदी में उठाती है जब उसे मलमूत्र से सना होने पर नहला-धुला कर स्वच्छ कर लेती है । मलीनता से सने होने पर उसे तब तक दूर ही रखती है जब तक उसकी स्वच्छता ठीक प्रकार सम्भव नहीं हो जाती । पवित्रता और प्रामाणिकता ही वे आधार हैं, जिन्हें अपनाकर ईश्वर तक पहुँचा जा सकता है । जीव की तुच्छता ब्रह्म की महानता के साथ समाहित होकर तदनुरूप बन जाती है । इसी को ब्राह्मी स्थिति कहते हैं ।

एक-एक दिन को आदर्श बनाकर सम्पूर्ण जीवन को आदर्शमय बनाया जा सकता है । एक-एक कदम बढ़ाने पर ही लम्बी मंजिल पूरी होती है । प्रातः सोकर उठते ही यह भावना करनी चाहिए कि आज एक दिन का नया जन्म मिला । इसका श्रेष्ठतम सदुपयोग करना है । रात्रि को इस एक दिन का लेखा-जोखा लिया जाय कि उसमें क्या अच्छा बन पड़ा और क्या कमी रही ।

इस समीक्षा के आधार पर दूसरे दिन का अधिक सतर्क कार्यक्रम बनाया जाय । उपासना का यह सर्वसुलभ मार्ग है । इसके अतिरिक्त भगवान के साथ आत्म-सम्बन्ध को प्रगाढ़ बनाने के लिए नित्य प्रति स्मरण भी करना चाहिए । प्रातः स्मरण के अपने-अपने अनेक ढंग के अनेक विधि-विधान एवं क्रियाकलाप हैं । जिनका आशय अपनी प्रकृति के अनुरूप भिन्न-भिन्न रूपों में लिया जा सकता है ।

हमारी जीवन नौका का एकमात्र खिवैया

परमात्मा द्वारा दी हुई शक्तियों पर विश्वास करना ही आत्म-विश्वास है । परम पिता ने हमें विवेचना-शक्ति दी है, जिसके द्वारा हम अपनी परिस्थितियों की समीक्षा कर सकते हैं । अपनी भूलों, अपनी कमियों का पता लगा सकते हैं । यही नहीं ईश्वर प्रदत्त बुद्धि के द्वारा वर्तमान विषम स्थिति से निकलने के लिये योजना बना सकते हैं । भावना-शक्ति का सदुपयोग करके अपनी मानसिक कमजोरियों का निराकरण करते हुए एक-एक पग आगे बढ़ाते हुए सुख और समुन्नति के उच्च शिखर पर चढ़ सकते हैं । वस्तुतः शक्तियों और साधनों की कमी नहीं है जितनी कमी प्राप्त सुविधाओं और शक्तियों की आशावादी दृष्टिकोण से मूल्यांकन करने की ।

आत्म-विश्वास का सीधा-सा अर्थ अपने पर विश्वास करना है । दूसरे से आशा करना, दूसरे पर विश्वास करके पुरुषार्थ छोड़ बैठना, आत्मशक्तियों का अनादर करना है । दूसरे मदद करते हैं, तो अच्छा है, नहीं मदद करते हैं तो क्या ? हमको अपनी मदद खुद करनी है, अपनी टाँगों से ही सब चलते हैं । हमें भी अपनी टाँगों से ही यदि चलना पड़ रहा है, तो इसमें क्या बुराई है ? इस प्रकार का दृढ़ निश्चय ही आत्म-विश्वास कहलाता है ।

आत्मविश्वासी अपने को दीन-हीन, अभागा नहीं मानता । वह अपने को परमपिता का पुत्र मानता है । वह अपने को परमपिता का परम कृपा पात्र समझता है । वह जलचर, नभचर आदि समस्त प्राणियों से अपने को श्रेष्ठ अनुभव करता है, उसका यह पक्का विश्वास होता है कि समस्त शक्तियों के पुण्य प्रवाह रूप परमेश्वर मेरे हृदय में नित्य विराजते हैं । वह अनुभव करता है कि मैं ईश्वर का अंश हूँ । ईश्वरीय शक्तियों का पुंज हूँ । उज्ज्वल कर्मठता ही मेरा सहज स्वभाव है ।

आत्म-विश्वास मनुष्य के कार्य-कलाप, जीवन-व्यवहार आदि में अद्भुत सामर्थ्य भर देता है । वह मनुष्य की बिखरी हुई शक्तियों को संगठित करता है । उन्हें एक दिशा में लगाता है । समस्त शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शक्तियाँ उसके इशारे पर नाचने लगती हैं ।

हर मनुष्य की अपनी अनोखी समस्याएँ होती हैं । कई बातों में वे दूसरों की उसी प्रकार की समस्याओं से सर्वथा भिन्न होती हैं । जिस प्रकार घायल आदमी ही अपने घाव की पीड़ा को यथार्थ रूप में अनुभव करता है, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपनी समस्याओं और उलझनों को अपने आप ही अच्छी तरह जानता है, दूसरा कोई उसको सही-सही नहीं समझ सकता है । अतः जब मनुष्य अपना ध्यान अपनी परेशानियों और कठिनाइयों के स्वरूप को समझने में लगाता है, जब वह उनके कारणों को खोजने में दत्तचित होता है और उनके हल ढूँढ़ने का आप प्रयास करता है, उनके निवारण में लगन और तत्परता के साथ जुट जाता है, तो वह आत्मविश्वासी कहा जाता है । क्योंकि अपनी विषम-परिस्थितियों और व्यथाओं का हल अपने आप करना ही आत्म-विश्वास है ।

आत्मा स्वयं पूर्ण है और अनन्त शक्तियों का भण्डार है । इन पर आस्था दृढ़ करना ही आत्म-विश्वास का मुख्य लक्ष्य है । आत्म-विश्वास से पग-पग पर आशा सुरक्षा निर्माण और अदृश्य सहायता का अनुभव अपने को आप मिलता है । जिससे आत्म-विश्वास भी उत्तरोतर बढ़ता जाता है ।

आत्म-विश्वास को सुदृढ़ बनाने के लिये यह आवश्यक है कि हम लिये हुए संकल्पों पर, निर्धारित लक्ष्य पर, सामने पड़े कार्य पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखें। जितनी लगन और ईमानदारी के साथ इस दिशा में अग्रसर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होंगे, उतनी ही तेजी के साथ हम अपने आत्म-विश्वास को भी प्राणवान बनावेंगे, इसी क्रम से अनुकूल परिस्थितियाँ अपनी ओर खिंच-खिंचकर आती हुई हमें प्रतीत होंगी । आत्मावलम्बन भी आस्तिकता का मेरुदण्ड है यह हमें भलीभाँति समझ लेना चाहिए ।

हे दयानिधान ! आप हमें दुःख देते रहें

शरीर में विजातीय द्रव्य जमा हो जाता है तो उसकी विकृति बीमारी के रूप में फूट पड़ती है । रोग, शरीर की एक आवश्यकता है, जिससे अपनी जीवनी-शक्ति का आभास होता है । यह ज्ञान मनुष्य को न मिले और विजातीय तत्व भीतर ही बढ़ते रहें तो अकाल मृत्यु सुनिश्चित हो जाती है । मनुष्य जीवन का ऐसा ही संकेत है, जो मनुष्य को इस बात के लिए सचेतन करता रहता है कि उसका लक्ष्य कुछ और है । मनुष्य शरीर रूप में एक आत्मा है, इस आत्म तत्व की ओर संकेत का भाव मात्र है-दुःख ! इसलिये वह ग्रहणीय है । दुःख के बिना इस जीवन का महत्व भी कुछ नहीं रह जाता है ।

महाभारत में कहा है-"विपत्तियाँ हमारे जीवन में पग-पग पर आती रहें क्योंकि परमसत्ता के दर्शन विपदाओं में ही होते हैं । आपके दर्शन मिल जाते हैं तो मनुष्य जन्म-मरण के बन्धनों से विमुक्त हो जाते हैं ।"

इस दृष्टिकोण को समझने के लिए दुःख और उसके प्रभाव पर आइये विचार करें । कामनाओं की पूर्ति न होना, दुःख का कारण है और इससे विकल होना ही दुःख का प्रभाव है । दीन-हीन की तरह दुःख को केवल भोगते रहना यह अभिशाप है, किन्तु उसके प्रभाव से प्रभावित होकर सचेतन होना निश्चय ही जीवन का वरदान है । सच मानिये यदि विपदाएँ मनुष्य के जीवन में न आयें तो उसकी अन्तर्मुखी चेष्टाएँ कभी भी जाग्रत न हों और जिस लक्ष्य को लेकर उसे यह मानव देह मिली है, वह साध्य सदैव अधूरा ही बना रहे । धन पाकर उसका उपयोग न करें तो उस धन और मिट्टी के ठीकरे में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए । मनुष्य का जीवन पाकर भी आत्म-ज्ञान से विमुख होना मनुष्य का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है । दुःख जीवन निर्माण का सन्देशवाहक है, उसका सत्कार होना ही चाहिए । सुख और दुःख दोनों समान रूप से इसीलिए परमात्मा की ओर से मिले हैं कि इससे मनुष्य का जीवन एकांगी न हो ।

प्राकृतिक नियमानुसार आंशिक सुख और दुःख सबके जीवन में हैं । पर जो मनुष्य कामनाओं की पूर्ति से आसक्त अर्थात् सुख को ही साध्य मान लेते हैं, उनके लिए सुख ही दुःख स्वरूप हो जाता है । क्योंकि परिस्थितियों की विपरीतता के कारण सदैव कामनाओं की पूर्ति होते रहना निश्चित नहीं है । सभी कामनाएँ पूरी नहीं होतीं । इसलिए दुःख पैदा होना स्वाभाविक है । एक बात यह भी है कि प्रत्येक कामना की पूर्ति एक नई कामना पैदा कर जाती है, इससे सारी चेष्टाएँ सांसारिक गोरख-धन्धों में ही लगी रह जाती हैं और मानव ध्येय की ओर मनुष्य का बिल्कुल भी ध्यान आकृष्ट नहीं हो पाता ।

दुःखों से भी केवल प्रभावित होते रहना-इससे भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता जब तक उसके मूल कारण पर आध्यात्मिक दृष्टि से विचार नहीं करते । धन के अभाव में कितने ही व्यक्ति इतने विकल रहते हैं कि सिवाय धन के और कुछ भी आँखों के आगे दिखाई नहीं देता । एक दृष्टिकोण यह भी है कि हमसे भी दयनीय स्थिति के दूसरे व्यक्ति हैं । हम रूखी ही सही, दो वक्त खाते तो भी हैं किन्तु कितने ही लोग ऐसे हैं जो एक समय आधा पेट भोजन और वह भी मुश्किल से प्राप्त करते हैं । यह चिन्तन अपने आत्म-विकास का साधन है । इससे संसार और उसकी परिस्थितियों पर विचार करने की शक्ति आती है । भौतिकता से हट कर संसार की सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं की ओर ध्यान जाता है । विचार करते-करते मनुष्य निजत्व पर आ जाता है । एक बार जैसे ही आत्म-ज्ञान के लिए असंतोष पैदा हुआ कि यों समझिये आपके आध्यात्मिक जीवन का सूत्रपात हुआ । यह परिस्थिति बन जाय तो जीवन-लक्ष्य की ओर उन्मुख होना निश्चय ही समझिये ।

दुःख के समय सुख की भावी सम्भावना मात्र से दुःख सहते रहते हैं । सुख के समय भी ऐसी ही चेतना जाग्रत हो कि सुख और दुःख दोनों धूप-छाँह की तरह आने-जाने वाले हैं, ऐसी जाग्रति आने पर आपका जीवन सुख और दुःख दोनों में अतीत हो जाएगा और आत्म-ज्ञान प्राप्त करने की निर्द्वन्द्वता आ जायगी ।

विपत्ति मनुष्य को शिक्षा देने आती है । इससे हृदय में जो पीड़ा, आकुलता और छटपटाहट उत्पन्न होती है इससे चाहें तो अपना सद्ज्ञान जाग्रत कर सकते हैं । भगवान को प्राप्त करने के लिए जिस साहस और सहनशीलता की आवश्यकता होती है, दुःख उसकी कसौटी मात्र है । विपत्तियों की तुला पर जो अपनी सहन-शक्तियों को तोलते रहते हैं, वे ही अंत में विजयी होते हैं, उन्हीं को इस संसार में सफलता प्राप्त होती है ।

दुःख का प्रभाव सच्चे सुख की अनुभूति कराता है । एक बार जब सुख के सही स्वरूप का बोध हो जाता है तो सुख-लोलुपता मिट जाती है । दुःख को अनिवार्य और आवश्यक बताने का यह अर्थ नहीं कि सुख प्राप्ति के उपाय त्याग दें । जीवन को ऊँचा उठाने का प्रयत्न तो हो ही किन्तु निष्काम कर्म से गिरा देने वाली जो सुख की तृष्णा होती है उससे बचना मानव-जीवन की शुद्धता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है । इसका आभास दुःख के क्षणों में सरलता से प्राप्त कर लेते हैं इसलिए दुःख सापेक्ष है किन्तु सुख उचित होते हुए भी साध्य नहीं है ।

मनुष्य की वास्तविक आवश्यकता कामनाओं की पूर्ति का सुख नहीं है, क्योंकि सुखी अवस्था में भी भय का अंत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं होता और नहीं तो मृत्यु के भय से तो कोई भी बच नहीं सकता। इससे यह प्रतीत होता है कि निर्भयता सुख प्राप्ति से बढ़कर है। दुःख निवृत्ति, चिर विश्राम, पूर्ण स्वाधीनता और प्रेम स्वरूप की प्राप्ति-ये चार वस्तुएँ जीवन की चतुर्मुखी आवश्यकताएँ हैं । इन चारों की उपलब्धि उसे होती है जो परमात्मा की प्राप्ति के लिए, उसके आदेशों का पालन करने के लिये स्वेच्छापूर्वक, प्रसन्नता-पूर्वक तत्पर होते हैं। तपश्चर्या इसी स्थिति का नाम है । परमपिता को हमारी किसी वस्तु की आकांक्षा नहीं है वे हमसे प्यार चाहते हैं, हमारी आकुल प्रार्थना पर ही वे रीझते हैं । विषयों में आसक्त जीवात्मा से वैसी प्रार्थना के जादूगर बन नहीं पाते, इसलिये तप का महत्व है । तप का एक ही अर्थ दुःख पैदा करना है । दुःख इसलिये अभीष्ट है कि इससे अंतःकरण का सत्य प्रतिभासित होता है । मनुष्य जीवन का विराम इसी सत्य को पाता है । अपने आंतरिक उद्गारों को सतत प्रार्थनाशील रखने के लिए दुःख चाहिए, कष्ट चाहिए । निरन्तर हृदय में उमड़ने वाली वेदना चाहिए । यह दुःख जिसे मिले उसे यही समझना चाहिए कि उस परमात्मा का असीम अनुग्रह है । जिससे वे मिलना चाहते हैं उसे पहले दुःख का दूत भेजकर मिलने की स्वीकृति माँगते हैं । धन्य हैं वे लोग जो दुःख को परमात्मा का प्रसाद समझ कर उसे अपने शीश पर धारण कर लेते हैं ।

दुःख हमारे पुरुषार्थ को जगाने आता है । सुखी मनुष्य विलासी और व्यवसनी, आलसी और प्रमादी बन जाता है, अहंकार उसे घेर लेता है और तृष्णाओं के पर्वत सामने आकर खड़े हो जाते हैं, किन्तु जब दुःख सामने आते हैं तो मनुष्य को उनका प्रतिरोध करने के लिए अपनी प्रसुप्त शक्तियों को जाग्रत करना पड़ता है । पौरुष का निखार इन्हीं परिस्थितियों में होता है । सोने की अग्नि में तपाकर उसके मल विकार जलाये जाते हैं । इसी प्रकार दुःखों की अग्नि में तपा हुआ मनुष्य अपने अनेक दोष-दुर्गुणों से सहज ही छुटकारा पा जाता है ।

सुखों की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते रहना मनुष्य का स्वभाव है, वह अंतःप्रकृति की प्रेरणा से हर एक को करना ही होता है। करना भी चाहिए । पर जब दुःख के अवसर आवें तब घबराना तनिक भी नहीं चाहिए, वरन् अपने व्यक्तित्व को विकसित करने का एक सुअवसर आया जानकर उसे भी शिरोधार्य करना चाहिए। दुःखों से हानि तभी है जब मनुष्य उनका अभ्यस्त बनकर दीनहीन बन जाय और अकर्मण्य बन उनसे छुटकारा पाने का प्रयास ही छोड़ बैठे। यह स्थिति न आने पावे तो दुःखों में परिस्थितियाँ मनुष्य को अधिक सुदृढ़, अधिक पुरुषार्थी, अधिक सहिष्णु एवं अधिक पवित्र बनाने में बड़ी उपयोगी एवं आवश्यक सिद्ध होती हैं । परमार्थ के लिए किये गये तप, त्याग में जो दुःख स्वेच्छा से वरण किया जाता है वह तो आत्मा के लिए अमृत की तरह मंगलमय सिद्ध होता है। ऐसे दुःख की याचना यदि परमात्मा से की जाय तो इसमें जीव का ही कल्याण है ।

दर्शन पर्याप्त नहीं, भगवान को साथी और सेवक बनायें

परमेश्वर का कलेवर यह विश्व-ब्रह्माण्ड है । उसकी प्रतिमा देखनी हो क्रिया-कलाप देखना हो तो इस विराट् विश्व को देखना चाहिए यह जो कुछ दृश्यमान है परमेश्वर का कलेवर है-कर्त्तव्य है- उसी में ओत-प्रोत है ।

यदि परमेश्वर के प्राण का स्पर्श करना हो तो वह इन्द्रियों से नहीं अंतःकरण की अनुभूति के रूप में ही उपलब्ध होगा । सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों के रूप में उसकी झाँकी अपने भीतर की जा सकती है । जितनी ही उत्कृष्टता, निर्मलता, सहृदयता, उदारता, आत्मीयता अपने में हो उसी अनुपात से भगवान के अंश अपने में विद्यमान अनुभव किये जा सकते हैं ।

उपर्युक्त पाँच सत्प्रवृत्तियों को-परमेश्वर के प्रतिनिधि पाँच देवता कह सकते हैं । पाँच पाण्डव यही हैं । इन्हीं को आजीवन आन्तरिक असुर कौरवों से लड़ना पड़ता है । जब असुरता के उन्मूलन का हृदय मंथन आवेशपूर्वक हो रहा हो तो समझना चाहिए जीव रूपी अर्जुन ने गीता का ज्ञान स्वीकार कर लिया और वह सच्चा कृष्ण भक्त होकर उनके इच्छित महाभारत का पात्र बन गया ।

सत्प्रवृत्तियों का अन्तःकरण के राज्य पर आधिपत्य तब होता है जब दुष्प्रवृत्तियों के प्रति रोष और घृणा ही नहीं, संघर्षात्मक प्रक्रिया भी प्रखर कर दी जाय । प्रतिरोध के अभाव में तो वे जड़ जमाये ही बैठी रहेंगी, हटने का नाम नहीं लेंगी । सुई की नोंक बराबर जमीन देने को तैयार नहीं होंगी। अस्तु संघर्ष के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं । महाभारत रचे बिना, आन्तरिक शत्रुओं से लड़े बिना और कोई रास्ता नहीं ।

हृषीकेश-पाञ्चजन्य बजाते हैं और पार्थ ने गाण्डीव उठाया हो तो समझना चाहिए परमेश्वर का अभीष्ट प्रयोजन पूरा होने की व्यवस्था बन गई । इस महाभारत की युद्धस्थली ने ही अर्जुन को अपने साथ पाया है । तब अर्जुन को कृष्ण का पूजन आह्वान नहीं करना पड़ा । उलटे कृष्ण ही उसका रथ चलाने और सफलता का पथ प्रशस्त करने आये थे । प्रार्थना अनुरोध अर्जुन को नहीं करना पड़ा सारा स्तोत्र पाठ तो कृष्ण ने किया । गीता अर्जुन ने नहीं पढ़ी-कृष्ण ने सुनाई । भक्त और भगवान के बीच अनादि काल से यही क्रम चला है और अनन्त काल तक यही चलता रहेगा ।

भगवान का दर्शन विराट् विश्व के रूप में देखा जा सकता है । उसकी लीलाएँ देखनी हों तो प्रकृति हर्षोल्लास भरे कर्तृत्वों को गम्भीरतापूर्वक देखना चाहिए । उनकी निकटता का रसास्वादन करना हो तो फिर सत्प्रवृत्तियों के रूप में अपनी अन्तरात्मा टटोलनी चाहिए । उसमें जितनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रखरता पाई जाय समझना चाहिए उतना ही तेजस्वी परमेश्वर अपने भीतर सजग और सक्रिय हो रहा है ।

इससे भी और आगे बढ़कर परमेश्वर को अपने साथी, सहायक और सेवक के रूप में प्राप्त करना हो तो उनकी इच्छा को समझना चाहिए, ज्ञान को ग्रहण करना चाहिए और संकेत पर चलने के लिये कटिबद्ध होना चाहिए। अर्जुन ने यही किया था । भगवान अधर्म का विनाश और धर्म का विकास करने के प्रयोजन से ही अवतार लेते हैं । अपने अन्तःकरण में यदि इसी ईश्वरीय इच्छा के अनुरूप परिस्थिति उत्पन्न कर ली जाय तो भगवान का अवतरण इसी भूमि में तत्काल सम्भव हो सकता है ।

अन्तःकरण में समाविष्ट असुरता का उन्मूलन आवश्यक है । समाज में फैले अनाचार के प्रति विद्रोह वांछनीय है । जो इस झंझट भरे काम को करने के लिये तैयार है वह पक्का अर्जुन है । उसका दर्शन करने भगवान स्वयं ही आते हैं । साथ रहते और सेवक बनते हैं ।

परमात्मा ही प्रकाश है

ईसाई धर्म के एक बहुत बड़े महात्मा संत जान्स ने अपने युग के धार्मिकजनों के नाम एक बहुत छोटा-सा सन्देश भेजा था जिसमें कहा गया था कि "परमात्मा ही प्रकाश है और उसमें नाम मात्र को भी अंधकार नहीं है ।" इसके बाद हमारे पारस्परिक मानव-सम्बन्धों को छूते हुए उसने जो कुछ लिखा है, वह इन्हीं शब्दों की विस्तृत व्याख्या मात्र है । उसका दूसरा महत्वपूर्ण कथन यह है कि "परमात्मा ही प्रेम है और जो प्रेम में वास करता है स्वयं परमात्मा उसमें वास करता है ।" उसके ये दोनों कथन एक दूसरे से स्वाभाविक सम्बन्धित हैं ।

इस कथन के अनुसार यदि परमात्मा अन्धकार-रहित प्रकाश है और द्वन्द्व रहित प्रेम है, तो यह स्पष्ट है कि संसार में जो बुराइयाँ दिखलाई पड़ती हैं वे उसकी इच्छा का परिणाम कदापि नहीं हैं । ऐसी अवस्था में हम अन्य अनेक व्यक्तियों के इस कथन को हरगिज स्वीकार नहीं कर सकते कि "अच्छाई और बुराई दोनों परमात्मा की ही देन हैं ।" हम इस सिद्धान्त से कदापि सहमत नहीं हो सकते, न इसकी सच्चाई को स्वीकार कर सकते हैं । परमात्मा शुद्ध प्रकाश स्वरूप है, अन्धकार उससे भिन्न है ।

"परमात्मा ही प्रकाश है-ऐसा प्रकाश जिसके बिना सृष्टि असम्भव है और धर्मग्रंथों में जिसे जीवन का स्रोत कहा गया है । इसका क्या आशय है ? कुछ समय पूर्व सर अलिवर लाज ने, विज्ञान के नाम पर बोलते हुए यह मान लिया है कि "प्रकाश स्वयं एक सृजनात्मक शक्ति है ।" अर्थात् उसकी उत्पत्ति और कहीं से नहीं होती है वरन् वही अन्य वस्तुओं का निर्माण करता है । इसी तथ्य को धर्मग्रंथों में इन गम्भीर शब्दों में प्रकट किया है कि "ईश्वर ने आदि में ही कहा 'प्रकाश हो' और उसके ऐसा कहते ही दिव्य सृष्टि उत्पन्न हो गई ।" यदि परमात्मा ही प्रकाश-स्वरूप व तेज-स्वरूप है तो इसका अर्थ यही समझना चाहिए कि वह अपनी सृष्टि में प्रवेश कर चुका है और अब भी प्रवेश कर रहा है ।

परमात्मा की सृष्टि का क्या रूप है, जो कि उसकी स्वयं की पूर्णता से प्रकट हुई है ? क्या वह स्वयं प्रेम जनित होने के कारण सत्य, शिव और सुन्दर रूप नहीं है ? उस आदि-स्रोत से अन्य क्या सम्भव हो सकता है ? फिर क्या यह वही सत्ता नहीं है जो आदि में थी वर्तमान में है और अनन्त रूप से भविष्य में भी रहेगी ? वह सत्य का ही राज्य है, जिसमें जैसे ही हम प्रविष्ट होकर पूर्णता से वास करेंगे, वैसे ही हमारे जीवन परमात्मा के प्रेम से चमक उठेंगे । भगवान की दुनिया वही है जो सदा स्थिर रहेगी और परमात्मा के प्रकाश से जगमगाती रहेगी । इसके अतिरिक्त एक दूसरी भी दुनिया है जिसके विषय में कहा गया है कि "वह अपनी सम्पूर्ण वासनाओं के साथ नष्ट हो जाएगी ।" यह दुनिया मनुष्य के मन की विकृत सृष्टि है, जिसके फलस्वरूप माया की उत्पत्ति होती है और मनुष्य एक बड़े भारी भ्रम में पड़ जाता है ।

जब हम परमात्मा को प्रकाश रूप में देखें, तब हमें ऐसे प्रकाश के रूप में नहीं देखना चाहिए जिसे हम साधारण तथा आकाशस्थित ग्रहों का प्रकाश कहते हैं और जिस के निकट ही अन्धकार भी पाया जाता है । हमें तो उसे स्वयं सूर्य पिण्ड से निकलने वाले शक्ति और तेज के प्रकाश पुंज के रूप में ग्रहण करना चाहिए, जिसके निकट अन्धकार फटक ही नहीं सकता ।

अब हम सब मिलकर बोलें-"हमारा धर्म प्रेम है, हमारा पथ सेवा है, हमारा अन्तिम लक्ष्य परमात्मा है ।"

परमात्मा की अखण्ड ज्योति

यह आदि और अंत रहित ब्रह्म अखंड है । इसका खण्ड नहीं हो सकता । इस अवनीतल की समस्त वस्तुएँ इसी ब्रह्म की योजना से पूर्ण हैं अनन्त कोटि ब्रह्मांड भी इसी ब्रह्म के द्वारा प्रकाशित है । इस विश्व के समस्त तथा प्रत्येक पदार्थों में व्याप्त रहने पर भी इसकी पूर्णता में किसी प्रकार का अंतर नहीं आने पाता । क्योंकि वह सदा और सर्वदा परिपूर्ण है पूर्णता ही उसका प्राकृतिक गुण और स्वभाव है ।

यह परमेश्वर पूर्ण है बल्कि पूर्ण से भी पूर्ण है । इसलिये जिस वस्तु में इस पूर्ण का पूर्ण रूप से समावेश होगा वह सदा पूर्ण रहेगा इस भाव को अन्तर्गत करके केवल चैतन्य पदार्थों में ही नारायण शिव तथा शक्ति का ज्ञान प्राप्त करना होगा, यह बात नहीं है, बल्कि इस संसार की सभी जड़ वस्तुओं में भी श्रीभगवान की उपस्थिति की भावना करनी होगी । पर हमारी जड़ चक्षु अवनीतल को अंगुल-अंगुल खोज डालने पर भी ब्रह्म का दर्शन नहीं कर पाती । अन्धों की भाँति केवल भगवान की रट लगाने से तो

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कई जन्म में भी भगवान का दर्शन नहीं हो सकता । जिस दिन स्वर्ग की पवित्र तेजमय किरण से हमारी बुद्धि प्रकाश प्राप्त कर माया के अंधकार से निकल भागेगी, जिस दिन ज्ञानरूपी सूर्य के प्रकाश से हमारे मन की शंकाएँ और भ्रम दूर हो जावेंगे उस दिन हम धन्य तथा कृतकृत्य हो जाएँगे । उस दिन संसार को मोहित करने वाला सत्चित-आनन्दमय भगवान का रूप देखकर, उसके दर्शन करके हम धन्य होंगे ।

जब तक इस दिव्यचक्षु का उद्घाटन नहीं होता, अर्थात् जब तक ये दिव्यनेत्र नहीं खुलते तब तक साधन निष्फल और निष्प्रयोजन हैं, केवल माया जाल हैं और जिस दिन यह ज्ञान चक्षु खुल जाएँगे उस दिन प्रतीत होगा कि इस संसार में कोई भी पदार्थ अचेतन नहीं है। संसार की सभी वस्तुओं में सच्चिदानन्द परमेश्वर का निवास है । सभी के अन्तर्गत, प्राण, चेतना, मन तथा विज्ञान अधिष्ठित है, सब वस्तु के बीच में लीलामय श्रीहरि निवास करके अपने अनंत गुणों का अपार आनन्द उपभोग करते हैं । संसार की सभी व्यक्त-अव्यक्त अथवा प्रकाशोन्मुख वस्तु में जिसके बीच में परात्पर पुरुष पूर्ण रूप से अव्यक्त रूपेण विद्यमान हैं, अथवा जिसके प्रकाश में चैतन्य का कोई भी रूप देखने में नहीं आता, दिव्यचक्षु प्राप्त हो जाने पर उसके बीच में श्री आनन्द स्वरूप भगवान की दिव्य लीला देखने को मिलेगी । पत्र, पुष्प, पत्थर, मिट्टी, पेड़-पौधों इन सभी वस्तुओं की रचना में विशेष-विशेष प्रकार आनन्द है । उस आनन्द का आभास उसकी रचना चातुरी से प्रकट होता है । प्रत्येक वस्तु के अन्तर्गत श्रीहरि चित रूप से विराजमान होकर भिन्न रसों का उपभोग कर आनन्द लेते हैं । पर एक ही ब्रह्म का अनन्त रूप से अनेक वस्तुओं में निवास देखकर कभी भी इस बात की कल्पना नहीं करनी चाहिए कि ब्रह्म खंड है, वह विभक्त होकर आंशिक रूप से इन नाना विधि वस्तुओं में विराजमान है । भगवान द्विधा या विभक्त नहीं हो सकता । काल स्थान अथवा समय का उस पर किसी तरह का प्रभाव नहीं पड़ सकता । अभेद व अखंड होकर ही वह संसार की सभी वस्तुओं में समभाव से विराजमान होकर लीला करता है ।

ईश-प्रार्थना में निहित चुम्बकीय-शक्ति

मनुष्य की शक्ति सामर्थ्य अकूत एवं अपरिमित है, पर है वह प्रसुप्त अवस्था में, अन्तराल की गुहा में दबी हुई । उसे उभारने, विकसित करने और लोकोपयोगी बनाने की कला ज्ञात हो सके, तो हर कोई महानता की जीवित प्रतिमूर्ति बन सकता है । शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक ऊर्जा के उन्नयन में, ओजस तेजस्, ब्रह्मवर्चस् की अभिवृद्धि में ईश्वर-प्रार्थना, ध्यान साधना के महत्वपूर्ण योगदान की चर्चा अध्यात्म-वेत्ताओं ने की है । प्रार्थना वह प्रचण्ड चुम्बकत्व है, जो दैवी सहायता को अपने समीप खींच बुलाती और अभीष्ट स्तर का परिणाम प्रस्तुत करती है । अमेरिका निवासी चार्ल्स फिल्मोर शारीरिक दृष्टि से अशक्त थे । बचपन में स्केटिंग खेलते समय कूल्हे की हड्डी अपने स्थान से हट गई थी । अनेक तरह की चिकित्सा के बाद भी वह स्वस्थ नहीं हुए और एक पैर से लँगड़े हो गये। इस प्रकार की और भी शारीरिक अशक्तताएँ थीं । चिकित्सा की असफलता के बाद भी वे निराश नहीं हुए ।

उनका विश्वास था कि मानव जीवन किसी महान उद्देश्य के लिए है । अतः उसका रूप अवश्य ही भव्य होना चाहिए । उन्होंने स्वयं अनुभव किया कि मानव-जीवन मूलतः असुन्दर नहीं सुन्दर है और उसे सदा आनन्द से परिपूर्ण रहना चाहिए । यदि मनुष्य के जीवन में कोई दोष है या कोई कमी है तो वह इस सत्य को सही रूप में नहीं समझना और सत्य का व्यावहारिक जीवन में प्रयोग नहीं करना । मनुष्य जीवन में अनेक श्रेष्ठ शक्तियाँ हैं, योग्यताएँ हैं, आवश्यकता इन्हें उभारने की है ।

इस आस्था के अनुरूप वह प्रतिदिन चार से छहः घंटे तक प्रार्थना में बैठते और शरीर के विभिन्न अंगों को आशीर्वाद देते, ईश्वरी भावों से परिपूर्ण करते । आरम्भ में तो बड़ी कठिनाई हुई पर धीरे-धीरे शरीर के विभिन्न केन्द्रों पर उनका अधिकाधिक नियंत्रण होने लगा । बढ़ते हुए विश्वास और सतत् होने वाली प्रार्थना से उनका पुराना दर्द समाप्त हो गया, कूल्हा भी रोग मुक्त हो गया और लँगड़ाना दूर हो गया ।

फिल्मोर ने स्वस्थ होते ही अपने जीवन का उपयोग संकीर्ण स्वार्थों के लिए नहीं किया । उनका विचार था कि ईश्वर-प्रदत्त सामर्थ्य का उपयोग ईश्वरीय कार्यों में ही होना चाहिए । उनको जो नया प्रकाश, नया-जीवन, नया विश्वास, नया मार्ग मिला उससे वे अपने पड़ोसियों, परिचितों, अपरिचितों का, पीड़ितों का जो भी रोग से, दुःख से, अविश्वास से परेशान एवं संत्रस्त थे उन सभी का हित सम्पादन करने लगे । लोकसेवा ही चार्ल्स फिल्मोर तथा उसकी पत्नी मार्टिन फिल्मोर का एकमात्र कार्य हो गया । अमेरिका में वे प्रार्थना-मानव के रूप में विख्यात हुए । उन्होंने 'यूनिटी स्कूल आफ क्रिश्चिएनिटी' नामक एक संस्था की स्थापना की । जिसके द्वारा कल्याणकारी विचारों का प्रसार एवं सेवाकार्य किये जाते हैं । कल्याणकारी विचारों का प्रसार यूनिटी, पी विजडम प्रोग्रेस, गुड विजनेस आदि पत्रिकाओं द्वारा होता है । जिसे संसार के कोने-कोने से लोग मँगाते और पढ़ते हैं ।

फिल्मोर के अनुसार प्रार्थना एक रचनात्मक और सक्रिय चीज है । उनके अनुसार प्रार्थना के लिए बस तीन शर्त हैं-ईश्वर पर विश्वास, सरल प्रार्थना और विधेयात्मक पोषक विचार (पाजिटिव थिंकिंग) । प्रार्थना का उद्देश्य है-चिन्तन-पद्धति में परिवर्तन ला देना । परिवर्तन ईश्वर में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं होता है । वह तो सर्वदा शुभ और शिव है । फिर हम इससे दूर क्यों ? सिर्फ इसीलिए कि स्वयं के विचार जगत में शुभ के स्रोत और मंगलमय ईश्वर से एकात्मता नहीं है । प्रार्थना इसी एकात्मता की स्थापना करती है और समूचा जीवन दिव्य हो जाता है हम भी अपने जीवन में ईश-प्रार्थना का अवलम्बन लें ।

ईश्वरीय अनुग्रह सबके लिये सहज सुगम

परमात्मा का अनुग्रह वरदान जिन लोगों पर बरसता है उनका ऐहिक और आत्मिक-जीवन कृतकृत्य हो उठता है । प्रत्येक पिता अपने पुत्र को सम्पूर्ण हृदय से प्यार करता है और उसकी सुख-सुविधा के लिए हर सम्भव प्रयास करता है । सीमित और संकीर्ण होने के कारण उस स्नेह को मोह की संज्ञा दी जाती है । लाड़-प्यार भी कहा जा सकता है । इस तरह की मोह-ममता में सन्तान का अहित होने की सम्भावना भी रहती है । परन्तु परमात्मा अपने पुत्रों को शुद्ध स्नेह, प्रगाढ़ प्रेम करता है । जिसमें सभी का हित सधता है ।

ईश्वर को अपने सभी पुत्र समान रूप से प्रिय हैं । न कोई विशेष प्रिय है और न ही उसका किसी पर कम स्नेह है। जहाँ सबके प्रति समदृष्टि हो वहाँ कुछ नियम-मर्यादाएँ भी बनानी पड़ती हैं। परमात्मा का अनुग्रह सबके लिए उपलब्ध है परन्तु उसके साथ कुछ शर्तें भी जुड़ी हुई हैं। हर जरूरतमन्द को हथियार मिल सकते हैं, परन्तु यदि उनका दुरुपयोग होता हो तो प्रशासन उन्हें जब्त भी कर लेता है ।

परमात्मा का अनुग्रह, उसके अनुदान, वरदान नितान्त सम्भव सहज उपलब्ध हैं, किन्तु यह सब किसी को बिना शर्त नहीं मिल सकते । बैंक की पूँजी से अनेक उद्योग चलते हैं । अनेक ऋण मिलते हैं, पर उधारी प्राप्त करने के लिए बैंक का अंकुश भी स्वीकार करना होता है । प्राप्त धन उन्हीं कार्यों में लगाया जा सकता है जिसके लिए बैंक ने सहमति दी है । उस ऋण को मनमर्जी के हर काम में खर्च नहीं किया जा सकता । दूसरी शर्त यह रहती है कि ऋण का मूलधन ही नहीं उसका ब्याज भी लौटाने की तैयारी रखी जाय । इन शर्तों को तोड़ने पर बैंक के सहयोग का सिलसिला बन्द हो जाता है और मिली हुई पूँजी वापिस करने को विवश होना पड़ता है, भले ही उस दबाव से कारोबार ही क्यों न बन्द हो जाय । बैंक का ऋण लूट का माल नहीं है जिसे अपनी मर्जी से चाहे जिस प्रकार खर्च किया जाय और वापिस करने के नाम पर अँगूठा दिखाने का इरादा रखा जाय ।

शर्त है-सम्पूर्ण आत्म-समर्पण अर्थात् अपनी खुदी को मिटा देना ।

मिटा दे अपनी हस्ती को अगर तू मर्तवा चाहे
कि दाना खाक में मिलकर गुले गुलजार होता है ।

आत्म-समर्पण में जितनी गहराई होती है उसी अनुपात से ईश्वरीय अनुग्रह बरसता है । आदान-प्रदान का सिद्धान्त सर्वत्र काम करता है । भक्त और भगवान के बीच भी घनिष्टता स्थापित होने में भी यही सिद्धान्त काम करता है। इस आधार पर भक्तजन ईश्वर की समीपता पाते और अनुकम्पा खरीदते हैं । इस तथ्य को यदि पूरी तरह हृदयंगम किया जा सके तो परिजनों में से प्रत्येक के जीवन में काया-कल्प प्रस्तुत हो सकता है और एक ऐसे सहयोगी की सच्ची घनिष्टता प्राप्त कर सकने का अवसर मिल सकता है जो सर्वसमर्थ है और जिसका अनुग्रह इतना बहुमूल्य है जितना समस्त संसार का समन्वित वैभव । इस क्षेत्र की सफलता को जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति कहते हैं । इसे प्राप्त करने वाले स्वर्ग में रहते मुक्ति फल पाते और इसी काया में रहते हुए देवताओं जैसा आन्तरिक संतोष और बाह्य सम्मान-सहयोग प्राप्त करते हुए सत्-चित् आनन्द की स्थिति प्राप्त करते हैं । इसके लिए किए गये प्रयासों को परम पुरुषार्थ कहा गया है । ईश्वर के सान्निध्य से परिष्कृत व्यक्तित्व के कण-कण से सिद्धियों का वैभव झरता रहता है ।

उपासना गहरी, जीवन्त, सरस और सफल हो सके इसकी एक ही शर्त है कि उसे प्राणवान् बनाया जाय । उसके साथ सघन सम्पर्क मिलाने पर ही आशाजनक अनुदानों की अपेक्षा की जा सकती है । यह सघन सम्पर्क कैसे हो इसका 'तत्व-दर्शन' पूजा उपासना के क्रिया-कृत्यों से, भजन-पूजन के निर्धारित कर्मकाण्डों से सीखा जा सकता है । अर्चा-आराधना के विधि-विधान हमें उन तथ्यों से परिचित कराते हैं, जिनके सहारे ईश्वर तक पहुँचना-उसके साथ घनिष्टता स्थापित करना और अनुग्रह का लाभ ले सकना सम्भव होता है । थन का स्पर्श करके दूध दुहा जाता है, यह बात सही है, पर इसमें इतना और जोड़ना चाहिए कि स्पर्श मात्र से ही दूध की धार नहीं छूटती । थनों को हाथों से सुहलाने की एक ऐसी विशेष क्रिया भी करनी होती है, जो बछड़े द्वारा मुँह से थन चूसने के समतुल्य हो । ईश्वर-भक्ति की सफलता इस बात पर निर्भर है कि भक्त ने भगवान से कितनी वास्तविक सघनता स्थापित की । बछड़े जैसा स्तर अपना बनाया जाय ताकि माता हमें बालक मानने लगे और भावभरा पयपान कराने के लिए-आतुर रह सके । पाने के लिए, देने के लिए नहीं, जब अपने मन में उमंग उठने लगे तो समझना चाहिए कि जीवन व्यवसाय में ईश्वर की साझेदारी की पृष्ठभूमि बन गई । यह आधार खड़ा करने के लिए इन्हीं दिनों हमें अपने को-अपने दृष्टिकोण को उलटने का प्रबल प्रयास करना चाहिए । इस परिवर्तन के लिए ही साधना, उपासना का विशालकाय कलेवर खड़ा है । हम इस तथ्य को समझें । अपने को ईश्वर का बनावें ताकि वह हमारा बन सके । प्रगति का-सुखशान्ति का सच्चा मार्ग यही है ।

ईश्वर के सान्निध्य से किसने क्या पाया, ऐसे अगणित उदाहरण प्राचीन और अर्वाचीन प्रचुर परिमाण में उपलब्ध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं । हनुमान, अंगद, नल-नील जैसे रीछ-वानरों की शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक स्थिति तुच्छ थी । उनने भक्ति का मार्ग अपनाया और भगवान का अनुग्रह खरीदा । इस उपार्जन से चमत्कारी कार्य कर सके और हर दृष्टि से धन्य बन सके । कृष्ण के भक्तों में अर्जुन और सुदामा के नामों की गणना अग्रणी है । वे आत्मिक और सांसारिक क्षेत्रों में आशाजनक सफलता प्राप्त कर सके । मनुष्य होते हुए भी ईश्वर का व्यक्तित्व विकसित करने वाले अनेक महामानव अपनी कृतियों के कारण धरती के देवता कहलाते रहे हैं । बुद्ध, महावीर, मूसा, ईसा, जरथुस्त, मुहम्मद जैसे देवात्माओं का एकमात्र बल दैवी अनुग्रह ही था । सन्तों में भागीरथ, हरिश्चन्द्र, ध्रुव, प्रह्लाद, शंकराचार्य, ज्ञानेश्वर, नानक, कबीर, रामदास, रामकृष्ण, रामतीर्थ, विवेकानन्द, चैतन्य, दयानन्द, गांधी आदि की गणना की जा सकती है । वे स्वयं पार उतरे और असंख्यों को अपनी नाव पर बिठाकर पार करने में समर्थ हुए । न उन्हें सन्तोष की कमी रही-न सम्मान की-न सहयोग की-न साधनों की । ईश्वर-भक्ति के सत्परिणाम असीम हैं । उसके लिए प्रयत्न करना सर्वोपरि बुद्धिमत्ता का चिन्ह है । इस स्तर के प्रयासों को ही परम पुरुषार्थ नाम दिया है जो अक्षरशः सही है ।

"पूजा करना-मंशा पूरी कराना" यह बात प्रलोभन भर है । तथ्यपूर्ण नहीं । ईश्वर को हमें अपनी मर्जी पर चलाने में तभी सफलता मिल सकती है जब हम पहले उसकी मर्जी पर चलना सीखें । प्रलोभन और प्रशंसा की कीमत पर भगवान जैसी दिव्य-चेतना को फुसलाकर अपना उल्लू सीधा करने में न आज तक किसी को सफलता मिली है और न भविष्य में किसी को मिलेगी । यदि इतनी छोटी प्रक्रिया में ईश्वरीय-अनुग्रह प्राप्त करना सम्भव रहा होता तो मन्दिरों के पुजारी, तन्त्र-मन्त्र में उलझने-उलझाने वाले देव व्यवसायी अब तक करोड़पति बन गये होते । उनमें दरिद्र और विपन्न एक भी दिखाई न पड़ता ।

ईश्वर प्राप्ति के लिए ऐसा दृष्टिकोण एवं क्रिया-कलाप अपनाना पड़ता है जिसे प्रभु समर्पित जीवन कहा जा सके । जीवन-लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आत्मिक प्रगति का मार्ग अपनाना पड़ता है और वह यह है कि हम प्रभु से प्रेरणा की याचना करें और उसके संकेतों पर चलने का साहस करें । उपासना का मर्म और उद्देश्य यही है कि मनुष्य अपने लक्ष्य को-इष्ट को समझे और उसे प्राप्त करने के लिए प्रबल प्रयास करे । उपासना कोई क्रिया-कृत्य नहीं है । उसे जादू नहीं समझा जाना चाहिए । आत्म-परिष्कार और आत्म-विकास का तत्वदर्शन ही अध्यात्म है । उपासना उसी मार्ग पर जीवन प्रक्रिया को धकेलने वाली एक शास्त्रानुमोदित और अनुभव प्रतिपादित पद्धति है । इतना समझने पर प्रकाश की ओर चल सकना बन पड़ता है । जो ऐसा साहस जुटाते हैं, उन्हें निश्चित रूप से ईश्वर मिलता है । अपने को ईश्वर के हाथ बेच देने वाला व्यक्ति ही ईश्वर को खरीद सकने में समर्थ होता है । ईश्वर के संकेतों पर चलने वाले में ही इतनी सामर्थ्य उत्पन्न होती है कि ईश्वर को अपने संकेतों पर चला सके । लालच की पूर्ति के लिए ईश्वर को फुसलाने वाली विडम्बनाएँ लोग रचते तो हैं, पर उनमें किसी का भी सफल होना असम्भव है । ज्ञान का देवता-अज्ञानियों की लिप्सा पूरी करने के लिए निमित्त बनना स्वीकार कर लेगा, ऐसी आशा करना दुराशा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ।

यहाँ वास्तविक और अवास्तविक घनिष्टता का अन्तर भी अच्छी तरह समझ लिया जाना चाहिए । वास्तविक घनिष्टता को आत्मीयता भरी मैत्री कहते हैं । मित्रता प्रेम के आधार पर जुड़ती, दृढ़ होती और बढ़ती है । प्रेम का ही दूसरा नाम भक्ति है । "रसो वै सः" उक्ति में प्रेम को ही परमेश्वर माना गया है । प्रेम किसी भावुकता का नाम नहीं है । उसके लिए आँसू टपकाने या ऐसी ही कुछ अन्य भाव क्षेत्र की उछल-कूद करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है । प्रेम एक स्थिर सिद्धान्त है जिसे दूसरे शब्दों में सघन आत्मीयता कहते हैं । इस स्तर का उदय होते ही प्रेमी की हित-कामना प्रधान हो जाती है । उससे लेने का नहीं देने का ही जी करता है । यह देना जितना अधिक उच्च स्तर का-जितना सर्वांगपूर्ण होता है उतना ही मैत्री का आनन्द आता है । उसी अनुपात से मित्रता सुदृढ़ बनती और फलप्रद होती है । पारस्परिक सहयोग मित्रता का मूल प्रयोजन है । इसमें जो अग्रणी होता है उसे प्रेमी कहते हैं । भक्त की मनःस्थिति भी यही है कि वह भगवान से प्रेम करता है । प्रेमी होने के नाते उससे कुछ माँगता नहीं वरन् अपने पास जो कुछ है उसे देने के लिए व्याकुल रहता है । अवसर ढूँढ़ता है कि किस समय, किस प्रकार उसे क्या दिया जा सकता है । इन प्रयत्नों को करते-करते एक दिन ऐसी स्थिति आती है कि अपनी चेतना और सम्पदा का समग्र समर्पण प्रभु-चरणों में हो जाता है । अपनी महत्वाकांक्षाएँ समाप्त हो जाती हैं उनके स्थान पर ईश्वर की आकांक्षा का वर्चस्व छाया रहता है । जीवन की दिशाधारा अपनी इच्छानुकूल नहीं बहती, वरन् उधर चलती है जिधर परमेश्वर की प्रेरणा होती है । चेतना के उपरान्त मानवी-अस्तित्व का दूसरा पक्ष है-सम्पदा । इसमें शरीर, कौशल और धन तीनों का समन्वय रहता है । इनका उपयोग लिप्साओं की पूर्ति के लिए नहीं वरन् उन प्रयोजनों के लिए लगने लगता है जिनके लिए स्रष्टा ने इस बहुमूल्य अमानत को जीवात्मा का स्तर परखने के लिए सौंपा है ।

पुजारियों और भक्तों के अन्तर को स्पष्ट रूप से समझा जाना चाहिए । पुजारी के क्रिया-कलाप, पूजा-परक कर्म-काण्डों तक सीमित रहते हैं । इतने भर से देवता प्रसन्न हो जाते हैं और मनोकामना पूरी करने वाले वरदान बरसाने लगते हैं-यही पुजारी मनोवृत्ति आज सर्वत्र छाई हुई है । जबकि पूजा-अर्चा उपचार कलेवर है और आस्था उसका प्राण है । प्राण और कलेवर का सम्मिश्रण ही पूर्णता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्पन्न करता है । पुजारी की गतिविधियाँ कर्मकाण्डों तक सीमित रहती हैं, जबकि सच्चा भक्त उपासना के क्रिया-कृत्यों से प्रकाश एवं प्रेरणा प्राप्त करके अपनी चेतना को दिशा और सम्पदा की धारा देने का प्रयत्न करता है । भगवान और भक्त की अन्त:स्थिति और गतिविधियों में जितनी समस्वरता, जितनी एकता दिखाई पड़े उसी आधार पर यह जाना जा सकता है कि भक्ति कितनी प्राणवान् है? प्राणवान् भक्ति के सत्परिणाम सुनिश्चित हैं ।

ईश्वर की सजीव साझेदारी में उस ओर से पर्याप्त साधन जुटा दिये गये अब अपनी बारी है कि अपना पक्ष भी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करें । मनुष्य जीवन का एकमात्र उद्देश्य इस विश्व-उद्यान को सुविकसित और सुसंस्कृत बनाने में ईश्वर का हाथ बँटाना है । इस धरोहर को इसी प्रयोजन के लिए दिया गया है । सेवा-धर्म अपना कर हम अपने को परिष्कृत समाज को उपकृत और ईश्वर को प्रसन्न करने का तिहरा लाभ उठाते हैं । इसकी उपेक्षा करके उपासना कृत्य का स्वरूप फुसलाने के लिए रची गई विडम्बना बनकर रह जाता है । भक्त प्रेमी होता है । प्रेम का परिचय-उदार सहयोग के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता । हमें ईश्वर से कुछ माँगने की आवश्यकता नहीं है । पात्रता बढ़ने के साथ-साथ पिता सहज ही अपने साधन और अधिकार स्वयं ही हस्तान्तरित करता जाता है । जितना गहरा गड्ढा होगा वर्षा का जल उसमें उतना ही भरता चला जाएगा । उथले पात्र में मेघ माला द्वारा बरसाये गये अजस्र अनुदान में से भी मात्र उतना ही मिल पाता है जितना कि उस बर्तन की परिधि होती है । हमें अपनी पात्रता और परिधि बढ़ानी चाहिए और उसके लिए ईश्वरीय प्रयोजनों के निमित्त अपने अनुदानों की मात्रा बढ़ानी चाहिए ।

इसके लिए अब तक जीवनक्रम का जैसा कुछ प्रवाह चल रहा है उसे जबरदस्ती संकल्पपूर्वक और दृढ़ निश्चय के साथ मोड़ना पड़ेगा, जीवन-साधना के पथ पर बढ़ने की हिम्मत जग पड़े तो फिर दूसरा चरण जीवन को सुव्यवस्थित बनाने का होना चाहिए । उसके लिये सतर्क सिपाही की तरह प्रतिदिन मन को भक्त बनाने का, संकल्प शील बनाने का अभ्यास प्रारम्भ करना पड़ेगा ।

प्रात: उठते ही सोचा जाय, ईश्वर के प्रतिनिधि की तरह आज का दिन-एक जीवन-सत्प्रयोजनों की पूर्ति के लिए घर और बाहर के क्षेत्र में व्यतीत करना है । दिन भर अपने चिन्तन और कर्तृत्व पर कड़ी दृष्टि रखी जाय और परखते रहा जाय कि उनमें निकृष्टता का समावेश तो नहीं हो रहा है । सजगता रहने से अनैतिक तत्वों का आक्रमण प्राय: नहीं हो पाता । रात्रि को सोते समय मरण की गहरी अनुभूति की जाय । स्रष्टा के घर जाने और सौंपे गये उत्तरदायित्वों का लेखा-जोखा देने की बात स्मरण रखी जाय तो रात की शयन वेला और प्रात:काल की संध्या एक अच्छे धर्मोपदेशक जैसी प्रेरणाएँ देती रह सकती हैं । ईश्वर की साझेदारी इन्हीं आधारों के अपनाने में सम्भव हो सकती है । उपासना अपना चमत्कारी प्रतिफल तभी दे सकती है जब वह जीवन साधना के रूप में परिणत हो । कल्पना-जल्पना के मन मोदक खाते रहने से न तो सांसारिक सफलताएँ मिलती हैं और न आध्यात्मिक प्रगति सम्भव होती है ।

ईश्वर की सामर्थ्य अनन्त है, उसकी अनुकम्पा से मिल सकने वाली सम्पदाएँ भी असीम हैं । ऐसी समर्थ शक्ति के साथ यदि किसी तरह घनिष्टता प्राप्त कर सकना सम्भव हो सके तो समझना चाहिए कि उसने पारस को छूकर लोहे के सोने में परिणत हो जाने जैसी स्थिति प्राप्त कर ली ।

अनुशासित विश्व व्यवस्था और ईश्वरीय-सत्ता

यदि हम अपने चारों ओर ध्यानपूर्वक देखें तथा विचार करें कि सूर्य कैसे प्रतिदिन नियमित रूप से उदय और अस्त होता है, चन्द्रमा एवं अन्य ग्रह-नक्षत्र कैसे अपनी कक्षा में ही घूमते रहते हैं, प्रकृति अपना काम नियमित रूप से कैसे करती है? तो समझ में आ जाएगा कि इसका नियन्ता भी अवश्य होना चाहिए। जॉन ग्लेन को पहली बार जब ब्रह्माण्ड की विशालता का ज्ञान हुआ तो इसका उन पर गहरा प्रभाव पड़ा तथा उन्होंने विश्वासपूर्वक अपने विज्ञानी साथियों से कहा-"इतना बड़ा ब्रह्माण्ड बनाने वाला कोई ईश्वर ही होना चाहिए। भले ही आज उसके स्वरूप एवं क्रिया-कलापों को पूरी तरह समझ सकना सम्भव न हो सके ।"

ब्रह्माण्ड की विशालता जानने के लिए पहले हमें प्रकाशवर्ष जान लेना चाहिए । प्रकाश १,८६,००० मील प्रति सैकेण्ड की गति से चलता है जो पृथ्वी के प्राय: ७।। चक्र के बराबर होता है । यदि किसी प्रकाश किरण को उसी दिशा में छोड़ा जाय तो एक वर्ष में उसके द्वारा तय की गई ६ मिलियन मील (अर्थात् ५८,६५,६९,६०,००,००० मील) की अकल्पनीय दूरी को एक प्रकाशवर्ष कहा जाता है ।

अब हमारा ब्रह्माण्ड कितना बड़ा है इसकी कल्पना करें। हमारी आकाशगंगा का व्यास करीब १००,००० प्रकाशवर्ष है। आकाशगंगा के केन्द्र से करीब ३०,००० प्रकाशवर्ष की दूरी पर सूर्य अपनी कक्षा में प्रति २०० मिलियन वर्षों में एक चक्कर लगाता रहता है, जबकि आकाशगंगा स्वयं भी घूमती रहती है । सौरपरिवार के बाहर इस ब्रह्माण्ड की विशालता की कल्पना करना असम्भव है।

ब्रह्माण्ड में केवल हमारी आकाशगंगा ही नहीं है अपितु इसके अतिरिक्त भी लाखों-करोड़ों आकाश गंगाएँ अनन्त अन्तरिक्ष में अत्यन्त भयंकर गति से दौड़ रही हैं । दूरबीन के सहारे हम अपने चारों ओर फैले इस विशाल ब्रह्माण्ड को मात्र २ मिलियन प्रकाश वर्ष की दूरी तक ही देख सकते हैं । इसी से पता चलता है कि हमारा ब्रह्माण्ड कितना बड़ा होना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अब तक की खोजों के आधार पर पदार्थ की सबसे छोटी इकाई परमाणु को ही माना गया है । परमाणु की संरचना का पर्यवेक्षण करने पर हमारे सौरमण्डल तथा ब्रह्माण्ड के साथ उसका अद्‌भुत साम्य पाया गया, क्योंकि परमाणु के अन्तराल में काम करने वाले इलेक्ट्रॉन आदि घटक भी अपनी धुरी में पर अपनी कक्षा में ग्रह-नक्षत्रों की भाँति ही नियमित रूप से घूमते रहते हैं ।

मूर्धन्य विज्ञानी कार्ल सेंगन का कहना है कि यह सब एक योजनाबद्ध रूप में हुआ था । अन्तरिक्ष का यह सुनियोजन एक बड़ी चीज है जो बतलाती है कि ईश्वर नाम की कोई शक्ति है अवश्य । जिसने इन सभी को परिक्रमा पथ में छोड़ दिया है और उनको एक सुसंतुलित नियंत्रण में रखे रहती है ।

प्रकारान्तर में यही आस्तिकता है । सूर्य और चन्द्रमा की गतिशीलता को, तारकों और पदार्थ घटकों को अपने स्वरूप, उद्देश्य एवं अनुशासन में निरत देखकर यह विश्वास होना ही चाहिए कि यह सब अनगढ़ रूप से स्वेच्छापूर्वक नहीं हो रहा है ।

न केवल ब्रह्माण्डीय विस्तार, पदार्थ का स्वरूप एवं प्राणियों का स्वभाव, निर्वाह एक सुनियोजित व्यवस्था के अनुरूप चल रहा है वरन् जीवन को विकसित एवं व्यवस्थित रखने के भी कुछ सिद्धान्त हैं । उन्हें अपनाने पर व्यक्ति सुखी रहता और समुन्नत, सुसंस्कृत बनता है । यही है वह निर्धारण एवं अनुशासन, जिसे तत्वदर्शन के रूप में समझा और नीति-मर्यादा के रूप में विज्ञजनों द्वारा अपनाया जाता है । संक्षेप में यही आस्तिकता है । इसकी अति, अवज्ञा, उच्छृंखलता बरतने पर हम अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारते हैं ।

इस सुन्दर दुनिया को बर्बाद न करें

परमात्मा को सौन्दर्य का भण्डार और आनन्द का समुद्र कहते हैं । क्यों ? इसलिए कि उसने इस विश्व को बनाने में असीम श्रम किया है और अपनी कलाकारिता का परिचय दिया है । यदि वह कुछ भी न बनाता तो कदाचित् ही कोई उसे जान पाता ।

स्रष्टा परमेश्वर का बड़ा भाव-भरा नाम है क्योंकि उसने सृष्टि को सृजा । कितनी सुन्दर है उसकी यह कलाकृति जिसे ध्यानपूर्वक देखने से पुलकन होती है । सृजन किसी की शक्ति और गरिमा का सबसे बड़ा चिह्न है । जिसने इस संसार में जितने महान निर्माण कार्य किये हैं उन्हें उतना ही सराहा जाता है ।

छोटा-सा बया पक्षी एक-एक तिनका बीनकर जहाँ-तहाँ से लाता है । क्रमबद्ध रूप से मनोयोगपूर्वक सँजोकर एक सुन्दर घोंसला बनाता है । वह स्वयं उसमें सुखपूर्वक रहता है, गर्व से सिर उठाता और चहचहाता है । उसे देखने भर से दर्शकों की बाछें खिल जाती हैं । संसार का हर सुन्दर सृजन ऐसा ही आनन्ददायक और सराहनीय होता है । स्रष्टा का गुणगान करने में सबसे बड़ी उसकी यह विशेषता है कि कैसी सुन्दर दुनिया उसने बनाई । कैसे अद्‌भुत प्राणियों की संरचना उसने की । कैसे फूल खिलाये और कैसे हरे-भरे पौधे उगाये ।

मनुष्यों में सराहनीय वे हैं जिन्होंने उपयोगी सृजन कर दिखाये । रचनाओं में जिसने कला और सौन्दर्य का समावेश कर दिखाया । जो बोता है, उगता है और हरियाली का माहौल बनाकर दिखाता है उसे सराहनीय कृतियों के लिए सदा याद रखा जाता है ।

शैतान बदनाम है । क्यों ? इसलिए कि वह बने को बिगाड़ता है । बिगड़े का सर्वनाश कर दिखाता है । मनुष्यों में से ऐसे लोगों की कमी नहीं जिन्हें शैतान कहा जा सके और उनकी शैतानी के लिए उन्हें धिक्कारा जा सके ।

बिगाड़ना सरल है । माचिस की एक तीली से समूचे गाँव को स्वाहा किया जा सकता है, किन्तु उसे बनाकर खड़ा करना टेढ़ा काम है ।

स्रष्टा के इस सुन्दर-सृजन को कुरूप या बर्बाद कर देना तीली जैसी नाचीज आदमी के लिए सम्भव है । किसी विद्वान की हत्या करना कठिन काम नहीं है। किन्तु बुद्धिमान सृजनशील बनने या बनाने में कितना श्रम और समय लगता है इसे वे ही जानते हैं जिन्हें वैसा करना पड़ा है ।

मनुष्यों में कितने ही ऐसे हैं जिन्हें शैतान की तरह बिगाड़ना ही आता है, जो सुन्दर को कुरूप करने में सिद्धहस्त हैं । पर उन्हें स्मरण कौन रखे ? सराहेगा कौन ? कितनों ने अपने लिए यही व्यवसाय चुना है कि बर्बादी में लगे रहें और जो कुछ इस दुनिया में अच्छा दीखता है उसे तोड़-तोड़कर विस्मार करते रहें ।

जो लोग एक सुन्दर तितली नहीं बना सकते, वे ऐसा क्यों करते हैं कि बतखों के झुण्ड का शिकार खेलें और विनोद को क्रन्दन में बदल दें । जो लोग एक चींटी नहीं बना सकते वे हाथियों के बच्चों को बर्बाद करने की योजना क्यों बनाते हैं। जो जिन्दगी भर में एक सच्चा दोस्त नहीं बना सकते, वे आये दिन जानी दुश्मनों के गिरोह अपने लिए क्यों तैयार करके खड़े हो जाते हैं ।

छोटे बच्चों के मिट्‌टी के खिलौने तोड़ डालने पर वे कितने मचलते हैं और तोड़ने वाले से बदला लेने के लिए किस तरह दौड़ते हैं । ईश्वर की कलाकृतियों को जो बिगाड़ने भर का ताना-बाना बुनते रहते हैं उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि वे ऐसा अनर्थ करते हैं जिसका दुष्परिणाम उन्हें भुगतना ही पड़ेगा । एक भला आदमी बनाने में कितनों को कितनी मेहनत करनी पड़ती है, फिर जो बुरी शिक्षा देने, बुरे बढ़ाने और बुरे कृत्य करने-कराने में लगेंगे, उन्हें आत्मा-परमात्मा और विश्वात्मा का कोप-भाजन बनना ही पड़ेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रतिकूलताओं को चुनौती देती मानवी-चेतना

अन्य सृष्टि के जीव-जन्तु आकस्मिक दुर्घटनाओं, प्राकृतिक प्रकोपों एवं अन्य आघातों से अपना सन्तुलन रख पाने में अपने को असमर्थ पाते हैं तथा घटना के प्रवाह में बहते, प्रभावित होते देखे जाते हैं । वहीं मानवी-चेतना में इतनी सूझ-बूझ एवं समर्थता है कि इन प्रतिकूल परिस्थितियों को चुनौती देते हुए अपना वर्चस्व कायम रख सके । किन्तु देखा यह जाता है कि मनुष्यों में अधिकांशत: सामान्य प्रतिकूलताओं में भी अपना मानसिक सन्तुलन स्थिर नहीं रख पाते । सामने आयी प्रतिकूलताओं से जूझने के बजाय स्वयं को असन्तुलित कर, प्रकोपों के भाजन बन जाते हैं अन्यथा स्रष्टा ने चेतनशील प्राणियों का नेतृत्व करने वाले मनुष्य को इतना सशक्त, समर्थ बनाया है कि सामान्य तो क्या असामान्य परिस्थितियों में भी अपना अस्तित्व बनाये रख सकता है ।

मानवी जीवन को ईश्वर का सर्वोत्तम उपहार मानने एवं उससे अदम्य प्रेम करने वाली जीवटसम्पन्न व्यक्ति कितनी बार तो मृत्यु को भी चुनौती देते देखे जाते हैं । मृत्यु को भी इन व्यक्तियों के साहस एवं जीवन के प्रति लगाव को देखकर घुटने टेकना पड़ता है ।

द्वितीय विश्वयुद्ध की एक घटना है । युद्ध की गतिविधियाँ उन दिनों तीव्र थीं । मित्र-राष्ट्र संगठित रूप से जर्मनी से टक्कर ले रहे थे । २४ मार्च १९४४ को ब्रिटेन के सार्जेन्ट 'निकोलस' ने वर्लिन पर बमबारी करने के लिए हवाई जहाज की उड़ान भरी । गन्तव्य स्थान पर चार टन से भी अधिक विस्फोटक सामग्री डालने के पश्चात् वह तेजी से शत्रुओं के जहाजों के प्रहार को बचाते हुए अपने जहाज को ले चला । सतर्क शत्रु सेना की विमानभेदी तोपों ने निकोलस के जहाज पर आग उगलना आरम्भ कर दिया । बचाव के लिए अत्यधिक सतर्कता रखने पर भी दो गोले उसके जहाज पर लग ही गये । फलस्वरूप विमान में आग लग गई । निकोलस ने वायरलेस से कप्तान से सम्पर्क स्थापित करते हुए सहयोग के लिए याचना की । ऐसी विषम परिस्थिति एवं भयंकर अग्नि में सहयोग किया भी कैसे जाय, यह एक विकट समस्या थी । अन्य विमान को बचाने के लिए भेजे जाने पर उसमें भी आग लगने की सम्भावना थी । कप्तान को नीचे से निराशाजनक स्वर सुनाई पड़ा कि "ऐसी स्थिति में हम किसी प्रकार का सहयोग करने में असमर्थ हैं । अपनी सूझ-बूझ से स्वयं बचाव का प्रयत्न करो" ।

एक ओर भयंकर अग्नि की ज्वाला दूसरी ओर कप्तान का निराशाजनक उत्तर, कुल मिलाकर दुर्बल मन:स्थिति का व्यक्ति अपना सन्तुलन तो कायम नहीं ही रख सकता । किन्तु इतने पर भी वह अपने को संतुलित रखते हुए बचने का उपाय सोचने लगा । इसे भी एक दुर्भाग्य ही कहा जाना चाहिए कि पैराशूट उस दिन पहन न सका तथा वह बराबर के केबिन में रखा था । पैराशूट की याद आते ही वह केबिन की ओर मुड़ा किन्तु जैसे ही बीच का द्वार खोला, लपलपाती हुई ज्वाला उसकी ओर बढ़ी । आँखों में धुँआ भर गया तथा केबिन आग की लपटों से घिरा था । लगता था मृत्यु उसे कालग्रस्त करने के लिए सारी परिस्थितियों का सृजन कर रही थी । बचाव का एक मात्र साधन पैराशूट आँखों के सामने देखते ही देखते जलकर भस्मीभूत हो गया । आग विमान में फैलती जा रही थी । जीवन-मृत्यु के बीच अब कुछ ही मिनटों का अंतर था । आग अपनी बाँह पसारे निकोलस को लेने के लिए आगे बढ़ रही थी । परिस्थितियाँ शीघ्र ही निर्णय लेने को बाध्य कर रही थीं । मस्तिष्क ने तेजी से सोचना आरम्भ किया । बीस हजार फुट ऊँचाई से निकोलस ने नीचे देखा । यह सोचकर कि आग की लपटों में जल कर मर जाया जाय क्यों नहीं विमान से कूदकर बचने का प्रयास किया जाय । परमात्मा का नाम स्मरण करके वह कूद पड़ा । सिर के बल फुटबाल के समान तेजी से वह धरातल की ओर जा रहा था, अचेतन स्थिति में अनिश्चित मंजिल की ओर ।

चेतना लौटी तो उसने अपने को बर्फ से चारों ओर ढका पाया । सर्वप्रथम उस परमात्मा को स्मरण किया जिसकी अनुकम्पा, अनुग्रह से उसे बीस हजार फुट से छलाँग लगाने के बाद भी नव-जीवन मिला । अंग-अंग में पीड़ा हो रही थी । एक बार उठने का प्रयास किया । किन्तु पैर की हड्डियाँ टूट गयी थीं, इस कारण उठ नहीं पाया । अपनी रेडियम घड़ी पर निगाह डाली तो रात के दो बज रहे थे । इतना तो उसे अनुमान ही था कि यह क्षेत्र शत्रु का होना चाहिए । शारीरिक असमर्थता के कारण वह भाग सकने में असमर्थ था । जीवन की सुरक्षा के लिए उसने कमर में बँधी सीटी बजा दी । कई बार सीटी बजाये जाने पर शत्रु सैनिकों ने आकर उसे बन्दी बना लिया ।

निकोलस ने शत्रु सेना अधिकारियों को सारी घटना बतायी, किन्तु किसी को यह विश्वास नहीं हो रहा था । जले हुए विमान के अवशेष मिलने पर अधिकारियों को विश्वास करना पड़ा । पहले तो उन्हें सन्देह था कि निकोलस गुप्तचर है किन्तु घटना की पुष्टि होने पर संदेह जाता रहा । युद्ध बन्दियों को युद्ध समाप्त होते ही छोड़ा गया। निकोलस सकुशल इंग्लैण्ड पहुँचा ।

घटना जहाँ मानवी साहस का परिचय देती है वहीं इस बात की भी परिचायक है कि जीवन के प्रति अदम्य प्रेम करने वाले प्रतिकूलताओं को चीरते हुए, चुनौती देते हुए अपना अस्तित्व अक्षुण्ण बनाये रखने में समर्थ होते हैं । यदि ईश्वरीय सर्वश्रेष्ठ उपहार-अलभ्य मनुष्य जीवन से प्रेम किया जा सके, विपन्नताओं के समक्ष समर्पण न किया जाय तो आयी हुई प्रत्येक कठिनाइयों से जूझने में मानवी चेतना समर्थ है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अदृश्य बाजीगर की मनोरंजन की पिटारी

मनोरंजन को जीवन की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता समझा जाता है । इसके लिए लोग लालायित रहते हैं और जब अवसर मिलता है तब समय एवं पैसा भी खर्च करते हैं । यह प्रचलन सर्वत्र देखे जाने पर भी ऐसा कुछ दीख नहीं पड़ता कि लोग मन का रंजन करके उसे उल्लसित, पुलकित, प्रफुल्लित कर पाते हों । यदि अभीष्ट प्रयोजन की पूर्ति न हुई तो समझना चाहिए कि प्रयास निरर्थक ही चले गये ।

उथले लोग कामुकता की कल्पना अथवा उन क्रिया-कलापों को चरितार्थ करने में मनोरंजन की पूर्ति अनुभव करते हैं । उसके लिए प्रयत्नशील भी रहते हैं, पर देखा गया है कि इस स्तर की कल्पनाएँ उत्कृष्टता की उस एकाग्रता और चरित्रता का अपहरण कर लेती हैं, जिसके आधार पर ऊँचे स्तर का बहुत कुछ सोचा और निर्धारण किया जा सकता था । इस प्रकार का तानाबाना बुनते रहने वाले प्राय: विक्षुब्ध और असंतुष्ट ही देखे जाते हैं । अनियंत्रित कामुक-कल्पनाओं की आपूर्ति किसी भी प्रकार सम्भव नहीं । ऐसी दशा में दिवा-स्वप्न देखने और कल्पना की बिना पंख वाली उड़ानें उड़ते रहने के अतिरिक्त और किसी के कुछ हाथ नहीं लगता है । इन मनोरथों की आंशिक पूर्ति का कभी अवसर भी मिले तो उससे आग और भड़कती है । लालसा और अधिक उद्दीप्त होती है साथ ही शरीर और मस्तिष्क को खोखला भी करती चलती है ।

कौतुक और कौतूहल देखकर उछलने लगना, तालियाँ बजाने लगना क्रीड़ा का एक भाग है । मनुष्यकृत कौतुक देखने में जिन्हें रस आता है, वे बाजीगरों, मदारियों, सपेरों के द्वारा प्रदर्शित किये जाने वाले कौतुकों को देखने की अपेक्षा प्रकृति के कण-कण में चल रही हलचलों को ध्यानपूर्वक अवलोकन करें और देखें । वे पायेंगे कि यहाँ सब कुछ अद्‌भुत ही अद्‌भुत है । प्रत्येक क्षण में होता परिवर्तन कौतूहलों में क्या किसी से कुछ कम है । आसमान में उमड़ती मेघमालाएँ और उनकी कड़क, बिजली की चमक कितनी अद्‌भुत है कि उसके स्मरण मात्र से रोमांचित होने का अवसर मिलता रहे । हिमाच्छादित पर्वत शिखर, संध्याकाल का रंग-बिरंगा आसमान इतना विचित्र होता है कि उसे देखते-देखते मन नहीं भरता । निर्झरों के प्रवाह, नदियों के प्रवाह और समुद्रों में उठने वाले ज्वार-भाटे प्रत्यक्ष या दृष्टि माध्यम से देखने पर हतप्रभ रह जाना पड़ता है ।

मनुष्य का अपना शरीर एक अच्छा-खासा अजूबा है। उसके साथ जुड़े हुए अगणित अवयव अपनी निराली संरचना और गतिविधियों पर दृष्टिपात करने से लगता है कि अपना आपा भी कितने कौतूहलों का भण्डार है । हृदय की धड़कनें, स्नायु समूह का आकुँचन-प्रकुँचन, श्वास-प्रश्वास क्रम, शयन जागरण आदि सभी कुछ ऐसा है कि इस कठपुतली को नचाने वाले अदृश्य बाजीगर का कौतूहल देखते-देखते चकित रह जाना पड़ता है। जीवन का जिस क्रम से आरम्भ, अभिवर्धन, परिवर्तन क्रम चलता रहता है, उस जीवन-चक्र पर दृष्टिपात करने में आरम्भ से लेकर अन्त तक निरन्तर यहाँ आश्चर्य ही आश्चर्य घटित होता दीख पड़ता है ।

आकाश की ओर नजर उठाकर देखने पर चाँद-तारों से जगमगाता हुआ आकाश ऐसा लगता है मानो किसी विशेष शमियाने को तानकर उसमें हीरे-मोतियों के बने झाड़-फानूस लटका दिये गये हों । ऐसी सुसज्जा का प्रबन्ध करने वाला कलाकार कितनी आश्चर्यजनक एवं विशेषताओं से भरा-पूरा होगा, उस विस्तार की कल्पना तक करने में बुद्धि थक कर बैठ जाती है ।

अपने निज के मन-मानस की उठती-गिरती उमंगों का अवलोकन किया जाय, उसकी बुद्धिमत्ता और मूर्खता पर अलग-अलग विचार किया जाय तो प्रतीत होता है कि चर्चित "भानुमती का पिटारा" कदाचित अपने ही सिर पर टोकरी की तरह बाँध दिया गया है । इसमें कितने आश्चर्य भरे पड़े हैं जो एक से एक विलक्षण, दार्शनिक प्रतिपादनों का ढाँचा खड़ा करते हैं और प्रकृति के रहस्यों पर से पर्दे पर पर्दा उठाते हुए कितने आविष्कार करते और भविष्य में उस शृंखला को बहुत आगे बढ़ा देने के संकल्पों को पूरा करने में निरत हैं ।

प्राणियों का समुदाय कितना विचित्र है । उनमें से प्रत्येक की आकृति-प्रकृति में बहुत कुछ समानता होते हुए भी भिन्नता इतनी अधिक है कि लगता है इन इकाइयों में से प्रत्येक को भी पृथक्-पृथक् ढाँचे में ढाला गया है । उनकी आकृति ही नहीं, प्रकृति को भी पृथक्-पृथक् कलेवरों में निर्धारण किया गया है । पक्षियों की शृंखला ऐसी लगती है मानो आकाश में से जीवित-जाग्रत फूल उड़ रहे है और अपनी-अपनी बोली बोलकर उनके शब्दार्थ बताने की चुनौती दे रहे हैं ।

जो कुछ दृश्यमान है उसे तनिक गम्भीरतापूर्वक देखा जाय तो प्रतीत होगा कि जिस पर भी गहराई के साथ दृष्टि जमाई और विलक्षणता की खोज में बुद्धि लगाई जाय तो वहाँ सब कुछ ऐसा लगेगा जिसे देखते हुए विस्मय से अभिभूत ही हुआ जा सकता है ।

जिस परिकर में हम रहते हैं, जो परिवार के सदस्य कहलाते हैं, उसमें बालकों से लेकर युवाओं और वृद्धों तक का व्यक्तित्व अपने-अपने ढंग का असाधारण है । उनके स्वभाव, क्रिया-कलाप और अनुदान ऐसे हैं जिन्हें एक दूसरे से सर्वथा पृथक् प्रकार का रसास्वादन प्रस्तुत करते हुए देखा जाता है । मनुष्यों में से शरीर की बनावट तो प्राय: सभी की एक जैसी है, पर भावनाओं, मान्यताओं और दृष्टिकोण के अन्तर को देखते हुए लगता है कि करोड़ों-अरबों मनुष्यों में से प्रत्येक का अपना-अपना रचा हुआ संसार है । व्यक्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

स्वयं में एक जीता-जागता उपन्यास है । वह उसमें अपने-अपने ढंग के आचार-व्यवहार विनिर्मित करके अपने ढंग का अनोखा जीवनयापन कर रहा है ।

उथली दृष्टि से देखने पर यहाँ सब कुछ अनगढ़ और अस्त-व्यस्त ही दीखता है, जिसके सोचने में बहुत कमी रह गई है । उसे सुधारने के लिए स्रष्टा से लेकर सम्बद्ध व्यक्तियों तक को बहुत कुछ सीखना-सिखाना पड़ेगा । ऐसा प्रतीत होने पर भी अन्तिम निष्कर्ष यही निकलता है कि जो जिस भी रूप में विद्यमान है वह अपने आप में पूर्ण है। पूर्ण से उत्पन्न हुआ घटक अपूर्ण हो भी कैसे सकता है जो है सो प्रत्यक्ष अनुभव में आने के कारण सच भी है, किन्तु जब हर कण भी फैलने और गिरगिट जैसे रंग बदलने लगता है तो उसे माया का भ्रम-जंजाल कहने में भी किसी को क्यों कुछ आपत्ति होनी चाहिए ?

आश्चर्यों में भी सबसे बड़ा यह है कि हम अपने अस्तित्व की निरन्तर अनुभूति करते हुए भी यह समझ नहीं पा रहे हैं कि कौन हैं? क्यों हैं? किसलिए हैं? और जीवन के साथ जुड़े हुए उद्देश्य दिशा निर्धारण और उत्तरदायित्वों को कितना समझ रहे हैं और उस के अनुसार अपनी गतिविधियों के निर्धारण में कितने सफल हो पा रहे हैं?

अविवेकियों के लिए तो शरीर से लेकर संसार, ब्रह्माण्ड तक सब कुछ मात्र अनगढ़ कूड़ा-कबाड़ा ही है, पर ध्यान दे सकने वाले विचारकों को प्रतीत होता है कि यहाँ जो कुछ भी है वह इतना आकर्षक, अद्भुत और कौतूहलपूर्ण है कि इसी को समझने के प्रयास में कुछ कदम बढ़ सकें तो प्रतीत होगा कि यहाँ मनोरंजन के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं ।

जो दिखाई देता है, वह भी सत्य नहीं

चीन में यह अपनी तरह का अनोखा प्रयोग था । अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तियों के साथ सेना के उच्च अधिकारी भी डा० चू-फुत सेन का यह प्रदर्शन देखने के लिए एकत्रित हुए । डा० चू फुत सेन चीन के उन योग्य वैज्ञानिकों में से हैं, जिनकी प्रतिभा पर विश्वास करके सरकार ने अनेक बन्दियों पर प्रयोग करने की उन्हें खुली छूट दे दी थी ।

६ व्यक्तियों को जिनमें तीन महिलाएँ भी थीं, एक सजे सजाये कमरे में लाया गया। उनके सिर के पिछले हिस्से के थोड़े बाल साफ करके उसमें अत्यन्त पतला पेपर क्लिप जैसा तार जोड़ दिया गया। यह साधारण दीखने वाला तार मस्तिष्क की अनेक नाड़ियों से जोड़ा जा सकता था और उसके नियन्त्रण के लिये मस्तिष्क में एक छोटा-सा रेडियो ट्रान्जिस्टर रिसीवर लगाकर तार को उससे जोड़ दिया गया था ।

इसके बाद उपस्थित लोगों को सम्बोधित करते हुए डा० चू-फुत सेन ने बताया था कि "संसार की जो भी वस्तुएँ हमारे सामने या सम्पर्क में आती हैं, उनके किसी भी रूप की कल्पना का सम्बन्ध हमारे मस्तिष्क की उन धाराओं से है, जो अपने आप में विलक्षण संवेगों को छिपाये हुए है । मान लीजिये हमारे मस्तिष्क का कोई साहस वाला भाग सक्रिय है तो उस स्थिति में शेर और बाघ तो क्या कोई बम लेकर भी मारने को खड़ा हो तो उसमें भी भय नहीं लगेगा, क्योंकि उस समय भय की कोई कल्पना ही नहीं होगी । उस व्यक्ति के लिये उतने समय के लिये संसार में कहीं भी भय का कोई अस्तित्व ही समझ में नहीं आयेगा । यह जो कुछ दिखाई दे रहा है, वह मन की रेडियो तरंगों के अनुरूप बनता-बिगड़ता दृश्य मात्र है । वस्तुतः जो कुछ भी सामने है, उसमें से सत्य कुछ भी नहीं है ।

अपने कथन की पुष्टि के लिये अब उन्होंने प्रयोग दिखाया । एक छोटा-सा २० दिन का पिल्ला लाकर उन कैदियों के सामने छोड़ दिया गया । जब तक वे सामान्य स्थिति में थे, कुत्ते को उसी तरह देखते और उसकी खेल-कूद को देखकर प्रसन्न होते रहे जैसे सभी अन्य दर्शक-परन्तु, इसी बीच डा० चू-फुत-सेन ने उस तार का सम्बन्ध मस्तिष्क को भय वाली नाड़ी से जोड़कर ट्रान्जिस्टर चालू कर दिया । विद्युत प्रवाह (करेन्ट) का एक निश्चित आवृत्ति (फ्रिक्वेन्सी) पर दौड़ना हुआ ही था कि उस छोटे से कमरे में तूफान खड़ा हो गया । छहों कैदी 'शेर-शेर' करते हुये चिंघाड़ कर भागे । कई तो इतने भयभीत हो गये कि उन्हें तत्काल मूर्छा आ गई । पर जैसे ही उस रेडियो ट्रांजिस्टरों को बन्द कर दिया गया, कैदी फिर शांत हो गये और उन्हें कुत्ते के पिल्ले से कोई डर न रहा ।

छोटा-सा पिल्ला पहले भी वैसा ही था और बाद में भी पर मन के लिए दृष्टिकोण को उच्च आवृत्ति (हायर फ्रिक्वेन्सी) पर विकसित कर देने पर वही पिल्ला शेर जैसा भयंकर दिखाई देने लगा इससे साफ स्पष्ट है कि हम जो कुछ भी देखते-सुनते हैं, वह किन्हीं अदृश्य किरणों और मानसिक तरंगों का बनता-बिगड़ता छायांकन मात्र है । उनमें से सच कुछ भी नहीं है । जिस प्रकार पर्दे पर विशेष प्रकार की किरणों-मैजिक लैन्टर्न या सिनेमा के सहारे फोटो गिराने से ऐसा लगता है कि सामने जो ड्रामा हो रहा है, वह बिल्कुल सच है उसी प्रकार हमें दिखाई देने वाला संसार भी अज्ञात-इच्छाशक्तियों और प्रकाश-आवर्तनों का छाया चित्र मात्र है और वह थोड़ी देर तक रहता है । पर हमारा दृष्टिकोण अल्प-विकसित होने के कारण वही कई वर्षों-सा-जो जीवन प्रतीत होता है और उसमें क्रम-बद्धता होने के कारण नाटक-सा दीखता है पर वस्तुतः उसमें सार और सत्य कुछ भी नहीं है, यदि कुछ है तो वह ब्रह्म ही है जिसकी प्रेरणा से प्राण धौंकने से इतना सारा क्रियाशील जगत् हृदय में आता है ।

मनुष्य अपनी प्रकृति जिस दिशा में विकसित कर लेता है, उसे वही भाग सत्य दिखाई देने लगता है और शेष सब उसे निस्सार प्रतीत होने लगते हैं । उदाहरणार्थ, चींटी को

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संसार में केवल मीठे पदार्थों का ही सबसे बड़ा सुख है और वह उसी खोज में लगी रहती है पर सुअर को मल की बहुत अधिक चाह होती है। उसे मीठे व्यंजन भी नीरस दीखते हैं । एक बार अमेरिका के कुछ वैज्ञानिकों ने इच्छा शक्ति पर नियन्त्रण करने का बहुत दिनों तक प्रयोग करने के बाद यह पाया कि किसी एक इच्छा को ही बहुत अधिक बढ़ाकर मनुष्य को ही नहीं उसे मारा तक जा सकता है । उन्होंने चूहों के मस्तिष्क के 'प्यास वाले' भाग को विद्युत शक्ति से बढ़ा दिया फलस्वरूप वे चूहे प्यासे न होने पर भी इतना पानी पीते गये कि उनका शरीर फूलकर मोटा हो गया । इस स्थिति से उन्हें हटाया नहीं जाता तो चूहे फिर भी पानी पीना बन्द नहीं करते भले ही उनका शरीर फट जाता । यद्यपि यह स्थिति आने नहीं दी गई । पर वैज्ञानिक विशुद्ध रूप से इस मान्यता पर उतर आये कि मस्तिष्कगत चेतना अपनी ही तरह से काम करती है और वह जिस स्थिति में होती है, उसके लिये वही अच्छा लगता है। वस्तुतः प्रिय-अप्रिय संसार में कुछ है ही नहीं । सब अपनी-अपनी इच्छा और वासना का खेल है उसी से संसार का स्वरूप बनता-बिगड़ता और परिवर्तित होता रहता है । चेतनाएँ भी अनेक शरीर धारण करने के लिये इसी सिद्धान्त पर काम करती हैं ।

भारतीय दर्शन का आधार ही चेतना की यह सूक्ष्म स्थिति है, उसी पर इतना बड़ा आध्यात्मिक इतिहास खड़ा है । एक बार महर्षि वशिष्ठ ने भगवान् राम को इसी तत्व का उपदेश देते हुए बताया था-

स्वप्नसंकल्पपुरयोर्ना स्त्यप्यनुभवस्थयोः ।
मनागपि यथा रूपं सर्गादौ जगस्तथा ।।

-६ R १४६ R २,

जगत्संविदि जातायामपि जातं न किञ्चन ।

-३ R ३ ४८,

परमाकाशमाशून्यमच्छमेव व्यवस्थितम् ।

-३ R ३ ४९,

पिंडग्रहो जगत्यस्मिन्विज्ञानाकाशरूपिणि।
मरुनद्यां जलमिव न सम्भवति कुत्रचित् ।

-३ १५ ७,

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तादिपरमार्थविदां विदाम् ।
न विद्यते किंचिदपि यथास्थितगवस्थितम् ।।

-६ R R ४६ R १,

तस्माद्राम जगन्नासीन्न चास्ति न भविष्यति ।
चेतनाकाशमेवाशु कचतीत्थमिवात्मनि

-४ R ६,

हे राम ! स्वप्न देखते समय और विचार संकल्प करते समय जो चित्र बनते हैं, थोड़ी ही देर में वे असत्य सिद्ध हो जाते हैं, उसी प्रकार यह दृश्य जगत् भी असत्य है । जगत् का दृश्य दिखाई देने पर भी कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ है । परम आकाश ही शुद्ध रूप से स्थिति है । स्वप्न और संकल्प में अनुभव होने पर भी पृथ्वी आदि पिण्ड नहीं होते, वैसे भी अनुभव में आने वाला संसार भी शून्य ही है । स्थूलता उसमें कहीं नहीं है, केवल मरुस्थल में जल का-सा भ्रम हो रहा है । राम ! जगत् न उत्पन्न हुआ है और न होगा चेतनाकाश अपने आप में ही प्रकाशित हो रहा है ।

प्रकाश-तत्व के ज्ञाता वैज्ञानिक भी अब यही बात मानने लगे हैं । इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक जान डाल्टन एक बार एक सार्वजनिक उत्सव में सम्मिलित हुए । अपने लिये उन्होंने गहरे नीले रंग का सूट चुना और उसे ही पहनकर वे उत्सव में सम्मिलित हुए पर वहाँ जब लोगों ने बताया कि आज तो आप गहरे लाल रंग का सूट पहने हैं तो वे बड़े हैरान हुए । आखिर इतने आदमी झूठ नहीं बोल सकते थे, इसलिये उन्होंने अपनी आँखों की डाक्टरी जाँच कराई । डाक्टरों ने बताया कि दृष्टि-दोष के कारण उनकी रंग पहचानने की क्षमता भी दोषपूर्ण हो गई है, अर्थात् उन्हें रंग कुछ के कुछ दिखाई देते हैं ।

बाद में वैज्ञानिकों ने और भी खोजें की और बताया कि पशु-पक्षी वस्तुओं को उसी रंग रूप का नहीं देखते जैसे कि मनुष्य देखते हैं। उदाहरणार्थ, कुत्ते और बिल्ली की आँखें संसार को रंगहीन देखती हैं । उन्हें संसार की सभी वस्तुएँ काली, भूरी या सफेद लगती हैं, भले ही उन्हें लाल, पीले या गहरे हरे रंग के सामने ले जाकर खड़ा कर दो । बन्दर केवल गहरे लाल, हरे और आसमानी रंग को पहचान सकता है । मेढक किसी भी रंग को नहीं पहचान सकता । मधुमक्खियों को संसार के सभी रंग एक से ही दिखाई देते हैं । यह सब मस्तिष्क की बनावट का परिणाम है, वस्तुतः इस संसार में जो कुछ है वह सब भ्रम है, माया है-'संसार स्वप्न त्यज मोहनिद्रा' संसार स्वप्न है, मोह निद्रा का परित्याग करने वाली बात अक्षरशः सत्य है ।

हम दिन में कुल एक सूर्योदय और सूर्यास्त देखते हैं पर यूरी गागरिन ने अन्तरिक्ष यात्रा से लौटकर बताया कि उन्होंने एक दिन में अठारह सूर्योदय और सूर्यास्त देखे । पृथ्वी को हम किसी भी रंग का नहीं पाते और बोर मैन एण्डर्स और लाबेल जब पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से आगे बढ़े तो उन्होंने बताया-पृथ्वी हरी-भरी नखलिस्तान-सी लगती है। वहीं अन्तरिक्ष यात्री जब चन्द्रमा के समीप पहुँच गये तो यही पृथ्वी उनके लिये पीले प्रकाश की एक ऐसी चमकदार वस्तु लगी, जैसी पृथ्वीवासियों को चन्द्रमा दिखाई देता है। रात के अन्धकार में पृथ्वी का निवासी कुछ देख नहीं सकता पर अन्तरिक्षवासी को पृथ्वी में इतना प्रकाश दिखाई देता है, जिससे वह सबसे छोटा टाइप अक्षर को मजे से पढ़ सकता है । यह सब दृष्टिदोष और अनेक स्थितियों का अलग-अलग अन्तर है । उसमें से सत्य कुछ भी नहीं है। सत्य की पहचान तो ब्राह्मी स्थिति पर पहुँचकर ही यथार्थ रूप में हो सकती है । उस अन्तिम सत्य को प्राप्त किये बिना मनुष्य मिथ्यात्व में ही परिभ्रमण किया करता है ।

सूर्य-प्रकाश सफेद रंग का है, किन्तु उसे जब वर्णक्रम (स्पेक्ट्रम) में देखते हैं तो वह सात विचित्र रंगों से बना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रतीत होता है । यह सभी रंग ही दृश्य प्रकृति को आच्छादित किये हैं, पृथ्वी भी सूर्य की ही एक स्थूल प्रकृति है, ऋतु परिवर्तन की क्रिया को हम पृथ्वीवासी बहुत धीरे-धीरे देखते हैं, ज्यादा कड़े पदार्थ जैसे भूमि-खण्ड, लोहा, सोना आदि धातुओं के परमाणुओं की हलचल तो दिखाई भी नहीं देती पर यदि हम पृथ्वी में न होकर सूर्य में हों तो पृथ्वी सूर्य से या सूर्य पृथ्वी से अलग नहीं दिखाई देंगे यहाँ की प्रत्येक वस्तु का एक-एक पल का बनता-बिगड़ता स्वरूप सूर्य से बड़े मजे से देखा जा सकता है । पृथ्वी में हमारा मस्तिष्क काम करता है और सूर्य में हमारी चेतना, इसीलिये यह भारी अन्तर दिखाई देता है । इस सम्बन्ध में हेल्स हाल्टस और मैक्सवेल के अनुसन्धान बड़े उपयोगी और उल्लेखनीय हैं । इनके अनुसार नेत्र व मस्तिष्क तीन प्रकार के शिरातन्तुओं से जुड़े हैं, यह शिरातन्तु क्रमशः लाल, हरे और बैंगनी रंग की अनुभूति पैदा करते हैं, इन शिरातन्तुओं से ही विभिन्न रंगों की आकृतियाँ दिखाई देती हैं । यदि इन शिरातन्तुओं की स्थूलता समाप्त करके एक शुभ्र ज्योति मस्तिष्क से आने दी जाये तो अब जो वस्तु सामने दिखाई पड़ रही है, वह न केवल रंग से अपित आकृति से भी कुछ और ही दिखाई देने लगे । उन्होंने लाल, हरे और बैंगनी रंग की प्रेक्षेपी लालटेन (मैजिक लैलटर्न) की मदद से सफेद पर्दे पर घटा-बढ़ाकर डालकर दिखाया कि उनको कम या ज्यादा करने से पर्दे की आकृतियाँ कैसी विचित्र-विचित्र बनती-बिगड़ती हैं ।

स्वाद और गन्ध सम्बन्धी पूर्णपेक्षाएँ भी नितान्त भ्रामक हैं । १९१८ में ए० एफ० ब्लैक सली नामक एक वैज्ञानिक ने एक प्रयोग किया उसने बरबीना जाति के कुछ खुशबूदार और गन्धहीन गुलाबी फूल रखे । ४२ व्यक्तियों को उन्हें सुँघाया गया । इनमें से ९ पुरुष और ४ स्त्रियाँ ही एकमत से फूलों की गन्ध बता सके, शेष ने कुछ और ही बताया। ब्लैकसली ने बताया दरअसल किसी वस्तु में गन्ध है ही नहीं, सब उस वस्तु और मनुष्य की शारीरिक स्थिति का तालमेल मात्र है, वह कभी एक जैसा हो ही नहीं सकता ।

मनुष्य के अनेक योनियों में भ्रमण और विकास की मान्यता ऐसी विचित्रताएँ ही करेंगी भले ही उसमें कुछ और समय लगे ।

स्वाद के बारे में भी ठीक यही बात है । १९३१ में डा० एल० एच० स्नेडर ने १०० व्यक्तियों को एक वस्तु चखाई । ६८ व्यक्तियों ने उसे कडुआ बताया शेष उसका कुछ भी स्वाद नहीं बता सके । प्राणि-विज्ञान शास्त्रियों का यहाँ भी वही कथन है कि स्वाद शक्ति नस्ल लक्षण है । उनका कहना है कि आदिवासियों में स्वाद शक्ति की प्रबलता होती है पर गोरी जातियों में बहुत कम होती है । उन्होंने एक ऐसे आदमी का भी उदाहरण दिया, जिसकी किसी दुर्घटना में घ्राण शक्ति नष्ट हो गई थी, इस पर उसकी स्वाद शक्ति ने भी काम करना बन्द कर दिया था । बिना खाये केवल देखकर ही स्वाद और गन्ध लेने के भी उन्होंने प्रयोग करके बताये । यह सब बातें यह बताती हैं कि आत्मा अपनी-अपनी अलग-अलग स्थिति में भिन्नताएँ अनुभव करती है, वस्तुतः भिन्नता नाम की कोई वस्तु संसार में है ही नहीं, सब एक तार में जुड़े माला के समान हैं ।

जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण अत्यन्त सूक्ष्म है, इसलिये मोटी वस्तुएँ ही हमें दिखाई देती हैं और हम उन सूक्ष्म शक्तियों को पाने से वंचित रह जाते हैं, जिनसे यह सारा संसार बनता-बिगड़ता है । यही हमारा सबसे बड़ा अज्ञान, माया और भ्रम है, यदि हम अपना दृष्टिकोण व्यापक, विशाल और अत्यन्त सूक्ष्म बना पायें तो देखें कि संसार कितना अभावरहित, शाश्वत और अनश्वर है, परिवर्तनशील और नाशवान् तो यह दृश्य और स्थूल जगत् है उससे लिपटे और आसक्त होने के कारण ही संसार भ्रम में है, उस भ्रम का निवारण किये बिना मनुष्य जाति का कल्याण नहीं ।

प्रत्यक्ष से परे परोक्ष

दृश्य जगत को ही सब कुछ मानने वाले लोगों की मान्यता है कि सृष्टि वहीं तक सीमित है, जहाँ तक हमारी आँखें देखती हैं । यदि इसी मान्यता को सर्वोपरि मान लिया जाय, तो ईश्वरीय अस्तित्व सम्बन्धी अवधारणा ही नहीं अनेक वैज्ञानिक सिद्धान्त भी निराधार साबित होंगे, अस्तु इस प्रत्यक्षवादी चिन्तन में संशोधन की आवश्यकता है ।

उल्लेखनीय तथ्य यह है कि यदि नेत्र की दृश्य सीमा को ही अस्तित्व बोध का आधार समझा जाता तो अगणित सूक्ष्म जीवाणुओं की सत्ता को हमें अस्वीकारना पड़ता, पर विज्ञान ऐसा नहीं करता । उसने अनेक ऐसे यंत्र-उपकरण विकसित किये हैं, जिनके माध्यम से अपने इर्द-गिर्द उड़ते-विचरते असंख्य सूक्ष्म-जीवियों को देखा जा सकता है । यह बात और है कि नंगी आँखें उन्हें नहीं देख पातीं । उतने पर भी विज्ञान उनके अस्तित्व से इनकार नहीं करता ।

मात्र स्थूल दृष्टि का ही आधार यदि महत्वपूर्ण रहा होता तो रक्त के सम्बन्ध में शरीर शास्त्र की विचारणा आज कुछ और होती । ज्ञातव्य है कि रुधिर देखने में एक तरह पदार्थ मात्र लगता है, पर जब उसकी एक बूँद माइक्रोस्कोप के नीचे रख कर अवलोकन किया जाता है, तो ज्ञात होता है कि चक्षु कितने भ्रमपूर्ण थे । जो पदार्थ मोटी दृष्टि को केवल प्रवाहमान तरल प्रतीत होता था वह अपरिमित कणों से बना है-इस तथ्य की जानकारी तो सूक्ष्मदर्शी से ही हो पाती है ।

यों जानकारी के सम्बन्ध में पैमाने का निर्धारण भी एक महत्वपूर्ण बात है । प्रत्यक्ष जगत में लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई,दबाव, तापमान आदि नापने के लिए कई प्रकार की इकाइयों की व्यवस्था है । उनकी माप प्रायः इन्हीं में की जाती है । लम्बी दूरियों के लिए सौर वर्ष जैसी बड़ी इकाइयों का इस्तेमाल किया जाता है । इसका प्रयोग

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अक्सर खगोलीय पिण्ड की असाधारण दूरियों को मापने में होता है । इस क्रम में दूरी जैसे-जैसे घटती जाती है, इकाई को भी तदनुरूप छोटा करने का सामान्य प्रचलन है। फिर क्रमशः वह घटते-घटते मील, किलोमीटर, गज, फुट, इंच से० मीटर तक पहुँच जाती है । उससे छोटी माप के लिए मिली मीटर पैमाने का इस्तेमाल होता है, किन्तु जब केश बराबर मोटाई को मापना हो तो माइक्रोन, मिली माइक्रोन एवं एंगस्ट्राम जैसी अतिशय छोटी इकाइयों का ही प्रयोग करना पड़ता है । इंच-फुट के बड़े पैमाने में इसे नापना कठिन है ।

यही बात पक्षयज्ञ के सम्बन्ध में भी लागू होती है । दृष्टि एक निर्धारित सीमा को ही देख पाती है । विज्ञान ने इसका निर्धारण 'बैनिआहपीनाला' जैसे प्रकाश तरंगों के रूप में किया है । इसी तरंग दैर्ध्य के प्रकाश को देखने में हमारी आँखें सूक्ष्म होती हैं । इससे उच्च और निम्न तरंग लम्बाई वाली किरणों को हमारे नेत्र देख नहीं पाते । इस आधार पर यह कहना कि प्रकाश रश्मियाँ मात्र इतनी ही हैं, ठीक नहीं । इस सीमा क्षेत्र से परे भी इतनी सूक्ष्म रश्मियाँ हैं, जिनका पता अभी भी विज्ञान नहीं लगा पाया है । उसकी जानकारी मात्र नौ प्रकार की किरणों तक ही सीमित है, जिसमें सात दृश्य हैं और दो अदृश्य स्तर के, जिन्हें यंत्रों के सहारे अपनी दृश्य क्षमता को और अधिक सूक्ष्म बनाकर ही देख पाना सम्भव है । यह है बैंगनी से नीचे पराबैंगनी एवं लाल से ऊपर अवरक्त ।

सुनने की भी ऐसी ही सुनिश्चित सीमा-रेखा है । हम उन्हीं ध्वनियों को सुन समझ पाते हैं, जिनका कम्पन २०-२०००० हर्टज के बीच होता है । इससे कम और उच्च कम्पन सूक्ष्म जगत की चीज है । इन्हें स्वयं को सूक्ष्म रूप में विकसित करके ही समझा जा सकता है । लट्टू की गति जब अत्यन्त तीव्र होती है, तब वह स्थिर जान पड़ता है और जब अत्यन्त धीमी होती है, तब भी ऐसा ही प्रतीत होता है क्योंकि उस गति की दृष्टि पकड़ नहीं पाती । वह उसकी दृश्य क्षमता से परे की है । पृथ्वी दिन-रात घूमती रहती है, पर उसके परिश्रम को हम कहाँ देख पाते हैं ? कारण कि अपेक्षाकृत वह गति धीमी है । इसलिए इन्द्रियों को उसका आभास नहीं मिल पाता ।

तात्पर्य एक ही है कि स्थूल स्थिति में रहकर सूक्ष्म को जान समझ पाना सम्भव नहीं । इसके लिए तरीका एक ही है माप की इकाई की तरह सूक्ष्म स्तर की ओर अग्रसर होने के साथ-साथ स्वयं को सूक्ष्म रूप में विकसित करते चलना । इसी प्रक्रिया द्वारा स्थूलजगत में रहकर सूक्ष्म स्तर की जानकारी प्राप्त कर पाना शक्य है । इस सिद्धान्त को भली-भाँति न समझ पाने के कारण ही प्रत्यक्षवादी लोग ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में नास्तिकवादी मान्यता का प्रतिपादन करते रहे हैं । यहाँ विचारणीय तथ्य यह है कि जब स्थूल सत्ता वाले सूक्ष्म स्तर के जीवाणुओं को ही आँखें नहीं परख पातीं तो सर्वथा चेतनात्मक रूप में विद्यमान ईश्वरीय अस्तित्व को किस भाँति जान सकेंगी । इस सम्बन्ध में नियम ही यही है कि किसी वस्तु को ठीक प्रकार समझने के लिए स्वयं को भी उसी स्तर तक पहुँचना पड़ता है, तभी जानकारी सही और सत्य मिल पाती है । इससे कम में नहीं ।

प्राचीन चीन में जब किसी चित्रकार को किसी झाड़ी का चित्र बनाना होता था, तो वह झाड़ी के समीप लम्बे काल तक तब तक बैठा रहता, जब तक स्वयं उसकी अनुभूति न प्राप्त कर लेता । जब वह यह अनुभव करने लगता कि स्वयं ही झाड़ी हो गया है, तभी उसका चित्र बनाना आरम्भ करता और इस स्थिति में जो तस्वीर बनती उसे देखने से ऐसा प्रतीत होता, मानो झुरमुट को ही कैनवस पर उखाड़ कर रख दिया गया हो । इससे पूर्व का प्रयास ऐसा जान पड़ता जैसे कागज को किसी प्रकार काला कर दिया गया हो । यही बात ईश्वर के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है । उसके अस्तित्व को समझने के लिए बुद्धि और दृष्टि की सूक्ष्मता आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है ।

वैसे ईश्वरीय सत्य के सम्बन्ध में एक तथ्य यह भी है कि बहुत कुछ अनुमान के आधार पर भी जाना समझा जा सकता है । प्रत्यक्ष प्रमाणों में इसकी भी गणना होती है । जैसे धुँआ को देखकर आग का सहज ही अनुमान हो जाता है, वैसे ही इस सुव्यवस्थित व सुविकसित सृष्टि को देखकर भगवद सत्ता को स्वीकारा जा सकता है । खगोल शास्त्रियों का पृथ्वी के गोल होने के सम्बन्ध में एक तर्क यह भी है कि सभी ग्रह गोल हैं । पृथ्वी भी एक ग्रह है । अतः वह भी गोल होगी । यहाँ अनुमान प्रमाण का सहारा लेते हुए ही ऐसा सिद्ध करने का प्रयास किया गया है, पर यह प्रयास अब काफी पुराना हो चुका । प्रस्तुत दलील तब की है जब इसे प्रमाणित करने के लिए विज्ञान के पास उपयुक्त यंत्र-उपकरण नहीं थे । तब तर्कशास्त्र का उक्त तरीका ही सर्वोपरि माना गया । अब तो पृथ्वी सम्बन्धी यह तथ्य असंदिग्ध सिद्ध हो चुका है ।

परम सत्ता के संदर्भ में भी हमें ऐसी ही आशा करनी चाहिए कि आने वाले समय में इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की साक्ष्य की आवश्यकता न रहेगी । प्रायः सभी अपनी विकसित सूक्ष्म बुद्धि द्वारा इस सत्य को समझ ही नहीं, वरन् स्वीकार भी कर सकेंगे कि भगवान का सुनिश्चित अस्तित्व है और उसे स्थूल चेतना द्वारा समझ पाना सम्भव नहीं ।

भटकते न फिरें, ध्रुव के साथ जुड़ें

रेत के उड़ते कण हवा के साथ अस्त-व्यस्त उड़ते रहते हैं । उनका कहीं घर-ठिकाना नहीं होता, न वे कहीं आश्रय-विश्राम पाते हैं । अनादि काल से अनन्त काल तक ऐसे ही भटकते रहते हैं । पानी पड़ने पर कीचड़ बने और ग्रीष्म में चक्रवातों के साथ उछलते-फुदकते रहते हैं । शीत उनके ऊपर बनकर लद जाता है । इस प्रकार पराश्रित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अनाश्रित स्थिति में निरुद्देश्य रेत कणों का जीवन बीतता है । वे न किसी के होते हैं और न कोई उनका होता है । जहाँ कुछ क्षण विरमने का अवसर मिला वहाँ मकड़ी जैसा मोह जाल बुनने लगते हैं ।

जिनका इस क्षण साथ था अगले क्षण उनका साथ रहेगा, इसका कोई भरोसा नहीं । किसी को साथी-सहयोगी बनाया जाए तो वह भी तो ठीक तरह नहीं बन पड़ता । नियति अपनी ही तरह दूसरों की भी है । वे भी अपनी राह चलते और कर्म भोग भोगते रहते हैं । कोई चाह कर भी किसी रेत के साथ देर तक जुड़ा नहीं रह सकता है । मिलन संयोग है और वियोग सुनिश्चित । यहाँ वियोग के लिए ही संयोग होता है । मिलन एक अवसर है और बिछोह सतत् प्रवाह । पानी की बूँद बादल से बरसते समय एक दूसरे की साथी-सहचरी भी हो सकती है । पर जमीन पर गिरने के उपरान्त उनमें से किस की क्या नियति होगी इस सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता ।

वर्षा की बूँद जमीन पर पड़ने के उपरान्त किधर चल पड़े, इस सम्बन्ध में कौन क्या कहे ? हो सकता है कि वह नाली द्वारा बहा ले जाई जाए और नाले-नलियों का चक्कर काटती हुई समुद्र में जा पहुँचे । यह भी हो सकता है कि वह उसी खेत में उगते हुए पौधों के शरीर में प्रवेश करके हरीतिमा जैसी लहलहाती दिखाई पड़े और पकने-सूखने पर भाप बनकर आकाश की ओर चल पड़े और ओस कणों के रूप में नया रूप धारण करे और दिन में भाप, रात में ओस बनते रहने की चक्र परिक्रमा करते रहे । बादलों से बरसते समय तो उस बिन्दु परिकर में निकटता घनिष्टता थी वह कितने समय मिली-जुली रही और फिर पीछे उनकी अपनी-अपनी नियति किस स्थिति में किस प्रकार कहाँ भ्रमाती रही, इसका लेखा-जोखा लिया जा सकना असम्भव है ।

इस संसार में असंख्यों प्राणी अगणित संख्या में बसते हैं । उन पर दृष्टि दौड़ा सकना बौद्धिक सीमा से बाहर होगा, पर मनुष्य को तो गिना भी जा सकता है । वे इन दिनों इस धरती पर पाँच सौ करोड़ के करीब हैं । इनमें से कई एक घर-परिवार में जन्मते और छोटी बड़ी आयु के होते हुए भी मिलजुल कर रहते हैं । तब प्रतीत होता है कि यही हमारा परिवार है । इन्हीं को साथी-सहयोगी समझा जाता है । किन्तु नियति को संयोग कहाँ सुहाता है । वह वियोग का ही ताना-बाना बुनती रहती है ।

कुछ दिन भी सहचरत्व टिक नहीं पाता कि वियोग का क्रम चल पड़ता है । लड़कियाँ बड़ी होकर ब्याही जाती हैं और किसी दूसरे का घर बसाती हैं। लड़के कालेज पढ़ने चले जाते हैं और नौकरी के फेर में अदलते-बदलते कहीं से कहीं पहुँचते हैं। बूढ़े मर जाते हैं । युवाओं को व्यवसाय के संदर्भ में डेरा उठा कर कहीं से कहीं डालना पड़ता है । कभी जिस परिवार के सदस्य स्थिर और एक जगह थे, वे समय के साथ अपना प्रवाह क्रम बदलते हैं और कहीं से कहीं जा पहुँचते हैं ।

हम भी मक्खी-मच्छरों जैसी नियति साथ लेकर जन्मे हैं । वे हवा के साथ उड़ते और जहाँ भी भोजन विश्राम का अवसर पाते हैं वहीं विरम जाते हैं । फिर उस आश्रम में भी चैन कहाँ ? स्थिरता कहाँ ? परिस्थितियाँ आगे धकेलती हैं । कोई किसी राह जाता है कोई किसी रास्ते । यात्रा पथ के पथिकों में से कितने ही आगे निकल जाते हैं और कितने ही पीछे छूट जाते हैं ।

जीवन अवधि स्वल्प है । ढर्रे की आदतें दिन रात की तरह अपनी चर्खी पर घूमती रहती हैं और जितने दिन जीना था वे एक-एक करके निपटते जाते हैं । छेद वाले घड़े की तली में से वह सारा पानी रिस जाता है जिसमें आरम्भ में घड़ा भरा हुआ था । एक-एक बूँद करके समूची सम्पदा समाप्त हो जाती है और खाली फूटे घड़े को उठाकर किसी कूड़े वाले ढेर पर फेंक दिया जाता है । यही होती है हमारी भी दशा । जब अपना ही कहीं कोई ठिकाना नहीं तो दूसरों के बारे में क्या कहा जाय कि कौन कितने समय साथ रहेगा ? किसका साथ देगा और बिछुड़ते ही कहाँ से कहाँ चला जाएगा ?

मोह किससे किया जाए ? कब तक किया जाए ? किसकी प्रतीक्षा में ठहरा जाए ? किसे अपना, किसे विराना कहा जाए ? किसके मिलने पर मोद मनाया जाए और किसके बिछुड़ने पर रुदन किया जाए । यह मुसाफिर खाना है । नये यात्री आते और पुराने जाते रहते हैं । आवागमन का मेला यहाँ लगा ही रहता है ।

यह दुनिया एक नाट्यशाला है इसमें तरह-तरह की पोशाकें पहन कर तरह-तरह के मुखौटे लगाकर अनेक नट आते रहते हैं । अपना निर्धारित कार्य करते और फिर वापस चले जाते हैं । वापसी बहुत देर की नहीं होती । कुछ ही क्षण उपरान्त उन्हें नये पार्ट की तैयारी करनी पड़ती है । पिछला पर्दा बन्द होता है नया आरम्भ होता है । पुराने नट नई पारी में नई शैली अपनाते और नये संवाद व्यक्त करते हैं । कुछ घंटे यह खेल चलता रहता है । इसके बाद सारा संरजाम समाप्त हो जाता है । जमीन खाली हो जाती है । सारा सिलून उखड़ जाता है । दूसरे दिन पता भी नहीं चलता कि यहाँ क्या हुआ था ? इसी प्रकार मनुष्य जीवन भी एक रंगमंच है, इसमें अनेक प्रकार के खेल होते रहते हैं । अनेक स्वाँग रचे जाते रहते हैं । बदलाव का क्रम चलता रहता है । परिवर्तन की गति धीमी और तीव्र होती रहती है । अन्त में एक दिन ऐसा आता है जिसमें तूफानी हेर-फेर होता है और जो कुछ दृष्टिगोचर हो रहा था वह सब कुछ उलट जाता है ।

संसार की बनावट ही ऐसी है । इसमें ब्रह्माण्डव्यापी ग्रह-नक्षत्रों का परिकर द्रुतगति से किसी अविज्ञात की ओर दौड़ा जा रहा है । सौर-मण्डल के ग्रह और उपग्रह अपनी-अपनी धुरी और कक्षा के केन्द्र की परिक्रमा लगा रहे हैं । यहाँ सब से छोटा घटक परमाणु है । वह भी अपने से भी अधिक सूक्ष्म घटकों को साथ में लपेटे एक छोटे परिवार के रूप में निरन्तर गतिशील है । इस प्रकार

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विश्व-संरचना में सर्वत्र भगदड़ ही मची दीखती है । इसमें से किसी के भी साथ यदि हम जुड़ते हैं तो उसका परिणाम अपने आपके लड़खड़ा जाने, डगमगा जाने, उलट-पुलट हो जाने के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?

फिर स्थिर क्या है ? किसको अपना समझें ? किसकी सहायता माँगें ? किस को अपना बनायें ? इस असमंजस का समाधान एक ही हो सकता है, कि अपनी आत्मा ही वह अवलम्बन है जिसे दृढ़तापूर्वक पकड़ा और सदा-सर्वदा के लिए अपनाया जा सकता है ।

आत्मा परमात्मा के साथ जुड़ता है । दोनों के बीच जब घनिष्टता स्थापित होती है तो एकात्मता विकसित होती है । उसके कारण छोटा घटक भी बड़े के समान ही शक्तिशाली हो जाता है । अग्नि में पड़कर ईंधन भी अग्नि रूप हो जाता है । विद्युत प्रवाह एक तार से निकल कर दूसरे स्पर्श करने वाले तार में दौड़ता है । ठीक इसी प्रकार परमात्म-सत्ता के साथ जुड़ जाने पर आत्मा भी इतनी सशक्त बन जाती है कि फिर उसे कोई कठपुतली की तरह न नचा सके । पहिया घूमता है धुरी नहीं । धुरी के साथ जुड़ जाने पर हम भी ध्रुव बन जाते हैं । ध्रुव स्थिर रहता है । ब्रह्माण्ड उसी के इर्द-गिर्द चक्कर काटता है ।

चमत्कारों का केन्द्र—ईश्वर

ईश्वर की सृष्टि में चारों ओर चमत्कार ही चमत्कार हैं । परमात्मा इतना बड़ा बाजीगर है कि उसकी झोली में से हर घड़ी एक से एक अचरज भरे खेल निकलते रहते हैं । प्रकृति का भंडार भानुमती का पिटारा है। उसमें एक से एक अनोखी और हैरत में डालने वाली चीजें भरी पड़ी हैं । जब तक ध्यान न दिया जाए तब तक संसार की सारी बातें साधारण प्रतीत होती हैं पर जब ध्यान से देखते हैं तो एक से एक बड़े कौतूहल हमें अपने चारों ओर बिखरे हुए दिखाई पड़ते हैं ।

जादूगर लोग धूलि हाथ से लेकर उस पर विद्या चलाता है और एक फूल बनाकर दिखाता है, दर्शक खुशी से फूले नहीं समाते, पर दूसरी ओर देखिए बरगद का राई से भी छोटा बीज लेकर धरती माता उसे कितना विशाल वट वृक्ष बना देती है । इतने नन्हें बीज से इतना विशाल-काय वृक्ष उत्पन्न होना कितने आश्चर्य की बात है । इतनी नगण्य वस्तु के गर्भ में इतना बड़ा वृक्ष छिपा बैठा रहता है यह कितना बड़ा अचम्भा है । आकाश में कोई वस्तु ठहरती नहीं, यदि हम आकाश में किसी वस्तु को ठहराना चाहें तो वह न ठहरेगी और हाथ से छोड़ते ही धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ेगी, पर दूसरी ओर देखिए लाखों-करोड़ों टन पानी लादे हुए आकाश में बिना पंखों के बादल उड़ते फिरते हैं । जादूगर एक गोला आकाश में अधर लटकावे तो दर्शकों की तालियाँ गड़गड़ाने लगती हैं पर उस जादूगर का करतब तो देखिए कल्पनातीत वजन के असंख्य ग्रह-नक्षत्र आकाश में टँगे हुए हैं, बाँधने रोकने या सहारा देने के लिए न तो कोई तार है न रस्सी । खुले मैदान खेल हो रहा है जिसका जी चाहे बिना टिकट, चाहे जब तक देखता रहे ।

अतीत काल से सूरज की अग्नि जल रही है, इसमें न तो कोई ईंधन डालता है, न लकड़ी, न कोयला । बिना किसी आधार के अग्नि अपने आप सुदीर्घकाल जलती रहे क्या यह कुछ कम अचम्भे की बात है । बिना तेल बत्ती के चन्द्रमा का दीपक ठीक समय पर जलता और ठीक समय पर बुझता है । बिना किसी मशीन, मोटर, फिनर या चाबी के आकाश मंडल के ग्रह-नक्षत्र ठीक गति से घूमते रहते हैं । घड़ी में गलती हो सकती है पर इन ग्रह-नक्षत्रों की चाल में राई-रत्ती भर फर्क नहीं पड़ने पाता । वर्षा आरम्भ होते ही पृथ्वी पर असंख्य धारों के फब्बारे छूटने लगते हैं । हरी-हरी कोमल घास की पत्तियाँ सारी भूमि पर शीतल सजीव मखमली फर्श बिछा देती हैं । नन्हें-नन्हें फूल खिलकर उनमें वेल-बूटे से जड़ जाते हैं । चन्दन, देवदारु, अगर, कदम्ब आदि के वृक्ष नाना प्रकार के पुष्प मानो इत्रों में डूबे खड़े हैं, अपनी भीनी सुगन्ध से ये संसार को हर घड़ी मनमोहक गंध हर घड़ी प्रदान करते रहते हैं । बिना पंखे के कोई अदृश्य शक्ति हमारे ऊपर हर घड़ी पंखा झलती रहती है । वायु का चलना सचमुच एक चमत्कार है ।

परमात्मा की विलक्षण जादूगरी के करतब कहाँ तक गिनावें ? उसकी कारीगरियाँ एक से एक विलक्षण हैं । नाना आकृतियों के जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, कीड़े, मकोड़े पेड़-पौधे हमें दिखाई पड़ते हैं । इनमें से हर एक अपने ढंग का अकेला है । एक से दूसरे की शक्ल नहीं मिलती, हर एक में कुछ न कुछ अलग कारीगरी है । नदी-पर्वत, वन एक से एक सुहावने हैं । भारी खर्च करके लोग बर्फ बनाने का एक छोटा-सा कारखाना खड़ा करते हैं पर वह जब बर्फ बनाने खड़ा होता है तो बिना किसी मशीन के पर्वतों और समुद्रों को हिम आच्छादित कर देता है । कमरे को ठंडा या गर्म करने के लिए लोग बड़ा परिश्रम करने पर अनुकूल तापमान करने में कुछ थोड़ी-सी सफलता प्राप्त करते हैं पर जब वह जादूगर अपना डंडा उठाता है तो शीत ऋतु को बदल कर गर्मी में और गर्मी को सर्दी में परिणत कर देता है । समुद्र जैसे तालाब खोदना और नदी जैसी नहरें निकालना मर्त्यलोक की इंजीनियरी के बस में नहीं है । कठपुतलियों को नचाकर तमाशे वाले कौतूहल पैदा कर देते हैं पर जरा देखिये तो सही खाक के पुतले, जीवधारी बिना किसी तार या डोरे के कैसे खुलते फिरते और नाचते-कूदते हैं, बिना रिकार्ड चढ़ाये तरह-तरह की बोलियाँ बोलते हैं । और तो और वे अपने क्षणभंगुर अस्तित्व पर इतराते भी हैं । रीछ और बन्दरों से मनुष्यों जैसी क्रियाएँ कराने वाले कलन्दर शाबासी पाते हैं । पर उस कलन्दर को तो देखिए जिसकी कठपुतलियाँ अपने कामों पर खुद घमंड करती हैं । काम, क्रोध, मोह, मद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मत्सर से प्रेरित होकर ऐसे-ऐसे स्वाँग करती हैं जिन्हें देखकर जागृत आत्माएँ हँसते-हँसते लोट-पोट हुए बिना नहीं रह सकतीं ।

उसके छिपाने की बलिहारी है । ऐसी तिजोरी किसी को मुश्किल से ही मिलेगी । जमीन के पेट में उसने सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा आदि धातुओं विविध खनिज पदार्थों, हीरा, पन्ना, नीलम, पुखराज आदि रत्नों को छिपा रखा है । समुद्र की तली में मोतियों की राशियों और मूँगों की चट्टानें दबी पड़ी हैं । इस अकूत सम्पत्ति का क्या ठिकाना है न जाने कितने लाख-करोड़ का यह वैभव है ।

खाक से मनुष्य, मनुष्य से खाक । वृक्ष से बीज, बीज से वृक्ष । बादल से पानी, पानी से बादल । खाद से अन्न, अन्न से खाद । तकदीर से तदवीर, तदवीर से तकदीर, इस प्रकार के जोड़े मिलाकर बुद्धि को चकरा देने वाली पहेलियाँ उसने उपस्थित कर दी हैं। उसके झोले में न जाने क्या-क्या हैरत भरी पड़ी है । जब मनुष्य मचल पड़ता है और उसकी झोली कुरेदने की जिद ठान बैठता है तो वह एकाध खिलौना ऐसा निकाल कर दे देता है, उस खिलौने को पाकर बालक मनुष्य फूला नहीं समाता । पिछली दशाब्दियों और शताब्दियों में उसने ऐसे कई खिलौने पाये हैं। रेडियो, टेलीफोन, रेल, तार, हवाई जहाज, बिजली आदि को लेकर वह हँस-कूद रहा है, परमात्मा के झोले में ऐसे अनन्त खिलौने भरे पड़े हैं, एक से एक अद्‌भुत हैं । उस मदारी की माया अपार है ।

जिधर देखिए उधर हैरत ही हैरत बरस रही है, एक से एक अद्‌भुत वस्तु उसने बना-बनाकर रख दी हैं, वह जादूगरों का जादूगर है, करामातियों का गुरु है, सिद्धों का सिद्ध है, वह चाहे जो दिखा सकता है, चाहे जो बना सकता है, चाहे जो कर सकता है । हर बात उसके लिए सम्भव है, हर चीज उसकी मुट्ठी में है । उससे बड़ा कोई सिद्ध नहीं, उससे बड़ा कोई चमत्कारी नहीं, उससे अधिक किसी में शक्ति नहीं, वह सर्वशक्तिमान है ।

निर्मल सुरसरी जिसके द्वार पर बहती हो उसे ताल-तलैयों में पानी ढूँढ़ने जाने की क्या जरूरत ? सिद्धों का सिद्ध, महाचमत्कारी परमात्मा अपने हृदय में, अपने से निकटतम स्थानों पर मौजूद है तब अन्य सिद्धों को तलाश करने जाने से क्या प्रयोजन ? छोटे बालक छोटे खिलौने से अपना मन बहलाते हैं पर प्रबुद्ध पुरुष को उन मिट्‌टी के खेल-खिलौनों में कोई रस नहीं, वह बड़ी वस्तुओं पर अपना ध्यान एकत्रित करता है और ऊँचे कामों में रस लेता है । आध्यात्मिक-दृष्टि से जो मनुष्य अभी बालक है वे तरह-तरह के चमत्कारों की तलाश में फिरते हैं और उनसे अपना मन बहलाते हैं । विस्मय में डाल देने वाले कार्य कर दिखाने वाले व्यक्ति उन्हें सिद्ध जँचते हैं और कृपा पात्र बनकर वे अपनी अभीष्ट अभिलाषाओं की पूर्ति चाहते हैं परन्तु विवेक बातों का मार्ग भिन्न है । वे परमसिद्ध परमात्मा की शरण में जाते हैं और इसे प्राप्त कर अनन्त चमत्कारों जैसी सिद्धि के भागी बनते हैं ।

ईश्वरीय सत्ता का अनुभव और हमारा अन्तर्ज्ञान

इंग्लैण्ड के एक प्रसिद्ध विद्वान ने एक अवसर पर कहा था कि "मनुष्य धार्मिक प्राणी है ।" यही कारण है कि मनुष्य का ध्यान सदैव सृष्टि की पहेली की तरफ आकर्षित होता रहता है और इसे सुलझाये बिना उसे चैन नहीं पड़ता। पेट की भूख की अपेक्षा भी ज्ञान की बुभुक्षा अधिक प्रबल होती है । एक दूसरे विद्वान ने एक बार धार्मिक-जीवन पर विचार करते हुए कहा था कि "ज्ञान-शक्ति सम्पन्न मनुष्य की अपेक्षा एक कुत्ते का जीवन अधिक सुखमय है क्योंकि उसके भीतर जिज्ञासा रूपी मोटी खुजली और ज्ञान की भूख नहीं होती । मनुष्य की बुद्धि ईश्वर का आशीर्वाद भी है और अभिशाप भी है, क्योंकि वह उसे सदैव ईश्वर सम्बन्धी शंका-समाधान के भँवर जाल में घुमाये रहती है और तब तक चैन नहीं लेने देती जब तक कि वह सर्वज्ञ न हो जाए ।"

ईश्वर को बुद्धि से जान लेना सर्वथा असम्भव है । स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे कि हमारी इस प्रकार की चेष्टा सीढ़ियों से चढ़कर स्वर्ग में पहुँचने की चेष्टा के सदृश्य व्यर्थ है । ईश्वर और हमारे बीच जो अंधकार का पर्दा पड़ा हुआ है उसे भेद सकने में मनुष्य की वैज्ञानिक और तार्किक बुद्धि सर्वथा असमर्थ है । वास्तव में परमात्मा की वैज्ञानिक ढंग से छान-बीन करने और उसकी अपार-शक्ति को तर्क द्वारा सीमाबद्ध करने और नापने की कोशिश करने में हम उस परात्पर पुरुष को बहुत छोटा बना देते हैं । जर्मनी के प्रोफेसर जैकोवी ने कहा है-"वह परमात्मा ही नहीं रह जाता जो हमारी समझ में आ सकता हो ।" जो वस्तु भलीभाँति बुद्धि में आ जाती है, उसके प्रति भय और आदर का भाव किसके हृदय में उत्पन्न होगा ? उस व्यक्ति के सामने, जिसे हम समझ सकते हैं अपने अधीन कर सकते हैं, और जिसका विश्लेषण कर सकते हैं, हम क्यों सिर झुकायेंगे ? ऐसी दशा में ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता और सर्वज्ञता कहाँ रहेगी ? इसी भावना को ध्यान में रखते हुए यूरोप के प्रसिद्ध दार्शनिक रूसो ने कहा था- "ईश्वर को मैं जितना कम समझता हूँ उतना ही अधिक भक्ति के साथ मैं उसकी प्रार्थना करता हूँ ।" यही कारण है कि सरलचित्त के अनपढ़ और साधारण पढ़े-लिखे व्यक्ति उच्च कोटि के भक्त और संत हो चुके हैं और ईश्वरीय शक्ति का अच्छा परिचय दे सके हैं जबकि बड़े-बड़े दार्शनिक और तार्किक उस क्षेत्र में जरा भी प्रवेश नहीं कर सके हैं ।

ईश्वर के अस्तित्व को पुष्ट करने वाले प्रमाण तीन श्रेणियों में विभक्त किये जाते हैं-

(१) उस शास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले जिसमें वस्तुओं के तत्व और स्वभाव पर विचार होता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(२) सृष्टि-विकास के सिद्धान्त से सम्बन्ध रखने वाले ।

(३) उस शास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले जिसमें संसार के आदि कारणों पर विचार किया गया है ।

पहली श्रेणी के प्रमाण का आशय यह है कि हमारे हृदय में ईश्वर की जो भावना सदैव से चली आती है वह उसकी प्रेरणा से है और यह उसकी सत्ता का एक प्रमाण है । दूसरे प्रमाण वाले यह कहते हैं कि बिना कारण के किसी कार्य की उत्पत्ति नहीं होती । उसका कोई कारण होना आवश्यक है । इसके अनुसार इस विश्व का जो कारण है वही ईश्वर है । तीसरे प्रमाण के अनुसार सृष्टि में जो अद्‌भुत व्यवस्था और नियमितता दिखलाई पड़ती है उससे प्रतीत होता है कि इसको रचने वाली कोई महान शक्ति अवश्य है । यह कहना कि परमाणुओं के आकस्मिक संयोग से सृष्टि के ये मस्त अद्‌भुत पदार्थ बन गये, बुद्धिसंगत बात नहीं है ।

यद्यपि ये तीनों प्रकार के प्रमाण अकाट्य नहीं कहे जा सकते और आलोचना करने वालों ने इनमें अनेक प्रकार की त्रुटियाँ बतलाई हैं। तो भी उनमें कुछ तथ्य अवश्य है और इसलिये उनकी अवहेलना न करके उन पर गम्भीरता से विचार करना हमारा कर्तव्य है। ईश्वर की सिद्धि गणित के किसी सिद्धान्त की तरह हो सकती, पर साथ ही हम यह भी कह सकते हैं कि ईश्वर का खण्डन कर सकना भी उतना ही निष्फल है । सत्य बात तो यह है कि ईश्वर का अस्तित्व तर्क या प्रमाणों द्वारा सिद्ध करना अच्छा तरीका नहीं है । क्योंकि ज्ञान का भंडार महान्, विस्तृत एवं शक्तिमय है, किन्तु मनुष्य को उतनी ही परिमित राशि का ज्ञान है, जिसको स्वयं अर्जन किया है। ऐसे परिमित ज्ञान के अन्दर उस अपरिमित शक्ति का समावेश किसी प्रकार से नहीं हो सकता । इसलिए यदि हम ईश्वर के अस्तित्व के विषय में वास्तव में कोई जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं तो हमको आभ्यान्तरज्ञान (इन्टयूशन) का आश्रय ग्रहण करना चाहिये । बुद्धिजन्य-ज्ञान की प्रक्रिया बाह्य होती है और उसके लिए हमको बाहर के ज्ञान का अर्जन करना होता है, जिसमें पर्याप्त समय लगाना पड़ता है और देर से सिद्धि मिलती है । इसके विपरीत आभ्यान्तरिकज्ञान की प्रक्रिया आन्तरिक होती है और इसके द्वारा सत्य का प्रकाश तत्काल ही हमारी बुद्धि पर पड़ता है । यह आभ्यान्तरिक ज्ञान ही असंदिग्ध, उत्पादनशील और विकासशील होता है । आन्तरिक ज्ञान की एक विशेषता यह है कि वह स्वत:-प्रकाश नहीं होता है किन्तु उसे उस आलौकिक वस्तु से प्रकाश प्राप्त होता है जिसको वह अपना विषय बनाता है । आन्तरिकज्ञान स्वत: प्रकाश रूप नहीं किन्तु प्रकाश को ग्रहण करने वाला होता है, क्रियाशील शक्ति नहीं किन्तु क्रिया का आधारभूत एक विचित्र कारण है ।

इसी आन्तरिकज्ञान की सहायता से हम सृष्टि के अन्दर ईश्वर की सत्ता का अनुभव करते हैं । जिन लोगों को यह ज्ञान प्राप्त नहीं है वे सहज ही में ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार कर देते हैं । अब दर्शन और विज्ञान ने भी अन्तर्ज्ञान की महत्ता को जान लिया है और बड़े-बड़े यूरोपियन तथा अमरीकन विद्वानों का कहना है- कि इसके बिना सत्य प्राप्ति हो ही नहीं सकती । इस आन्तरिक ज्ञान की सहायता से भी हम ईश्वर को पूर्ण रूप से नहीं समझ सकते, उसका अनुभव मात्र कर सकते हैं और अधिक से अधिक उसकी सर्वशक्तिमत्ता की एक झलक पा सकते हैं । महासागर में अपार जलराशि है किन्तु हम उसमें से उतना ही जल ले सकते हैं जितना हमारे बर्तन में समा सकता है । इसी प्रकार हम लोग अपने-अपने आध्यात्मिक विकास के अनुसार ही ईश्वर का अनुभव कर सकते हैं ।

आन्तरिकज्ञान की इस सीमा पर पहुँच कर साधक को योग की सहायता लेनी पड़ती है । योगी का जीवन, उसकी दृष्टि एवं बातचीत ईश्वरमयपुरुष के सदृश्य होती हैं । योगी को विश्वास होता है कि वह उन तथ्यों को भी आध्यात्मिक रीति से जान सकता है जो बुद्धि की पहुँच के बाहर हैं । यद्यपि यह सत्य का अनुभव कर लेता है, तथापि वह भी साधारण मनुष्यों के सामने सिद्ध नहीं कर सकता । उसके अनुभव तक वही पहुँच सकता है जो आध्यात्मिक विकास में उसी दर्जे तक पहुँच गया हो । वह परमात्मा को जानता नहीं किन्तु उसका अनुभव करता है, यही नहीं परमात्मा के साथ उस की एकता हो जाती है । फिर वह ईश्वर के अतिरिक्त न तो कुछ जान सकता है, न देख सकता है, न अनुभव कर सकता है । वह समस्त सृष्टि में उस एक को देखता है और उसी में विलीन हो जाता है । तर्कवादी मनुष्य भले ही इस प्रकार के महात्मा को पागल समझें, पर ईश्वर के अस्तित्व को अनुभव करने का यही मार्ग है । हमारे देश के लोग सदा से इस तथ्य को स्वीकार करते आये हैं । इसीलिए प्रो० मैक्समूलर ने कहा था कि संसार में सर्वत्र धर्म और दर्शन-शास्त्र में विरोध दिखलाई पड़ता है । भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जहाँ दोनों में सामंजस्य है ।

जड़ चेतन सभी में है, उसी का क्रीड़ा-कल्लोल

वाल्टर स्कॉट ने एक स्थान पर लिखा है कि इस विश्व-ब्रह्माण्ड का सूक्ष्मतापूर्वक अध्ययन करने पर ऐसा लगता है कि इसे संचालित करने वाली कोई न कोई नियामक सत्ता होनी ही चाहिए, क्योंकि इसके अभाव में सब कुछ इतना सुव्यवस्थित और अनुशासित ढंग से चलता रहे, ऐसा असम्भव-सा लगता है । इसे संयोग कह कर भी नहीं टाला जा सकता, क्योंकि संयोग यदा-कदा ही घटित होते हैं, पर जो सृष्टि अनादि काल से बिना किसी व्यतिक्रम के चलती आ रही है और अनन्तकाल तक व्यतिरेकहीन गतिविधियाँ अपनाये रखने की सम्भावना सँजोयी हुई है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसके सम्बन्ध में ऐसा कैसे कहा जा सकता है, कि यह सब कुछ अनायास हो रहा है और आगे होता रहेगा ।

यदि उनके इस कथन पर विश्वास किया जाय तो हमें यह मानने को विवश होना पड़ेगा कि सृष्टि-संचालन के पीछे कोई परोक्ष सत्ता अवश्य होनी चाहिए । सूक्ष्म अध्ययन से इसकी वास्तविकता समझी भी जा सकती है और अनुभव भी की जा सकती है । जिनने भ्रूण-विज्ञान का अध्ययन किया है, वे जानते हैं कि भ्रूण-विज्ञान की आरम्भिक स्थिति में सभी प्राणियों के भ्रूणों में विलक्षण समानता और एकरूपता पायी जाती है, चाहे वह मानवी भ्रूण हो, बिल्ली का, कुत्ते का, गाय, भैंस, बकरी किसी का भी हो विकास-क्रम की प्रारम्भिक अवस्था में उनमें विभेद करना और यह बता पाना कि यह किस जीवधारी का भ्रूण है, कठिन ही नहीं, असम्भव भी है । फिर विकास काल के बाद की अवस्था में उनमें कैसे अपनी जाति के अनुरूप अंग-अवयव और आकार-प्रकार स्वतः विकसित होने लगते हैं ? यह विचारणीय बातें हैं ।

तर्कवादी इन सबका उत्तर देने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं । जीव-विज्ञानी सम्भवतः इसका यह कहकर जवाब दें कि ऐसा जीवकोष के 'जीन' में निहित कूट-संदेश के कारण शक्य हो पाता है । कुछ क्षण के लिए इसे मान भी लें, तो अगले ही पल एक अन्य सवाल उठ खड़ा होगा कि हर प्राणी में इतने भिन्न-भिन्न प्रकार का कूट संदेश प्रतिष्ठित करने वाला कौन है ? इसका आदि कारण क्या है ? विज्ञान यहीं मौन हो जाता है । अध्यात्म-विज्ञान इसका यह कहकर उत्तर देता है कि यह सब उस नियन्ता का खेल है, जिसने आरम्भ में एक से अनेक बनने की इच्छा की एवं सृष्टि बनायी । दूसरे प्रकार से इसे हम यों भी समझ सकते हैं कि आज के कम्प्यूटर युग में माइक्रोचिप्स विभिन्न प्रकार की पूर्व भण्डारित सूचनाओं के आधार पर काम करती है । उसमें जिस प्रकार का संदेश भरा होता है, उसी हिसाब से अनवरत काम करती रहती है, पर आखिर उसमें संदेश भरा किसने ? इसका एक सामान्य-सा उत्तर होगा, उस निर्मात्री कम्पनी ने जिसने उसका निर्माण किया, अर्थात् निर्माता ही उसमें संदेश निर्धारण का भी काम करता है । यही बात सृष्टि के समस्त प्राणियों में लागू होती है । स्रष्टा इनका निर्माण करके ही अपने कार्य की इतिश्री नहीं मान लेता, वरन् इस बात का भी समुचित ध्यान रखता है, कि संरचना के बाद उसकी कृति ठीक-ठीक काम करती रहे ।

वनस्पति जगत में भी ऐसी ही नियमितता और नियमबद्धता दिखाई पड़ती है । इंग्लैण्ड के प्रख्यात वनस्पति शास्त्री और दार्शनिक जेम्स फ्रेजर ने कहा है कि ईश्वरीय सत्ता और उसकी अद्भुत विधि-व्यवस्था को सिद्ध करने का ज्वलन्त प्रमाण स्वयं पादप-जगत भी अपने में धारण किये हुए है । अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'प्लाण्ट किंगडम-दि विविड एविडेन्स आफ प्रेजेन्स ऑफ गॉड' में वे लिखते है कि विभिन्न पेड़-पौधों द्वारा अपनी जाति के रूप-रंग, आकार-प्रकार वाले फूल-फलों को उत्पन्न करने सम्बन्धी पादपशास्त्रियों का जीन-सिद्धान्त मान भी लिया जाए, तो वनस्पतियों की उस नियमितता का समाधान कैसे हो, जिसमें वे फलने-फूलने का ठीक-ठीक समय आ उपस्थित होने पर ही फलते-फूलते हैं । समय और मौसम की सूचना उन्हें कौन देता है ? इनकी भलीभाँति पहचान वे कैसे कर लेते हैं ? फ्रेजर महोदय लिखते हैं कि जब तक वनस्पतियों में चेतना की उपस्थिति की बात विज्ञान द्वारा प्रमाणित नहीं की जा सकी थी, तब तक तो यह गुत्थी अनसुलझी थी, पर भारतीय वनस्पतिविज्ञानी जे० सी० बोस द्वारा जब यह सिद्ध कर दिखाया गया कि विष को देखकर पौधे, प्राणियों की तरह भयभीत होते और उनका इंजेक्शन देने पर मर जाते हैं तथा रागात्मक गतिविधियों के प्रति आनन्द प्रदर्शित करते हैं, अर्थात् मनुष्य की उसके प्रति अनुकूल-प्रतिकूल क्रिया के संदर्भ में वे तत्सम प्रतिक्रिया प्रदर्शित करते हैं, तो यह स्पष्ट हो गया कि समय सम्बन्धी सूचना उसके साथ गुँथी उस चेतना द्वारा सम्भव हो पाती है, जिसे महत् चेतना का अंशधर मनुष्य है ।

भूगर्भशास्त्री हीरा बनने की प्रक्रिया समझाते हुए कहते हैं कि कोयला जब एक निश्चित तापमान एवं दबाव पर आ जाता है, तो वह हीरा बन जाता है, पर आखिर उस तापमान पर हीरा ही क्यों बनता है ? कोई अन्य पदार्थ क्यों नहीं बनता ? इस तर्क के संदर्भ में भूगर्भवेत्ता यह कह सकते हैं कि उक्त तापमान पर हीरा बनने का ही सुयोग बैठता है, तो पुनः प्रश्न पैदा होगा कि यह सुयोग बिठाने वाला कौन है ? परिवर्तन के बाद फिर वह अपने गुण-धर्म को कैसे समझता और निरन्तर अपनाये रहता है ? तापमान और दबाव के हटते ही वह पुनः कोयला क्यों नहीं बन जाता ? उसके परमाणविक-संरचना को कौन-सी शक्ति बदल देती है ? इस प्रकार के अनेकानेक सवाल उठ खड़े होंगे, जिनका जवाब दे पाना भौतिक-विज्ञान के वश की बात नहीं होगी । इनका उपयुक्त उत्तर अध्यात्म-विज्ञान ही दे सकता है, जो कण-कण में चेतना की उपस्थिति देखता और अनुभव करता है । खगोल-विज्ञान भी खगोलीय पिण्डों के संदर्भ में ऐसी ही मर्यादित विधि-व्यवस्था सिद्ध करता है, जो यह अनुमान लगाने के लिए काफी है कि निर्जीव पिण्डों का संचालन-सूत्र निश्चय ही किसी चेतनात्मक-सत्ता के हाथों में है ।

पदार्थ की सामान्यतः तीन अवस्थाएँ मानी गई हैं-ठोस, तरल व गैस । इसकी चौथी अवस्था 'प्लाज्मा' कहलाती है । वैज्ञानिक कहते हैं कि जब तापमान 'प्लाज्मा' अवस्था से भी उच्च स्थिति में आ जाता है, तो पदार्थ शक्ति में परिवर्तित हो जाता है । इस बिन्दु पर पदार्थ विज्ञान और अध्यात्म-विज्ञान की मान्यता एक-दूसरे से पूर्णतः मेल खाती है । अध्यात्म-विज्ञान कण-कण में स्रष्टा की चेतनात्मक सत्ता की विद्यमानता का "ईशावास्यमिदं सर्वम्" कहकर उद्घोष करता है, जबकि पदार्थ विज्ञान एक निश्चित तापमान के उपरान्त पदार्थ के चेतनात्मक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शक्ति में परिवर्तन की बात कहता है । यहाँ ध्यातव्य यह है कि जहाँ जिस वस्तु की विद्यमानता है ही नहीं वहाँ उसकी उत्पत्ति समस्त भौतिक सिद्धान्तों के सर्वथा विपरीत है । जब कोयला, हीरा में परिवर्तित होता है तो दोनों के भौतिक स्वरूप में भले ही जमीन आसमान जितना अन्तर हो, पर रसायनवेत्ता जानते हैं कि उनका रासायनिक गुण-धर्म सर्वथा अभिन्न होता है । इसी प्रकार बर्फ और पानी बाह्य दृष्टि से पृथक्-पृथक् दीख सकते हैं, पर उनके रासायनिक गुण सदा एक-से होते हैं, किन्तु पदार्थ के चेतना में परिवर्तन के संदर्भ में दोनों के न सिर्फ भौतिक स्वरूप वरन् प्रकृति में भी भिन्नता दृष्टिगोचर होती है और एक सर्वथा नवीन सत्ता का उद्भव देखने में आता है । अतएव यह स्वीकार कर लेना ही उचित होगा कि पदार्थ, चेतना की स्थूल अभिव्यक्ति है एवं उसका कुछ अंश सूक्ष्म रूप में पदार्थ की आकृति-प्रकृति को नियमित-नियंत्रित बनाये रखने के लिए उसमें विद्यमान होता है ।

इस प्रकार विज्ञान ने उस आध्यात्मिक मान्यता को एक प्रकार से प्रमाणित ही किया है कि हर जड़ चेतन में वह चेतन सत्ता विद्यमान है वह स्वयं वह भी उसी की स्थूल अभिव्यक्ति है, जिसने यह सृष्टि बनायी है । कहा गया है कि महाप्रलय के बाद इस सृष्टि के जड़, चेतन सभी पदार्थ अपने मूल रूप आकाश तत्व में समा जाते हैं । आकाशतत्व की शक्ति का स्रोत शब्द ब्रह्म (बिग बैंग) कहा गया है जिससे सृष्टि की उत्पत्ति हुई मानी जाती है । इस तरह इस बिन्दु पर अध्यात्म और विज्ञान दोनों की मान्यताएँ एक ही फ्रिक्वेन्सी पर अपना प्रतिपादन करती दिखाई देती हैं । यही शाश्वत सत्य है । सभी जड़-चेतन में एक ही शक्ति क्रीड़ा-कल्लोल कर रही है । वही उनकी निर्मात्री है और संचालिका भी ।

अद्वैतवाद या सर्वेश्वरवाद

"यह सब कुछ ब्रह्म ही है "-यह अद्वैतवाद या सर्वेश्वरवाद है । यह सिद्धान्त किसी न किसी रूप में प्रायः सब धर्मों में पाया जाता है । जब हम वस्तुमात्र के मूलतत्व का विचार केवल निराकार-निर्गुण रूप से नहीं परन्तु एक साकार सगुण ब्रह्म रूप से करते हैं तब प्रत्येक धर्म में यह तत्व दो रूप में व्यक्त होता है । इन्हें हम प्रभु के सर्वातीत और सर्वव्यापक रूप के नाम से जानते हैं ।

सर्वेश्वरवाद का बिल्कुल स्पष्ट रूप हिन्दू धर्म में देखा जाता है । 'श्वेताश्वतर उपनिषद्' के नीचे लिखे मन्त्र प्रभु के सर्वव्यापक स्वरूप के सिद्धान्त को निरूपित करते हैं । हिन्दू धर्म में यह स्वरूप सगुण ब्रह्म समूर्त ईश्वर की दिव्य सत्यता (रियलिटी) है:-

"यह देव सब दिशाओं में है, वह बहुत पूर्व जन्मा था, वह गर्भ में है, वह जन्म ले चुका है, वह जन्म लेवेगा, सब जन्मे हुओं के पीछे वह खड़ा है । वह सर्वतोमुख है । "

-२-१६

"सब के मुँह, सिर और गरदन जिसके हैं, जो सब भूतों (जीवों) के गुहाशय में स्थित है, जो भगवान सर्वव्यापी है । इसलिये वह सर्वस्थित शिव (कल्याणकारी) है ।"

-३-११

"वह ही अग्नि है, वह आदित्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है, वही शुक्र, वही ब्रह्म, वही आप, (जल) वही प्रजापति है ।"

-४-२

"तू ही स्त्री-पुरुष, तू ही कुमार, तू ही कुमारी है । तू ही बूढ़ा होकर लाठी पकड़ कर चलता है और तू ही सब ओर मुख करके जन्म लेता है । "

-४-३

"नीली तितली, हरा पक्षी, लाल रंग का पशु बिजली को गर्भ में धारण करने वाला बादल, जन्तु और सब समुद्र इन सब का अनादि रूप तू है । सर्वव्यापी शक्ति में तेरा घर है, जहाँ से सब भुवन और विश्व निकले हैं ? "

-४-४

इसी श्वेताश्वर उपनिषद् के नीचे लिखे श्लोक भी हैं जिनसे प्रकट हो जाता है कि हिन्दू विचारकों ने भगवान के सर्वातीत और सर्वव्यापक स्वरूपों का किस प्रकार समन्वय किया था-

"मैंने उस आदित्यपूर्ण अन्धकार के परे वाले पुरुष को ही जाना है, उसे जानकर मनुष्य मृत्यु से तर जाता है । जाने बिना कोई दूसरा मार्ग नहीं है ।"

-३-८

"जिससे बड़ा या छोटा कोई और नहीं है, जिस से अधिक सूक्ष्म या स्थूल और कोई नहीं है । जो वृक्ष के समान आकाश में स्तब्ध अकेला खड़ा रहता है, उस पुरुष से सर्वपूर्ण है ।"

-३-९

"उसे न ऊपर से, न नीचे से, न बीच से कोई समझ सकता है, न उसकी कोई प्रतिमा है, जिसका नाम महत यश है । उसका रूप नजर के भीतर नहीं आता । कोई उसे आँख से नहीं देख सकता । जो इसे हृदय और मन की सहायता हृदय में स्थित जानते हैं वे अमर हो जाते हैं ।"

-४-१९,२०

"वही एक दस भुवन, विश्व के मध्य में आता जाता है । वही अग्नि है, वही जल में भी प्रविष्ट है। उसी को जानकर मनुष्य मृत्यु को पार कर सकता है । दूसरा कोई मार्ग जाने को है ही नहीं ।"

-४-२१

बौद्धधर्म एक प्रकार से निरीश्वरवादी है और इसलिये इसके सामान्यस्वरूप में हिन्दू धर्म का सा स्पष्ट सर्वेश्वरवाद नहीं पाया जाता । तो भी भगवान बुद्ध ने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वस्तुमात्र का ही एक आधार माना है । इन्होंने इसे निर्वाण का नाम देकर इस प्रकार वर्णन किया है-

"भिक्षुओ ! एक ऐसा स्थान है जहाँ न पृथ्वी है, न जल, है, न वायु है, न वहाँ अवकाश का अनन्त जगत है। न वहाँ बुद्धि का अनन्त जगत है । न वहाँ किसी प्रकार की अवस्तु का ही जगत है । न वह प्रत्यक्ष ज्ञान का संज्ञा का लोक है, न वहाँ असंज्ञा ही है, न वहाँ इहलोक है, न वहाँ दूसरा ही लोक है, न वहाँ सूर्य है न वहाँ चन्द्रमा है । हे भिक्षुओ ! उसे मैं न आना कहता हूँ, न जाना, न खड़े रहना, न जन्म, न मृत्यु । वह बिना आधार का, बिना जन्म का, विचार से परे है । वह सत्य ही दुःख का नाश रूप है । हे भिक्षुओ! वह अजन्मा, अव्यक्त, अमृष्ट और अमर्यादित है । यदि वह अजन्मा, अव्यक्त न होता तो इस जगत में जो जन्म लेता है, व्यक्त होता है, सृजा जाता है या मर्यादित होता है, उसका हम को भान नहीं होता ।"

ईसाई धर्म में सर्वेश्वरवाद को सिद्धान्त रूप से नहीं मानते । इसका यह कारण भी है कि जिन धर्मों में प्रभु के सर्वातीत रूप पर जोर दिया जाता है उनमें उनके सर्व व्यापक रूप को ग्रहण करने में विरोध भाव उत्पन्न होता है । फिर भी ईसाई धर्म में बहुत से भावनायोगी सर्वेश्वरवादी हो गये हैं । प्रभु 'ईसा के महावाक्य' नामक पुस्तक में उनका एक उद्‌गार इस प्रकार है-

"पत्थर को उठाओ और वहाँ भी तू मुझे पावेगा । लकड़ी को फाड़ो और वहाँ भी मैं मौजूद हूँ ।" आगे चल कर एक स्थान पर फिर कहा है-

"तुम पूछते हो कि वे कौन हैं जो 'राज्य' के निकट हमको पहुँचाते हैं, यदि वह राज्य स्वर्ग में है तो? वायुमंडल के सब पक्षी और सारे पशु समुद्र की मछलियाँ ये सब हमें पहुँचाते हैं और स्वर्ग का राज्य तुम्हारे भीतर ही है । जो कोई अपने को पहचानेगा वह उसे पावेगा ।"

सर्वेश्वरवाद का एक मनोहर रूप वह है जो सूफी धर्म में पाया जाता है । ईरान का भावना योगी कवि तायी कहते हैं-

"प्रकृति के प्रत्येक परमाणु को ईश्वर ने ऐसा दर्पण बनाया है जिससे उसके मुख की सुन्दरता झलकती है । गुलाब के फूल से उसकी सुन्दरता प्रकट होती है और बुलबुल पक्षी उस सुन्दरता को देखकर प्रेम से पागल बन जाता है । उसी अग्नि से दीपक की ज्योति में वह प्रकाश आया जो पतंग या परवाने को मोह में डालकर जला देता है । सूर्य पर जब उसका सौन्दर्य चमका तो तुरन्त ही पानी की लहर में कमल की कली निकल पड़ी । ..... सावधान । ऐसा मत कहो कि वह परम सौन्दर्य है और हम उसके प्रेमी हैं । तुम तो केवल दर्पण मात्र हो और दर्पण के सामने वही खड़ा है जिसकी छाया दर्पण पर पड़ती है । वही अकेला व्यक्त है और तू तो वास्तव में ढँका है । वह दर्पण भी है । वह रत्नराशि और तिजोरी दोनों है । इसमें 'मैं' और 'तू' को स्थान नहीं है । ये तो केवल खाली मिथ्या छाया या आभास मात्र है ।"

विज्ञान के आधुनिक काल में भी सर्वेश्वरवाद की गूँज इमर्सन आदि दार्शनिकों के लेखों में मिलती है-

"इस मन या विश्वात्मा में प्रत्येक मनुष्य का जीवन समाया हुआ है और वह जीवन दूसरे सब के साथ एकत्व का अनुभव करता है । वही एक सर्व सामान्य हृदय है । .... मनुष्य के भीतर जो पूर्वक विश्वात्मा स्थित है वही प्रज्ञा पूर्ण मौन रूप है, विश्वव्यापी सौन्दर्य रूप है । प्रत्येक अंश और प्रत्येक कण का उस पूर्ण से पूरा सम्बन्ध है । वही सनातन है । इसमें द्रष्टा, दृश्य, दर्शन और चश्मा अथवा आत्मा, अनात्मा सब एक ही है ।"

इस विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतीय उपनिषदों ने जिस अद्वैतवाद का प्रचार किया था उसका प्रभाव संसार के सभी धर्मों और देशों पर पड़ा । इससे मनुष्य को इस बात का ज्ञान हुआ कि इस विश्व में जो कुछ है सब ईश्वर है । सब प्रकार का जीवन, शक्ति और पदार्थ ईश्वर के अस्तित्व के विभिन्न रूप ही हैं । इस जगत को ईश्वर ने ही रचा है और ईश्वर उस सब में व्याप्त है और इस जगत से परे भी स्थित है ।

यह अद्वैतज्ञान केवल दर्शन-शास्त्र की ही बातें नहीं हैं । भक्त कवियों ने और विशेषतः गोस्वामी तुलसीदास जी ने इसको सर्वसाधारण के समझने योग्य विषय भी बना दिया है और सर्वव्यापी राम की भक्ति द्वारा अद्वैत की प्राप्ति का मार्ग दिखला दिया है । यही गीता के कर्म योग का तात्पर्य है । धर्म के सभी जिज्ञासुओं का कर्तव्य है कि धर्म के इस तत्व को समझें और तदनुकूल आचरण करें । यही सच्चा मुक्ति मार्ग है ।

सर्वव्यापी परमेश्वर की दिव्य-सत्ता

ईश्वर को पाने या दर्शन करने के लिए कहीं अन्यत्र जाने की जरूरत नहीं है । क्योंकि वह सर्वव्यापी है । घट-घटवासी भी । ऐसी दशा में उसे किसी एक रूप में अथवा एक स्थान में सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता है, जब वह निर्बन्ध हो तो उसे एक किसी स्थान विशेष में खोज निकालने की बात कैसे बने ? कहीं एक स्थान में उसे कैसे खोजा और कैसे पाया जाय ?

पवन सर्वत्र संव्याप्त है । उसका कोई रूप नहीं हो सकता । पत्ते हिलने, तिनके उड़ने से उसकी उपस्थिति का आभास पाया जा सकता है, पर किसी जीवधारी की आकृति में उसे बोलते, बात करते, छवि दिखाते या किसी सिंहासन पर विराजमान नहीं देखा जा सकता । ऐसा यदि बन पड़े तो उसकी स्थिति किसी जीवधारी जैसी हो जाएगी। तब उसे स्थानवासी कहा जाएगा, निराकार नहीं, जबकि दिव्य शक्तियाँ सूक्ष्म होती हैं । यहाँ तक कि शरीर में रहने वाला प्राण तक सूक्ष्म है, वह समग्र काया में विद्यमान है पर किसी एक स्थान में उसे पाया पकड़ा नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जा सकता । देखना, छूना तो और भी अधिक असम्भव है । प्राण की शक्ति काम करती है, उसी से अंग-प्रत्यंग का संचालन नियमन होता है । निकल जाने पर काया को मृतक घोषित कर दिया जाता है । ऐसी स्थिति में प्राणों के अस्तित्व से इनकार नहीं किया जा सकता । इतने पर भी कोई यह आग्रह नहीं करता कि जीवन का अधिष्ठाता प्राण हमें प्रत्यक्ष दीखे तभी संतोष मिले । जो सर्वव्यापी होगा वह एक स्थानीय नहीं हो सकता । जो एक स्थानवासी है उसे सर्वव्यापी नहीं माना जा सकता ।

व्यक्तियों के साथ मैत्री या उपेक्षा चल सकती है । उससे आग्रह-अनुरोध भी किये जा सकते हैं । कुछ देने पाने का भी प्रसंग चल सकता है । व्यक्ति व्यक्तियों से प्रभावित होते हैं, उन पर मनुहार का प्रभाव पड़ता है । अवज्ञा, अवमानना करने पर वे रुष्ट भी हो जाते हैं । अपने पराये का इस लोकव्यवहार में भेदभाव भी चलता है । अपनों के साथ पक्षपात बरता जाता है और परायों के साथ शिष्टाचार भर बरता जाता है । किन्तु शक्तियों का स्वभाव व्यवहार ऐसा नहीं होता । वे एक नियम अनुशासन में बँधी रहती हैं और जिनके भी सम्पर्क में आती हैं उन्हें उन मर्यादाओं का पालन करते देखना चाहती हैं, जिनसे कि वे स्वयं आबद्ध हैं ।

अग्नि तत्व संव्यापक है । उसकी उपस्थिति ईंधन में स्पष्टतया देखी जा सकती है । जब तक ईंधन में ज्वलनशीलता रहती है, तब तक ज्वाला जलती रहती है । ईंधन का अस्तित्व समाप्त हुआ कि अग्नि का प्रकट रूप भी अदृश्य-सा हो जाता है । यों वातावरण में तापमान को देखते हुए यह अनुभव किया जा सकता है कि अग्नि की सत्ता अदृश्य रूप में सर्वत्र संव्याप्त है ।

अग्नि के उपयोग के कुछ नियम हैं । उन्हीं के अनुसार उसे जलाया और अभीष्ट प्रयोजनों में प्रयुक्त किया जा सकता है । इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि अग्नि का कोई भक्त है या विश्वासी । अग्निपूजक के यहाँ भी वह जलती है विद्वेषी के यहाँ भी । उसका अनुग्रह प्राप्त करते रहने का केवल एक ही तरीका है कि अग्नि से सम्बन्धित नियमों का पालन किया जाए । जो इसमें व्यतिक्रम करता है, वह जोखिम उठाता है । अग्नि हवन करने वालों और दीपक जलाने वालों की भी असावधानी को क्षमा नहीं करती । वह बाल-वृद्ध का, शिक्षित-अशिक्षित का भी अन्तर नहीं करती । व्यक्तिगत रूप से किसी से मैत्री भी नहीं निबाहती । साथ ही निन्दा-प्रशंसा के फेर में पड़कर किसी के प्रतिकूल भी नहीं होती और प्रतिशोध भी नहीं लेती । उसे अपने नियमों के परिपालन में ही भक्ति दीखती है । सतर्कता बरतने और नियमों को पालने वाले मित्र की वह समुचित सेवा-सहायता भी करती है । पर जो कोई निर्धारित मर्यादा में व्यतिरेक करता है वह तत्काल दण्ड पाता है । उसका मन मनोरथ पूरा नहीं होता कि पूजा-अर्चा के बदले उसके साथ रियायत बरती जाय । भूलों की दर-गुजर की जाएगी। प्रमादी हवनकर्त्ता भी हाथ जला लेते हैं । अप्रमादी अनगढ़ होने पर भी गड़रिया लुहारों की तरह उसके सहारे अपने परिवार का निर्वाह करते रहते हैं ।

व्यापक शक्तियाँ निराकार होती हैं । आकार धारण करते ही उनकी व्यापकता समाप्त हो जाती है । गुरुत्वाकर्षण, तापमान, पवन, ईथर आदि तत्व की सत्ता व्यापक तो है पर न तो हम उन्हें देख सकते हैं और न पकड़ ही पाते हैं । इसके लिए प्रयत्न करना निरर्थक है ।

पदार्थों की सहायता से हम अदृश्य शक्तियों की उपस्थिति का अनुभव कर सकते हैं । शीत को देखा नहीं जा सकता, पर बर्फ पड़ने पर उसकी विशेष उपस्थिति का भान आसानी से हो सकता है । भट्टी में दहकते अंगारों से अग्नि की उपस्थिति का प्रत्यक्ष भान होता है । यह सापेक्ष है । तत्वों की उपस्थिति किन्हीं आधारों के माध्यम से ही जान पड़ती है । अन्धड़ में, तूफान में, पवन की विशेष गतिशीलता देखी जा सकती है । प्राणियों की चलती-फिरती काया ही उनके भीतर प्राण की उपस्थिति का भान करती है । उसे पकड़ना या देखना अशक्य है ।

प्रभुदर्शन को हम अपने भीतर भी देख सकते हैं और बाहर भी । वह सद्गुणों, सत्प्रवृत्तियों, सद्भावना और सत्कर्मों के रूप में दृष्टिगोचर हो सकता है । श्रद्धा, निष्ठा और प्रज्ञा के रूप में उसका परिचय मिल सकता है । आत्म-संयम और पुण्य-परमार्थ में उसकी बहुलता आँकी जा सकती है । पानी के गुण तो बूँद में भी नहीं रहते हैं किन्तु छोटी जगह में उसे स्वल्प और बड़े सरोवर में भी उसे अधिक मात्रा में विद्यमान देखी जा सकती है । पात्रता एवं पवित्रता के आधार पर कोई व्यक्ति अपने में ईश्वर तत्व का अधिक अवधारणा कर सकता है । दुष्ट और भ्रष्ट गीली लकड़ी की तरह धुआँ देते और बदबू फैलाते रहते हैं । यद्यपि अग्नि का अंश उनमें भी मौजूद रहता है । जिन्हें अपने अन्तराल को सुसंस्कारिता से भर लिया है, वे सरलतापूर्वक कपूर की तरह जलने और अपनी प्रभावपरिधि में सुगन्ध फैलाने लगते हैं ।

जिन्हें ईश्वर दर्शन की लगन है-उन्हें छवि विशेष के रूप में देख पाने की ललक छोड़नी चाहिए । उन्हें इस विश्व-विस्तार को देखकर उसके कर्त्ता का अनुमान लगाना चाहिए । कुम्हार के बिना घड़े नहीं बनते, आभूषणों की संरचना स्वर्णकार ही करते हैं । इस प्रत्यक्ष जगत को देखकर उसके कर्त्ता का सुनिश्चित विश्वास किया जा सकता है । फिर इतने सुव्यवस्थित, सुनियोजित संसार की सुनिश्चित गतिविधियों को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि वह अपने आप बन गया है । तिनके, पत्ते तक इसी व्यवस्था के अन्तर्गत ही विनिर्मित होते हैं, यह व्यवस्थापक चेतना ही परब्रह्म या परमेश्वर है ।

उसके साथ घनिष्टता साबित करने, उसकी अनुकम्पा का अधिकतम लाभ लेने का सीधा-सा तरीका है कि उनके अनुशासन को पा लें और दायित्वों का निर्वाह करें । सदाशयता के रूप में अपने भीतर की अधिकाधिक अनुभूति की जा सकती है । दया, करुणा, मैत्री, सेवा,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उदारता, संयम, सज्जनता आदि सद्गुणों के रूप में ईश्वर की उच्चस्तरीय रूप में ही अवधारणा होती है ।

इस संसार में कुछ बुराइयाँ और कुछ चुनौतियाँ भी हैं, उन्हें स्रष्टा ने इसलिए बनाया कि मनुष्य उनसे जूझे और अपनी वरिष्ठता सिद्ध करके अधिक ऊँचे पद का अधिकारी बने । हवा के साथ उड़कर गन्दगी इसलिए कमरे में आती है कि हमें नित्य बुहारी लगाने और स्वच्छता का अभ्यास बनाए रहने का स्मरण दिलाता रहे । ईश्वर की इस विश्व-वसुधा में जो भले-बुरे तत्व हैं उनका एकमात्र प्रयोजन इतना ही है कि हम श्रेष्ठता को अपने भीतर जीवनी-शक्ति की तरह बढ़ायें और जो अवांछनीयता है उसे रुग्णता या गन्दगी की तरह मार भगायें । इसी कौशल को ईश्वर की ऐसी भक्ति कहा जा सकता है जिसके सत्परिणाम दिव्य वरदान सुनिश्चित है ।

जड़ चेतन में समाई हुई परमशक्ति

प्रकृति की समस्त हलचलों का केन्द्र-बिन्दु एक केन्द्रीय शक्ति है । वही विविध रूप धारण करती तथा संसार को रचती है । सम्पूर्ण सृष्टि में वही संव्याप्त है । वेदान्त में इस महाशक्ति को ब्रह्म कहा गया है । वेदान्त दर्शन के अनुसार ब्रह्म के अतिरिक्त ब्रह्माण्ड में और कुछ नहीं है । 'एकोब्रह्म द्वितीयोनास्ति' की उक्ति इसी तथ्य पर आधारित है । उसके प्रकाश से ही तारे, ग्रह, नक्षत्र, सूर्य सभी प्रकाशित हैं । जीव-जन्तु, वनस्पतियों में उसकी चेतन तरंगें ही क्रीड़ा-कल्लोल कर रही हैं । उत्पत्ति, विकास एवं विनाश की प्रक्रिया इस महाशक्ति द्वारा ही संचालित है ।

जिस प्रकार सूर्य ओस की असंख्यों बूँदों में असंख्य प्रतीत होता है, उसी प्रकार देश-काल की परिधि में आकर उससे परे रहते हुए भी वह शक्ति असंख्यों नाम-रूपों में प्रतिभासित होती है । स्वरूप में भिन्नता होते हुए भी कारणभूत सत्ता की दृष्टि से समस्त जड़-चेतन में वही विद्यमान है । सृष्टि की समस्त रचनाएँ उसकी ही क्रमिक अभिव्यक्तियाँ हैं । इसे तथ्य के अनुसार सारा संसार एक शक्ति के सूत्र में माला के मनके के समान गुँथा हुआ है । गुँथने वाली इस शक्ति को ही लौकिक परिभाषा के अनुसार 'मन' कहा गया है । वस्तुतः संसार का स्वरूप मन के संकल्प के अनुसार ही बनता है । सब में विद्यमान इस सूक्ष्म शक्ति द्वारा ही स्रष्टा समस्त प्रकृति पर नियन्त्रण रखता एवं संचालन करता है ।

ब्रह्माण्ड की वास्तविक शक्ति सूक्ष्म में ही निहित है । ऊर्जा, प्रकाश, चुम्बकत्व, गुरुत्वाकर्षण, विद्युत उसी के विविध रूप हैं । इन सबके समष्टिगत स्वरूप को ही ब्रह्म कहा गया है । आधुनिक विकासवाद की अवधारणा भी इस सिद्धान्त पर ही अवलम्बित है । जीव द्रव्य (प्रोटोप्लाज्म) से जीव की विकास प्रक्रिया में एक शक्ति के अनेक में रूपान्तरित होने का ही तथ्य छिपा है । सापेक्षवाद के प्रवर्तक भौतिक शास्त्र के मूर्धन्य वैज्ञानिक आइन्सटीन के अनुसार सर्वत्र ऊर्जा संव्याप्त है । समस्त पदार्थ ऊर्जा के ही स्थूल रूप हैं । ठोस, द्रव्य, गैस की विभिन्न अवस्थाएँ ऊर्जा की क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म तक स्थितियाँ हैं। ये अवस्थाएँ परिवर्तनशील हैं । स्थूल से सूक्ष्म एवं सूक्ष्म से स्थूल में बदलती रहती हैं। इसे जीवन-चक्र नाम ऊर्जा के रूपान्तरण प्रक्रिया के कारण ही दिया गया है । ठोस रूप में दिखायी पड़ने वाला पदार्थ भी अत्यधिक विकिरण के प्रभाव से सूक्ष्म से सूक्ष्मतर अवस्था में परिवर्तित हो जाता है । यह प्रकाश की गति प्राप्त कर ले तो पूर्णतया ऊर्जा में परिवर्तित हो जाएगा । इसका स्थूल स्वरूप अदृश्य हो जाएगा ।

एक ही शक्ति किस प्रकार विभिन्न रूपों में रूपान्तरित होती रहती है, इसे भौतिक विज्ञान के अनुसार समझा जा सकता है । किसी भी द्रव्य की तीन भौतिक अवस्थाएँ हैं- ठोस, द्रव एवं गैस । समयानुसार यह अवस्थाएँ परस्पर परिवर्तित होती रहती हैं । ठोस रूप में दिखाई पड़ने वाला बर्फ के ताप के सम्पर्क में आते ही द्रव्य में बदल जाता है । तापक्रम बढ़ा देने से वाष्पित होकर गैस अवस्था प्राप्त कर लेता है । इसकी उल्टी प्रक्रिया भी चलती है । भाप शीत के सम्पर्क में आने पर अथवा कम ताप होने पर द्रव्य एवं तापमान न्यून हो जाने पर जमकर बर्फ बन जाती है । यह प्रक्रिया समस्त प्रकृति में चलती है । पानी का वाष्पित होकर बादलों में परिवर्तित होना तथा सघन होकर पानी के रूप में बरसना प्रकृति की एक अनिवार्य प्रक्रिया है । यही पानी नदी, नालों के माध्यम से जीव-जन्तुओं एवं वनस्पतियों के शरीर में पहुँचता है । शरीर के तत्वों से मिलकर रक्त, जीवनी-शक्ति, स्थूल अंशों से संयुक्त होकर मांस-मज्जा एवं हड्डियों का निर्माण करता है। वनस्पतियों में घुल-मिलकर वह उसका ही अंश बन जाता है । जीवों के मरने पर उसके स्थूल आवरण, जल एवं सड़-गल कर पुनः सूक्ष्मावस्था में पहुँच जाते हैं । व्यक्त से अव्यक्त और अव्यक्त से व्यक्त अवस्था में ऊर्जा की रूपान्तरण प्रक्रिया में समस्त दृष्टि का व्यापार चल रहा है । परिवर्तन की यह प्रक्रिया पदार्थ के असंख्यों परमाणुओं के परस्पर संयोग एवं वियोग के कारण ही हो पाती है । इन परमाणुओं की गतिशीलता के कारण ही स्वरूप में परिवर्तन होता है ।

अनेकों रासायनिक जटिल प्रक्रियाओं से गुजरते हुए यह शक्ति वनस्पतियों एवं जीव-जन्तुओं के स्थूल कलेवर के रूप में प्रस्फुटित होती है। यन्त्रों, कल-कारखानों की दानवी-शक्ति भी उस महाशक्ति का ही भौतिक रूप है । विशिष्ट प्रक्रियाओं में आकर एक शक्ति अनेक गुणों वाली शक्तियों में रूपान्तरित हो जाती है । प्रकाश, ताप, विद्युत, चुम्बकत्व, गुरुत्वाकर्षण, घर्षण, दबाव उसके ही विविध रूप हैं । नवीन वैज्ञानिक शोधों द्वारा यह सिद्ध हुआ है कि गुरुत्वाकर्षण को छोड़कर सभी भौतिक शक्तियाँ मूल रूप से चुम्बकीय हैं। यह चुम्बकीय स्वरूप भी पदार्थ के परमाणुओं की गतिशीलता के कारण ही उत्पन्न होता है।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आइन्सटीन के सापेक्षवाद सिद्धान्त के अनुसार विविध सापेक्ष आधारों के कारण ही संसार का विभिन्न स्वरूप दिखायी पड़ता है । जड़-चेतन के बीच भेद भी सापेक्ष आधारों की विषमता के कारण है । यदि सम्पूर्ण प्रकृति एवं सभी जड़-चेतन को देखने का कोई एक निरपेक्ष आधार करतलगत हो जाए, तो संसार के वास्तविक स्वरूप का पता लग सकता है । सर्वत्र एक सत्ता, एक शक्ति का बोध तो निरपेक्ष सत्ता के अवलम्बन से ही सम्भव है । विविधता तो आधारों की भिन्नता के कारण दृष्टिगोचर होती है । संसार को समझने एवं सर्वत्र व्याप्त एक महाशक्ति की अनुभूति करने के लिए उन अपरिवर्तनीय नित्य चेतना का ही अवलम्बन लेना होगा ।

विज्ञान के बढ़ते हुए चरण अब उस केन्द्र बिन्दु पर पहुँच रहे हैं जहाँ से ऋषियों ने उद्घोष किया था ।

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ।

-ईशावास्योपनिषद्

इस समस्त जगत में जो कुछ भी जड़ और चेतन दृष्टिगोचर हो रहे हैं वे सभी ईश्वर में ही व्याप्त हैं ।

परमाणु के विविध कणों से विनिर्मित होने के सिद्धान्त से आगे बढ़कर विद्युत तरंगों के रूप में प्रतिपादित होने से पदार्थों की भिन्नता का सिद्धान्त भी खण्डित हो रहा है । नवीनतम शोधों के अनुसार विद्युत-तरंगों की विविध गति के कारण ही एक पदार्थ के परमाणु से दूसरे पदार्थ के परमाणु में अन्तर होता है, यह अन्तर ही पदार्थों की भिन्नता के रूप में दिखायी पड़ता है ।

सैद्धान्तिक दृष्टि से दर्शन एवं विज्ञान सृष्टि में संव्याप्त एक महती चेतना की ही पुष्टि करते हैं । इसकी अनुभूति के लिए तो आत्म-विज्ञान का ही अवलम्बन लेना होगा । साधना सोपानों पर चढ़ते हुए इस सत्य की अनुभूति की जाती है । सत्य के दिग्दर्शन के साथ ही उस महाशक्ति के सान्निध्य से मिलने वाले दिव्य अनुदानों का भी रसास्वादन किया जा सकता है । वह इतनी बड़ी उपलब्धि है जिसे प्राप्त करने के उपरान्त न कुछ जानना शेष रह जाता है और न ही कुछ पाने की कामना रह जाती है । इस एकत्व की अनुभूति ही जीवन का परम लक्ष्य है ।

यहाँ कुछ भी असम्भव नहीं

सृष्टि की संचालन सत्ता, सर्वसमर्थ सत्ता है । उसके लिए राई का पहाड़ बना देना और पर्वत को राई में परिवर्तित कर देना कोई कठिन नहीं यह उतना ही सरल है जितना साधारण रात-दिन का होना । यदि उससे तादात्म्य स्थापित किया जा सके, तो उससे जुड़ी अगणित पहेलियों में से पर्दा उठ सकता है, जो आये दिन मानवी बुद्धि को चकित और चमत्कृत करती रहती हैं ।

घटना अमेरिका की है । एडविन रोविन्सन एक ट्रक डाइवर था । वह प्रायः लम्बी दूरी की यात्रा करता, माल लाया और ले जाया करता था । जब उसकी आयु ५३ वर्ष की हुई, तो एक दिन एक सड़क दुर्घटना में उसकी आँखें चली गईं और वह अंधा हो गया । कान भी लगभग बहरे हो गये थे । विशेषज्ञों ने उसकी जाँच करने के उपरान्त एक स्वर से यही कहा कि अब रोबिन्सन इस दुनिया को नहीं देख सकेगा । कान के बारे में भी उनके ऐसे ही विचार थे । अतीन्द्रिय चिकित्सकों ने भी उसे असाध्य घोषित कर दिया था । अब रोबिन्सन अंधों की भाँति छड़ी के सहारे चलता और श्रवण-यंत्र की सहायता से सुनता था । जिंदगी उसे भारभूत प्रतीत होने लगी थी, किन्तु फिर भी नियति का सुनिश्चित निर्धारण समझ कर वह उसे ज्यों-त्यों करके खींच रहा था । उसमें न पहले जैसा उत्साह रहा, न उमंग । जीवन नीरस और ऊबाऊ लगने लगा था । कई बार वह अपनी विकलांगता से इतना खिन्न हो जाता, जीवन त्यागने की बात सोचने लगता । ऐसे हर अवसर पर उसे एक ऐसी शक्ति का आभास होता, जो उसे आंतरिक संबल प्रदान करती जान पड़ती । वह पुनः नये जोश से जीवन आरम्भ करता, किन्तु कुछ ही दिनों में फिर वही अवसाद घेर लेता । इसी आशा-निराशा के बीच वह जीता चला जा रहा था । नौ वर्ष इसी तरह गुजर गये ।

सन् १९८० की बरसात को एक दिन रोबिन्सन की मुर्गी का चूजा उसके फालमाउथ, मैन स्थित मकान के गैराज के नजदीक दाने चुग रहा था । रोबिन्सन को इसका पता नहीं था । अतः वह अपने प्रिय चूजे का पता लगाने के लिए निकल पड़ा । हर दिन की तरह आज भी उसके साथ में एल्यूमिनियम की छड़ी थी और कानों में श्रवण यंत्र लगा हुआ था । अभी वह थोड़ी ही दूर सामने के वृक्ष के निकट गया था कि दुर्भाग्य ने फिर उस पर आघात किया । पेड़ पर अकस्मात् बिजली गिर पड़ी और रोबिन्सन बेहोश हो गया । बीस मिनट पश्चात् जब उसकी चेतना लौटी, तो वह आश्चर्यचकित हो रहा था । उसका अंधत्व गायब हो चुका था । अब वह अच्छी प्रकार देख सकता था । उसका श्रवण उपकरण जल कर पूरी तरह नष्ट हो चुका था, किन्तु इसके बिना भी सम्प्रति रोबिन्सन अच्छी तरह सुन सकता था ।

उसका पूरी तरह परीक्षण करने के पश्चात् मूर्धन्य नेत्र विशेषज्ञ डॉ० अल्बर्ट मोल्टन का उद्गार था कि वह नहीं जानता कि इसकी व्याख्या कैसे की जाय, पर यह सत्य है कि रोबिन्सन अब अंधा नहीं रहा। वह सब कुछ देख सकता था। उनने इसे चमत्कार की संज्ञा देते हुए कहा कि ऐसे प्रकरण स्थूल बुद्धि की पहुँच से परे के विषय हैं, अस्तु इनकी वैज्ञानिक व्याख्या संभव नहीं। जो संभव है, वह इतना ही कि प्रकृति के विभिन्न रहस्यमय प्रसंगों में से एक इसे मान लिया जाए और यह दुराग्रह छोड़ दिया जाए कि यह किस भाँति सम्पन्न हुआ, क्योंकि सूक्ष्म का अनुसंधान करने और गहरी पैठ रखने वाली बुद्धि का विकास हुए बिना ऐसी गुत्थियों का समाधान शक्य एवं सरल नहीं ।

घटना के एक माह बाद एक और महत्वपूर्ण परिवर्तन परिलक्षित हुआ । रोबिन्सन जो कि विगत ३५ वर्षों से गंजा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

था, उसके सिर पर घने बाल उग आये । चिकित्सकों के अनुसार उसका गंजापन आनुवंशिक था, अतः बिना किसी उपचार के इतने लम्बे अंतराल बाद उनका पुनः उग आना चमत्कारिक ही कहा जाएगा । एक अन्य आश्चर्यजनक बात घटना के दिन जो देखने में आयी, वह यह कि पेड़ और श्रवण यंत्र दोनों ही जलकर बरबाद हो गये, पर रोबिन्सन इससे सर्वथा अछूता बना रहा ।

इन सब तथ्यों को देखने के उपरांत यही कहा जा सकता है कि उस "अघटन-घटना पटीयसी" के लिए असम्भव को सम्भव कर दिखाना कठिन नहीं । मुश्किल तो मनुष्य के लिए हो सकता है, पर जिसने इतनी विलक्षण सृष्टि गढ़ी और खड़ी की है, भला उस सत्ता के लिए यह सब दुस्साध्य क्यों कर होना चाहिए ? हम यदि उससे सघन सम्पर्क कर सकें, तो न सिर्फ अपने अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति कर सकेंगे, वरन् उन गुत्थियों को सुलझाने में भी समर्थ हो सकेंगे, जो अनसुलझी बनी हुई हैं व परिष्कृत चेतना की माँग करती हैं ।

तनिक उस पर विश्वास तो रखें

जीवन में कई बार ऐसे घटनाक्रम घटित होते हैं, जिन्हें देखते हुए सहसा मुँह से निकल पड़ता है- "मारने वाले से बचाने वाला बड़ा होता है ।" उक्त प्रसंगों में अनेक बार ऐसे अवसर उपस्थित होते हैं, जिनमें व्यक्ति को मर जाना चाहिए था, पर हर बार वह बड़े अलौकिक ढंग से बच निकलता और बुद्धि को इसी निर्णय पर पहुँचने के लिए बाधित करता है कि जब परमसत्ता कृपालु हो, तो भला उसे कौन मार सकता है ?

घटना १९५० की है । कोरिया युद्ध में प्रतिरोध के लिए अमरीकी वायुसेना की सहायता माँगी गई, जिसके अंतर्गत अनेक विमान कोरिया भेजे गये । इन विमान चालकों में एक नौजवान चालक भी था उसका नाम मैथुसन था । वह अभी-अभी वायुसेना में लेफ्टिनेण्ट के पद पर नियुक्त हुआ था, अतः युद्ध का उसे कोई विशेष अनुभव नहीं था, पर उसमें साहस की कमी नहीं थी ।

अन्य विमानों के साथ वह भी नित्यप्रति कोरिया के ऊपर गश्त लगाया करता । इसी क्रम में एक दिन वह चार सहयोगी विमानों के साथ उड़ा चला जा रहा था । मैथुसन का विमान शेष चारों से आगे चल रहा था । अभी वह जा ही रहा था कि अचानक उसकी दृष्टि च्यांग योंग हवाई अड्डे पर गई । वहाँ दो लड़ाकू विमान उड़ने की तैयारी में थे । उन्हें देखकर उसे यह समझते देर न लगी कि वे उन पर आक्रमण के लिए ही उद्यत हो रहे हैं । तुरंत उसके मन में विचार कौंधा-क्यों न उन्हें उड़ने से पूर्व ही नष्ट कर दिया जाय । यह विचार आते ही वह उसे क्रियान्वित करने के लिए ताने-बाने बुनने लगा, किंतु इस मध्य उससे एक चूक हो गई । वह यह भूल बैठा कि स्वयं भी शत्रु-सीमा के अंदर है और विपक्षी उसके लिए घात लगाये बैठे होंगे । यही असावधानी विपत्ति का कारण बनी ।

अभी वह कुछ कर पाता, इसके पूर्व ही उसके विमान को एक तीव्र झटका लगा । मैथुसन अविलंब समझ गया कि वह शत्रु के चंगुल में फँस चुका है और झटका विरोधी पक्ष द्वारा दागे गये किसी गोले का परिणाम है । उसका अनुमान सही निकला । विमान उक्त झटके के साथ डगमगाने लगा । डगमगाहट बंद हुई, तो उसने देखा विमान के दो टुकड़े हो गये हैं । उसका पिछला हिस्सा तेजी से नीचे की ओर गिरता चला जा रहा है, जबकि अगले भाग में वह अब भी सवार था और उड़ रहा था ।

दृश्य देखकर पहले तो घबरा उठा, पर तुरंत ही स्वयं को सम्हाला और परिस्थिति के अनुकूल किया । काकपिट से नीचे झाँक कर देखा । शत्रु खेमे में काफी सक्रियता थी । वह अब भी कुछ करना चाहता था, इसी निमित्त हवाई अड्डे के ऊपर चक्कर काट रहा था, पर इस असहाय स्थिति में क्या करे ? कुछ सोच नहीं पा रहा था तभी एक गोला कैबिन की दीवार से टकराया । वह एक ओर सरक गया । कुछ सँभला ही था कि दूसरे गोले ने जहाज के डैने के साथ केबिन के दो टुकड़े हो गये । इसी बीच तीसरे गोले के प्रहार ने कक्ष को चूर्ण-विचूर्ण कर दिया ।

मैथुसन द्रुतगति से नीचे गिरने लगा । उनका पैराशूट तोप के व्याघातों से जर्जर हो गया था, अतः प्राणरक्षा के लिए उसका भी उपयोग नहीं कर सका । जब वह जमीन से टकराया, तो कुछ समय के लिए संज्ञाशून्य स्थिति में पड़ा रहा, किंतु जल्द ही उसे होश आ गया । भागने के लिए उठा, तो उस पर गोलियों की बौछार होने लगी । मैथुसन सामने पड़े टूटे विमान के पीछे छिप गया । शत्रु उसकी ओर बढ़े आ रहे थे । मृत्यु एक बार फिर उसके सामने खड़ी थी । वह लगभग हताश हो चुका था, तभी न जाने कैसे नष्ट विमान में अचानक विस्फोट हुआ । आग का गोला देख विपक्षी पीछे भागे । इसी समय मैथुसन को भी भागने का मौका मिल गया ।

वह बेतहाशा भागा चला जा रहा था, पर शत्रु सैनिक भी उसका लगातार पीछा कर रहे थे । अंततः बचने का कोई उपाय न देख, वह एक जंगली दलदल में घुस गया और पीठ के बल लेटा रहा । मौत फिर सिर के ऊपर मँडराने लगी । गोलियाँ शरीर के कुछ ही ऊपर से गुजर रही थीं और कभी भी उसमें धँस कर उसी प्राणहीन बना सकती थीं ।

अकस्मात् सब कुछ शांत हो गया । पहले तो मैथुसन ने इसे शत्रु दल की कोई चाल समझी और स्वयं भी निश्चेष्ट पड़ा रहा । जब देर तक कोई आहट न हुई, तो वह उठ बैठा और शत्रुओं की टोह लेने लगा । कुछ ही देर में उसे सिर के ऊपर एक अमरीकी हेलीकोप्टर चक्कर काटता नजर आया । मैथुसन खुशी से झूम उठा । जल्दी से दलदल से बाहर निकला और हाथ हिला-हिला

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर उसे इशारा करने लगा । हेलीकोप्टर तुरंत नीचे उतरा, मैथुसन उसमें बैठा और फिर उसे सुरक्षित मौत के मुँह से निकाल ले गया ।

बाद में जब वह साथियों से मिला, तो वे यही कहते पाये गये कि ईश्वरीय अनुग्रह के बिना मैथुसन का बच पाना असम्भव था । व्यक्ति जब अनेक प्रकार मौत का सामना करके सुरक्षित बच गया हो, तो इसे उसकी अहैतुकी कृपा के अतिरिक्त और कहा क्या कहा जाय ।

कण-कण में संव्याप्त चेतन सत्ता

भारतीय-संस्कृति की यह प्राचीन अवधारणा रही है कि कण-कण में महत् चेतना समायी हुई है । जड़ से लेकर चेतनपर्यंत सर्वत्र इसी का क्रीड़ा-कल्लोल है । सृष्टि की मूल सत्ता यही है । इसी से संसार के समस्त क्रिया-व्यापार संपन्न होते हैं । भौतिक-अभौतिक शक्तियों के रूप में प्रकारांतर से इसे ही हम देखते हैं । जीवधारियों का यही जीवन-प्राण है । यदा-कदा यही महत्प्राण न जाने क्यों जड़ पदार्थों में भी जीवंत जैसी हलचलें शुरू करते और लोगों को अचंभे में डालते दिखाई पड़ता है ।

बैरोन फ्रेडरिक वान ह्यूजेल ने अपने ग्रन्थ 'दि मिस्टिकल एलीमेण्ट ऑफ रिलिजन' में एक अनूठा विवरण प्रस्तुत किया है । बात उन दिनों की है, जब १८७० में सम्राट विक्टर एमेन्युएल द्वितीय रोम एवं पैपल राज्यों पर कब्जा कर इटली का क्षेत्र-विस्तार करने में लगे थे । उन्हीं दिनों सोरियेनो सैलेब्रो (दक्षिण इटली) में स्थित सेण्ट डोमिनिक गिरजाघर में एक अलौकिक घटना घटित हुई । १५ सितम्बर १८७० का दिन था । संत डोमिनिक की जयंती मनाने की तैयारी चल रही थी । मध्यान्ह हो चुका था । चर्च में संत की मूर्ति ,पूजा के लिए अनावृत की गई । तभी यह देखकर उपस्थितजन चौंक पड़े कि प्रतिमा आगे-पीछे जीवित मनुष्य की तरह टहलने लगी है । शोरगुल सुनकर चर्च के दूसरे लोग भी वहाँ आ पहुँचे । विग्रह का चलना जारी रहा । वह आगे बढ़ती, फिर पीछे लौट आती। दूसरी बार दायीं ओर चलती पुनः बायीं ओर मुड़ जाती तत्पश्चात् फिर आगे-पीछे, उसके बाद दायें-बायें । इस प्रकार संत-प्रतिमा एक 'क्रॉस' का निर्माण कर रही थी । गति लगभग एक घंटे तक होती रही । इस गति के दौरान मूर्ति अपने आधार से बिल्कुल विच्छिन्न बनी रही । इस मध्य डोमिनिक का दाहिना हाथ उपदेश देते संत की तरह बराबर ऊपर-नीचे आता-जाता रहा, जिस तरह विषयवस्तु बदलने से क्षण-क्षण में वक्ताओं के भाव परिवर्तित होते रहते हैं । थोड़े-थोड़े अंतराल में ललाट पर बल पड़ जाते और आँखें ऐसी प्रतीत होतीं, मानो उपस्थित जनसमुदाय पर मृदु भर्त्सना बरसा रही हों । दूसरे क्षण वह घूमकर पार्श्व में स्थित लेडी रोजरी के विग्रह पर स्थिर हो जातीं, जैसे वे कुछ निवेदन कर रही हों । तीव्र भावनाओं के आवेग में वक्तृता के समय वक्ताओं के होंठ जिस प्रकार फड़कते हैं, संत-मूर्ति भी कुछ वैसा ही दृश्य उपस्थित कर रही थी ।

उल्लेखनीय है कि प्रतिमा की विलक्षण गति को जिस किसी ने भी रोकने का प्रयास किया, वे उसमें सफल तो न हो सके, उल्टे किसी अज्ञात शक्ति के वशीभूत हो वे भी वैसा ही उपक्रम करने लगे । लगभग एक घंटे पश्चात् सब कुछ सामान्य हो गया । दूसरे दिन यह बात सम्पूर्ण मिलेटो में आग की तरह फैल गई । वहाँ के विशप ने एक आयोग का गठन कर इसकी जाँच का आदेश दिया । फरवरी १८७१ में जब पड़ताल-कार्य पूरा हुआ, तो आयोग ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए कहा कि १५ सितम्बर १८७० के दिन डोमेनिक चर्च में जो कुछ घटा, वह सर्वथा अलौकिक और अद्भुत था । उसकी सच्चाई पर संदेह नहीं किया जा सकता ।

एक और इसी प्रकार की घटना सैक्रामेण्टो, अमेरिका की है । इसकी चर्चा रेमण्ड लेमोण्ट ब्राउन ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'फैण्टम्स ऑफ दि थियेटर' में विस्तारपूर्वक की है । प्रसंग फ्रांसीसी क्रांति के बाद का है । सन् १८५७ में रिचर्ड टर्नर ने सैक्रामेण्टो में 'टर्नर्स वैक्सवर्क थियेटर' नाम से एक रंगशाला की स्थापना की । थियेटर एक मुख्य आकर्षण मंद प्रकाशित गिलोटिन दृश्य के साथ उन फ्रांसीसी नर-नारियों के पुतले थे, जिन्हें फ्रांसीसी-क्रांति के दौरान फाँसी दे दी गई थी । इनमें प्रमुख थे-एक अभिजात वर्गीय दंपत्ति, एक युवती एवं काले वस्त्राभरण में सज्जित मोनजियर निकोडिम लियोपोल्ड लेपिड नामक एक टैक्स कलक्टर । इन सबके मोम के पुतले पीठिका में प्रतिष्ठित थे ।

थियेटर के शुरू हुए अभी एक सप्ताह भी नहीं हुआ था । एक प्रातः पहरेदार ने जब उसका दरवाजा खोला, तो वह यह देखकर चौंक पड़ा कि लियोपोल्ड लेपिड की मोम-मूर्ति पीठिका से पृथक होकर दरवाजे के निकट फर्श पर खड़ी है । उसका सिर धड़ से अलग होकर वहीं पास में पड़ा था । पहरेदार एजरा-पोटर ने इसकी सूचना टर्नर को दी । टर्नर ने इसके बाद रात्रि पहरा और कड़ा कर दिया, साथ ही द्वार का ताला भी बदल कर मजबूत लगा दिया । इतने पर भी घटना रुकी नहीं । प्रातः प्रत्येक सुबह कमरा खोलने पर कलक्टर का पुतला आधार से नीचे फर्श पर मिलता । जब यह नित्यप्रति होने लगा, तो टर्नर और पोटर ने थियेटर में रात्रि बिताकर रहस्य जानने का निश्चय किया । नियत समय पर दोनों रंगशाला पहुँचे, पर दुर्भाग्यवश उन्हें नींद आ गई और मामला समझ पाने में वे असफल रहे । सवेरे जब उनकी आँखें खुली, तो पुतला आज भी अपने आसन से नीचे पाया गया । दूसरी रात दोनों ने जागते हुए बिताने की योजना बनायी ।

रात्रि के करीब ढाई बजे होंगे । दोनों ने देखा कि मोनजियर की मूर्ति हिलने-डुलने लगी है । पैरों में गति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

शुरू हुई और धीरे-धीरे कर वह पीठिका से नीचे उतर आयी । कुछ दूर बढ़ने के पश्चात् स्थिर हो गई । अब हाथ हिलने लगे और इसी के साथ होंठों के कंपन प्रारम्भ हुए । एक मानवी आवाज से कमरे की निस्तब्धता भंग हो गई । मूर्ति फ्रांसीसी भाषा में बोल रही थी- " शांति की नींद यहाँ सो पाना किसी के लिए सम्भव नहीं । यदि तुम्हें अपनी जान प्यारी है, तो फिर कभी निशाकाल में इधर मत आना, अन्यथा पछताओगे ।"

इतना कहकर आकृति शांत हो गई । दूसरे दिन जब इस रात्रि घटना की जानकारी समाचार पत्रों में छपी तो एक पत्रकार टर्नर के पास आया और थियेटर में रात बिताने का आग्रह करने लगा । बहुत समझाने पर भी न माना । अंततः अँधेरा घिरा, तो उस व्यक्ति को रंगशाला में पहुँचा दिया गया । बाहर से दरवाजा बन्द कर चौकीदार वहीं बाहर बना रहा ।

दूसरा पहर बीतने जा रहा था । ठीक इसी समय कमरे से चीखें आने लगीं और दरवाजे पर लगातार आघात होने लगे । प्रहरी ने ताला खोला, तो पत्रकार चीख मार कर बेहोश हो गया । बाद में संपूर्ण वृतांत सुनाते हुए पत्रकार ने बताया था- "करीब दो घंटे तक सब कुछ सामान्य रहा । इसके उपरांत अचानक कलक्टर की आकृति में कंपन हुई । पहले हाथ हिला, फिर गर्दन मुड़ी । अब वह अपने चबूतरे पर चलने लगी, उससे नीचे उतरी और मेरी ओर मुड़ी । मैं उठ खड़ा हुआ । मोम आकृति अब भी मेरी ओर बढ़ रही थी । मैं भय से काँप उठा और दरवाजा पीटने लगा । इस समय तक वह मेरे काफी निकट आ चुकी थी, इतना अधिक कि उसने अपने हाथों का घेरा मेरी गर्दन के गिर्द डाल दिया । मेरे प्राण जुबान तक आ गये । मैं चीत्कार कर उठा । तभी किवाड़ खुले और इसके बाद बेहोश हो गया ।"

इन्हीं घटनाओं के तारतम्य में हर्बर्ट थर्स्टन ने अपनी पुस्तक 'ब्यूरींग एण्ड अदर एपेरिशन्स' में लिखा है कि माल्टा द्वीप के वालेटा शहर के एक स्कूल में छात्रों ने एक बार पिकनिक के उपरांत शहर के उत्तर पश्चिम में स्थित मरियम की एक भव्य प्रतिमा के दर्शन का कार्यक्रम बनाया । मेलाइहा ग्राम की इस मूर्ति के बारे में जनश्रुति थी कि वह अद्‌भुत चेष्टाएँ करती है, विशिष्ट भंगिमा बनाकर दर्शकों को आशीर्वाद देती है । छात्र जब वहाँ पहुँचे, तो कुछ विद्यार्थियों ने फादर जॉन मैकहेल के साथ 'ग्रोटा डेला मैडोना' की उस प्रसिद्ध गुफा में प्रवेश किया, जहाँ मरियम का विख्यात विग्रह प्रतिष्ठित था । संपूर्ण विवरण का उल्लेख करते हुए फादर मैकहेल ने अपनी डायरी में लिखा है कि जैसे ही वे लोग विशाल कन्दरा के द्वार पर पहुँचे, दूर से ही जीवंत मूर्ति ने उन लोगों को एक प्रकार से मोहित कर लिया । सभी गुफा के अंदर गये, तो ज्ञात हुआ कि श्वेत पाषाण से विनिर्मित वह एक प्राचीन प्रतिमा थी । उसका बायाँ हाथ एक सुन्दर शिशु को थामे हुए था, जबकि दाहिना स्वतंत्र था । फादर मैकहेल ने मोमबत्ती की रोशनी में मूर्ति का गहराई से निरीक्षण किया । वह एक बड़े प्रस्तर खण्ड से बनी थी और बिल्कुल संधि रहित थी । अभी वह उसे निहार ही रहे थे कि अकस्मात् उँगलियों में हलचल हुई । वे सतर्क हो गये । कनिष्ठ उँगली पीछे की ओर मुड़ी । कुछ क्षण पश्चात् अनामिका और मध्यमा ने भी उसका अनुसरण किया, तत्पश्चात् तर्जनी की बारी आयी और सबसे अंत में अँगूठे ने भी उनका साथ दिया । इस प्रकार आरम्भ में जो उँगलियाँ सामने फैली हुई थीं, अब उनकी दिशा विपरीत हो गई थी । इसके बाद संपूर्ण हाथ ऊपर की ओर उठा मानो मरियम आगन्तुकों को आशीर्वाद प्रदान कर रही हो । कुछ पल तक उक्त मुद्रा के रहने के उपरांत हाथ पुनः नीचे आ गया एवं उँगलियाँ पूर्ववत् हो गईं ।

इसे महत् प्राण का चमत्कार कहें या कौतुक, उसके रहस्य को भलीभाँति समझने के लिए उस सत्ता को संपूर्ण रूप से जानना आवश्यक है, तभी यह विदित हो सकेगा कि जनसामान्य में कौतूहल पैदा करने वाला इन अलौकिकताओं के पीछे उसका प्रयोजन क्या है ।

साँस-साँस में, रोम-रोम में बसते हैं भगवान

कठोपनिषद् की भृगु बल्ली में यम और नचिकेता का संवाद आता है । यम जानना चाहते हैं कि राजकुमार की जिज्ञासा कहीं कामनावश तो नहीं है । किन्तु जो आकांक्षा नचिकेता ने व्यक्त की थी वह सचमुच उस ब्रह्मविद्या का अधिकारी सिद्ध करने में समर्थ हुई । समर्थगुरु यमाचार्य से प्राप्त करने योग्य एक ही वस्तु थी, उसके लिए । नचिकेता ने कहा-

अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात् ।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद ।।

अर्थात्- " हे भगवान ! जो धर्म-अधर्म, कृत-अकृत और कार्य कारण के बंधन से रहित है, भूत, भविष्य और वर्तमान की काल सीमाएँ जिसे बाँधने में समर्थ नहीं हैं, उस ब्रह्म-तत्व का उपदेश मुझे दीजिए ।"

ईश्वर-दर्शन की आकांक्षा मनुष्य की सम्पूर्ण कामनाओं से बढ़कर है। इसमें कुछ भी संदेह नहीं है, किन्तु यह आकांक्षा इतनी प्रबल हो कि उसके समक्ष सांसारिक प्रलोभनों का प्रभाव मिट जाय। सच्ची जिज्ञासा से ही भगवान मिलते हैं। इस आंतरिक भूख, आत्म-तत्त्व की प्राप्ति की प्रबल आकांक्षा की परीक्षा यमाचार्य ने इस तरह की-

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं
वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च ।
महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि
कामानां त्वा कामभाजं करोमि ।।

"हे नचिकेता ! धन-वैभव और चिर-काल तक जीवन आदि जो कुछ चाहो, इस आत्म-ज्ञान सम्बन्धी वर

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के बदले में माँग लो । तुम इस भूलोक में महान् ऐश्वर्यशाली बनो, मैं तुम्हें सम्पूर्ण भोगों को भोगने में समर्थ बनाये देता हूँ ।''

यह परीक्षा ईश्वरनिष्ठ के समक्ष आती है । पग-पग पर प्रलोभन और आकर्षण अपनी ओर खींचते हैं । मनुष्य काम-वासना की ओर, धन-वैभव और वस्तु साधनों के उपभोग के सुख प्राप्त करने के लोभ में अपने जीवन-लक्ष्य से गिर जाता है । ईश्वर प्राप्ति की आकांक्षा प्रबल न हुई तो सांसारिक प्रलोभनों के आगे मनुष्य एक पल भी टिक नहीं सकेगा । हमारी ब्रह्म-दर्शन की आकांक्षा इतनी प्रबल हो कि यमाचार्य के रूप में मौत की छाया हर क्षण आँखों के आगे घूमती रहे और जब भी कोई सांसारिक वासना जाग्रत हो सके उस मृत्यु से हमारे अन्तःकरण का नचिकेता यह कह सके-''यत्सत्पश्यसि तद्वद'' हे मृत्यु! जिससे देखती हो, मुझे उसका ही उपदेश दो'' अर्थात् मृत्यु को ध्यान में रखकर उस परम अविनाशी तत्व को ही प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहें ।

क्षणिक सुख के लिये अपने जीवन लक्ष्य को भूल जाना बुद्धिमानी नहीं मान सकते । सांसारिक कामनाएँ अमृत तत्व की प्राप्ति नहीं करा सकतीं । उनको प्राप्त कर लेना किसी प्रकार श्रेयस्कर हो नहीं सकता । मनुष्य अपनी मूल सत्ता से बिछुड़ जाने के कारण दुःखी है । चिरन्तन शान्ति के लिए उसी परमात्मा की ही शरण लेनी होगी ।

शरीर के भीतर ही प्रकाश स्वरूप परमात्मा अवस्थित है । सत्य-भाषण, तप, ब्रह्मचर्य और समाधि रूप से उसकी प्राप्ति सम्भव है । सब ओर के दोषों से विमुक्त हो कर ही मनुष्य उसे प्राप्त कर सकता है । यह धारणा गहराई तक हमारे हृदय में प्रविष्ट हो । आकांक्षा जिस क्षण शिथिल हो जाती है उसी समय वासनाओं के रूपों में आगत मनुष्य को परेशान करने लगते हैं । बाधक को बलपूर्वक शक्ति से किया जाता है । लोहे को काटने के लिए लोहे की ही छैनी बनानी पड़ती है । कुटिल विचारों और कुत्सित कर्मों को मार भगाने के लिए प्रबल-आकांक्षा की गदा हर समय तैयार रहनी चाहिए ।

भगवान कृष्ण का आदेश है-

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥

अर्थात्- इन्द्रियों के विषयों को वश में रखकर, सर्वत्र समत्व का पालन करते हुए जो दृढ़ अचर और अचिन्त्य, सर्वव्यापी, अवर्णनीय और अविनाशी स्वरूप की उपासना करते हैं, वे सब प्राणियों के हित में लगे हुए मुझे ही पाते हैं। यहाँ ईश्वर के प्रति निष्ठा और परोपकार का समन्वय किया गया। निष्काम-कर्म का यही स्वरूप है कि मनुष्य उस परमात्मा पर अटल विश्वास रखकर कामनारहित कर्म करे।

कर्म करते हुए मनुष्य से अज्ञान-वश त्रुटियाँ हो सकती हैं, किन्तु निष्काम-भावना के कारण उसके सात्विक लक्ष्य पर किसी तरह का आक्षेप नहीं आता । लक्ष्य की स्थिरता ईश्वर के प्रति अनन्य भाव रखने से आती है । दोषों, त्रुटियों और भूलों से बचाव करना भी ईश्वरीय-ज्ञान के प्रकाश से ही सम्भव है ।

सांसारिक आघातों से विकल होकर जब मनुष्य परमात्मा की शरणागति प्राप्त करता है, तब हृदय की भावनाओं में परमात्मा की प्रेरणाएँ और उसके निर्देश प्राप्त होने लगते हैं । समर्पण या शरणागति का भाव जितना सजीव होगा, परमात्मा की अनुभूति भी उतनी ही प्रखर होगी ।

कोतवाल के साथ रहने पर जिस तरह चोरों का भय नहीं सताता, उसी प्रकार सांसारिक भव-बंधनों से वही निवृत्त रह सकता है जिसके हृदय में परमात्मा का प्रकाश ओत-प्रोत हो रहा है वह ब्रह्म ही संपूर्ण शक्तियों का स्वामी सारी सृष्टि का नियामक और कारण स्वरूप है ।

आत्मा चेतन पदार्थ तो है, किन्तु वह सत्ता मात्र होने के कारण स्वतः क्रियाशील नहीं है । किन्तु आत्म-ज्ञान से मनुष्य अपने आपको परमात्मा में मिला देना सीख जाता है । ईश्वर की सत्ता में अपने आपको विलीन कर देने से मनुष्य को ईश्वरीय शक्तियों का अनुभव होने लगता है । उस समय उसके सारे विकार मिट जाते हैं और अनिवर्चनीय आनन्द की सुखानुभूति होने लगती है । जो कुछ भी शक्ति सामर्थ्य और सम्पन्नता है वह परमात्मा में है । उसके पास बैठने के कारण ही यह श्रेष्ठताएँ मनुष्य में भी आ जाती हैं । इस नियम को भूल जाने के कारण ही क्षुद्र बन जाता है । परमात्मा की याद बार-बार न करते रहें, उसे अपने जीवन का अंग न बना लें तो जड़ता आ जाना सम्भव है । यही उपासना की पृष्ठभूमि भी है ।

संसार में रहकर मनुष्य तरह-तरह की कामनाएँ किया करता है । जिधर उसे सौन्दर्य सुख और संतोष दिखाई देता है, उधर ही वह चल पड़ता है, किन्तु विवेक की कसौटी यह है कि जो कुछ सत्य है, वही ग्रहणीय है । जिससे अन्तःकरण की मलीनताएँ मिट जाती हों वही अभीष्ट है । वह तत्व आत्म-तत्व ही हो सकता है । विचार के द्वारा इस आवश्यकता को समझ सकते हैं, एक क्षीण-सी जिज्ञासा भी उठती है इसके लिए, किन्तु सुखों की प्रतिद्वन्द्विता में आत्म-ज्ञान की आकांक्षा मूर्च्छित रह जाती है । किसी एक लक्ष्य को प्रधान बनाये बिना काम चलता नहीं । इसलिए यह बात भली प्रकार विचार कर लेने की है कि हमारा लक्ष्य क्या है ?

ईश्वर को प्राप्त करना और अपने अन्तःकरण में ईश्वरीय प्रकाश जाग्रत करना ही मनुष्य जीवन का ध्येय है । इस मार्ग में विघ्न-बाधाएँ आती हैं, किन्तु जिनके विचारों में निष्ठा होती है, जो प्रबल जिज्ञासा रखते हैं और जिनकी आकांक्षाएँ इतनी बलवान होती हैं कि दुनिया की कठिनाइयों से सहज ही मुकाबला कर सकें, वे अपना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन ध्येय पूरा कर लेते हैं । परमात्मा बहुत दूर नहीं है, वह हमारे समीप हमारी साँस में समाया हुआ है । उसे प्राप्त किया जा सकता है, पर इसके लिए साधक की आकांक्षा, अत्यन्त प्रबल होनी चाहिए ।

सौन्दर्य बोध

सत्यं-शिवं के साथ परमात्मा की तीसरी विशेषता बतायी गई है सुन्दरम् की । वह सुन्दरता ही उसे प्रिय है । उसका अंशी होने के नाते जीवात्मा भी हर सुन्दर वस्तु को देखकर आकृष्ट होती है । प्रकृति के मनोरम दृश्य, हरियाली, पुष्पों से लदे उद्यान को देखकर किसका मन नहीं पुलकित होता है । सुन्दर पुरुष, स्त्रियों में भी अपना एक विशेष आकर्षण होता है । जिनकी ओर हर कोई सहज ही आकर्षित हो जाता है । सौन्दर्य की ओर आकर्षण अन्तरतम् की अभिव्यक्ति है । जो शाश्वत सौन्दर्य की खोज करती है तथा उसे प्राप्त करने की सतत् प्रेरणा देती है ।

शास्त्रों में वर्णन है कि बाह्य स्वरूप की दृष्टि से प्रतीत होने वाला संसार मिथ्या है । अर्थात् जिन बाहरी वस्तुओं में सौन्दर्य दिखाई पड़ता है यह एक भ्रम मात्र है । फिर ऐसा बोध क्यों होता है ? इसका उत्तर ऋषि देते हैं कि अपना आपा ही आकर्षित होकर विविध वस्तुओं एवं संसार को सुन्दर बनाता है । सौन्दर्य का दिग्दर्शन इस आरोपण की प्रतिक्रिया मात्र है । जो जड़ तथा वस्तुओं को भी सौन्दर्य युक्त बना देता है तथ्य तो यह है कि शाश्वत सौन्दर्य का केन्द्र-बिन्दु अन्तरात्मा है । सौन्दर्य की धाराएँ यहीं से प्रस्फुटित होतीं तथा गोमुख से निकलने वाली गंगा की भाँति समस्त जड़-चेतन में सौन्दर्य का अभिसिंचन करती हैं । यह मूल स्रोत अपने प्रवाह को रोक दे, तो सर्वत्र कुरूपता ही दिखायी पड़ने लगे ।

प्रतिच्छाया पड़ने मात्र से संसार एवं सम्बन्धित वस्तुएँ इतनी सुन्दर, इतनी अनुपम प्रतीत हो सकती हैं तो उसका मूल स्वरूप कितना विलक्षण अनिर्वचनीय हो सकता है, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती । कल-कल करती तीव्र वेग से बहती गंगा को देखकर मन को तृप्ति एवं शान्ति मिलती है। गंगा इतनी शान्त एवं तृप्तिदायक हो सकती है तो उसका मूल स्रोत गोमुख का दृश्य कितना दिव्य, अनुपम एवं मनोरथ होगा इसकी तो मात्र कल्पना की जा सकती है अथवा वे अनुभव कर सकते हैं, जो गोमुख के निकट जाकर दिव्य दर्शन का लाभ उठा चुके हैं ।

सौन्दर्य की ओर आकर्षण स्वाभाविक है, पर देखा यह जाता है कि वस्तुओं एवं व्यक्तियों के प्रति यह आकर्षण कुछ ही समय तक रहता है और एक अवधि के बाद विकर्षण में बदल जाता है और फिर मन के रमण करने के लिए नये स्रोतों की खोज करता है । व्यक्तियों अथवा वस्तुओं के प्रति आकर्षण समय-समय पर बदलता रहता है । यह इस बात का परिचायक है कि अपने अन्तराल में ऐसी कोई सत्ता विद्यमान है जो शाश्वत सौन्दर्य को निरन्तर खोज करती रहती है । वस्तुओं एवं व्यक्तियों के क्षणिक आकर्षणों को ही वास्तविक मानकर आनन्द प्राप्त करना चाहती है किन्तु उसके इस प्रयास में निराशा एवं असफलता ही हाथ लगती है ।

सौन्दर्य का वास्तविक एवं शाश्वत स्रोत अपनी आत्मा है जिस दिन इस तथ्य का बोध हो जाता है उस दिन से बाह्य आकर्षण निस्सार जान पड़ते हैं । आत्मसत्ता के प्रकाश से ही वे भी सुन्दर प्रतीत हो रहे थे, वह ज्ञान होते ही दृष्टि बहिर्मुखी नहीं रहती, अन्तर्मुखी बन जाती है । आत्मदर्शन के लिए यात्रा अन्तर्जगत से आरम्भ होती है । इस अभिनव यात्रा में एक से बढ़कर एक मनोरम दृश्य अन्तदृष्टि से देखने को मिलते हैं जिनकी तुलना में बाह्य सौन्दर्य फीका एवं अवास्तविक जान पड़ता है । इस अविराम अन्तर्यात्रा की परिणति दिव्य दर्शन के रूप में होती है । आत्म-सत्ता के दर्शन से ही शाश्वत सौन्दर्य का बोध होता है । जिसकी रसानुभूति दिव्य, अनिर्वचनीय एवं इतनी सुखद होती है कि उसके सामने संसार के समस्त सुख उथले प्रतीत होते हैं ।

भगवान का सुबोध और सार्थक नाम सच्चिदानन्द

भगवान के यों अगणित नाम हैं । पर उनमें से सबसे सुबोध और सार्थक नाम है-सच्चिदानन्द । सत् का अर्थ है-टिकाऊ । न बदलने वाला-न समाप्त होने वाला ।

इस कसौटी पर केवल परब्रह्म ही खरा उतरता है । उसका नियम, अनुशासन, विधान एवं प्रयास सुस्थिर है । सृष्टि के मूल में वही है। परिवर्तनों का सूत्र-संचालक भी वही है । उसी के गर्भ में यह समूचा ब्रह्माण्ड पलता है । सृष्टि तो महाप्रलय की स्थिति में बदल भी जाती है और फिर कालान्तर में नया रूप लेकर प्रकट भी होती रहती है । किन्तु नियन्ता की सत्ता में इससे कोई अन्तर नहीं आता । इसलिए परब्रह्म को सत् कहा गया है ।

चित् का अर्थ है-चेतना । विचारणा । जानकारी, मान्यता, भावना, आदि इसी के अनेकानेक स्वरूप हैं ।

मानवी अन्तःकरण में उसे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के रूप में देखा जाता है । मनोविज्ञानी इस वर्गीकरण के चेतन, अचेतन और सुपरचेतन के रूप में करते हैं । जाग्रति, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय अवस्थाओं में भी चेतना अपने मूल स्वरूप में यथावत बनी रहती है । मरने के बाद भी उसका अन्त नहीं होता । बुद्धिमान और मूर्ख सभी में अपने विभिन्न स्तरों के अनुरूप वह विद्यमान रहती है ।

जड़ पदार्थ और प्राण समुदाय के बीच मौलिक अन्तर एक ही है । चेतना का होना न होना । जड़ पदार्थों के परमाणु भी गतिशील रहते हैं, उनमें भी उत्पादन, अभिवर्धन और परिवर्तन की प्रक्रिया चलती रहती है । किन्तु निजीज्ञान का सर्वथा अभाव रहता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसी प्रेरणा से प्रभावित होकर वे ग्रह-नक्षत्रों की तरह धुरी एक कक्षा में घूमते रहते हैं, पर इस सन्दर्भ में अपना कोई स्वयं का निर्धारण कर सकने की स्थिति में नहीं होते जबकि प्राणी अपनी इच्छानुसार गतिविधियों का निर्धारण करते हैं ।

प्राणियों की वृहत्तर चेतना का एक अंग-अवयव मात्र है । इस ब्रह्माण्ड में अनन्त चेतना का भण्डार भरा पड़ा है । उसी के द्वारा पदार्थों की व्यवस्था का एवं प्राणियों की चेतना का अनुदान मिलता है । परम चेतना को ही परब्रह्म कहते हैं । अपनी योजना के अनुरूप वह सभी को दौड़ने एवं सोचने की क्षमता प्रदान करती है । इसलिए उसे 'चित्' अर्थात् चेतन कहते हैं ।

इस संसार का सबसे बड़ा आकर्षण 'आनन्द' है । आनन्द जिसमें जिसे प्रतीत होता है कि वह उसी ओर दौड़ता है । शरीरगत इन्द्रियों में अपने-अपने लालच दिखाकर मनुष्य को सोचने और करने की प्रेरणा देते हैं । सुविधा-साधन शरीर को सुख प्रदान करते हैं । मानसिक ललक लिप्सा, तृष्णा और अहंता की पूर्ति के लिए ललचाती रहती है । अन्तःकरण की उत्कृष्टता वाला पक्ष आत्मा कहलाता है । उसे स्वर्ग, मुक्ति, ईश्वर प्राप्ति, समाधि जैसे आनन्दों की अपेक्षा रहती है ।

वस्तुतः आनन्द प्रकारान्तर से प्रेम का दूसरा नाम है । जिस भी वस्तु, व्यक्ति एवं प्रवृत्ति से प्रेम हो जाता है । वही प्रिय लगने लगती है । प्रेम घटते ही उपेक्षा चल पड़ती है और यदि उसका प्रतिपक्ष-द्वेष उभर पड़े तो फिर वस्तु या व्यक्ति के रूपवान, गुणवान होने पर भी वे बुरे लगने लगते हैं । उनसे दूर हटने या हटा देने की इच्छा होती है ।

अँधेरे में जितने स्थान पर टॉर्च की रोशनी पड़ती है उतना ही प्रकाशवान होता है । वहाँ का दृश्य परिलक्षित होने लगता है । प्रेम को ऐसा ही टॉर्च-प्रकाश कहना चाहिए जिसे जहाँ भी फेंका जाएगा वही सुन्दर, प्रिय एवं सुखद लगने लगेगा । वैसे इस संसार में कोई भी पदार्थ या प्राणी अपने मूल रूप में प्रिय या अप्रिय है नहीं । हमारा दृष्टिकोण, मूल्यांकन एवं रुझान ही आनन्ददायक अथवा अप्रिय, कुरूप बनाता चलता है ।

आनन्द ईश्वर की विभूति है । प्रेम को परमेश्वर कहा गया है । प्रिय ही सुखद है । अर्थात् ईश्वर ही आनन्द है । उसी के आरोपण से सुखानुभूति करते और प्रसन्न होते हैं । यह स्पष्टतः जानना चाहिए कि परब्रह्म के अनेकानेक नाम हैं; उनमें से उसके प्रमुख तीन गुणों का समन्वय जिस में है, उसे सच्चिदानन्द कहते हैं ।

सब धर्मों में एक ही है, उस परमसत्ता का स्वरूप

ईश्वर एक है, पर भिन्न-भिन्न धर्मों में उसकी व्याख्या-विवेचना विभिन्न प्रकार से की गई है। कहीं उसे सातवें आसमान में बताया गया है, तो कहीं उसकी अवस्थिति की कल्पना कण-कण में की गई है, कहीं उसे "रसो वै सः" अर्थात् आनन्द से अभिपूरित सत्ता कहा गया है । गहराई से विचारने पर सभी का निष्कर्ष लगभग एक जैसा प्रतीत होता है ।

इस्लाम-धर्म में ईश्वर को अल्लाह के नाम से जाना जाता है । वही कयामत यानी महाप्रलय का मालिक है । कुरान में लिखा है वही अव्वल है, वही आखिर है, वही प्रकट है और वही गुप्त है और वही सब चीजों को जानने वाला है । अल्लाह का इल्म अर्थात् ज्ञान सम्पूर्ण जगत में समाया हुआ है । कुरान में 'रब्ब' शब्द भी देखने को मिलता है । जिसका अर्थ ही 'महान' होता है । सफाहत शिलालेखों में अल्लाह का स्त्रीलिंग 'अल्लात' भी देखने को मिला है । 'लाह' शब्द का अर्थ सूर्य के प्रकाश के सदृश चमक का बोध कराता है । एक बार मुहम्मद पैगम्बर ने परमात्मा को अर-रहमान कहकर पुकारा तो लोगों ने बड़े ही संदेहास्पद ढंग से पूछा "जब ईश्वर को एक नाम से पुकारना है तब फिर दूसरे नाम का क्या महत्व रह जाता है ?" मुहम्मद साहब ने इसका उत्तर बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ दिया और बताया कि ईश्वर की कई प्रकार की श्रेष्ठ पदवियाँ हैं । कुरान की आयत (७।७९) इसी तथ्य की पुष्टि करती है । जो अल्लात-अल्लाह यानि स्त्री-पुरुष जैसा लिंग भेद करते हैं उनसे सदैव दूर ही रहना चाहिए । नाम कोई भी रहे, वह तौकीफी यानि कुरान-सम्मत होना चाहिए । कुरान (६:१२.५९) में उसे सर्वज्ञानवान, सर्वशक्तिमान और सृष्टि के कण-कण में विराजमान बताया और कहा है । "वह तो गुप्त रूप से की गई फुसफुसाहट को भी आसानी से सुन-समझने में भी सक्षम है । उसकी इच्छा के बिना तो संसार की कोई भी गतिविधि सम्पन्न नहीं हो सकती । ईश्वर के अनेक नामों में अल्लावदूद (प्रेम करने वाला) अल्-तब्बाव (कृपा दृष्टि रखने वाला) अल्-रदूफ (दयावान) अल् हादी (मार्ग-दर्शक) अल्-मोमिन (संरक्षक) अल्-मुहैसिन (आश्रयदाता) अलसलाम (शांतिदाता) आदि को प्रमुख रूप से लिया जाता है, जिन्हें देखकर इतना ही कहा जा सकता है कि भगवान श्रेष्ठताओं का, सद्गुणों का समुच्चय मात्र है ।"

यहूदी धर्म में ईश्वर को 'यहोवा' के नाम से जाना जाता है । हजरत मूसा इस धर्म के सूत्र-संचालक माने जाते हैं । यहूदियों का दृढ़ विश्वास है कि उनका मसीहा फिर से इस धरती पर अवतरित होगा और धार्मिक वातावरण विनिर्मित करेगा । ओल्ड टेस्टामेंट (साम ९२.६) में लिखा है कि यहोवा के अतिरिक्त और भी बहुत सारे देवी-देवता हैं, पर उन सब की उत्पत्ति ईश्वर से परे ही हुई है । मनुष्य उसकी सर्वप्रिय संतान है । होसिया, ११.३.४,८ में इसी तथ्य की पुष्टि की गई है । इस धर्म-ग्रन्थ के उत्पत्ति अध्याय में एडम और ईव नामक दो पुरुष स्त्री थे। उनने ईश्वरीय निर्देशों का उल्लंघन करते हुए ईडन गार्डन से भी फल तोड़ कर खा लिया तभी से संसार में जन्म और मृत्यु का चक्र चला आ रहा है । यहूदीधर्म में मसीहा का बड़ा माहात्म्य है । उसी को यूनानी भाषा में 'प्रोफेट' के नाम से जाना जाता है । 'प्रो' का अर्थ पक्ष में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और 'फीटेस' का अभिप्राय बोलना अर्थात् प्राणियों के कल्याण की बात को सोचने और बोलने वाला ही परमात्मतत्व है । मनुष्य और परमात्मा के मध्य की कड़ी ही 'प्रोफेट' है । एक्सोडस १२.५० में ईश्वरीय अनुग्रह की ही चर्चा की गई है । यहूदियों का मूल धर्मग्रन्थ 'तोरा' है । 'तालमुंड' को विधि-व्यवस्था की पुस्तक समझा जाता है। एक श्रुति है तो दूसरी स्मृति । इनके अतिरिक्त तीसरा धर्मग्रन्थ 'मिद्राशिम' है, जिसमें नीतिमत्ता की कथाओं का उल्लेख है । ईश्वरीय प्रेरणाओं से ओत-प्रोत इन धर्मग्रन्थों को लोग पवित्रता का प्रतीक समझ कर तदनुरूप आचरण भी करते देखे गये हैं ।

कुंग-फुत्सु जिन्हें अँग्रेजी में कन्फ्यूशिस के नाम से जाना जाता है चीन के सर्वप्रथम धर्म गुरु कहे जाते हैं । उन्होंने ईश्वरीय-सत्ता का स्थान मानवी अन्तराल को ही बताया है । इसलिए वे प्राय: यही कहा करते थे कि "अपना सुधार संसार की सबसे बड़ी सेवा है । अनीति एवं अनाचार बरतने वाले राजा-महाराजाओं से उन्होंने यही बात कही । उनमें नैतिक एवं धार्मिक जीवन को ही ईश्वर का स्वरूप माना है । " जेन, चुन-त्यु-लि-ते और वेन नैतिकता के पाँच सूत्र हैं, जिन्हें जीवनचर्या में समाविष्ट करने का अभिप्राय ही ईश्वरीय अनुग्रह को प्राप्त करने का होता है । सहृदयता, शालीनता, सदाचरण, शक्ति और शान्तिपूर्ण ढंग से ही उस परमतत्व का अनुभव किया जा सकता है । उनके मतानुसार मनुष्य की भौतिक सत्ता से परे कोई अदृश्य एवं आध्यात्मिक चेतना अवश्य है जो इसका नियमन एवं नियन्त्रण करती है ।

ताओ धर्म के संस्थापक श्री लाओत्से के अनुसार "मनुष्य ताओ का स्वरूप नहीं बता सकता है, उसका कोई नाम नहीं है । जो उसे अपनी भाषा में जानने का प्रयत्न करते हैं वे उससे सदा दूर ही बने रहेंगे । यह परमशक्ति शब्द और व्याख्या से परे है । 'उसका' आदि और अंत नहीं है । सबकी उत्पत्ति उससे होती है 'उसकी' उत्पत्ति किसी से नहीं होती वह जन्म-मरण से मुक्त है ।"

जापान का शिंतो धर्म बौद्ध और कन्फ्यूशियस धर्म से बहुत पहले का है। यह सूर्य-उपासक धर्म है । प्राकृतिक जीवन के प्रति अगाध प्रेम होने के कारण ही उन्होंने अपने इष्टदेव का चयन किया है। सूर्य की देवी को ही वे देवाधिदेव कहकर पुकारते और उसकी उपासना का उपक्रम बिठाते हैं। उनकी मान्यताओं के अनुसार देवी की सेवा-सहायता के लिए पाँच देवता सदैव तत्पर बने रहते हैं ।

आदिवासियों में भी ईश्वर विश्वास कम नहीं है । भारत के आदिवासी संथाल सूर्य को सिनकानन्द कहकर पुकारते और ईश्वर के सदृश सम्मानास्पद समझ कर पूजा-उपासना की विधि-व्यवस्था का उपक्रम बिठाते हैं । कुछ लोग ऐसे भी हैं, जिनका कोई धार्मिक संगठन तो नहीं बना है, पर ईश्वरीयसत्ता के अस्तित्व के सम्बन्ध में वे पूर्णत: सहमत हैं । आस्ट्रेलिया के आदिवासी लोगों का कहना है कि ईश्वर बहुत समय पूर्व धरती पर रह चुका और बाद में अपने स्थान पर चला गया । वहीं बैठ कर भूलोक के निवासियों के कर्मों का निरीक्षण करता और तदनुरूप प्रतिफल प्रदान करने की योजना भी क्रियान्वित करता रहता है । 'अतनामा' नाम ईश्वर का ही है। वेवीलोनिया के लोग पहले तो प्रकृति पूजा को ही महत्व देते रहे, पर शनै: शनै: उनकी धार्मिक मान्यताएँ परिवर्तित होती चली गयीं । वर्तमान में वे परमात्मसत्ता को त्रिमूर्ति का प्रतीक यानी स्वर्ग, पृथ्वी और नरक के रूप में समझ कर ही चलते और अपने क्रिया-कलापों का निर्धारण करते हैं। असीरियन लोगों का ईश्वर 'असुर' के नाम से प्रख्यात है। उनके मतानुसार "जीवन का आधार भौतिकतत्व नहीं, वरन् इससे परे कोई सत्ता है । वह अविनाशी है । "

हमें ईश्वर को उसके आकार-प्रकार अथवा अवस्थिति के आधार पर विभक्त नहीं करना चाहिए, वरन् उसके अनुशासन और विधि-व्यवस्था को प्रमुखता देनी चाहिए । इस दृष्टि से विचार करने पर विभिन्न धर्मों में ईश्वर का स्वरूप समान प्रतीत होता है ।

ईश्वर एक है-उसे एक ही रहने दें

मानवीय-सभ्यता एवं संस्कृति के विकास काल से ही मनुष्य का एक ऐसी सर्वनियामक सत्ता के बारे में विश्वास रहा है जो इस विश्व-ब्रह्माण्ड का संचालन कर रही हैं । मनुष्य चाहे, संसार के किसी कोने में निवास करता रहा हो, वह सदैव यह अनुभव करता आया है कि कोई एक ऐसी दिव्य शक्ति है, जिसकी सामर्थ्य मानव एवं मानवी भौतिक शक्तियों से कहीं अधिक है । पृथ्वी के विभिन्न भूखण्डों पर निवास करने वाले मनुष्य समूहों ने उस शक्ति को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया । ईश्वर, अल्लाह, खुदा, गॉड, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, सर्वनियंता, सर्वज्ञ आदि विविध नामों से उसी शक्ति का बोध होता है । विभिन्न धर्मों में उस परम-सत्ता की प्राप्ति को ही मानव-जीवन का चरम लक्ष्य माना गया है । परमसत्ता की प्राप्ति अर्थात् उस ईश्वर या दिव्य शक्ति की अनुभूति के विभिन्न मार्गों को ही विविध धर्मों के नाम से जाना जाता है । उनके बाह्य स्वरूप एवं क्रिया-कृत्यों में भिन्नता भले ही हो पर ईश्वर के एक दिव्य सत्ता के अस्तित्व को सभी ने स्वीकार किया है ।

अर्जुन को समझाते हुए भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है-जो लोग श्रद्धापूर्वक जाने-अनजाने में किसी भी देव-सत्ता की पूजा, उपासना करते हैं वे वस्तुत: उस एक परम-तत्व की ही पूजा-अर्चना करते हैं । मनुष्य भिन्न-भिन्न तत्व का साक्षात्कार करते हैं ।

चीन के प्रसिद्ध सन्त 'लाओप्स' ने 'ताओ-ते-किंग' में लिखा है-"उस अनन्त को जान लेना ही वास्तविक ज्ञान है"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जैन ग्रन्थों में ईश्वर के बारे में कहा गया है-"उसे नमस्कार है, जो अनेक में एक है तथा जो एक एवं अनेक से परे भी है ।"

पारसी मत के अनुसार ईश्वर एक है, उसे अहूरमज्दा के नाम से सम्बोधित किया जाता है, जिसका तात्पर्य है- 'ज्ञानेश्वर सर्वशक्तिमान परमात्मा ।' पारसी-ग्रन्थ की गाथा में वर्णन है-"उस ईश्वर के अतिरिक्त मैं और किसी को को नहीं जानता हूँ ।"

मिश्र निवासियों की मान्यता ईश्वर के सम्बन्ध में इस प्रकार है-जीवन की सृष्टि करने वाला वह अनन्त एवं सर्वव्यापी है, उसे आँखों से देखा नहीं जा सकता, वही एक है निराकार है ।

आस्ट्रेलिया के रहने वालों की ईश्वर सम्बन्धी धारणा में एक सार्वकालिक एवं दिव्य लोकवासी प्राणी की मान्यता को स्थान मिला है जिसे वे परम पिता कहकर पूजा भक्ति करते हैं । असीरियन लोगों की भी ऐसी ही ईश्वर सम्बन्धी मान्यता है ।

यहूदियों को भी हजरत मूसा ने एक ईश्वर की पूजा करने का उपदेश दिया था । इस्लाम धर्म में ईश्वर को अल्लाह या खुदा कहा जाता है, कयामत अर्थात् महाप्रलय में केवल वही रह जाता है । कुरान में एक जगह कहा गया है--"वही प्रारम्भ में था, वही अन्त में रहेगा । सबका प्रारम्भ उसी से है और सबका अन्त भी उसी में होता है । वह प्रकट भी है और गुप्त भी । वह सर्वज्ञाता-सब कुछ जानने वाला है । उसका अनन्तज्ञान सब चीजों को घेरे हुए है । सब में वही समाया है ।"

इसी से मिलता-जुलता वर्णन बाइबिल में मिलता है । उसमें ईश्वर की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कहा गया है--"मैं ही सबका आदि हूँ और सबका अन्त मैं ही हूँ । मेरे अलावा अन्य कोई नहीं है । मैं ही वह प्रकाश हूँ । जो हर एक को प्रकाशित करता हूँ । मेरे बिना कोई भी प्राणी हलचल नहीं कर सकता ।"

चीन के प्रसिद्ध धर्म के प्रणेता लाओत्से ने कहा है-"मनुष्य उसके स्वरूप का वर्णन नहीं कर सकता-वह अवर्णनीय है । उसका कोई नाम नहीं है । जो उसे अपनी भाषा के शब्दों में जानते हैं, वे उसे नहीं जानते । वह शब्दों की पकड़ से बाहर, व्याख्या के परे है । वह एकमेव सत्य है, न तो उसका आरम्भ है और न अन्त । सबकी उत्पत्ति का कारण वह है, उसकी उत्पत्ति किसी से नहीं होती । वह जन्म-मरण के बंधन से परे है ।"

बुद्ध ने यद्यपि स्वयं ईश्वर के अस्तित्व और विवेचन को टाल दिया था फिर भी अनेक बौद्ध-ग्रन्थों से ऐसा लगता है कि वे किसी ऐसी दिव्य शक्ति में विश्वास रखते थे । बौद्ध धर्म के ग्रन्थ 'मसंग' एवं 'माध्यमिका कारिका' में पहेली बुझौवन की तरह उल्लेख मिलता है। "वह न नहीं है और न है । वह इस तरह है और न किसी तरह, वह न जन्मता है न बर्धित ही होता है और न मृत्यु को प्राप्त होता है । यह कोई एक वस्तु नहीं है, न उसका अस्तित्व है और न ही उसका अस्तित्व नहीं है । न वह दोनों से पृथक है, वह विचित्र रहस्य है, वही सत्य है ।"

एक सूफी संत ने कहा है--"फकत तफावन है नाम ही का-दरअसल सब एक ही है ।"

"केवल नाम का ही अन्तर है, वास्तव में सब एक ही है । जिस प्रकार जो पानी की लहर में है वही बुलबुले में भी है ।"

जरथुस्त्र की एक गाथा में कहा गया है-"मजदओ सखारे मैरस्तो" अर्थात् उस एक अल्लाह की ही इबादत करनी चाहिए ।"

शेखसादी ने मामुकीमा में लिखा है-"जिसके रहने का कोई स्थान नहीं, फिर भी वह सब जगह विद्यमान है"- यह देखकर आश्चर्य होता है ।

उपनिषद् में लिखा है--"ब्रह्म सर्वज्ञ विद्यमान है । उसी की ज्योति से सब प्रकाशित है ।"

इंजील कहती है-"उस अदृश्य-सत्ता के अन्दर ही सब मौजूद है । उसी से सब हरकत करते हैं ।"

चीनी धर्मग्रन्थ 'शीकिंग' का सूत्र है-- वह ईश्वर सर्वत्र छाया हुआ है, जीवन के प्रत्येक क्रिया-कलाप पर उसकी दृष्टि है ।

योग वासिष्ठ में स्पष्ट उल्लेख है-

"सर्वस्य एवं जनस्य अस्य विष्णुरभ्यंतरे स्थितम् । तम् परित्यज्य ये यान्ति बहिर विष्णुम् नराधमाः ।।

"ईश्वर सबके अन्तःकरण में विद्यमान है । उस अन्तः अवस्थित ईश्वर को छोड़कर जो उसे बाहर ढूँढ़ने का प्रयत्न करते हैं, वे अधम हैं । "

रामायणकार ने-"व्यापक, व्याप्य अखण्ड, अनन्ता । अखिल अमोघ शक्ति भगवंता ।।" सूत्र में उस सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान शक्ति की ओर ही संकेत किया है । उपनिषदों में जिसे-"एकम् एवं अद्वितीयम्" आदि गाया है।

विविध धर्मग्रन्थों में जिस प्रकार एक सर्वव्यापक दिव्य-शक्ति की अवधारणा है, उसी प्रकार आज के मूर्धन्य वैज्ञानिक भी किसी ब्रह्माण्डकारी विचारशील सत्ता को ही मानते हैं, जो इस विश्व ब्रह्माण्ड का नियमन करती है । वैज्ञानिकों की 'कॉस्मिक एनर्जी' की परिकल्पना विभिन्न धर्मों की ईश्वर-मान्यता जैसी ही है । संसार की विविधता एवं विचित्रता में निहित उस एकता को समझा जा सके, जिसे वेदान्त "एकोहम् द्वितीयो नास्ति" के उद्घोष में व्यक्त करता है, तो धर्म, मत, सम्प्रदायों के समस्त विग्रहों का अन्त हो जाए ।

* * *

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विराट सत्ता की दर्शन-झाँकी

यद्ब्रह्म तज्ज्योतिः यज्ज्योतिः स आदित्यः

ज्ञान का मोटा अर्थ है-'जानकारी' । कामचलाऊ जानकारी प्रायः सभी को होती है । निपट अनाड़ी, मन्द मति, बुद्धिहीन स्तर के अर्धविक्षिप्तों को ही अज्ञानी कहते हैं । ऐसे लोग अपवादस्वरूप बिरले ही पाये जाते हैं । सामान्यतया अधिकांश ऐसे ही होते हैं जिन्हें जानकार कहा जा सके ।

अध्यात्म तत्वज्ञान में 'ज्ञान' शब्द को विशेष अर्थ में लिया गया है और उसकी महिमा भी बहुत बताई गयी है । कहा गया है कि "ज्ञान से बढ़कर पवित्र और कुछ नहीं है ।" (**न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते**) । यदि सामान्य ज्ञान से इसका तात्पर्य रहा होता तो स्कूली शिक्षा प्राप्त प्रत्येक साक्षर को ज्ञानवान कहा जाता और यह समझा जाता कि उससे श्रेष्ठ सम्पदा और किसी के पास नहीं है । किन्तु बात ऐसी है नहीं । तत्वज्ञानी ज्ञान की उपमा सूर्य से देते हैं । सूर्य के उदय होने पर अन्धकार का नाश हो जाता है । यहाँ अन्धकार का का तात्पर्य भी अज्ञान से लिया गया है । तात्पर्य समझने का प्रयत्न किया जाय तो यह संगति उस भ्रम के साथ बैठती है जिसे भ्रान्ति या माया कहा गया है । भ्रान्ति क्या है ? सामान्य व्यक्ति भी बाजार से वही खरीदता है जो खरीदना है । वस्तुओं के नाम भी वही बताता है जो उसका है । फिर भ्रम किस बात का?

यह अध्यात्म क्षेत्र की विडम्बना है । हम अपने आत्म-स्वरूप को भूल जाते हैं और शरीर का अपने में-अपने को शरीर में ओत-प्रोत देखते हैं । जबकि वस्तुतः दोनों सर्वथा भिन्न हैं । शरीर को एक वाहन, उपकरण, औजार समझना चाहिए और उसके द्वारा जीवन के मूलभूत उद्देश्य की पूर्ति के लिए जो काम लिया जाना चाहिए सो लेना चाहिए । इस भ्रान्ति में नहीं पड़ना चाहिए कि हम शरीर मात्र हैं । उसी की वासना, तृष्णा, अहन्ता हमारे लिए इष्ट अभीष्ट है । इसलिए अपना समग्र समय, श्रम और मनोयोग उन्हीं के लिए लगा देना चाहिए । अपना समग्र स्वरूप, आनन्द-वैभव शरीरगत महत्वाकांक्षाओं को ही मान बैठना चाहिए।

अध्यात्म के नाम पर चाहे कहा-सुना कुछ भी जाता है । पर व्यक्ति की मान्यता इस सन्दर्भ में इतनी परिपक्व है कि शरीर सुख के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं । आत्मा की पृथकता कहते-सुनते तो रहते हैं, पर वैसा कभी अनुभव नहीं करते । यदि करते होते तो आत्मा का स्वरूप, उद्देश्य, उपयोग भी समझते और अपनी कार्य-पद्धति का तदनुरूप निर्माण-निर्धारण करते । तब ध्यान में आता कि यह सुरदुर्लभ अवसर इसलिए मिला है कि उसका सही सदुपयोग करके अपने यथार्थ ज्ञान का परिचय हो और उस प्रयास के बदले जो कुछ उपलब्ध हो सकता है उसे प्राप्त करके धन्य बनें ।

आत्मा और शरीर इसलिए दिया गया है कि वह उससे आत्म-कल्याण और विश्व-कल्याण का पुण्य-परमार्थ साधकर कृत-कृत्य बनें । अपनी इस सूझ-बूझ के उपहार में महामानव, ऋषि-मनीषी और देवात्मा स्तर की उत्कृष्ट पदवी प्राप्त करते हुए कृतकृत्य बनें । इस तथ्य को हृदयंगम कर लेने और आचरण में उतारने की युक्ति को ज्ञान कहा गया है । आत्म-विस्मृति की भ्रान्ति अपना लेने का नाम ही अज्ञान, अन्धकार, भ्रान्ति एवं माया है ।

तथ्य को अलंकारिक रूप में समझाने के लिए ज्ञान की उपमा सूर्य से दी गई है । जब तक सूर्य उदय नहीं होता तब तक प्राणी अज्ञान रूपी अन्धकार में भटकता रहता है, झाड़ी को भूत समझता है । रस्सी को साँप समझता है और सही पगडण्डी को छोड़कर झाड़-झंखाड़ भरी उलझन में जा फँसता है । लिप्सा-लालसा के व्यामोह में वह सोचता है जो नहीं सोचना चाहिए । वह करता है, जो नहीं करना चाहिए । इसी भ्रान्ति दुर्गति को माया के भ्रम-जंजाल में भटकना कहा जाता है ।

सूर्य निकल आने पर स्थिति सही रूप से दीख पड़ती है । शरीर को उपकरण और आत्मा को अधिपति समझने की सूझ-बूझ उग आती है । फलतः मनुष्य सही मार्ग-अपनाता लक्ष्य तक पहुँचता, श्रेयस्कर परिणाम प्राप्त करता है । ऐसी व्यवस्था जुटा देने के कारण सूर्य को ज्ञान के-ज्ञान को सूर्य के समतुल्य माना गया है ।

इस अलंकारिक उपमा का उल्लेख शास्त्रकारों ने स्थान-स्थान पर किया है ।

वेद से ब्रह्म अर्थात् परमात्मा के श्रुतिलभ्य ज्ञान को सूर्य के सदृश ज्योति रूप में चित्रित किया है-

'ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्धीः ।'

-यजुर्वेद २३/४८

मैत्रायण्युपनिषद् ने भी "जो ब्रह्म है, वह ज्ञानमय ज्योति ही है और जो ज्योति है वही सर्वोद्भासक आदित्य है ।" मन्त्रदृष्टा ऋषि ने अज्ञान घन का भेदन करके, उसके पार चमकने वाले उन आदित्यवर्ण परमात्मा का दर्शन कर लिया है, अतः उनका कथन है कि मैं उस तत्व को समझ गया हूँ उसको जानने की तीव्रतम जिज्ञासा ही मृत्युरूप इस आवरण घन माला का भेदन कर सकती है, इसके लिए कोई दूसरा मार्ग नहीं है-

"वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् । तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेयनाय ।"

-यजुर्वेद ३१ ।१८

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आश्चर्य इस बात का है कि जानकारी रहते हुए भी अनजानों जैसी रीति-नीति क्यों अपनाई जाती है, धर्मोपदेशक और तत्ववेत्ता भी माया के व्यामोह में अज्ञानी भ्रमग्रस्तों जैसा आचरण क्यों करते हैं ? इसके उत्तर में कहा गया है कि बहुधा मस्तिष्क में बुद्धि होते हुए भी वह दुर्बुद्धि स्तर पर उतर जाती है और यथार्थता के विपरीत आचरण करती है । सूर्य के प्रभाव से ही समुद्र में से बादल उठते हैं और वे बादल ही सूर्य के प्रकाश को ढककर अन्धकर जैसी स्थिति उत्पन्न कर देते हैं ।

शास्त्रकार ने आगे कहा है–

'एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यथादित्यो दृश्यते ।'

–कौशीतकि ब्राह्मण १२

अर्थात्–''यह ब्रह्म ही दीप्त हो रहा है जो आदित्य दिखाई पड़ता है ।''

सूर्य ऊर्जा और आभा का प्रतीक है । उसमें रोशनी भी है और गर्मी भी । सद्ज्ञान को सूर्य की उपमा देने की ठीक स्थिति तब बनती है, जब विवेकवान में न केवल आत्मबोध का उदय हो वरन् ऐसी प्रखरता-ऊर्जा भी उत्पन्न हो सके जिसके सहारे अपने को भटकाव के दलदल में से निकालकर सही मार्ग अपना सके और गर्त में गिरने की अपने उबरने की स्थिति अपना सकें ।

ज्ञानवान होने के दो लक्षण बताये गये हैं–एक आत्मवत् सर्वभूतेषु की भावना और दूसरे 'विश्व बन्धुत्व' की अनुभूति। अपने को सबमें और सब को अपने में देखने का व्यावहारिक स्वरूप यही बनता है कि हँसते-हँसाते जिएँ और मिल-बाँटकर खायें । जो अपने सुखों को दूसरों के निमित्त बाँट सकता है और दूसरों के दुःखों में हिस्सा बँटा सकता है तो समझना चाहिए कि दूसरी सद्बुद्धि का आविर्भाव हुआ और ज्ञान ने कार्य में मान्यता ने प्रयास में परिवर्तित होने का साहस भरा कदम उठाया ।

सद्ज्ञान इसी का नाम है जो जीवन का प्रकाश है । सही मार्ग अपनाने की प्रेरणाएँ प्रदान करे और साथ ही इतना शौर्य, साहस, विवेक और पराक्रम भी प्रदान करे जो पथभ्रष्ट, आलसी, प्रमादी, उन्मादी और अर्धविक्षिप्त लोगों द्वारा अपनाई गई रीति-नीति से अलग हटकर अपने निमित्त अपना निर्धारण स्वयं कर सके । अन्धानुकरण का परावलम्बन छोड़ें। उस ऊर्जा से उनके मानस को छुटकारा मिल सके और अकेला चल पड़ने का साहस उमगे । समझना चाहिए कि उसी के अन्तराल में विवेकरूपी सूर्य का उदय हुआ और उसी के श्रेय-सौभाग्य का उदय हुआ ।

ब्रह्म सत्य-जगत मिथ्या का व्यावहारिक स्वरूप

जिस जाति की विचार-प्रणाली ब्रह्म सत्यं-जगत मिथ्या पर आधारित है, उसमें वैराग्य, संन्यासप्रियता एवं ज्ञान-पिपासा का होना स्वाभाविक है । किन्तु यह सिद्धान्त जीवन सत्य के महत्वपूर्ण व्यावहारिक पक्ष के प्रति उदासीन है । ज्ञान की प्रबल इच्छा के साथ ही साथ अन्य भी बहुत सी वृत्तियाँ मानव के अन्दर क्रीडा करती रहती हैं, उनकी उपेक्षा करके कोई भी समाज अधिक दिनों तक अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सकता । ब्रह्म सत्य है तथा जगत मिथ्या यह सिद्धान्त सत्य है, पर इस सिद्धान्त को समझने में प्रायः भ्रम हो जाता है । विषय वासनाओं के प्रति साधक के हृदय में वैराग्य उत्पन्न करने के लिए इसका प्रतिपादन हुआ था न कि उस जगत के प्रति जिसके द्वारा हमें जीवन साधनों की प्राप्ति होती है । यह सर्वमान्य तथ्य है कि साधनों के बिना मानव अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता और न जीवित ही रह सकता है । इस दृष्टि से साधनों की अपनी महत्ता एवं उपयोगिता है ।

जब तक मनुष्य वासनाओं, तृष्णाओं को सत्य मानकर चलता है तथा उसमें लिप्त रहता है, वह 'ब्रह्म सत्य है' इस सिद्धान्त की कल्पना भी नहीं कर सकता । अभ्यास के लिए यह सत्य है किन्तु अभ्यास के उपरान्त व्यावहारिक दृष्टि से **'सर्वं खल्विदं-ब्रह्म'** को ही उपयोगी मानना पड़ता है। जगत को मिथ्या मानने वाले अपने प्रति भले ही अत्याचार न करते हों किन्तु यह भावना बनाकर समाज का घोर अहित करते हैं । अन्य व्यक्ति भी उनके इस आचरण का अनुकरण करके सामाजिक उत्तरदायित्वों से विमुख होने लगते हैं ।

'जगत मिथ्या' की मान्यता से कर्म से विरत होकर उस परम सत्य की खोज ही सम्भव नहीं है । जीवन का अस्तित्व कर्म पर ही टिका है । कर्म के बिना तो एक क्षण भी नहीं रहा जा सकता है । जीवनमुक्त भी लोककल्याण के लिए कार्य करते हैं । संसार को माया मानकर, कर्म को त्यागकर बैठना, एक प्रकार का पलायनवाद है । इसे अपनाकर कोई भी पूर्णता का जीवन लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकता । 'ईशावास्योपनिषद्' कर्मवाद का समर्थन करते हुए कहता है–

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।

अर्थात्–श्रेष्ठकर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहने की इच्छा करनी चाहिए । ऐसा करते रहने से मनुष्य कर्म बन्धन से मुक्त हो जाता है ।

गीता में भी कर्मों की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए भगवान कृष्ण कहते हैं–

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ।।

–गीता ३।१९

हे अर्जुन ! तू अनासक्त हुआ निरन्तर श्रेष्ठ कर्म का आचरण कर, क्योंकि अनासक्त पुरुष कर्म करता हुआ परमात्मा को प्राप्त कर लेता है । जब ईश्वर तक विश्व के संरक्षण एवं पालन-पोषण के लिए कार्य करना स्वीकार किए हुए है, तो मनुष्य का कर्म से विरत होना अनुचित एवं अविवेकपूर्ण हैं । मिथ्या-जगत के पोषण, अभिवर्धन में फिर भला ईश्वर ही क्यों इतना श्रम सर्वशक्ति का उपयोग करता । ईश्वर को अपनी बनायी सृष्टि के प्रति असीम प्यार है । अतः ईश्वर के प्रति हमारा प्यार उसकी सृष्टि के प्रति हमारे प्यार के रूप में परिलक्षित होना चाहिए । जिसकी अभिव्यक्ति का आधार है श्रेष्ठ कर्म, सृष्टि को अधिकाधिक सौन्दर्ययुक्त बनाने की उदात्त भावना से कर्म में निरन्तर जुटे रहना ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रश्न यह नहीं है कि मैं क्या करूँ कि मेरा उद्धार हो जाय, वरन यह है कि मैं किस भावना से कार्य करूँ जिससे अपनी आत्मा को निर्लिप्त एवं निस्संग रखने के साथ ही साथ संसार का परित्याग भी नहीं करना पड़े । 'वृहदारण्यक उपनिषद् ' में वर्णन आता है कि ब्रह्मविद् लोग संसार का पुनःनिर्माण करते हैं । फलतः निष्काम भाव से किया हुआ कार्य न तो आत्मा को बाँधता है न ही उसे मलिन करता है । जब तक उस ब्रह्माण्डीय प्रक्रिया की समाप्ति नहीं हो जाती तब तक जीवन-मुक्त पुरुष भी विश्वात्मा के लिए कार्य करते रहते हैं । ऐसी स्थिति में जब कर्म का क्षेत्र भी यह दृश्यमान जगत है, तो उसको मिथ्या मानकर चलना अविवेकपूर्ण है । ब्रह्म सत्य तो है किन्तु उस सत्य तक पहुँचने के लिए जगत को भी सत्य मानकर चलना होगा । निष्काम भाव से कर्म करते हुए ही परम लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है ।

"ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या का तत्वदर्शन"

चिन्तन में संव्याप्त अनेकानेक भ्रान्तियों में से एक है दर्शन सम्बन्धी भ्रान्तियाँ । किसी भी देश एवं समाज की सर्वांगीण प्रगति इसी बात पर निर्भर करती है कि प्रचलित दर्शन व्यक्ति एवं समाज के विकास में कितना सहायक है । भारतीय-दर्शन को विश्व दर्शनों में जो सर्वाधिक मान्यता प्राप्त है, वह अकारण नहीं है । वेदान्त एवं उपनिषदों में मानव ही नहीं समस्त प्राणि-मात्र के लिए जो उदात्तभाव मिलता वह अन्यत्र दुर्लभ है । प्रकृति, जीव ब्रह्म, सृष्टि आदि का गूढ़ वर्णन एवं उनके आपसी सम्बन्धों का विवेचन, विश्लेषण इतना सुन्दर विश्व के किसी भी धर्म ग्रन्थ में नहीं मिलता । ज्ञान एवं उदात्त भावों के इस सागर में डुबकी लगाने के बाद मैक्समूलर जैसे विद्वान के उद्‌गार इस प्रकार फट पड़े-"विश्व जब कभी भी अन्तरतम शान्ति एवं सन्तोष की खोज करेगा, उसे भारतीय दर्शन का ही अनुशीलन करना होगा ।" यह दार्शनिक चिन्तन की ही विशेषता थी । जिसके अध्ययन ने 'दारा शिकोह' जैसे मुसलमान को मदमस्त-दिव्य आनन्द से सरावोर कर दिया ।

विश्व दर्शनों में अग्रणी वेदान्त एवं उपनिषद् के सिद्धान्त सनातन, सार्वभौम एवं चिरन्तन हैं । मनुष्य के लौकिक एवं इहलौकिक, भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास के सारे आधार उनमें विद्यमान हैं । इतने पर भी उनकी उपयोगिता एवं सार्थकता तभी है जबकि समाहित तथ्यों को ठीक प्रकार समझा एवं अपनाया जाय, अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि ही उठानी होगी ।

ऋषियों की यह विशेषता रही है कि उन्होंने जो कुछ भी सत्य का उद्‌घाटन किया वह सूत्र रूपों में आबद्ध कर दिया है । अधिक व्याख्या एवं विवेचना की उन दिनों आवश्यकता भी नहीं पड़ती थी । सत्य बुद्धि द्वारा नहीं, साधना प्रयासों द्वारा अनुभव किया जाता था । फलतः भटकाव की भ्रान्ति की सम्भावना नहीं रहती थी ।

बौद्धिक-विकास के साथ उन दार्शनिक सूत्रों की व्याख्या-विवेचना की आवश्यकता पड़ी । इस प्रयास में भ्रान्तियों का भी समावेश हुआ । उदाहरणार्थ-'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या ।' अर्थात् ब्रह्म सत्य है और समस्त संसार मिथ्या है-माया है । सिद्धान्त की दृष्टि से यह सत्य है, किन्तु पिछले दिनों इसे समझने में भारी भूल हुई है । ऋषि इस तथ्य से परिचित थे कि परिवर्तनशील संसार एवं सम्बन्धित वस्तुओं का जो स्वरूप दिखायी पड़ता है वह वास्तविक नहीं है । अस्तु उनके प्रति आसक्ति का न होना ही श्रेयस्कर है । वस्तुनिष्ठ आकर्षणों को समाप्त करने की दृष्टि से उन्होंने उक्त सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, न कि संसार को मिथ्या मानकर उसके अस्तित्व को ही अस्वीकार करने के लिए ।

भौतिक-शरीर चेतना की शक्ति से गतिशील है । किन्तु इस सत्य के साथ यह तथ्य भी अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है कि चेतना का परिचय इस शरीर द्वारा ही मिलता है । ज्ञातव्य है कि शरीर अपने लिए पोषण एवं विकास के लिए साधन इस संसार से ही प्राप्त करता है । अतएव साधन एवं उनके स्रोत जगत की महत्ता, उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता । तार्किक दृष्टि से भी यह बात गले नहीं उतरती । यदि यह संसार मनुष्य के लिए निरुपयोगी है, तो व्यर्थ में परमात्मा ने उसके रचने में इतना झंझट क्यों मोल लिया । यह सर्वमान्य तथ्य है कि साधनों के अभाव में जीवन लक्ष्य को प्राप्त करना तो दूर रहा जीवित रह पाना भी सम्भव न हो सकेगा । विरक्त संन्यासी हो अथवा गृहस्थ, बाल हो या वृद्ध, नर हो या नारी हर किसी को न्यूनतम निर्वाह के लिए साधन चाहिए । कन्दराओं, गुफाओं अथवा हिमालय के शिखरों पर कठोर-साधना में रत साधकों को भी प्रकृति के भण्डार से जीवित रहने के लिए कुछ न कुछ भोज्य पदार्थ के रूप में ग्रहण करना पड़ता है । अस्तु यह निर्विवाद सिद्ध होता है, हर व्यक्ति को निर्वाह के लिए न्यूनतम साधन चाहिए ।

ब्रह्म सत्य है इसकी अनुभूति तब तक नहीं हो सकती जब तक साधक विषय-वासनाओं में लिप्त है । अभ्यास के लिए-विषय वासनाओं के प्रति वैराग्य उत्पन्न करने के लिए "ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या" के सिद्धान्त को मानकर चलना होता है । किन्तु अभ्यास के उपरान्त "सर्व खिल्विदं ब्रह्म" को ही व्यावहारिक एवं तात्विक दृष्टि से उपयोगी मानना पड़ता है । वह परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है-जड़ चेतन सबमें समाया हुआ है । जड़-चेतन की हलचलें उसी से अभिप्रेरित हैं । अतएव दृश्यजगत को भी उस परमात्मा का स्थूल स्वरूप मानकर-सत्कर्मों में निरत रहकर उसे अधिकाधिक सुन्दर बनाना भी प्रकारान्तर से उस ब्रह्म की ही उपासना, अभ्यर्थना है । इस राजमार्ग द्वारा परमात्मा की अनुभूति कहीं अधिक सुगम है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"जगत मिथ्या है" यह धारणा व्यक्ति एवं समाज दोनों ही के लिए अहितकर है । शरीर मिथ्या, जगत मिथ्या-सभी वस्तुएँ मिथ्या । निस्सन्देह यह मान्यता व्यवहार में जड़ता को जन्म देगी । इस विश्वास के आधार पर कर्मों से विरत होकर परमात्मा की खोज करना- ब्रह्म की अनुभूति करना सम्भव नहीं है । जीवन का अस्तित्व कर्म पर टिका हुआ है । कर्म के बिना तो एक क्षण भी नहीं रहा जा सकता । सन्यास परम्परा में कर्मों से निवृत्त होने का विधान है । जिसका लक्ष्य है कि अब तक जो आसक्ति बनी हुई थी उसे तोड़ दिया जाय, जो कुछ भी किया जाय समस्त विश्व के कल्याण को दृष्टि में रखकर न कि कर्म करना ही छोड़ दिया जाय । यदि प्रयोजन यह रहा होता तो शंकराचार्य, विवेकानन्द, दयानन्द जैसे मूर्धन्य संन्यासी जीवनपर्यन्त सत्कर्मों में निरत न रहते अपितु वे किसी कन्दरा में बैठकर ब्रह्म का अवगाहन, चिन्तन-मनन कर रहे होते । उनके जीवन चरित्र का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि संन्यास लेने के बाद तो उनके कर्मों में और अधिक प्रखरता एवं गति आयी । अपनी अल्पायु में वे मानव जाति के लिए इतना कर गये जितना कि कोई भी व्यक्ति अपने दीर्घजीवन में भी नहीं कर पाता ।

निष्काम भाव से किया हुआ कर्म न तो आत्मा को बाँधता है और न ही उसे मलीन करता है । ऐसी स्थिति में जब कर्म का वास्तविक क्षेत्र जीवन मुक्ति का माध्यम यह दृश्य संसार है तो उसे मिथ्या मानकर चलना अविवेकपूर्ण है । अस्तु ब्रह्म सत्य है तो उस तक पहुँचने के लिए जगत को भी सत्य मानना होगा ।

परब्रह्म की सत्ता के कारण और प्रमाण

कार्य-कारण का सिद्धान्त तर्कशास्त्र की दृष्टि से, विज्ञान की दृष्टि से मान्यता प्राप्त है । संसार की कोई भी घटना अकारण नहीं है । दुर्घटनाएँ यदा-कदा अपवाद रूप में होती रहती हैं, पर उनका भी कुछ न कुछ कारण होता है । दृश्य और अदृश्य जगत में घटित होने वाले प्रत्येक घटना किसी न किसी कारण से अभिप्रेरित है । कारण के बिना कोई कार्य नहीं होता । कुम्हार एवं मिट्टी के बिना घड़ा नहीं बन सकता, जुलाहे एवं धागे के बिना कपड़ा नहीं बनता, तकनीशियनों एवं प्रारम्भिक उपकरणों को जुटाए बिना औजार-हथियार नहीं बनते ।

मनीषियों ने कारणों को भी तीन भागों में विभाजित किया है-निमित्त कारण, उपादान कारण तथा साधारण कारण । उदाहरणार्थ घड़ा बनने के पूर्व कुम्हार तथा मिट्टी दोनों ही का होना पर्याप्त नहीं, कुम्हार और मिट्टी के साथ-साथ दण्ड और चक्र का भी होना भी अनिवार्य है । इस प्रकार घट बनने के लिए तीनों कारण कुम्हार, मिट्टी तथा दण्ड-चक्र आवश्यक हैं । इस निर्माण में कुम्हार निमित्त कारण है, मिट्टी है उपादान कारण और दण्ड चक्र आदि हैं साधारण कारण । संसार की कोई वस्तु इन तीनों कारणों के बिना नहीं बन सकती ।

दर्शन-शास्त्र का यह सर्वमान्य सिद्धान्त जब संसार की हर वस्तु पर लागू होता है, तो कोई कारण नहीं कि सृष्टि एवं उसकी व्यवस्था पर न लागू हो । पर यह विचित्र आश्चर्य है कि तथाकथित बुद्धिजीवी-नास्तिक स्तर के व्यक्ति संसार की वस्तुओं के निर्माण के सम्बन्ध में तो कार्य-कारण सिद्धान्त की तो स्वीकारते हैं, पर सृष्टि की उत्पत्ति के सन्दर्भ में उसे नहीं मानते । सृष्टि बिना कर्त्ता के बन गयी, यह निरंकुश बुद्धि का-तर्करहित दर्शन का निराधार प्रलाप है, जिसमें औचित्य का लेशमात्र भी अंश नहीं है ।

वैदिक-ग्रन्थों में दर्शन की त्रैतवाद सम्बन्धी चर्चा है । यह और कुछ नहीं, उपर्युक्त तीन कारणों की ही दार्शनिक व्याख्या है । सृष्टि के सम्बन्ध में निमित्त कारण वह है जो स्वयं अदृश्य, अपरिवर्तित रहकर विभिन्न प्रकार के दृश्य घटकों का निर्माण करता है । उपादान कारण वह है जिससे निर्माता किसी पदार्थ का निर्माण करता है तथा साधारण कारण वह है जो बनाने का माध्यम बनता है । इस कारण सृष्टि का निमित्त कारण परमात्मा है । उपादान कारण प्रकृति और साधारण कारण जीव । परमात्मा को अध्यात्म ग्रन्थों में एक विशेष विशेषण से सम्बोधित किया गया है, जिसमें सृष्टि निर्माण का तथा त्रैतवाद का समस्त तत्व चिन्तन समाहित हो गया है । यह विशेषण है- 'सच्चिदानन्द' । इस स्वरूप में ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों की स्थिति का सम्यक् निरूपण है । प्रकृति केवल सत् है चेतना का उसमें अंश नहीं है । जीव सत् और चित् का युग्म है । परमात्मा में तीनों ही विशेषताएँ हैं-वह सत् भी है, चित् भी और आनन्द भी । इस प्रकार परमात्मा के सच्चिदानन्द नाम में उन तीनों कारणों का तात्विक वर्णन है, जो संसार और समूची सृष्टि के निर्माण के प्रमुख कारक है ।

न्याय दर्शन के ऋषि ने भी प्रकारान्तर से ऐसे ही तीन कारणों का वर्णन किया है । वे तीन कारण हैं-(१) समवायिकारण (२) असमवायिकारण (३)निमित्तकारण ।

जो समवेत (पूर्णरूपेण) कार्य की उत्पत्ति का कारण हो, उसे समवायिकारण कहते हैं-

"यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत् समवायिकारणम् ।"

उदाहरणार्थ, कपड़े के निर्माण में धागे की भूमिका समवायिकारण है, क्योंकि वस्त्र निर्माण में जितना उपयोग धागे का है, उतना रंग आदि का नहीं ।

जो समवायिकारण के साथ निश्चित रूप से जुड़ा हो उसे असमवायिकारण कहा जाता है ।

"यत्समवायिकारणप्रत्यासन्नमवधृत सामर्थ्यं तद् समवायिकारणम् ।"

उदाहरणार्थ, वस्तु निर्माण में तन्तु संयोगों की प्रक्रिया असमवायिकारण है, क्योंकि वस्त्र निर्माण में तन्तु तब तक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समर्थ नहीं हो सकते जब तक कि उनका परस्पर ताने-बाने के रूप में क्रमबद्ध संयोग न हो, यदि धागे बिखरे होंगे तो उनसे वस्त्र बन ही नहीं सकता ।

निमित्त कारण वह है, जो न समवायिकारण हो न असमवायिकारण, फिर भी एक ऐसा कारण हो जिसके बिना भी कार्य सिद्धि न होती हो ।

'यन्न समवायिकारणं नाप्यसमवायिकारणमथ च कारणं तन्निमित्तकारणम् ।'

वस्त्र धागे से तो बनता है परन्तु जुलाहे का उसके निर्माण में अत्याधिक सहयोग होता है । अतएव वह निमित्त कारण कहा जाता है ।

न्याय-दर्शन के प्रणेता ने सृष्टि की उत्पत्ति में परमात्मा को निमित्त कारण माना है । तर्क की दृष्टि से भी यह बात गले नहीं उतरती कि आकस्मिक विस्फोट से-मात्र संयोगवश यह सृष्टि बनकर तैयार हो गयी । दुर्घटनाएँ कुरूपता और अव्यवस्था को जन्म देती हैं, सुव्यवस्था और सौन्दर्य को नहीं । इतनी सुन्दर-सुव्यवस्थित सृष्टि की उत्पत्ति किसी आकस्मिक सुयोग की परिणति नहीं हो सकती । उसकी गति एवं स्थिति के मूल में भी किसी अदृश्य 'सुपर इन्टेलीजेन्स' से युक्त सत्ता का परोक्ष नियन्त्रण है, उसी प्रकार जैसे कि किसी स्वसंचालित कम्प्यूटर पर किसी मनुष्य का होता है ।

प्रमाणों में अनुमान भी एक सशक्त प्रमाण है । दैनन्दिन जीवन में अनुमान के आधार पर कितनी ही बातों को सही मानना पड़ता है । प्रत्यक्ष प्रतीत होना-दिखाई पड़ना अथवा अनुभव में आना ही किसी वस्तु के अस्तित्व का एकमात्र प्रमाण नहीं है । किसी कवि ने अपनी रचना में अनुमान के आठ सशक्त प्रमाण दिए-

"दूर समीप, इन्द्रिय को हाना मन चंचल, सूक्ष्म, विवधान
तिरोधान, सजाती संग, अष्ट हेत धारो चित अंग ।।"

इसका भावार्थ है-जैसे पक्षी आकाश में उड़ता हुआ दूर चला जाता है, तब प्रतीत नहीं होता किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि पक्षी नहीं है समीप-जैसे नेत्रों में अंजन अत्यन्त निकट है पर अपने नेत्रों को दिखायी नहीं पड़ता। इस आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि अंजन नहीं है ।

'इन्द्रिय की अक्षमता' को ऐसे समझा जा सकता है। अन्धा रूप को नहीं देखता तो भी रूप का अभाव नहीं कहा जा सकता । 'मन चंचल' अर्थात् चंचल मन को पदार्थ की सत्ता नहीं मालूम पड़ती तो भी उसका अभाव नहीं कहा जा सकता । 'सूक्ष्म' सूक्ष्म परमाणु प्रतीत नहीं होते तो भी उनका अस्तित्व मौजूद है । 'व्यवधान' परदे के भीतर बैठा व्यक्ति दिखायी नहीं पड़ता, तो भी उसका अभाव नहीं माना जा सकता । 'तिरोधान' तारे दिन में नहीं दीखते तो भी वे मौजूद रहते हैं, सूर्य प्रकाश के कारण नहीं दृष्टिगोचर होते । 'सजातीय संग' वर्षा का जल तालाब या नदी में मिल जाता है, इससे उसकी अलग प्रतीति नहीं होती, किन्तु इससे बरसे हुए जल का अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता ।

संसार के विषयों एवं पदार्थों की तरह ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के माध्यम से परमात्मा को देखा अथवा अनुभव नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह इन्द्रियों का विषय नहीं है इन्द्रियातीत है । आँख केवल रूप को देखती है-बाह्य सौन्दर्य अपना कुरूपता का दर्शन करती है । अरूप का अदृश्य, किन्तु शाश्वत सौन्दर्य का वह दर्शन नहीं कर सकती । कान मात्र शब्द को ग्रहण कर सकते हैं, उनकी पकड़ सीमा बैखरी वाणी तक है । परा और पश्यन्ति वाणियों को ग्रहण कर सकने में समर्थ नहीं हैं, जिह्वा रसों की अनुभूति करती है, वह भी सीमित रसों की । रसातीत का वह अनुभव नहीं कर पाती । नासिका की घ्राण शक्ति गन्ध तक सीमित है । गन्धातीत को वह ग्रहण नहीं कर पाती । त्वचा का विषय स्पर्श है, स्पर्शातीत चीजों को वह नहीं अनुभव कर पाती । परमात्मा को अशब्दमस्पर्शम-रूपमव्ययम् कहा गया है । वह इन्द्रियातीत है, इन्द्रियगोचर नहीं हो सकता । शरीर की जितनी भी इन्द्रियाँ हैं, वे बहिर्मुखी हैं-"पराञ्चिरवानि व्यतृणत् स्वयम्भूः" में शास्त्रकार ने इसी सत्य का प्रतिपादन किया है । अपनी सीमा के बाहर इन्द्रियों में जाने की सामर्थ्य नहीं, वे स्थूल वस्तुओं को ही देख तथा अनुभव कर सकती हैं-अरूप, सूक्ष्मतम तथा अदृश्य अस्तित्ववान वस्तुओं को नहीं । जो इन्द्रियगोचर विषयों से परे किसी वस्तु की कल्पना ही नहीं कर सकते व परमात्मा की अगोचरसत्ता की अनुभूति कैसे कर सकते हैं ?

विचारणा एवं भाव सम्वेदनाएँ जीवन्त-तत्व हैं पर वैज्ञानिक शब्दावली में न तो उन्हें व्यक्त किया जा सकता है और न ही विज्ञान के आधारों पर उनकी सत्ता को प्रमाणित करना ही सम्भव है ।

ट्रिनिटी कालेज फ्लोरिडा के भूतपूर्व प्रो० स्टेनली कोंगडन कहते हैं कि "मैंने अगणित वैज्ञानिकों से पूछा कि वे मुझे विचार का सही रासायनिक फार्मूला बताएँ । उसकी लम्बाई, चौड़ाई, वजन, रंग और रूप, निवास स्थली से अवगत करायें । उसकी दिशा एवं गति के स्पन्दन का वर्णन करें । पर न तो कोई वैज्ञानिक ही उसका सही स्वरूप बता सका और न ही ऐसी परिभाषा सामने आयी जो अपने भौतिक फार्मूले अथवा व्याख्याओं से विचार की संरचना को व्यक्त कर सके । जब विचारों की व्याख्या भौतिक विज्ञान की भाषा में कर सकना सम्भव नहीं तो फिर ईश्वर जैसी सूक्ष्म सत्ता की अभिव्यक्ति उस भाषा में कैसे सम्भव हो सकती है ।

द्रव्य की परिभाषा करते हुए वैज्ञानिक कहते हैं कि जिसमें भार है तथा जो स्थान घेरता है, वह द्रव्य है । संसार के प्रत्येक पदार्थ पर वह नियम लागू होता है, पर परमात्मा इस नियम के अन्तर्गत नहीं आता । उसे भार एवं स्थानयुक्त पदार्थों की कोटि में नहीं रखा जा सकता । जब भी किसी द्रव्य की उत्पत्ति होती है, किसी न किसी काल (टाइम) और किसी न किसी जगह (स्पेस) में होती है । संसार के हर जड़-चेतन पदार्थ टाइम और स्पेस की

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिधि के भीतर आते हैं । पर वह परमसत्ता देश और काल के बन्धन में नहीं आती । ऋषि का वेदों में उद्घोष है-

'यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्याच्च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।।'

अर्थात्- जो भूत और भविष्य का तथा संसार में पैदा होने वाले हर घटक का अधिष्ठाता है, जो केवल आनन्द स्वरूप है, उस श्रेष्ठ ब्रह्म को नमस्कार है ।

वेब्स्टर विश्वविद्यालय के प्रख्यात दार्शनिक डा० मैरिट स्टेनली अपनी एक पुस्तक में लिखते हैं कि वर्षों पूर्व एक बार मैं पैंसिलवानिया में एक एकान्त सड़क के किनारे से गुजर रहा था कि उस निर्जन स्थान पर मैंने फूलों से लदी एक गुलाब की पौध को देखा । वह काँटेदार झाड़ियों तथा जंगली घास से घिरी हुयी थी । मीलों तक किसी मकान का अता-पता न था, न ही वहाँ लोगों की आबादी थी । गुलाब की यह झाड़ी किसी बीज से, हवा पानी चिड़िया या किसी जानवर द्वारा लायी गयी किसी दूरस्थित गुलाब की कलम से अकस्मात पैदा हो गयी, खिलकर फूलों से लदकर हँसने और सुगन्ध बिखेरने लगी, इस बात को असम्भव मानकर मैं अपनी अन्तःप्रेरणा से यह समझ गया कि किसी मनुष्य ने इसे सावधानीपूर्वक लगाया है । उस पौधे को लगाते हुए मैंने अपनी आँखों से तो नहीं देखा पर अन्तर्बोध की सच्चाई की मैं किसी भी हालत में उपेक्षा नहीं कर सका ।''

वे आगे लिखते हैं-सृष्टि के सन्दर्भ में भी जब गम्भीर चिन्तन करता हूँ तो मुझे तार्किक दृष्टि से भी यह बात शत-प्रतिशत सही जान पड़ती है कि इतनी सुव्यवस्थित संरचना का कोई न कोई समर्थ निर्माता अवश्य होगा । उत्तंग शिखर, विशाल सागर, नदियाँ, झरने, आकाश के टिमटिमाते तारे, सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह-नक्षत्र, नीहारिकाओं जैसी रचनाएँ तथा उनकी सुव्यवस्थित कार्य-प्रणाली किसी दुर्घटना की परिणति हो, इस प्रतिपादन को विवेक स्वीकार नहीं करता । सुनिश्चित रूप से ये कुशल और समर्थ निर्माता की देन हैं ।

आदि ऋषि मनु ने ईश्वर के अंश जीवात्मा को कर्मों का साक्षी मानते हुए उसे ईश्वर का सबसे बड़ा प्रमाण माना है । मनुस्मृति में वर्णन है-

आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथाऽऽत्मनः।
माऽवमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ।।

-मनु ८/८४

अर्थात्- आत्मा ही आत्मा की साक्षी है, आत्मा ही आत्मा की गति है । ऐसा जानकर तुम मनुष्यों की उत्तम साक्षी देने वाली आत्मा का अपमान न करो ।

अजस्र अनुदानों से भरी-पूरी परब्रह्म की सत्ता

परब्रह्म का भाण्डागार असीम है । वहाँ कमी किसी भी वस्तु की नहीं । वस्तुतः वह अपने आप में पूर्ण है । अपूर्ण को पूर्ण कर सकने वाली समर्थ-सत्ता ही अपने चारों ओर विद्यमान है । प्रश्न केवल उसके साथ सम्पर्क साधने और आदान-प्रदान कर द्वार खोलने वाली घनिष्टता को बढ़ाने का है । वह प्रयास प्रक्रिया जैसे-जैसे प्रखर होती चली जाती है, वैसे-वैसे लघु को महान बनने-तद्रूप विकसित होने का अवसर मिल जाता है ।

परब्रह्म को एक प्रकार का पावर ग्रिडस्टेशन कहा जा सकता है जिससे अनेकों बिजलीघर जुड़े होते हैं । यदि पन्द्रह वॉट की क्षमता की अपनी काया को सामर्थ्यवान बनाकर सौ वॉट की विद्युत प्राप्ति योग्य बनाया जा सके तो उस विद्युत भण्डार की ओर से कमी नहीं होने वाली । विश्व चेतना रूपी विराट् पुरुष के साथ सम्पर्क जोड़कर सामान्य स्तर के साधक भी असामान्य स्तर प्राप्त करते देखे जा सकते हैं ।

दैवी शक्तियों के किसी व्यक्ति-विशेष पर अनुग्रहीत होने और अहेतुकी कृपा करने की मान्यता व्यर्थ है । यहाँ सबके लिए समान रूप से द्वार खुला है । पक्षपात जैसा प्रचलन यहाँ है ही नहीं । अपने-पराये का भेदभाव यदि दैवी शक्तियाँ भी करने लगें तो फिर पशुता और असुरता का लांछन भी उन्हीं के कन्धों पर लदेगा । तब वे वैसी न रहेंगी जैसी कि होनी चाहिए और हैं ।

सूर्य के लिए सभी समान हैं । चन्द्रमा की शीतल किरणों, प्राणवायु, शीत-ग्रीष्म के सम्बन्ध में भी यही बात है । वे अपनी ओर से सभी को समान रूप से प्रभावित करती हैं, सर्वत्र समान रूप से अपना असर डालती हैं । यह व्यक्ति विशेष पर निर्भर है कि उसके साथ सघनता स्थापित करने और विलग रहने का कौन कितना प्रयत्न करे और उससे परिणति का कैसा आधार खड़ा करे ?

परब्रह्म और दैवी शक्तियों में मूलतः एकता रहते हुए भी उनके मध्य अन्तर उतना ही है जितना कि जलाशय और उसके ऊपर थिरकने वाली जल तरंगों का । दृश्य अनुशासन की विधि-व्यवस्था के रूप में विद्यमान सत्ता की वे अभिव्यक्ति मात्र हैं । व्यक्ति एक ही है पर उसके पाँव, हाथ, उँगलियाँ अपना-अपना काम अलग-अलग रूप में करती हैं । यही बात आँख, कान, जिह्वा आदि के सम्बन्ध में भी है । सभी हैं तो कार्यसत्ता के अविच्छिन्न अंग ही । फिर भी उनके जिम्मे जो-जो काम सौंपे गए हैं, जिस स्तर की उनकी संरचना हुई है, उसी परिधि में उसके क्रिया-कलाप भी चलते हैं । उनकी कार्य-पद्धतियों में अन्तर भी रहता है और स्वरूप में भी, फिर तत्वतः इसकी कोई पृथक् सत्ता नहीं है । मूलभूत कार्य सत्ता के अभिन्न अंग ही उन्हें माना जा सकता है । दैवी-शक्तियों के, देवताओं के, कृपा-बरसाने वाली अदृश्य सत्ताओं के सम्बन्ध में भी यही बात है । इस देव समुदाय में वे सभी अदृश्य चेतन घटक आ जाते हैं जिनकी प्रकृति उत्कृष्ट-उदारता के साथ सम्बद्ध है ।

इस चेतन-समुदाय में पितर वर्ग के अदृश्य सहायकों को भी सम्मिलित किया जाता है, जो मनुष्य से आगे बढ़कर देवत्व की भूमिका में प्रवेश कर रहे हैं किन्तु अभी उस स्तर में पूर्ण परिपक्व नहीं हुए हैं । ऐसी आत्माएँ मनुष्यों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क साधने और कल्याणकारी सहायता करने में भी रुचि लेती हैं, जबकि पूर्ण देवत्व प्राप्त कर चुकने वाली शक्तियाँ व्यक्तियों के साथ मोह न रखकर व्यापक प्रसंगों पर ही ध्यान देती हैं और जो करना है वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हर सत्पात्र को समान रूप से उपलब्ध हो इतना भी ध्यान रखती हैं । महापुरुष स्तर के व्यक्ति परब्रह्म की प्रखरता व पवित्रता को अपने जीवन में उतार कर अपनी क्षमता असाधारण रूप से बढ़ा लेते हैं, लेकिन इनसे भी ऊँची भूमिका ऋषिकल्प योगीजनों की है । वे अपने सुपर चेतन को परिष्कृत, विकसित करते-करते उच्चतम स्तर तक पहुँचा देते हैं ताकि परब्रह्म का तेज उनमें अधिकाधिक मात्रा में अवतरित हो एवं वे उस महान स्तर की देवोपम भूमिका निभा सकें । ऐसे देव को भूसुर कहना तनिक भी अत्युक्तिपूर्ण नहीं होगा ।

परब्रह्म की इन दैवी शक्तियों को इस प्रकार अनेकानेक वर्गों में बाँटा जा सकता है एवं इनके उदाहरण भी पुराण-आख्यानों में पाए जा सकते हैं । विक्रमादित्य के साथ पाँच ऐसे 'वीरों' का सम्बन्ध था जो समय-समय पर उन्हें इच्छित सहायता करते थे । वे समय-समय पर दूरगामी हितों को ध्यान में रखते हुए मार्गदर्शन एवं सहयोग भी दिया करते थे । अलादीन के चिराग की कथा भले ही कल्पनालोक ही हो, पर उसमें चिराग के माध्यम से सशक्त अदृश्य आत्माओं के सहयोग का तथ्य ही सन्निहित है ।

सुकरात का 'डेमन' प्रख्यात था । वह कोई अदृश्य आत्मा थी जो सतत् सुकरात के साथ बनी रहती थी अथवा उनके बुलाते ही आ उपस्थित होती थी । मात्र दर्शन हेतु नहीं अपितु सहयोग करने के लिए । सुकरात अपनी हर समस्या व नये चिन्तन के लिए महत्वपूर्ण विषयों पर उससे परामर्श करते तथा तद्नुसार ही कार्य करते थे । अन्यान्यों को तो उसका दर्शन नहीं होता था पर सुकरात उसके साथ वैसा ही सम्पर्क परामर्श करते थे, मानो कोई जीवित व्यक्ति सामने बैठा हो ।

दैवी सहायता के अनुदान प्रत्यक्ष परोक्ष रूप में सुपात्रों को पुण्य-प्रयोजनों के निमित्त प्राप्त होने के कई उदाहरण मिलते हैं । विश्वामित्र यज्ञरक्षा हेतु राम व लक्ष्मण को दशरथ से आग्रहपूर्वक ले गए थे और वहाँ उन दोनों को बला-अतिबला विद्या सिखाई थी । बला 'सावित्री' को एवं अतिबला 'गायत्री' को कहते हैं । सावित्री अर्थात् भौतिकी । गायत्री अर्थात् आत्मिकी । इन्हीं विभूतियों के कारण वे लंका विजय और रामराज्य की संस्थापना के भिन्न प्रकृति के, किन्तु परस्पर पूरक कार्य कर सकने में समर्थ हुए थे । विश्वामित्र ही राम को सिया स्वयंवर में अपनी ओर से ले पहुँचे थे एवं ऋषि रक्त सिंचित बीज से विकसित जनक सुता से अवतार राम विवाह के स्वयं सूत्रधार बने थे ।

ऐसे ही सहयोग अन्य महामानवों, ऋषिकल्प दिव्यात्माओं ने अपने साथ जुड़े हुए सत्पात्रों को प्रदान किये हैं एवं उनकी अपूर्णता को पूर्णता में बदलने वाला असाधारण सहकार किया, भावभरा अनुदान दिया है । समर्थ गुरु रामदास और शिवाजी के मध्यवर्ती आदान-प्रदान की कथा प्रख्यात है । समर्थ ने ही अपने सत्पात्र को खोजा । उसे उद्बोधन देकर आदर्शवादी महानता अपनाने और तदनुरूप जीवन जीने के लिए प्रोत्साहित किया । बात आगे बढ़ी तो अनुदान देने से पूर्व यह भी जाँचा कि पात्र-कुपात्र का चयन करने में कहीं कोई भूल तो नहीं हो रही ।

ठीक इसी से मिलते-जुलते आदान-प्रदान चाणक्य और चन्द्रगुप्त के, रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द के, विरजानन्द और दयानन्द के तथा प्राणनाथ और छत्रसाल के मध्य भी चले हैं । यदि इन युग्मों को पृथक् करके देखा जाय तो दोनों ही अपूर्ण रह जाते हैं । अन्धे और लँगड़े के बीच परस्पर सहन सहयोग जुड़ा तो दोनों ही नदी पार करने में सफल हुए । पृथक्-पृथक् रहते, सहयोग न साधते तो सम्भवतः दोनों में से किसी को भी यह श्रेय न मिलता जो एकात्मता के सहारे बन पड़ा ।

मीरा का विष का प्याला पीना और अदृश्य सत्ता द्वारा उस हलाहल को निगल जाना एक रहस्य नहीं, परब्रह्म की सत्ता व उनकी सहायता का बोधक प्रसंग है । दुर्वासा के शाप से त्रस्त राजा अम्बरीष की सहायता हेतु स्वयं सुदर्शन चक्र आया । समुद्र से टिटहरी के अण्डे दिलाने में सहायता हेतु भगवन् सत्ता ही अगस्त्य मुनि के रूप में प्रकट हुई । कोई अदृश्य बाजीगर ही था जिसने हनुमान को समुद्र लाँघने हेतु अपरिमित सामर्थ्य देकर चमत्कार दर्शाया । ये सारे प्रसंग चाहे वे ऊँची स्थिति में पहुँचे साधारण मनुष्य हों अथवा तपःपूत ऋषिगण, अदृश्य सहायक हों अथवा पितरगण, एक ही तथ्य सत्यापित करते हैं कि परब्रह्म असीम सामर्थ्यों का समुच्चय है । सुपात्र को दैवी अनुदान किसी भी माध्यम से मिलते रह सकते हैं । उसके लिये याचना नहीं अपितु प्रामाणिकता सिद्ध करनी होती है ।

विज्ञानमानन्द ब्रह्म

हमारा जीवन एक अखण्ड सत्ता नहीं है । वह अनेक खण्डों में बँटा हुआ है । वह बरसों में बँटा है, वर्ष महीने में खण्डित है और महीने दिवस-रात्रि में विभक्त हैं । हमारा जीवन बचपन, जवानी और बुढ़ापे की मंजिलों में भी बँटा है । हमारी चेष्टाएँ बँटी हुई हैं । हमारी एषणाएँ बँटी हुई हैं । हमारे प्राण भी श्वासोच्छवास में बँटे हुए हैं ।

हम सबका व्यक्तित्व भी अलग-अलग है, गुण, कर्म, स्वभाव सब भिन्न-भिन्न हैं, काम जुदा है, काम के तरीके भी जुदा हैं । इच्छाएँ और भावनाएँ भी सबकी अलग-अलग हैं । रास्ते भी अलग हैं और रास्तों की पगडण्डियाँ भी चक्करदार भूल-भुलैयाँ भी अपनी-अपनी हैं ।

मनुष्य-मनुष्य में व्याप्त यह विविधता अत्यन्त आकर्षक और आश्चर्यजनक है, किन्तु इन विविधताओं को एक सूत्र में बाँधने वाली एकता भी इसमें कम आश्चर्यजनक नहीं । कई ऐसी प्रवृत्तियाँ, आकांक्षाएँ और भावनाएँ हैं जो हम सब में समान हैं । इसमें सबसे प्रमुख आनन्द की भावना है । आनन्द के लिए ही हम जीते हैं । आनन्द के लिए ज्ञान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राप्त है और आनन्द के लिए हमारे समस्त कार्य-कलाप चलते हैं ।

आनन्द ही हमारे जीवन की प्रेरणा है किन्तु हमें भौतिक वस्तुओं से जो आनन्द मिलता है वह क्षणिक एवं अस्थायी होता है जो वह आनन्द की अनुभूतियाँ भी कष्टों की अनुभूतियों में उलझी रहती हैं । परिणाम यह होता है कि परिपूर्ण आनन्द का विकास हमारी अन्तरात्मा में कभी हो ही नहीं पाता । आनन्द की भावना हमारी अन्तरात्मा की प्रमुख भावना है । आत्मा का अंग बनकर ही वह उसमें निवास करती है । इस भावना के स्वरूप को समझने से हमें आनन्द के स्वरूप को समझने में सहायता मिल सकती है ।

आत्मा की आनन्द-मूलक प्रवृत्तियों में पाँच मुख्य हैं- ज्ञान, सौन्दर्य, प्रेम, कल्याण और निर्माण । इन स्वभावगत भावनाओं के सन्तोष के लिए ही हम पुरुषार्थ करते हैं और इनके परितोष से ही हमारी अन्तरात्मा परिपूर्ण आनन्द की अनुभूति करती हैं ।

मनुष्य मात्र के चरित्र में ये पाँच भावनाएँ अनिवार्य रूप में विद्यमान रहती हैं । इसलिए इन्हें हम मनुष्य चरित्र की अनिवार्य भावनाएँ कह सकते हैं । इनके विकास से मनुष्य का व्यक्तित्व निखरता है और इनका पूर्ण विकास ही मनुष्य को सार्थक जीवन बिताने का अवसर होता है।

आनन्दमय विराट् विश्व की आत्मा में भी यही भावनाएँ काम करती हैं। भावनाएँ सदैव चेतना-पुरुष में रहती हैं । इसीलिए हम विश्व को भी केवल अचेतन प्रकृति नहीं बल्कि एक चेतन विश्व-पुरुष मानते हैं। मनुष्य की भी हम विश्व-पुरुष का एक अंग मानते हैं अतः उसके चरित्र में भी इन्हीं मूल प्रवृत्तियों की प्रधानता है ।

इस आधारभूत सत्य का अनुभव होने के बाद यह सत्य ही आनन्दमय जीवन का प्रेरणा-स्रोत बन जाता है । क्योंकि मनुष्य के सब कार्य इन मूलभूत भावनाओं की तुष्टि के लिए ही होते हैं । सच तो यही है कि हम अपनी निर्माणमूलक प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करने के लक्ष्य से ही सृजन कार्य करते हैं और दूसरों की प्रेम-भावना की तृप्ति के लिये प्रेम करते हैं । सौन्दर्य के प्रति आकर्षण भी सहज वृत्ति है । यह भावना हमें प्रतिक्षण जीवन के अनेक उल्लासप्रद कार्यों की प्रेरणा देती है । हमारा जीवन आनन्दमय होने की अपेक्षा रखता है । अतः इन पाँच भावनाओं-निर्माण भावना, ज्ञान-भावना, सौन्दर्य-भावना, श्रद्धा एवं प्रेम भावना, कल्याण-भावना की परिपूर्णता से ही स्थायी आनन्द की प्राप्ति होती है और जीवन का एकमात्र अन्तिम लक्ष्य अखण्ड आनन्द की प्राप्ति होकर जीवन-पूर्ण आनन्दमय बनता है । जीवन कृतार्थ, कृतकृत्य हो जाता है । हमारे सारे प्रयत्न इसी विशुद्ध परिपूर्ण परम आनन्द की प्राप्ति के लिए हों ।

ब्रह्म की सर्वव्यापकता

ब्रह्म का न आदि है और न अन्त । वह अखण्ड है । उसके खण्ड-खण्ड नहीं किये जा सकते । इस पृथ्वी पर की समस्त वस्तुओं की योजना इसी ब्रह्म से परिपूर्ण है। अनन्त ब्रह्माण्ड भी इसी के द्वारा प्रकाशित है । विश्व के समस्त तथा हर एक पदार्थ में व्याप्त रहने पर भी इसकी पूर्णता में किसी प्रकार की कमी नहीं आने पाती क्योंकि वह सदा ही पूर्ण है और पूर्णता ही उसका स्वभाव एवं प्राकृतिक गुण है ।

यह ब्रह्म पूर्ण से भी पूर्ण है । इसलिए जिस वस्तु में यह पूर्ण ब्रह्म समाविष्ट रहेगा, वह वस्तु भी पूर्ण रहेगी । इसका अनुभव सिर्फ चैतन्य पदार्थों में ही नहीं करना है । ये तो संसार के जड़ पदार्थों में भी उसी प्रकार ओत-प्रोत है जिस प्रकार चेतन पदार्थों में । इसलिए जड़ और चेतन दोनों में ही उनकी पूर्णता का साक्षात्कार करना होगा । लेकिन हमारी ये स्थूल आँखें इस भूमण्डल के चप्पे-चप्पे को खोज डालें तब भी ब्रह्म का दर्शन नहीं कर पातीं । ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर पातीं। तोते की तरह भगवान को रट लेने से तो किसी भी जन्म में भगवान का दर्शन नहीं हो सकता । स्वर्ग की पवित्र तेजोमय किरण से जिस दिन हमारी स्थूल आँखें प्रकाश प्राप्त कर लेंगी, माया रूपी अन्धकार से निकल भागेंगी जिस दिन कामरूपी सूर्य के प्रकाश से हमारे मन से शंकाएँ और भ्रम दूर हो जायेंगे, उसी दिन हम धन्य तथा कृतार्थ हो जावेंगे । उस दिन संसार को मोहित करने वाला भगवान का सत् चित् आनन्दमय रूप देखकर उसका दर्शन करके हम धन्य होंगे।

पर जब तक इस दिव्य चक्षु का उद्घाटन नहीं होता अर्थात् जब तक दिव्य नेत्र नहीं खुलते तब तक सारे साधन बेकार हैं । केवल दिखावा मात्र है । जिस दिन दिव्य चक्ष खुल जाएँगे उस दिन प्रतीत होगा कि इस संसार में कोई भी पदार्थ जड़ नहीं है । सबके भीतर प्राण, चेतना, मन और विज्ञान प्रतिष्ठित है, सब के भीतर लीलामय भगवान निवास करके अनन्त गुणों का आनन्द उपभोग कर रहे हैं । संसार में जितनी भी वस्तु है वह चाहे व्यक्त हों, अव्यक्त हों या व्यक्तोन्मुखी हों प्रत्येक में भगवान अव्यक्तरूप से मौजूद हैं । दिव्य-चक्षु प्राप्त हो जाने पर अव्यक्त रूप से स्थित भगवान की लीलाओं का दर्शन होना आरम्भ हो जाता है प्रत्येक वस्तु के अन्तर में भी भगवान चित् रूप से विराजमान होकर भिन्न-भिन्न रसों का उपभोग करते हुए आनन्द लेते हैं । एक ही ब्रह्म अनन्त रूप से अनेक वस्तुओं में निवास कर रहा है लेकिन इससे यह नहीं सोच लेना चाहिए कि वह विभक्त होकर अंश रूप से व्याप्त है । भगवान विभक्त नहीं हो सकते । वे तो पूर्ण हैं और पूर्ण रहकर ही प्रत्येक में व्याप्त हैं । काल, स्थान तथा स्थिति का उनके ऊपर प्रभाव नहीं पड़ता । वे अभेद और अखण्ड होकर ही समभाव से विराजमान होकर अपनी लीला किया करते हैं । साधक की इस लीला को देख सकने की ही दृष्टि प्राप्त करनी है ।

पूर्ण से पूर्ण ही उत्पन्न हुआ

न केवल चेतन समुदाय अपितु सृष्टि का प्रत्येक कण पूर्णता के लिए लालायित और गतिशील है । भौतिक जीवन में जिसके पास स्वल्प सम्पदा है वह और अधिक की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है, पर जो धनाढ्य हैं उन्हें भी सन्तोष नहीं । उसी के परिमाण में वह और अधिक प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील दिखाई देता है । बड़े-बड़े सम्राट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तक अपनी इस अपूर्णता को पाटने के लिए आपाधापी मचाते और दूसरे साम्राज्यों की लूटपाट करते पाये जाते हैं तो लगता है सृष्टि का हर प्राणी साधनों की दृष्टि से अपूर्ण है। इस दिशा में पूर्णता प्राप्त करने की होड़ में हर किसी में चढ़ी बैठी दिखाई देती है ।

इतिहास का विद्यार्थी अपने आपको गणित में शून्य पाता है तो वह अपने आपको अपूर्ण अनुभव करता है, भूगोल का चप्पा छान डालने वाले को संगीत के स्वर बेचैन कर देते हैं। उसे अपना ज्ञान थोथा दिखाई देने लगता है, बड़े-बड़े चतुर वकील और बैरिस्टरों को जब रोग बीमारी के कारण डाक्टरों की शरण जाना पड़ता है तो उनका अपने ज्ञान का-अभिमान चकनाचूर हो जाता है । बौद्धिक दृष्टि से हर प्राणी सीमित है और हर कोई अगाध ज्ञान का पण्डित बनने को तत्पर दिखाई देता है ।

नदियाँ अपनी अपूर्णता को दूर करने के लिए सागर की ओर भागती हैं; वृक्ष आकाश छूने दौड़ते हैं, धरती स्वयं भी अपने आपको नचाती हुई न जाने किस गन्तव्य की ओर अधर आकाश में भागी जा रही है, अपूर्णता की इस दौड़ में समूचा-सौर मण्डल और उससे परे का अदृश्य संसार सम्मिलित है । पूर्णता प्राप्ति की बेचैनी न होती तो सम्भवत: संसार में रत्ती भर भी सक्रियता न होती सर्वत्र नीरव सुनसान पड़ा होता। न समुद्र उबलता, न मेघ बरसते, न वृक्ष उगते, न तारागण चमकते और न ही वे विराट् की प्रदक्षिणा में मारे-मारे घूमते ।

जीवन की सार्थकता पूर्णता प्राप्ति में है, इसका तात्पर्य यह हुआ कि अभी हम अपूर्ण हैं, असत्य हैं, अन्धकार में हैं । हमारे सामने मृत्यु मुँहबाये खड़ी है । अन्धकार, असत्य और मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए हम प्रकाश, सत्य और अमरता की ओर अग्रसर होना चाहते हैं । पर हो कोई नहीं पाता । हर कोई अपने आपको अशक्त और असहाय पाता है, अज्ञान के अन्धकार में हाथ-पैर पटकता रहता है ।

इस अपूर्णता पर जब कभी विचार जाता है तब एक ही तथ्य सामने आता है और वह है-'परमात्मा' अर्थात् एक ऐसी सर्वोपरि सर्वशक्तिमान सत्ता जिसके लिए कुछ भी अपूर्ण नहीं है । वह सर्वज्ञ है, सर्वव्यापी, सर्वदृष्टा, नियामक और एकमात्र अपनी इच्छा से सम्पूर्ण सृष्टि में संचरण कर सकने की क्षमता से ओत-प्रोत है ।

तैत्तिरीयोपनिषद् की तृतीय बल्ली-भृगु बल्ली में एक महत्वपूर्ण आख्यायिका आती है । भृगु अपने पिता वरुण के पास जाकर कहते हैं । "**अधीहि भगवो ब्रह्मेति**" हे तात! मुझे ब्रह्मज्ञान की शिक्षा दीजिये ।" वरुण परीक्षा के लिए अपने पुत्र से रूप, सौन्दर्य, स्वास्थ्य, अपार सम्पत्ति और सुन्दर स्त्रियाँ माँगने को कहते हैं, पर भृगु प्रश्न करते हैं, क्या अपार सौन्दर्य पाने के बाद में मृत्यु से बच सकता हूँ ? क्या सम्पत्ति मुझे अमर बना सकती है? क्या वनिताधिक भोग मुझे नष्ट होने से बचा लेंगे ? यदि नहीं, तो यह सब कुछ मुझे नहीं चाहिए, जिससे किसी प्रकार की कामनाएँ शेष न रहें मुझे वह ज्ञान दीजिये ।"

इस प्र प्रसन्न होकर वरुण कहते हैं-

"**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्मेति ।**"

अर्थात् हे भृगु ! जिससे समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जीवित रहते हैं और अन्त में उसी में विलीन हो जाते हैं ।

विकासवाद के जनक डार्विन ने यह सिद्धान्त तो प्रतिपादित कर दिया कि प्रारम्भ में एककोशीय जीव-अमीवा की उत्पत्ति हुई यही अमीवा फिर 'हाइड्रा' में विकसित हुआ, हाइड्रा मछली, मण्डूक, सर्पणशील पक्षी, स्तनधारी जीवों आदि की श्रेणियों में विकसित होता हुआ वह बन्दर की शक्ल तक पहुँचा, आज का विकसित मनुष्य शरीर इसी बन्दर की सन्तान है । इसके लिए शरीर रचना के कुछ खाँचे भी मिलाये गये । जहाँ नहीं मिले वहाँ यह मान लिया गया कि वह कड़ियाँ लुप्त हैं और कभी समय पर उनकी भी जानकारी हो सकती है ।

इस प्रतिपादन में डार्विन और इस सिद्धान्त के अध्येता यह भूल गये कि अमीवा से ही नर-मादा दो श्रेणियाँ कैसे विकसित हुईं । अमीवा एककोशीय था उससे दोकोशीय हाइड्रा पैदा हुआ। क्या अन्य सभी जीव इसी गुणोत्तर श्रेणी में आ सकते हैं । यदि सर्पणशील जीवों से परधारी जीव विकसित हुए तो वह कृमि जैसे चींटि, पतंगे, मच्छर आदि कृमि जो उड़ लेते हैं, वे किस विकास प्रक्रिया में रखे जायेंगे ? पक्षी, जल-जन्तु और कीड़े सभी माँस खाते हैं । स्तनधारी उन्हीं से विकसित हुए तो गाय, भैंस, बकरी, हाथी आदि माँस क्यों नहीं खाते । हाथी के दाँत होते हैं हथनियों के नहीं, मुर्गे में कलँगी होती है मुर्गी के नहीं । मोर के रंग-बिरंगे पंख और मोरनियाँ बिना पंख वाली, विकास प्रक्रिया में एक ही जीव श्रेणी में यह अन्तर क्यों ? प्राणियों में दाँतों की संख्या, आकृति, प्रकृति में अन्तर पाया जाता है । घोड़े के स्तन नहीं होते बैल के अण्डकोश के पास स्तन होते हैं । पक्षियों की अपेक्षा सर्प और कछुये हजारों वर्ष की आयु वाले होते हैं, ये सभी असमानताएँ इस बात का प्रमाण हैं कि सृष्टि रचना किसी विकास का परिणाम नहीं, अपितु किसी स्वायम्भू सत्ता द्वारा विधिवत् रची गई कलाकृति है ।

विकासवाद के सिद्धान्त के समर्थक यह कहते हैं कि अपने सुविधापूर्ण जीवन के लिए इच्छा ने उन जीवों के शरीर संस्थानों में अन्तर किया और यह अन्तर स्पष्ट होते-होते एक जीव से दूसरी किस्म का उसी से मिलता हुआ जीव विकसित होता गया । थोड़ी देर के लिए यह बात मान लें और मनुष्य शरीर को इस कसौटी पर कसें तो भी बात विकासवाद के विपरीत ही बैठेगी । मनुष्य कब से पक्षियों को देखकर आकाश में स्वतन्त्र उड़ने को लालायित है किन्तु उसके शरीर में कहीं कोई पंख उगा। क्या समुद्र में तैरते जहाज देखकर हर किसी का मन करने लगता है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि हम भी गोता लगायें और मछलियों की तरह कहीं से कहीं जाकर घूम आयें, पर वह डूबने से बच पायेगा क्या?

यह प्रश्न अब उन लोगों को भी विपरीत दिशा में सोचने और परमात्म-सत्ता के अस्तित्व में होने की बात मानने को विवश करते हैं, जो कभी इस सिद्धान्त के समर्थक रहे हैं । राबर्ट ए मिल्लीकान का कथन है- विकासवाद के सिद्धान्त से पता चलता है कि जिस तरह प्रकृति अपने गुणों और नियमों के अनुसार पदार्थ पैदा करती है, उससे विपरीत परमात्मा में ही वह शक्ति है कि वह अपनी इच्छा से सृष्टि का निर्माण करता है । प्रकृति बीज से सजातीय पौधा पैदा करती है आम के बीज से इमली पैदा करने की शक्ति प्रकृति में नहीं है । इस तरह के बीज और ऊपर वर्णित विलक्षण रचनाएँ पैदा करने वाली सत्ता एकमात्र परमात्मा ही हो सकती है । वही अपने आप में एक परिपूर्ण सत्ता है और वही विभिन्न इच्छाओं, अनुभूतियों, गुण तथा धर्म वाली परिपूर्ण रचनाएँ सृजन करता है ।

क्रमिक विकास को नहीं भारतीय दर्शन से पूर्णता से पूर्णता की उत्पत्ति मानता है । श्रुति कहती है ।

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

अर्थात्- पूर्ण परमब्रह्म परमात्मा से पूर्ण जगत-पूर्ण मानव की उत्पत्ति हुई । पूर्ण से पूर्ण निकाल देने से पूर्ण ही शेष रहता है ।

नदी का एक किनारा समुद्र से जुड़ा रहता है और दूसरा किनारा उससे दूर होता है । दूर होते हुए भी नदी समुद्र से अलग नहीं । नदी को जल समुद्र द्वारा प्राप्त होता है और पुनः समुद्र में मिल जाता है । जगत उस पूर्ण ब्रह्म से अलग नहीं । मनुष्य उसी पूर्ण ब्रह्म से उत्पन्न हुआ इस लिए अपने में स्वयं पूर्ण है। यदि इस पूर्णता का ज्ञान नहीं होता, यदि मनुष्य कष्ट और दुःखों से त्राण नहीं पाता तो इसका एकमात्र कारण उसका अज्ञान और अहंकार में पड़े रहना ही हो सकता है । इतने पर भी पूर्णता हर मनुष्य की आन्तरिक अभिलाषा है और वह नैसर्गिक रूप से हर किसी में विद्यमान रहती है ।

सच्चा सुख अन्ततः है कहाँ ?

स्त्री-पुरुष, राजा-रंक, धनी-निर्धन, अशक्त-सशक्त सभी की यह कामना होती है कि उन्हें सुख मिले । सुख का सच्चा स्वरूप और उसकी वैज्ञानिक आवश्यकता पर बहुत थोड़े-से व्यक्तियों ने विचार किया होता है । अधिकांश तो शरीर की स्थूल उपभोग सामग्रियों को ही सुख का साधन मानते हैं और इन्हीं के पीछे अंधी दौड़ लगाते रहते हैं । यह साधन और ये सुख इतने निर्बल होते हैं कि उनसे व्यक्ति की आन्तरिक पिपासा शांत नहीं होती। क्षणिक सुख का जो आभास होता है वह भी अंततः अग्नि में घी डालने का ही काम करता है । इससे सुख प्राप्ति की कामना प्रबल होती है और उनके प्रति राग या आसक्ति बन जाती है ।

यह भाव सुख न रहकर दुःख बन जाता है क्योंकि शारीरिक सुख अधोगामी होते हैं, उनसे शक्तियों का पतन होता है-और यह अशक्तता ही दुःख का कारण होती है । इसलिये इन्द्रियों की बाह्य लिप्सा को सुख नहीं मानते ।

धन-दौलत जिसे सुख का साधन मानते हैं वह भी सुख कहाँ दे पाता है । ऐसा रहा होता तो हेनरी फोर्ड, राकफेलर आदि प्रमुख धनपति महासुखी रहे होते । धन के कारण उत्पन्न होने वाला भय, आलस्य, भोग आदि से मनुष्य का हृदय हर घड़ी काँपता रहता है । धनिकों को थोड़ा घाटा लगा कि हार्टफेल हुआ । यह बात बताती है कि धन का साहसी भावनाओं से पूर्णतया सम्बन्ध विच्छेद है अतः भयदायक परिस्थितियों में रहकर विपुल धन सम्पत्ति का स्वामी होकर भी मनुष्य सुखी रह सकेगा, इसमें संदेह ही है ।

शारीरिक दृष्टि से बहुत मोटा या बलवान होने में भी स्थिरता नहीं है । संसार की अन्य वस्तुओं की तरह शरीर में भी परिवर्तन होता रहता है। आज की स्वस्थ अवस्था सदैव इसी तरह बनी रहेगी, इसकी कहीं निश्चितता नहीं है ।

एक बात यह भी है कि शरीर की दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति भी कई बार अहंकार प्रदर्शन और दूसरों पर अपनी धाक जमाने की भावना से कुत्सित और नृशंस कर्म करने लगते हैं ! अपराधों के वैधानिक दंड से मनुष्य बचाव कर सकता है किन्तु पाप की प्रक्रिया जब मस्तिष्क में विद्रूप उत्पन्न करती है तो मनुष्य के बाह्य और आन्तरिक जीवन में अशांति की आँधी छा जाती है । ऐसे व्यक्तियों का अंत सदैव ही बड़ा निर्मम, निर्दय और भयानक हुआ है ।

तब फिर क्या सौन्दर्य को सुख मान लें ? अपने पास भरा-पूरा परिवार है उससे क्या सुख मिलता है । बहुत पढ़ा-लिखा है इससे क्या सुखी है ? सोचते चले जाइये । एक-एक परिस्थिति पर पूर्णतया विचार कर लीजिये । बाह्य साधन सुख नहीं दे सकते । सौन्दर्य का आकर्षण मनुष्य को पतित बना देता है, फिर वह सदैव साथ रहने वाला भी तो नहीं है । परिवार में संख्या तो अधिक है किन्तु बेटे-बाप में नहीं बनती। बच्चियों की शादी की समस्या सताती है । बेटे दुष्ट और दुर्गुणी हों, स्त्रियाँ फूहड़ हों तो नारकीय यंत्रणाएँ देखने के लिये दूर जाने की आवश्यकता न होगी।

तथाकथित अर्थकरी विद्या भी मनुष्य को संतुष्ट नहीं कर सकी । आज शिक्षा का प्रसार हुआ है पर उसी अनुपात में बेकारी भी बढ़ी है । दिखावट, बनावट, फैशन-परस्ती, फिजूलखर्ची आदि बुराइयाँ आज अधिकांश पढ़े-लिखे लोगों में ही दिखाई देती हैं । फलस्वरूप वे अशिक्षितों से भी अधिक दुःखी रहते देखे जाते हैं । ऐसी दशा में शिक्षा को भी सुख का मूल कैसे मान लें ।

मनुष्य के दुःख का प्रमुख कारण उसके निजत्व की अज्ञानता है । इस कारण मनुष्य का दृष्टिकोण ही भिन्न हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाता है । जिस स्थिति में हैं उसी को मानकर जीवन का सारा क्रिया-व्यापार चलता है । इन व्यवसायों में जब विघ्न उत्पन्न होते हैं तो भाग्य को दोष देते हैं । भगवान को कोसते, रोते, बिलखते रहते हैं ।

हमारी स्थिति ठीक उस नाटक के राजा की सी है जो नाटक समाप्त होने पर भी इस बात पर अड़ जाता है कि मेरा वह खजाना, रानी, सेना, सिपाही लाओ नहीं तो घर नहीं जाऊँगा । तब नाटक कंपनी का मालिक उसे समझाता है कि भाई तुम्हें राजा तो बनाया था । तुम सचमुच राजा तो नहीं हो । एक निर्धन व्यक्ति हो जिसे पारिश्रमिक देकर इस कंपनी में भरती किया था ।

ऐसे वाबले राजा पर लोग हँसते हैं, कहते हैं, वह बिल्कुल बुद्धिहीन है । पर हम सब ठीक उस राजा जैसे ही हैं जो अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर हाड़-माँस की इस मानव देह पर अभिमान कर बैठे हैं । प्रत्येक बात, सुख और सुविधाओं का चिंतन इस पंचभौतिक शरीर की दृष्टि से ही करते हैं पर जब हम इस जीवन का नाटक खत्म होता है और हम शरीर के स्टेज से उतार दिये जाते हैं, कितने दुःखी हो सकते हैं इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

इस संसार में वही परमात्मा विभिन्न रूपों में रूपान्तरित होकर अपना प्रकाश फैला रहा है । वह कण-कण में समाया है । वह साक्षी है, वह नित्य, अविनाशी, परमात्मा ही सच्चे आनंद का स्रोत है, उसी को जानने की प्रेरणा देते हुए उपनिषद्कार ने लिखा है-

भुर्भुवः स्वस्त्रयो लोका व्याप्त भोम्बाह् मतोबुहि ।
स एव तथ्यतो ज्ञानी यस्तब्देति विचक्षणा ।।

"अर्थात् इस पृथ्वी, आकाश और पाताल में जो सर्वत्र विद्यमान परमात्मा है वही जानने योग्य है । उसे जाने बिना मनुष्य दुःख क्लेश और संताप से विमुक्त नहीं हो सकता ।"

मनुष्य जीवन में सात्विकता की ऊँची कक्षा प्राप्त कर लेना ही सर्वसुलभ और सहज उपाय है, इसके लिए कहीं जटिल ऊहापोह की आवश्यकता नहीं । निष्काम-भावना से संसार के सम्पूर्ण कर्मों का पालन करते हुए मनुष्य अपनी भौतिक सात्विकता प्राप्त कर सकता है । मनुष्य सत्याचारण करे इसमें कौन-सी कठिनाई है । परमात्मा की उपासना सद्व्यवहार, सहृदयता, उदारता, निष्कपटता ये कौन से वजनदार पत्थर हैं जो उठाये नहीं उठते । मनुष्य इन सद्गुणों को अपने जीवन में विकसित करने का साहस करे तो ऐसी कोई भी बाधा नहीं जो उसे सुख प्राप्ति से रोक सके । मनुष्य जीवन की सरल, शुचिता और सात्विकता की विरक्ति के आधार पर ही उसके भौतिक, भावनात्मक और पारलौकिक सुख विकसित होते हैं ।

हमारे श्रेष्ठ अन्तःकरण का जो दिव्य पुरुष इस शरीर में विद्यमान है, अपना धन, शक्ति, विद्या तथा सौन्दर्य सब कुछ वही है । बाह्य साधनों में जो सुख दिखाई देते हैं वे रेगिस्तान की मरीचिका के समान ही हैं। उनमें भटकता हुआ इंसान मृग की भाँति धोखा ही खाता है ।

इस तथ्य को जितना ही विचार सकें उतना ही अच्छा है, जितना अपने जीवन में समावेश कर सकें उतना ही श्रेयस्कर है । सत्य और न्याय के साँचे में विनिर्मित मनुष्य जीवन को इन्हीं की प्राप्ति में ही संतोष मिल सकता है ।

ॐकार रूपी ईश्वर की विवेचना

यों सृष्टि के संचालक तत्व तीन हैं । ताप, ध्वनि, प्रकाश इन्हीं की तरंग अणु परमाणु में विकसित होती है और उनके समुच्चय में विभिन्न प्रकार के पदार्थ बने हैं ।

अध्यात्म भाषा में इन तीनों को अ, उ, म कहते हैं जिनका समन्वय होता है-ॐ । ॐ को बीज मंत्र माना गया है । आत्मिकी और भौतिकी दोनों का ही बीज मंत्र है -ॐ । ओंकार यानी प्रणव । ॐ की महिमा शास्त्रकारों ने विस्तारपूर्वक लिखी है । एक-एक बीज से ही मंत्र विज्ञान के समस्त पत्र, पल्लव, फूले-फले विकसित हुए हैं। ॐ में तीन व्याहृति- तीन व्याहृतियों में गायत्री के चार चरण अर्थात् आद्य शक्ति, महाशक्ति गायत्री भी मूलतः ॐकार का ही विकास विस्तार है ।

शास्त्रकारों ने आत्म-विद्या के विज्ञानियों ने ॐकार को सार एवं प्राण बताया है । स्मृति जाग्रति उस पर अवलम्बित है । यजुर्वेद में आता है । **ॐ वृत्तास्म्, ॐ क्लेवेस्म, ॐ कृतस्म्** । अर्थात् अपने को याद कर । अपने कर्त्तव्यों को याद कर । अपने किये हुए को याद कर । इसमें आत्मबोध की चेतावनी दी है और कहा है कि परमात्मा को स्मरण करना कोई रूढ़ि नहीं है, वरन् यह है कि जो कर्त्तव्य हमें सौंपे गये हैं । उन्हें याद रखें और उसी मार्ग पर चलें । जो भूल हो गई हो उसका प्रायश्चित करें । ऐसा न हो कि जीवन निकल जाय और पाप का पोटला सिर पर लद जाय । यह नाव है इस पर बैठकर पार होना है न कि स्वयं डूबने और नाव को डुबा देने की भूल करना ।

ॐ के बारे में बहुत कुछ कहा गया है । **ॐ प्रतिष्ठः** । ॐ की प्रतिष्ठा है । **ॐ 'खं ब्रह्म'** यह आकाश में संव्याप्त ॐ ही है ।

गोपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि **अमृतं वै प्रणवः** । यह ॐकार ही प्रणव है । पातञ्जलि योग में आता है "तस्य वाचकः प्रणवः ।" उसका ईश्वर का नाम ॐकार है ।

जैमिनी उपनिषद् में आया है (ओमित्येतदेवाक्षरं) यह ॐ ही अक्षर है । यह अविनाशी है । गोपथ में अन्यत्र आया है "स ओमित्येतदक्षर याश्छन्द" यह ॐकार अमर है और निराकार है । व्यापक है । माँडूकोपनिषद में अ, उ, म् इन तीन अक्षरों को ईश्वर जीव प्रकृति का बोधक बताया गया है। यह समस्त दृश्य अदृश्य उसी का प्रसार है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ॐकार आरम्भ में लाये बिना सब मंत्र खण्डित हैं, अर्थात् प्रत्येक वैदिक तांत्रिक मंत्र में पहले ॐकार लगाना चाहिए फिर मंत्र । गोपथ ब्राह्मण में आता है कि जो बिना ॐकार लगाये किसी मंत्र का उच्चारण करता है वह निष्फल जाता है । जैसे किसी व्यक्ति के नाम से पहले 'श्री' आदि शब्द लगाते हैं, उसी प्रकार मंत्र का आरम्भ तब होता है, जब उससे पूर्व ॐकार लगाया गया है ।

ॐकार सार्वभौम है । यह वह अक्षर है जो कि पूर्णता होने पर अनायास ही निकलता है ।

शतपथ में आया है कि सृष्टि के आदि में प्रकृति पुरुष का मिलन हुआ तो उससे ऐसी ध्वनि निकली जैसी काँसे की बनी घड़ियाल में हथौड़े मारने से झनझनाहट युक्त ॐकार की होती है । यही अनादि शब्द है । इसी के आघात से सृष्टि चक्र चलने लगा । भगवान विष्णु के हाथ में जो सुदर्शन चक्र है, वह शब्द की प्रथम उत्पत्ति की प्रतिक्रिया है । अणु परमाणु से लेकर सौरमण्डल और ब्रह्माण्ड के हर घटक में जो गति है वह चक्राकार है । ॐ का लेखन भी चक्रवत् है । यह ब्रह्माण्ड पिण्ड एवं जीवन-क्रम की गतिशीलता का द्योतक है ।

ॐ में लिपि विभाजन की दृष्टि से अ, उ, म् का संकेत है । यह तीन देवता, तीन लोक, तीन गुणों का त्रिक है । वेदत्रयी का व्याख्यान भी ॐकार के तीन अक्षरों की व्याख्या स्वरूप ही हुआ है ।

ईश्वरीय-सत्ता का तत्व-ज्ञान

ओमित्येव सुनामधेय मनघं विश्वात्मनो ब्रह्मणः
सर्वेष्वेव हि तस्य नामसु वसोरेतत्प्रधानं मतम् ।
यं वेदा निगदन्ति न्याय निरतं श्री सच्चिदानन्दकम् ।।
लोकेशं समदर्शिनं नियमिनं चाकारहीनं प्रभुम् ।।

अर्थ- जिसको वेद न्यायकारी, सच्चिदानंद संसार का स्वामी, समदर्शी, नियामक और निराकार कहते हैं । जो विश्व की आत्मा है । उस ब्रह्म के समस्त नामों से श्रेष्ठ नाम, ध्यान करने योग्य 'ॐ' यह मुख्य नाम माना है ।

गायत्री मंत्र के प्रारम्भ में ॐ लगाया जाता है । ॐ परमात्मा का प्रधान नाम है । ईश्वर को अनेक नामों से पुकारा जाता है । "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" उस एक ही परमात्मा की ब्रह्मवेत्ता विविध प्रकार से कहते हैं । विभिन्न भाषाओं और सम्प्रदायों में उसके अनेक नाम हैं । एक-एक भाषा में ईश्वर के पर्यायवाची अनेक नाम हैं फिर भी वह एक ही है । इन नामों में ॐ को प्रधान इसलिये माना है कि प्रकृति की संचालक सूक्ष्म गतिविधियों को अपने योग बल से देखने वाले ऋषियों ने समाधि लगाकर देखा है कि प्रकृति के अन्तराल में प्रतिक्षण एक ध्वनि उत्पन्न होती है जो 'ॐ' शब्द से मिलती-जुलती है । सूक्ष्म प्रकृति इस ईश्वरीय नाम का प्रतिक्षण जप और उद्घोष करती है इसीलिए यह अकृत्रिम, दैवी, स्वयं घोषित, ईश्वरीय नाम सर्वश्रेष्ठ कहा गया है ।

ईश्वर का सर्वश्रेष्ठ परम स्वाभाविक, स्वयं घोषित नाम 'ॐ' गायत्री के आरम्भ में इसलिये लगा है कि इस महामन्त्र की उपासना करने वाले, इस महाशक्ति की आराधना करने वाले साधक ईश्वरीय महाशक्ति को आगे रखकर अग्रसर हों, परमात्मा को साक्षी लेकर जो कार्य किये जाते हैं वे ही कल्याणकारक होते हैं ।

आस्तिकता का अर्थ है-सतोगुणी, दैवी, ईश्वरी, परमार्थिक, भावनाओं को हृदयंगम करना । नास्तिकता का अर्थ है-तामसी, आसुरी, शैतानी, भोगवादी, स्वार्थपूर्ण वासनाओं में लिप्त रहना । यों तो ईश्वर भले-बुरे दोनों तत्वों में है पर जिस ईश्वर की हम पूजा करते हैं, भजते हैं, ध्यान करते हैं यह ईश्वर सतोगुण का प्रतीक है । जैसे किसी सुविस्तृत राष्ट्र का प्रतीक एक राष्ट्रध्वज (झंड़ा) होता है । कोई विदेशी, किसी देश के झण्डे का मान या अपमान करे तो यह उस राष्ट्र का मान या अपमान समझा जाएगा जिसका कि वह झण्डा है । इसी प्रकार मानव प्राणियों के अन्तःकरण में निवास करने वाली व्यापक सात्विकता का प्रतीक वह ईश्वर है जिसकी हम पूजा करते हैं ।

ईश्वर की प्रतिष्ठा, पूजा, उपासना, प्रशंसा, उत्सव, समारोह, कथा, यात्रा, लीला आदि करने का तात्पर्य है-सतोगुण के प्रति अपना अनुराग प्रकट करना, उसको हृदयंगम करना, उसमें तन्मय होना । इस प्रक्रिया से हमारी मनोभूमि पवित्र होती है और हमारे विचार तथा कार्य ऐसे हो जाते हैं जो हमारे व्यक्तिगत तथा सामूहिक जीवन में स्थायी सुख-शान्ति की सृष्टि करते हैं । ईश्वर उपासना का महाप्रसाद साधक की अन्तरात्मा में सतोगुण की वृद्धि के रूप में, तत्क्षण मिलता आरम्भ हो जाता है ।

गायत्री गीता के उपर्युक्त प्रथम श्लोक में ईश्वर की अन्य अनेक विशेषताएँ बताई गई हैं । वह न्यायकारी, समदर्शी, नियामक तथा निराकार है । विश्व की आत्मा है । विश्व के समस्त प्राणियों में आत्मा रूप से वह निवास करता है । मन-बुद्धि-चित्त अहंकार का अन्तःकरण चतुष्टय विकृत हो जाने से अज्ञान और माया का, स्वार्थ और भोग का, मैल चढ़ जाने से अनेको मनुष्य कुविचारों और कुकर्मों से ग्रस्त देखे जाते हैं, फिर भी उनका अन्तरात्मा ईश्वर का अंश होने के कारण भीतर से उन्हें सन्मार्ग पर चलने का आदेश देता रहता है । यदि उस अन्तरात्मा की पुकार को सुना जाय, उसके संकेतों पर चला जाय तो बुरे से बुरा मनुष्य भी थोड़े ही समय में श्रेष्ठतम महात्मा बन सकता है, गीता में भगवान ने कहा है कि-"सब छोड़ कर मेरी शरण में आ, मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूँगा ।" अन्तरात्मा, की परमात्मा की शरण में जाने से, आत्मसमर्पण करने से, दैवी प्रेरणाओं को हृदयंगम करने से मनुष्य ईश्वर का सच्चा भक्त बनता है । भक्त तो भगवान का प्रत्यक्ष रूप है ।

चूँकि भगवान हर एक की आत्मा में निवास करता है इसलिए किसी भी व्यक्ति को मूलतः दुष्ट नहीं मानना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

चाहिए, न उससे द्वेष ही करना चाहिए । दुष्ट विचारों और कार्यों से ही हमारा द्वेष होना चाहिए । दुष्टता एक रोग है, रोग को मार भगाने और रोगी को जीवित रखने के लिए काफी प्रयत्न किया जाता है । ऐसा ही प्रयत्न दुष्टता को मिटाकर दुष्ट मनुष्य को सज्जन बनाने के लिए होना चाहिये। प्रयत्न करने पर बुराइयाँ दूर हो सकती हैं क्योंकि आत्मा का मूल स्वरूप दैवी है । उसमें ईश्वर का निवास है । फोड़ा चिरवाने की तरह दंड द्वारा भी सुधार किया जा सकता है पर घृणा एवं द्वेष को किसी के लिए भी मन में स्थान नहीं देना चाहिए ।

ईश्वर सर्वव्यापी है । इसलिए वह एकदेशीव नहीं हो सकता । वह आत्मरूप है इसलिए निराकार है । फिर भी यह सब पसारा उसी का होने से, सब में समाया होने से साकार है । किन्हीं महापुरुषों में उसकी विशेष शक्तियाँ, विशेष कलाएँ होती हैं तो उन्हें उतनी कलाओं का अवतार कहते हैं । परशुराम जी में तीन कलाएँ, राम में बारह कलाएँ, कृष्ण में सोलह कलाएँ बतायी गई हैं । एक ही समय में कई अवतार, कई महापुरुष हो सकते हैं । रामचन्द्र जी और परशुराम जी एक ही समय में दो अवतार थे । गीता के अनुसार "जब अधर्म की वृद्धि हो जाती है तब धर्म की स्थापना के लिए अवतार होते हैं ।" वे अवतारी महापुरुष अकेले ही सब कुछ नहीं कर लेते वरन् जनता को नवीन विचार एवं उत्साह देकर जाग्रत करते हैं और अनेक सहयोगियों की सहायता से उस ईश्वरीय उद्देश्य की पूर्ति करते हैं । कृष्ण द्वारा कौरवों का नाश, राम द्वारा राक्षसों का नाश अकेले ही नहीं किया था वरन् उनके विरुद्ध अपार जनसमूह खड़ा करके ही सफलता प्राप्त की गई थी । बुराइयों के निवारण एवं अच्छाइयों की स्थापना के लिए जहाँ भी कार्य होता है, ईश्वरीय प्रेरणा से ही होता है । अवतारी सत्पुरुष उसे पूरा करने में जुट जाते हैं और अन्त में जनसहयोग से वह उद्देश्य पूरा होता है । ऐसी अवतारी प्रक्रिया छोटे-मोटे रूप में सदा होती रहती है और बड़े रूप में कभी-कभी विशेष आवश्यकता के समय होती है । अवतारी कार्यों में सहायता करना, हनुमान अर्जुन की तरह अपने को यश तथा प्रतिष्ठा का भागी बना लेना है ।

परमात्मा को खुशामद पसंद नहीं । किसी की निन्दा स्तुति की उसे आवश्यकता नहीं । वह किसी पर प्रसन्न अप्रसन्न नहीं होता । पूजा-उपासना एक प्रकार का आध्यात्मिक व्यायाम है जिसके करने से हमारा आत्मबल बढ़ता है । सतोगुण की मात्रा में वृद्धि होती है । ईश्वर को सर्वव्यापक समझने वाला पापों से डरेगा । कोतवाल सामने खड़ा हो तो चोर प्रकृति का मनुष्य भी उस समय साधु-सा आचरण करता है । सबसे बड़े कोतवाल ईश्वर को जो अपने अन्दर-बाहर चारों ओर व्यापक देखता है वह, उसके दंड से डरेगा और पाप न कर सकेगा । प्राणिमात्र में ईश्वर को व्यापक देखने वाला व्यक्ति सब के साथ सद्व्यवहार ही कर सकता है । यह ईश्वरीय दृष्टि प्राप्त करना, ईश्वर-आराधना का प्रधान उद्देश्य है । ध्यान, प्रार्थना, पूजा, कीर्तन, जप, आदि ऐसी मनोवैज्ञानिक क्रियाएँ हैं जिनके द्वारा मनोभूमि में चिपके हुए अनेकों कुसंस्कार छूटते हैं और उनके स्थान पर सुसंस्कारों की स्थापना होती है । ईश्वर के नाम पर लोकहितकारी कामों के लिए दान देना अपनी ही व्यक्तिगत और सामूहिक सतोगुणी उन्नति करना है ।

वह समदर्शी और न्यायकारी है । सभी पुत्र उसे परम प्रिय हैं और सभी समान हैं । निष्पक्ष न्यायाधीश की तरह वह सबको उनके कर्मों के आधार पर फल देता है । अपने भले-बुरे कर्मों का परिपाक ही कालान्तर में प्रारब्ध, भाग्य, कर्म रेखा, ईश्वर की कृपा, देवी वरदान, ग्रहदशा आदि के रूप में प्रकट होता है । कर्म चाहे आज का हो चाहे पुराना, उसका फल हमें मिलेगा । ईश्वर अपनी ओर से किसी के साथ विशेष क्रोध या प्रेम प्रकट नहीं करता । उसने सब को अत्यन्त बहुमूल्य रथ शरीर, अत्यन्त विलक्षण अस्त्र मस्तिष्क, संसार में उपस्थित अत्यन्त सुखदायिनी वस्तुएँ देकर अपनी दयालुता का परिचय दिया है । यह हमारा काम है कि अपने भले-बुरे कर्मों द्वारा, अपने जीवन को सुखी या दुखी चाहे जैसा बनायें । वह किसी की क्रियाशीलता में हस्तक्षेप नहीं करता, अपनी इच्छानुसार काम करने के लिए सबको पूर्ण स्वतंत्र छोड़ दिया है, पर कर्मफल से कोई बच नहीं सकता । वह हर एक को अवश्य भुगतना पड़ता है । न्यायाधीश ईश्वर के न्याय से कोई भी बच नहीं सकता ।

वह नियामक है । स्वयं नियम रूप है, उसका हर काम नियमपूर्वक हो रहा है । ग्रह-नक्षत्र एक क्षण भर आगे-पीछे उदय-अस्त नहीं हो सकते । गेहूँ से गेहूँ ही उत्पन्न होता है, वस्तुएँ अपने-अपने गुण धारण किये रहती हैं । कभी-कभी जो अनियमितता दिखाई देती है वह भी किन्हीं सूक्ष्म ईश्वरीय नियमों पर चलते हैं, प्राकृतिक जीवन बिताते हैं, कर्त्तव्य-धर्म में स्थिर रहते हैं वे ईश्वर की आनन्दमयी सृष्टि का आनन्द आस्वादन करते हैं जो उन नियमों को उल्लंघन करते हैं वे हानि उठाते हैं । अग्नि बड़ी दयालु है वह हमारा शीत निवारण करती है । भोजन पकाती है, वाष्प यंत्र चलाती है अन्य अनेक प्रकार लाभ पहुँचाती है पर यदि उसे नियम विरुद्ध छुआ जाय तो हाथ जला देगी । बिजली से हमें अनेकों लाभ होते हैं पर उसे गलत तरह छुएँ तो प्राण लेने में कोई रिआयत नहीं करेगी । उसी प्रकार ईश्वर हमें अनेक सुख देता है पर यदि उसके नियमों का उल्लंघन करे तो वह नरक की भयंकर अग्नि में तपा डालने वाला क्रूर यमराज बन जाता है । उसके नियम पर चलना ही ईश्वर की सर्वोत्तम पूजा है ।

साधारण मनुष्यों का अन्तःकरण आत्मा कहलाता है । अविकसित होने के कारण उसकी जीव संज्ञा है । जब उसका विकास होता है तो अहंभाव विस्तृत होकर वसुधैव कुटुम्बकम् के रूप में परिणत हो जाता है । सब अपने आत्मीय दिखाई पड़ने लगते हैं, सब में आत्मा और आत्मा

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में सब समाये हुए दिखाई पड़ते हैं, तो वह लघु आत्मा परम आत्मा (परमात्मा), महान् आत्मा (महात्मा) बन जाता है । विश्व की समृद्धि आत्मा ही विश्वात्मा या परम आत्मा है । इसे ही समाज पुरुष, विराट भगवान, जनता जनार्दन आदि नामों से भी पुकारते हैं । विश्व मानव की उपासना, समाज पुरुष की सेवा, भगवान ॐ की ही आराधना है । गीता के १०वें अध्याय में भगवान ने बताया है-कि वृक्षों में पीपल, पशुओं में गौ, मनुष्यों में ब्राह्मण, नक्षत्रों में चन्द्रमा, ग्रहों में सूर्य, इन्द्रियों में मन, पर्वतों में हिमालय, पक्षियों में गरुड़, नदियों में गंगा, मन्त्रों में गायत्री मंत्र, ऋतुओं में बसन्त मैं हूँ । अर्थात् जो-जो श्रेष्ठ, सात्विक, सुदृढ़ एवं उपयोगी विभूतियाँ हैं उनमें मेरे ही अंश की अधिकता है । जिन विचारधाराओं में, व्यक्तियों में, वस्तुओं में इस प्रकार के तत्व अधिक हैं उनमें ईश्वरीय कलाओं की विशेषता अनुभव की जा सकती है । जहाँ प्रभु का निवास होगा वहाँ निश्चयपूर्वक श्रेष्ठता, सात्विकता, दृढ़ता एवं परोपकार की प्रधानता होगी । तलाश करने पर अनेक स्थानों पर हम प्रभु का ऐसा निवास ढूँढ़ सकते हैं और उसकी झाँकी करके अपने को तृप्त कर सकते हैं । इसी लिए कहा गया है कि सत्संग में भगवान का निवास होता है । प्राचीनकाल में सत्पुरुषों का निवास अधिक रहने के कारण तीर्थों की महिमा हुई थी और तीर्थयात्रा को पुण्य फल माना जाता था । आज भी जहाँ महापुरुषों का निवास है वह स्थान प्रत्यक्ष तीर्थ ही है ।

राम, कृष्ण आदि की सुन्दर छवियाँ एवं उनकी गुणावली का ध्यान करना अपनी अन्तिम उन्नति का आदर्श एवं लक्ष्य स्थापित करना है । बड़े-बड़े भवन बनाने होते हैं, तो पहले उनका छोटा मॉडल बना लिया जाता है । उसके आधार पर विशाल भवन बनता है स्वास्थ्य, सौन्दर्य, बल, गुण, विशेषता आदि की दृष्टि से आत्म-निर्माण के जिस लक्ष्य तक पहुँचना है उस मॉडल से अनन्य-प्रेम एवं प्राप्ति की उत्कृष्ट अभिलाषा उत्पन्न करने के लिए भगवान की कल्पित मूर्तियों का ध्यान किया जाता है । मंदिर मठ आदि आत्मिक ज्ञान के प्रचार केन्द्र हैं । उस केन्द्र के कार्यकर्त्ताओं की सम्मानपूर्वक आजीविका चलाने के लिए मंदिरों में भोग, चढ़ावा, पूजा आदि की विधि-व्यवस्था बनाई गयी थी । आज वह सब पद्धतियाँ बड़ी गड़बड़ हो गई हैं, अनाचार, धूर्तता और मूर्खता का बोलबाला है पर प्रयत्न करने पर आदर्शों को पुनः सजीव किया जा सकता है और भगवतपूजा के आधार पर धर्म, समाज, राष्ट्र, संस्कृति एवं सामाजिक सदाचार के पुनः उद्धार के विशाल आयोजन किये जा सकते हैं । इसके लिए मन्दिरों, मठों एवं पुरोहितों को सुधार कर उनसे केन्द्र बिन्दु का कार्य लिया जा सकता है ।

गायत्री का प्रथम अक्षर ॐ हमें इन्हीं सर्व बातों की शिक्षा देता है । यह ईश्वर का सर्वश्रेष्ठ नाम है उसके उच्चारण से सूक्ष्म प्रकृति आत्म-चेतना के साथ सम्बन्धित होने की साधना अपने आप होती चलती है । यह ईश्वर का स्वयं घोषित सबसे छोटा नाम है । साथ ही गायत्री गीता में बताया है कि वह ईश्वर न्यायकारी, प्रभु, समदर्शी, अविनाशी, चेतन्य, आनन्दस्वरूप, नियमरूप, निराकार एवं विश्वात्मा है । इन नामों में जो महत्वपूर्ण तत्वज्ञान छिपा हुआ है उसे जान कर उस को आचरण रूप में लाकर हमें ॐ की उपासना करनी चाहिए ।

'ॐ' में तीन अक्षर मिले हुए हैं अ, उ, म् । अ का अर्थ है आत्मपरायणता, शरीर के विषयों से मन हटा कर आत्मानंद में रमण करना । उ का अर्थ है-उन्नति, अपने को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक एवं आत्मिकी सम्पत्तियों से सम्पन्न करना । म का अर्थ है-महानता । क्षुद्रता, संकीर्णता, स्वार्थपरता , इन्द्रिय लोलुपता को छोड़ कर प्रेम, दया, उदारता, सेवा, योग, संयम एवं आदर्श के आधार पर जीवनयापन की व्यवस्था बनाना । इन तीन अक्षरों में जो शिक्षा है उसे अपनाकर व्यावहारिक रूप से 'ॐ' की, ईश्वर की उपासना करनी चाहिए ।

तत्वज्ञान की परम पवित्रता

गीताकार का कथन है कि ज्ञान से बढ़कर और कोई पवित्र वस्तु नहीं । वह जिस किसी को भी स्पर्श करती है उसी को पवित्र कर देती है । ज्ञान की उपमा अग्नि से दी गई है । उसकी समीपता तद्वत बना देती है । अग्नि में पड़ने वाला ईंधन भी अग्नि रूप हो जाता है । स्वयं में नगण्य होने पर भी जब अग्नि का आवरण उसमें होता है तो फिर उसका कायाकल्प हो जाता है तब वह जलता हुआ ईंधन दावानल भी बन सकता है । उसकी छोटी-सी चिनगारी विशालकाय विकराल रूप भी धारण कर सकती है । उसकी प्रभाव परिधि में आने वाला सारा वातावरण ऊष्मा, ऊर्जा और आभा से भर जाता है ।

यहाँ ज्ञान का अर्थ शिक्षा नहीं, वरन् विद्या है । शिक्षा वह जो भौतिक जगत की जानकारियाँ कराये । विद्या वह है जो आत्मिक जगत का स्वरूप समझाये और उस क्षेत्र की सुव्यवस्था एवं प्रगति में सहायता करे । अशिक्षित को भौतिक स्तर की जानकारियों के अभाव में सांसारिक कठिनाइयाँ आती हैं । उसे अनपढ़, पिछड़ा माना गया है । किन्तु अज्ञानी तो अन्धे के समान है । उसे पशुतुल्य भी कहा जाता है । कारण कि वह अपने अन्तर्जगत के सम्बन्ध में निपट अनाड़ी जैसी स्थिति धारण किये रहता है। ऐसी दशा में उसे शोक-सन्ताप ही घेरे रहते हैं । अबोध बालक को यह ज्ञान नहीं होता कि उसकी सामयिक आवश्यकताएँ क्या हैं । किन अभावों से ग्रसित है और उसे जीवन के लिये क्या करना चाहिए ? सब कुछ दूसरों पर ही निर्भर रहता है । अभिभावक सहायता न करे तो उसे मल-मूत्र से सने हुए, ठिठुरते शीत से काँपते हुए भूख-प्यास से पीड़ित स्थिति में ही पड़ा रहना पड़ेगा । बचपन में सामर्थ्य का अभाव तो होता ही है, किन्तु उससे भी बढ़कर ज्ञान की कमी अड़चनें उत्पन्न करती हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

शब्दज्ञान से वंचित होने के कारण वह अपने मनोभावों को जिह्वा के रहते हुए भी किसी प्रकार नहीं व्यक्त कर पाता ।

मनुष्यों में वरिष्ठ उसे माना जाता है जिसकी जानकारियाँ अधिक हैं । बहुपठित बहुश्रुत एवं अनुभवी दूरदर्शी अपनी आवश्यकताएँ भी पूरी कर लेते हैं और दूसरों को उठाने उबारने में सहायता करते हैं । अनजान का तो उपहास ही होता है । इसे दरिद्र में भी बढ़कर उपहासास्पद माना गया है ।

बाह्य जगत की तरह अन्तर्जगत भी अपनी सत्ता और महत्ता रखे हुए है । भौतिक-जगत में सभी सुखद, सुन्दर सुव्यवस्थित है । उसमें से अपनी योग्यता, पवित्रता के अनुरूप किन्हीं को भी उपलब्ध किया जा सकता है । आदान-प्रदान की इस दुनिया में सामर्थ्य, प्रयास एवं साधना की सहायता से इच्छित वस्तुएँ तथा परिस्थितियाँ प्राप्त की जा सकती हैं । यह नियम अन्तर्जगत पर भी लागू होता है । उस क्षेत्र में विभूतियों की कमी नहीं । सही मार्ग और विधान अपनाकर इस प्रदेश से विद्यमान अमृत पारस कल्पवृक्ष सदृश उच्चस्तरीय वैभव की बहुलता पायी जा सकती है । उसे किसी अन्य की सहायता से तो यत्किंचित मात्रा में ही पाया जा सकता है । किन्तु यह सम्भव तभी है, जब उनका स्वरूप एवं स्थिति जान ली गयी हो, प्राप्त करने की विधि के साथ नाता जुड़ गया हो । इस पक्ष की अवहेलना भी की जा सकती है और अवधारणा भी । यह सब अपने ही रुझान एवं प्रयास पर निर्भर है ।

ज्ञान वह जिसे और भी अच्छी तरह समझने के लिये पूरा नाम आत्मज्ञान या तत्वज्ञान भी कहा जा सकता है । तात्पर्य यह है कि अन्तरंग की स्थिति को समझा जाये और बहिरंग क्षेत्र में अपने कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व को सही रूप से समझते हुए तदनुरूप दृष्टिकोण तथा आचरण को ढाला जाय ।

इसे आश्चर्य भरी विडम्बना ही कहना चाहिए कि हम बाहर की परिस्थितियों के बारे में बहुत कुछ जानते हुए अनेक प्रकार के कौशलों से अभ्यस्त साधनों से सम्पन्न होते हुए भी यथार्थता से अपरिचित ही रहते हैं । अपने गुण-दोष तक से परिचित नहीं होते, यद्यपि दूसरों की समीक्षा भली प्रकार कर सकते हैं । बाह्य वैभव का हिसाब-किताब रखते हैं और हानि-लाभ की स्थिति से प्रभावित रहते हैं, पर अन्तर की छिपी सम्पदा के सम्बन्ध में अनजानों जैसी स्थिति अपनाये रहते हैं । साथ ही इस जानकारी से भी वंचित रह रहे होते हैं कि अपने आप को किस प्रकार सुधारा-उभारा जाये । कस्तूरी के हिरन की तरह सुख-शान्ति बाहर तलाश करते हैं । निराशा हाथ लगने पर थकान और खीज से व्यथित होते हैं । उस अबोध वन्यपशु जैसी स्थिति अपनी भी होती है । शान्ति और प्रगति का उद्गम स्रोत अपने ही भीतर होता है, पर उसे पाने के लिये प्रयास अन्यत्र करते हैं, फलतः निराशा एवं उद्विग्न रहने की स्थिति ही बनी रहती है । इस भ्रम-जंजाल से छूटने के लिये उसे ज्ञानदीप की आवश्यकता है, जो भटकावों से बचाकर वस्तुस्थिति का भान करा सके ।

समझा यह जाता है कि असहयोग, अभाव, वातावरण एवं भाग्य के फेर से अपनी स्थिति असन्तोषजनक बनी हुई है । किन्तु वास्तविकता यह है कि गुण, कर्म, स्वभाव जैसे व्यक्तित्व के अनेक पक्ष विकसित नहीं हो पाते । फलतः अबोधों की तरह जिस-तिस पर लांछन लगाते हुए किसी प्रकार आत्मप्रवंचना करते हुए मन का भार हल्का करना पड़ता है । जिस कमी के कारण वास्तविक प्रगति एवं उच्चस्तरीय सफलता से वंचित रहना पड़ता है, वह अपने ही अन्तर में खोजी जा सकती है । किन्तु दुर्भाग्य यह है कि आत्म-समीक्षा के उपयुक्त गहरे उतर सकने और अन्तर्जगत की वस्तुस्थिति को समझने के स्थिति अपनी नहीं बन पाती । जब रोग का निदान ही नहीं बन पड़ा तो फिर उपचार किस प्रकार सम्भव हो ?

संसार में बहुत कुछ है, पर वह दौड़ कर हमारे पास नहीं आ जाता। उसे पाने के साधन, मार्ग एवं पराक्रम से अभ्यस्त होना पड़ता है । इस ओर से आँखें बन्द रखी जाएँ तो फिर सर्वत्र अन्धकार ही बना रहेगा, भले ही आकाश के ज्योतिर्मय सूर्य का ही तेजस सर्वत्र फैला हुआ क्यों न हो ?

आत्मज्ञान का ही 'ज्ञान' नाम से अध्यात्म-क्षेत्र में विवेचन किया गया है । अपने वास्तविक अस्तित्व, स्वरूप एवं लक्ष्य की निरन्तर प्रबल अनुभूति होती रहे तो समझना चाहिए कि वह तत्वज्ञान हस्तगत हुआ, जिसे आत्मिकी का बोध पक्ष कहा जा सकता है । दर्पण में हम अपनी ही छाया देखते हैं । गुम्बज में अपने ही शब्दों की प्रतिध्वनि गूँजती है । अपना 'स्व' जिस स्तर का होता है उसी के अनुरूप दृष्टिकोण, रुझान और प्रयास विनिर्मित होता है । यही है भली-बुरी परिस्थितियों का आधारभूत कारण ।

सभी मनुष्य रक्त, माँस की दृष्टि से प्रायः एक जैसे हैं, उनके काय-कलेवर में बहुत अन्तर नहीं होता । विभिन्नताएँ भीतरी गुण-अवगुणों के सम्बन्ध में होती हैं । परिष्कृत दृष्टिकोण ही सुविकसित व्यक्तित्व का निर्माण करती है और उसी आधार पर सर्वतोमुखी प्रगति का द्वार खुलता है । इस अनुभूति को अन्तराल में गहराई तक प्रतिष्ठित करके हम उस सद्ज्ञान को, आत्मज्ञान को सम्पादित कर सकते हैं, जिसे ज्ञानाग्नि का नाम दिया गया है और परम पवित्र बताया गया है ।

वह परम सत्ता एक ही है

साधना-विधान में देव-उपासना का महत्वपूर्ण स्थान है । अध्यात्म शास्त्रों में जहाँ आत्म-चिन्तन, ब्रह्मध्यान, मनोनिग्रह, विवेक, वैराग्य आदि का विस्तृत विवेचन हुआ है वहाँ अनेक देवताओं की उपासना के भी विधि-विधानों एवं महत्वों की चर्चा हुई है । कई उपनिषद देवताओं के नाम पर ही हैं । उसमें प्रतिपादित देवता के गुण, धर्म एवं

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपासना के प्रतिफल विस्तारपूर्वक बताये गये हैं । उच्च मनोभूमि के साधक वेदान्त ही अद्वैत साधना में संलग्न रहे एवं उससे कुछ नीची श्रेणी के साधक देव-उपासना द्वारा अभीष्ट काम्य-प्रयोजनों की भी पूर्ति करते रहें । क्रमशः आगे अध्यात्म-मार्ग पर चलते हुए ब्रह्म प्राप्ति के परम श्रेयस्कर लक्ष्य की ओर अभिमुख हो जाएँ, ऐसा अभिमत ऋषियों का रहा है ।

वस्तुतः देव उपासना परमात्मा के एक रूप विशेष की पूजा है । उसके विभिन्न गुणों, शक्तियों का प्रतिनिधित्व देवगण करते हैं अन्यथा तो इस सृष्टि का उत्पादक, पोषक, संहारक, कर्त्ता-हर्त्ता एक परमात्मा ही है । उसे ही अनेक नामों से पुकारते हैं ।

सृष्टि में अनेक प्रक्रियाएँ चलती हैं । उनकी संचालक शक्तियाँ भी अनेक हैं । यद्यपि वे सभी परब्रह्म की ही शक्तियाँ हैं, पर उनकी गतिविधियों की पृथकता के अनुरूप उनके नामकरण अलग-अलग किये गये हैं । सूर्य एक ही है पर उसकी अनेक किरणें अपने गुण-धर्म की पृथकता के कारण अल्ट्रावायेलेट, इन्फ्रारेड, एक्सरेज आदि अनेक नामों से पुकारी जाती हैं, मनुष्य शरीर एक ही है पर उसके विभिन्न अंगों का उपयोग और स्वरूप भिन्न-भिन्न होने के कारण उन अंगों के नाम भी भिन्न-भिन्न हैं । शरीर को जो कार्य करना होता है वह अपने तदनुकूल अंग से ही उसे पूरा करता है ।

ईश्वर के विराट् स्वरूप के अंग-प्रत्यंगों को उसकी क्रियाकिरणों को देवता नाम से पुकारते हैं । यह देवता अपने-अपने कार्यक्षेत्र में उसी प्रकार संलग्न रहते हैं जिस प्रकार किसी सरकार के अनेक मंत्री एवं अफसर अपने-अपने विभाग को सँभालते हुए राजतंत्र का संचालन करते हैं ।

देवताओं की सत्ता पृथक् से दृष्टिगोचर होते हुए भी वे वस्तुतः एक ही विराट् ब्रह्म के अवयव मात्र हैं । उनका स्वतंत्र अस्तित्व भासता तो है पर है नहीं । लहरें और बबूले जल के ही अंग हैं । विविध देवताओं के जहाँ भिन्न-भिन्न स्वरूप और गुण-धर्म शास्त्रकारों ने वर्णन किये हैं वहाँ यह भी स्पष्ट कर दिया है कि वे सब वस्तुतः एक ही परमात्मा के अंग-प्रत्यंग मात्र हैं । ऋग्वेद (६/३/२२/४६) में कहा गया है - "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" अर्थात् उस एक ही परमात्मा को विद्वान लोग अनेक नामों से वर्णन करते हैं । "एकं सन्त बहुधा कल्पयन्ति" अर्थात् उस एक की ही अनेक रूपों में कल्पना की गई है । विष्णुपुराण १/२/६६ के अनुसार-" वह एक ही भगवान सृष्टि का उत्पादन, पालन और संहार करता है । उसी के ब्रह्मा, विष्णु, महेश नाम हैं । वृहन्नारदीय पुराण (१/२/५) में भी कहा गया है-" उस अनादि-अजर परमात्मा को कोई शिव, कोई विष्णु कोई ब्रह्मा कहते हैं । " यजुर्वेद (३२/१) के अनुसार-"यह परमात्मा ही अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म और वरुण है ।" ऐतरेय उपनिषद् (१/१/१) में "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्"- 'यह आत्मा एक ही था' का प्रतिपादन हुआ है तो छान्दोग्य ६/२१ में कहा गया है कि वह एक ही है, दो नहीं-एकमेवाद्वितीयम् या एको विश्वस्य भुवनस्य राजा ।

शिव पुराण के अनुसार "वह एक ही महाशक्ति है । उसी से यह सारा विश्व आच्छादित है ।" "एक एव तदा रुद्रो न द्वितीयो अस्ति कश्चन्" अर्थात् तब सृष्टि के आदि में अकेला रुद्र ही था और कोई नहीं । इसी में आगे २/१/९/२८ में कहा है-सृष्टि के उत्पादन, पालन तथा संहार के गुणों के कारण मेरे ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव यह तीन भेद हुए हैं । वस्तुतः मेरा स्वरूप सदा भेदरहित है । "शिवपुराण में ही वर्णन है कि जो ब्रह्मा है, वही हरि है, जो हरि है वे ही महेश्वर हैं । जो काली है, वही कृष्ण है । जो कृष्ण है वही काली है । देव और देवी को लक्ष्य करके कभी मन में भेदभाव उत्पन्न होने देना उचित नहीं है । देवता के चाहे जितने नाम और रूप हों, सभी एक हैं। यह जगत् शिव शक्तिमय है । "

विभिन्न देवताओं की अलग-अलग उपासना का तात्पर्य परमात्मा की उस शक्ति से सम्बन्ध स्थापित करना है जो साधक के अभीष्ट प्रयोजन से सम्बन्धित है । जैसे समस्त प्रजा एक ही राजा के राज्य में रहती है तो भी उसे अलग-अलग प्रयोजनों के लिए अलग-अलग विभागों के कर्मचारियों के पास जाना पड़ता है । देव उपासना का भी यही प्रयोजन है । साधक अपनी आवश्यकता और आकांक्षा के अनुरूप उनमें से समय-समय पर इन देवताओं का अंचल पकड़ता है और छोड़ता रहता है ।

किस देवता की आराधना किस प्रयोजन के लिए किस प्रकार करनी चाहिए, इसका वर्णन साधना शास्त्रों में विस्तारपूर्वक किया गया है । श्रीमद्भागवत २/३/२९ में कहा गया है-ब्रह्मतेज की इच्छा वाले को ब्रह्मा की, इन्द्रियभोगों के लिए इन्द्र की, सन्तान के लिए प्रजापति की, सौभाग्य के लिए दुर्गा की, तेज के लिए अग्नि की, धन के लिए वस्तुओं की, वीर्य के लिए रुद्र की एवं अन्न के लिए अदिति की उपासना करनी चाहिए । स्वर्ग के लिए आदित्यों की, राज्य के लिए विश्वेदेवता की, लोक-प्रियता के लिए साध्यगण की, दीर्घायु के लिए अश्विनी कुमारों की, पुष्टि के लिए वसुन्धरा की, प्रतिष्ठा के लिए अन्तरिक्ष देवता की आराधना करनी चाहिए । यश के लिए यज्ञ की, विद्या के लिए शंकर की, दाम्पत्य के लिए गौरी की, रक्षा के लिए यज्ञों की, भोगों के लिए चन्द्रमा आदि देवताओं की उपासना करने से अभीष्ट की पूर्ति होती है । परन्तु जिसे कोई इच्छा न हो अथवा मोक्ष का आकांक्षी साधक परमात्मा की उपासना करे ।"

धर्मशास्त्रों में यह देव शक्तियाँ विभिन्न आकार-प्रकार से चित्रित की गई हैं। इनकी आकृतियों में आयुध, वाहन आदि का भी स्वरूप दिखायी गया है पर वस्तुतः इन सबका आधार ध्यान योग का विज्ञान है। किस प्रकार से ध्यान करने पर कौन सी देव शक्ति को साधक अपनी धारणा में अवतरित कर सकता है, इस गूढ़ रहस्य को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बहुत ही कम लोग जानते हैं । इस सूक्ष्म विज्ञान के ज्ञाता बहुत खोज करने पर ही प्राप्त हो सकते हैं । इसीलिए गुरु के रूप में मार्गदर्शक ढूँढ़कर उनके माध्यम से ही उपासना-क्रम चलाने का निर्देश शास्त्रकार देते हैं ।

देव-उपासना में जहाँ विधि-विधान और कर्म-काण्डों का महत्व है वहाँ श्रद्धा और विश्वास की सुदृढ़ भावना का होना भी आवश्यक है । उथली श्रद्धा के साथ केवल कौतुक, कौतूहल समझकर, मन्त्र या देवता की परीक्षा के लिए कुछ आधी-अधूरी साधना कर लेने से समुचित परिणाम प्राप्त नहीं हो सकता । उसके लिए गहरी श्रद्धा और पूर्ण विश्वास का होना अपरिहार्य है । इस श्रद्धा विश्वास को ही 'अमृत' कहते हैं । इसी को पीकर देवता तृप्त होते और प्रसन्न होते हैं । परमसत्ता को इसी कारण "रसो वै सः" कहकर सम्बोधित किया गया है व कहा गया है कि उसके प्रति समर्पण होने पर, आदर्शों के समुच्चय को देव प्रतीक मानने पर जिस आनन्द की अनुभूति होती है वह वर्णनातीत है। उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता । मार्ग कोई भी चुना हो, लक्ष्य स्पष्ट एवं श्रेष्ठ होना चाहिए । इस प्रकार की गयी उपासना व उसके प्रति किया गया समर्पण साधक के जीवन को कायाकल्प कर देता है ।

परमेश्वर एक है-अनेक नहीं

इस सृष्टि का स्रष्टा एक ही है । वही उत्पादन, अभिवर्धन तथा परिवर्तन की सारी प्रक्रियाएँ अपनी योजनानुसार सम्पन्न करता है । न उसका कोई साझीदार है और न सहायक । मकड़ी जब चाहती है अपने मुँह के पानी से ही जाला बना देती है और जब उसका मन होता है जाले को समेटकर गोली की तरह निगल लेती है । शास्त्रकारों ने बताया है कि अनादिकाल में वह परब्रह्म अकेला था । अकेलापन उसे खला । इच्छा हुई कि एक से बहुत हो जाऊँ । इस इच्छा ने उसे ही सृष्टि का रूप धारण कर लिया । इस प्रकार एक से बहुत बनने की इच्छा पूरी हो गई इस सृजन के कण-कण में वह समा गया । लहरों पर चमकने वाले सूर्य की तरह वह अनेकधा दृष्टिगोचर होने लगा। प्राणियों को माया ने भरमाया और ये अहन्ताग्रस्त होकर अपनी-अपनी प्रथक स्वार्थपरता से ग्रस्त होकर निजी इच्छा, आवश्यकताओं के अनुरूप क्रिया-कृत्य करने लगे। यह भूल गये कि हम एक ही उद्गम से प्रादुर्भूत हुए हैं और परस्पर सहोदर भाई के सदृश्य हैं। सबका स्वार्थ संयुक्त है । एक ही सत्ता भिन्न-भिन्न प्रकार की हो गई और समझा जाने लगा कि जो जिस देवी-देवता का पूजा-पाठ करेगा वह उसी को अपना समझेगा और उसी की हिमायत करेगा। इतना ही नहीं जो अपने यजमान की उपेक्षा पात्र या विरोधी होगा उसे त्रास देने से भी न चूकेगा। यह मान्यता है आज के बहुदैववाद की । इस प्रकार स्रष्टा का ही खण्ड विभाजन नहीं हुआ वरन् अपने-अपने कुल वंश ग्राम नगर के भी पृथक्-पृथक् देवी-देवता बन गये । प्रगति-सामूहिक है। इसलिए हिल-मिलकर रहना चाहिए और मिल-बाँटकर खाना चाहिए। सुखों को बाँट देना और दुःखों को बँटा लेना ही श्रेयस्कर है । उनमें आदमी स्वार्थान्ध हो जाता है और अपनी सुविधा के लिए दूसरों की असुविधा पर ध्यान नहीं देता ।

विभाजन और संकीर्णता इतने तक ही सीमित नहीं रही । परमेश्वर का भी बँटवारा कर लिया गया । अनेकों देवी-देवता बनकर खड़े हो गये । उनकी आकृति ही नहीं प्रकृति भी अपने को न पूजने-दूसरे को पूजने पर वे देवता रुष्ट होने और त्रास देने पर उतारू होने लगे । बहुदैववाद के आरम्भिक दिनों में तीन ही प्रमुख थे ब्रह्मा, विष्णु, महेश और उनकी पत्नियाँ सरस्वती, लक्ष्मी, काली । इसके बाद तो नित नये देवता उपजने लगे । देवताओं की संख्या अगणित हो गई और देवियों की भी । उनकी चित्र-विचित्र फरमाइशें भी बढ़ गईं । इनमें से कुछ शाकाहारी थे कुछ माँसाहारी । कुछ क्रोधी, कुछ शान्त मिजाज । कुछ तो प्रेत पितर ही देवी-देवता बन बैठे । इनकी संख्या हजारों लाखों तक जा पहुँची । इस सन्दर्भ में पिछड़ी जातियों ने देव रचना का काम बहुत उत्साह से बढ़ाया । शारीरिक, मानसिक बीमारियों को उन्हीं के रुष्ट होने का कारण माना जाने लगा । उपचार यही था कि किसी मध्यवर्ती ओझा की मारफत समाधान करने के लिए उनकी रिश्वत का पता लगाना । इस समाधान में अकसर खाने-पीने की वस्तुओं की याचना होती थी । विशेषकर पशु-पक्षियों के बलिदान की । इनका कोई स्थान विशेष बना हो तो वहाँ पहुँचकर धोक देने की (प्रणाम करना) । घर में नई बहू आने या नया बच्चा पैदा होने पर कुल देवता की दर्शन झाँकी करने जाना भी आवश्यक समझा जाने लगा । इस प्रकार देवता का 'मूड' ठीक रखना भी हर परिवार के लिए आवश्यक जैसा बन गया । यह छोटी समझी जाने वाली बिरादरियों की बात हुई । बड़ी बिरादरियों के देवता अपेक्षाकृत अधिक शानदार, ठाठ-बाट, बड़े देवी-देवताओं के भक्त बनने में अपनी प्रतिष्ठा समझने लगे । उनकी पूजा पंडित पुरोहितों द्वारा दुर्गा सप्तशती पाठ, शिवमहिमा रुद्री आदि का पाठ, हवन, पूजन जैसे उपचार और उनमें से अपने लिए जिन्हें चुना गया हो उनके दर्शन झाँकी करने का सिलसिला चलता । बहुदैववाद के पीछे अनेकानेक कथा-कहानियाँ जोड़ी गईं और उनकी प्रसन्नता से मिलने वाले लाभों का-उनकी नाराजी से मिलने वाले त्रासों की माहात्म्य गाथाएँ गढ़ ली गईं । कितने ही देवताओं का किन्हीं पर्व-त्योहारों के साथ सम्बन्ध जोड़ दिया गया । कईयों के स्थान विशेष पर जाना आवश्यक माना गया । इनमें से कुछ पुराने बने रहे और कितने ही नये बन कर खड़े हो गये । कई उपेक्षित होते चले गये और कई एकदम नये विनिर्मित होकर प्रख्यात हो गये ।

यह बहुदैववाद हिन्दुओं के छोटे बड़े वर्गों में तो है ही। अन्य देशों और धर्मों के पिछड़े वर्गों में भी उसी भाँति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रचलित है । अफ्रीका के दक्षिण पूर्व एशिया के, दक्षिण अमेरिका के पिछड़े वर्गों में यह प्रचलन बहुत अधिक है। समझदार समुदाय तो क्रमशः अब इस जंजाल में अपना पीछा छुड़ाते जा रहे हैं ।

इस्लाम और ईसाई सम्प्रदायों में ऐकेश्वरवाद है । तो भी उनमें पीर, औलिया, पैगम्बर पूजते हैं और उनकी जियारत के लिए जाते हैं । जैन और बौद्ध धर्मों में तीर्थंकरों की लगभग वैसी ही कट्टर मान्यता है । हिन्दुओं के भाँति उनकी भी तीर्थ हैं और स्थापित प्रतिमाओं के अनेकानेक नाम हैं । उनकी विशेषताएँ अपनी-अपनी कही गई हैं । मनौती इन सभी की मानी जाती है । हमारा अमुक काम बन जाय तो दर्शन करने आने या भेंट चढ़ाने का पूर्व संकल्प किया जाता है यही मनौती है । इसे पेशगी रिश्वत की शर्तबन्दी भी कहा जाता है । एक की सफलता सुनकर दूसरा लालायित होता है और माहात्म्य तथा मनौती का प्रचलन निरन्तर बढ़ता जाता है ।

इस सन्दर्भ में पुनर्विचार करने की आवश्यकता है अन्यथा यह भ्रम जंजाल बढ़ता ही जाएगा और अकारण लोगों में भय तथा लालच का भाव बढ़ता जाएगा, अनास्था बढ़ेगी सो अलग । उन देवताओं के ऐजेन्टों तथा पुजारियों के पौ बारह होते रहेंगे और बेचारे भावुक लोग अन्ध श्रद्धा के कारण अपनी जेब कटाते रहेंगे ।

समझा जाना चाहिए कि ईश्वर एक है । उसकी व्यवस्था में अनेक साझीदार नहीं हो सकते । धर्म सम्प्रदायों की मान्यता के कारण उसके आकार-प्रकार भी अनेक प्रकार के नहीं हो सके । सम्प्रदायों में ईश्वर की आकृति और प्रकृति अनेक प्रकार की मानी गई है । यदि यह सब मानी जाय तो इनमें से किसी एक को सच्चा और बाकी सबको झूठा कहना पड़ेगा । किस को सही और कितनों को गलत माना जाएँ । यह बड़ा टेढ़ा प्रश्न है । फिर इसकी कोई कसौटी भी नहीं है । मान्यताएँ श्रद्धा पर अवलम्बित हैं । वह श्रद्धा पैगम्बरों और ऋषियों के कथनों पर आधारित है । उनके प्रति पूज्य भाव रखते हुए भी यह निर्णय करना कठिन है कि परस्पर विरोधी इन प्रतिपादनों में कौन सही और कौन गलत है । ऐसी दशा में किसी सत्यान्वेषी के लिए भारी कठिनाई उपस्थित होती है कि इस विरोधी विडम्बनाओं में से किसे ग्राह्य और किसे अग्राह्य करें ।

तत्व-दर्शन और विवेक-बुद्धि के आधार पर यह मानना पड़ता है कि परमेश्वर एक है । सम्प्रदायों की मान्यताओं के अनुसार उसके स्वरूप और विधान सही नहीं हो सकते । यह उनकी अपनी-अपनी ऐसी मान्यताएँ हैं जो मानने वालों की निजी मान्यता पर अवलम्बित हैं ।

व्यापक शक्ति को निराकार होना चाहिए । जिसका आकार होगा वह एकदेशीय और सीमित रहेगा । कहा भी गया है-'न तस्य प्रतिमा अस्ति' अर्थात् ''उसकी कोई प्रतिमा नहीं है ।'' न स्वरूप न छवि । आप्तवचनों का एक और भी कथन ऐसा ही अभेद्य है । उसमें कहा गया है-'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति ' अर्थात् एक ही परमेश्वर को विद्वानों ने बहुत प्रकार से कहा है । यहाँ अन्धों द्वारा हाथी का एक-एक अंग पकड़कर उसे उसी आकृति का बताये जाने वाली कहानी याद आ जाती है ।

ईश्वर की प्रसन्नता-अप्रसन्नता का आधार नैतिक नियमों का पालन करना ही हो सकता है । नाराज उससे होगा जो चारित्रिक मर्यादाओं का उल्लंघन करेगा । दूसरा आधार पुण्य-परमार्थ है । पिछड़ों को आगे बढ़ाना और गिरों को ऊँचा उठाना-समाज में सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्धन करना यही पुण्य-परमार्थ की परिभाषा है । यह मान्यता हर सम्प्रदायों और हर दर्शन द्वारा एक स्वर से सर्वमान्य की गई है । विवाद पुण्य-परमार्थ की परिभाषाओं से आरम्भ होता है । जिसे दूरदर्शी विवेकशीलता की कसौटी पर कसने के अलावा यथार्थता का अनुमान लगाने का और कोई आधार नहीं है ।

ईश्वर की पूजा से उसकी प्रसन्नता और न करने से अप्रसन्नता मानी जाने की बात के पीछे भी एक ही रहस्य प्रतीत होता है कि निर्धारित कर्मकाण्डों के सहारे मनुष्य आत्म-परिष्कार और लोक-कल्याण की सत्प्रवृत्तियों के प्रति अधिकाधिक निष्ठावान बने । आमतौर से लोग न्यायशील सर्वव्यापी परमात्मा को भूल जाते हैं और निर्भय होकर कुकर्म करने लगते हैं । कर्मफल की सुनिश्चितता को संदिग्ध मानते हैं । इस भ्रम के निराकरण में ईश्वर स्मरण का, उसके पूजा-विधान का अन्तःकरण पर उपयोगी प्रभाव पड़ सकता है और मनुष्य अपने चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में उत्कृष्ट आदर्शवादिता का समावेश कर सकता है । प्रार्थना मन्त्रों में न्यूनाधिक मात्रा में ऐसे संकेत भी हैं ।

चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि उपहारों को ईश्वर के सम्मुख उपस्थित करने की पूजा-प्रक्रिया का यही रहस्य है । इन वस्तुओं में जो श्रेष्ठताएँ हैं उन्हें अपने जीवन में धारण करने का प्रयत्न किया जाय और यह माना जाय कि जल रूपी सरसता, पुष्प जैसी कोमलता, नैवेद्य जैसी मिठास, दीपक जैसी स्वयं जलकर प्रकाश करने की प्रक्रिया, चन्दन की भाँति वातावरण महकाने जैसी सत्प्रवृत्तियाँ अपने में उत्पन्न करनी चाहिए और श्रेष्ठ व्यक्तित्व को भगवान के चरणों में अर्पित करने की भावना सुविकसित करनी चाहिए। अन्य उपहारों भी भेंट किये जाते रहे हों तो उन्हें एक प्रकार का आत्म-प्रशिक्षण समझा जाना चाहिए । भगवान को किसी के स्तवन या उपहार की कोई आवश्यकता नहीं है । पूजा-उपासना की समूची प्रक्रिया संकेत रूप में अपने व्यक्तित्व को पवित्र एवं प्रखर बनाने के लिए प्रशिक्षण प्रक्रिया है । जो इतना कर सकेंगे वे स्रष्टा का अनुग्रह प्राप्त कर सकेंगे और महा- मानव, ऋषि, देवता बनने की दिशा में अग्रसर होंगे । उन्हें आत्मसन्तोष और जनसम्मान एवं सहयोग की कमी न रहेगी ।

अन्य देशों में प्रचलित भगवानों या देवताओं की आकृति-प्रकृति का निर्धारण किस आधार पर हुआ है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

इसका कारण तो विदित नहीं है पर भारत के देवताओं को सत्प्रवृत्तियों का प्रतीक मानकर उनकी आकृतियों का गठन किया गया है । जैसे शिव की आकृति में सिर में गंगा का निकलना अर्थात् ज्ञान की धारा प्रवाहित होना । मस्तक पर चन्द्रमा अर्थात् सौम्य शीतलता का होना । गले में मुण्डों की माला अर्थात् मौत को स्मरण रखना । गले में सर्प अर्थात् दुष्टजनों को भी गले से लगाकर उनकी प्रकृति बदलना । नन्दी वाहन- अर्थात् परिश्रमी और सौम्य प्रकृति के प्रति अनुराग होना। कमर में सिंह चर्म अर्थात् अनाचारियों का दमन करना । हाथ में त्रिशूल अर्थात् अभाव, अज्ञान और अनाचार का उच्छेदन करना । हाथ में डमरू अर्थात् संगीत-उल्लास को पसन्द करना आदि ।

ब्रह्मा जी के चार मुख- वेद में निहित ज्ञान की चार धाराओं का प्रसारण, चार प्रसंग धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष । कमल पुष्प पर विराजमान अर्थात् सर्वोपम पुष्पित आधार की पसन्दगी इन प्रतीकों के परिचायक हैं ।

विष्णु की चार भुजाओं में चार आयुध हैं । शंख अर्थात् जागरण का उद्घोष। चक्र अर्थात् गतिशीलता, प्रगति। गदा-पराक्रम-संघर्ष के उपयुक्त शौर्य-पराक्रम। पद्म अर्थात् खिले कलम जैसी सुगन्ध और शोभा की अवधारणा। गले में वैजयन्तीमाला अर्थात् धर्म धारणा । सिर पर मुकुट अर्थात् शासन की स्थिति सुव्यवस्थित रहना आदि ।

देवियों में सरस्वती, लक्ष्मी और काली की प्रमुखता है । इनके वाहनों तथा आयुधों में भी ऐसे ही संकेत, सन्देश सन्निहित हैं जिनसे ये प्रेरणा ली जा सकती है कि मनुष्य को अन्य किन विशेषताओं, विभूतियों को अपने व्यक्तित्व में विकसित समाविष्ट करनी चाहिए ।

यथा-'सरस्वती' वाहन हंस, नीर-क्षीर विवेक । हाथ में वीणा पुस्तक । संगीत और साहित्य की कलाकारिता । 'लक्ष्मी'-हाथियों द्वारा पूजन । धनवान बनने के लिए हाथियों जैसी बुद्धिमत्ता, बलिष्ठता और ऊँचाई । 'काली ' का वाहन सिंह पराक्रम, साहस, आयुध, तलवार त्रिशूल आदि । आसुरों को निरस्त करने के लिए आवश्यक उपकरणों का धारण ।

इसी प्रकार सभी देवी-देवताओं की आकृति-प्रकृति वाहन, आयुध आदि के पीछे ऐसे संकेत और सन्देश हैं जिनका विकसित व्यक्तित्व में समावेश होना चाहिए । यह सब आत्मशिक्षण है । जिस प्रकार बाल कक्षाओं में, अ-अमरूद, आ-आम, इ-इमली, ई-ईख, उ-उल्लू, ऊ-ऊँट के चित्र बनाकर स्वर और व्यंजन की वर्णमाला याद कराई जाती है, ठीक उसी प्रकार देवी-देवताओं की चित्र-विचित्र आकृतियों, आयुधों, वाहनों, उपकरणों द्वारा आस्तिकजनों को यह प्रशिक्षण मिलता है कि आस्तिकता का अर्थ श्रेष्ठ सद्गुणों का महत्व समझना और अपने में धारण करना है। यह प्रतीक मात्र है । अनेक सुख, अनेक हाथ वाले देवी-देवताओं का होना विवेकशीलता द्वारा स्वीकार्य नहीं हो सकता । भारत कवियों कलाकारों का देश रहा है । यहाँ के तत्वदर्शियों ने सर्वसाधारण की सामान्य बुद्धि को चित्रकारिता के माध्यम से मानवी गरिमा और उत्कृष्टता के लिए आवश्यक धारणाओं और प्रयासों के सम्बन्ध में रहस्यमय चित्रों में चित्रित किया है । उनका यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि निराकार, सर्वव्यापी और न्यायकारी परमेश्वर की सृष्टि व्यवस्था में कोई साझीदार भी है और वे मात्र मनुहार, उपहार, उपचार के आधार पर प्रसन्न-अप्रसन्न होते रहते हैं । पात्रता-कुपात्रता का विचार किये बिना शाप-वरदान देते रहते हैं । रुष्ट और प्रसन्न होते रहते हैं । ऐसी मान्यताएँ-अन्धविश्वास में गिनी जाएँगी और उन्हें अपनाने वालों को भ्रमित करेंगी । वास्तविकता को कोसों दूर ले जा पटकेंगी । हममें से प्रत्येक को यथार्थवादी और तत्वदर्शी होना चाहिए । ईश्वर सम्बन्धी विविध-विधि कथाओं, लीलाओं और पूजा-उपचारों का प्रचलन इसीलिए है कि हर व्यक्ति विश्व के नियामक और उसके सुनिश्चित विधि-विधान को समझकर चरित्रवान बने और पुण्य-परमार्थ में निरत रहे ।

यदि इन मान्यताओं से विरत रहा जाय तो नास्तिकता उपजेगी और मनुष्य स्वेच्छाचारी, उद्दण्ड और अनाचारी बनने लगेगा । कुकर्म करने और कुमार्ग अपनाने वाले, समाज-दण्ड और राजदण्ड से बच सकते हैं, इन दोनों को ही चकमा दे सकते हैं, पर जिनने आस्तिकता की मान्यता स्वीकार की है उन्हें यह विश्वास बना रहेगा कि घट-घट वासी और सर्वत्र विद्यमान परमेश्वर की दृष्टि से हमारी कृतियाँ छिपी नहीं रह सकती और साथ ही तदनुरूप 'दंड पुरस्कार' की परिणति भी फलित हुए बिना नहीं रह सकती । इसलिए आस्तिकता का समूचा ढाँचा खड़ा किया गया है ताकि मनुष्य मानवी गरिमा के प्रति निष्ठावान रहे और वह करे जो उसके लिए करने योग्य है । उस मार्ग पर कदम न बढ़ाये जिससे स्रष्टा को, सृष्टि को, अन्तरात्मा को खिन्न होना पड़े ।

परमेश्वर की अनेक शक्तियों, व्यवस्थाओं और गतिविधियों को यदि चित्र-विचित्र देवी-देवता माना जाय तो इस अलंकारिक मान्यता में कोई हर्ज नहीं है, पर सृष्टि व्यवस्था में साझीदारी करने वाले स्वतन्त्र अस्तित्व के देवी-देवताओं की मान्यता से मुँह मोड़ लेना ही सत्य और तथ्य को अपनाने की विवेकशीलता है ।

संसार में केवल ईश्वर ही सत् है

जहाँ ईश्वर को मन, बुद्धि से अतीत कहा गया है, वहाँ विषयात्मक मन, बुद्धि और जहाँ मन, बुद्धि के गोचर कहा गया है, वहाँ विषय विरहित मन, बुद्धि इस प्रकार समझना चाहिए । जिस मन, बुद्धि द्वारा मनुष्य इस संसार को सत्य मान कर और देह में आत्मबुद्धि करके संसार के विषय भोग को ही जीवन का परम लक्ष्य मानता है, जिसे

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषयात्मक मन बुद्धि कहते हैं और जिस मन बुद्धि द्वारा संसार की असारता का ज्ञान होता है । उस बुद्धि द्वारा देही अपने आपको देह से भिन्न समझता है और इस देह को बन्धन स्वरूप और सर्व दु:खों का आधार समझ कर जन्म-मरण आदि बन्धन से मुक्ति पाने की चेष्टा करता है और इस असार संसार के मूल में जो सार तत्व है उसको प्राप्त होने का यत्न करता है, उस मन, बुद्धि को विषयविरहित मन, बुद्धि कहते हैं ।

इस संसार में सब कुछ ही असार है । सकल दृश्यमान पदार्थ ही अस्थाई है, परिवर्तनशील हैं, जो कल था वह आज नहीं है, जो आज है वह कल न होगा । जिस स्थान में किसी समय बड़े-बड़े शहर बसे थे वहाँ आज उल्लू बोलते हैं और जो आज उजाड़ वन है, वहाँ कल को सुन्दर शहर अपवाद होंगे । यह जो बड़े- बड़े पहाड़ दीखते हैं, किसी समय में वे समुद्र के नीचे थे और जहाँ आज मीलों गहरा समुद्र है, वहाँ किसी समय बड़े पर्वत विद्यमान होंगे । परिवर्तन संसार का नियम है । दिन के पीछे रात, सुख के बाद दु:ख, जीवन के पश्चात् मृत्यु इस प्रकार ही संसार का चक्कर जारी है । जो कल नहीं था, वह आज विद्यमान है और वह कल को फिर न रहेगा । बालक नेस्ती से हस्ती में आया, बालक से युवा हुआ, युवा से वृद्ध हुआ और तत्पश्चात् मृत्यु ।

इस संसार में सार क्या है ? समुद्र में असंख्य तरंगें उठती हैं और फिर समुद्र में विलीन हो जाती हैं, बुलबुले उठते हैं, लय को प्राप्त होते हैं । इन समुद्र की तरंगों और बुलबुलों में सार क्या है ? और असार क्या है ? तरंग क्या है ? जल मात्र । बुलबुला क्या है ? जल मात्र । जल और बुलबुले के अस्तित्व में आने से पूर्व भी जल द्रव्य मौजूद था उनकी विद्यमानता में भी उनमें जल द्रव्य मौजूद है और जब वे (तरंग और बुलबुला) लय को प्राप्त होंगे तब भी जल वैसे का वैसा बना रहेगा । तरंग और बुलबुले असार हैं, उनका नाम और रूप भी उनमें जो जल द्रव्य है वही सार है । स्वर्ण से नाना प्रकार के आभूषण बनते हैं । वह सब ही अनित्य है । अर्थात् उन स्वर्ण भूषणों के नाम और रूप अनित्य हैं और उनमें जो स्वर्ण द्रव्य है वह सदा एक सा रहता है । नाम और रूप में परिवर्तन नहीं होने से स्वर्ण द्रव्य में किसी प्रकार का फर्क नहीं आता । इसी प्रकार इस संसार में परिवर्तन होता है केवल नाम और रूप में । इस दृश्यमान जगत के मूल में जो द्रव्य है उसका कभी परिवर्तन सम्भव नहीं । वह सदा एकरस बना रहता है ।

"नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।"

-भगवद् गीता २/१६

"असत् जो न उसकी है हस्ती कभी भी ।
कभी है न सद्वस्तु को नेस्ती ही ।।

पाश्चात्य-रसायन-शास्त्र की नींव इसी सिद्धान्त पर है । रसायन शास्त्र का प्रथम सिद्धान्त है -"जो पदार्थ विद्यमान है उसका कभी नाश नहीं होता और कोई नई वस्तु पैदा नहीं की जा सकती ।" अर्थात् संसार में पदार्थ का नाश नहीं होता, रूपान्तर मात्र होता है ।

रसायन-शास्त्र के पण्डितों ने सिद्धान्त किया है कि ६६ रूढ़ पदार्थ इस पृथ्वी के समस्त पदार्थों का मूल कारण है। केवल ६६ पदार्थ रूढ़ हैं, बाकी सब पदार्थ इन ६६ पदार्थ के यौगिक मात्र हैं । चाँदी रूढ़ पदार्थ है । पारा रूढ़ पदार्थ है । प्रोफेसर प्रफुलचन्द राय ने परीक्षा द्वारा सिद्ध किया है कि चाँदी और पारे में कोई एक यौगिक पदार्थों के समान गुण हैं ।

प्रोफेसर राय की इस नई शोध ने रसायन शास्त्र में एक नई लहर उत्पन्न कर दी है । क्या अजब कि बीसवीं सदी यह सिद्ध कर दे कि सोना लोहे में, लोहा चाँदी में अर्थात् एक रूढ़ पदार्थ दूसरे में परिणत हो सकता है ।

अब भी अनेक विज्ञान-विशारद यह मानने लगे हैं कि संसार के समस्त पदार्थों का मूल 'आकाश' है और सृष्टि का आदि कारण है 'पदार्थ और शक्ति ।' इसी पदार्थ और शक्ति को हिन्दू शास्त्रों में प्रकृति और पुरुष कहा गया है, किन्तु वेदान्त शास्त्र इस से भी एक पग आगे जाते हैं । वे कहते हैं कि इन क्षेत्रों में प्रकृति और पुरुष का आदि कारण एक अद्वितीय ब्रह्म है, जो सत् है, चित् है, आनन्द-स्वरूप है ।

इस प्रकार चिन्तन करते-करते जब मनुष्य को संसार के समस्त पदार्थों की असारता का ज्ञान होता है, तब वह इस आसार के मूल में जो सार आत्म-तत्व है उसे जानने के लिये व्याकुल होता है, और नेति-नेति (यह भी ब्रह्म नहीं, वह भी ब्रह्म नहीं) इस प्रकार विचार करते-करते एक सत्ता मात्र उपलब्धि करता है और उसे जानकर उसमें ही मग्न हो जाता है । उस सत्ता को ही श्रुति ने ब्रह्म कहा है । वह ब्रह्म ही सत् है, चित् है और आनन्द स्वरूप है ।

ईश्वर हमारा सच्चा जीवन सहचर है

इस संसार में पग-पग पर कठिनाईयों और संकटों का सामाना मनुष्य को करना पड़ता है । संसार संकटों का आलय कहा गया है । बहुत कुछ साधन होने पर भी आपत्तियाँ आ जाती हैं । उनसे छुटकारे का कोई मार्ग नहीं दीखता । मनुष्य बहुत कुछ हाथ-पैर मारता है लेकिन संकटों से निस्तार नहीं हो पाता ।

ऐसी भयप्रद परिस्थितियाँ कभी न कभी प्राय: सभी मनुष्यों के सामने आती रहती हैं । ऐसा लगता है जैसे उनका सारा बल, सारे साधन समाप्त हो गये हैं । इस अंधकार में कोई साथ देने वाला नहीं है, जीवन भारी हो गया है । पैर लड़खड़ाने लग गये हैं । चारों ओर अन्धेरा ही छाया हुआ है । इस प्रकार यह निराशा और भय से घिर कर असहाय हो जाता है ।

लेकिन फिर धीरे-धीरे सारा ज्वार शांत होने लगता है । सभी ओर समाधान दीखने लगता है । वही साधन जिनकी शक्ति में अविश्वास होने लगा था, उसी अपने बल में, जिसमें अनास्था हो गई थी, उसी जीवन में, जिसमें केवल अन्धेरा ही अन्धेरा दीख रहा था, विश्वास, श्रद्धा और प्रकाश आता दिखलाई देने लगता है । आपत्तियों और संकट के बादल छटने लगते हैं और निराश मनुष्य एक बार फिर अपने ही पैरों पर खड़ा हो जाता है । यह सब चमत्कार क्या है ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

४.२१ ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ

यह चमत्कार वह ईश्वरीय कृपा है जिसका उदय अपने भीतर से ही होता है । यह मनुष्य के आस्तिक भाव का लाभ है, उसी का प्रसाद है । यह लाभ उसे नहीं मिल पाता जो नास्तिक होता है, जिसके हृदय में उस सर्वशक्ति-मान के प्रति विश्वास नहीं होता नास्तिक व्यक्ति को ऐसा अप्रत्याशित सम्बन्ध प्राप्त नहीं होता । वह तो अपने साधनों, अपने बल और अपनी शक्ति के थकते ही पराजित हो जाता है और तब संकट और आपत्तियाँ उस व्यक्ति को पूरी तरह नष्ट कर देती हैं । ईश्वर उन्हीं पर करुणा करता है, जो उसके विश्वासी होते हैं, आस्तिक भाव से ओत-प्रोत होते हैं ।

ईश्वर की यह महती कृपा ही है कि वह अपने विश्वासी की निरुपाय स्थिति में सहायता करता है । वह किसी का बन्धक नहीं होता, किसी का उस पर कोई इजारा नहीं होता । यदि वह सहायता न करे तो इसका कोई उलाहना नहीं । लेकिन नहीं वह अपने उस जन की सहायता बिना माँगे ही करता रहता है । क्योंकि वह करुणा सागर है, दया का आगार है । परमात्मा की इस कृपा के प्रति हम सबको कृतज्ञ ही रहना चाहिए ।

अनेक लोग जरा-सा संकट आते ही बुरी तरह घबरा जाते हैं । हाय-हाय करने लगते हैं । उसे ईश्वर का प्रकोप मान कर भला-बुरा कहने लगते हैं । निराश और हतोत्साह होकर ईश्वर के प्रति अनास्थावान होने लगते हैं । यह ठीक नहीं आपत्तियाँ संसार में सहज सम्भाव्य हैं । किसी समय भी आ सकती हैं । किन्तु उनसे घबराना नहीं चाहिए । उन्हें ईश्वर का अपने बच्चों के साथ एक खेल समझना चाहिए । जैसे कोई कागज का भयावह चेहरा लगाकर कभी-कभी बच्चों को डराने का विनोद किया करता है, उसी प्रकार ईश्वर भी संकट की स्थिति लाकर अपने बच्चों के साथ खेल किया करता है । उसका आशय यही होता है कि बच्चे भयावह स्थितियों के अभ्यस्त हो जायें और डरने की उनकी आदत छूट जाये । वे संसार में हर संकट का सामना करने के योग्य बन जाएँ। आपत्तियों को ईश्वर का खिलवाड़ समझ कर डरना नहीं चाहिए । उसमें उस खिलाड़ी का साथ देकर खेलते ही रहना चाहिए।

आपत्तियाँ उन्हीं के लिये भय का कारण बनती हैं, जो ईश्वर विश्वासी नहीं होते । उनमें ईश्वर के मंगल मन्तव्य का आभास नहीं देखते, अन्यथा संसार की किसी भी परिस्थिति से डरने का कोई कारण नहीं । जिसे ईश्वर की कृपा में विश्वास है, उसकी सर्वशक्तिमत्ता में अखण्ड-आस्था है, जो उसे अपना स्वामी-सखा और माता-पिता समझता है, उसे किसी बात से डरने का क्या अर्थ ? डरना तो उसे चाहिए, जिसने उस सर्वशक्तिमान का साथ छोड़ दिया है ।

जो उसके आदेशों और निर्देशों का उल्लंघन करने का अपराध करता है, जो ईश्वर के विरोध से नहीं डरता है, जो उसकी इच्छा का अनुसरण करने में आनाकानी करता है, डर तो उसके लिये है । जो उसकी अवज्ञा नहीं करता, आज्ञा में चलता है, अपना विश्वास सुरक्षित रखता है, उसको संसार में न तो किसी से भय होता है और न वह किसी परिस्थिति से विचलित होता है । अपने विश्वासी को ईश्वर बिना माँगे ही साहस, सम्बल और शक्ति देता रहता है । यह उसकी महती कृपा है । इसके प्रति हम सबको आभारी रहना चाहिए ।

जीवन एक लम्बी यात्रा के समान है । सर्वथा एकाकी चल कर इसे आसानी से पूरा कर सकना सरल नहीं है । जब किसी यात्रा में कोई मनचाहा साथी मिल जाता है, तो वह बड़ी आसानी से कट जाती है । रास्ता लम्बा और नीरस नहीं लगता । लेकिन साथी सच्चा, सहयोगी और योग्य ही होना चाहिए अन्यथा वह यात्रा को और भी संकटपूर्ण बना देगा । किन्तु संसार में ऐसे मनचाहे साथी मिलते कब हैं ?

संसार में स्वार्थी, विश्वासघाती और आपत्ति के समय साथ छोड़ जाने वाले ही अधिक पाये जाते हैं । जीवन यात्रा के लिए सबसे योग्य एवं उपयुक्त साथी ईश्वर के सिवाय और कौन हो सकता है ? वही एक ऐसा मित्र, सखा, स्वजन, सहायक और गुरु होता है, जो पूरे रास्ते साथ रहे, भूलने पर रास्ता दिखलाये, थकने पर सहारा दे और आपत्ति के समय हाथ पकड़ कर बाहर निकाल लाये। एक ईश्वर को छोड़ कर ऐसा साथी और कौन हो सकता है, जो जीवन भर साथ दे सके, पग-पग पर चेतावनी और सहारा दे सके किन्तु अपने इस उपकार के बदले में न तो कुछ ले और न माँगे । ऐसे निःस्वार्थ एवं हित-चिन्तक साथी, सखा और सहचर के उपकार यदि भुला दिए जाते हैं, तो इससे बढ़कर कृतघ्नता और क्या हो सकती है ।

जिसने ईश्वर से मित्रता कर ली है । उसे अपना साथी बना लिया है, उसके लिये यह संसार बैकुण्ठ की तरह आनन्द का सागर बन जाता है । जिसकी वह सारी दुनिया है, जो संसार का स्वामी है, उससे सम्पर्क कर लेने पर, साथ पकड़ लेने पर, फिर ऐसी कौन-सी सम्पदा, ऐसा कौन सा सुख शेष रह सकता है, जिसमें भाग न मिले । जो स्वामी का सखा है उसके ऐश्वर्यों का भी भागी होता है ।

ईश्वर के अनन्त उपकारों को कोई कृतघ्न नास्तिक ही भुला सकता है, श्रद्धालु आस्तिक नहीं । उसे अहेतुक उपकार करने वाले के प्रति हमें सदैव विश्वासी एवं आस्थावान् ही रहना चाहिए । जब वह जीव को जन्म देने की सोचता है, तब उसके लिये सारी सुविधाएँ पहले से संचय कर देता है, जिससे जन्म लेने के बाद उसके प्यारे जीवों को कोई कष्ट न हो । उसकी मनोनीत माता को दो स्तन दे देता है । जन्म देते ही उनमें नित्यप्रति ताजा, स्वादिष्ट और स्वाददायक दूध पैदा करता रहता है । माता के हृदय में वात्सल्य और स्नेह उपजा कर अबोध जीव की सुरक्षा, सेवा और देखभाल करने की प्रेरणा देता रहता है । यदि वह ऐसा न करे तो संसार में जीव का जीवन एक दिन भी नहीं चल पाये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इतना ही क्यों ? आगे चलकर भी वह जीवों पर अनन्त उपकार करता रहता है । उसे क्रमिक वृद्धि देता है, उसका विकास करता है, बल, बुद्धि और विवेक की कृपा करता है । यदि वह ऐसा न करे तो जीव भी जड़ की तरह अगणितशील ही बना रहे । न वह संसार में किन्हीं कर्त्तव्यों को कर पाये और न उसका आनन्द उठा पाये । ऐसे चिर-कृपालु ईश्वर के उपकारों को किस प्रकार भुलाया जा सकता है ?

इस संसार में क्या नहीं है ? सुख, सौभाग्य, आनन्द-मंगल सभी तो इस संसार में भरा पड़ा है । किन्तु यह मिलता उन्हें ही है, जो इसके स्वामी परमात्मा के अनुकूल रहते हैं । उसके प्रतिकूल चलने वालों को संसार में दु:ख-आपत्तियों के सिवाय और कुछ नहीं मिल पाता । जो इस जगत् के स्वामी को अपना माता-पिता मानेगा, उसकी आज्ञा में चलेगा, उसे हर प्रकार से प्रसन्न रखने का प्रयत्न करेगा, वही उत्तराधिकारी बनेगा और संसार का वैभव पायेगा। संसार का सारा वैभव हमारे पिता का है- जब यह विश्वास हृदय में जम जाएगा तो पुत्र भाव रखने वाला आस्तिक उस अतुल वैभव को अपना अनुभव करने लगेगा। उसे गरीबी, अभाव, दरिद्रता अथवा दु:ख का अनुभव ही न होगा । जब साधारण सांसारिक राजा, रईसों के लड़के अपने आपको सम्पन्न और संतुष्ट अनुभव करते हैं और पिता के बल पर संसार में निर्भय होकर विचरते हैं, तब भला उस सर्वशक्तिमान् को अपना पिता मानने वाला क्यों तो किसी से डरेगा और क्यों अपने को विपन्न मान कर दु:खी होगा ?

ईश्वर मनुष्य के भाव के अनुरूप ही अपना भी भाव बनाता है । जो उसमें पिता का भाव रखता है, वह बदले में उसकी ओर से पुत्र का भाव पाता है । अब ऐसा कौन सा पिता होगा जो अपने पुत्र को अपनी सम्पदाओं से वंचित रखेगा अथवा उसे विपत्ति में पड़ा रहने देगा ? वह तो उसका हर प्रकार से लालन-पालन करेगा और हर प्रकार से आपत्तियों से बचायेगा । ऐसे परम दयालु पिता का उपकार न मानना बहुत बड़ा पाप है ।

संसार की इस लम्बी जीवन-यात्रा को एकाकी पूरा करने के लिए चल पड़ना निरापद नहीं है । इसमें आपत्तियाँ आयेंगी, संकटों का सामना करना होगा । निराशा और निरुत्साह से टक्कर लेनी होगी । इन सब बाधाओं और दु:खदायी परिस्थितियों से लड़ने के लिए एक विश्वस्त साथी का होना बहुत आवश्यक है । वह साथी ईश्वर से अच्छा कोई नहीं हो सकता । उसे कहीं से लाने-बुलाने की आवश्यकता नहीं होती है । वह तो हर समय, हर स्थान पर विद्यमान है । एक अणु भी उससे रहित नहीं है । वह हमारे भीतर भी बैठा हुआ है । किन्तु हम अपने अहंकार के कारण उसे जान नहीं पाते । उसी प्रकार जैसे किसी के घर में बड़ा भारी खजाना छिपा पड़ा हो और वह उसे अज्ञानवश न जान सके । जब किसी को अपनी छिपी सम्पत्ति का पता हो जाता है, तो वह उसे खर्च भले ही न करे तब भी उसे उसके बल पर एक सम्पन्नता, एक विश्वास और एक बल अनुभव होता रहता है । जो अन्तरस्थ ईश्वर का विश्वास पा लेता है, समझ लेता है कि वह सर्वशक्तिमान हर समय उसके हृदय में विराजमान् है, उसके साथ रहता है, उसे एक बड़ा आनन्ददायक आत्म-विश्वास बना रहता है । फिर उसे न किसी से भय लगता है और न वह किसी प्रकार की कमी अनुभव करता है । वह स्वयं ही अपने उस विश्वास के बल पर हर परिस्थिति से टक्कर ले लेता है, प्राय: रोकर, कलप कर ईश्वर को पुकारने की भी आवश्यकता नहीं रहती ।

ईश्वर हमारा महान् उपकारी पिता है । वह हमारा स्वामी और सखा भी है । हमें उसके प्रति सदा आस्थावान् रहना चाहिए और आभारपूर्वक उसके उपकारों को याद करते हुए उसके प्रति विनम्र एवं श्रद्धालु बना रहना चाहिये । इसमें हमारा न केवल सुख ही निहित है बल्कि लोक-परलोक दोनों का कल्याण भी ।

यह जीवन प्रभुमय बन जाय

भगवत् प्रार्थना में अलौकिक शक्ति और अनन्त सामर्थ्य है । इस आत्मचेतना को परमात्मसत्ता से जोड़ने, उससे बातें करने तथा उसमें निवास करने का सर्वोत्तम उपाय माना गया है । यह वह उपक्रम है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी अन्तरात्मा की भूख को मिटाता है । शरीर की क्षुधा-पिपासा अन्न-जल से मिटती है और इससे शरीर को शक्ति मिलती है । वह परिपुष्ट और बलिष्ठ बनता है । उसी तरह अन्तरात्मा अपनी आकुलता को मिटाने, अपने ऊपर चढ़े मल-विक्षेपों को हटाने की तथा उसमें प्रकाश भरकर अपूर्णता को दूर कर पूर्णता भरने की प्रार्थना भगवान से करती है।

ईश्वर के प्रति-आराध्य के प्रति "पितु-मातु-सहायक स्वामी सखा" की भावना रखकर उसके सम्मुख निश्चय पूर्वक की गई पुकार कभी निष्फल नहीं जाती । विश्वास पूर्वक की गई भाव भरी प्रार्थना पर परमात्मा दौड़े आते हैं । उन्हें जहाँ कहीं, जब कभी हार्दिक अभिव्यक्ति मिलती है जो उनकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहायता उभरे बिना रह नहीं सकती ।

द्रौपदी निस्सहाय अबला के रूप में कौरवों की राजसभा में खड़ी थी । दुराचारी कौरवों द्वारा चीरहरण किये जाने पर भी उपस्थित किसी मानव ने उसकी सहायता नहीं की । प्रार्थना करने पर ईश्वरीय सत्ता ने उसकी लाज बचाई । दमयन्ती का बीहड़ वन में कोई सहायक नहीं था । सतीत्व पर आँच आते देख उसने भगवत् सत्ता को पुकारा जो उसकी नेत्रों से ज्वाला रूप में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रकट हुई और उसने व्याध को जलाकर भस्म कर दिया । प्रह्लाद को दुष्ट पिता से मुक्ति दिलाने एवं ग्राह के मुख से गज को छुड़ाने उनकी प्रार्थना पर भगवान स्वयं आगे आये थे निर्वासित पाण्डवों की रक्षा स्वयं भगवान ने की । अपने प्रिय सखा अर्जुन का रथ जोता एवं गीता का उपदेश देकर धर्म-दर्शन का निचोड़ मार्गदर्शन हेतु प्रस्तुत किया, साथ ही महाभारत की भूमिका बनाकर सतयुग की स्थापना हेतु स्वयं भूमिका निभाई । नरसी भगत के सम्मान की रक्षा व मीरा को विष के प्याले से बचाने हेतु भगवत् सत्ता के आने के मूल में उनकी प्रार्थना की शक्ति ही थी ।

ये सभी उदाहरण ऐसे हैं जिन्हें पौराणिक-गाथाएँ कहकर उनकी सत्यता से इनकार नहीं किया जा सकता । वस्तुतः प्रार्थना विश्वास की प्रतिध्वनि है । रथ के पहियों में जितना अधिक भार होता है उतना ही गहरा और तीव्र निशान वे धरती में बना देते हैं । प्रार्थना की रेखाएँ लक्ष्य तक दौड़ी जाती हैं और मनोवांछित सफलता खींच लाती हैं । विश्वास जितना सघन होगा, परिणाम भी उतने ही श्रेष्ठ और प्रभावशाली होंगे । प्रख्यात अँग्रेज कवि टेनीसन के अनुसार- संसार की काल्पनिक दौड़ जहाँ तक सम्भव है, उससे कहीं अधिक महान् कार्यों का सम्पादन अंतः-करण की भावभरी प्रार्थना द्वारा किया जा सकता है । अतः हमारी प्रार्थना ऐसी हो, जो लक्ष्य को बेध सके । जिसमें केवल स्वर का महत्व प्रकट होता है, वह प्रार्थना नहीं वरन हृदयहीन बिडम्बना भर कही जाएगी । प्रार्थना वह होती है जो हृदय से निकल कर सारे आकाश को प्रभावित करती और परमात्मा के हृदय में भी उथल-पुथल मचा कर रख देती है । ऐसी प्रार्थना निष्काम, सच्ची और सजीव ही हो सकती है । वर्षा का जल गिरता है तो सारी धरती गीली हो जाती है । प्रार्थना के प्रभाव से परमात्मा का अन्तःकरण द्रवित होता है और साधक की उपासना से अधिक सत्परिणाम प्रस्तुत होता है ।

प्रार्थना का अर्थ याचना नहीं है । वह तो आत्मा की पुकार है । जब दृढ़ विश्वास के साथ आकुल हृदय से मनुष्य ईश्वर को पुकारता है तो वही भावना प्रार्थना बन जाती है । ईश्वर से हृदय का मिलन उसका एकीकरण ही प्रार्थना का उद्देश्य होना चाहिए । उसकी सफलता का उपाय बताते हुए रामकृष्ण परमहंस ने कहा है-"जब मन और वाणी एक होकर कोई वस्तु माँगते हैं, तो उस प्रार्थना का उत्तर अवश्य मिलता है । केवल वाणी द्वारा प्रार्थना पर्याप्त नहीं उसमें अन्तःकरण की तल्लीनता भी आवश्यक है । ऐसी प्रार्थनाओं में ही सजीवता होती है, चुम्बकत्व होता है और वह अपना संदेश परमात्मा तक पहुँचाने में समर्थ होती है । सदुद्देश्यों के लिए की गई हृदय की आत्मा की पुकार अनसुनी नहीं जाती । ईश्वर उसे अवश्य पूरी करता है ।

प्रार्थना से बुद्धि पवित्र बनती है । विवेक जाग्रत होता है जिससे उलझी गुत्थियों को सुलझाने का सूझबूझ प्राप्त होती है, संकट की स्थिति में उचित मार्ग निर्देशन मिलता है । महात्मा गाँधी अपने उत्थान का प्रमुख आधार प्रार्थना को ही मानते थे । जीवन के अंतिम क्षणों तक इसकी नियमितता को उन्होंने बनाये भी रखा । उनका सम्पूर्ण जीवन प्रार्थनामय था। वे कहा करते थे प्रार्थना मेरी जीवन जड़ी है । जब-जब कोई कठिनाई आती है, मैं उसी का आश्रय लेता हूँ । मेरे सामने आने वाले राष्ट्रीय, सामाजिक तथा राजनीति के कठिन प्रश्नों की गुत्थियों का हल मुझे अपनी बुद्धि की अपेक्षा अधिक स्पष्टता और शीघ्रता से प्रार्थना द्वारा विशुद्ध अन्तःकरण से मिल जाता है । प्रार्थना का सहारा न होता तो मैं कब का पागल हो गया होता । मेरी आत्मा के लिए इसकी उतनी ही अनिवार्यता है जितना शरीर के लिए भोजन । प्रार्थना के बिना मैं कोई कार्य नहीं करता, सच्चे हृदय से की गयी पुकार का परिणाम अवश्य महान् प्रतिफल प्रस्तुत करता है ।

प्रार्थना एक सार्वभौम मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है । सभी धर्मों ने इसकी महत्ता को स्वीकार किया है । तत्ववेत्ताओं ने इस पर गहन मनन और चिन्तन किया है और इसे शक्ति प्राप्त करने की एक वैज्ञानिक पद्धति घोषित किया है । इसकी महत्ता पर प्रकाश डालते हुए प्रसिद्ध विचारक मनीषी डेल कार्नेगी ने कहा है- "यदि लोगों को यह ज्ञात हो जाता कि प्रार्थना से शान्ति और संतोष मिलता है तो जो आत्महत्या की चेष्टा करते हैं अथवा पागल हो जाते हैं, उनमें से अधिकांश को बचाया जा सकता है ।" उन्होंने चिन्ताओं-मनोविकारों से छुटकारा प्राप्त करने का उपाय प्रार्थना को बताया है । नोवल पुरस्कार विजेता प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० अलेक्सिस केरेल ने अपनी पुस्तक 'मैन द अनबोन' में लिखा है कि प्रार्थना द्वारा कठिन रोगों से भी छुटकारा पाया जा सकता है । इसी तरह की मान्यता वैज्ञानिक अलबर्ट विल्क की भी है । उन्होंने अपनी पुस्तक-'लेसन्स इन लिविंग' में कहा है कि प्रार्थना से स्वास्थ्य लाभ मिलता तो है पर इसकी कामना इस रूप में करनी चाहिए कि आज उस परमसत्ता ने हमें इसीलिए स्वस्थ कर दिया है कि कल हम कुछ अच्छा कार्य कर सकें । अपने लिए ही नहीं वरन् समाज के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकें । सार्थक पुकार यही है । इसे अधिक स्पष्ट करते हुए मनीषी रिबेका बीयर्ड ने अपनी कृति 'एवरी मैन्स सर्च' में कहा है-"प्रार्थना द्वारा विपरीत परिस्थितियों को भी अनुकूलता की दिशा में मोड़ा मरोड़ा जा सकता है । शक्ति की इस धारा को शुभ दिशा में प्रवाहित करने के लिए आवश्यक है कि जिस परिणाम को इस उपस्थित देखना चाहते हैं, उस परिस्थिति को हम निर्मित करें ।"

'थियालाजिका जर्मेनिका' नामक प्रसिद्ध पुस्तक में कहा गया है, जब प्रार्थना द्वारा साधक ईश्वर के सम्पर्क में आकर उसमें आत्मसात हो जाता है तो वह अपनी खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त कर लेता है । उसे शाश्वत जीवन की उपलब्धि होती है। संत इगनेशियस के अनुसार प्रार्थना से हृदय में ईश्वर के प्रति पूर्ण निर्भरता का भाव

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाग्रत होता है । अंत:करण शुद्ध होकर उसमें देवत्व का विकास होता है, विनम्रता आती है और आत्मसंतोष का भाव पैदा होता है ।

निस्सन्देह प्रार्थना में अमोघ-शक्ति है । परोपकार-आत्मकल्याण और जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ही उसका सदुपयोग होना चाहिए । आत्मकल्याण और संसार की भलाई से प्रेरित प्रार्थनाएँ ही सार्थक हो सकती हैं । जब **असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मामृतं गमय** के श्रद्धापूरित भाव, उद्गार अंत:करण से उठेंगे तो निश्चय ही जीवन में एक नया प्रकाश प्रस्फुटित होगा ।

प्रभु-भक्ति का वैदिक स्वरूप

आत्मिक-शान्ति और पूर्णानन्द को प्राप्त करने के लिये ही यह जीवन मानवदेह में अवतरित हुआ है । यही इसके जीवन का चरम लक्ष्य है। इसीलिये ही यह जीव सुख और शान्ति का खोजी बनकर उसकी प्राप्ति के लिये दर-दर भटकता और ठोकरें खाता फिरता है । इसके जीवन का सारा क्रिया-कलाप, सारी उधेड़बुन केवल जीवन को शान्त और सुखमय बनाने के लिये ही है। किन्तु, इस जीवन-संग्राम में इतनी खटपट और उधेड़बुन करने पर भी जीव उस सच्चे सुख और शांति से वंचित ही रहता है जिसकी कि उसे अभिलाषा है। इतना ही नहीं, प्रत्युत कभी-कभी तो वह जीवन में सुख और शान्ति के स्थान पर अत्यन्त क्लेश, दु:ख और अशान्ति का ही अनुभव करता है। संसार के नाना प्रकार के सुखप्रद विषयों और वैभवों का भोग करता हुआ भी वह उसमें उस शान्ति और आनन्द का अनुभव नहीं करता, जिसकी उसे चिर अभिलाषा है। ऐसा क्यों ? इसका एकमात्र उत्तर यही है कि जिन भौतिक पदार्थों में परमानन्द और परम शान्ति का अभिलाषी बन भटक रहा है, वे पदार्थ स्वयं सुख और शान्ति से रहित हैं। कोसों दूर हैं। भला जिस के पास जो वस्तु है ही नहीं वे दूसरे को क्या दे सकेगा ? जो स्वयं भूख व प्यास से तड़प रहा है, वह हमें कैसे स्वादिष्ट भोजन तथा मधुर जल का पान करा सकेगा और हमारी भूख और प्यास शान्त कर सकेगा? इसीलिये आत्मा जब इन भौतिक पदार्थों में भटक कर निराश हो जाती है, उसे अपनी अभीष्ट की प्राप्ति नहीं होती । इतना ही नहीं प्रत्युत वह विश्व के विविध विषय-भोग और अमोद-प्रमोद, सुख और शान्ति के स्थान पर उल्टा उसके दु:ख और अशान्ति का कारण बन जाते हैं। तो वह निराश हो जाता है। उसकी आत्मा संतप्त और व्याकुल हो उठती है, उसे चारों ओर विषय वासनाओं की जलती हुई प्रचण्ड ज्वालाएँ व्याकुल और अप्रसन्न बना देती हैं। उस समय उसे सुख और शान्ति के परमधाम प्रभु का ध्यान आता है और वह पश्चाताप करता हुआ वेद के शब्दों में प्रभु से पुकार उठता है।

सं मा तपन्त्यभित: सपत्नीमि पर्शव: ।

-ऋग्वे १ १०५ ८॥

हे दीनबन्धु ! हे अधर्मोद्धारक पतित पावन प्रभो, अब तो मुझे ये तृष्णाएँ ये विश्व की क्षणिक कामनाएँ और विषयों की विष भरी वासनाएँ संपत्तियों के समान सन्तप्त और व्याकुल कर रही हैं । भगवन्! अब मैं सब ओर से निराश होकर और तेरा भक्त बनकर तेरे द्वार पर आया हूँ । हे दीनबन्धो ! क्या इस दीन की पुकार न सुनोगे ? क्या अपने इस भक्त को विश्व की क्षणिक वासनाओं और तृष्णाओं से हटाकर अपनी प्रेममयी पावन गोद में नहीं लोगे ? उस समय ऋषि दयानन्द के शब्दों में प्रभु उस अति व्याकुल भक्त की करुण पुकार को सुनते हैं और उसे अपनी सर्व-शक्तिमयी गोद में लेते हैं । प्रभु अपने शरणागत उपासक को निज शरण में ले लेते हैं ।

वास्तव में योगीजनों के शब्दों में हर अविद्या आदि पञ्चक्लेशों से संतप्त और परिणाम, ताप, संस्कार आदि दु:खी से दु:खी जीव के लिये एकमात्र वह सच्चिदानन्द प्रभु ही सच्ची शान्ति और परम सुख का सहारा है । इसीलिये वेद कहता है-

न त्वद्ऋते अमृदा मदयन्ते ।

हे आनन्दकन्द, सच्चिदानन्द प्रभो! तेरे शरणागति के बिना तेरा यह अमृत पुत्र पूर्णानन्द को प्राप्त नहीं कर सकता ।

वास्तव में जो मनुष्य अपने जीवन को कदाचारों और कुत्सित संस्कारों से हटाकर उस प्रभु की शरण में आ जाता है, दूसरे शब्दों में वह अपनी अधमावस्था पर पश्चात्ताप करता हुआ उसका परित्याग कर सत्पुरुष अर्थात सन्मार्गगामी बन जाता है, भगवान अवश्य उसके ऊपर सब प्रकार के सुखों की वर्षा करते हैं । इसीलिये वेद कहता है-

"त्वमग्न इन्द्रो वृषभ: सतामसि ।"

-ऋग्वेद २ ५ ३॥

हे परमज्योतिर्मय प्रभो ! तुम ही तो सत्पुरुषों के लिये, अपने अनन्य भक्तों के लिये इन्द्र और वृषभ बनकर उसके ऊपर समग्र ऐश्वर्यों और सकल सुखों की वर्षा करने वाले हो ।

'मा ते भयं जरितारम्' । अ० १ ५ ८८ ४॥

तेरे प्रेमी भक्त को भय, चिन्ता और दु:ख कहाँ ? वेद के उपयुक्त वचनों से सिद्ध होता है कि एकमात्र प्रभु भक्ति ही इस भव-बन्धन में पड़े जीव को सुख, शान्ति और परमानन्द प्रदान करने वाली है ।

बिना ईश्वर आराधना के आत्मा को परमशान्ति और परमानन्द की उपलब्धि होना बहुत कठिन ही नहीं, अपितु नितान्त असम्भव है ।

अब उस प्रभु भक्ति का क्या स्वरूप है, थोड़ा इस पर विचार करना चाहिए । भक्ति में तीन बातों का ज्ञान लेना परमावश्यक है, हम किस की भक्ति करें, कैसे बनकर करें और क्या करें ? बिना इन तीनों बातों के जाने जो जन भक्ति मार्ग पर चलने लगते हैं, वे सदा अपने चरम लक्ष्य से वंचित ही रहते हैं, उन्हें निज अभीष्ट की प्राप्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

नहीं होती । अतः भक्ति मार्ग के पथिक को उपर्युक्त तीनों बातों का जान लेना परमावश्यक है ।

भक्ति का पहला कर्त्तव्य है कि वह यह विचार करे कि जिसको वह अपना आराध्यदेव बनाने चलता है, जिस सुन्दर स्वरूप को वह अपने हृदय-मन्दिर में बैठाना चाहता है उसका क्या स्वरूप है ? उसकी उपासना करने पर मुझे अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति होगी या नहीं ? भक्त कैसे आराध्यदेव की आराधना करें ? इस सम्बन्ध में अथर्ववेद में एक सुन्दर मंत्र आता है ।

तमुष्टुहि यो अन्तः सिन्धोः सूनुः ।
सत्यस्य युवानम द्रोघवाचं सुशेवम् ।।

–अथर्ववेद ६ R R।।

वेद कहता है–हे भक्त! यदि तू सच्ची शान्ति और परम आनन्द को प्राप्त करना चाहता है तो(तम्+उ+स्तुहि) उस ही प्रभु की उपासना कर। (यः+अन्तःसिन्धुः) जो इस संसार में रम रहा है। (सत्यस्य+सूनुः) जो सदा सत्यं की ओर ही प्रेरणा करता है। (युवानम्) जो सर्वदा युवा अर्थात् एक रस रहता है (सुवेशम्) जो सारे बलों, सुखों और आनन्द का भण्डार है । (अद्रोघवाचम् जिसकी वाणी में किसी के प्रति असत्य, द्रोह और विश्वासघात नहीं है ।

भक्त सोचता है मैं अपने प्रभु को कैसे मिलूँ । मेरा वह प्रियतम मुझे कहाँ मिलेगा और नाना प्रकार की तृष्णाओं और आसुरी वासनाओं रूपी तरंगों से तरंगित काम, क्रोध, राग, मोह ईर्ष्या आदि जल-जन्तुओं से पूर्ण इस भवसागर में मेरा कौन सहारा है ? इन दोनों आशंकाओं का समाधान वेद एक ही शब्द में करता है (तमु+स्तुहि+यो+अन्तःसिन्धु) भक्त तू उस प्रेम की स्तुति कर जो सर्वव्यापक और सर्वान्तयामी है । उस आराध्यदेव की आराधना करने के लिये तुझे अन्यत्र कहीं भटकना नहीं पड़ेगा, क्योंकि वह तेरा अन्तर्यामी तो तेरे रोम-रोम में रम रहा है । फिर तुझे इधर-उधर जाने और भटकने की क्या आवश्यकता और इसमें भी कुछ सन्देह नहीं कि यह संसार एक अथाह सागर है और यह जीव अपनी दुर्वासनाओं और निर्बलताओं के वशीभूत होकर अहर्निश इसमें गोते खा रहा है । परन्तु यह भी ध्रुव सत्य है कि जो भक्त उस करुणामय प्रभु का आश्रय ले लेता है, उसकी प्रेममयी गोद में बैठ जाता है और उसकी शरण में आ जाता है, वह अवश्य भव-सिन्धु से तैर कर पार हो जाता है ।

प्रभु प्राप्ति का लक्ष्य केवल जन्म, जरा, व्याधि और मृत्यु से छुटकारा पाना ही नहीं, प्रत्युत उससे छूटकर उस परमानन्द और परम शान्ति को प्राप्त करना है, जिसकी खोज में जीव जन्म-जन्मान्तरों से भटक रहा है । अतः भक्त सोच सकता है कि प्रभु की उपासना से मैं जन्म-मरण के बन्धन से तो छूट ही जाऊँगा, किन्तु मेरा अन्तिम लक्ष्य तो परमानन्द की प्राप्ति है । क्या प्रभु-भक्ति द्वारा इसकी भी मुझे प्राप्ति होगी या नहीं ? वेद-भक्त के इस संदेह को भी दूर करता है, हे प्रिय भक्त ! तू इस सन्देह को भी अपने हृदय पटल से दूर कर दे, क्योंकि तेरे आराध्यदेव भगवान् तो 'सुशेवः' हैं। सारे सुखों के भंडार हैं । परम शान्ति और पूर्णानन्द के धाम हैं । फिर यह कैसे सम्भव हो सकता है कि उस शान्ति और आनन्द के परम निकेतन को प्राप्त कर लेने पर तू आनन्द से वंचित रह जाय । सच्चा ईश्वरभक्त उस परम कल्याणमय प्रभु की उपासना द्वारा उसमें तल्लीन हो जाता है और इतना तल्लीन हो जाता है कि अपने को भूलकर वेद के शब्दों में स्वयं कह उठता है:-

यदग्ने स्यामंहत्वं वा घा स्या अहम् ।
स्युष्टे सत्या इहाशिषः ।।

ऋ० ८ ७४ R ३।।

हे प्राणधन ! अब तो मैं आपकी भवभय हारिणी पावन भक्ति द्वारा तुझमें इतना लवलीन हो गया, इतना तन्मय हो गया कि- मैं तू बन गया और तू मैं हो गया । अब मुझे पता लगा कि अपने अनन्य भक्तों के प्रति कृपा कटाक्ष और आशीर्वाद कितने अटल ध्रुव और सत्य है ।

वेद जहाँ भक्त के आराध्य देव भगवान् के सत्य, शिव और सुन्दर स्वरूप को यथार्थ रूप में हमारे सन्मुख रखता है, वहाँ भक्त के स्वरूप और कर्त्तव्यों का भी बड़ा सुन्दर वर्णन करता है । वेद का कथन है कि जो भक्त प्रभु को प्राप्त करना चाहता है, सर्वप्रथम उसके हृदय में प्रभु-भक्ति की तीव्र लगन होनी चाहिए, उत्कृष्ट अभिलाषा होनी चाहिए । प्रभु प्रेम के प्रति उसे अपना सब कुछ अर्पण कर देना चाहिए ।

प्रभु प्राप्ति के प्रति इतनी तीव्र लगन, इतनी उत्कृष्ट अभिलाषा तभी उत्पन्न होती है, जब भक्त संसार के क्षणिक विषय भोगों की ओर से मुँह मोड़कर शुभकर्मों द्वारा अपने हृदय को शुद्ध पवित्र कर और निर्मल बना लेता है । दूसरे शब्दों में अपने सम्पूर्ण कर्मों को उस यज्ञ रूपी प्रभु की हवि बनाकर अपने जीवन को हविष्यमान् अर्थात् यज्ञमय बना लेता है । इसीलिए वेद में प्रभु प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा वाले भक्त-भगवान् से प्रार्थना करते हैं ।

वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे ।
उत त्वमस्मयुर्वसो ।।

ऋ ३ ५१ ७।।

हे इन्द्र ! हम तेरे उपासक हविष्यमान् बनकर, अपने जीवन को यज्ञमय बनाकर तेरी साधना करें, जिससे कि तू हमारा और हम तेरे बन जाएँ । अतः जो भक्त प्रभु को अपना बनाना चाहता है, उसे वेद के कथनानुसार अपने जीवन को यज्ञमय बनाकर प्रभु का बन जाना होगा । वेद ने तो प्रभु का नाम ही 'यज्ञसाध' रखा है, अर्थात् साधना यज्ञ द्वारा ही हो सकती है । वेद कहता है:-

तमीलठत प्रथमं यज्ञसाधम् ।।

ऋ १ R६ ४।।

हे प्रभु प्राप्ति के अभिलाषीजनो ! याद रखो वह मंगल मय प्रभु 'यज्ञसाध' है । अतः यदि तुम उसे प्राप्त करना चाहते हो तो यज्ञ साधना द्वारा ही उसकी स्तुति, प्रार्थना और उपासना करो ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह प्रभु 'यज्ञसाध' है इसीलिये ही तो वेद ने कहा-

यज्ञेन वर्धत जातवेदसमग्निम् ।
यजध्वं हविषा तना गिरा ।।

॥ २१२ ॥

हे मनुष्यो! उस वेद ज्ञान के भण्डार परमात्म-ज्योति को यज्ञ द्वारा ही अपने हृदय मन्दिर में प्रकाशित करो और अपने यज्ञमय कर्मों के हवि द्वारा तथा प्रेम रसभरी उदारवाणी द्वारा उसके पवित्र नाम का स्मरण और उसके पवित्र गुणों का कीर्तन करते हुए उस परम-ज्योति को प्रति दिन अपने हृदय-मन्दिर में बढ़ाते चलो ।

ईश्वर का मनुहार बनाम आत्म-परिष्कार

भगवान व्यक्ति नहीं शक्ति है । पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण शक्ति है । वह अनादि काल से है और अनन्त काल तक चलती रहेगी । मनुष्य उसे पहचाने और उसका ध्यान रखते हुए उछले, गिरे, उठे और चले तो उसके कार्य ठीक रहेंगे । उसकी सत्ता को ध्यान में रखे बिना हलचलें करेगा तो चोट खायेगा । नदी की प्रचण्ड धारा में जो भी पड़ेगा बहेगा और निर्धारित नियमों के अनुसार तैरेगा या डूबेगा । किनारे पर बैठकर स्नान करने में, तैरना सीखकर पार जाने में नदी अपने लिए कोई अवरोध खड़ा नहीं करती। नाव चलाकर परिवहन का लाभ भी उस नदी प्रवाह से लिया जा सकता है, पर लोहे की नाव बनाकर अथवा छेद वाली लकड़ी की नाव में बैठकर चला जाएगा तो फिर डूबना निश्चित है । भगवान की गुरुत्वाकर्षण अथवा नदी प्रवाह से तुलना की जा सकती है । हमें उससे लाभ उठाना हो तो अनुकूलता, प्रतिकूलता के नियमों को समझने और तदनुकूल आचरण करने की बात सोचनी चाहिए ।

बिजली हमारे लिए कितनी उपयोगी है । बिजलीघर से सम्बन्ध जोड़कर अपने घर के पंखे, बल्ब, हीटर, कूलर, रेडियो आदि यन्त्र चलाये जा सकते हैं और उनसे तरह-तरह के लाभ पाये जा सकते हैं । खुले तार छूने में प्राण संकट उत्पन्न होगा । भगवान की विद्युत-शक्ति से तुलना की जा सकती है ।

भगवान दयालु हैं, उदार हैं, भक्तवत्सल हैं, दीनबन्धु हैं, दाता हैं, यह सब कुछ ठीक है । यदि ऐसा न होता तो इतना बहुमूल्य शरीर यन्त्र मुफ्त में ही हमें क्यों दिया ? जीवन-निर्वाह के इतने उपयुक्त साधन क्यों जुटाये ? प्रगति के पथ पर चलते हुए अपने पुरुषार्थ से भी अधिक परिस्थितियों की अनुकूलता का सहारा क्यों मिलता है ? उसकी उदारता और दयालुता में सन्देह करने की कोई बात नहीं है । किन्तु यह मान्यता तब तक अधूरी ही बनी रहेगी जब तक उसके 'रुद्र' नाम को भी ध्यान में न रखा जाय । रुद्र का अर्थ होता है भयंकर । वस्तुतः वह उतना ही भयंकर भी है जितना दयालु ।

बिजली, गुरुत्वाकर्षण, नदी, प्रवाह, आग आदि का सदुपयोग इन देवताओं से वरदान दिलाता है और हमारे क्रिया-कलापों में इनसे अतिशय सहायता मिलती है, पर जहाँ दुरुपयोग आरम्भ हुआ वहाँ ये सभी निर्दयता पर उतारू हो जाते हैं और अपनी मर्यादा उल्लंघन की धृष्टता के लिए तिल-मिला देने वाला दण्ड देते हैं । थोड़ी-सी चूक भी उन्हें सहन नहीं । जितनी बड़ी शक्ति उतनी ही कठोर उसकी व्यवस्था । बेटरी छूकर मामूली झटका भर लगेगा, पर जहाँ प्रचण्ड विद्युत धारा बह रही होगी वहाँ जरा से एक सैकिण्ड के स्पर्श से ही इधर का उधर फैसला हो जाएगा । ईश्वर प्रचण्ड शक्ति है । उसकी सृष्टि व्यवस्था मर्यादा के रूप में अपना काम चला रही है । सूर्य, चन्द्र, आकाश, बादल, समुद्र, धरती सभी उसकी नियम व्यवस्था के अनुरूप चलते हैं । जब कभी अचरज दीखते हैं वे तो मनमानी नहीं विज्ञान के उन नियमों के आधार पर होते हैं जिन्हें हम साधारणतया अनुभव नहीं करते ।

मनुष्य को भी ईश्वरीय नियमों का पालन करना चाहिए । इस अनुशासन को हम भूलते हैं । जो सामने नहीं दीखता, उसकी चीजें चुराने का प्रायः दुस्साहस किया जाता रहता है । ईश्वर को भुलाने का अर्थ है उसकी उस व्यवस्था का विस्मरण जिसकी अनुकूलता रखकर हम अपना जीवन-क्रम सुख-शान्ति और प्रगति की दिशा में ठीक प्रकार चलाते रह सकते हैं । साथ ही उसका अतिक्रमण करके भयंकर विपत्ति में फँसते और दुःख उठाते हैं । चूँकि ईश्वर दीखता नहीं, मोटी बुद्धि उसकी सर्वव्यापकता की कठोर व्यवस्था को देख नहीं पाती इसलिए अवज्ञा का दुःस्साहस करती रहती है । उपासना का अर्थ है-उस अदृश्य सत्ता के अस्तित्व और विधान की अनुभूति और तद्नुसार मर्यादा पालन के लिए अपनी मनोभूमि का प्रतिरक्षण ।

बिजली के बड़े यन्त्र जहाँ लगे रहते हैं वहाँ ४४० वोल्ट खतरा लिखा रहता है और वहीं एक मृत मुण्ड का चित्र मौत का स्मरण दिलाने के लिए लगा रहता है ।' यह बोर्ड ऐसे खतरनाक स्थान पर टाँगने का कानून है । इस बोर्ड को देखने से यह तथ्य मन को सचेत करते हैं और बिजली के खतरे की विस्मृति से उत्पन्न होने वाली विभीषिका का खतरा कम करते हैं । ठीक इसी प्रकार मन्दिर, देवालयों में-घरों में रखे ईश्वर के चित्र-प्रतीकों से हमारी ईश्वरीय शक्ति के सम्बन्ध में विस्मृति दूर करते हैं और अप्रत्यक्ष सत्ता की प्रत्यक्ष से भी बढ़ी-चढ़ी शक्ति का आभास कराते हैं ।

प्रार्थना के शब्दों में प्रायः ऐसी भाषा का प्रयोग होता रहा है जिससे लगता है-वह याचना है । याचना की बात उसी सीमा तक ठीक है जब वह उचित मूल्य चुकाने की साथ की जाय । हथेली पर पैसे रखकर टिकट बाबू से टिकट माँगें तो ठीक है । यदि मुफ्त में ही रेल टिकट की याचना करें तो उसकी पूर्ति होना कठिन है । ऐसे तो रेलवे प्रशासन ही ठप्प हो जाएगा । मुफ्तखोरी को उदारतापूर्वक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

टिकटें बँटने लगें तो फिर रेल चलाने में जो खर्चा पड़ता है वह कहाँ से आवेगा ? ईश्वर से प्रार्थना की जाये और मनोकामनाएँ पूरी हो जाएँ यदि यह बात इतनी सस्ती और इतनी वास्तविक रही होती तो निश्चय ही पूजा-प्रार्थना से अधिक बढ़िया उद्योग इस संसार में और कोई दिखाई न पड़ता। फिर हर समझदार आदमी दूसरे सब काम छोड़कर अभीष्ट प्रयोजनों के लिए "अमुक विधान से-अमुक देवता की अमुक पूजापत्री" करने में ही अपनी सारी गतिविधियाँ केन्द्रित कर देते । ऐसी दशा में, पुरुषार्थ, पराक्रम, क्षमता विकास, सतर्कता, प्रामाणिकता, प्रतिद्वन्द्विता जैसे वे तथ्य ही समाप्त हो जाते जो मानवी व्यक्तित्व को विकसित करने के आधारभूत कारण रहे हैं ।

प्रार्थना जिस ईश्वर से की जाती है वह वस्तुतः अपनी ही अन्तरात्मा है । ईश्वर अर्थात् अन्तरात्मा में सन्निहित दिव्य चेतना । परमेश्वर अर्थात् विश्व-व्यापी सृष्टि व्यवस्था । हमें परमेश्वर को जानना चाहिए । ब्रह्म विद्या का विचार साहित्य इसीलिए सृजा गया है कि मनुष्य की प्रत्यक्षदर्शी आँखें विवेक का तीसरा नेत्र खोलें और परोक्ष में विद्यमान प्रचण्ड परमेश्वर और उसके विधान को साक्षात्कार कर सकने में समर्थ बनें । ज्ञानयोग इसी का नाम है । गीता, उपनिषदों आदि के पाठ रामायण, प्रवचन आदि के सहारे मनःचिन्तन के आधार पर ज्ञानयोग की साधना की जाती है और ब्रह्म-दर्शन का लाभ मिलता है । पूजा, उपासना का विधि-विधान भक्तियोग के अन्तर्गत मिलता है। भक्ति ईश्वर की की जाती है । इसलिए सर्वत्र 'ईश्वर भक्ति' शब्द ही प्रयोग में आता है । अपनी भुलक्कड़ चेतना को झकझोरने और उसे विकासोन्मुख बनकर मनोकामना पूर्ति का वरदान दे सकने योग्य बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है । इसी अनुनय-विनय का नाम ईश्वर प्रार्थना है ।

ज्ञान और भक्ति का समन्वय कर्म में होता है । ज्ञान यदि सच्चा है तो उसे व्यवहार में उतारना चाहिए । इसी प्रकार भक्ति यदि सच्ची है तो उसकी मादकता शरीर के अवयवों पर छाई देखनी चाहिए । ज्ञानयोग के लिए रची गई ब्रह्म-विद्या और भक्तियोग के लिए सजे गये पूजा विधान का समन्वय कर्म में होता है । कल्पना की उड़ानें कुछ काम नहीं देतीं । प्रयोजन तो कर्म से पूरा होता है । किसी के व्यक्तित्व की तौल उसके कर्मों को देखकर की जाती है । ज्ञानयोग और भक्तियोग किस का, किस स्तर का है ? इसकी वास्तविकता परखने की एक ही कसौटी है-प्रखर और परिष्कृत कर्म । गीता में इसी कर्मयोग का प्रतिपादन हुआ है, साथ ही यह भी कहा गया है कि कर्त्तव्य कर्म-अनायास ही नहीं बन पड़ते । इस कल्पवृक्ष का परिपुष्ट और फलित होना उस खाद, पानी के बिना सम्भव नहीं हो सकता जिसे ज्ञानयोग और भक्तियोग कहते हैं ।

प्रार्थना को दिशा निर्देश एवं उद्देश्य का उद्घोष कह सकते हैं । उपासना का वास्तविक स्वरूप तो जप, ध्यान जैसे मानसिक अभ्यासों में और योग, तप जैसे शारीरिक पुरुषार्थों के साथ जुड़ा रहता है । जप, ध्यान को व्यायाम और योग, तप को आहार की संज्ञा दी जाती है । ईश्वर का मनुहार वस्तुतः प्रकारान्तर से आत्म-परिष्कार का ही एक मनोवैज्ञानिक स्वरूप समझा जाये तो इससे हम वस्तुस्थिति को समझने में अधिक अच्छी तरह समर्थ हो सकते हैं ।

ईश्वर का द्वार सबके लिए खुला है

ईश्वर का द्वार सबके लिए समान रूप से खुला है । उसमें जो भी चाहे प्रवेश कर सकता है ।

सूरज नित्य उदय होता और अपनी राह चला जाता है । हम चाहें तो धूप में पहुँचकर उससे मिल सकते हैं । यदि घर में बैठे रहें और आँखें बन्द कर लें तो फिर उससे मिलना कठिन है । सूर्य से कृपा की याचना व्यर्थ है वह तो अनवरत रूप से बरसा ही रहा है। बन्द तो हमने अपने दरवाजे और अपनी आँख कर ली हैं । खोलना इन्हीं को है। कृपा तो अपने ऊपर अपने आपको करनी है। अन्धा यह सोचे कि मेरी आँखें ठीक हैं केवल दुनिया ही अँधेरी हो गई, फिर वस्तुस्थिति को समझना कठिन है । भगवान रुष्ट हो गये हैं और मैं अपनी स्थिति पर सन्तुष्ट हूँ, यह माना जाता रहा तो फिर कोई समाधान मिल न सकेगा ।

ईश्वर हमारे लिए अपरिचित है । हम केवल अपने परिचित अज्ञान और मनोविकारों को ही जानते हैं । परिचितों का स्वागत किया जाता है और अपरिचितों को आश्रय देने में संकोच पड़ता है । ईश्वर को अपने में आत्मसात करना अथवा अपने को उसमें घुला देना यह दोनों ही स्थितियाँ हमें अत्यन्त कठिन होती हैं; फिर परम प्रभु से मिलन कैसे हो ।

हम ईश्वर को जिस गज से नापते हैं वह बहुत छोटा है । अपने गज से महामानवों तक को लोग न नाप सके, उनके रहते उनका उपहास और असहयोग करते रहे । फिर इतने विशाल परमेश्वर को अपना छोटापन रहते किस प्रकार जानें ? उसे कैसे पावें ? और कैसे अपनायें ?

ईश्वर का स्वरूप है -'महानता' । इस विशाल ब्रह्माण्ड को उसकी एक छवि के रूप में देखा जा सकता है और इस सुविस्तृत विस्तार के अन्तर्गत हो रही ज्ञात और अविज्ञात हलचलों को उस महासागर की तरंगें समझा जा सकता है । इसे प्राप्त करने को हमें अपनी संकीर्णता छोड़नी पड़ेगी और उतनी महानता अपनानी पड़ेगी जिसके सहारे उस महान परमेश्वर को देखा जा सके । गड्ढे में बैठकर छोटी-सी परिधि ही दिखाई देगी । समतल भूमि पर बैठकर कुछ मील तक के दृश्य दृष्टिगोचर हो सकते हैं किन्तु यदि सुविस्तृत अन्तरिक्ष की झाँकी करनी हो तो अधिकाधिक ऊँचाई पर पहुँचने और वहाँ से दृष्टि पसारने के अतिरिक्त और किसी प्रकार अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हम जितने ही संकीर्ण हैं, ईश्वर से उतनी ही दूर हैं । उदात्त दृष्टिकोण और उदार रीति-नीति अपनाकर ही उसके समीप पहुँचाने वाली मंजिल पर अग्रसर हो सकते हैं । छोटे पात्र में बड़े पदार्थ नहीं रखे जा सकते हैं । जितना सामान हो उसे रखने के लिए पात्र भी उतना ही बड़ा होना चाहिए । बड़ी जलराशि गहरे तालाब में ही भरी जा सकती है । ईश्वर महान है । महानता के रूप में ही उसकी स्थापना अन्तःकरण में हो सकती है । महामानवों को ही दूसरे शब्दों में ईश्वर भक्त कह सकते हैं । संकीर्ण स्वार्थपरता की धुन्ध जितनी मात्रा में निरस्त करते हैं उतने ही स्पष्ट दर्शन भगवान के हो सकते हैं ।

ईश्वर खुला आकाश है-कोई व्यक्ति नहीं । इस आकाश में उड़ें उसका अंचल खुला पड़ा है । आकाश हमें खींचकर ऊपर नहीं उड़ावेगा । अपना लक्ष्य और प्रयत्न हों तो साधन बन जायेंगे ।

समुद्र न तो नदियों को बुलाता है और न रोकता है । कोई नदी चाहे तो तालाब में रुक जाय । कोई चाहे तो बहती चले और समुद्र में मिल जाये । ईश्वर को प्राप्त करने के लिए उसे समझना आवश्यक है । मिन्नतें करके और उसकी मनौती मनाने की उलझी पगडंडी पर चलकर उस तक नहीं पहुँचा जा सकता । उदात्त चिन्तन और परिष्कृत व्यक्तित्व के राजमार्ग पर चलकर ही उस परम प्रभु तक पहुँचा जा सकता है; जिसे पाना हमारा जीवन-लक्ष्य है ।

ईश्वर के अनुग्रह से वंचित न रहें

मनीषी कहते हैं कि ईश्वर को अपने से जितना दूर समझोगे वह उतनी ही दूर रहेगा । ब्रह्मलोक, गोलोक, शून्यलोक आदि में रहने और अवसर मिलने पर किसी की याद कर लेने का स्वभाव भी उसका माना जा सकता है । पर अच्छा यही है कि उसे अपने निकटतम समझा जाय । अन्तःकरण में अवस्थित उस परम सत्ता के आगे भिखारी की तरह कुछ माँगते रहने के लिए पहुँचेंगे तो वह गुब्बारा, चाकलेट, झुनझुना जैसा कुछ देकर बहला देगा । पर यदि उसके राजकुमार और सेनापति बनकर रहेंगे तो उस पद के अनुरूप अनुदान-आदर भी पायेंगे और वेतन भी । वार्ता करने में उसके साथ रस आना चाहिए, वैसा जैसा बालक को अपने अभिभावक के साथ आता है ।

ईश्वर को जो देना था, दे चुका । मनुष्य जन्म से बढ़कर और कोई कलाकृति उसके पास है नहीं । इतना देने के बाद वह तुमसे अनुदान का प्रतिदान चाहता है । वृक्ष जमीन के माध्यम से जीवन रस प्राप्त करते हैं पर उसे स्वयं पचा नहीं जाते । विकसित पल्लवित होते और फलते फूलते हैं । पर उस सम्पदा को वे ईश्वर के निमित्त, उसके प्राणि पुत्रों के निर्मित्त उन्हें जो मिला है उस सब कुछ की वापस लौटाते रहते हैं ।

कोयल आम का रसपान करती है, पर बदले में उसे सुरीली कूक सुवासित पुलकित कर देती है । भौंरा पुष्प का पराग पाता है पर अपने गुंजन से उसके समूचे परिकर को गुंजित कर देता है । हमें भी कुछ ऐसा ही करना चाहिए ।

ईश्वर की उपासना कर्मकाण्डों से नहीं, भावनाओं से की जाती है । उसे केवल भक्त की भावनाओं का स्वाद सुहाता है । ईश्वर के प्रति भक्ति-भाव रखने का तात्पर्य है उसके इस विश्व उद्यान को अधिक सुरम्य-अधिक सुविकसित बनाना । मात्र भावुकता प्रकट करने की प्रवंचना उसे लुभाने फुसलाने में समर्थ नहीं होती ।

जो ईश्वर से चाहते हो, उसके लिए प्रयत्न पुरुषार्थ करो । वह तुम्हारी सहायता करेगा । अकर्मण्यों की भिक्षा भी नहीं मिलती । मिलती भी है तो इतनी तुच्छ और क्षुद्र जिससे ग्रहीता और दानी दोनों का मान घटे । अपनी पात्रता विकसित करो ताकि अधिकार पूर्वक माँगने और उदारतापूर्वक पाने का सुयोग उपलब्ध कर सको ।

ईश्वर आपके घर आँगन में आने और निवास करने के लिए आतुर है । आप उसमें भरी सड़न और गन्दगी को बुहार डालें ताकि उसे बहुत देर अपने बैठने लायक जगह तलाश करने का इन्तजार न करने पड़े ।

अपने हृदय को करुणा से, हाथों को उदारता से, वचनों को मधुरता से और मन को प्रफुल्लता से स्वच्छ कर डालें, इतनी स्वच्छता उससे गले मिलने के लिए पर्याप्त है ।

दोषों से छुटकारा पाना भक्ति को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक है । न ईर्ष्यालु बनो, न स्वार्थी, न अशान्त रहो, न असन्तुष्ट । पापों का प्रायश्चित करो और उस वातावरण से सम्पर्क से दूर रहो जो तुम्हें गिराता और लुभाता है । न किसी को ठगो, न अपने को ठगाओ । न अनीति बरतो न अनीति के सामने सिर झुकाओ । दूसरों के साथ ऐसी भलाई बरतो जैसी ईश्वर ने तुम्हारे साथ बरती है ।

ईश्वर न किसी को भटकाता है और न मिलने के लिए आतुर को तरसाता है । आप ही हैं, जो उसे द्वार बन्द करके प्रवेश होने से रोकते हैं । आप ही हैं जो कुपात्रता का प्रदर्शन करके उसे चोट पहुँचाते और वापस लौटाते हैं ।

ईश्वर का अनन्त अनुदान और हमारा प्रतिदान

स्वभावतः हमारा अधिक प्यार उस वस्तु या व्यक्ति पर होता है जिसकी उपयोगिता एवं सुन्दरता अधिक होती है । ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट संरचना मनुष्य है, उसके प्रति उसका सहज और अधिक प्यार हो तो यह स्वाभाविक ही है ।

परमेश्वर का कितना अधिक प्यार मनुष्य पर है उसका प्रमाण उसे दिये गये अतिरिक्त अनुदानों के रूप में देखा जा सकता है । प्रतियोगिता जीतने वाले बच्चों को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

स्कूल में इनाम मिलते हैं। अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होने वालों को सरकार छात्रवृत्ति देती है। ये उपलब्धियाँ छात्र की प्रगतिशीलता को प्रमाणित करती हैं। जीव अनेक योनियों में भ्रमण करता हुआ-क्रमिक उन्नति के पथ पर चलता हुआ मनुष्य स्तर तक आ पहुँचा इसी के उपहार में उसे यह वैभव मिला है जो अन्य जीवधारियों के पास नहीं है ।

इन उपहारों को ईश्वर के अतिरिक्त प्रेम का परिचायिक भी कह सकते हैं । यह सब मिला इसलिए है कि इन माध्यमों के सहारे पिछले प्रगतिक्रम को और भी अधिक तीव्र किया जा सके। छात्रवृत्ति सरकार इसलिए देती है कि मेधावी छात्र को शिक्षा-साधन जुटाने में अधिक सुविधा मिल सके और वह प्रगति के पथ पर अधिक तेजी से आगे बढ़ सके। यदि कोई छात्र उस अनुदान को ऐसे कामों में खर्च करने लगे जो उसके चरित्र और स्वास्थ्य को चौपट करते हों तो उसे एक दुर्भाग्य ही कहा जाएगा। प्रगति के लिए मिले साधन यदि अवनति का सरंजाम जुटायें तो इसे दु:खद दुर्घटना ही कहा जाएगा।

अन्य प्राणी क्रमशः प्रगति करते हुए मनुष्य स्तर तक पहुँचते हैं । अनुभवों का संचय करने-तम से विरत और सत से निरत होने के वे क्रमिक प्रयास बहुत धीमे होते हैं । सामान्य प्राणिवर्ग की चेतना ऐसी ही सामान्य और ऐसी ही शिथिल होती है कि उस आधार पर धीरे-धीरे ही आगे बढ़ा जा सके, ऊँचा उठा जा सके । किन्तु मनुष्य की स्थिति इससे भिन्न है । उपलब्ध साधनों के अनुसार वह एक ही छलाँग में अभीष्ट लक्ष्य तक सहज ही पहुँच सकता है । हनुमान को समुद्र लाँघना कुछ कठिन नहीं पड़ा । मनुष्य के लिये भी पूर्णता का लक्ष्य इसी जन्म में प्राप्त कर लेना सरल है । शर्त एक ही है कि वह प्रगति की साधना में दत्त-चित हो संलग्न रह सके । ईश्वर प्रदत्त उपहार को सार्थक बनाने की राह एक ही है कि मानव जीवन के जुड़े हुए अतिरिक्त उपहारों में से प्रत्येक को पूर्णतया उस प्रयोजन के लिए समर्पित कर दे जिसके लिये उसे यह सौभाग्य पूर्ण स्थिति उपलब्ध हुई है ।

ईश्वर का मनुष्य के प्रति विशेष प्रेम इस आधार पर प्रत्यक्षतया देखा जा सकता है कि उसे उतने भौतिक साधन उपलब्ध हैं जिनके सहारे किसी भी दिशा में द्रुतगति में बढ़ते हुए अभीष्ट सफलता के लक्ष्य तक सरलतापूर्वक पहुँचा जा सके । धन भले ही किसी के पास कम हो । साधन-सामग्री तथा परिस्थिति भी हलके दर्जे की हो सकती है, पर आन्तरिक विभूतियों की दृष्टि में हममें से प्रत्येक को पूर्णतया साधन सम्पन्न बनाया गया है । गुण, कर्म, स्वभाव की विशेषताओं को ही सच्चे अर्थों में विभूतियाँ और सिद्धियाँ कहा जाता है । वे जहाँ होंगी वहाँ वस्तुएँ तथा परिस्थितियाँ आवश्यकतानुसार इकट्ठी होती रहेंगी । मनस्वी व्यक्ति कभी भी साधन-सामग्री के अभाव में असफल रहते नहीं देखे गये । शक्तिशाली चुम्बक के आकर्षण से लौह कण सहज ही खिंचते चले आते हैं ।

उत्कृष्ट अभिलाषा में अद्‌भुत आकर्षण है । यदि उसे सही रूप से चरितार्थ होने दिया जाये तो सर्वप्रथम मनुष्य की अन्त:स्थिति परिष्कृत बनती है । उत्कृष्ट स्तर के गुण, कर्म, स्वभाव को अभ्यस्त बनाती है, इसके बाद तुरन्त ही साधना का संचय सम्पर्क क्षेत्र के लोगों का सहयोग एवं अनुकूल वातावरण अनायास ही एकत्रित होने लगता है । प्रगति के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ सहज ही बनती चली जाती हैं । ऐसा विशिष्ट स्तर का बना मानव-तन्त्र वस्तुतः मनुष्य प्राणी को मिल सका इसे उसका परम सौभाग्य ही कहना चाहिए । दूसरे शब्दों में इसे ईश्वर के अपार प्रेम का प्रमाण भी कह सकते हैं ।

ईश्वर का मनुष्य के प्रति असाधारण प्रेम का परिचय एक और तथ्य से भी मिलता है, वह है इस प्राणी के अन्त:-करण में पाये जाने वाले प्रेम-तत्व की असाधारण मात्रा का अस्तित्व । अन्य प्राणियों का प्रेम सकारण-सीमित और सामयिक होता है पर मनुष्य में वह अत्यन्त उच्च स्तर का है और असीम मात्रा में मिला है । अन्य प्राणियों में साथ रहने की आदत-यौन आकर्षण तथा नवजात शिशु के प्रति माता का सहज ममता के आधार पर ही यत्किंचित प्रेम पाया जाता है । प्रयोजन पूरा होने पर अथवा साथी के बिछुड़ जाने पर वह स्नेह-सौजन्य भी देखते-देखते विदा हो जाता है । वे लोग प्रेम भाव से साथ रहे और दूसरे को हानि न पहुँचाये इतना भर ही बन पड़ता है । केवल मादा ही अपने नवजात शिशु के लिए प्रसूतिग्रह बनाने, उसका आहार जुटाने एवं सुरक्षा का प्रबन्ध करने में अधिक उत्साह दिखाती है । नर तो यत्किंचित ही सहयोग करता है । माता का वात्सल्य भी तभी तक रहता है जब तक बच्चा अपने पाँवों खड़ा नहीं हो जाता है । उसके बाद तो माता और संतान का रिश्ता भी समाप्त हो जाता है ।

किन्तु मनष्य को इससे असंख्य गुनी उच्चकोटि की प्रेम भावना मिली है । इसी को उसकी सरसता कह सकते हैं । पत्नी के प्रति-प्रणय बच्चों के प्रति वात्सल्य-अभिभावकों के प्रति कृतज्ञता, गुरुजनों के प्रति श्रद्धा, साथियों के प्रति मैत्री की पंचरंगी प्रेम भावना कितने प्रकार की असंख्य-अनुभूतियों का रसास्वादन कराती है-यह देखते ही बनता है। इनकी सरसता इतनी मृदुल एवं इतनी प्रचुर होती है कि उसे प्राप्त करते रहने के लिए रुग्ण एवं दरिद्र मनुष्य भी जीवित रहने की इच्छा करता है। वे अनुभूतियाँ इतनी सुखद गुदगुदी उत्पन्न करती हैं कि जीवन के प्रति असाधारण आसक्ति बनी रहती है, भले ही कठिन से कठिन और जटिल से जटिल परिस्थितियों में रहकर दिन क्यों न काटने पड़े । प्रेम का मिष्ठान्न इतना रुचिकर है कि उसे तत्वज्ञानी सदा से अमृत की उपमा देते चले आये हैं । प्रेमी-हृदय को बिना किसी संकोच के अमृत-कलश की उपमा दी जा सकती है ।

सम्बद्ध व्यक्तियों से आगे बढ़कर जब यह प्रेम-भावना आदेश के प्रति-कर्त्तव्य के प्रति सघन होती है तब उसे ईश्वर-भक्ति का नाम दिया जाने लगता है । इस स्तर पर

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पहुँची हुई अन्तःस्थिति का विस्तार अधिकाधिक व्यापक क्षेत्र में होता चला जाता है । मनुष्य मात्र के प्रति, प्राणिमात्र के प्रति प्रेम भावना का विस्तार होने पर जीवन का स्तर ही बदल जाता है । तब उसे ऋषि कल्प एवं देव मानव की संज्ञा मिलती है । दूसरों का दुख बँटा लेने और अपना सुख बाँट देने के लिए जब व्यापक क्षेत्र में दृष्टि पसारी जाती है और सक्रियता विकसित की जाती है तो उसे विराट् ब्रह्म की तत्वसाधना कहा जाता है । विश्व-मानव की-विश्वात्मा की आराधना उसे प्रेमाञ्जलि को समर्पण करने से सम्पन्न होती है । "वसुधैव कुटुम्बकम्" और विश्व परिवार की अनुभूति की ही पूर्णता प्राप्ति का लक्ष्य प्राप्त करना कहा जा सकता है । इसी को ईश्वर दर्शन अथवा भगवत् प्राप्ति का नाम दिया जा सकता है ।

ईश्वर मनुष्य को प्यार करता है। क्या इसके बढ़ने में मनुष्य को ईश्वर से प्यार नहीं करना चाहिए। माता प्यार करती रहे और पुत्र उसे दुत्कारता रहे तो यह घृणित कोटि की कृतज्ञता होगी । हम कृतघ्न न बनें । ईश्वर को प्यार करें । प्यार का अर्थ स्पष्टतया देना होता है। ईश्वर ने हमें भौतिक और आत्मिक क्षेत्र में जो कुछ दिया है उससे पूरी तरह उसी को लौटा देने का साहस करें, अपनी उपलब्धियों को विश्वात्मा के सुन्दर, सुसज्जित बनाने के लिए समर्पण करें तो इस समर्पण योग की साधना के फलस्वरूप उस सबको भी पा सकते हैं, जो ईश्वर की सत्ता के अन्तर्गत तो है पर अभी तक हमें मिला नहीं।

ईश्वरार्पण अर्थात् श्रेष्ठता को अपनाना

आप जो सफलता प्राप्त करते हैं उसे ईश्वर अर्पण करें । इसका अर्थ होता है, जो मिला है वह ईश्वर की कृपा से मिला है । इससे वह अहंकार न होगा जिससे व्यक्ति घमण्डी हो जाता है और किये हुए पर अभिमान करने लगता है । अभिमानी व्यक्ति अपनी आँखों में बड़ा बनने की कोशिश करता है, पर दूसरों की आँख में उतना ही छोटा हो जाता है ।

जो काम ईश्वर अर्पण किये जाते हैं वे अच्छे ही हो सकते हैं । कोई अपने माननीय मेहमान को जो परोसेगा, उसके बारे में पहले से ही ध्यान रखेगा कि वह शुद्ध और बढ़िया हो । ईश्वर अर्पण का ध्यान आते ही व्यक्ति सबसे पहले यह सोचता है कि जो काम अर्पित किये गये हैं वे उच्चकोटि के हैं या नहीं । सत्कर्म और ईश्वरार्पण कर्म एक ही बात है । बुरे काम करें और ईश्वर को अर्पण करें ऐसा तो हो ही नहीं सकता ।

जिस प्रकार बैंक में जमा कर देने पर राशि ब्याज समेत बढ़ती है और कुछ ही समय में कई गुना हो जाती है । उसी प्रकार ईश्वरार्पण किये कर्म जितने किये गये थे उतने ही नहीं रहते वरन् कई गुने हो जाते हैं ।

ईश्वर सत्कर्म ही ग्रहण करता है और उसे सत्कर्म ही समर्पित किये जाते हैं । सत्कर्म अर्थात् जनकल्याण के लिए किये गये काम । सत्कर्म माने वे काम जो उच्चस्तरीय और आदर्शवादी हों ।

ईश्वर ने हमें इतना दिया है कि हम अपने कृत्यों का एक अंश यदि उसे समर्पित करते हैं तो उसके अनन्त अहसानों में से एक अंश चुकाते और हल्के होते हैं । ईश्वर श्रेष्ठता के समुच्चय को कहते हैं । श्रेष्ठता की अपने में अभिवृद्धि-इस संसार में सत्प्रयोजनों की अभिवृद्धि-इन सबका परिणाम होता है-लोककल्याण । लोककल्याण से दूसरों का जितना भला होता है उससे अनेक गुना अपना होता है । क्योंकि परमार्थ से अपने ही गुण, कर्म और स्वभाव की मात्रा बढ़ती है । यह लाभ अपने लिये ही तो हुआ । ईश्वरार्पण शब्द कह देने मात्र से कुछ बनता नहीं । ऐसे तो कोई दुष्ट-दुरात्मा अपने पाप कर्मों के दण्डों से बचने के लिए जीभ की नोंक से यह कह सकता है कि किये हुए कर्म ईश्वर को समर्पित कर दिये । अब हमारे किये दुष्कर्मों का दण्ड ईश्वर भोगे । यह धूर्तता की चरम सीमा है । ऐसा ईश्वर समर्पण तो उल्टा पापों को बोझ बढ़ाता है । ईश्वर भक्ति इस प्रकार नहीं हो सकती । ईश्वर भक्ति के लिए निर्मल मन चाहिए । निर्मल मन उन्हीं का हो सकता है जो पुण्यात्मा और परमार्थपरायण हैं । ईश्वर भक्ति के उसके प्रति-समर्पण भावना उत्पन्न होने के चिन्ह यही हैं कि मन, बुद्धि और चित्त में पवित्रता का, परमार्थ परायणता का, श्रेष्ठ कर्म करने का भाव हो ।

पूजा-उपासना में किये गये उपचार इसी हेतु हैं कि धूप, दीप, नैवेद्य, अक्षत, चन्दन, पुष्प आदि उपादेय पवित्र वस्तुएँ भगवान को समर्पित करने का प्राथमिक समर्पण करने का अभ्यास करके अपने सद्गुणों की माला ईश्वर के गले में पहनावें और सत्कर्म करते हुए सच्चे अर्थों में ईश्वर को प्रसन्न करने का प्रयत्न करें ।

उनकी पूजा पाखण्ड मात्र है जो करने को तो दुष्कर्म करते हैं, मन में दुर्गुण भरे रहते हैं । जो सोचते हैं कि नाम जप या पूजा उपचार का कुछ क्रिया-कृत्य करके भगवान को बहका लेंगे और अपने दुष्कर्मों के पापों को ईश्वर से क्षमा करा लेंगे ।

पूजा-उपचार का सीधा सच्चा तरीका एक ही है कि हम अपने कर्मों को इस योग्य बनावें कि वे ईश्वर को समर्पित कर सकने योग्य बन सकें । ईश्वर अर्थात् श्रेष्ठता उसके प्रति स्वयं को, अपने कामों को समर्पित करना-प्रकारान्तर से श्रेष्ठता को अपनाना ही है ।

हम ईश्वर के-ईश्वर हमारा

ईश्वर की चेतन-सृष्टि में हर मनुष्य महत्वपूर्ण है और कोई भी जीव इससे श्रेष्ठ नहीं है । प्रत्येक मनुष्य अविरल विकास-क्रम में प्रवाहमान है । हमें दो मूलभूत आदर्शों को मानना आवश्यक है-विश्व में प्रेम से प्रगति होती है और वह नियमों से संचालित है । ये दोनों बातें सत्य हैं और इनकी क्रिया-प्रतिक्रिया विश्व में सर्वत्र होती है । यही रहस्य स्व-अस्तित्व, आश्चर्य एवं भय का बोधक है । इससे ही हम सुख-दुःख पाते रहते हैं ।

विश्वव्यापी ईश्वर और प्राणी के भीतर स्थित ईश्वर एक ही है । प्रत्येक मनुष्य में वह समान रूप से स्थित है । कोई बुरा कार्य करने से भी हम उसे नहीं खोते ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पाप और मोक्ष की बात अब नवीन विचारधारा के अनुसार महत्वपूर्ण नहीं है । वास्तव में अब माना जाता है कि "ईश्वर मानव के अन्त:करण में है ।" विश्व में हर मनुष्य को अपना लेन-देन स्वयं ही पूरा करना होता है । मैत्री में कभी कलह नहीं होती, प्रेम में कभी घृणा नहीं होती और ईश्वर का बुराई से कोई सम्बन्ध नहीं होता । ईश्वर सर्वव्यापी, अनुभवातीत और अन्तर्यामी है । हम अपने विचारों से उसे चाहें कुछ भी समझें, पर वह नित्य सर्वसमर्थ और सत्य रूप है । ईश्वर अचल है और सबको गतिशील बनाए रखता है । प्रत्येक दिन स्फूर्तिदायक होता है और विश्व को नई शक्ति देता है । जब भूत और भविष्य के विचारों से हम मुक्त रहते हैं, तब हम स्वतन्त्र होते हैं ।

समस्त रचनाएँ ईश्वर को अभिव्यक्त करती हैं । ईश्वर द्वारा निर्मित ये वस्तुएँ ही ईश्वर की पहचान हैं । इनसे ही हमारा जीवन कायम है और अस्तित्व स्थायी है । ईश्वर पर विश्वास और अन्तर्ज्ञान ही मनुष्य के शाश्वत जीवन का आधार है । ईश्वर पर विश्वास करने वाले से हम जीवन भर पढ़ी जाने वाली समस्त पुस्तकों की अपेक्षा अधिक शिक्षा ग्रहण करते हैं । ईश्वर की रचनाओं में सर्वत्र एकीकरण है, उनमें हमसे भी अधिक विश्वास और भावनाएँ हैं । अपनी आत्मा की सुनने वाला सर्वोत्तम आदर्श एवं सलाह सुनता है । जो अपने भीतर की आवाज सुनता है, वह अपना मन और हृदय सर्वोत्कृष्ट रखता है । मनुष्य के भीतर ईश्वर मौजूद है और वह हर प्राणी एवं वस्तु में वह है । उसके बिना किसी वस्तु की रचना सम्भव नहीं । हम उसके पुत्र हैं और इसलिए उसके गुण हम में हैं ।

पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ परब्रह्म की व्यवस्था को मानें और उसके अनुसार आचरण करें । मन और आत्मा सिर्फ प्यार देते हैं । हम सबका जीवन एक हो और कोई दूसरे को अपने से पृथक् न समझे । हमारा अकेला जीवन अपर्याप्त और असम्भव है । हम एक दूसरे की सहायता के बिना जीवित नहीं रह सकते । हमारा सीमित स्वार्थ ईश्वर की विशालता को संकुचित करता है । इससे हमारा दम घुटता है और प्रगति बन्द हो जाती है । ईश्वर हमारे संकुचित स्वार्थ और दृष्टिकोण से अप्रसन्न होता है । इस दयनीय स्थिति से हम स्वयं ही स्वत: को स्वतंत्र कर सकते हैं । ईश्वर या कोई दूसरी शक्ति हमें नहीं बदल सकती ।

जब हमें ईश्वर पर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास हो जाएगा और अपनी तुच्छता, आशाओं, भय एवं घृणा को छोड़ देंगे, तब हमारा क्षितिज बदल जावेगा और हमें सर्वत्र ईश्वर का प्रकाश एवं कृपा दिखाई देगी ।

ईश्वर का जप ध्यान उत्तम है । उसका मनन-चिन्तन भी करें । कथा-गाथाओं का कथन-श्रवण भी उत्तम है, पर स्मरण रखा जाय कि यह सब आरम्भिक चरण हैं । इतने भर से यह नहीं हो सकता कि अन्तराल में प्रभु के दर्शन होने लगें और उसकी सहउपस्थिति का अनुभव प्रत्यक्ष करने लगें । यह तभी सम्भव है जब हमारी विचारणा, आस्था, आकांक्षा और गतिविधियों में भी दैवी चेतना का समावेश हो ।

ईश्वर कोई रहस्य नहीं है न किसी गुह्य विधि से सम्बन्धित । उसे पाने के लिए किन्हीं जादुई कृत्यों में उलझने की आवश्यकता नहीं है । इतना ही पर्याप्त है कि हम ईश्वर को अपना समझकर उसके होकर रहें । इसकी प्रतिक्रिया एक ही हो सकती है- चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में उत्कृष्टता का समावेश ।

सत्यं, शिवं, सुन्दरम् से युक्त जीवात्मा

'सत्यं' का अनुसन्धान नवजात शिशु पृथ्वी पर आते ही आरम्भ कर देता है । पग रखते ही वह संसार को जिज्ञासा भरे नेत्रों से देखता है । अपनी मूक भाषा में वह पूछता है यह संसार क्या है ? मैं कौन हूँ ? भाषा ज्ञान होने बोलने योग्य होने पर वह माता-पिता से प्रश्नों की झड़ी लगा देता है । अमुक वस्तु क्या है-क्यों है, कैसी है जैसे प्रश्नों का समाधान चाहता है । सीमित बुद्धि असीम तथ्यों को एक ही समय में जान लेना चाहती है । यह प्रचण्ड जिज्ञासा अन्तरंग में सत्यानुसन्धान की प्रबल इच्छा का ही परिचायक है, जो शिशु को संसार की प्रत्येक वस्तु को जानने के लिए प्रेरित करती है । इसकी आपूर्ति के लिए परमात्मा ने मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ साधन बुद्धि दी है, जो अन्यान्य प्राणियों को दुर्लभ है । बुद्धि ने सत्य को जानने के लिए ज्ञान-विज्ञान की रचना की । इतिहास, भूगोल, भौतिक-विज्ञान, रसायन-शास्त्र, जीव-विज्ञान, अर्थशास्त्र, नीति-शास्त्र, गणित-शास्त्र की रचना कर डाली । यह बौद्धिक प्रयास आन्तरिक जिज्ञासा का ही प्रतिफल है जिसके कारण ज्ञान-विज्ञान की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ सम्भव हो सकी हैं । सुख-सुविधाओं से लेकर वैज्ञानिक आविष्कार तक बुद्धि-बल के ही चमत्कार हैं । सभ्यता एवं संस्कृति मानवी विचारणा के ही परिणाम हैं । सृष्टि के मूल रहस्यों को जानने की अभिप्रेरणा द्वारा जीवात्मा अपने सत्य स्वरूप की झाँकी परोक्ष रूप में कराती है ।

बुद्धि के अतिरिक्त मनुष्य की दूसरी विशेषता 'नैतिक' भावना के रूप में मिली है । वह शिव है । शिव अर्थात् श्रेष्ठ कल्याण । जीव-जन्तु भले-बुरे का भेद नहीं कर पाते । उनकी क्रियाएँ प्रकृति प्रेरित हुआ करती हैं । खाने-पीने, बच्चे पैदा करने में नीति-मर्यादाओं का वे पालन नहीं करते । मनुष्य को यह विशेषता जन्मजात मिली है । शिक्षित हो अथवा अशिक्षित अच्छे-बुरे का ज्ञान सबको होता है । असभ्य, बर्बर एवं जंगली जातियों में भी नैतिक भावना होती है । भले ही वह न्यून, अपरिपक्व रूप में हो, पर वे नैतिकता से सर्वथा रहित नहीं हो सकते । जंगली

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असभ्य समझे जाने वाले व्यक्ति भी सामाजिक नियमों एवं नीति-मर्यादाओं का पालन करते हैं । बच्चे को जन्म के साथ प्राप्त पारिवारिक स्नेह एवं सामाजिक सहयोग मानवी उदात्त भावना का ही प्रतिफल है । जो बच्चे को श्रेष्ठ, चरित्रवान एवं उदात्त अन्तःकरण सम्पन्न बनने की प्रेरणा देती है । स्नेह भावना से अभिपूरित संरक्षित एवं अनुकूल परिस्थितियाँ परमात्मा ने जन्म के साथ ही प्रदान की हैं । जो शिवत्व की ओर बढ़ने की प्रेरणा देती हैं । बाह्य कल्याणकारी, परिस्थितियाँ अन्तःसत्ता के शिवत्व स्वरूप का बोध कराने के लिए विनिर्मित की गई हैं ।

मनुष्य को तीसरी विशेषता परमात्मा द्वारा मिली है । सुन्दरम्-सौन्दर्य बोध की क्षमता । यह प्रकृति कितनी ही आकर्षक एवं सौन्दर्य युक्त है, इसका आभास अन्य जीव-जन्तुओं को नहीं मिल पाता । मनुष्य स्वभाव से ही सौन्दर्य प्रिय है । प्रातः उदीयमान स्वर्णिम सूर्य, मोती जैसे बिखरे नभ के तारे, ग्रह-नक्षत्र, चाँदनी बिखेरता चन्द्रमा, कलरव नाद करती नदियाँ, खिलते पुष्प, खिलखिलाते बच्चे, अगाध समुद्र, विराट् पहाड़, अनन्त अन्तरिक्ष मनुष्य को एक अनिवर्चनीय आनन्द में डुबो देते हैं । मनुष्य की सौन्दर्य प्रियता ने कला, नृत्य, वादन, गायन की रचना कर डाली । वस्तुतः अन्तःस्वरूप ही बाह्य सौन्दर्य प्रियता के रूप में प्रकट होता है । जीवात्मा सुन्दर है । जहाँ कहीं भी सौन्दर्य दिखाई पड़ता है वह अन्तःप्रकाश की ही अभिव्यक्ति है। सौन्दर्य बोध की क्षमता परमात्मा द्वारा अन्तरंग में निवास करने वाली सत्ता के स्वरूप को समझने के लिए दी गई है ।

सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् से युक्त करके परमात्मा ने मनुष्य को पृथ्वी पर भेजा । लक्ष्य था इन विशेषताओं से युक्त मनुष्य कल्याणकारी मार्ग पर चलते हुए जीवन उद्देश्य पूर्णता को प्राप्त करे । पिण्ड में समायी आत्मा और ब्रह्माण्ड में व्याप्त परमात्मा का दर्शन करे । पर मनुष्य अपने लक्ष्य को भूल गया । परिवर्तनशील वस्तु एवं जगत को ही स्थायी एवं वास्तविक मान बैठा । सत्यानुसन्धान पदार्थों को जुटाने, उन्हें उधेड़ने, पता लगाने में सिमट कर रह गया । भौतिक ज्ञान और विज्ञान ही शोध का लक्ष्य बनकर रह गया । प्रबल जिज्ञासा अन्तरंग को समझने के लिए अभिप्रेरित थी । आत्मा एवं परमात्मा का साक्षात्कार उसे अभीष्ट था, पर भटकाव के कारण स्थूल जगत ही एकमेव लक्ष्य बनकर रह गया। बहिर्मुखी दृष्टि ने अज्ञानवश अन्तःप्रेरणा की उपेक्षा कर दी । जिसे सत्य माना जाता है उसे प्राप्त करने की कामना भी रहती है। पदार्थ सत्ता को ही जब यथार्थ मान लिया गया तो उसे अधिक से अधिक मात्रा में संगृहीत करने की होड़ चलना स्वाभाविक भी है, पदार्थ शक्ति को एकत्रित करने की प्रतिस्पर्धा चल पड़ी। सुख-साधनों से लेकर शक्ति संग्रह की स्पर्धा ने अनेकों प्रकार की समस्याओं को जन्म दिया । प्रकृति के सीमित साधनों से असीम इच्छाओं की पूर्ति सम्भव न हो सकी । अधिक पाने-उपभोग करने की प्रवृत्ति ने संघर्ष को जन्म दिया। ईर्ष्या, वैमनस्य, द्वेष, लोभ जैसी संकीर्ण प्रवृत्तियाँ भौतिकवादी दृष्टिकोण के ही परिणाम हैं। उनकी क्षणभंगुरता-नश्वरता को समझा गया होता तो इतनी समस्याएँ उत्पन्न नहीं होतीं । चेतना की समर्थता सत्यता का बोध रहा होता, सत्य के साक्षात्कार की प्रबल जिज्ञासा का बोध रहा होता, बाह्य जगत में उलझकर न रह जाती । वह अन्तर्मुखी होकर अपने शाश्वत स्वरूप का दर्शन करती। पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड में समायी चेतना के दिव्य स्वरूप का दिग्दर्शन एवं उससे मिलने वाले अनुदानों का रसास्वादन करती। जो बुद्धि अन्तर्मुखी होकर प्रज्ञा रूप ले सकती और दिव्य दृष्टि सम्पन्न बन सकती थी-वह भी जड़ वस्तुओं के उपयोग का साधन बनकर रह गई । सत्य की प्रबल जिज्ञासा और उसे जानने की श्रेष्ट साधन बुद्धि का सदुपयोग न हो सका। मनुष्य का इसे सबसे बड़ा दुर्भाग्य कहा जा सकता है कि ईश्वर प्रदत्त इस विशिष्ट साधन का सदुपयोग न हो सका और वह अपने स्वरूप को जानने से वंचित रह गया।

दुरुपयोग नैतिक भावना का भी हुआ । बुद्धि ने जब जड़-पदार्थों को ही सत्य माना तो उसे उनको प्राप्त एवं उपयोग करने में कल्याण दिखाई पड़ा । अपनेपन की परिधि संकीर्ण होने से शरीर से जुड़े परिवार के सदस्यों को पालन-पोषण कर देने, जैसे-वैसे सुख-साधन जुटा देने में ही नैतिक भावना की इतिश्री मान ली गई । शिवत्व की भावना परिवार को विकसित कर देने मात्र तक ही सिमट गई । जो विस्तृत होकर समष्टिगत बनकर अजस्र आनन्द का स्रोत बन सकती है वह क्षणिक मोह से जुड़ी मानसिक तुष्टि बनकर रह गई । यह आत्मप्रवंचना और नैतिक पराभव का ही परिचायक है ।

उपयोग सौन्दर्य बोध की क्षमता का भी न हो सका । जब सत्य पदार्थ सत्ता को पाया गया, कल्याण उसके संग्रह एवं उपभोग में देखा गया तो फिर उसके रंग-बिरंगे आकर्षणों में आकृष्ट होना स्वाभाविक और शरीरगत इन्द्रियों एवं पदार्थगत साधनों के क्षणिक रंग-रूप को ही स्थायी समझा गया । सौन्दर्य की उपलब्धि है-स्थायी आनन्द। भ्रमवश बाह्य आकर्षणों में आनन्द ढूँढ़ा जाने लगा। पत्नी बच्चों में, भौतिक साधनों के उपभोग में आनन्द प्राप्त करने की परम्परा चल पड़ी । मृग मरीचिका के सामान्य बाह्य अस्थायी सौन्दर्य के पीछे मनुष्य दौड़ता रहा । अन्तः की अतृप्ति वैसी ही बनी रही ।

जीवात्मा सत्य है-शिव है और सुन्दरता से युक्त भी । उसी की शक्ति एवं प्रकाश की छाया से बहिर्जगत यथार्थ लगता है । सुखानुभूति उसकी ही एक तरंग है । सौन्दर्य उसकी अभिव्यक्ति है । अन्तःसौन्दर्य ही बाह्य जगत में प्रतिबिम्बित होता है । उसकी सौन्दर्य किरणें विश्व-ब्रह्माण्ड में अन्ततः से निकल कर प्रस्फुटित होती दिखायी देती हैं । सत्य और शिव से, सुन्दरता से युक्त जीवात्मा की प्रतिच्छाया मात्र से यह संसार इतना यथार्थ, सुन्दर एवं आनन्ददायक लगता है । फिर उसका शाश्वत स्वरूप कितना सुन्दर, चिरन्तन आनन्द देने वाला होगा इस कल्पना मात्र से मन एक अनिर्वचनीय आनन्द से पुलकित हो उठता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अंतर्जगत में प्रवेश करें, सत्य को पायें

ईश्वर-प्राप्ति जीवन की सर्वोपरि उपलब्धि है । परम सत्य इसे ही कहा गया है । इसको प्राप्त कर लेने के उपरान्त फिर कुछ और पाना शेष नहीं रह जाता । मनुष्य को इसी सत्य की उपलब्धि का उपाय करना चाहिए ।

सत्य और तत्व-यह दो भिन्न चीजें हैं । तथ्य को खोजा और पता लगाया जाता है । जबकि सत्य के समीप पहुँचना पड़ता है । उसके अनुसंधान की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वह सर्वत्र मौजूद है, स्वयं शोधक में भी उसकी विद्यमानता है, इसलिए अन्यत्र उसका संधान नहीं करना पड़ता । खोज उस वस्तु की होती है, जो अपने पास नहीं है, किंतु जो पहले से ही पास में हो, भला उसके लिए शोध कैसी ? उसको तो मात्र अभिव्यक्ति चाहिए । उसके ऊपरी आवरणों को अनावृत कर देने भर से यह सम्भव हो जाता है और उसका प्रकाश साधक में झलकने-झाँकने लगता है । यह अंतर्जगत की यात्रा और अध्यात्म की उपलब्धि है ।

किन्तु तथ्य बहिर्जगत का अन्वेषण है । पदार्थ-विज्ञान की जितनी भी गवेषणाएँ हैं, सब तथ्यों पर आधारित हैं । तथ्य से विज्ञान सशक्त और प्रामाणिक बनता है । यदि विज्ञान से इसे निकाल दिया जाय, तो वहाँ कल्पना-जल्पना के अतिरिक्त शेष कुछ भी नहीं बचेगा । यह संसार ब्रह्म का प्रकाश है । विज्ञान अपने ढंग से उसकी प्राप्ति का उपाय कर रहा है । उसने जब-जब पदार्थ सम्बन्धी सत्य को खोजने और पाने की घोषणा की, तब-तब वस्तुतः उसने तथ्य को ही ढूँढ़ा है, क्योंकि सत्य तो एक ही है । बाकी सब उस सत्य को साबित करने वाले तथ्य पर निर्भर हैं । जब यह कहा जाता है कि यह संसार परमाणुओं से बना हुआ है, जो स्वयं में पदार्थ की इकाई न होकर पुनः कई इकाइयों में विभाजित हो जाता है । यह सूक्ष्म इकाइयाँ नाभिक के गिर्द परिभ्रमणशील हैं, तो प्रकारान्तर से पदार्थ सम्बन्धी तथ्य का ही उद्घाटन होता है । यह तथ्य अंतिम सत्य को सिद्ध करता है । अंतिम सत्य इसलिए, क्योंकि जब मूल कणों की गति पर विचार करते हैं, वहाँ तुरन्त एक प्रश्न उठ खड़ा होता है कि गति का स्रोत क्या है ? उसे इसकी प्रेरणा कहाँ से मिलती है ? कारण कि स्थूल जगत में अनायास कुछ हो नहीं सकता । उसके पीछे प्रेरणा अथवा निमित्त होना अनिवार्य है । जब कोई प्रत्यक्ष हेतु का ज्ञान न हो सके, तो इसके मूल में परोक्ष की प्रेरणा होना समझा और स्वीकारा जा सकता है । यह स्वीकारोक्ति ही परम सत्य का सबसे बड़ा प्रमाण है । इसीलिए स्थूल विश्व में हम जो कुछ भी ढूँढ़-खोज करते हैं, वह सदा तथ्यपरक होती है । विज्ञान तथ्य का ही अन्वेषण कर सकता है, सत्य का नहीं, क्योंकि सत्य अनुभूति और ज्ञानपरक है, जो बुद्धिगम्य हो वह ज्ञान नहीं, वरन् जिसे समझने की सामर्थ्य के अतिरिक्त और किसी में भी न हो, वह परमज्ञान ।

फूल तोड़ने के कुछ घंटे पश्चात् वे मुरझा जाते हैं । वनस्पतिशास्त्री इस संदर्भ में यह कह सकते हैं कि डाल से पृथक् होने के बाद चूँकि बड़े पैमाने पर उसके अंदर ही फारमेलिन गैस बाहर निकल जाती है, इसलिए ऐसा होता है । कुम्हलाने का कारण गैस का निकलना है, यह ठीक है, किन्तु पुनः यहाँ एक सवाल पैदा होता है कि इसके लिए उद्दीपन कहाँ से मिलता है ? यदि इसे प्लाण्ट फिजियोलॉजी का अंग मात्र माना जाय, तो फिर इसका भौतिक होना भी अंगीकार करना पड़ेगा । भौतिक प्रक्रियाओं के साथ व्यतिक्रम, अव्यवस्था, अनियमितता अभिन्न रूप से जुड़ी रहती है, अस्तु यहाँ भी यह संभाव्यताएँ स्वीकारनी पड़ेंगी । जब यंत्र-उपकरण चलते, बनते और बिगड़ते रहते हैं, उनमें रुकावटें आती और प्रक्रियाएँ ठप्प होती रहती हैं, तो यहाँ फिर भी वह दृश्य दिखाई पड़ने चाहिए, किन्तु पादप जगत के इतिहास में ऐसा एक भी उदाहरण अपवादस्वरूप भी आज तक ढूँढ़ा नहीं जा सका है, जिसमें शाखा से कुसुमों के अलग होने के बाद भी वे वर्षों तक खिली हुई स्थिति में ताजे बने रहें । पुष्प-भेद के आधार पर उसके टूटने और मुरझाने के अंतराल में तो न्यूनाधिक अंतर देखा गया है, पर इससे ज्यादा कुछ नहीं । इससे उक्त भौतिक प्रक्रिया के पीछे किसी अभौतिक कारण को मानना ही पड़ेगा । पदार्थ जगत इस अभौतिक कारण को सदियों से तलाशता रहा है, पर हर बार इसकी खोज में वह किसी तथ्य को ही अनावृत करता रहा है । यह तथ्य उस 'आदि कारण' का ही सबूत जुटाता है, जिसे चरम सत्य कहा गया है ।

शरीर मरणधर्मा है- यह सच है , किन्तु मौत आखिर होती क्यों है ? इसकी गहराई में यदि उतरें, तो फिर उसी अंतिम बिन्दु तक पहुँच जाएँगे, जहाँ से जीवन का प्रारम्भ होना बताया गया है । मृत्यु के सम्बन्ध में शरीरशास्त्री यह कहते पाये जाते हैं कि मरने वाले की देह एवं अंग-अवयव वृद्धावस्था के कारण जीर्ण-शीर्ण हो गये थे और उस जीर्णता का भार वे आगे उठा पाने में असमर्थ थे, इसलिए चेतना ने वृद्ध काया का परित्याग कर दिया, फलस्वरूप मरण घटित हुआ । उक्त तर्क कुछ हद तक मान्य है । असमंजस तो वहाँ उठ खड़ा होता है, जहाँ शरीर भी स्वस्थ, आयु भी औसत, फिर भी शरीरांत हो जाता है । कारण ढूँढ़ने पर ज्ञात होता है, व्यक्ति दो-चार दिन ज्वरग्रस्त रहा, तीन-चार उल्टियाँ हुईं और देहांत हो गया । चिकित्सक इसे मौत का हेतु नहीं मानते और कहते हैं कि यह कोई गम्भीर दशा नहीं, जो मृत्यु का निमित्त बने । फिर भी इस प्रकार की मौतें होती रहती हैं । डॉक्टर इसमें अधिक माथापच्ची करने के बजाय इसे अनहोनी कहकर स्वीकार लेते हैं । इसका कोई वास्तविक कारण तलाश भी लिया गया, तो भी यह प्रश्न चिकित्साशास्त्र के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समक्ष अनुत्तरित ही बना रहेगा, कि अल्पायु और दीर्घायु में कलेवर छोड़ने के लिए चेतना को दिशानिर्देश कहाँ से मिलता है ? इसके पीछे बीमारियों को यदि कारणभूत माना गया, तो फिर सवाल पैदा होगा कि उक्त व्याधि हुई ही क्यों ? यहाँ यदि परिस्थिति और पर्यावरण को जिम्मेदार ठहराया गया, तो इसका जवाब दे पाना कठिन हो जाएगा कि उसी वातावरण में रहने वाले अन्य अनेकों को न होकर यह रोग व्यक्ति विशेष को क्यों हुआ ? इस प्रकार प्रश्नों की एक लंबी शृंखला के पश्चात् हमें कोई-न-कोई अपार्थिव उद्‌गम की स्वीकारोक्ति करनी ही पड़ेगी, तभी इस प्रश्न शृंखला का समाधान हो सकेगा । यही अंतिम सत्य होगा । इस तरह मृत्यु सम्बन्धी अलग-अलग तथ्य अप्रत्यक्ष रूप से परमचेतना को ही सिद्ध करते हैं । यही मानव के लिए यथार्थ प्राप्तव्य है ।

ईश्वरीय-चेतना का साकार रूप यह विराट् विश्व है । उसके कण-कण में परम सत्ता की व्यवस्था को देखा और अनुभव किया जा सकता है । जिस प्रकार मिट्टी के बर्तनों से कुम्हार का, मशीन के अवलोकन से निर्माता का एवं मकान को देखकर उसमें रहने और बनाने वाले का अंदाज लगता है, उसी प्रकार सृष्टि के अणु-अणु में समाये नियम को, उसके सुनिश्चित विधि-विधान को निहारने से किसी नियामक सत्ता की उपस्थिति का स्पष्ट आभास मिलने लगता है । यह आभास तथ्य मात्र है । उसकी उपलब्धि कर लेने से सत्य की प्राप्ति नहीं हो जाती । सत्य का साक्षात्कार उसके आगे के चरण में होता है । तथ्य से परमेश्वर के प्रति विश्वास पैदा होता है। इस विश्वास के आधार पर जब आंतरिक मल-विक्षेपों के अवांछनीयता के आवरण को हटाया-मिटाया जाने लगता है, तो आत्मा और ईश्वर का प्रकाश प्रकट होने लगता है । इसी की प्राप्ति मनुष्य का वास्तविक उद्देश्य है, किन्तु इन दिनों उसे पाना तो दूर, उसके आस-पास भी हम नहीं पहुँच सके हैं। कारण कि हमारा आधार असत्य पर टिका हुआ है । सत्य को हस्तगत करने के लिए आधार का सच्चा होना भी नितान्त आवश्यक है । झूठा आधार सत्य को कभी भी उपलब्ध नहीं करा सकता । जिस प्रकार लौह कणों को आकर्षित करने के लिए लोहे का चुंबक अभीष्ट होता है, उच्चस्तरीय ज्ञानार्जन के लिए उच्चशिक्षित आचार्य की आवश्यकता पड़ती है, काँटे को निकालने के लिए काँटा चाहिए, उसी प्रकार सत्य तत्व को प्रत्यक्ष करने के लिए व्यक्तित्व भी सच्चा होना चाहिए । मिथ्या व्यक्तित्व में सत्य को प्रकट और धारण करने की सामर्थ्य नहीं ।

वर्तमान में जीवन और व्यवहार में हम जैसे बाहर हैं, वैसे भीतर नहीं हैं । कोई भी व्यक्ति ऐसा दिखलाई नहीं पड़ना चाहता, जैसा कि वह है । जो यथार्थ है, उसे आदमी छिपा लेना चाहता है और जो झूठ है, मिथ्या है, उसका आवरण ओढ़ लेना चाहता है । फिर वही सत्य-प्राप्ति का उपक्रम करता दिखाई पड़ता है । धर्मग्रंथों का नवाह्न पारायण करने लगता है । कुरान, बाइबिल का नियमित पाठ आरम्भ करता है । भगवान की प्रतिमा के समक्ष नित्य हाथ जोड़ता पूजा करता, भजन गाता, प्रार्थना करता, व्रत-उपवास रखता है, ताकि उसे इष्ट के दर्शन, हो जाएँ, आत्मोपलब्धि हो जाय, पर वह यह सोचने-समझने की चेष्टा कभी भी नहीं करता कि यदि वह स्वयं असत्य है और उसका संपूर्ण व्यक्तित्व ही असत्य पर स्थिर है, तो भला इसे सत्य का ज्ञान कैसे हो सकता है ?

सत्य की प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम हमें अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को सत्य पर प्रतिष्ठित करना होगा । उसे सीधा, सरल और स्वच्छ बनाना होगा हम जैसे भी हैं, जो भी हैं-व्यक्तित्व की स्वीकृति भी वैसी ही होनी चाहिए । खराब को खराब तथा बुरे को बुरा मान लेने से कम से कम इतना तो अनुमान लगता है कि व्यक्ति में असत्य को असत्य स्वीकारने में जितना सत्य अभी बाकी है । आगे इसी का विस्तार करके उसे बीज से वृक्ष जितना विराट् बनाया जा सकता है । इतना यदि सम्भव हुआ, तो समझना चाहिए कि परमतत्व की उपलब्धि की दिशा में दो तिहाई सफलता मिल चुकी है । शेष एक तिहाई, ईश्वर के प्रति श्रद्धा और उच्च आदर्शों के प्रति समर्पण से पूरी हो जाती है, किन्तु वर्तमान समय में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि वह स्वीकृति मन के अंदर कहीं नहीं है । व्यक्ति आज अपने दुर्गुण को दुर्गुण नहीं मानना चाहता । जब अच्छाई की दिशा में, उठने वाले प्रथम कदम का ही गला घोंट दिया गया, तो फिर अच्छाई के समुच्चय-ईश्वर को, आत्मा को, कैसे प्राप्त किया जा सकेगा ? इतने पर भी आश्चर्य यह कि आज जिन्हें भला आदमी कहा जाता है, उन तथाकथितों की निजी जिन्दगी में झाँकने पर वह सरलता, सहजता और स्वच्छता नहीं के बराबर बहुत कम देखने में आती है, जिनका कि बढ़-चढ़ कर अनुमान और बखान किया गया था । इसके विपरीत जिन्हें हम बुरा आदमी कहते हैं, अपराधी और चरित्रहीन समझते हैं, वे सरल, सहज हो सकते हैं ।

मान्यता सम्बन्धी यह दोष भी सत्य के समीप पहुँचने में अवरोध उत्पन्न करता है, यदि बुरे को बुरा और भले को भला कहने की धारणा सूक्ष्म परख के आधार पर बनायी जाती, तो शायद इनसे दोनों का ही कल्याण होता, पर उलटी अवधारणा अपना लेने और उलटा संबोधन प्रदान करने से जहाँ एक को उलटा करने का समर्थन और प्रोत्साहन मिलता है, वहीं दूसरा अपना सीधा-सच्चा आचरण त्याग कर खराब बनने के लिए मजबूर हो जाता है । सोचता है, जब दुर्जन की पहचान बन गई, तो फिर सज्जन बने रहने में क्या लाभ ? इसके विपरीत जो वास्तव में दुष्ट और अधार्मिक हैं, वे शिष्ट एवं धार्मिक होने का और अधिक ढोंग करने लगते हैं । इस प्रकार दोनों ही पतनोन्मुख होते और सत्य तत्व से अधिकाधिक दूर होते चले जाते हैं । यदि प्रच्छन्न अभद्रों की भर्त्सना और वास्तविक भद्रों की सराहना का प्रचलन समाज में रहा होता, तो संभव है मनुष्य अपनी वर्तमान दुरवस्था से काफी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ आत्मोन्नति कर एक ऐसी भूमिका में अवस्थान कर रहा होता, जहाँ सच्चे अर्थों में उसे समुन्नत, सुसंस्कृत और सुसभ्य कहा जाता ।

संसार की आज की स्थिति देखने से ऐसा लगता नहीं कि समाज सचमुच सुसंस्कृत है । इसका एक ही कारण है कि भौतिक प्रगति के साथ-साथ मनुष्य अधिकाधिक बहिर्मुख होता चला गया और बाह्य प्रकृति के अनुसंधान में निरत हो गया, जबकि होना उलटा चाहिए था । उसे अंतर्मुखी बनकर भीतर के आयामों में उतरना और पिछले दिनों की शोध को जारी रखते हुए आगे की उपलब्धि करनी चाहिए थी, पर ऐसा न हो सका । यही कारण है कि पिछले हजार वर्षों में मात्र एक महावीर, एक बुद्ध, एक क्राइस्ट, एक मुहम्मद, विवेकानंद और एक श्री अरविंद पैदा हो सके । इतनी बड़ी दुनिया और इतनी विशाल अवधि में मात्र एक विवेकानंद ! यह बड़े आश्चर्य, दु:ख और दुर्भाग्य की बात है । समय आ गया है, जब मनुष्य जाति को अपना यह दुर्भाग्य धो देना चाहिए, अत: प्रकृति में प्रवेश कर उसे उस सत्य को पा लेने का प्रयास करना चाहिए, जो तथ्य के रूप में, स्थूल विश्व के रूप में हमारे सामने प्रकट और प्रत्यक्ष है । तथ्य मूर्त है और सत्य तत्व उसका अमूर्त और वास्तविक रूप है । आत्मा, ईश्वर कहकर उसे ही पुकारा गया है । मनुष्य का यथार्थ कल्याण उसी में निहित है । उसी की उपलब्धि का हमें प्रयत्न करना चाहिए ।

आत्मा को कैसे जानें? परमात्मा को कैसे देखें ?

आत्मा क्या है ? वह परमात्म सत्ता का प्रतीक कैसे है ? इन प्रश्नों का समाधान करते हुए केनोपनिषद में बड़ी मार्मिक चर्चा की गई है । जिज्ञासु पूछता है-

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः
केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति
चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ।।

अर्थात्- मन किसकी प्रेरणा से दौड़ाया हुआ दौड़ता है ? किसके द्वारा प्रथम प्राण संचार सम्भव हुआ ? किसकी चाही हुई वाणी मुख बोलती है ? कौन देवता देखने और सुनने की व्यवस्था बनाता है ?

मन अपने आप कहाँ दौड़ता है ? आन्तरिक आकांक्षाएँ ही उसे जो दिशा देती हैं, उधर ही वह चलता है, दौड़ता है और वापिस लौट आता है । यदि मन स्वतन्त्र चिन्तन में समर्थ होता तो उसकी दिशा एक ही रहती । सबका सोचना एक ही तरह होता, सदा-सर्वदा एक ही तरह का चिंतन बन पड़ता; पर लगता है पतंग की तरह मन का उड़ाने वाला भी कोई और है, उसकी आकांक्षा बदलते ही मस्तिष्क की सारी चिन्तन प्रक्रिया उलट जाती है । मन एक पराधीन उपकरण है- वह किसी दिशा में स्वेच्छापूर्वक दौड़ नहीं सकता । उसके दौड़ाने वाली सत्ता जिस स्थिति में रह रही होगी, चिन्तन की धारा उसी दिशा में बहेगी । मन को दिशा देने वाली मूल सत्ता का नाम 'आत्मा' है ।

दूसरे प्रश्न में जिज्ञासा है कि माता के गर्भ में पहुँचने पर प्रथम प्राण कौन स्थापित करता है ? उसमें जीवन संचार के रूप में हलचलें कैसे उत्पन्न होती हैं ? रक्त-माँस तो जड़ है । जड़ में चेतना कैसे उत्पन्न हुई ? यहाँ भी उत्तर वही है-यह आत्मा का कर्तृत्व है । भ्रूण अपने आप में कुछ भी कर सकने में समर्थ नहीं । माता-पिता की इच्छानुसार सन्तान कहाँ होती है ? पुत्र चाहने पर भी कन्या गर्भ में आ जाती है । जिस आकृति-प्रकृति की अपेक्षा की उससे भिन्न प्रकार की सन्तान जन्म लेती है । इसमें माता-पिता का प्रयास भी कहाँ सफल हुआ तब भ्रूण को चेतना प्रदान करने का कार्य कौन करता है ? उपनिषद्कार इस प्रश्न के उत्तर में आस्था के अस्तित्व को प्रमाण स्वरूप रूप में प्रस्तुत करता है ।

मृत शरीर में प्राण संचार न रहने से उसके भीतर वायु भरी होने पर भी साँस को बाहर निकालने की सामर्थ्य नहीं होती । श्वास-प्रश्वास प्रणाली यथावत् रहने पर भी प्राण स्पन्दन नहीं होता । प्राण, अपान, ध्यान, उदान और समान प्राणों द्वारा शरीर और मन के विभिन्न क्रिया-कलाप संचालित होते हैं, पर महाप्राण के न रहने पर शरीर में उसका स्थान और कार्य सुनिश्चित होते हुए भी सब कुछ निश्चल हो जाता है । अंगों की स्थिति यथावत रहते हुए भी जिस कारण मृत शरीर जड़वत् निचेष्ट हो जाता है वह महाप्राण का प्रेरणा क्रम रुक जाना ही है । इस सूत्र संचालक महाप्राण को ही 'आत्मा' कहते हैं ।

तीसरा प्रश्न उत्पन्न होता है किसकी चाही हुई वाणी मनुष्य बोलते हैं। निसन्देह यह कार्य मुख का नहीं है । शरीर और इन्द्रियों का भी नहीं है। यदि ऐसा होता तो भूखा होने पर पात्र-कुपात्र के आगे समय-कुसमय का ध्यान रखे बिना भोजन याचना की जाती । कामुक आवश्यकता की पूर्ति के लिए किसी शील-संकोच को आड़े न आने दिया गया होता । पर शरीर और मन की आवश्यकताओं को बहुधा रोककर रखा जाता है। अन्त:-करण क्षुब्ध होने पर मुख से कटु बचन निकलते हैं और उत्कृष्ट स्थिति में अमृतोपम वाणी निसृत होती है । यदि वाणी स्वतन्त्र होती तो वह तोता की तरह अभ्यस्त शब्दों का ही उच्चारण करती रहती । वाणी से विष और अमृत, ज्ञान और अज्ञान निसृत करने वाली अन्त:चेतना उससे पृथक और स्वतन्त्र है-उसी का नाम 'आत्मा' है ।

आँखें किसकी प्रेरणा से देखती हैं, कान किसकी इच्छानुसार सुनते हैं ? यह प्रश्न उपस्थित करते हुए यह देखा जा सकता है कि क्या आँखों में देखने की या कानों में सुनने की स्वतन्त्र शक्ति है ? निश्चित रूप से वह नहीं ही है । यदि हो तो मृतक या मूर्च्छित स्थिति में ही आँखें देखती और कान सुनते । ध्यानमग्न होने की स्थिति में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आँखों के आगे से गुजरने वाले दृश्य भी परिलक्षित नहीं होते और कानों के समीप ही बात-चीत होते रहने पर भी कुछ सुना नहीं जाता । अनेक दृश्यों में से आँख अपने प्रिय विषय पर ही टिकती हैं । कई तरह की आवाजें होते रहने पर भी कान उन्हीं पर केन्द्रित होते हैं जो अपने को प्रिय हैं । इन ज्ञान प्रधान कान और चक्षु इन्द्रियों में अपनी निज की क्रियाशीलता नहीं है, जिसकी प्रेरणा से वे सक्रिय रहते हैं वह सत्ता 'आत्मा' की ही है ।

दूसरे मन्त्र में ऋषि ने इन प्रश्नों का समुचित उत्तर स्वयं ही प्रस्तुत कर दिया है-

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्यप्राण चक्षुषश्चक्षु रतिमुच्यधीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।

अर्थात्- कान में जो सुनने की शक्ति है, मन में जो मनन करने की शक्ति है, वाणी में जो बोलने की शक्ति है, प्राण में जो संचालन शक्ति है, आँखों में जो देखने की शक्ति है, वह देवात्मा ही जीवन का संचार करती है ।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह आत्मा आखिर है क्या ? उसके उत्तर में ऋषि कहता है-

'छायातपो ब्रह्मविदो वदन्ति' ।

अर्थात् यह आत्मा धूप के साथ जुड़ी हुई छाया की तरह है । उसका अस्तित्व परमात्म-सत्ता पर अवलम्बित है । सूर्य की धूप चन्द्रमा को प्रकाशित करती है । चन्द्रमा की चाँदनी से धरती प्रकाशवान होती है । उसी तरह परमात्मा की सत्ता आत्मा पर प्रतिबिम्बित होती है और फिर उसकी ज्योति इन्द्रियों को आलोकित करके उन्हें सम्वेदनाएँ अनुभव करने योग्य बनाती हैं ।

यथार्थ ज्ञान के शोधकर्त्ता इन्द्रिय ज्ञान के ऊपर उठकर आत्म-ज्ञान को प्राप्त करते हैं और फिर उससे ऊँची परमात्म सत्ता में अपने आपको विलीन करते हुए ऊपर उठते हैं और अमृत को प्राप्त करते हैं । इस तथ्य का प्रतिपादन करते हुए उपनिषद्कार कहता है-

'अतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति' ।

अर्थात्- आत्मज्ञानी, धीर पुरुष इन्द्रियों के प्रेरक जीवात्मा का अतिक्रमण करके इस लोक से अर्थात् जनसाधारण के द्वारा अपनाये गये निष्कृष्ट स्तर से ऊपर उठ कर अमृत्व को प्राप्त करते हैं ।

यहाँ अमृतत्व का अर्थ है-अनन्त जीवन की मान्यता और तदनुरूप दृष्टिकोण अपनाकर तदनुरूप चिन्तन एवं कर्तृत्व का निर्धारण । लोग अपने को मरणधर्मा मानते हैं, तात्कालिक लाभों को अवांछनीय होते हुए भी उन्हें ही सब कुछ समझ कर टूट पड़ते हैं और भविष्य को भूलकर उसे अन्धकारमय बनाते हैं । खाओ, पिओ, मौज उड़ाओ । कर्ज लेकर मद्यपान करते रहो की नीति अपनाकर लोभ, मोह से ग्रसित वासना, तृष्णा के लिए आतुर मनुष्य का दृष्टिकोण मरण-धर्मा है । उसे अपनाने वाले जीवित मृतक हैं । इसके विपरीत जो अनन्त जीवन का भविष्य उज्ज्वल बनाने के लिए आज कष्ट उठाने की तपश्चर्या का स्वागत करते हैं, वे दूरदर्शी विवेकवान् अमर कहलाते हैं । अमृतत्व का प्राप्त होना इसी परिष्कृत दृष्टिकोण को अपनाने के साथ जुड़ा हुआ है ।

ऊपर धीर शब्द का उपयोग हुआ है । अध्यात्म शास्त्र में 'धीर' शब्द निर्विकारी के लिए और 'मूढ़' सविकारी के लिए प्रयुक्त होता है । धृति को धर्म का प्रथम चरण इसीलिए माना गया है कि मनुष्य निर्विकार रह सकने की ऊपरी अविचल अध्यात्म निष्ठा का परिचय देता है । इसके विपरीत विकारों को अपनाने में उतावली करने वाले अधीर कहलाते हैं । उन्हीं अदूरदर्शियों को 'मूढ़' संज्ञा दी गई है ।

"विकार हेतो सति विक्रियन्ते
येषां न चेतांसि त एव धीराः" ।

अर्थात्- विकारग्रस्त होने की परिस्थितियाँ रहने पर भी अविचल बने रहते हैं वे ही 'धीर ' हैं ।

धीर व्यक्ति आत्मबोध प्राप्त करते हुए जिसे परमात्म-सत्ता में प्रवेश करते हैं; उसे इन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता । आत्मानुभूति ही उसे उपलब्ध करने का एकमात्र साधन है । यदि इन्द्रियों से उसे देखने का प्रयत्न किया जाय, तो निराशा अथवा भ्रान्ति ही हाथ लगेगी । इस सन्दर्भ में केनोपनिषद का अगला प्रतिपादन है-

"न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचक्षिरे" ।

अर्थात्- उसे आँखें नहीं देख सकतीं, वाणी नहीं कह सकती, मन नहीं जान सकता । हम नहीं जानते कि उसे जिज्ञासुओं को किस प्रकार समझाया जाय । हमने जो सुना जाना है उससे वह ब्रह्म विलक्षण है । वह इन्द्रियातीत होने पर भी नहीं है ऐसा नहीं कहा जा सकता ।

वृहदारण्यक उपनिषद में इसी तथ्य को दूसरे शब्दों में कहा गया है-

'विज्ञातारमरे केन किम् विजानीयदिति'

अरे, उस जनने वाले को किसके सहारे जनाया जाय ?

सूर्य को दीपक से कैसे देखें ? वह तो स्वयं ही प्रकाशवान है । प्रकाश को प्रकाश से देखने की क्या आवश्यकता ? बुद्धि की सत्ता अनुभव करने के लिए नई बुद्धि कहाँ से लाई जाय ? अँधेरे को देखने के लिए दीपक और अन्यान्य पदार्थों को जानने के लिए बुद्धि की आवश्यकता रहती है, पर दीपक और बुद्धि तो स्वयं ही प्रत्यक्ष हैं । प्रत्यक्ष को फिर किस प्रत्यक्ष से जानें ?

हम हैं और इन्द्रियों को प्रेरणा देने वाले हैं-इन्द्रियों के कारण हम चैतन्य नहीं, वरन् हमारे कारण इन्द्रियों में चेतना है, यह जान लेने पर आत्मा का अस्तित्व प्रत्यक्ष हो जाता है । आत्मा पर मल आवरण विक्षेप के कषाय-कल्मष चढ़ जाने से वह मलीन बनता है और दीन-दयनीय दुर्दशाग्रस्त परिस्थिति में पड़ा जकड़ा दुख भोगता है । मलीनता की इस आवरण परतों को उतार फेंकने पर उसका निर्मल स्वरूप प्रकट होने लगता है । दर्पण पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जमी हुई धूलि हटा देने से उसमें अपना प्रतिबिम्ब सहज ही देखा जा सकता है ।

आत्म-साक्षात्कार इसी का नाम है-इसे ही परमात्मा का दर्शन एवं परब्रह्म की प्राप्ति कहते हैं । आँखों से किसी देवावतार के स्वरूप को देखने की लालसा एक भ्रान्ति मात्र है- जिसका पूरा हो सकना सम्भव नहीं । ईश्वर को चर्म चक्षुओं से नहीं, ज्ञान चक्षुओं से ही देखा जा सकता है । आँखें पंच भौतिक पदार्थों की बनी होने के कारण अपने सजातीय जड़ पदार्थों को ही देख सकती हैं । उनके लिए चेतन को उसकी गतिविधियों को देख सकना सम्भव नहीं, न अन्य इन्द्रियों से उसकी अनुभूति हो सकती है । आत्मा को देख सकना तो दूर उसकी अनुभूतियों को प्रसन्नता-अप्रसन्नता, आशा-निराशा, स्नेह-द्वेष, सन्तोष-असन्तोष तक की इन्द्रियों से अनुभव नहीं किया जा सकता, तब सर्वव्यापी नियामक सत्ता को-परमात्मा को इन्द्रियों के सहारे कैसे देखा सुना या जाना जा सकेगा ।

आत्मा का परिष्कृत रूप ही परमात्मा है । जीवात्मा वह जो लोभ-मोह से, वासना, तृष्णा से प्रभावित होकर स्वार्थ-परता एवं संकीर्णता के बन्धनों में जकड़ा पड़ा है । अपना चिन्तन, कर्तृत्व शरीर और कुटुम्ब के भौतिक लाभों तक सीमित रखने वाला भव-बन्धनों में जकड़ा जीव है । मुक्त उसे कहा जाएगा जिसने अपनेपन की, आत्म-भाव की परिधि को अधिकाधिक विस्तृत बना लिया है । जिसके लिए समस्त विश्व अपना परिवार है । समस्त प्राणी जिसके अपने कुटुम्बी हैं । औरों के दुःख को अपना दुःख मानकर जो उसके निराकरण का प्रयास करता है । औरों के सुख देकर सुखी होता है । अपने और औरों के बीच की दीवार तोड़कर सर्वत्र एक ही आत्मा का विस्तार देखता है वह दिव्यदर्शी ही दूसरे शब्दों में परमात्मदर्शी कहा जाता है । आत्मा का परिष्कृत एवं विकसित रूप ही परमात्मा है । परमात्म स्तर को प्राप्त करना ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है ।

परमात्मा का सच्चा साक्षात्कार

पहले हम मानव की सौम्यतम व पावन मूर्तियों में परमात्मा का दर्शन करना सीखें । उसी तरह इस सृष्टि में जो-जो विशाल व मनोहर रूप हैं उनमें उसके दर्शन पहले करें । ऊषा को ही लो । सूर्योदय के पहले की वह दिव्यप्रभा इस उषा-देवता के गान मस्त होकर ऋषि गाने लगते हैं-"उषे, तू परमेश्वर का सन्देश लाने वाली दिव्य दूतिका है, तू हिमकणों से भव्य हृदयंगम वर्णन ऋषियों ने उषा के किये हैं ।" वैदिक ऋषि कहते हैं-"तेरा दर्शन करके, जो कि परमेश्वर की संदेशवाहिका है, यदि परमेश्वर का रूप न दिखाई दे, न समझ में आये तो फिर मुझे परमेश्वर का परिचय कौन करायेगा ।" इतनी सुन्दरता से सज-धज कर यह उषा सामने खड़ी है, परन्तु हमारी निगाह वहाँ तक जाय तब न ?

उसी तरह सूर्य को देखो । उसके दर्शन मानो परमात्मा के ही दर्शन हैं । वह नाना प्रकार के रंग-बिरंगे चित्र आकाश में खींचता है । चित्रकार महीनों कूँची इधर-उधर घुमाकर सूर्योदय के चित्र बनाते और उसमें रंग भरते हैं । परन्तु तुम सुबह उठकर परमेश्वर की कला को देखो तो! उस दिव्य कला के लिये-उस अनन्त सौन्दर्य के लिये भला क्या उपमा दी जा सकेगी ? परन्तु देखता कौन है ? उधर वह सुन्दर भगवान खड़ा है और इधर यह मुँह पर और भी रजाई डालकर नींद में खुरटि भरता है । सूर्यदेव कहते हैं-"अरे आलसी, तू तो पड़ा ही रहना चाहता है किन्तु मैं तुझे उठाऊँगा ।" और वह अपने जीवन किरण खिड़कियों में से भेजकर उस आलसी को जगा देता है । सूर्य समस्त स्थावर-जंगम की आत्मा है । चराचर का आधार है, जीवन का आधार है । उसमें परमात्मा के दर्शन करो ।

वह पावन गंगा ! जब मैं काशी में था तो गंगा के किनारे जाकर बैठ जाया करता रात में, एकान्त समय में जाता था । कितना सुन्दर और प्रसन्न उसका प्रवाह था । उसका वह भव्य गम्भीर प्रवाह और उसके उदर में संचित वे आकाश के अनन्त तारे ! मैं मूक बन जाता । शंकर के जटाजूट से अर्थात् उस हिमालय से बहकर आने वाली वह गंगा जिसके तीर पर राज-पाट को तृणवत् फेंककर राजा लोग तप करने जाते थे, उस गंगा का दर्शन करके मुझे असीम शान्ति अनुभव होती । उस शान्ति का वर्णन मैं कैसे करूँ ? वाणी की वहाँ सीमा आ जाती है । यह समझ में आने लगा कि हिन्दू यह क्यों चाहता है कि मरने पर निदान मेरी अस्थि तो गंगा में पड़ जायें । आप हँसिये । आप के हँसने से कुछ बिगड़ता नहीं । परन्तु मुझे ये भावनाएँ बहुत पवित्र और संग्रहणीय मालूम होती हैं । मरते समय गंगाजल के दो बूँद मुँह में डालते हैं । वे दो बूँद क्या हैं, मानो परमेश्वर ही मुँह में उतर आता है उस गंगा को परमात्मा ही समझो । वह परमेश्वर की करुणा बह रही है । तुम्हारा सारा भीतरी-बाहरी कूड़ा-कर्कट वह माता धो रही है, वहाँ ले जा रही है । गंगा माता में यदि परमेश्वर प्रकटित न दिखाई दे, तो कहाँ दिखाई देगा? सूर्य नदियाँ, धू धू करके हिलोरें मारने वाला वह विशाल सागर, ये सब परमेश्वर की ही मूर्तियाँ हैं ।

वह हवा ! कहाँ से आती है, कहाँ जाती है, कुछ पता नहीं। यह भगवान का दूत ही है। हिन्दुस्तान में कुछ हवा स्थिर हिमालय पर से आती है; कुछ गम्भीर सागर से। यह पवित्र हवा हमारे हृदय को छूती है, हमें जाग्रत करती है, हमारे कानों में गुनगुनाती है । परन्तु इस हवा का संदेश सुनता कौन है ? जेलर ने यदि हमारा चार सतर का खत न दिया, तो हमारा दिल खट्टा हो जाता है। अरे मंदभागी, क्या रखा है उस चिट्ठी में? परमेश्वर का यह प्रेम-संदेश, हवा के साथ हर घड़ी आ रहा है, उसे तू सुन!

हमारे घर के नित्य काम-काज में आने वाले इन पशुओं को देखो ! वह गो माता कितनी वत्सल, कितनी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ममता व प्रेम से परिपूर्ण है ! दो-दो तीन-तीन मील से, जंगल-झाड़ियों से अपने बछड़ों के लिये कैसी दौड़कर आती है ! वैदिक ऋषियों को पर्वतों से स्वच्छ जल लेकर-कल-कल करती हुई आने वाली नदियाँ देखकर अपने बछड़ों के लिए दूध-भरे स्तनों को लेकर रँभाती हुई आने वाली वत्सल गायों की याद हो आती है । यह ऋषि नदी से कहता है-"हे देवि दूध की तरह पवित्र, पावन, मधुर जल लाने वाली तू धेनु जैसी है । जैसे गाय जंगल में नहीं रह सकती, वैसे ही तुम नदियों से भी पर्वतों में नहीं रहा जा सकता । तुम सरपट दौड़ती हुई प्यासे बालकों से मिलने के लिए आती हो ।"

वत्सल गाय के रूप में भगवान् ही दरवाजे पर खड़ा है ।

ऐसे कितने उदाहरण दूँ ? मैं तो सिर्फ ख्याल दे रहा हूँ। रामायण का सारा सार इस प्रार्थना की रमणीय कल्पना में ही है । रामायण में पिता-पुत्र का प्रेम, माँ-बेटों का प्रेम, भाई-भाई का प्रेम, पति-पत्नी का प्रेम, यह सब कुछ है । परन्तु मुझे रामायण इसके लिए प्रिय नहीं है । मुझे वह पसंद इसलिए है कि राम की मित्रता वानरों से हुई । आजकल कहते हैं वे वानर तो नाग-जाति के थे । इतिहासज्ञों का काम ही है पुरानी बातों की छानबीन करना। उसके इस कार्य पर मैं आपत्ति नहीं उठाता । लेकिन राम ने यदि असली वानरों से मित्रता की हो तो इसमें असंभव क्या है? राम का रामत्व, रमणीयत्व सचमुच इसी बात में है कि राम और वानर मित्र हो गये । इसी तरह कृष्ण का और गायों का सम्बन्ध । सारी कृष्ण पूजा का आधार यही कल्पना है । श्रीकृष्ण के किसी चित्र को लीजिये, तो आपको इर्द-गिर्द गायें खड़ी मिलेंगी । गोपाल कृष्ण, गोपाल कृष्ण ! यदि कृष्ण से गायों को अलग कर दो तो फिर कृष्ण में बाकी क्या रहा ? राम से यदि वानर हटा दिये तो फिर इस राम में क्या बाकी रहा ? राम ने वानरों में भी परमात्मा के दर्शन किये व उनके साथ प्रेम और घनिष्टता का सम्बन्ध स्थापित किया । यह है रामायण की कुंजी ! इस कुंजी को आप भूल जाएँगे तो रामायण की मधुरता खो देंगे । पिता-पुत्र का, माँ बेटे का प्रेम तो और जगह भी मिल जाएगा, परन्तु नर-वानर की यह अनन्य मधुर मैत्री सिर्फ रामायण में ही मिलेगी और कहीं नहीं। वानर में स्थित भगवान-रामायण ने आत्मसात् किया । वानरों को देखकर ऋषियों को बड़ा कौतुक होता। ठेठ रामटेक से लेकर कृष्णातट तक जमीन पर पैर न रखते हुए वे वानर एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर कूदते-फाँदते और क्रीड़ा करते थे । ऐसे उस सघन वन को और उसमें क्रीड़ा करने वाले वानरों को देखकर उन सहृदय ऋषियों के वन में कवित्व जाग उठता, कौतुक होता । ब्रह्म की आँखें कैसी होती हैं यह बताते हुए उपनिषदों ने बन्दरों की आँखों की उपमा दी है। बन्दर की आँखें बड़ी चंचल, चारों ओर उनकी निगाह । ब्रह्म की आँखें ऐसी ही होनी चाहिए। ईश्वर का काम आँखें स्थिर रखने से न चलेगा । हम आप ध्यानस्थ होकर बैठ सकते हैं । परन्तु यदि ईश्वर ध्यानस्थ हो जाय तो फिर दुनिया का क्या हाल हो । अतः बन्दरों में ऋषियों को सबकी चिन्ता रखने वाली ब्रह्म की आँखें दिखाई देती हैं । वानरों में परमात्मा के दर्शन करना सीख लो । संतों के लिए सर्वत्र सुकाल है । परन्तु हम अभागों के लिए सब जगह अकाल है ।

मैं उस कोयल को कैसे बुलाऊँ ? किसे पुकारती है वह ? गर्मियों में नदी-नाले सूख गये, परन्तु वृक्षों में नव-पल्लव छिटक रहे हैं । वह यह तो नहीं पूछ रही है कि किसने उन्हें यह वैभव प्रदान किया ? कहाँ है वह वैभवदाता ? कैसी उत्कृष्ट मधुर कूक ! हिन्दू धर्म में कोयल के व्रत का तो विधान ही मिलता है । स्त्रियाँ व्रत लेती हैं कि कोयल की आवाज सुने बिना वे भोजन नहीं करेंगी । कोयल के रूप में प्रकट परमात्मा का दर्शन करना सिखाने वाला यह व्रत है । वह कोयल कितनी सुन्दर कूक लगती है, मानो उपनिषद ही गाती है । उसकी कूह-कूह तो कानों को सुनाई देती है परन्तु वह दिखाई नहीं देती । अँग्रेजी कवि उसके पीछे पागल होकर जंगल-जंगल उसकी खोज में भटकता है । इंग्लैण्ड का कवि कोयल को खोजता है, परन्तु भारत में घरों की सामान्य स्त्रियों को कोयल न दिखाई दें तो खाना नहीं खाती । इस कोकिला व्रत की बदौलत भारतीय स्त्रियों ने महान् कवि की पदवी प्राप्त कर ली है । जो कोयल परम आनन्द की मधुर ध्वनि सुनाती है । उसके रूप में सुन्दर परमात्मा ही अभिव्यक्त हुआ है ।

कोयल तो सुन्दर और कौवा क्या भद्दा है । कौवे का भी गौरव करो । मुझे तो वह बहुत प्रिय है, उसका वह घना काला रंग, वह तीव्र आवाज । वह आवाज क्या बुरी है ? नहीं, वह भी मीठी है । वह पंख फड़फड़ाता हुआ आता है तो कितना सुन्दर लगता है । छोटे बच्चों का चित्त खींच लेता है । नन्हा बच्चा बन्द घर में खाना नहीं खाता । बाहर आँगन में बैठकर उसे जिमाना पड़ता है और कौवे दिखाकर उसे कौर खिलाना पड़ता है । कौवे के प्रति स्नेह रखने वाला वह बच्चा, क्या पागल है ? वह पागल नहीं, उसमें ज्ञान भरा हुआ है । कौवे के रूप में व्यक्त परमेश्वर से वह बच्चा फौरन एक रूप हो जाता है । माता चावल पर चाहें दही डाले, दूध डाले या शक्कर डाले, उस बच्चे को उसमें कोई रस नहीं । उसे आनन्द है कौवे के पंख फड़फड़ाने में, उसके मुँह नचाने में । सृष्टि के प्रति छोटे बच्चों को जो इतना कौतुक मालूम होता है उसी पर तो सारी ईसप-नीति रची गई है । ईसप को सर्वत्र ईश्वर दिखाई देता था । अपनी प्रिय पुस्तकों की सूची में, मैं ईसप-नीति का नाम सबसे पहले रखूँगा, भूलूँगा नहीं । ईसप के राज्य में दो हाथों वाला, पाँवों वाला यह मनुष्य प्राणी ही अकेला नहीं है । उसमें कुत्ते, कौवे, हिरन, खरगोश, कछुए, साँप, केंचुए सभी बातचीत करते हैं, हँसते हैं । एक प्रचण्ड सम्मेलन ही समझिए न ? ईसप से सारी चराचर सृष्टि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बातचीत करती है । उसे दिव्यदर्शन प्राप्त हो गया है । रामायण भी इसी तत्व पर, इसी सृष्टि पर रची है। तुलसीदास ने राम की बाल-लीला का वर्णन किया है। राम आँगन में खेल रहे हैं । एक कौवा पास आता है, राम उसे आहिस्ता से पकड़ना चाहते हैं । कौवा पीछे फुदक जाता है, अंत में राम थक जाते हैं । परन्तु उन्हें एक तरकीब सूझती है। मिठाई का एक टुकड़ा लेकर राम कौवे के पास जाते हैं। राम टुकड़ा जरा आगे बढ़ाते हैं, कौवा कुछ नजदीक आता है । इस तरह के वर्णन में तुलसीदास कई पृष्ठ खर्च कर जाते हैं । क्योंकि वह कौवा परमेश्वर है। राम की मूर्ति का अंश ही उस कौवे में भी है। राम और कौवे की पहचान मानो परमात्मा से परमात्मा की पहचान है ।

सारांश यह कि इस प्रकार इस सारी सृष्टि में विविध रूपों में-पवित्र नदियों के रूप में, विशाल पर्वतों के रूप में, गम्भीर सागर के रूप में, वात्सल गोमाता के रूप में, उम्दा घोड़े के रूप में, दिलेर सिंह के रूप में, मधुर कोयल के रूप में, सुन्दर मोर के रूप में, स्वच्छ व एकांतप्रिय सर्प के रूप में, पंख फड़फड़ाने वाले कौवे के रूप में, दौड़-धूप करने वाली ज्वालाओं के रूप में, प्रशान्त तारों के रूप में सर्वत्र परमात्मा समाया हुआ है । आँखों को देखने का अभ्यास कराना है । पहले मोटे और सरल अक्षर, फिर बारीक और संयुक्ताक्षर सीखने चाहिए । संयुक्ताक्षर न सीख लेंगे तब तक प्रगति नहीं हो सकती । संयुक्ताक्षर कदम-कदम पर आयेंगे । दुर्जनों में स्थिर परमात्मा को देखना भी सीखना चाहिए । राम समझ में आता है, परन्तु हिरण्यकश्यपु भी जँचना चाहिए । वेद में कहा है-

"नमोनमः स्तेनानां पतये नमोनमः
नमः पुञ्जिष्ठेभ्यो नमो निषादेभ्यः"
"ब्रह्म दासा ब्रह्म दासा
ब्रह्मैवेमे कितवाः ।"

"उन डाकुओं के सरदारों को नमस्कार ! उन क्रूरों को, उन हिंसकों को नमस्कार । ये ठग, ये चोर, ये डाकू सब ब्रह्म ही हैं । इन सबको नमस्कार ।

इसका अर्थ क्या है ? इसका अर्थ यह है कि सरल अक्षर तो सीख गये अब कठिन अक्षरों को भी सीखो । कार्लाइल ने 'विभूति-पूजा' नामक एक पुस्तक लिखी है । उसने उसमें नेपोलियन को भी एक विभूति कहा है । यहाँ शुद्ध परमात्मा नहीं है, मिश्रण है । परन्तु इस परमेश्वर को भी पचा लेना चाहिए । इसीलिए तुलसीदास ने रावण को राम का विरोधी भक्त कहा है । हाँ, इस भक्त के रंग-ढंग जरा भिन्न हैं । आग से जल जाने पर पाँव सूज जाता है, परन्तु सूजन पर सेंक करने से वह ठीक हो जाता है । दोनों जगह तेज एक ही । पर आविर्भाव भिन्न-भिन्न हैं । राम और रावण में आविर्भाव भिन्न-भिन्न दिखाई दिया तो भी वह है एक ही परमेश्वर का ।

स्थूल व सूक्ष्म, सरल और मिश्र, सरल अक्षर व संयुक्ताक्षर सब सीखो और अंत में यह अनुभव करो कि परमेश्वर के सिवाय एक भी स्थान नहीं है । अणु-रेणु में भी वही है; चींटी से लेकर सारे ब्रह्माण्ड तक सर्वत्र परमात्मा ही से व्याप्त है । सबकी एक सी चिंता रखने वाला, कृपालु-ज्ञान मूर्ति, वत्सल, समर्थ, पावन, सुन्दर, परमात्मा हमारे चारों ओर सर्वत्र खड़ा है ।

समस्त ज्ञान का आधार परमात्मा ही है

नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं
न यं वयन्ति समरेऽतमानाः ।
कस्य स्वित्पुत्र इह वक्त्वानि
परो वदात्यवरेण पित्रा।।

-ऋग्० ६-९-२

"मैं ताना या बाना कुछ नहीं जानता तथा प्रयत्न द्वारा जो वस्त्र प्रस्तुत किया जाता है, उसके सम्बन्ध में भी मुझे विशेष ज्ञान नहीं है । इहलौकिक पिता की बातें सुनने वाला पुत्र अन्य लोक का रहस्य कैसे जान सकता है ?"

यह संसार उस परमात्मा की कृति है जो सबका आदि कारण है । जब उसने इच्छा की तभी मूल तत्व में स्फुरण होकर जगत का विकास हुआ । इसलिए किसी मनुष्य की सामर्थ्य नहीं कि वह इस जगत की उत्पत्ति का यथार्थ वर्णन कर सके । स्वयं वेद ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि "प्रकृति के तत्व को कोई नहीं जानता तो उनका वर्णन कौन कर सकता है ? इस सृष्टि की उत्पत्ति कारण क्या है ? यह विभिन्न सृष्टियाँ किस उपादान-कारण से प्रकट हुईं ? देव-गण भी इन सृष्टियों के पश्चात् ही उत्पन्न हुए हैं, तब कौन जानता है कि यह सृष्टि कहाँ से उत्पन्न हुई ? यह विभिन्न सृष्टियाँ किस प्रकार हुईं ? इन्हें किसने रचा ? इन सृष्टियों के जो स्वामी दिव्य धाम में निवास करते हैं वही इनकी रचना के विषय में जानते हैं ? " इसी तथ्य को समझ कर उपर्युक्त मन्त्र में कहा गया है कि इस सृष्टि रूपी वस्त्र का ताना-बाना किस प्रकार ताना गया और फिर वस्त्र को किस प्रकार बुना गया है, इसका वर्णन कर सकना मनुष्य की शक्ति के बाहर है। हम तो अपने नेत्रों से तैयार सामिग्री को ही देख रहे हैं। हमारे पूर्वज भी हमको इसी प्रकार देखते आए हैं तब हम किस प्रकार जानें कि आदि में इसकी रचना किस प्रकार की गई थी? इसका अगर कोई मार्ग है तो यही कि हम सच्चे हृदय से इसके रचयिता परमात्मा की पूजा-उपासना करें, उसके आदेशों का यथार्थ रूप में पालन करें और अपने जीवन को उसके बनाये नियमों के अनुकूल बनायें। ऐसा करने से ही हम आत्मा और प्रकृति के रहस्य को जानकर अपने सच्चे स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ हो सकते हैं। वास्तव में परमात्मा ही इस संसार का धारक है और वही इसमें ओत-प्रोत है। वही सब का स्वामी और सच्चा पिता है। जो कोई बालकोचित सरलता से उस भगवान की गोद में बैठने की अभिलाषा करेगा-उसकी शरण में जाएगा, वही सच्चे ज्ञान का अधिकारी बन सकेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस मन्त्र से दूसरी शिक्षा हमको यह प्राप्त होती है कि परमात्मा के स्वरूप, सृष्टि के रहस्य और प्रकृति के नियमों के विषय में मनुष्य को हठधर्मी-कट्टरता नहीं करनी चाहिए। जब हम इन बातों का निश्चयात्मक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, जबकि बड़े से बड़े ज्ञान और विद्वान को भी इस विषय में अनुमान और अटकल से काम चलाना पड़ता है, जबकि अति प्राचीन मुनियों और आचार्यों के मतों में भी इस सम्बन्ध में पर्याप्त भेद दिखलाई पड़ता है, तो किसी एक मत या सिद्धान्त को लेकर उसी को एकमात्र सत्य बतलाना, उसे दूसरों पर जबरदस्त लादने की कोशिश करना और उसे जो उसे स्वीकार न करे उसे पापी-राक्षस, नारकीय, काफिर आदि कहना, ज्ञानी का नहीं वरन् अज्ञानी होने का चिह्न है। इसका अर्थ यह नहीं कि आप अपने पूर्वजों द्वारा निश्चित किये अथवा अपनी आत्मा से उद्भूत धर्म-मार्ग को न मानें, तदनुसार आचरण न करें, वरन् इसका आशय यह है कि धर्म के विषय में आप उदारता से काम लें, कट्टरपंथी न बने। गीता में भगवान कृष्ण ने जो कहा है, "स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः" उसका भी आशय यही है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने विचार और आत्मा के अनुकूल मार्ग पर चलना उचित है, इसी में कल्याण है और उसे जबरदस्ती या बहका कर मार्गच्युत करना पाप है ।

खेद के साथ कहना पड़ता है कि कितने ही लोगों ने इस सत्य सिद्धान्त को भुलाकर अपने से भिन्न विचार वालों पर आक्षेप करना, गुमराह बतलाना और वश चले तो उनको बलपूर्वक अपने मार्ग से च्युत करना ही महत्वपूर्ण और प्रशंसनीय कार्य समझ लिया है । ईसाई और मुसलमान धर्माध्यक्षों के कारनामे तो इतिहास में प्रसिद्ध ही हैं, जिन्होंने जीते जी जलाने और तलवार का भय दिखाकर करोड़ों मनुष्यों को धर्मच्युत किया । पर हमारे देश में भी ऐसे लोगों की कमी नहीं रही जिन्होंने धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर निर्दोष व्यक्तियों का खून बहाया और आपस में एक दूसरे के सिरों को तोड़ा । अब भी बहुसंख्यक व्यक्ति धार्मिक खंडन-मंडन में ही अपनी विद्या बुद्धि की सार्थकता समझते हैं । पर इससे किसी प्रकार का लाभ होने के बजाय परस्पर में द्वेष-भाव की वृद्धि होती है और संगठन तथा सहकारिता से जो बहुत बड़े-बड़े कार्य होने सम्भव होते हैं उनके मार्ग में कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं ।

यदि शान्त और निष्पक्ष भाव से विचार किया जाये तो धर्म का सम्बन्ध मुख्यतया आत्मा से है । ऊपर रहन-सहन तथा आचार-विचार में तो देश-काल और परिस्थिति के कारण अन्तर पड़ता ही रहता है । उदाहरण के लिए जब रेल नहीं थी तब यात्रा में भी मनुष्य जिस प्रकार शौच, स्नान, ध्यान, पूजा-पाठ के नियमों का निर्वाह करते रहते थे । अब रेल में बीस-तीस घण्टे तक लगातार यात्रा करते रहने पर वैसा कर सकना असम्भव है । इसी प्रकार जब लोग मुख्यतया खेती का ही धंधा करते थे और छोटे गाँवों में रहते तब वे खान-पान की वस्तुओं के सम्बन्ध में जैसी शुद्धता रख सकते थे वह अब कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली जैसे बड़े नगरों में निवास करते हुए और प्रातः ६ बजे ही काम करने के लिए चल देने पर रख सकना सम्भव नहीं है । पर इन बातों के कारण सत्य, न्याय, ईमानदारी, परोपकार, उदारता आदि के व्यवहार में अन्तर नहीं पड़ सकता और ये ही वास्तविक धर्म के लक्षण हैं । अगर हमको सत्कर्म करने का अभ्यास है और धर्म के सच्चे स्वरूप को समझते हैं तो प्रत्येक देश और काल में तदनुसार व्यवहार कर सकते हैं ।

इस वेद मन्त्र में स्पष्ट बतला दिया गया है कि परमात्मा के स्वरूप और सृष्टि के रहस्यों के विषय में सदैव विवाद करते रहना अथवा इस सम्बन्ध में मीन-मेख निकालते रहना कोई विशेष महत्व की बात नहीं है । इन बातों का यथार्थज्ञान मनुष्य को हो सकना प्रायः असम्भव है । यह विषय सदा से विवादास्पद रहे हैं और रहेंगे। केवल वे ही मुट्ठी भर मनुष्य जो आत्मा के साधन और ध्यान द्वारा ज्ञान के अन्तिम शिखर पर पहुँच गये हैं, इस विषय में किसी हद तक निर्भ्रान्त कहे जा सकते हैं, पर उस दर्जे पर पहुँच जाने के बाद वे न तो वाद-विवाद में पड़ सकते हैं और न अपने मत को दूसरों पर लादने की चेष्टा कर सकते हैं। साधारण मनुष्यों के लिए तो सृष्टि का ताना-बाना और उससे उत्पन्न होने वाला वस्त्र (जगत्) हमेशा एक पहेली बना रहेगा। ऐसा व्यक्ति तो कभी इस साधारण-सी समस्या को ही न सुलझा सकेगा कि वृक्ष में से पहले कौन-सी चीज उत्पन्न हुई?" इसलिए ऐसे मनुष्यों के लिए वेद का यह आदेश सर्वथा उचित है कि वे 'सृष्टि के ताने-बाने' के रहस्योद्घाटन के सम्बन्ध में आवश्यकता से अधिक चिन्तित न हों वरन् जिसकी बुद्धि इस सूक्ष्म विषय को जहाँ तक ग्रहण कर सकती है, उसी से सन्तुष्ट रहें। मुख्य बात तो ईश्वरीय आदेश के अनुकूल सदाचार, नीति और चरित्र का पालन करना है । यही सच्चे अर्थ में ईश्वर की पूजा और उपासना है। धर्म-शास्त्रों में जप, तप, ध्यान, भजन की जो विधियाँ बतलाई गई हैं उनका तात्पर्य भी यही उनके द्वारा मनुष्य में भौतिकता के साथ-साथ आध्यात्मिकता का भाव भी उत्पन्न होता रहे और वह धर्म के मुख्य अंगों का पालन करने में समर्थ हो सके ।

ईश्वर भक्ति और प्रेम-साधना का तत्वज्ञान

मोह और प्रेम में वही अन्तर है जो काया और छाया में होता है। छाया तो काया से मिलती-जुलती तो होती है पर उसमें न तो जीवन होता है और न बल । फोटो देखकर आभास तो मूल मनुष्य का होता है पर उस कागज के टुकड़े से प्रयोजन कुछ सिद्ध नहीं होता। मोह में जलन भर होती है पर वह प्रकाश और उल्लास नहीं होता जो प्रेम में पाया जाता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

४.४१ ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ

प्रेम में प्रेमास्पद की प्रसन्नता का ध्यान रखा जाता है । मोह में प्रेमी को अपनी इच्छानुसार चलाने की ललक रहती है । मोह तब प्राप्त होता है जब मनोरथ की पूर्ति होती है, उसमें व्यवधान आने पर खीज और झुँझलाहट का उद्वेग उमड़ता है इसके विपरीत प्रेम में चाहने का-पाने का-कोई प्रश्न ही नहीं रहता । जिसमें प्रेमास्पद को सुविधा और प्रसन्नता अनुभव हो वही सोचना उचित लगता है और वही करने की आकांक्षा उठती है । मोह में प्रेमास्पद पर यह दबाव डाला जाता है कि वह इच्छानुकूल कार्य करे पर प्रेम में अपने को ही उसके संकेतों पर चलने एवं ढलने के लिए उत्साह उमड़ता है ।

मोह अन्धकार में भटकता है । उसमें भय, आशंका, असफलता की सम्भावना बनी रहती है पर प्रेम तो शाश्वत है उसमें सफलता के अतिरिक्त और कहीं कुछ है ही नहीं । प्रेम एकांगी होता है । वह अपने पक्ष में ही परिपूर्ण होता है । दूसरा उसे स्वीकार करता है या अस्वीकार इससे सच्चे प्रेमी की स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता ।

मूर्ति पूजा-प्रेम योग की साधना का ही उत्कृष्ट माध्यम है । भक्त इष्टदेव की प्रतिमा पर अपनी श्रद्धा भक्ति का आरोपण करता है । करता ही चला जाता है । वह यह नहीं देखता कि प्रतिमा ने प्रत्युत्तर दिया या नहीं । मूर्ति सदा मौन ही रहती है, कभी बदले में प्रेम प्रदर्शित नहीं करती तो भी भक्त के मन पर उसकी कोई बुरी प्रतिक्रिया नहीं होती । वह अपने-प्रेम पक्ष को अपने में पूर्ण मानता है और विश्वास करता है कि प्रतिमा का केई प्रत्युत्तर न मिलने पर भी उसकी साधना की प्रगति में कोई अन्तर आने वाला नहीं है । मीरा के 'गिरधर गुपाल' एकांगी थें। पाषाण प्रतिमा में से जीवन्त कृष्ण का सृजन मीरा की एकांगी श्रद्धा ने ही सम्पन्न कर लिया था । एक लक्ष्य की साधना में यह तथ्य और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है ।

प्रेम अपने आप में आनन्द से ओत-प्रोत है । उसकी उपलब्धि के बाद और कुछ पाने योग्य रह ही नहीं जाता । प्रेम अपने अतिरिक्त और कुछ किसी को नहीं देता उसे वह प्रेमी की अहंता से कम कुछ मूल्य भी स्वीकार नहीं करता । कामनाओं के जाल में मोहसक्ति ही उलझी रहती है । जो चाहता है वह प्रेमी नहीं हो सकता । प्रतिदान की यदि कुछ प्रेमी और प्रेमास्पद के बीच गुंजाइश भी है तो इतनी ही कि वह दिया हुआ दु:ख शिरोधार्य करता है और अपने सुखों को निछावर करने से पीछे नहीं हटता । प्रियतम का दिया दु:ख लेकर तपस्वी बन जाता है और उसे अपना सुख देकर त्यागी की पंक्ति में बैठने की पात्रता प्राप्त होती है ।

दिव्य प्रेम की परिणति आत्मदान में होती है । आत्मदान और दिव्य प्रेम को अन्योन्याश्रित समझा जाना चाहिए । परमेश्वर को देने के लिये मनुष्य के पास पवित्र प्रेम के अतिरिक्त और कुछ अपनी वस्तु है भी नहीं । पदार्थ तो प्रकृति के हैं, प्रकृति परमेश्वर की । कोई वस्तु ऐसी नहीं जिसे हम अपनी कह सकें और परमेश्वर को अर्पण कर सकें । यदि प्रेम रहित मन:स्थिति में अपने वैभव का थोड़ा-सा अंश भी दें तो उतने से परमेश्वर को सन्तोष नहीं हो सकता । प्रियतम की तृप्ति आत्मदान से ओत-प्रोत दिव्य प्रेम के बिना हो ही नहीं सकती । जहाँ प्रेम और आत्मदान के साथ समग्र वैभव भी जुड़ा होता है । वहाँ आत्मदानी का ऐसा कुछ बनता ही नहीं जो उसने प्रियतम के चरणों पर अर्पण न कर दिया हो, आत्मदानी के धन, यश, वैभव, विलास, मन-मस्तिष्क आदि का उपभोग परमेश्वर के लिए उसके संकेतों पर निछावर करने के लिए ही सुरक्षित रहता है इससे कम में न प्रेम की पूर्णता होती है और न प्रेमास्पद को सन्तोष ।

दिव्य-प्रेम अनवरत होता है । उसके लिए अलग से समय निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं पड़ती । जिस प्रकार अपने शरीर मन का क्रिया-कलाप हर घड़ी ध्यान में रहता है इसी प्रकार प्रेम भी रोम-रोम में समाया रहता है, उसी के लिये सारी क्रियाएँ होती हैं, उसी को प्रसन्न करने के लिये मस्तिष्क सोचता है । ऐसी दशा में हर घड़ी उसी का स्मरण-भजन होता रहता है । सच्चा स्मरण वही है जिसमें और सब कुछ विस्मरण हो जाय, यहाँ तक कि अपना आपा भी । जीवन, मरण, व्यय और संग्रह सब कुछ जिसमें प्रियतम के लिये होता रहे, उसी को समर्पित जीवन कह सकते हैं । मोह से निवृत्ति पाने के लिए दिव्य प्रेम की आवश्यकता है । जहाँ सधा प्रेम होगा, वहाँ मोह नहीं रहेगा और जहाँ मोह का साम्राज्य होगा, वहाँ प्रेम का प्रकाश उदय न हो सकेगा ।

प्रेमी न तो लोभ या भय दिखाकर प्रेमास्पद को आकर्षित करता है और न स्वयं इनके कारण उसकी ओर आकर्षित होता है । ईश्वर हमारी मनोकामना पूर्ण करें अथवा उसका अनुग्रह पाप कर्मों के दण्ड से बचा दे, इस प्रकार भय और लोभ के कारण की जाने वाली भक्ति उपहासास्पद है उसमें वह उत्कृष्टता कहाँ रह सकती है जिससे आत्मा का अजस्र आनन्द और सन्तोष की उपलब्धि होती है । स्वर्ग का लोभ और नरक का भय भी जिसे प्रभावित न करे-जो अपने आप में सरल स्वाभाविक हो-आत्मोल्लास ही जिसका लक्ष्य हो दिव्य प्रेम उसी को कहा जाना चाहिए । जिसमें सिद्धियों की कामना हो उसे भी भक्ति की संज्ञा में नहीं गिनना चाहिए । प्रेम के उदय के साथ-साथ मिलन की जो उत्कंठा प्रबल होती है उसे द्वैत से अद्वैत में परिवर्तित होने की भावनात्मक तितिक्षा और तप साधना ही कहना चाहिए ।

प्रेम का अभ्यास एक बिन्दु से आरम्भ किया जा सकता है पर उतने तक वह सीमित नहीं रह सकता, इष्टदेव को लक्ष्य बनाकर उसका शुभारम्भ, श्रीगणेश किया जा सकता है । किसी व्यक्ति विशेष को भी प्रेमास्पद वरण किया जा सकता है । पर दिव्य प्रेम उतनी छोटी परिधि में सीमाबद्ध नहीं रह सकता । बत्ती जलाकर प्रकाश उत्पन्न करने की प्रक्रिया सही है पर प्रकाश को बत्ती में ही सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता । वह समीपवर्ती क्षेत्र में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

फैले बिना-बिखरे बिना रह ही नहीं सकता । प्रेम असीम है। जो उसकी साधना करेगा वह किसी व्यक्ति या देवता तक अपने भाव विस्तार को सीमाबद्ध नहीं कर सकता । चन्दन वृक्ष से उद्भूत गन्ध की तरह प्रेम भावना निरन्तर विस्तृत होती रहती है और उनका रसास्वादन करने का उस क्षेत्र के प्रत्येक प्राणधारी को अवसर मिलता है । प्रेम का विस्तार सहृदयता, सज्जनता, सहानुभूति, उदारता, करुणा, सेवा और आत्मीयता की सद्भावनाओं में विस्तृत होता चला जाता है। प्रेमी की सहज प्रवृत्ति यह होती है कि दूसरों के दुःखों को बाँट लेने के लिए और अपने सुखों को वितरित करने के लिए आतुरता एवं अनुकूलता अनुभव करे ।

परमेश्वर किसी व्यक्ति का नाम नहीं है। न उसका कोई विशेष रूप स्थान है। यह विश्व-ब्रह्माण्ड ही परमात्मा है। आत्माओं का समन्वित स्वरूप ही परमात्मा कहा जाता है। उसी से दिव्य प्रेम किया जा सकता है। समष्टि के अनुदान से ही व्यक्ति का जन्म और विकास होता है इसलिए उसी को पालन कर्त्ता माना जाता है। समाज के स्नेह-सहयोग में ईश्वर की महिमा झाँकती हुई देखी जाती है और उस समष्टि आत्मा को प्रेमास्पद मानकर ही सार्थक भक्ति का परिचय दिया जाता है । स्वार्थ को परमार्थ पर उत्कर्ष करें। समाज की आवश्यकताओं पर अपनी विभूतियाँ निछावर करने की तैयारी करें तो समझना चाहिए दिव्य प्रेम को चरितार्थ करने की प्रक्रिया विदित हो गई । परमेश्वर की भक्ति कल्पना जगत में विचरण करने वाली भावुकता नहीं वरन् वह कठोर सच्चाई है जिसमें मनुष्य व्यक्तिवाद का परित्याग कर समाजवादी बनता है । यही है ईश्वर भक्ति और प्रेम साधना का तत्वज्ञान ।

भगवान को प्राप्त करने का सुनिश्चित मार्ग

भगवान को प्राप्त करने में दो बड़े व्यवधान हैं । इन्हें पार कर लिया जाय तो समझना चाहिए, कि मंजिल पार हो गयी । गीता में भगवान ने कहा है-

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धि निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ।।

अर्थात्-"मुझ में अपना मन रख, अपनी बुद्धि को भी मुझ में सँजो । इन दो कार्यों को कर लेने के उपरान्त हे पार्थ ! तू मुझ में ही समा जाएगा, इसमें सन्देह नहीं है ।"

मन और बुद्धि ये दो वैतरणियाँ ऐसी हैं जिन्हें लोग सामान्यतया पार नहीं कर पाते । इन्हीं में डूब जाते हैं । पार ही न कर पाये तो भगवान तक पहुँचना कैसे हो ? यह कैसे होता है, इसे समझने के लिये मानव मनोविज्ञान व उसमें घुस-पैठ करने वाली विकृतियों पर दृष्टि डालनी होगी ।

असंस्कृत मन सतत् वासना, तृष्णा और अहन्ता में ही डुबकी मारता रहता है । इन्द्रियाँ उसे तरह-तरह के रस लोभों में ललचाती रहती हैं । इसके अतिरिक्त मनोविकार उस पर छाये रहते हैं । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर ये दुर्गुण उसके स्वभाव हैं । जन्म-जन्मान्तरों की अभ्यस्त पशु-प्रवृत्तियाँ एक-एक करके उछलती-मचकती रहती हैं । इनमें उसकी चंचलता हर घड़ी बनी रहती है । क्षण भर के लिये स्थिरता नहीं मिलती । कामनाएँ असीम हैं । उनकी पूर्ति का प्रयास सफल नहीं होता । आग में ईंधन डालने से वह और भी अधिक भड़कती है । पानी मिले तो बुझने की बात बने । पर वासनाएँ तो तेल वाले ईंधन का काम करती हैं । जिस कामना की पूर्ति के लिये प्रयत्न किया गया वह पूरी होने के पूर्व ही नई कामना जग पड़ती है । जब तक अभाव है तब तक ललक-लिप्सा है । यह अभाव सतत् बना रहता है । क्योंकि जैसे ही उसकी तृप्ति का सुयोग बनता है, उससे पूर्व ही नई उपज उठकर खड़ी हो जाती है । धन, यश, पद, बल आदि में से एक भी ऐसा नहीं, जिसकी सीमा-मर्यादा हो । अमुक मात्रा में अमुक-अमुक वस्तुएँ मिल जाएँगी तो मन भर जाएगा ऐसा कहाँ होता है ।

पूर्व कल्पना की आकांक्षा जब तक पूरी नहीं होती है, तब तक उसके लिए ललक बनी रहती है । जैसे ही वह पूरी होने के समीप आती है उससे पूर्व ही नई इच्छा इससे भी बड़ी जग पड़ती है । यह सिलसिला चलता ही रहता है । यह एक नहीं, हर व्यक्ति के साथ ही गुजरने वाला सिलसिला है । वस्तुतः इस संसार में आज तक किसी की भी मनोकामना पूर्ण नहीं हुई । आज जितना चाहा गया है, कल उससे भी बड़ी इच्छा सामने होगी । यह तो शेखचिल्ली के स्वप्न की कथा प्रसंग के समान है अथवा सर्वमनोकामना सिद्धि करने वाले कल्पवृक्ष की कथा गाथा की एक झलकी। जब तक इच्छा पूरी नहीं होती तब तक अभावजन्य दुःख बना रहता है । जैसे ही इच्छित सामग्री मिलती है, वैसे ही उसकी रखवाली का क्या उपयोग करना है, कहाँ करना है, इसकी योजना बनाने की हैरानी आ खड़ी होती है । यह जंजाल निपट नहीं पाता कि इससे अधिक पाने की चाहना उपज पड़ती है । इस प्रकार मन को कभी चैन नहीं । हर घड़ी वह भूत, पिशाच की तरह अतृप्त ही बना रहता है । ऐसा अशान्त-अस्थिर, मन लेकर कोई शान्ति के सागर भगवान की शरण में बस सके, यह सम्भव नहीं ।

इसके लिये प्रथम मंजिल यही पार करनी पड़ती है कि मन को तृष्णारहित किया जाय । शरीर यात्रा के लिए जितना आवश्यक है, उतना ही यथेष्ट मानकर उतने में ही सन्तोष किया जाय । औसत नागरिक को जितने में काम चलाना पड़ता है, अन्न-वस्त्र और निवास की न्यूनतम आवश्यकताओं को जितने में पूरा किया जाता है, उतने में भी पूरा किया जाय । सन्तोष सबसे बड़ा धन है । भगवत् भक्त को अपरिग्रही बनना पड़ता है । संग्रह से मुँह मोड़ना पड़ता है । ललक और लिप्सा को शत्रुवत मानना होता है । वासना, तृष्णा और अहन्ता को प्रारम्भ से ही त्यागना पड़ता है । इतना किए बिना मन की एकाग्रता सम्भव नहीं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एकाग्रता बिना-निष्ठा कहाँ ? जहाँ एकनिष्ठा नहीं, वहाँ भगवान का सान्निध्य सम्भव नहीं । इसीलिए कठोपनिषद् कहता है- **तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा** । (४:८) अर्थात्- "इस ज्ञान (परमात्मा सम्बन्धी) का आधार तप, दम, एवं निस्वार्थ कर्म है ।" आगे कठोपनिषद् कहता है-(१,३,१२) "**दृश्यते त्वग्र्यया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः**-"जो सूक्ष्म सत्य को देख सकते हैं, उन साधकों के एकाग्र मन अवश्य ही आत्मा का साक्षात्कार कर सकते हैं ।"

श्रुति के निर्देशानुसार इसी कारण भगवत् भक्तों को साधु और ब्राह्मण की तरह रहना पड़ता है । लक्ष्य दोनों का ही एक है । उसकी पूर्ति के लिए मन ही सबसे बड़ा औजार है । उसे खाली रखना होता है । तभी तो आदर्शवादी उत्कृष्ट जीवन जीने के लिए आवश्यक कार्य करने का अवसर मिलता है । मन को वश में करने, एकाग्र चित्त होने का तात्पर्य इतना ही है कि शरीर यात्रा के लिए जितने न्यूनतम में गुजारा हो सकता है, उतने से ही गुजारा किया जाय । आकांक्षाओं का पोटला सिर पर न लादा जाय। मन को बस में करने का यही एक तरीका है । जिसकी महत्वाकांक्षाएँ बढ़ी-चढ़ी हैं, वह मन को न तो एकाग्र कर सकता है और न ही एकनिष्ठ । कोई न कोई कामना उठती-फुदकती रहेगी ।

मन के उपरान्त दूसरा आधार है-बुद्धि । बुद्धि को निर्णय करना पड़ता है कि क्या करे, क्या न करे ? इसके लिए उसे इर्द-गिर्द के वातावरण की साक्षी चाहिए, जो चारों ओर हो रहा है । जो समीपवर्ती लोग कर रहे हैं उसी को बुद्धि सही मान लेती है । स्वतन्त्र निर्णय करने के लिए बुद्धि को बहुत साहसी होना चाहिए । बिना बहुमत की साक्षी के एकाकी निर्णय की अकेले चलने की साहसिकता होनी चाहिए । वैसी किन्हीं विरलों में ही होती है अन्यथा लोग अन्धी भेड़ों की तरह एक दूसरे की नकल करते रहते हैं । पड़ोसी नशा पीते हैं तो अपनी बुद्धि भी उसी का अनुकरण करती है । विवेक के अभाव में यह जाँच-पड़ताल नहीं हो पाती कि यह लोग इस दुर्व्यसन द्वारा अपने शरीर, धन, यश, घर और सन्तान का कितना अहित कर रहे हैं । ऐसी दशा में हमें उनकी नकल क्यों करनी चाहिए । कुरीतियाँ के अनुकरण में हर दृष्टि से हानि ही हानि है । विवेक कहता है कि जिनका अनुकरण करने को जी कर रहा है, उसने गलत मार्ग अपनाकर हानि ही उठाई है । ऐसी दशा में स्वतन्त्र प्रखर बुद्धि का अवलम्बन क्यों न लिया जाय ? जो उचित है उसी को क्यों न अपनाया जाय ?

आज ऐसी प्रखर बुद्धि वालों का अभाव है । कुमार्ग पर चलकर तुरन्त लाभ उठाने वालों की ही संसार में भरमार है । बस, वे ही सब कुछ दीखते हैं । वे ही गवाह हैं, जिनके आधार पर बुद्धि फैसला करती है । अपनी भ्रमग्रस्त बुद्धि झूठे गवाहों की उपस्थिति में वैसा ही निर्णय भी लेती है अन्धी भेड़ें एक के पीछे एक चलती हैं और खड्डे में गिरती जाती हैं । यही स्थिति अपनी बुद्धि की भी है । स्वतन्त्र बुद्धि से विवेकपूर्ण निर्णय लेने वाले और जो उचित है, उसी को अपनाने वाले इस दुनिया में कम ही हैं, जिन्हें आत्मा और परमात्मा दो की गवाहियाँ ही पर्याप्त होती हैं । जिन्हें महापुरुषों का अपनाया हुआ मार्ग ही उचित प्रतीत होता है, भले ही उस उँगलियों पर गिनने लायक व्यक्ति ही चले हों, ऐसी प्रखर बुद्धि वाले इस संसार में कहाँ हैं ।

बुद्धिमान उन्हें कहते हैं जो उचित और अनुचित का सही निर्णय कर सकें । ऐसी प्रखर बुद्धि को मेधा, प्रज्ञा एवं विवेक कहते हैं । जिन्हें यह प्राप्त है, वे सच्चे अर्थों में कहे जाने वाले बुद्धिमान भगवान तक सरलतापूर्वक पहुँच जाते हैं, अन्यथा वासना युक्त मन की तरह अन्धानुकरण करने वाली, बहुमत को ही सब कुछ मानने वाली बुद्धि ही एक खाई-खन्दक है । ऐसे लोग बुद्धिमान हुए भी वस्तुतः होते मूर्ख ही हैं ।

कामनाग्रस्त मन और भ्रमग्रस्त बुद्धि जिन्हें मिली है, वे इन्हीं दो जाल-जंजालों में उलझे-फँसे रहकर चिड़िया, मछली, हिरन की तरह अपनी दुर्गति कराते रहते हैं । वैसी ही दुर्गति मलीन मन और दुर्बुद्धिग्रस्तों की होती है । इन दोनों को भगवान के बारे में सही सोचने का अवसर तक नहीं मिलता, फिर उसकी उपलब्धि कैसे हो ? वे पूजा-पत्री, उपहार, मनुहार के खेल-खिलवाड़ करके भगवान को बहकाने-फुसलाने का प्रयत्न करते रहते हैं और उस विडम्बना को करते रहने पर भी खाली हाथ रहते हैं।

गीता में भगवान की उक्ति है कि मुझे निश्चित रूप से प्राप्त करने वालों को मन मेरी गोदी में रखना चाहिए । बुद्धि मेरे आँचल में डालनी चाहिए । यह दो काम कर लेने के उपरान्त मुझे प्राप्त कर सकना निश्चित रूप से सम्भव हो जाता है । जिसका मन भटकता है, जिनकी बुद्धि भ्रमित है, वे कर्मकाण्डों के बलबूते भगवान को प्राप्त कर सकें ऐसा कदापि सम्भव नहीं हो सकता । जिनका चिन्तन, चरित्र और व्यवहार आदर्श से समाविष्ट नहीं है, जिन्हें केवल क्रिया-कृत्य ही सब कुछ प्रतीत होते हैं, वे मृगतृष्णा में भटकते हैं । भगवान इतने भोले नहीं हैं कि वे मनुष्य का जीवन क्रम न देखें, केवल नाम-जप, धूप-दीप, नैवेद्य-अक्षत मात्र से प्रसन्न होकर किसी को अपना भक्त समझ लें वह सद्गति प्रदान करें जो सच्चे भक्तों को प्राप्त होती है । गीता में कही हुई भगवान की उक्ति ही उन्हें प्राप्त करने का सच्चा मार्ग है । जो मन और बुद्धि को उन्हें समर्पित करते हैं, उनका स्वल्प कर्मकाण्ड भी निश्चित रूप से उन्हें लक्ष्य की प्राप्ति करा देता है ।

भगवान को किससे देखें ?

भगवान हैं और दिखाई देते हैं यह एक सर्वमान्य बात है । अनेकों ने भगवान के दर्शन किये हैं उनकी गाथाएँ भी इतिहास और पुराणों द्वारा जानी जा सकती हैं लेकिन अभी तक हमें ऐसे किसी भी व्यक्ति के दर्शन नहीं हुए जो यह बतला सके कि हमने भगवान को देखा है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सांसारिक वस्तुओं के साथ सम्पर्क स्थापित करने का साधन हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ हैं-आँख, कान, नाक, जिह्वा तथा त्वचा द्वारा हम जो ज्ञान प्राप्त करते हैं वह भौतिक ही होती है इस ज्ञान का सम्बन्ध परमात्मा के साथ नहीं रहता । जबकि कहा यह जाता है कि भगवान हर जगह हैं, हर वस्तु में हैं तब फिर जिन चीजों का इस अपने भौतिक उपकरणों द्वारा ज्ञान प्राप्त करते हैं क्यों नहीं उनके द्वारा भगवान का साक्षात्कार कर पाते । इसका अर्थ है भगवान को देखने की जो विशिष्ट इन्द्रिय है वह अभी तक मूर्छित पड़ी हुई है और लोगों को उसको जाग्रत करने का अनुभव नहीं है अथवा उसकी उन्हें जानकारी नहीं है ।

यह सभी जानते हैं कि आँख से रूप, कान से शब्द, तवक् से स्पर्श, नासिका से गन्ध एवं जिह्वा से स्वाद का साक्षात्कार होता है । पर भगवान रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श से अतीत हैं इसलिए ये इन्द्रियाँ भगवान का साक्षात्कार करने में समर्थ नहीं हो सकतीं । इन्द्रियों से अतीत-मन-बुद्धि चित्त और अहंकार हैं, पर इनसे भी भगवान को जाना या समझा नहीं जा सकता । तब फिर कौन सा तत्व ऐसा है जिसके द्वारा भगवान को समझा जा सकता है ।

यह आत्मा जो कि जीवरूप से इस शरीर में प्रविष्ट है, परमात्मा का ही तो अंश है । कर्म और संस्कारों के कारण वासना द्वारा इस पर शरीर रूपी पंच भौतिक खोल चढ़ा हुआ है । यही कारण है कि उसकी अपरिमेय शक्तियाँ परिमित हो गई हैं और परिमित शक्ति होने के कारण अपरिमेय शक्तियों को समझना तथा जानना किसी भी रूप में सम्भव नहीं हो सकता, इसलिए अपरिमेय को जानने के लिए परिमेय बनी रहने वाली अपरिमेय शक्ति को बन्धनहीन करना पड़ता है ।

असीम को सीमित करने का कारण वासना है। वासना कर्म समूह से आरम्भ होती है । कर्म जहाँ बन्धन के कारण हैं वहाँ वे ही बन्धन मुक्त भी करते हैं । इसलिए जो आत्मा जीवात्मा की शक्ल लेकर सीमित हो गया है और जिसके द्वारा असीम ससीम हो गया है वह एकमात्र वासना जाल है। कर्म शुद्धि से वासना जाल छिन्न-भिन्न किया जाता है और कर्म शुद्धि की आवश्यकता होती है। योग दर्शन के यम-नियम वासनाओं से मुक्ति दिलाने के लिए तैयारी कराते हैं ।

वासना मुक्त जीवात्मा परमात्मा को देखने की शक्ति पाता है। इसलिए जब तक व्यक्ति वासना मुक्त नहीं हो जाता तब तक वह परमात्मा को देख ही नहीं सकता । वह सिर्फ वासना और वासनाओं के विभिन्न रूप, रंग आकार-प्रकार को ही देखता है। अतः परमात्मा को देखने के लिए जीवात्मा रूप मूल तत्व को परिष्कृत कर लेने की आवश्यकता है अर्थात् वासना से मुक्ति पाने की साधना करनी चाहिए। हमेशा स्मरण रखने की बात यही है कि जब तक वासना रहेंगी भगवान दिखाई नहीं देंगे। जिन्हें भगवान के दर्शन करने हैं, उन्हें अपनी वासनाएँ दूर करनी चाहिए ।

उस परम ज्योति को किससे जानें ?

आज के वैज्ञानिकों की यह मान्यता है कि विश्व की मूलसत्ता अज्ञेय है और यह दुनिया ऐसी अज्ञेय, अव्याख्येय, अविश्लेष्य, अपरीक्ष्य तरंगों का संघात है, जिनके बारे में हमारी जानकारी सीमित है । वैज्ञानिकों के अनुसार यथार्थ जगत क्या है ? वह रंगरहित, ध्वनिरहित, अव्याख्येय 'कास्मास' है । प्रतीकों का एक विशाल कंकाल मनुष्य खड़ा करता है और उनके ही प्रक्षेपण को यथार्थ जगत नाम दे देता है ।

'गाइड टू फिलासफी' के लेखक दार्शनिक जोड़ के अनुसार-"मैटर दिक् तथा काल में, स्पेश एण्ड टाइम में विस्तृत एक रस्सी की ऐंठन की तरह है । वह एक इलेक्ट्रानी कुकुरमुत्ता है । अनन्त सम्भावनाओं की एक तरंगावली है, जो कुछ नहीं जैसी है । पदार्थ वस्तुतः दिक्काल में घट रही घटनाओं की एक व्यवस्था है, जिसकी विशेषताएँ मात्र गणितीय प्रतीकों में संकलित की जा सकती हैं ।"

इसीलिए तो महान गणितज्ञ एवं खगोलवेत्ता सर जेम्स जीन्स ने कहा है-"यह जगत महान यन्त्र नहीं, महान विचार ही है, ऐसा अब लगता है । सापेक्षवाद, निरन्तरता, न्यूनतम अवकाश वक्र, आकाश यानि कर्ब्डस्पेस, सम्भावना-तरंगें, अनिश्चितता आदि वैज्ञानिक अवधारणाएँ वस्तुतः मन की सृष्टि अधिक है । मन और पदार्थ का पुराना द्वन्द्व लुप्त हो चला है ।"

भौतिकी के समस्त प्रेक्षण एवं अन्वेषण दिक्काल की टाइम एण्ड स्पेस की ही सीमारेखा के भीतर सम्भव है और ये 'टाइम' और 'स्पेस' क्या है? भौतिकविद् वाट्सन के शब्दों में "टाइम एण्ड स्पेस एण्ड मेनी अदर क्वान्टिटी सच एज नम्बर, वेलॉसिटी, पोजीशन, टेम्परेचर, एट्सेट्रा आरनॉट थिंग्ज, अर्थात् 'काल, दिक और दूसरे परिमाण जैसे संख्या, वेग, स्थिति, तापमान आदि वस्तुएँ नहीं हैं ।"

कार्बेथ रीड ने अपनी किताब 'लॉजिक डिडक्टिव एण्ड इन्डक्टिव' में कहा है-"वी हेव कान्सेप्ट्स रिप्रजेन्टिंग नॅथिंग, व्हिच हेव परहेप्स बीन जनरेटेड बाय द मिअर फोर्स आफ ग्रामेटिकल निगेशन ।"

अर्थात् हमारे पास ऐसी अवधारणाएँ हैं जो वस्तुतः किसी भी वस्तु सत्ता की प्रतीक-प्रतिनिधि नहीं हैं, जो सम्भवतः गणितीय निषेधों की शक्ति से निष्पन्न हुई हैं ।"

डॉ० डब्लू कार ने कहा है- 'टाइम' और 'स्पेस' न तो 'कन्टेनर' हैं, न ही 'कन्टेन्ट' वे तो मात्र 'वेरिएन्ट' हैं । इसी बात को मिन्कोवस्की ने अधिक स्पष्टता से कहा है-दिक् तथा काल की स्वयं में कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है । वे मात्र छायाएँ हैं ।

आज 'सापेक्षता' का सिद्धान्त विज्ञान में सर्वाधिक प्रतिष्ठित है । उसके अनुसार सब परिदृश्यमान एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अनुभूयमान जागतिक सत्य मात्र आपेक्षिक सत्य है । आकार, गति आदि की अवस्था में से बाह्य वस्तु का ज्ञान प्रत्येक दर्शक के निकट भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है और हो सकता है । तत्व जो सबके लिए सत्य होना चाहिए । इसका निरूपण कैसे हो ?

स्पष्ट है कि इस स्थिति में पहुँचकर जब मूर्धन्य विज्ञान-मनीषियों की ही वाणी लड़खड़ाने लगती है और वे गोल-गोल पहेलियाँ जैसी बुझाने लगते हैं, तब साधारण अध्येता तो इन सबका कोई अर्थ ही नहीं समझ सकता ।

भौतिक-विज्ञान की सत्यशोधन की क्षमता सीमित है । एक स्तर तक सूक्ष्म-सूक्ष्मतर प्रेरणा करते चले जाने के बाद वह यह बताने लगता है कि इससे आगे की सूक्ष्मता की पकड़ वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा सम्भव नहीं । समस्त विज्ञान-अन्वेषण वस्तुतः ज्योति-साधना कहे जा सकते हैं। विचारों की ज्योति की सीमा आपेक्षिकता सिद्धान्त एवं अनुभूति तक है। विचार भी उपकरण ही हैं। द्रव्य-उपकरणों की ज्योति प्रकाशन-सीमा सूक्ष्मतर तरंगों या रश्मियों तक है । दोनों ही प्रकार की सत्यानुभूतियाँ मानवी-चेतना में सन्निहित ज्योति द्वारा अनुभवगम्य हैं जिन्हें (१) गणितीय-ज्योति या विज्ञान-ज्योति एवं (२) विचार-ज्योति कहा जा सकता है। किन्तु परम सत्य तो ज्योतिषयों की भी ज्योति है । उसे किस ज्योति द्वारा जाना जाय ? समस्त ज्ञान विज्ञाता कौन होते हैं। किन्तु स्वयं विज्ञाता को किसके द्वारा जाना जाय ? अणु और महत्, सूक्ष्म और वृहत् दोनों ही दिशाओं में मानवीय ज्ञान सीमित है, जबकि परम सत्य की दोनों में से किसी ओर सीमा नहीं । श्वेताश्वतर उपनिषद् (३।२०) के अनुसार वह 'अणोरणीयान्महतो महीयान्' है :-

"न तत्र सूर्यो भाति, न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।"

-श्वेता० उप० ६।१४

अर्थात्- वहाँ न सूर्य-प्रकाश की पहुँच है, न चन्द्र और तारों की, न विद्युत की, तब अग्नि या मानवीय सामर्थ्य की उत्पादित ज्योति-रश्मि उस तक कैसे पहुँचेगी ?

वृहदारण्यक उपनिषद में जनक याज्ञवल्क्य से पूछते हैं-हे याज्ञवल्क्य, आदित्य, चन्द्रमा अग्नि और वाक् के भी गये मनुष्य किस ज्योति से ज्योतित रहता है ।

याज्ञवल्क्य ने कहा है-

"आत्मनैवायं ज्योतिषास्ते पल्ययते, कर्म कुरुते विपरेतीति ।"

-बृह० उ० ४।३।६

अर्थात्- आत्मा ही वह ज्योति है, उसी के द्वारा व्यक्ति स्थिर होता है, गतिशील रहता, क्रियाशील रहता एवं वापस लौट आता है ।

यह आत्मा कौन है ?

"योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः स समानः सन्नुभौ लोकावनुसञ्चरति, ध्यायतीव, लेलायतीव स हि स्वप्नो भूत्वेमं लोकमतिक्रामति मृत्यो रूपाणि ।"

-बृहद० ४।३।७

अर्थात् यह जो प्राणों में बुद्धि वृत्तियों के भीतर रहने वाला विज्ञानमय ज्योतिस्वरूप पुरुष है, वह समान रूप से लोक-परलोक में संचार में समर्थ है । वही मानो चिन्तन एवं चेष्टा करता है । वही लोक का अतिक्रमण करता है और मृत्यु के रूपों का भी वह अतिक्रमण करता है ।

मुण्डकोपनिषद् में स्पष्ट कहा गया है कि वह आत्मा ज्योतियों की भी ज्योति है:-

"तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ।।

- मुण्डको० २/२/९

अर्थात् वह शुभ ज्योतियों की भी ज्योति ही आत्मवेत्ताओं द्वारा जानने योग्य है ।

वह ज्योति ही शेष समस्त बोध की, प्रकाश की, विज्ञाता है । उसे किस विज्ञान से जानें-

"विज्ञातारमरे केन विजानीयात्।"

-बृह० उ० २।४।१४

अर्थात्- भला उस विज्ञाता को किसके द्वारा जाना जाय ?

भौतिकी की साधनभूत ज्योति उस ज्योतियों की ज्योति चेतना को जानने में असमर्थ है । कोई भी अन्य ज्योति उसका दर्शन नहीं करा सकती । तपः शुद्ध चेतना में वह ज्योति स्वतः ही प्रकट होती है । यों, वह विद्यमान तो सदैव है । किन्तु जब तक बुद्धि तत्व की क्रियाओं को ही आत्मानुभूति समझा जाता है, तब तक वह अप्रकट ही रहता है । बुद्धितत्व को उस मूल चेतना से ही जोड़ देने पर, उसके समक्ष समर्पण कर देने पर, उससे पूर्ण तादात्म्य स्थापित करने पर ही वे चेतना बुद्धि को अपने आलोक से प्रकाशित कर देती है, स्वयं को प्रकट कर देती है । यह स्थिति सहसा नहीं आती । उस हेतु निरन्तर साधना करनी होती है । उसी साधना का नाम योग-साधना है । उचित उपाय करने से ही परम सत्य का साक्षात्कार सम्भव होता है ।

विराट सत्ता की दर्शन-झाँकी

आँखों से प्रकृति पदार्थ दीखते हैं । इन्द्रियों द्वारा भी वे अनुभव किये जाते हैं । ईश्वर चेतना है । वह निराकार होती है । साकार तो उसका कलेवर भर दीखता है । ईश्वर का दृश्य स्वरूप यह विराट ब्रह्माण्ड है । अर्जुन, यशोदा, काकभुशुण्डि, कौशल्या आदि का मन जब ईश्वर दर्शन के लिए व्याकुल हुआ तो उन्हें इसी रूप में दिव्य दर्शन कराये गये । इसके लिए दिव्य नेत्र दिये गये । कारण कि चर्म चक्षुओं से तो विराट विश्व को एकबारगी नहीं देखा जा सकता । आँखों की देख सकने की परिधि तो बहुत छोटी है फिर सुविस्तृत को कैसे देखा जाय ?

जिन्हें पूर्व कथानकों के अनुरूप दर्शन ही भक्ति भावना की सफलता का आधार दिखाई पड़ता है, उनके लिए प्रतिमा प्रतीकों का निर्धारण किया गया है । यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रतिमाएँ भी मनुष्य के अपने कलेवर में नर या नारी जैसी होती हैं । जब व्यापक चेतना की सत्ता तो सभी प्राणियों में समान रूप से विद्यमान है, मात्र शरीरधारी आकार ही चाहिए तो फिर भगवान की आकृति किसी भी प्राणी के रूप में हो सकती है । पर यह परिकल्पना रास नहीं आती और मनुष्य शरीर अपना अभ्यास होने के कारण अधिक मनभावन प्रतीत होता है । इसलिए प्रतिमाओं में मनुष्याकृति को ही प्रमुखता दी गई है । यों तत्वदर्शियों ने मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह आदि को भी भगवान के अवतार ही बताकर प्राणि मात्र में दिव्य सत्ता का दर्शन करने का संकेत किया है । पर वह प्रतीक सब में प्रतिष्ठित न हो सकी ।

देवी-देवताओं के वाहनों के रूप में पशु-पक्षियों का चित्रण किया गया और समझाने का प्रयत्न हुआ कि प्राणी मात्र में भी देव सत्ता का आभार टिका हुआ माना जा सकता है । पर वह भी सम्मानास्पद नहीं बन सका, इष्ट देव का स्थान न पा सका । चित्रों में, प्रतिमाओं में देवी-देवताओं के वाहन पशु-पक्षी हैं पर उन्हें सेवक भर की मान्यता मिल सकी । आराध्य पद वे न पा सके । यद्यपि निर्धारण कर्त्ताओं का अभिप्राय यही था कि प्राणिमात्र में ईश्वर की झाँकी की जाय और उनके साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जाय जैसा कि दिव्य संरचना के हर घटक के साथ किया जाना उचित है । शिव का नन्दी, सरस्वती का हंस, लक्ष्मी का हाथी, दुर्गा का सिंह तो प्राय: चित्रण में आते हैं । पर नवग्रहों तथा अन्य देव समुदाय के वाहनों की उपेक्षा होती है । भैरव के वाहन कुत्ते को, शीतला के वाहन गधे को कौन पूछता है ? कौन पूजता है ?

भगवान की प्रतिमा एवं उनके प्रतीक मानने में भी निर्माताओं ने अपने मनोनुरूप ही उनकी आकृति को विनिर्मित किया है । दक्षिणी भारत की, उत्तर भारत की, असम, मणिपुर की देव प्रतिमा वहाँ के निवासियों जैसे चेहरे की होती हैं । इससे स्पष्ट है कि ईश्वर की कोई नियत छवि नहीं है । वह भक्तजनों की मान्यता के अनुरूप बनती-बदलती रहती है । कृष्ण, शिव आदि के स्वरूप किशोर या नवयौवन वाली वय के हैं । यदि वे सचमुच मनुष्य आकृति में विकसित हुए होते तो उनका शरीर बालक, किशोरों, वृद्धों जैसा भी देखने को मिलता । पर ऐसा कहीं देखा नहीं जाता । न वैसे चित्र ही मिलते हैं और न मूर्तियाँ हीं । इससे स्पष्ट है कि प्रतिमाएँ अथवा तस्वीरें ईश्वर के वास्तविक स्वरूप की नहीं हैं, वरन् उन्हें साधकों ने अपनी प्रिय परिस्थिति के अनुरूप गढ़ा है । उन्हें वस्तुस्थिति का परिचायक नहीं माना जाना चाहिए ।

भगवान को या देवताओं को, विशिष्टता और विचित्रता युक्त प्रतिपादित करने के पीछे भी संभवत: यही भाव रहा होगा कि उन्हें सामान्यजनों की तुलना में अधिक महत्ता देकर मान्यता दी जाय । उनकी विचित्रता ध्यान धारणा को अधिक आकर्षित करती रहे । ब्रह्मा के चार मुख, विष्णु के चार हाथ, दुर्गा के अनेक मुख और अनेक हाथ होने जैसी मान्यता इसी उद्देश्य को लेकर गढ़ी गई प्रतीत होती है । उनकी विचित्रता भक्तजनों में उनके असामान्य होने की मान्यता बने और विशिष्टता की छाप डाले । गीता में विराट् ब्रह्म का विश्व दर्शन के रूप आख्यान है और उसमें अधिकांश देवी-देवताओं का समन्वय-समावेश करने का प्रयत्न किया गया है । मीरा के गिरधर गोपाल, नरसी के रणछोड़, परमहंस की काली आदि के पीछे यही भाव प्रवाह काम करता रहा है । यदि ईश्वर की वास्तविक प्रतिमा बन सकी होती तो वह मात्र एक ही होती । इसमें आयु आकृति आदि की भी भिन्नता न पाई जाती । ईश्वर एक है । सूर्य भी एक है । सूर्य सर्वत्र एक जैसा दीखता है तो कोई कारण नहीं कि साकार समझे जाने पर उसके स्वरूप में भी एकता न होती । भिन्नता का रहना यह बताता है कि यह मूर्तिकारों, चित्रकारों की अपनी-अपनी अभिरुचि एवं परिकल्पना है या जिनने आकृतियों के झंझट से बचना चाहा है उनने शिवलिंग या शालिग्राम जैसे सरलतापूर्वक सरिता व समुद्रतटीय क्षेत्रों में मिलने वाले गोल आकार वाले पत्थरों को ही भगवान के रूप में प्रतिष्ठित कर लिया है । इसमें उन्हें सरलता प्रतीत हुई और बिना भाग-दौड़ के प्रतिमा मिल गई । कहीं-कहीं तो गोबर से ही गोवर्धन भगवान की प्रतिमा बन गई । यह भक्तजनों की अपनी भावना का प्रतिबिम्ब है ।

फिर ईश्वर दर्शन का लाभ, जो वास्तविक रूप में प्राप्त करना चाहता है उन्हें क्या सोचना और क्या करना चाहिए ? इस प्रश्न के उत्तर में एक ही बात कही जा सकती है कि ईश्वर का सबसे निकटवर्ती स्थान अपना अन्त:करण समझना चाहिए । उसमें दिव्य संवेदना का उभार जब भी उभरे तब समझना चाहिए कि उतनी मात्रा में दिव्य चेतना का अवतरण आत्मसत्ता में हो रहा है । चेतना में जो उत्कृष्ट आदर्शवादिता के उभार हैं उन्हीं से मनुष्य को परब्रह्म की अनुभूति हो सकती है ।

क्रौंच पक्षी के विलाप को सुनकर जब अन्त:करण की करुणा जगी तो महर्षि बाल्मीकि आदि कवि बन गये और उनकी लेखनी से अजस्र काव्यधारा प्रवाहित हो चली । इसी प्रकार उच्चस्तरीय संवेदनाएँ जब भी उभरती हैं तब अपने ही अन्तराल से भगवान का आंशिक अवतरण हुआ समझा जा सकता है । जब वे सद्भावनाएँ क्रिया-रूप में परिणत होने के लिए मचल पड़ें, लोभ, मोह के बंधनों से बँधने में इनकार करने लगें तो समझना चाहिए दिव्य अनुकम्पा का आवेश आत्मचेतना पर अपना अनुग्रह बरसाने लगा । ऋषिकल्प देवात्मा महामानव प्राय: दिव्य प्रेरणाओं से अनुप्राणित होकर ऐसा आदर्श उपस्थित करते हैं जिन से असंख्यों को उत्कृष्टता की दिशा में अग्रगमन कर सकने का प्रकाश एवं साहस उपलब्ध हो सके । इस प्रकार के महामानवों को यदि ईश्वरीय प्रकाश की उपलब्ध-सत्ता माना जाय तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

शक्तियाँ सदा निराकार होती हैं । पवन का आकार कहाँ हैं ? पर वह जब अन्धड़ के साथ जुड़ जाता है, तो आँधी ही वायु के रूप में दर्शन देती है । शब्द निराकार है पर जब जिह्वा, होंठ, कंठ आदि के माध्यम से वाणी मुखर होती है तो उन अंगों का परिचालन वाणी का साकार स्वरूप दीख पड़ता है । वाद्य यंत्र भी ध्वनि के उद्गम के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं । कई बार तो वाद्य यंत्र और ध्वनि प्रवाह को पृथक् करना तक समझने के लिए कठिन पड़ता है । इसीलिए उच्च उद्देश्यों में निरत महामानवों को भी बहुधा अवतार की, भगवान की संज्ञा दी जाने लगती है । श्रेष्ठ भाव सम्वेदनाओं की तरह ही आदर्शवादी क्रिया-कलाप भी दैवी अनुग्रह से गतिशील हुए माने जाने लगते हैं ।

जब प्रतिमाओं और तस्वीरों को भगवान का प्रतीक माना जाता है तो भगवत् उद्देश्यों के लिए समर्पित आत्माओं के प्रति भी श्रद्धा क्यों न सँजोई जाय ? प्रतीक पूजन में इतना ही तथ्य है कि प्रतिमाओं को आधार तथा मनोनुरूप माध्यम बनाकर उस निराकार सत्ता के प्रति सघनता भर स्थापित की जाती है जो सर्वव्यापी, न्यायकारी एवं उत्कृष्टता का पक्षधर है ।

ईश्वर के दर्शन और सम्पर्क का मर्मस्थल

क्या हम ईश्वर को देख सकते हैं-उससे वार्तालाप कर सकते हैं । इस प्रश्न का उत्तर नहीं में भी दिया जा सकता है और हाँ में भी । नहीं उस स्थिति में, जब ईश्वर को कोई आसमान में ठहरा हुआ और मनुष्यों जैसी आकृति-प्रकृति का मान कर चला जाय । यह विशुद्ध भावनात्मक कल्पना है जो सम्भवतः ध्यान की एकाग्रता अथवा उत्कृष्टतम मानव का स्वरूप निर्धारण करते हुए उसके सदृश बनने की लक्ष्य स्थापना के लिए की गई प्रतीत होती है । उसके अनेक नाम-रूप ही नहीं गुण स्वभाव की भारी भिन्नता वाले अगणित स्वरूप भी यही बताते हैं कि यह यथार्थता नहीं काल्पनिक स्थापना है । यदि ईश्वर की कोई यथार्थ आकृति होती तो वह सूर्य, चन्द्र आदि की तरह समस्त विश्व में एक ही प्रकार की दृष्टिगोचर होती । तब देश, जाति एवं सम्प्रदायों द्वारा प्रस्तुत अनेकानेक ईश्वरीय आकृतियाँ क्यों दिखाई पड़तीं । तब इन ईश्वरों के बीच मान्यताओं और क्रियाकलापों का जमीन, आसमान जितना अन्तर क्यों रहता ?

ऐसे काल्पनिक ईश्वर को देखना और उससे वार्तालाप करना यदि किसी के लिए सम्भव हो सके तो उसे उसका भावातिरेकता ही कहा जाएगा। अपनी कल्पना और आस्था का समन्वय भी कम विचित्र नहीं है । उससे अन्धेरे में खड़ी झाड़ी भूत बनकर हमें इतना डरा देती है कि प्राण-घातक संकट उपस्थित हो जाता है। भूत-पलीतों के विविध क्रिया-कौतुक मनुष्य की सघन कल्पनाओं के अतिरिक्त और क्या है? ठीक इसी प्रकार ईश्वर भी संकल्प शक्ति एवं आस्थाओं से मिश्रित भावुकता के आधार पर गढ़ा जा सकता है । उसके दर्शन भी हो सकते हैं और वार्तालाप भी हो सकता है पर इसका परिणाम कुछ नहीं । कल्पना की परितुष्टि कल्पना के आधार पर कर लेने का रात्रि स्वप्न अथवा दिवा स्वप्न किसी का कुछ प्रयोजन पूरा नहीं कर सकता । ऐसे भावुक लोगों की कमी नहीं जो अपने कल्पित देवी-देवताओं के अक्सर दर्शन करते रहते हैं । वे कभी स्वप्न में दिखाई पड़ते हैं, कभी अर्द्ध जाग्रत अवस्था में । यदि वह दर्शन वास्तविक रहे होते तो इतना बड़ा देव अनुग्रह प्राप्त करने वाले के व्यावहारिक जीवन में, स्तर में तथा परिस्थितियों में अन्तर अवश्य पड़ा होता । देवता जिस पर इतने प्रसन्न हों कि दर्शन देने दौड़े आवें, उस पर वे अन्य कृपा भी अवश्य करेंगे और उसका स्तर देवोपम बना देंगे । पर यदि वैसा कुछ नहीं होता और दर्शनों का सिलसिला चलता रहता है तो यथार्थवादी इतना ही कह सकता है कि विनोद की एक अच्छी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि हाथ लग गई ।

इस स्तर के ईश्वर का दर्शन करने की बात सोचना बालबुद्धि से अधिक और कुछ नहीं । वैसा मात्र किसी को मिल भी जाय तो उससे किसी उच्च प्रयोजन की सिद्धि की आशा नहीं करनी चाहिए । विवेकवान व्यक्ति इस जंजाल में नहीं उलझते वरन् तत्व-चिन्तन की गहराई में उतर कर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अनन्त में संव्याप्त दिव्य चेतना का लाभ ही ईश्वर है । मनुष्य और इस ईश्वर का मिलन स्थल मानवी अन्तःकरण ही हो सकता है । व्यक्ति की समाविष्ट दिव्य-चेतना का केन्द्र-स्थल उसका अन्तःकरण ही है । सजातीय के साथ ही सजातीय का मिलना सम्भव है । आत्मिक-चेतना ही ईश्वरीय चेतना के समकक्ष है । अस्तु, उन्हीं दोनों का पारस्परिक मिलन सम्भव हो सकता है । हाड़-माँस से बनी शरीर सत्ता और उसके साथ जुड़ी हुई इन्द्रियाँ स्वयं जड़-पदार्थों से बनी हैं । अस्तु, वे जड़-पदार्थों को ही देख सकती या अनुभव कर सकती हैं । यदि ईश्वर जड़-पदार्थों का बना अचेतन स्थूल वस्तुओं जैसा रहा होता तो ही आँख से उसे देखना और कान से उसकी आवाज सुनना सम्भव हो सकता था । जिस प्रकार एक मनुष्य दूसरे को देखता है या अपनी कहता उसकी सुनता है उस स्तर का दर्शन अथवा वार्तालाप सम्भव नहीं हो सकता ।

अर्जुन ऐसा ही आग्रह कर रहा था कि मुझे भगवान का दर्शन करना है । इस पर कृष्ण ने कहा यह चर्म चक्षुओं से सम्भव नहीं हो सकता । इसके लिए उसे दिव्य चक्षु दिये गये । दिव्य-चक्षु अर्थात् दिव्य-दर्शन, तत्व-दर्शन, विवेक । उसी के माध्यम से अर्जुन ने इस विराट् विश्व ब्रह्माण्ड के दर्शन किये थे । वैसा ही हमारे लिए भी सम्भव हो सकता है । यदि प्रत्यक्ष ईश्वर देखना हो तो यह विश्व उसी का स्वरूप देखा जा सकता है और उसके अन्तराल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में सन्निहित विश्वात्मा को परमात्मसत्ता के रूप में भाव सम्वेदना के क्षेत्र में सहज ही अनुभव किया जा सकता है । स्थूल ईश्वर का दर्शन इस प्रकार ही सम्भव है ।

उससे वार्तालाप करना हो तो सत् शास्त्रों के स्वाध्याय में-महामानवों के सत्संग सान्निध्य में-तत्वदर्शन के मनन चिन्तन में सम्भव हो सकता है । टेलीफोन वार्ता की तरह भगवान से वार्तालाप करने की और टेलीविजन पर चलते-फिरते ईश्वर को देखने की निरर्थक उड़ानें उड़ना छोड़कर ही हम वास्तविकता के निकट पहुँच सकते हैं । भ्रम जंजाल गढ़ कर तो हम अपने आपको अवास्तविकता के ऐसे जाल में अधिकाधिक फँसाते चले जाएँगे जिसमें बालू से तेल निकालने जैसे निरर्थक प्रयासों की तरह निराशा ही हाथ लगेगी । सुखद कल्पना गढ़ लेना और ईश्वर के साथ क्रीड़ा-कल्लोल, हास-विलास करते रहना एक बात है और वैसी यथार्थता का होना दूसरी । कल्पना की उड़ानें सम्भव है किसी का भावनात्मक समाधान कर सकें पर वास्तविकता के क्षेत्र में उसके हाथ कोई बड़ी उपलब्धि मिल नहीं सकेगी, यह भी सत्य है ।

ईश्वर दर्शन उचित भी है और आवश्यक भी । पर उस लाभ से लाभान्वित तभी हुआ जा सकता है जब उसके लिए उपयुक्त स्थान चुनें और उपयुक्त आधार अपनायें । मानवी अन्तःकरण ही वह स्थान है जहाँ उत्कृष्ट भावनाओं एवं विचारणाओं के रूप में मनुष्य और परमेश्वर का मिलन सम्भव हो सकता है । उसी मिलन में वार्तालाप की भी पूरी सम्भावना विद्यमान है । मिलन और वार्तालाप की दोनों आवश्यकताएँ एक ही स्थान पर, एक ही समय पूरी हो सकती हैं । इसके लिए अपने अन्तःकरण को छोड़कर अन्यत्र भटकने की जरूरत नहीं है । प्रतीक पूजा का आधार इसीलिए लिया जाता है कि हमारी जड़ विमूढ़ चेतना क्रमशः ईश्वर के सान्निध्य में पहुँचे इसके लिए श्रद्धा उगाये और तादात्म्य होने के लिए अभ्यास जुटाये । इससे आगे की मंजिल पूरी करने के लिए तो हमें बहिरंग जड़-जगत में से अपने को समेट कर अन्तरंग क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए ही कदम बढ़ाने पड़ते हैं । ईंट-पत्थरों के बने देवालयों में स्थापित पाषाण प्रतिमाएँ आरम्भिक श्रद्धा जागरण की दृष्टि से ही उपयुक्त होती हैं । वे ईश्वर प्राप्ति का-उसके दर्शन अथवा वार्तालाप का उद्देश्य पूरा नहीं करा सकतीं । इसके लिए तो उसी तीर्थ में जाना पड़ेगा जहाँ ईश्वरीय प्रकाश की सीधी किरणें आती हैं और जिसे अन्तःकरण के नाम से जाना जाता है । सच्चा देवमन्दिर अपना अन्तःक्षेत्र ही है उसी में अन्तःकरण रूपी सजीव देवप्रतिमा प्रतिष्ठित है । इसी मर्मस्थल से सम्पर्क बनाकर हम अपने अध्यात्म लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं । आत्मसाक्षात्कार एवं ईश्वर दर्शन के महान लक्ष्य की पूर्ति के लिए हमें इस सुनिश्चित स्थान के साथ ही गहन सम्पर्क बनाना होगा ।

अपने भीतर ही सत्ता विद्यमान है जो हमारा श्रेष्ठतम मार्गदर्शन कर सके और समस्त समस्याओं का हल प्रस्तुत कर सके । अभीष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन जुटा सकना भी पूर्णतया उसकी सामर्थ्य के अन्तर्गत है । इस सत्ता केन्द्र का नाम अन्तःकरण है । मनुष्य और ईश्वर का जब कभी-जितना कुछ भी सम्पर्क बनेगा इस केन्द्र-स्थल पर बनेगा । आत्मा और परमात्मा की प्रणयकेलि का सुसज्जित एकान्त उद्यान यही है । वस्तुतः ईश्वर की सत्ता और महत्ता अत्यन्त व्यापक है । उसे अचिन्त्य और अनिर्वचनीय कहा जा सकता है ।

सुविस्तृत ब्रह्माण्ड में-ग्रह नक्षत्र में-एक से दूसरे की दूरी कितनी अधिक है, इसकी गणना अंक देखते ही बुद्धि चकरा जाती है और उसकी भ्रमण कक्षाओं के क्षेत्र की कल्पना की जाय तो बुद्धि को प्रतीत होगा कि इतने विस्तार का चिन्तन तक उसके लिए असम्भव है । मानवी जानकारी से बाहर भी न जाने कितनी निहारिकाएँ और होंगी, वे जितने घेरे को स्पष्ट करती होंगी, उनके भीतर भिन्न-भिन्न प्रकार की परिस्थितियाँ और शक्तियाँ काम कर रही होंगी । उनमें रहने वाले जड़-चेतन पदार्थों की स्थिति में कितनी भिन्नता और कितनी विशेषता होगी । उन सबका नियन्त्रण-संचालन का सूत्र सँभालने वाला इतना कार्य किस प्रकार सम्पन्न करता होगा ? उसकी स्वयं की स्थिति कितनी सुविस्तृत होगी ? इन सब प्रश्नों पर जब विचार करना आरम्भ करते हैं तो तत्वदर्शी मनीषियों की तरह हमें भी अचिन्त्य, अनिर्वचनीय, अनादि, अनन्त, नेति-नेति आदि कहकर अपनी चिंतनात्मक असमर्थता और तुच्छता स्वीकार करनी पड़ती है । समग्र ईश्वर का प्राप्त करना तो दूर उसके विस्तार सम्बन्धी कल्पना तक कर सकना हमारे लिए शक्य नहीं ।

ईश्वर को "अणोरणीयान् महतोमहीयान्" कहा गया है । महतोमहीयान को प्राप्त कर सकना अपने साधनों को देखते हुए सम्भव नहीं । हम उसकी अणोरणीयान् सत्ता से ही सम्पर्क बना सकते हैं और उस मर्मस्थल में तादात्म्यता प्राप्त करके अपनी व्यापकता भी ईश्वर की तरह ही असीम बना सकते हैं । ब्रह्मवेत्ता इसी प्रयास में निरत रहे हैं और उन्होंने तत्व-ज्ञान के मार्मिक रहस्योदघाटन करते हुए यही कहा है कि ईश्वर से सम्पर्क बनाने का एकमात्र सही स्थान अन्तःकरण ही हो सकता है ।

आमतौर से हमारी अभिरुचि बाह्य जगत् में बिखरी पड़ी रहती है । तरह-तरह की वस्तुओं के आकर्षण में मन भ्रमर जहाँ-तहाँ उड़ता रहता है । पदार्थों का इन्द्रियों के साथ सम्पर्क होने पर तरह-तरह के स्वादों की अनुभूति होती है । इन स्वादों की रसानुभूति के लिए जी मचलता रहता है और उन क्रिया-कलापों में उत्साहपूर्वक रमता-विरमता रहता है । इससे आगे और एक कदम बढ़ा तो जिन वस्तुओं या व्यक्तियों में आत्मीयता आरोपित कर ली गई थी उन्हें छाती से चिपकाये रहने की एक और ललक पैदा कर ली जाती है । इन दोनों प्रक्रियाओं को तृष्णा और वासना कहते हैं । बहिर्मुखी जीवन की अहंता इन्हीं के माध्यम से तृप्त होती है । बड़प्पन पाने की लालसा उससे ऐसे उद्धत आचरण कराती है जिनके लिए साधन जुटाते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहना जीवन का समग्र रस निचोड़ देने पर भी स्वल्प मात्रा में ही सम्भव होता है । आकांक्षाओं की तुलना में तृप्ति नगण्य जितनी ही मिल पाती है । बहिर्मुखी चिन्तन में निरत और लिप्सा, भावनाओं के साधन जुटाने में व्यस्त मनुष्य के लिए यह सम्भव ही नहीं हो पाता कि अन्तःक्षेत्र में प्रवेश करके यहाँ भरे पड़े अमृत भण्डार को-कल्पवृक्ष को-पारस को देखने और समझने में समर्थ हो सके । जब इतना ही नहीं बन पड़ा तो उस रत्न-भण्डार को कुरेद कर बहुमूल्य रत्नों को प्राप्त कर सकना तो बन ही कैसे पड़ेगा ?

ईश्वर को प्राप्त कर सकना, मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी सफलता है । इससे बड़ी सम्पदा एवं उपलब्धि दूसरी हो ही नहीं सकती । विश्व की समस्त विभूतियों के अधिपति के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेने पर उसकी समस्तसत्ता से भी अपना सम्बन्ध बन जाता है । इस स्थिति में जो पहुँच गया उसके लिए हर वस्तु करतलगत हो गई। उसे और कुछ प्राप्त कर सकना शेष नहीं रह गया । इस स्थिति की गरिमा को देखते हुए तत्वदर्शी ईश्वर प्राप्ति का माहात्म्य वर्णन करते रहे हैं और विचारवान लोगों को उस उपलब्धि के लिए प्रयत्न करने की प्रेरणा देते रहे हैं । स्वाध्याय-सत्संग, मनन-चिन्तन, योग-तप आदि के समस्त साधन, उपचार ईश्वर-प्राप्ति का लक्ष्य पूरा करने के लिए ही बनाये गये हैं ।

यह ईश्वर कहाँ मिले ? कैसे मिले ? इस प्रश्न का उत्तर बालबुद्धि के प्राथमिक विद्यार्थियों का पूजापरक बाह्योपचारों की ओर इशारा करके दिया जाता है । इन्हें तीर्थयात्रा, देव-दर्शन, नदी-स्नान, व्रत-उपवास, दान-पुण्य, कथा-कीर्तन, विधान-कर्मकाण्ड आदि के साधन बताये जाते हैं । पर जिन्हें विवेकजन्य प्रौढ़ता प्राप्त हो गई उन्हें दूसरी बात बतानी पड़ती है । उन्हें अन्तःभूमिका में प्रवेश करने-अन्तःकरण को टटोलने के लिए कहा जाता है । वस्तुतः ईश्वरीय सत्ता के साथ सम्पर्क बना सकना और उस सम्पर्क के साथ जुड़े हुए अनुदानों को प्राप्त कर सकना अन्तःकरण के इस सजीव तीर्थ में ही सम्भव होता है जिसकी तुलना में बहिरंग जगत के समस्त साधन अनुदान तुच्छ पड़ते हैं । ईश्वर का दर्शन, वार्तालाप कर सकना इसी स्थान पर सम्भव हो सकता है ।

परमात्म-सत्ता के विराट रूप का दर्शन

परमात्मा का दर्शन एक प्रिय और आकर्षक विषय है। लोगों की मान्यता है-इस दर्शन भर से ईश्वर को इतना अनुग्रहीत किया जा सकता है कि उससे जो कुछ भी उचित-अनुचित माँगा जाय वह निश्चित रूप से मिल जाय।

इस सम्बन्ध में संव्याप्त भ्रम धारणा इतनी बड़ी और गहरी है कि उसके निरस्त करने में कुछ समय लग सकता है । किन्तु यह निश्चित है कि भ्रम का अपना कोई अस्तित्व नहीं और वह वास्तविकता का प्रकाश प्रकट होते ही क्षण भर में तिरोहित हो जाता है ।

ईश्वर का मनुष्य आकृति में या किसी देवता के रूप में प्रकट होना, दर्शन देना, यह विशुद्ध रूप से अपनी कल्पना अथवा मान्यता का खेल है । सर्वव्यापी कोई भी वस्तु या शक्ति निराकार ही हो सकती है और जो निराकार है उसके प्रत्यक्ष दर्शन कैसे हों ?

मात्र इतना हो सकता है कि अपनी भावनाएँ यदि प्रगाढ़ हों तो वे कल्पित स्वरूप के अनुरूप दिवास्वप्न की तरह दर्शन देने लगे । भगवान भावना स्तर पर मनुष्य के साथ सम्पर्क साधते हैं । इसलिए उनकी अनुभूति अन्तः-करण में दिव्य विचारों के रूप में हो सकती है । वह भी यदि वास्तविक होगी तो उस अनुभूति को व्यावहारिक जीवन में उतारे बिना रहने नहीं दे सकती ।

यदि जीवन-क्रम पुराने ढर्रे का गये-बीते लोगों के स्तर का बना रहे । चिन्तन में पवित्रता और प्रखरता का काया-कल्प स्तर का परिवर्तन न हुआ हो तो समझना चाहिए कि वह दिव्य दर्शन भी दिवास्वप्न के अतिरिक्त और कुछ नहीं था । ऐसा तो हिप्नोटिज्म के आधार पर किसी को भी ईश्वर, देवता या और कुछ दिखाया जा सकता है ।

यहाँ ईश्वर को साकार मानने के उपरान्त ही चर्म चक्षुओं से उसके देखे जाने की आशा की जा सकती है । पर क्या ईश्वर जन्म लेते और मरते हैं ? निश्चय ही नहीं । इस मान्यता की अपेक्षा तो विराट् ब्रह्म-विशाल विश्व के रूप में ईश्वर का भाव क्षेत्र में प्रतिष्ठित करना श्रेष्ठ है । तुलसीदास जी ने "**सियाराम मय सब जग जानी**" के रूप में ही उनका दर्शन और अभिवन्दन किया था ।

विष्णु सहस्र नाम में पहले 'विश्व' का नाम आता है । पर्वत, नदी, वन आदि समस्त विश्व परमात्मा का ही स्वरूप है । प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में भी ऋषियों ने परमात्मा के दर्शन किये । इसी परमात्मबोध के कारण हिमालय, गंगा आदि पवित्र समझे जाने लगे । यह अज्ञानवश प्रकृति में ईश्वरत्व का आरोप नहीं है ।

श्रुति का कथन है कि एक ही ब्रह्म का विद्वानों द्वारा बहुत नाम-रूपों में वर्णन किया गया है । पृथक्-पृथक् सम्प्रदायों में उनके विभिन्न नाम-रूप हैं । पर इससे अनेक ईश्वरों का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता ।

परमात्मा कर्त्तव्यनिष्ठ है । उससे उत्पन्न देवगण सदा क्रियाशील और अनुशासित रहकर कार्य करते हैं। उन्हें भय है कि यदि अकर्मण्यता और प्रमाद बरता गया तो प्रकोप का भाजन बनना पड़ेगा । अतः नियत समय पर कर्त्तव्यरत रहते और कार्य अंजाम के प्रति सजग रहते हैं । इन्द्र, अग्नि तथा मृत्यु भी इसीलिए आज्ञानुवर्ती होकर कार्य करते हैं ।

भीषास्माद वातः पवते । भीषोदेति सूर्यः । भीषास्मादिन्द्रश्चाग्निश्च । मृत्यु-र्धावति पंचम ।

यह ईश्वर नियम रूप है । यदि हम ईश्वरीय नियमों का प्रतिपालन करते हैं तो समझना चहिए कि हमारी आस्तिकता सच्ची है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनेक देवताओं की मान्यता से एकेश्वरवाद के सिद्धान्त में कोई अन्तर नहीं आता। नदी या तालाब में लहरें उठती रहती हैं। उनके स्वरूप अलग-अलग दृष्टिगोचर होते हैं। इतने पर भी वे वस्तुतः जलाशय के अविच्छिन्न अंग ही है। इसी प्रकार अगणित देवताओं सम्बन्धी मान्यताओं के पीछे भी एक ही परम-तत्व को समाहित समझा जाना चाहिए ।

पुरुष-सूक्त के अनुसार देवताओं की उत्पत्ति ईश्वर के अंगों से बताई गई है । पुरुष की संज्ञा परमात्मा को दी गई है । पुरुष का स्वरूप शब्दातीत है । उसके हाथ-पैर सिर आदि अनन्त हैं । उसकी शक्ति अनन्त, अपरिमित है । इसी कारण उन्हें "सहस्त्र शीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्र पात् ।" कहकर विराट् रूप में सम्बोधित किया गया है ।

ईश्वर के मुँह से अग्नि और इन्द्र की उत्पत्ति बताई जाती है । मन से चन्द्रमा और प्राण से वायु की उत्पत्ति बताई जाती है । नाभि से अन्तरिक्ष की उत्पत्ति हुई है ।

"चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षो सूर्यो अजायत। मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत नाभ्या आसीन्दन्तरिक्षम् पद्भ्यां-भूमिर्दिशः श्रोत्रात्त।"

अच्छा हो हम ईश्वर या देवताओं की व्यक्ति विशेष के स्तर की मान्यता न बनायें । उसे एक व्यापक सत्ता के रूप में हृदयंगम करें । विभिन्न देवी-देवताओं या अवतारों की प्रतिमा बनाने और पूजने में हर्ज नहीं किन्तु उसकी निराकारिता, सर्वव्यापकता और न्यायशीलता में सन्देह करके वैसा कुछ नहीं सोचा जाना चाहिए जैसा कि भक्त-जन दर्शन करने के फेर में इसलिए रहते हैं कि उनकी इच्छित मनोकामनाएँ इतने भर से पूर्ण हो जाएँगी ।

वस्तुतः ईश्वर की अनुकम्पा या सांसारिक सफलता पाने के लिए हमें अपनी पात्रता का विकास करना चाहिए उपलब्धियाँ उसी आधार पर हस्तगत होती हैं। पूजा-उपासना का तात्पर्य भी पात्रता विकसित करना भर है, न कि ईश्वर को फुसलाना ।

गति का दर्शन और परमगति

हम जब यह कहते हैं कि यह कमरा जिसमें हम रह रहे हैं-'स्थिर है' तो उसे झूठा कहने का किसी को अधिकार नहीं है । प्रकृति भी हमें ऐसा सोचने से विवश नहीं करती । किन्तु ऐसा हम तभी तक कह सकते हैं, जब तक कि हम इस कमरे से या यह कमरा जिस वस्तु पर (पृथ्वी पर) आधारित है, से सम्बन्ध बनाये हुए हैं । यदि हमें आकाश में सूर्य-चन्द्रमा, तारे नहीं दिखाई देते, केवल आकाश ही आकाश दिखाई देता तो हमें अपने कमरे के स्थिर होने में कतई सन्देह नहीं होता ।

जब हम सूर्य-चन्द्रमा अथवा अन्य नक्षत्रों को घूमते हुए देखते हैं, तब हमें अपनी भूल का पता चलता है । हम समय और पदार्थ की सापेक्षता से बँधे हुए हैं, इसलिए जितने समय पृथ्वी में हैं, उतने समय में हम सोच भी नहीं सकते कि पृथ्वी चल रही है, लेकिन जब नक्षत्रों की विस्तृत खोज हुई तो पता चला कि हमारा ऐसा सोचना कि पृथ्वी या कमरा स्थिर है, भ्रम सा लगता था । सच बात यह है कि यह कमरा भी बराबर चल रहा है । उतने ही वेग से जितने वेग से पृथ्वी चल रही है ।

संसार का हर कण चल रहा है । हर ब्रह्मांड चल रहा है, इसलिये समय और ब्रह्मांड के अस्तित्व की तरह गति भी सापेक्ष (रिलेटिव) हो गई है । सन् १९०५ में महावैज्ञानिक आइन्सटीन ने गति के इस नियम की व्याख्या करते हुए बताया कि गति या वेग भी समय और पदार्थ की भाँति कोई वस्तु नहीं है । यह लम्बाई तथा समय की विशिष्ट अवस्था में तुलना मात्र है । 'क' बिन्दु से एक वस्तु चली और 'अ' समय में 'ख' बिन्दु तक गई । दर्शक ने मान लिया कि यह वस्तु 'अ' समय में 'क' से 'ख' तक चली । पर समय कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है, वह भी दो घटनाओं के प्रारम्भ और अन्त के बीच की दूरी है और उसका सही-सही माप तब तक नहीं हो सकता, जब तक हमें परम-समय (सृष्टि के आदि से प्रलय तक के समय) (एब्सोल्यूट टाइम) का पता न हो । इसी प्रकार पदार्थ भी अपने आप में कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं था, वह कणों की संकुलता और विकिरण मात्र था, जो दिखाई दे रहा था। उसी प्रकार गति भी एक प्रकार की सापेक्षता(रिलेटिविटी) है। उसकी कोई माप (मेजरमेन्ट) सही नहीं हो सकती ।

मान लें पृथ्वी की गति १००० मील प्रति सेकिंड है, तब इस कमरे में जो ईथर भरा हुआ है, वह भी १००० मील प्रति सेकिंड की गति से चल रहा होगा । प्रकृति के सभी कार्य जो इस कमरे में हो रहे हैं, वह सब १००० मील प्रति सेकिंड की गति से चल रहे हैं, इसलिये हमें चलने की स्थिति का पता नहीं चलता । पर वहीं पर हवा की गति इससे अधिक होती है, इसलिये उसकी गति का हम सीधे अनुमान कर सकते हैं, यदि संसार में गति-नियमों में सापेक्षता न होती तो हमें यह पता भी नहीं चलता कि हम स्थिर हैं या चल रहे हैं ।

पृथ्वी सूर्य के आस-पास १८ मील प्रति सेकिंड की तीव्र गति से घूमती है, जबकि घड़ी की सुई एक सेकिंड में बहुत छोटा भाग (वन ग्रेजुएशन) घूमती है, हम इसी से अनुमान कर सकते हैं कि पृथ्वी कितनी तेज चल रही होगी पर क्या हम उसे महसूस करते हैं ? नहीं-यही हमारा भ्रम है कि हम जो कुछ भी देखते हैं, वह सब सापेक्ष (रिलेटिव) है और हम सत्य को नहीं जानते ।

हम समय और पदार्थ से बँधे हैं, इसलिये पुनर्जन्म की स्थिति को नहीं समझ पाते । पूर्वजन्म में जब हम बैल या हिरन थे, तब हम भिन्न प्रकार के समय और पदार्थों से बँधे थे, इसलिये हमें पूर्ण समय और ब्रह्मांड की स्थिति का ज्ञान नहीं हो पाया था, वैसे ही गति के नियम के अनुसार अब मनुष्य शरीर में आ जाने पर फिर समय और ब्रह्मांड की सापेक्षता से बँध गये हैं, इसलिये पहले जन्म के सम्बन्ध में कुछ भी ध्यान नहीं रहा । यदि हम समय, स्थान या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्मांड के साथ अपनी गति के नियम की सापेक्षता को समझते और परम-गति (एब्सोल्यूट मोशन) की अवस्था को जानने का प्रयत्न करते तो संसार की यथार्थता, परलोक, पुनर्जन्म, इच्छाओं, कर्मफल, आत्मा, परमात्मा स्वर्ग और मुक्ति की यथार्थता को भी समझना हमारे लिये सम्भव हो जाता ।

गति या वेग के सभी माप (मेजरमेन्ट्स) किसी न किसी से सम्बन्धित हैं । अत: सब प्रकार की गति से दृष्टि सापेक्ष है । उदाहरण के लिये एक रेलगाड़ी ६० मील प्रति घण्टा की रफ्तार से जा रही है, उसी ट्रेन का टिकट कलेक्टर ५ मील प्रति घण्टा की गति से इन्जन की ओर बढ़ रहा है, इस अवस्था में सड़क पर खड़े दृष्टा को ऐसा लगेगा कि टिकट कलेक्टर ६५ मील प्रति घण्टा की रफ्तार से चल रहा है । दो गाड़ियाँ ४०-४० मील प्रति घण्टा की रफ्तार से एक ही दिशा में चल रही हैं, तब एक गाड़ी के यात्री देखेंगे कि दूसरी गाड़ी खड़ी है, दूसरी गाड़ी वाले यात्री पहली गाड़ी को खड़ी अनुभव करेंगे । किन्तु यदि दोनों गाड़ियाँ इसी रफ्तार से विपरीत दिशाओं में चल रही होती तो दोनों गाड़ियों के यात्री एक दूसर को ८० मील प्रति घण्टा की रफ्तार से चलते हुए अनुभव करते ।

इस तरह सापेक्षता के सिद्धान्त का पहला नियम यह है कि साधारण परमगति (अब्सोल्यूट ट्रान्सलेटरी वेलासिटी) जो कि स्थान को किसी भी परिस्थिति में किसी भी तरीके से होती उसका माप कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता । दूसरी बात यह है कि मुक्त आकाश (फ्री स्पेश) में प्रकाश का वेग किसी भी दर्शक को एक-सा प्रतीत होता है । हम चल रहे हों तो प्रकाश की गति में कोई सापेक्षता दृष्टिगोचर नहीं होती । अर्थात् जिस गति से प्रकाश हमारी आँखों की पुतली रैटिना से टकराता है, उसी गति से हमारी आँखों से झरने वाला प्रकाश भी साधन (मीडियम) की ओर चलता है तभी हम प्रकाश की गति को देख नहीं पाते । अर्थात् हममें और प्रकाश की सघनता में कोई अन्तर नहीं है । हम स्वयं आत्मा या ईश्वरीय प्रकाश हैं, उसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि हम गति की सापेक्षता से उठकर परम गति (एब्सोल्यूट नोशन) की अवस्था में पहुँच सकते हैं, जो कि हमारे मस्तिष्क में उसी प्रकार है, जिस प्रकार समय और पदार्थ भी हमारे मस्तिष्क की ही संरचनाएँ हैं । मस्तिष्क बँध जाता है तो हमें एक सेकिंड का भी पता नहीं चलता, और एक विस्तृत कहानी का सारांश भी तीन घण्टे में समाप्त हो जाता है ।

सिनेमा बनाने वाली मशीन एक सेकिंड में १०० से भी अधिक फोटो लेने की क्षमता रखती है एक आदमी एक सेकिंड में चलते हुई, जितनी आकृतियाँ और मुद्राएँ बदलता है, उन सब को वह मशीन १०० बार अपने भीतर भर लेती है, दुबारा जब उसे पर्दे पर दिखाया जाता है तो उसी गति को इस अंश तक धीमा कर दिया जाता है कि वही फोटो चलती-फिरती दिखाई देने लगती है । यदि बीच में फिल्म कभी कट जाती है और मशीन चलते-चलते रुक जाती है । तो जो जैसा फोटो सामने होता है, वैसा ही बना रह जाता है और वास्तविकता की पोल खुल जाती है कि दरअसल यह तो फोटो और प्रकाश के चलने का खेल मात्र था, कहानी में असलियत है न पर्दे पर कोई नायक-नायिका । हमारे जीवन को भी उसी प्रकार गति के नियम और उसकी सापेक्षता से बाँध दिया गया है, इसलिये हम चलते-फिरते, खाते-पीते हुए भी अपनी यथार्थ स्थिति को समझ नहीं पाते ।

रंग वस्तु का भाग नहीं है । वह सफेद किरणों के विभाजन का परिणाम है । जितने भी रंगीन फूल हैं, वे रात में कभी नहीं खिलते । रात में केवल सफेद फूल ही खिल सकते हैं । अर्थात् प्रकाश से सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है । पर रंगीन फूल दिन में ही खिलता है, इसलिए सूर्य का प्रकाश जब पौधों पर पड़ता है और फोटान्स (प्रकाश का सबसे छोटा परमाणु जिसके टुकड़े नहीं हो सकते) में टूटकर उस आकृति में बदल जाता है, जिस आकृति का फूल दिखाई देता है ।

फूल का रात में कोई रंग नहीं होता, सारी प्रकृति भी भूरी या काली लगती है । कारण प्रकाश का न होना ही है । उसी प्रकार संसार का प्रकट और विराट् रूप वास्तव में कुछ नहीं है, वह सब ईश्वरीय सत्ता का खेल मात्र है । पर्दे के पीछे वही गति के नियमों से आबद्ध काम किया करता है । स्वयं गति में न होने के कारण वह सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है ।

प्रकृति में जो भी रंग-बिरंगापन है, वह सब सूर्य के प्रकाश की गति (मोशन) का परिणाम है, यदि सूर्य न होता तो यह प्रकृति न होती । इस भीतर ही भीतर की हलचल को हम देख नहीं पाते, इसलिये परमगति (एब्सोल्यूट मोशन) का पता लगाने में असमर्थ होते हैं और तब तक हम सांसारिक भ्रमों में उसी प्रकार पड़े रहते हैं, जिस प्रकार रात में स्वप्न देखने पर सब कुछ सच-सच सा लगता है । मस्तिष्क की अवस्था बदलते ही वह झूठ हो जाता है । यह सत्य हो जाता है । मस्तिष्क की अवस्था बदलने पर ही अब जो दिखाई दे रहा है, वह भी गलत हो जाता है और हमारी इच्छाएँ जिस ढाँचे में ढली हुई होती हैं, हम उस योनि वाले संसार में चले जाते हैं, तब हमें वही सत्य लगता है, बाकी सब असत्य । इस भ्रम को मस्तिष्क की सीमा में बने रहकर ही समझ सकते हैं, जब तक गति की सापेक्षता से बँधे रहेंगे, तब तक न तो यह भ्रम समझ में आयेगा और न हम अपने दृष्टिकोण और व्यवहार में परिवर्तन के लिए तैयार होंगे । उसमें अपना भले ही कितना ही अहित क्यों न होता हो । मनीषी और अध्यात्म-तत्व-वेत्ता चिन्तन पर इसीलिये जोर देते हैं कि हम अधिक से अधिक मस्तिष्क में रहें, ताकि यथार्थ हमारी समझ में उतरता रहे ।

जिस प्रकार रंग प्रकाशीय प्रदर्शन (इण्टरफ्रिटेक्शन) मात्र था । उसी प्रकार हमारा शरीर भी जीवाणुओं (सेल्स)

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की गति (मोशन) के परिणामस्वरूप ही अदलता-बदलता दिखाई देता है । इसके भीतर भी सूर्य प्रकाश की भाँति एक चेतना गतिशील है और वह भी निरन्तर विकीर्ण होती रहती है । मनुष्य की मृत्यु एक दिन में नहीं होती या यों कहें कि शरीरान्त एक दिन का परिणाम नहीं होता, वह प्रक्रिया तो जन्म लेते ही प्रारम्भ हो जाती है । हम आहार लेते हैं, साँस लेते हैं, पानी पीते हैं, उसके द्वारा प्राण-तत्व भीतर भरते जाते हैं, यह प्राण विचारों के रूप में सदैव निकलता रहता है । आहार के साथ शरीर में पहुँचने वाला पदार्थ भी मैल, पसीना, थूक, पेशाब, बदबू के रूप में निकलता रहता है । जब तक निकालने की क्रिया मन्द और ग्रहण की क्रिया में तीव्रता रहती है, हमारा शरीर बढ़ता है पर यह परिस्थिति बदलते ही शरीर बूढ़ा होने लगता है, जिस दिन प्राण का आखिरी कण तक निकल जाता है, उसी दिन यह शरीर निश्चेतन हो जाता है ।

शरीर में इतनी गति होती रहती है पर जीवाणुओं को उसका पता नहीं चल पाता उसका कारण गति की सापेक्षता ही है । हम शरीर से बँधे रहते हैं, शरीर को ही सब कुछ माने होते हैं, उसे द्रष्टा की भाँति अलग करके नहीं देखते, इसलिये परिस्थिति की गम्भीरता समझ में नहीं आती, यदि इन्द्रियों की लिप्सा, शरीर को ही अपना स्वत्व मानने की भूल को त्यागकर केवल मस्तिष्क में हीं देखें तो शरीर के एक-एक अणु में गति (मोशन) होती दिखाई देगी ।

सम्पूर्ण भ्रम का कारण यह है कि हम जहाँ भी हैं समय और स्थान की भाँति गति के नियमों से भी सापेक्ष (रिलेटिव) हो गये हैं । यदि इस बन्धन को तोड़कर स्वतंत्र ध्यान और चिन्तन को बढ़ा पायें तो देखें कि सूर्य-चन्द्रमा, बुध-बृहस्पति और सारा ब्रह्मांड ही हलचल में है। हलचल गति या वेग की उन्मुक्त अवस्था जिसे हम मस्तिष्क में एक क्षण रुककर अनुभव करते हैं, सदैव-सदैव के लिये प्राप्त कर लें तो परमगति को प्राप्त करना भी हमारे लिये सम्भव हो सकता है । वही मुक्ति, मोक्ष या परम-पद है और मुक्ति किसी स्थान विशेष में नहीं है ।

पूर्णमदः पूर्णमिदम्

मनुष्य जीवन की सार्थकता पूर्णता की प्राप्ति में है इसका तात्पर्य यह हुआ कि अभी हम अपूर्ण हैं । असत्य हैं, अन्धकार में हैं और हमारे सामने मृत्यु खड़ी है। अन्धकार, असत्य और मृत्यु पर विजय प्राप्त करते हुए हम प्रकाश, सत्य और अमरता की ओर अग्रसर हो सकते हैं ।

वेद का एक मन्त्र है-

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

पूर्ण परम ब्रह्म परमात्मा से पूर्ण जगत्-पूर्ण मानव की उत्पत्ति हुई। पूर्ण से पूर्ण निकाल देने से पूर्ण ही शेष रहता है।

यह एक विलक्षण बात है कि पूर्ण से पूर्ण निकाल देने पर पूर्ण ही बच जाता है । भौतिक दृष्टि से देखने पर यह गलत मालूम पड़ता है । लेकिन आध्यात्मिक दृष्टि से यह बिल्कुल सत्य है ।

नदी का एक किनारा समुद्र से जुड़ा रहता है और दूसरा किनारा उससे दूर होता है । दूर होते हुए भी नदी समुद्र से अलग नहीं । नदी को जल समुद्र द्वारा प्राप्त होता है और पुनः समुद्र में मिल जाता है । जगत् उस पूर्ण ब्रह्म से अलग नहीं । प्राणियों को परमेश्वर से शान्ति, पवित्रता, आनन्द और ज्ञान प्राप्त होता है । मनुष्य उसी पूर्ण ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है, इसलिए अपने में स्वयं पूर्ण है ।

मनुष्य अगर पूर्ण है तो फिर उस पूर्णता का भान क्यों नहीं होता ? मनुष्य अन्धकार, कष्ट और दुःख में क्यों पड़ा हुआ है ? इसका एकमात्र उत्तर यही हो सकता है कि हम अज्ञान और अहंकार में पड़े हुए हैं ।

भगवान को सत्-चित् आनन्द, सत्यं, शिवं सुन्दरम् कहा गया है । हम उसे प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करते । सुख और शान्ति की कामना रहती है, लेकिन इसके लिए हमारा प्रयत्न नहीं होता ।

हम अपूर्ण हैं और पूर्णता की प्राप्ति करनी है । हमारी भवितव्यता पूर्णता में है और यही भवितव्यता हमारे मोक्ष और मुक्ति का द्वार है । परन्तु मनोकामनाओं की पूर्ति संकल्प के साथ प्रयत्न में लग जाने से होगी ।

सन्त बिनोवा ने एक बार कहा था कि प्रयत्नहीन प्रार्थना, प्रार्थना नहीं हो सकती है । अगर अन्धकार, असत्य और मृत्यु से मुक्त होने के लिए केवल प्रार्थना ही करते रहें तो यह निरर्थक होगा । इसकी सार्थकता तब होगी जब इसके लिए पूरे मनोयोग के साथ प्रयत्न में लग जायें ।

पूरब जाने वाली गाड़ी में बैठा हुआ व्यक्ति पश्चिम जाने की मनोकामना करे तो उसकी मनोकामना कभी पूरी नहीं हो सकती। हमारी कामनाएँ उसी यात्री की तरह हैं ।

पूर्णता की प्राप्ति का तात्पर्य है कि अपने अन्तःकरण में परमात्मा का बोध हो। उपनिषदों में कहा गया है कि जो अनन्त ब्रह्म को आत्मा की गहरी कन्दराओं में छिपा जानता है, हृदयाकाश में छिपा जानता है, वह सर्वत्र ब्रह्म के साथ मिलकर सभी इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति का आनन्द लेता है ।

आनन्द का उद्गम-आत्मभाव

प्रिय पदार्थों एवं प्राणियों को हर कोई अपने समीप देखना चाहता है । साथ ही अप्रियों से छुटकारा भी । प्रियता, प्रेम-भावना सभी को लुभाती है । हर किसी को प्रिय पात्रों से घिरा रहकर प्रसन्नता प्राप्त करनी चाहिए । घृणा अप्रियों से ही होती है । वे ही अखरते हैं । अपना बालक प्रिय लगता है, इसलिए उसके कुरूप, मूर्ख अथवा दुर्गुणी होने पर भी उसके साथ प्रीति रहती है । प्रीति के साथ प्रसन्नता जुड़ी हुई है । भाव संवेदना इसी को कहते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हैं । इस उपलब्धि के लिए हर कोई तरसता रहता है । उसके निकटवर्ती बनने के लिए प्रयत्न भी करता है ।

उपनिषद्कारों ने प्रेम को परमात्मा कहा है । महाप्रभु ईसा भी यही कहा करते थे । भक्तियोग में इसी को प्रभु मिलन का रस कहा है । सामान्य जीवन में भी यही बात है। मनुष्य प्रियजनों के साथ कठिन परिस्थितियों में भी रह लेता है । दुःख भी सह लेता है । दुर्दिन भी गुजार लेता है । कठिनाई तब पड़ती है जब अप्रिय, अनिच्छित समुदाय के साथ की परिस्थितियों में रहना पड़े । इस संसार में आत्मा प्रेम की प्यासी रहती है । उसी को ढूँढ़ती है । यदि उस उपलब्धि का सुयोग हस्तगत करती है तो कृतकृत्य होकर रहती है ।

वस्तुओं में, व्यक्तियों में न कोई प्रिय है न अप्रिय है । मेले-ठेलों में अनेकानेक वस्तुएँ प्रदर्शनार्थ सजधज कर रखी होती हैं पर उन पर उड़ती नजर डाल कर दर्शक आगे बढ़ जाते हैं । इसी प्रकार पर्व, समारोहों पर नर-नारियों की भारी भीड़ रहती है । इनमें अनेक सुन्दर भी होते हैं, अनेकों असुन्दर भी । पर उनसे निजी लगाव न होने से उस समूह के प्रति कोई लगाव नहीं होता है । वह भीड़ मात्र लगती है । उसे धकेल कर आगे बढ़ चलने को मन करता है । सड़कों, मुसाफिरखानों में, सभा सम्मेलनों में अगणित नर मुंड दीखते हैं पर उन्हें देखने पर कौतूहल भर की अनुभूति होती है । न कुछ आकर्षण होता है न उत्साह ।

प्रियता का समावेश तब होता है जब साथ में आत्मीयता जुड़ती है । अपने मित्र-परिजनों में गुण ही भरे रहते हैं । उनके साथ रहने, खर्च करने एवं सहयोग देने का जी करता है । यदि उन्हीं के साथ कुछ दिन बाद शत्रुता हो जाय अथवा उपेक्षा बरतने की स्थिति आ जाय तो फिर समीप रहने पर भी वे दूरवर्ती लगने लगते हैं। शक्ल-सूरत वही रहने पर भी सुहाते तक नहीं। उनका स्मरण आना समीप रहना तो बन ही नहीं पड़ता बच निकलने का ही विचार रहता है। इस परिवर्तन का विश्लेषण करने पर यही तथ्य उभर कर आता है कि यहाँ न कोई प्रिय है न अप्रिय, न सुन्दर, न कुरूप, न सज्जन है, न दुर्जन न उपयोगी है न अनुपयोगी । जिसके साथ अपनी आत्मीयता जुड़ जाती है वही सुहाने लगता है । उसमें गुण ही गुण भरे दीखते हैं ।

अंधेरे में टॉर्च का प्रकाश फेंकने पर जितने दायरे में रोशनी पड़ती है उतनी ही जगह प्रकाशवान हो उठती है । उस परिधि में जो कुछ है सभी स्पष्ट हो जाता है । साफ दीखने लगता है । आत्मीयता एक टॉर्च है, उसका प्रकाश जिन वस्तुओं, प्राणियों या व्यक्तियों पर पड़ता है वे ही सुहावने लगते हैं । शेष सब तो कूड़ा-कचरा भर प्रतीत होता है । जब तक घर वाहन, वस्त्र अपना था, तब तक उसकी पूरा साज सँभाल रखी जाती हैं, पर जब वह बिक जाता है दूसरे के कब्जे में चला जाता है तो फिर उसके टूटने-फूटने पर कोई चिन्ता नहीं होती । कुछ दिन पूर्व जो जब तक अपना रहा तब तक उसकी उपस्थिति सुहाती रही और साज-सँभाल होती रही । पर जब परायेपन का भाव आया तो फिर उपेक्षा ही शेष रह जाती है । वह कहाँ, किस स्थिति में है इसकी चिन्ता नहीं रहती । पड़ोसी के घर मृत्यु होने पर सहानुभूति का लोकाचार भर निबाहा जाता है, पर जब अपने घर में किसी प्रियजन की मृत्यु होती है तो शोक से चित्त विह्वल हो उठता है । धैर्य बँधता ही नहीं। उस बिछोह का कष्ट शूल की तरह चुभता रहता है । पड़ोसी से भी मिलना, जुलना होता रहता है, पर आत्मीयता के अभाव में उसका मरना तक कौतूहल मात्र बनकर रह गया । जब अपने की मृत्यु हुई तब पता चला कि वियोग का घाव कितना गहरा होता है । मनुष्य मनुष्य सभी एक जैसे । मरण का दृश्य और अन्त्येष्टि का स्वरूप भी एक जैसा । फिर एक में उपेक्षा और दूसरे में गहरी व्यथा होने का कारण तलाश करने पर वस्तुस्थिति स्पष्ट हो जाती है कि जिसके साथ जितनी गहरी आत्मीयता होती है, उसके साथ उतनी ही गहरी मिलन की प्रसन्नता एवं वियोग की व्यथा जुड़ी होती है । अपनी वस्तुओं के टूटने, खोने पर उद्विग्नता होती है । पालतू कुत्ते, बिल्ली तोते तक के मरने पर वेदना होती है । यहाँ वस्तु या प्राणी के प्रति ममता का होना न होना ही प्रसन्नता एवं व्यथा का आधारभूत कारण सिद्ध होता है । वस्तुएँ तो आती जाती ही रहती हैं । प्राणी तो मरते जन्मते ही रहते हैं । उनके सम्बन्ध में विचार करने की फुरसत किसे ? हर किसी को अपनी पड़ी है । जिसे अपना माना जाता है उसी में आकर्षण दीख पड़ता है । उसी में सद्गुण भरे प्रतीत होते हैं । उसी को साथ रखने या साथ रहने में आनन्द मिलता है ।

तथ्य इस प्रकार उभर कर आते हैं कि अपनापन आरोपित होने से ही कोई प्रिय लगने लगता है । यदि वह भाव बदल जाय तो कल जो प्राणप्रिय था वह आज उपेक्षा का पात्र बन जाता है । शत्रुता बन जाने पर तो उसकी गंध भी नहीं सुहाती । ऐसी दशा में किसी वस्तु या व्यक्ति को स्थायी रूप से सुन्दर या प्रिय पात्र नहीं कहा जा सकता है। आत्मभाव का ही चमत्कार है कि वह जिस किसी के साथ जुड़ता है उसी में बड़ी सुन्दरता दीख पड़ती है उसी में प्रिय पात्र होने के सभी लक्षण अनुभव होने लगते हैं । इसका निष्कर्ष यह भी निकलता है कि उसके साथ आत्मीयता जोड़ ली जाय । उसकी निकटता आनन्द-विभोर कर देने वाली बन जाएगी ।

विचारणीय यह है कि जिसके साथ संयोग-वश आत्मीयता जुड़ गई है उसी को स्वाभाविक या पर्याप्त मान कर बैठा रहा जाय या आनन्ददायक परिधि का और भी अधिक विस्तार किया जाय । यदि ससीम को असीम बनाने का मन हो, बूँद से मन न भरता हो और निर्झर में कलोल करने के लिए मन चलता हो तो वह भी नितान्त सरल है । करना इतना भर पड़ता है कि आत्मीयता को संकीर्ण क्षेत्र से उबार कर उसे अधिक व्यापक क्षेत्र तक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पसारा जाय । शरीर, कुटुम्ब या उपलब्ध वैभव से आगे बढ कर अपनेपन के अंचल में सुविस्तृत क्षेत्र को समेटा जाय । इस विस्तार से घर की छोटी मान्यता समूचे मुहल्ले, गाँव, प्रान्त, देश में फैल पड़ती है । सवेरे का सूर्य पेड़ों, टीलों के ऊपरी भाग भर पर चमकता है । पर जब वह मध्यान्हकाल तक पहुँचता है तो उसका प्रकाश सुविस्तृत भूमि पर फैल पड़ता है । व्यक्ति की आत्मीयता के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है कि उसे सीमित परिधि में संकुचित भी रखा जा सकता है पर यदि इच्छा हो तो उस आलोक से सुविस्तृत क्षेत्र को आलोकित किया जा सकता है । विरानी समझी जाने वाली वस्तुओं को अपना मानकर उनकी समीपता से भरपूर आनन्द उठाया जा सकता है ।

मान्यता के विस्तार में कहीं कोई अवरोध नहीं । अधिकार जमाने की चेष्टा की जाय तो विग्रह खड़ा हो सकता है । पर मानवता तो अपने मन की बात है उसे किसी पर भी कितने ही बड़े क्षेत्र पर भी आच्छादित किया जा सकता है ।

सूर्य, चन्द्र, तारक, बादल, वन, पर्वत, नदी, निर्झर, धरती, समुद्र, पवन आदि को अपना माना जाय तो इस मानवता को चुनौती कौन देगा ? दृष्टिगोचर होने वाले पुरुषों को पिता, भाई, भतीजे की और नारियों को माता, भगिनी, पुत्री की दृष्टि से देखते रहा जाय तो इस पर रोक लगाने का साहस कोई नहीं कर सकता । स्वामी रामतीर्थ अपने को राम बादशाह मानते थे । समस्त विश्व को अपनी प्रजा कहते थे । उनके कथन पर किसी ने कानूनी कार्यवाही नहीं की । झंझट तब खड़ा होता है, जब किसी पर एकाधिकार जमाया जाता है । एक ही नारी किसी की पत्नी, किसी की माता, किसी की बहिन, किसी की पुत्री, किसी की भतीजी किसी की भान्जी आदि हो सकती है । उस पर सभी अपना-अपना सीमित अधिकार मानते हैं, पर इनमें कोई भी यह दावा नहीं करता कि उसके अतिरिक्त और किसी का किसी प्रकार का कोई रिश्ता-वास्ता नहीं है । इसी प्रकार अपनी मान्यताओं को कितने ही विस्तृत क्षेत्र पर भलीप्रकार आरोपित कर सकते हैं । शर्त एक ही है कि उस पर एकाधिकार न जतायें, दूसरों के अधिकार को अस्वीकार न करें ।

वस्तुतः इस संसार की किसी भी वस्तु पर किसी का पूरा अधिकार नहीं । यहाँ तक कि अपने शरीर पर भी नहीं । उसके भीतर भी अनेक जीवाणु विषाणु पलते रहते हैं । भूमि जिस पर अपना कब्जा जमाये हुए था वह भी सृष्टि के आदि से लेकर अब तक लाखों-करोड़ों के कब्जे में रह चुकी है । पवन साझे का सागर है । जितना खा-पहिन लेते हैं उतना ही अपना है । शेष तो तिजोरियों में, कोठी-संदूकों में बन्द रहता है । उस पर समूचे परिवार के उत्तराधिकारियों का हक जुड़ा रहता है । ऐसी दशा में अपना पूरा अधिकार किस पर है, यह सोचने पर अकेली आत्मा ही अपनी रह जाती है ।

अधिकार न जमाया जाय । इतनी सतर्कता बरतने पर आत्मीयता का कितना ही गहरा आरोपण किसी पर भी नहीं किया जा सकता है । आवश्यक नहीं कि दूसरे भी हमारी मान्यता के अनुरूप ही प्रत्युत्तर दें । एकपक्षीय प्यार बिना किसी कठिनाई के पलता रह सकता है। देव प्रतिमाओं के प्रति भक्तजन एकपक्षीय श्रद्धा का ही आरोपण करते हैं । देवता उसका कोई प्रत्युत्तर नहीं देते । उसकी पाषाण या धातु से बनी प्रतिमा बदले में भी किसी प्रकार की भाव संवेदना या हलचल प्रकट नहीं करती । इसी प्रकार बिना प्रत्युत्तर प्रतिक्रिया की अपेक्षा किये हम हर वस्तु पर सुव्यवस्था और हर व्यक्ति पर सद्भावना का आरोपण करते रह सकते हैं ।

गेंद जिस कोण में जितने जोर से जमीन पर मारी जाती है वह उसी वेग से उसी कोण में फेंकने वालों के पास वापस लौट आती है गुम्बजों में बोली हुई आवाज की प्रतिध्वनि गूँजती है । दर्पण में ज्यों का त्यों प्रतिबिम्ब दीखता है । छाया की आकृति वस्तु जैसी ही होती है । हमारी आत्मीयता आरोपित वस्तु से टकरा कर शब्दवेधी बाण की तरह अपने पास ही वापस लौट आती है । आत्मभाव का आरोपण अपनी प्रतिक्रिया इस रूप में प्रकट करता है, मानो सारा संसार ही बदले में आत्मीयता हमारे ऊपर उँड़ेल रहा हो ।

आनन्द की उपलब्धि केवल एक ही स्थान से होती है वह है आत्मभाव । उसे इच्छानुसार किसी पर भी कितनी ही सघनता के साथ आरोपित किया जा सकता है । यदि यह विश्वास रखा जा सकता है कि अपनी मान्यता विश्व ब्रह्माण्ड में टकरा कर अपने ही पास वापस लौट आयेंगी । आत्मीयता ही प्रसन्नता, प्रफुल्लता और पुलकन है । उसका अभीष्ट मात्रा में निरन्तर उपलब्ध करते रहना पूर्णतया अपने हाथ की बात है । शर्त इतनी ही है कि अपना आरोपण सच्चा, निस्वार्थ और गहरा हो ।

समर्पण का आनन्द और उसकी अनुभूति

भक्तियोग में पूर्णता 'शरणागति' को दी गयी है। योगों में इसे समर्पण योग गिना जाता है । वेदान्त में इसे अद्वैत कहा जाता है । अद्वैत अर्थात् दो को मिलाकर एक कर देना । इसका स्वरूप भी यही बनता है कि या तो 'तू' को 'मैं' में परिवर्तित कर लिया जाय या फिर 'मैं' को तू बना लिया जाए, अद्वैत अर्थात् दो का न रहना । इसे दूसरे शब्दों में एकात्म भाव भी कहा जा सकता है ।

मिश्रण से एक नई वस्तु बनती है । नीला और पीला रंग मिलकर हरा बन जाता है । रात्रि और दिन का मिलन संध्याकाल कहलाता है, जिसमें दोनों अवधियों का सम्मिश्रण रहता है । नमक और मिर्च मिलकर एक तीसरे प्रकार का चटनी जैसा स्वाद बनाते हैं । शरणागति या समर्पण के सम्बन्ध में भी यही बात है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

४.५५ ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ

आग और ईंधन के सम्मिश्रण से लपटें उठने लगती हैं । वह न तो पूर्णतया ईंधन वर्ग में आती है और न उसे विशुद्ध अग्नितत्व ही कहा जा सकता है । नर मादा के संयोग से बालक उत्पन्न होता है । वह दोनों के संयुक्त प्रयास का प्रतिफल होता है । न उसमें माता की सभी विशेषताएँ होती हैं और न पिता की । वैसे दोनों के गुणों का बहुत हद तक उसमें बाहुल्य पाया जाता है ।

मुक्ति के चार रूप हैं । सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और अन्तिम सायुज्य । सायुज्य में जीव और ब्रह्म की एकता हो जाती है । फिर भी किसी का पूर्णतया समापन नहीं होता । समाप्त हो जाय तो फिर उस मिलन के आनन्द की अनुभूति कौन करे ? यदि उसकी समाप्ति हो चले तो ब्रह्म अपने को भारी भले ही अनुभव करे पर जीव का तो आत्यन्तिक समापन हो जाएगा । यह स्थिति किसी को भी अभीष्ट नहीं । सुख यौवन उत्कर्ष की चाह तो रहती है, पर किसी को भी यह स्वीकार नहीं कि उसकी अपनी अनुभूति रहे ही नहीं । इसलिए भक्तजन 'सायुज्य' मुक्ति की कल्पना कदाचित् ही करते हैं । उन्हें 'सालोक्य' भगवान के लोक में रहने की 'साामीप्य' उनके समीप रहने की 'सारूप्य' उनके समान रूप कलेवर पाने की अभिलाषा ही रहती है, ताकि वे अपने विकसित स्थिति का आनन्द उपलब्ध कर सकें ।

समर्पण को ही मुक्ति की पूर्व स्थिति माना गया है । अपने आपको दूसरे के हाथ में सौंप देने का भी अपना आनन्द है । विशेषतया तब जब किसी महान-शक्ति के हाथों में अपने को सौंपा गया हो । इसकी प्रतिक्रिया तत्काल यह देखने को मिलती है दूसरा पक्ष भी अपने को उसी प्रकार सौंप देता है और दोनों के सम्मिश्रण में एक अति आनन्द-दायक स्थिति बनती है । विवाह से पूर्व पति-पत्नी का अस्तित्व सर्वथा पृथक होता है । दोनों एक दूसरे से परिचित तक नहीं होते । ऐसी दशा में स्वार्थों का समन्वय तो बन ही कैसे पड़े ? जब विवाह बंधन में वे दोनों बँध जाते हैं तो ''एक प्राण दो शरीर'' जैसा अनुभव करने लगते हैं । दोनों का एक दूसरे के शरीर, मन तथा वैभव पर अधिकार हो जाता है । जो चाहता है वह साथी को भी इच्छानुरूप चला लेता है । एकाकी मन की तुलना में यह स्थिति दोनों के लिए ही अधिक आनन्द और साहस प्रदान करती है । एक और एक मिलकर जड़ पदार्थ तो दो होते हैं, पर जीव तो सर्वतोभावेन समर्थ और असाधारण शक्ति उत्पन्न करता है और एक-एक मिलकर ग्यारह बनने का गणित तो प्रत्यक्ष रूप से सार्थक हुआ सिद्ध करता है ।

दूध में पानी मिला देने पर पानी का स्वरूप और भाव बढ़ जाता है । भक्त के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है । वह घटिया होने पर भी बढ़िया की संगति में अपनी गरिमा से अनेकों गुनी अभिवृद्धि कर लेता है । लोहा पारस को छूकर सोना बनता है, भले ही वह स्वयं पारस न बन पाये पर लोहे की स्थिति से तो बहुत अधिक ऊँचा उठकर स्वर्ण कहलाने का अधिकारी बनता है ।

सैन्यबल अनुशासन पर निर्भर है । सेनापति की आज्ञा ही उस समुदाय के सभी सदस्यों को मान्य होती है । वे उसमें न तो मीनमेख निकालते हैं और न अपने निजी स्वार्थ को हानि पहुँचाने की बात सोचते हैं । सेनाध्यक्ष का आदेश ही उनके लिए सब कुछ होता है । भर्ती होते समय उन्हें यही प्रथम पाठ पढ़ाया जाता है कि अधिष्ठाता के अनुशासन का प्राणपण से पालन करना है । इससे किसी के नागरिक या मौलिक अधिकारों का हनन नहीं होता । यह प्रश्न तब उठता है जब सेनापति का अपना कोई निजी स्वार्थ काम करता हो । यदि ऐसा नहीं है तो फिर अनुशासन ही वह प्रधान शक्ति रह जाती है, जिसके आधार पर सेना को चमत्कारी सफलताएँ प्राप्त करने का अवसर मिलता है । यदि आरम्भ में ही स्वार्थों की रस्साकसी बनी रहे तो उसके साथ किसी आदर्श को नहीं जोड़ा जा सकता । तब तो वह मात्र व्यवसाय भर ही बनकर रह जाएगा । उसे वेश्यावृत्ति के नाम से भी जाना जा सकेगा । ऐसी दशा में कोई व्यावसायिक सौदेबाजी भी सम्भव हो सकती है । शरणागति या समर्पण जैसे उच्चकोटि के शब्दों का प्रयोग उस सहचरत्व में खोजा नहीं जा सकता है ।

समर्पण का तात्पर्य है-अनुशासन पालन । यह छोटे पक्ष को स्वीकार करना होता है, क्योंकि उसकी योग्यता, इच्छा, स्थिति सभी कुछ वरिष्ठों की तुलना में घटित होती हैं । अध्यापकों का आदेश छात्रों को मानना पड़ता है । यदि कहीं छात्र ही अध्यापक को अपनी मर्जी पर चलाये तो समझना चाहिए कि अध्यापक और छात्र दोनों का ही बंटाढार हुआ । अफसर का कहना मातहत मानते हैं यदि मातहत ही अफसर पर हुक्म चलाने लगे तो सारी व्यवस्था ही गड़बड़ा जाएगी ।

उच्च पदासीन होने के लिए योग्यता की परीक्षा होती है और प्रतिस्पर्धा में उतर कर अपनी वरिष्ठता सिद्ध करनी पड़ती है । इसी आधार पर चुनाव होते हैं । इससे बचकर कोई चुनावकर्त्ता की खुशामद के सहारे ही अपना काम बनाने के लिए चले तो उसे अवांछनीय ही माना जाएगा और बदले में भर्त्सना ही मिलेगी । ईश्वर की शरणागति का यह आधार नहीं हो सकता कि कामनाओं की पूर्ति के लिए गिड़-गिड़ाया जाय और पात्रता न होते हुए भी बढ़-चढ़ कर उपहार-वरदान पाने के लिए नाक रगड़ी जाय । इसे पूजा की, भक्ति की, भावना की श्रेणी में नहीं गिना जा सकता ।

शरणागति-समर्पण तभी वास्तविक माना जा सकता है, जब अपने तन, मन, धन को नियन्ता की मर्जी से चलने के लिए छोड़ दिया जाय । यहाँ एक बात भी स्मरणीय है कि भगवद् इच्छा सदा उच्चस्तरीय ही होती है और उसके साथ उत्कृष्ट आदर्श जुड़े होते हैं । जब भी अन्तराल में ऐसा उत्साह उभरे तो उसे ईश्वर की मर्जी समझना चाहिए । किन्तु यदि निकृष्टता का खुमार चढ़ा हो तो समझना चाहिए कि यह शैतान की करतूत है । कई व्यक्ति अपने भीतर से उठने वाले अनौचित्य को भी ईश्वर की इच्छा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानकर कुकृत्य करने पर उतारू हो जाते हैं । उन्हें समझना चाहिए कि निकृष्टता ही ईश्वर आदर्श बनकर धोखा दे रही और कुकृत्य कराकर पतन के मार्ग में धकेलने की विडम्बना रच रही है ।

शरणागति से तात्पर्य है-नि:स्वार्थ होना । उच्चस्तरीय आदर्श को अपने चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में ओतप्रोत कर लेना । इससे कम में ईश्वरीयसत्ता का आत्म-सत्ता में समावेश बन ही नहीं पड़ता ।

संकीर्ण स्वार्थपरता कई बार ईश्वर-इच्छा का आवरण ओढ़कर मनुष्य पर आवेश की तरह चढ़ती और कुकृत्य करती है । इस भ्रांति से सदा हर किसी को बचना चाहिए ईश्वर इच्छा होने की एक ही कसौटी है कि अपने आपको अधिकाधिक सद्भावनाओं से ओत-प्रोत किया जाये और बुद्धि को ऐसा निर्णय करने दिया जाय, जिससे सत्प्रवृत्तियों का संवर्धन-होता हो, सत्कर्म बन पड़ता हो और नीति-मर्यादा एवं शालीनता का परिपालन होता हो । भगवद समीपता का मार्ग सर्वतोमुखी सदाशयता है। समर्पण करने वालों का यही इष्ट और लक्ष्य होता है ।

ईश्वरानुभूति से ब्रह्मानंद का रसास्वादन

अनुभूति का क्षेत्र बुद्धि नहीं है । मन और बुद्धि तो दृश्य जगत के सम्बन्ध में सिर्फ तर्क कर सकते हैं । तर्क अनुभूति में सहायक भले ही हो जावे पर अनुभूति करा ही देगा यह निश्चित नहीं है । इसीलिए हमारे शास्त्रकारों का कहना है-

अचिंत्या खलु ये भावाः,
न तांस्तु तर्केण चिन्तयेत् ।

जिन भावों को मन और बुद्धि ग्रहण नहीं कर सके तो उनका निर्णय तर्क द्वारा नहीं करना चाहिए । इसीलिए तर्क के स्थान पर आचरण को महत्व दिया गया है । क्योंकि हो सकता है जिसे तर्क सिद्ध कर दे वह आचरण की कसौटी पर ठीक न उतरे और तर्क के द्वारा जिसे सिद्ध न किया जा सके उसकी आचरण द्वारा अनुभूति मिल जाय ।

अनुभूति रूपी फल तो आचरण रूपी कार्य का है इसे सभी जानते हैं और ऐसी अनेक अनुभूतियाँ हैं जिनका वर्णन शब्दों द्वारा हो ही नहीं सकता । रसानुभूति की बात ले ली जावे तो खट्टा, मीठा, तीखा, कड़वा, कसैला एवं नमकीन इस प्रकार छह रस हैं । क्या कोई भी व्यक्ति इनके स्वाद को सिद्ध कर सकता है और सो भी तर्क द्वारा? कदापि नहीं । बल्कि इन रसों को बतलाने के लिए इनका प्रयोग कराया जाता है । वस्तु दी जाती है खाने को, स्वाद लेने पर कहा जाता है वह खट्टा है, मीठा है आदि । उस अनुभूति को प्राप्त करने के अनन्तर क्यों कोई व्यक्ति इसके बारे में कि यह अमुक रस ही है, सिद्ध कर सकता है, सिर्फ तर्क के आधार पर नहीं । इसके लिए भी अनुभूति का ही रसास्वादन किया जाता है । मान लो कि गुड़ क्षारीय होता है । मान लो कि एक कहता है कि गुड़ मीठा होता है और दूसरा कहे कि क्षारीय होता है । मीठे और क्षारीय पदार्थों के साथ कर्तृत्व के साथ सिद्ध करना चाहे, तो एक स्थल ऐसा आ जाता है कि जहाँ यह कहने को मजबूर होना पड़ता है कि यदि विश्वास न हो तो चख कर देख लो । अत: आचरण बिना तर्क यहाँ निस्सत्व हो जाता है ।

तब ईश्वर के अस्तित्व को तर्क के आधार पर सिद्ध करने से उसकी अनुभूति हो ही कैसे सकती है । उसकी सिद्धि के लिए या तो उसमें अनुभूति के लिए या तो स्वयं साधना करने की आवश्यकता होती है ।

इस बात की तो सबको अनुभूति है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने किसी निश्चित कार्यक्रम के आधार पर रहा है । यहाँ तक उस निश्चित कार्यक्रम के विपरीत जब कोई भी व्यक्ति कदम उठाना चाहता है तो उसे सफलता नहीं मिलती, विफलता ही हाथ आती है । जबकि निश्चित कार्यक्रम के आधार पर ही व्यक्ति संचालित हो रहा है । तब स्वभावत: यह प्रश्न हो सकता है कि कौन है इसका संचालक और उसका अवश्य यह उत्तर मिलता है कि अवश्य कोई न कोई इसका संचालक है और वह संचालक हमारा कहीं बाहर से संचालन नहीं करता बल्कि अन्दर प्रविष्ट होकर वह हमारी क्रिया शक्ति को प्रेरणा देता है, संचालित करता है । संचालक शक्ति हमारे अन्दर है और अज्ञात प्रेरणाओं द्वारा हमें चला रही है, यहाँ तक उन प्रेरणाओं से हम बँधे से हैं ।

सभी कुछ न कुछ करते हुए दिखाई देते हैं । लेकिन प्रेरणाओं की अनुभूति सबको नहीं होती इसीलिए क्षोभ दु:ख और वेदनाओं की भरमार है । जिस समय व्यक्ति अपनी वृत्तिओं को अन्तर्मुखी कर लेता है उसे कार्य की संचालक प्रेरणाओं की अनुभूति होना आरम्भ हो जाती है। और इस अनुभूति के बाद वे तमाम कार्य करते रहने के बाद भी, उसे शोक, दु:ख, क्षोभ आदि से भी छुटकारा मिल जाता है । तब उसके अन्दर आनन्द की वृत्ति जाग्रत होती है और सुखानुभूति बढ़ जाती है फिर तो जो प्रेरणा उसे अज्ञात अवस्था में मिलती थी वे उसे प्रत्यक्ष होने लगती है । वह समझने लगता है कि भगवान या ईश्वर उसके साथ बात करते हैं । उसे रास्ता बतलाते हैं और उस पर साथ-साथ ले चलते हैं । एक अटूट श्रद्धा से भरा हुआ वह व्यक्ति अपने चारों ओर प्रकाश देखता है । वह अपने एकाकीपन को भूल जाता है, अपनी सामर्थ्य और अपनी शक्ति का ज्ञान प्राप्त कर लेता है । मानव जीवन की चरम सिद्धि अनुभूति है ।

अनुभूति के साथ श्रद्धा का सम्मिश्रण रहता है । श्रद्धा विश्वास के साथ चलती है या अनुभूति के । बिना अनुभूति विश्वास नहीं होता और बिना विश्वास के अनुभूति नहीं होती । पर असल में देखा जाय तो ईश्वर की अनुभूति प्रत्येक मानव में होती है । जब तक व्यक्ति की वृत्तियाँ बहिर्मुखी रहती हैं तब तक अनुभूति प्रत्यक्ष

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं होती, मन और बुद्धि अपना कार्य बाह्य जगत में ही करते रहते हैं लेकिन जैसे-जैसे इनकी दिशा बाहर से भीतर की ओर बदलती जाती है वैसे-वैसे ही अप्रत्यक्ष से अनुभूति प्रत्यक्ष होती जाती है और यही ईश्वर दर्शन या भगवत्प्राप्ति है ।

जैसा कि पहले कहा गया कि अनुभूति के लिए आचरण की आवश्यकता होती है । यह आचरण बहिर्मुखी वृत्तियों को अन्तर्मुखी करने के लिए है जिससे प्रेरणा स्रोत जो कि अन्दर है मन, बुद्धि और चित्त का उसके साथ सम्बन्ध स्थापित हो जाये और ये तीनों अर्थात् मन-बुद्धि-चित्त उस सम्बन्ध को न केवल स्थापित कर लें बल्कि प्रेरणाओं का जो स्रोत है उससे प्रेरणाएँ भी ग्रहण करना आरम्भ कर दें ।

प्रेरणाएँ अन्दर से आती हैं लेकिन ग्रहण करने की क्षमता न होने के कारण उनकी प्रथम अनुभूति नहीं हो पाती । अन्तर्मुखी वृत्ति हो जाने से मनुष्य में प्रेरणाओं को ग्रहण करने की क्षमता बढ़ती है । क्षमता के साथ-साथ अनुभूति बढ़ती है और प्रशंसा का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है ।

अनुभूति जितनी गहरी होती है जीवन में उतनी ही मात्रा में रस की वृद्धि होती है । जहाँ अनुभूतिहीनता में मानव जीवन से उकता कर उसे नष्ट करने की ओर बढ़ता या कदम उठाता है वहाँ अनुभूति पाते ही वह जीवन को अपने अन्दर अधिक से अधिक भर लेने के लिए उत्सुक रहता है । उत्सुकता या प्रफुल्लता का यह चिह्न भगवत प्राप्ति का ही निदर्शक है ।

आचरण के लिए श्रद्धा और विश्वास की आवश्यकता है लेकिन ये दोनों तर्क पर प्रतिष्ठित नहीं होने चाहिए । यह बतलाया जा चुका है कि यह ज्ञान अप्रत्यक्ष अनुभूति का ही एक हिस्सा है । उसे बढ़ाने के लिए तर्क के साथ सम्बन्ध स्थापित न करके श्रद्धा के साथ नाता जोड़ना चाहिए । वृत्तियों की अन्तर्मुखी करने की साधना का यहीं से श्रीगणेश होता है और यहीं से प्रकाश की किरणें मानस पर उतर या दिखाई देना आरम्भ हो जाती हैं।

सच्चिदानन्द-परब्रह्म-परमात्मा

ब्रह्म को सत् चित आनन्द कहा गया है । सत्-एग्जिस्टैन्स-स्थायित्व, चित्-कान्शसनैस-चेतन । आनन्द ब्लिस एब्सौल्यूट-अन्तःउल्लास है । ईश्वर इन्हीं विशेषताओं से सम्पन्न है । जब जीवात्मा को अपने सम्बन्ध में भी ऐसी ही अनुभूति होने लगे तो समझना चाहिए कि ब्रह्म और जीव की एकता बन रही है । आत्मा में परमात्मा का अवतरण हो रहा है ।

सामान्यतया जीव पर शरीरध्यास ही छाया रहती है । पंच तत्वों से बनी काया में रमा होने के कारण वह अपने आपको नश्वर शरीर ही मानता है । उसके सुखों- दुःखों को ही अपना सुख-दुःख समझता है । पदार्थों की लाभ-हानि ही उसे अपनी लाभ-हानि दीखती है । शरीर के सम्बन्धी ही अपने सम्बन्धी लगते हैं । पदार्थ नश्वर है इसलिए वह अपने को भी पार्थिव होने के कारण मरण धर्मा मानता है । मरने पर दुःखी होता है और जन्म-दिन पर खुशी मनाता है । यह प्रकृति-परायण मायाबद्ध जीव की स्थिति है । आत्म-ज्ञान द्वारा जब इस स्थिति का अन्त हो जाता है और अपनी सत्ता 'सत्' अविनाशी दिखाई पड़ने लगती है तो शरीर और आत्मा के भेद पर विश्वास जमता है । तब भौतिक लाभ-हानि अपनी नहीं शरीर की-पराई प्रतीत होती है और अपने हित-अनहित को आत्म-कल्याण में-आत्म-सन्तोष में ढूँढ़ने लगता है। जिसकी मनःस्थिति इस दिशा में चलने-ढलने लगे, समझना चाहिए उसने ईश्वर के एक तृतीयांश से सम्पर्क साध लिया ।

ब्रह्म का दूसरा गुण है-चित । ईश्वर व्यक्ति नहीं चेतन शक्ति है । विचारों एवं भावों की उत्कृष्टता में-पवित्रता में ब्राह्मी सत्ता ज्योतिर्मय होती है । सौन्दर्य वस्तुओं में नहीं भावों में दीखने लगे, रस इन्द्रियों के माध्यम से नहीं भाव-सम्वेदना के रूप में मिलने लगे, चिन्तन के क्षेत्र में आदर्शवादी उत्कृष्टता ही छाई रहे तो समझना चाहिए कि लोभ और भय के कारण दुष्कर्म बन पड़ने और दुर्भाव उठने का आधार ही नष्ट हो गया । ब्राह्मी चेतना में सदाशयता एवं सज्जनता के ही तत्व भरे रहते हैं । जिसका भाव संस्थान इस प्रकार की कोमलता जितनी संचय कर सके समझना चाहिए, उसे उतने ही अनुपात में ब्रह्म सान्निध्य उपलब्ध हो चला ।

ब्रह्म की तीसरी धारा आनन्द है । आत्म-ज्ञानी उत्कृष्टता अपनाने वाला आन्तरिक दृष्टि से निरन्तर संतुष्ट-प्रसन्न रहेगा । दिव्य चिन्तन और दिव्य कर्त्तव्य में असाधारण रस है । प्रेम को परमेश्वर कहा गया है । प्रेम किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति असाधारण आसक्ति को समझा जाता है, पर वस्तुतः वह वैसा है नहीं । प्रेम में उदारता, आत्मीयता का गहरा पुट रहने से उसका व्यावहारिक स्वरूप निस्वार्थ सेवा-भावना बन जाता है । प्रेम को अपने प्रेम-पात्र के प्रति इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाना और व्यवहार करना पड़ता है । सीमित क्षेत्र में भी ऐसी बुद्धि रहे तो प्रसन्नता होगी, आत्म-सन्तोष रहेगा । यदि यह आत्मीयता का क्षेत्र व्यापक हो तो आनन्द की कमी नहीं रहेगी । कर्त्तव्य-पालन की प्रकृति हो तो परिणाम की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती वरन् चिन्तन एवं कर्म ही आनन्द का स्रोत बन जाता है और पग-पग पर अन्तःउल्लास की अनुभूति होती रहेगी । जो हँसता-हँसाता दिखाई पड़े, जो हल्की-फुल्की जिन्दगी जी रहा हो, जिसकी आँखों में आशा और उमंग चमकती हो, जिस पर आदर्शों की खुमारी छाई हो समझ लो इस आनन्दी जीव ने आनन्द-कन्द परमेश्वर की समीपता का लाभ लेना आरम्भ कर दिया ।

ईश्वरीय सान्निध्य की अनुभूतियाँ गोपनीय नहीं स्पष्ट होती हैं । वे भावमय-इमोशनल, स्फूर्तिदायक-इन्स्पायरिंग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही नहीं स्पर्शनीय-टेन्जिबल भी होती हैं । उसमें ईश्वर भक्त का अन्तरंग ही नहीं, बहिरंग भी डूबा होता है । आदर्शों को कर्म में छलकता हुआ, चिन्तन को व्यवहार में क्रियान्वित होते हुए सहज ही देखा जा सकता है ।

हृदयगुहा में होते हैं-परमात्मा के दर्शन

मानवी काय-संरचना का सबसे महत्वपूर्ण घटक हृदय है । भौतिक-विदों एवं अध्यात्मवेत्ताओं ने इसकी श्रेष्ठता को अपने-अपने ढंग से माना और उसे क्रमशः शरीर एवं आत्मा का, परमात्मा का केन्द्र-स्थल निरूपित किया है । शरीरशास्त्रियों के अनुसार भौतिक दृष्टि से हृदय सीने में बायीं ओर नाशपाती जैसे आकार की साढ़े तीन ग्राम की एक छोटी-सी माँसल संरचना है जो अपने रचना प्रयोजन के अनुसार समस्त शरीर को धमनियों और छोटी नलिकाओं द्वारा रक्त फेंकती और अशुद्ध रक्त को खींचती रहती है । इसकी हर धड़कन उस स्थान पर हाथ रखकर आसानी से पहचानी जा सकती है । इसी पर रक्तचाप की न्यूनाधिकता का प्रभाव पड़ता है और क्रियाकलाप थोड़ी देर के लिए रुकते ही प्राणान्त हो जाता है ।

अध्यात्म क्षेत्र का हृदय भौतिक हृदय से भिन्न है । तत्वदर्शियों ने इसे 'गुफा' कहा है । शतपथ ब्रा० ११-२-६-५ का सूत्र "तदिदं गुहेव हृदयम्" अर्थात् यह हृदय ही गुफा है, इस तथ्य की पुष्टि करता है । अन्धकार से प्रकाश की ओर, असत् से सत् की ओर और मृत्यु से अमृत की ओर जाने का मार्ग अन्तर्मुखी होकर इस दिव्य गुफा में प्रवेश करने पर ही प्राप्त होता है । षटचक्रों में इसे अनाहत चक्र का क्षेत्र माना गया है । इसे भौतिक हृदय की सीध में तनिक पीछे हटकर अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाये रहने वाला माना गया है । संक्षेप में यही अन्तराल या अन्तःकरण है-आदर्शवादी भाव संवेदनाओं का केन्द्र । रक्त संचार करने वाली ग्रंथि संरचना से यह सर्वथा भिन्न है । हिम्मत, साहस, बहादुरी, आत्मीयता, करुणा, उदारता, ममता आदि के संदर्भ में भी उसी आत्मिक हृदय का उल्लेख किया जाता है । इसी हृदय गुफा में एक ऐसी शक्ति काम करती है जो सन्मार्ग पर चलने से प्रसन्न-सन्तुष्ट हुई दिखाई पड़ती है और कुपंथ अपनाने पर खिन्नता, उद्विग्नता का अनुभव करती है । अन्तरात्मा की इसी परत में ईश्वरीय सत्ता को झाँकता हुआ देखा जा सकता है ।

मनीषियों के अनुसार मस्तिष्क में मात्र कल्पना और सूझ-बूझ उठती है, पर वह उपलब्ध ज्ञान और उत्पन्न हुए मन्थन द्वारा ही उत्पन्न होती है । दिव्य प्रेरणाएँ हृदय देश से ही उभरती हैं । ईश्वरीय संदेश वहीं मिलते हैं और वहीं से अविज्ञात प्रकृति रहस्यों की जानकारियाँ हस्तगत होती हैं । जिन वैज्ञानिकों ने अद्भुत आविष्कार किये हैं, उनसे जब पूछा गया कि ऐसा अनोखा विचार आपको कैसे हस्तगत हुआ तो उनमें से प्रत्येक ने यही कहा कि "यह भीतर से उभरा ।" भीतर शब्द से उनका तात्पर्य मस्तिष्क से नहीं वरन् अन्तराल में उभरने से है । यद्यपि दोनों परस्पर सम्बद्ध हैं । यही वह क्षेत्र है, जहाँ अतीन्द्रिय शक्तियों का भण्डार है । बुद्धि क्षेत्र से बाहर की कितनी ही बातें कभी-कभी ऐसी सूझ पड़ती हैं जो विलक्षण प्रतीत होती हैं, पर परीक्षा की कसौटी पर वे सही उतरती हैं । ऋद्धि-सिद्धियों का क्षेत्र यही माना गया है । जिस किसी का यह क्षेत्र जग पड़ता है या जो व्यक्ति हृदय गुफा में प्रवेश पा लेता है उसे अविज्ञात भी-भूत और भविष्य भी उसी प्रकार दृष्टिगोचर होता है मानो उसकी प्रत्यक्ष जानकारी उन्हें पहले से हो रही है ।

मनोविज्ञानी-परामनोविज्ञानी जिसे सुपरचेतन कहते हैं और जिसकी संगति अलौकिक आभासी के साथ जोड़ते हैं वह मस्तिष्क का नहीं वरन् अन्तःकरण का हृदय का क्षेत्र है । मानसिक संरचना में चेतन और अचेतन के दो ही पक्ष हैं । मस्तिष्कीय संरचना का दो भागों में विभाजित हुआ है। अतः उसका कार्य-क्षेत्र ज्ञानवान् सचेतन और स्वसंचालित अचेतन के साथ ही जुड़ता है । जिसे अविज्ञात कहा गया है, जिसे सुपरचेतन भी कहते हैं वह मनीषियों के अनुसार हृदय गुफा-हिरण्यमयकोश ही है ।

उसे किन्हीं ग्रंथों में सूर्य चक्र भी कहा गया है । जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश उदय होने पर अन्धकार तिरोहित हो जाता है और प्रत्येक वस्तु प्रत्यक्ष दीख पड़ती है उसी प्रकार इस कोश में प्रकाशित दिव्य ज्योति की छत्र-छाया में व्यक्ति अपना स्वरूप, लक्ष्य और कर्त्तव्य भी देख सकता है । अभीष्ट वस्तु की उपलब्धि अपने भीतर अन्तःकरण में ही होती है । तप करने से लेकर ईश्वर दर्शन करने तक प्रयोजन पूर्ण करने के लिए हृदय गुफा रूपी तीर्थ को, तपोवन को ही एकमात्र उपयुक्त स्थान माना गया है । ब्रह्मोपनिषद ४-५ के अनुसार हृदय में समस्त देवता निवास करते हैं । हृदय में ही प्राण और प्रकाश है । शंख संहिता का कथन है-"हृदय देश में परम ज्योति प्रकाशवान है । उसी में समस्त देवता निवास करते हैं । जीवात्मा का आश्रय स्थल यही है।" उसी हृदय देश में अँगूठे के अग्र भाग के बराबर आकार में जलती ज्योति के रूप में कठोपनिषद् का ऋषि उसका दर्शन करता है ।

नादबिन्दूपनिषद के ऋषि इसी हृदय क्षेत्र में अंगुष्ठ मात्र उस परम ज्योति का ध्यान करने का निर्देश करते हैं । गीता १५-१० के अनुसार प्रयास करने पर योगीजन अपने हृदय क्षेत्र में स्थित आत्मतत्व को खोज निकालते हैं पर जिनका हृदय शुद्ध नहीं है, भावनाएँ दूषित हैं वे प्रयत्न करने पर भी इस आत्मा को नहीं जान पाते । अन्तःकरण की पवित्रता आत्मविद् होने की अनिवार्य शर्त है ।

हृदय क्षेत्र अन्तराल को दिव्यलोक भी कहते हैं । प्रख्यात ग्रीक दार्शनिक प्लेटो के अनुसार मनुष्य की आत्मा ईश्वर से सीधे प्रकट होकर इसी दिव्य लोक में प्रवेश करती और स्थूल शरीर से जुड़ती है । उनका कहना है कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवात्मा का धरती पर जब सर्वप्रथम अवतरण होता है तो वह दिव्य सूक्ष्म शरीर वायवीय शरीर रूप में अवतरित होकर स्थूल देह में प्रवेश करता है । यह सूक्ष्म शरीर आत्मा का पारलौकिक वाहन कहा जाता है । ईश्वर, जो चराचर जाग्रत का केन्द्र है, उसी के आदेश से जीवात्मा मनुष्य के हृदय में प्रवेश करता है और अपने पारलौकिक वाहन-अर्थात् सूक्ष्म शरीर के माध्यम से स्थूल काया से जुड़ता है, उसे नियंत्रित संचालित करता है ।

हृदस्थ आत्मा को परमात्मा से मिलने की इच्छा रहती है । मनुष्य आन्तरिक शान्ति के लिए उसे जहाँ-तहाँ जिस-तिस निर्जीव जड़ पदार्थ-साधनों में ढूँढ़ता भी रहता है, पर हस्तगत कुछ नहीं होता । व्यक्तियों का परिचय भी शरीर रूप में ही हो पाता है । वे कभी रुष्ट या पृथक् भी हो सकते हैं, होते रहते हैं । ऐसी दशा में अभीष्ट लक्ष्य की पूर्ति नहीं हो पाती और न जिनकी तलाश है, वह परमात्मा ही मिल पाता है ।

सर्वव्यापी होते हुए भी ईश्वर को किसी ऐसे स्थान पर जब नहीं पाया जा सकता तो फिर उसका मिलन कहाँ सम्भव हो ? इस समस्या को सुलझाते हुए तत्वदर्शियों ने कहा है ऐसा स्थान केवल अपना हृदय है जहाँ आत्मा का परमात्मा से साक्षात्कार होता है । यही दिव्य गुफा है, मन्दिर है । जहाँ सूक्ष्म रूप में परम ज्योति के दर्शन होते हैं । गीता (१०-२०, १३-१७, १५-१५, १८-६१) में भगवान कहते हैं - ''ईश्वर सब प्राणियों के हृदय देश में रहता है । उसी का अनुग्रह प्राप्त करने से परम शान्ति का अनुभव होता है ।'' व्यास भाष्य में उल्लेख है उस परमेश्वर को देवालयों सरिताओं, तीर्थों, वनों में, पर्वतों में कहीं भी ढूँढ़ते रहा जाए पर जब वह मिलेगा तो हृदय गुफा ही उसका सुस्थिर स्थान दृष्टिगोचर होगा । जो वहाँ उसे ढूँढ़ता है, तृप्त होकर रहता है । ''

अन्य शास्त्रकारों, आप्तपुरुषों ने भी इसकी पुष्टि की है। योगवासिष्ठ का कथन है-जो हृदय गुफा में निवास करने वाले भगवान को छोड़कर अन्यत्र ढूँढ़ता फिरता है, वह हाथ की कौस्तुभमणि की उपेक्षा करके जहाँ-तहाँ काँच के टुकड़े बीनते फिरने वाले के समान है ।

कस्तूरी मृग की अपनी नाभि में ही है पर उस सुगन्ध को वह जहाँ तहाँ ढूँढ़ता, फिरता है। यही स्थिति मनुष्य की है। परमात्मा उसके अपने अन्तःकरण में बैठा है पर वह उसे बाह्य जगत में खोजता फिरता है। तत्ववेत्ता उस अविनाशी परमेश्वर को अपनी आत्म-गुहा में ही पाता और कृत-कृत्य होता है । मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है-''इस सम्पूर्ण जगत को बनाने वाला और सब में समाया हुआ परमेश्वर ढूँढ़ने पर हृदय गुफा में ही विराजमान मिलता है। वह प्रकाश स्वरूप है, जो उसे देखता है वह उसी में विलीन होकर रहता है। परन्तु जो लोग इस तथ्य को नहीं जानते उनकी गणना शास्त्रकार अन्धों में करते हैं ।''

श्वेताश्वरतर उपनिषद् में उल्लेख है-''जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हृदय प्रदेश में प्रवेश करके विद्यमान महेश्वर को नहीं देख पाता, वह अन्धे के समान है ।'' ऐसे लोगों को न तो ईश्वर साक्षात्कार का सुयोग मिलता है और न चिरस्थाई सुख-शान्ति ही उपलब्ध होती है । वे जहाँ-तहाँ भटकते ही रहते हैं ।

जावाल्युपनिषद् का कथन है कि परमेश्वर को हृदय देश में ढूँढ़ो । अन्यत्र मत भटको । वह प्रकाश रूप में आपके भीतर ही जाज्वल्यमान है ।

ज्ञानविज्ञान के उद्गम केन्द्र अन्तःकरण में स्थित परब्रह्म को जो हृदय में देखता है और उनका सान्निध्य अपनाता है, वह तद्रूप हो जाता है, ऐसा तैत्तिरीय उपनिषद् का कथन है । इसी की पुष्टि की गई है और कहा गया है कि अंगुष्ठ आकृति की प्रकाश ज्योति हृदय देश में सदा जलती रहती है । उसी के फैले हुए प्रकाश में ध्यान करने वाला साधक अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है ।

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए ही हृदय क्षेत्र को अध्यात्म शास्त्रों में अत्यधिक महत्ता दी गई है और उसे निर्मल-पवित्र बनाये रखने पर जोर दिया गया है । महात्मा बुद्ध ने तो अन्तःकरण की पवित्रता के लिए करुणा, मैत्री, मुदिता और उपेक्षा जैसे चार ब्रह्मविहार अपने शिष्यों के लिए अनिवार्य विधान बताये थे । महर्षि पतंजलि ने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि पाँच चरणों की व्यवस्था पहले बनायी जिससे साधक अपने अन्तराल को उसमें सन्निहित भाव-संवेदनाओं को पवित्र एवं उत्कृष्ट बना सके । इसके बिना आत्म-साक्षात्कार अथवा ईश्वर दर्शन सम्भव नहीं ।

ताओ धर्म के प्रणेता मनीषी लाओत्से कहते हैं ''मनुष्य अपने पथ को अविकारी बनाए, अशुद्धता से बाहर निकल आए तो फिर स्वतः ही आत्मसाक्षात्कार हो जाता है, जो वस्तुतः ईश्वर दर्शन ही है।'' वे कहते हैं कि ईश्वर असीम है, अनन्त है, रोम-रोम में समाया हुआ है । हम मात्र उसकी अनुभूति अपने हृदय स्थल में कर सकते हैं, उसे कोई नाम नहीं दे सकते । इसीलिए वह सनातन होने के साथ-साथ अविकारी नहीं है ।

अतीन्द्रिय क्षमताएँ, प्रतिभा, कुशलता, विशिष्टता बाहर से नहीं उतरती भीतर से ही उभरती हैं । ये आत्मसाक्षात्कार की ही चमत्कारी फलश्रुतियाँ हैं । प्रसुप्त रूप में उन समस्त सम्भावनाओं के बीज इसी हृदय प्रदेश में प्रसुप्त स्तर पर पड़े हुए हैं । उसमें प्रवेश पाकर जो जिस मात्रा में उन्हें जगा लेते हैं उसी अनुपात में देवात्मा होने का गौरव प्राप्त करते हैं ।

ईश्वर दर्शन पवित्र अन्तःकरण में

प्रत्यक्षवादियों की मान्यता है कि जिन चीजों का अस्तित्व है वे प्रत्यक्ष दिखायी पड़ती हैं । यही स्थूल कसौटी वे ईश्वर के लिए भी प्रयुक्त करते हैं तथा उस पर खरा नहीं उतरने पर वे उस परमसत्ता को मानने से इनकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते हैं। गहराई से विचार करने पर ज्ञात होता है कि ईश्वरीयसत्ता का परिचय पाने के लिए बनाया गया यह मापदण्ड कितना उथला, अविवेकपूर्ण एवं अवैज्ञानिक है।

हर अस्तित्ववान चीज के मापदण्ड के लिए एक सुनिश्चित पैमाना होता है। सही पैमाने द्वारा ही दृश्य अथवा अदृश्य वस्तुओं का यथार्थ परिचय पा सकना सम्भव है। यदि निर्धारित पैमाना ही गलत सिद्ध हुआ तो भला सम्बन्धित वस्तु का सही विश्लेषण कर सकना कैसे सम्भव है? भार मालूम करने के लिए विभिन्न प्रकार के बाँट प्रयोग किए जाते हैं। वस्तुओं की लम्बाई-चौड़ाई, ऊँचाई-गहराई मापने के लिए गज, फीट, मीटर जैसे मापदण्ड प्रयुक्त होते हैं। कोई वस्तु कितना स्थान घेरती है, यह उसका आयतन माना जाता है। वातावरण की सर्दी-गर्मी मनुष्य के शरीर का तापक्रम बैरोमीटर, थर्मामीटर जैसे यन्त्रों से ज्ञात होते हैं। समय-काल मापन, के लिए दो विधियाँ प्रचलित हैं, एक पुरातन, दूसरी नवीन । पुरातन प्रक्रिया सूर्य की गति पर आधारित है जबकि नवीन मनुष्यकृत घड़ियों पर । गतिमापक यन्त्रों द्वारा वस्तुओं की गति मालूम की जाती है । विद्युत, चुम्बकत्व, गुरुत्वाकर्षण, प्रकाश, ध्वनि जैसी शक्ति को नापने के लिए विभिन्न प्रकार के यन्त्र प्रचलित हैं ।

भौतिक वस्तुओं एवं शक्तियों का परिचय ठीक तरह प्राप्त कर सकना तभी सम्भव है जबकि निश्चित वस्तु अथवा शक्ति के लिए निर्धारित पैमाने का प्रयोग किया जाए । मापदण्ड के लिए चुना गया आधार ही गलत हो तो सम्बन्धित वस्तु की सही जानकारी नहीं प्राप्त की जा सकती । भारमापक यन्त्रों द्वारा वस्तु की लम्बाई, चौड़ाई अथवा गहराई मालूम करने के प्रयास में असफलता एवं निराशा ही हाथ लगेगी । लम्बाई, चौड़ाई मापने वाले मापक से भला वस्तुओं का भार कैसे निकाला जा सकता है ? थर्मामीटर से किसी चीज की गति मालूम की जाये तो इस प्रयास को उपहासास्पद ही कहा जाएगा । अभिप्राय यह है कि निश्चित जानकारी के लिए निर्धारित पैमाने का प्रयोग करने पर ही अभीष्ट प्रयोजन में सफलता मिलती है ।

थोड़ा और आगे बढें तो ज्ञानेन्द्रियों का क्षेत्र सामने आता है जहाँ कि भौतिक यन्त्रों की पहुँच नहीं है । रूप, रंग, स्पर्श, तन्मात्रा की अनुभूतियाँ सचेतन इन्द्रियों को होती है । आँखें दृश्य देखती हैं । कान ध्वनियों को सुनते हैं । घ्राणेन्द्रियाँ अच्छे-बुरे गन्ध की अनुभूति कराती हैं । जिह्वा स्वाद का बोध कराती है । त्वचा शीत, गर्मी का अनुभव करती है। ज्ञानेन्द्रियों से होने वाली अनुभूतियाँ किसी यन्त्र के माध्यम से प्राप्त करना चाहें तो ऐसा सम्भव नहीं है। इस प्रकार का कोई भी वैज्ञानिक उपकरण अब तक नहीं बन सका है जिनसे ज्ञानेन्द्रियों का काम लिया जा सके । इन इन्द्रियों की भी भौतिक उपकरणों की भाँति सीमा एवं मर्यादा है । कान सुनने की ही भूमिका निभा सकते हैं-देखने अथवा बोलने की नहीं । नेत्र दृश्यों को देख सकते हैं-सुनने अथवा सूँघने की नहीं । घ्राणेन्द्रिय द्वारा गंध के अतिरिक्त देखने अथवा बोलने के कार्य में असफलता ही हाथ लगेगी । अर्थात् शरीर की ज्ञानेन्द्रियाँ अपनी निर्धारित सीमा में निर्धारित भूमिका निभा पाने में ही सक्षम हैं ।

थोड़ा और भी गहराई में चलें तो सूक्ष्म-जगत का क्षेत्र सामने आता है, विचारणा एवं भावना का । इनके स्वरूप एवं सामर्थ्य की जानकारी पूर्णतया प्राप्त कर सकना वैज्ञानिकों के लिए अभी सम्भव न हो सका है । मनोवैज्ञानिक क्षेत्र की नवीनतम जानकारियाँ भी अपनी बाल्यावस्था में हैं । मात्र इतना जाना जा सका है कि भौतिक शक्तियों की भाँति विचार एवं भाव भी एक शक्ति है जो मनुष्य को असामान्य रूप से प्रभावित करती है । तथ्य से परिचित होते हुए भी वैचारिक क्षमता एवं भाव-शक्ति को नापने के लिए अब तक कोई यन्त्र आविष्कृत नहीं हो सका है । एक ही वातावरण में पले एवं एक ही माता-पिता के सन्तान होते हुए भी एक बच्चा मेधावी, सुसंस्कृत एवं महान बन जाता है, जबकि दूसरा दुष्प्रवृत्तियों में निरत होकर परिवार एवं समाज के लिए भारभूत सिद्ध होता है । मनोविज्ञान मूलभूत प्रवृत्तियों को प्रेरणा का कारण मानकर चुप हो जाता है । भली-बुरी प्रवृत्तियाँ क्यों उत्पन्न होती हैं ? एक व्यक्ति के मन में सद्मार्ग पर चलने की तथा दूसरे को दुष्कर्म करने की प्रेरणा क्यों उठती है, इसका रहस्योद्घाटन अभी भी सम्भव नहीं हो सका है । उनका स्वरूप, सामर्थ्य की जानकारी के प्राप्त करने के लिए यदि वैज्ञानिक यन्त्रों का सहारा लिया जाय तो कार्य असम्भव ही होगा । मन की सूक्ष्म एवं सूक्ष्मतम परतों की उधेड़-बुन करने, विचारों एवं भावनाओं के स्तर स्वरूप एवं सामर्थ्य समझने के लिए मनोविज्ञान को अभी और भी गहराई में प्रविष्ट करना होगा ।

दृश्य एवं मनोजगत का परिचय प्राप्त करने के लिए निर्धारित पैमाना एक निश्चित सीमा-मर्यादा के भीतर रहते हुए सीमित जानकारी देने का प्रयोजन पूरा करते हैं । इतने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि बोध का क्षेत्र जितना इन्द्रियों के पकड़ में आता है वहीं तक सीमित है । ज्ञानेन्द्रियों से सम्बन्धित विषयों का भी एक बड़ा भाग जानकारी से अछूता रह जाता है । उदाहरणार्थ, देखने-सुनने एवं अनुभव करने की एक निश्चित सीमा है । कान २० से २० हजार हर्टज (ध्वनि तरंग नापने की इकाई) के बीच की ध्वनि तरंगें को ही सुन पाते हैं । इससे ऊपर अथवा कम डेसीबल की ध्वनियाँ इन कानों से नहीं सुनी जा सकतीं, जबकि हर क्षण ऐसी तीव्र ध्वनियाँ उठती हैं जिनको हमारे कान नहीं पकड़ पाते । जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं वह स्वयं ३१ किलोमीटर प्रति सेकण्ड की गति से भयंकर गर्जन-तर्जन करती हुई सूर्य की परिक्रमा के लिए दौड़ी चली जा रही है, पर उसकी गर्जना को हम कहाँ सुन पाते हैं । ऐसी अनेकों तीव्र एवं मन्द आवाज की ध्वनियाँ निरन्तर प्रवाहित हो रही हैं जिनकी कोई जानकारी हमें नहीं मिल पाती । यही बात दीखने, गन्ध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

फैलाने वाली वस्तुओं के सन्दर्भ में लागू होती है । अर्थात् दृश्यजगत एवं सम्बन्धित पदार्थों की सापेक्ष जानकारी मानव द्वारा निर्धारित पैमानों द्वारा प्राप्त हो पाती है । ये पैमाने भी सीमा का अतिक्रमण करने पर अपनी असमर्थता व्यक्त करने लगते हैं ।

परमात्मा को रंग रूप, स्पर्श आकार से परे माना गया है । अध्यात्म का मूल प्रतिपादन है कि वह कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेंद्रियों की ही नहीं बुद्धि की भी पकड़ सीमा से परे है । गीता कहती है-

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेःपरतस्तु सः ।।

३।४२

इन्द्रियाँ शरीर से परे, इन्द्रियों से परे मन, मन से परे बुद्धि है और वह परमात्मा बुद्धि से भी परे है ।

दृश्य एवं अदृश्य का बोध कराने वाले हमारे निर्धारित पैमाने एवं ज्ञानेन्द्रियाँ जब वस्तु जगत की ही पूरी जानकारी नहीं दे पाते तो भला उस परमसत्ता की जानकारी किस प्रकार दे सकते हैं? ऋषियों ने पवित्र अन्तःकरण को ईश्वरीय अनुभूति का आधार माना है और यह कहा है कि उस विराट् सत्ता का अंश जीवात्मा के रूप में मनुष्य के भीतर बैठा हुआ है; जिसकी अनुभूति कर सकना हर किसी के लिए सम्भव है । अन्तः की निर्मलता, पवित्रता एवं महानता ही एकमात्र कसौटी है जिसका अवलम्बन लेकर ईश्वर का दर्शन एवं अनुभूति समभव है ।

आत्म-साक्षात्कार और ईश्वर प्राप्ति का मार्ग

यह संसार ईश्वर निर्मित है । वही इसका अधिपति है । सभी पदार्थ, सभी प्राणधारी उस आधार पर विनिर्मित हुए हैं कि उससे इस सृष्टि की शोभा-सुषमा बढ़े और अचेतन को अधिक चेतन बनने का-अविकसित को अधिक विकसित होने का अवसर मिले । प्रिय और उपयुक्त लगने वाले पदार्थ एवं प्राणी इसलिए है कि विश्व की सुख-शान्ति को समुन्नत होने में सहायता मिले । अप्रिय, अनुपयुक्त, अवांछनीय एवं अवरोधात्मक तत्व इसलिए हैं कि उनसे बचने बचाने के सन्दर्भ में कुशलता, सजगता एवं समर्थता बढ़ाने के अवसर मिलते रहें । नीति संवर्धन आत्मिक-प्रगति के लिए जितना आवश्यक है उतना ही आवश्यक अनीति उन्मूलन भी है । इस उभय-पक्षीय क्रिया-प्रक्रिया को अपनाकर ही सृष्टि-सौन्दर्य से लेकर प्रगति प्रयोजन के विविध क्रिया-कलाप सम्पन्न होते हैं । यदि संसार में केवल एक उपयुक्त पक्ष ही रचा गया होता तो यहाँ किसी के करने ,सोचने के लिए कुछ बचता ही नहीं सब कुछ नीरस हो जाता और सर्वत्र निष्क्रियता दृष्टिगोचर होती । सृष्टि में सत्-असत् का निर्माण सर्वथा उपयुक्त ही किया गया है । भले ही वह हमें प्रिय-अप्रिय सुखद-दुखद के रूप में उपयुक्त, अनुपयुक्त स्तर का भला-बुरा ही क्यों न प्रतीत होता हो । भले में जहाँ सुख-सन्तोष की अनुभूति मिलती है, वहाँ बुरे और दुखद से जूझते हुए अपनी प्रतिभा को सजग एवं सदाशयता को प्रखर बनाने का समुचित अवसर मिलता है । सुख ईश्वर की दया है और दुख उसकी कृपा । यह दोनों ही वरदान मनुष्य के लिए प्रकारान्तर से उपयुक्त ही नहीं आवश्यक भी हैं ।

ब्रह्मविद्या आत्मा की-परमात्मा की-जीवन की समस्त समस्याओं को हल करने का उपयुक्त उपाय एवं चिन्तन पथ-प्रशस्त करती है । यह कल्प-वृक्ष जिसे प्राप्त हो गया वह उपयुक्त और अनुपयुक्त परिस्थितियों से समान रूप से लाभान्वित हो सकता है और हर भली-बुरी परिस्थिति में खट्टे-मीठे आनन्द का अनुभव करता रह सकता है । बिना अन्तःविक्षोभ का सामना किये मात्र अपनी आन्तरिक विभूतियों के आधार पर किस तरह सुखी, सन्तुष्ट रहा जा सकता है, इस कला का नाम ब्रह्मविद्या है । वस्तुओं पर-व्यक्तियों पर सुखोपलब्धि की मान्यता मृग-तृष्णा के समान कभी पूरी न हो सकने वाली भ्रान्ति है, इसलिए उसे माया कहते हैं । अन्धकार और प्रकाश की तरह ब्रह्मविद्या और माया का विरोध है । जहाँ एक होगी वहाँ दूसरी रह ही न सकेगी ।

ब्रह्मविद्या मानवी अपूर्णता को पूर्णता में विकसित करने की हर्ष-विवाद के आवेशों को शान्त-सन्तुलन में बदलने वाली-परालम्बन को स्वावलम्बन में परिवर्तित करने वाली इस जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है । इसलिए तत्त्वदर्शियों ने ब्रह्मविद्या प्राप्त करने के लिए परिपूर्ण प्रोत्साहन दिया है । स्वर्ग और मुक्ति इसी ब्रह्मविद्या के दो मधुर फल बताये हैं । उसी को अमृत और पारस भी कहा गया है ।

अमृत इसलिए कि इस ज्ञान को प्राप्त करने वाला अपने आपको अविनाशी आत्मा अनुभव करता है शरीर के मरण को दुखद नहीं मानता, साथ ही ऐसी योजनाएँ बनाता है जो अनेक जन्मों में पूरी होने पर भी अधीरता या निराशा उत्पन्न न करें। ब्रह्मज्ञान को पारस इसलिए कहा गया है कि लोहे जैसी घटिया परिस्थितियाँ और ओछे व्यक्तित्व भी उस दृष्टिकोण के प्रभाव से स्वर्ण जैसे सुन्दर एवं बहुमूल्य बन जाते हैं। मानव जीवन में सन्निहित अगणित विभूतयों से लाभ उठा सकने योग्य कुशलता एवं दूरदर्शिता ब्रह्मविद्या द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। साथ ही उस लक्ष्य की पूर्ति भी इस तत्व-दर्शन के सहारे हो सकती है जिसके लिए कि वह सुरदुर्लभ नर शरीर उपलब्ध हुआ है।

ब्रह्मविद्या की महिमा बताते हुए शास्त्र कहता है-

अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ।

मुण्डक १।१।५

जिस ज्ञान के द्वारा परमात्मा को तात्विक रूप से जाना जाता है, उसे परविद्या कहते हैं ।

यह ब्रह्मविद्या परिष्कृत चिन्तन पर-सद्ज्ञान पर आधारित है । इसके लिए उच्चचरित्र निष्ठा वाले सत्कर्म

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परायण, तत्वदर्शी गुरुजनों के पास जाना चाहिए और चिन्तन, संयम, तप एवं सत्कर्मों के सहारे उसे न केवल मस्तिष्क में वरन् जीवन के समग्र क्रिया-कलाप में समाविष्ट करना चाहिए जो ज्ञान व्यावहारिक जीवन का अंग बन सके वस्तुतः वही सच्चा ज्ञान है । कहा गया है-

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्य मायतनम् ।

-केन ४।८

उस ब्रह्मविद्या के तीन आधार हैं-(१)तप, (२)संयम, (३)सत्कर्म । वेद उस ब्रह्मविद्या के अंग हैं । सत्य को प्राप्त करना उसका उद्देश्य ।

आत्मविद्यातपोमूलं तद्ब्रह्मोपनिषत्परम् ।

-नारद परिव्राजकोपनिषद् १।१३

यह ब्रह्मविज्ञान (१)आत्मज्ञान और (२)तपश्चर्या पर आधारित है ।

सांसारिक ज्ञान-आजीविका उपार्जन एवं आहार-विहार जैसे भौतिक प्रयोजनों की ही एक सीमा तक पूर्ति कर सकता है । व्यक्तित्व की उत्कृष्टता, जो कि उच्चस्तरीय सफलताओं की आधारशिला है- तात्विक दृष्टि मिलने से ही प्राप्त होती है । सांसारिक ज्ञान चाहे कितना ही बढ़ा-चढ़ा क्यों न हो, शान्ति और प्रगति का चिरस्थायी पथ प्रशस्त नहीं कर सकता । इसके लिए ब्रह्मज्ञान का-आत्मज्ञान का ही आश्रय लेना पड़ता है ।

आत्मा को, अपने आपको-अपने स्वरूप, हित कर्त्तव्य लक्ष्य को समझने की-हृदयगंम करने की बौद्धिक प्रक्रिया का नाम ज्ञान है । इसी ज्ञान को प्राप्त करना जीवन को सार्थक बनाने वाला परम पुरुषार्थ है । अस्तु, ज्ञान का महत्व और माहात्म्य बताते हैं । आत्मा की प्राप्ति ही परमात्मा की प्राप्ति है । आत्मबोध और ईश्वर दर्शन में मात्र शब्दों का ही अन्तर है । आत्मा का उच्चस्तर ही परमात्मा है । अपने आपको देव चिन्तन और देव कर्म में नियोजित कर देना ही ईश्वर भक्ति-योग साधना एवं तपश्चर्या है । सारा साधना विज्ञान और तत्वदर्शन इसी धुरी के इर्द-गिर्द घूमता है । इस सन्दर्भ में आप्त-वचन इस प्रकार हैं-

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते ।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् ।

-केन २।४

आत्मा से परमात्मा को जाना जाता है। ज्ञान के द्वारा ही अमृतत्व प्राप्त होता है। दिव्य-ज्ञान को ही अमृत के रूप में जाना जाता है ।

एतद्वै सत्येन दानेन तपसाऽनाशकेन ब्रह्मचर्येण निर्वेदनेनानाशकेन षडङ्गैरेव साधयेदेतत्त्रयं वीक्षेत दमं दानं दयामिति न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवलीयन्ते ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति य एवं वेद ।

-सुबालोपनिषत् ३।३

उस परब्रह्म को सत्य, तप, त्याग, उपवास ब्रह्मचर्य और वैराग्य इन छह साधनों से जानना चाहिए । दम, दान और दया इन तीन कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए । इस मार्ग को अपनाने वाला आत्म-तत्व में लीन हो जाता है वह पथ-भ्रष्ट नहीं होता ।

अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ।।

-मुण्ड ३।४

यह परमात्मा सत्य, तपस्या, सम्यक् ज्ञान और ब्रह्मचर्य द्वारा सर्वदा लब्ध होता है । शरीर के भीतर ज्योतिर्मय, शुद्ध परमात्मा विराजमान है जिसे निर्दोष यति लोग दर्शन करते हैं ।

यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेनैतमेव विदित्वा मुनिर्भवति।

-बृहद० ४ अ० ४ ब्रा० २२

यज्ञ, दान, विषयवासना, त्याग रूप, तपस्या द्वारा इसी (परमात्मा) को जानकार (मनुष्य) मुनि होता है ।

जिस ईश्वर की अनुभूति होती है, वह उस परब्रह्म की, सद्गुण, सत्कर्म, सद्विचार एवं सत्स्वभाव रूपी किरणों की विभूतियों को अपने में धारण करता चला जाता है और ब्रह्म जानने वाला ब्रह्मवत् बन जाता है । उसे मायाबद्ध भव-कीटकों की तरह निकृष्ट जीवन जीने में तनिक भी रुचि नहीं रहती । निरन्तर उमंगें उसी स्तर की उठती हैं जैसी कि प्रभु के अनुग्रह प्राप्त सच्चे ईश्वर भक्त में उठनी चाहिए ।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ।

-तैत्तिरीयोपनिषद २ वल्ली १

ब्रह्म सत्यस्वरूप है, ज्ञान स्वरूप है और अनन्त स्वरूप है ।

विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्वैः
प्राणा भूतानि संप्रतिष्ठन्ति यत्र ।
तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य
स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति ।।

हे सोम्य! जो मनुष्य उस अविनाशी परमेश्वर को जान लेता है वह सर्वज्ञ होता है, परमेश्वर में लीन हो जाता है । उसी परमेश्वर में सर्व प्राण पंचभूत सभी इन्द्रियाँ और विज्ञानात्मा आश्रित हैं ।

ब्रह्मविदाप्नोति परम् ।

-तैत्तिरीयोपनिषद २ वल्ली १

ब्रह्म का पहिचानने वाला परम पद प्राप्त होता है ।

ओजोऽसि सहोऽसि बलमसि भ्राजोऽसि देवानां धामनामासि विश्वयमसि, विश्वायुः सर्वमसि, सर्वायुरभिभूरोम ।

आप ही ओज रूप, क्षमताशील, बलवती, तेजस्विनी, दिव्य-ज्योति, विश्वरूपा प्राणियों की प्राण और व्याप्त जीवन हैं ।

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति नचेदिहावेदीन्महती विनष्टि
भतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः प्रेत्यास्मात्लोका दमृता भवन्ति।।

-तलवकारोपनिषद १३

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

इस लोक में यदि ब्रह्म को जाने तो संगति है और यदि यहाँ न जाने तो महाविनाश है । धीर लोग प्रत्येक वस्तु में उसे विशेष रूप से चिन्ता करके इस लोक से जाकर अमृत होते हैं ।

स्वर्ग मोक्ष, ब्रह्मलोक आदि का शास्त्रों में वर्णन है वे कोई स्थान, स्वरूप या क्रिया-कलाप नहीं हैं । अज्ञान का समाधान होने पर जो शुद्ध दृष्टि और निर्मल, विवेक उदय होता है, उसी को स्वर्ग, मुक्ति आदि नामों से पुकारते हैं ।

लोग ईश्वर का अस्तित्व मस्तिष्क मात्र से स्वीकार करते हैं- हृदय से नहीं । जानते भर हैं-मानते नहीं । यदि ईश्वर का अस्तित्व सच्चे मन से हृदयंगम किया जाए और आत्मा का कल्याण परमात्मा के सामीप्य अनुग्रह में माना जाये तो फिर मनुष्य न तो कुमार्गगामी हो सकता है और न काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद-मत्सर के पाश में बँध हुआ वासना-तृष्णा की कीचड़ में फँस सकता है । जिसे आत्म-कल्याण की, ईश्वरीय अनुग्रह की आकांक्षा है उसके लिए उत्कृष्ट स्तर कर जीवनयापन करना ही एकमात्र मार्ग रह जाता है । ऐसे ही सद्भावना एवं सत्प्रवृत्तियों में निरत ईश्वर भक्त, परमात्मा की प्राप्ति का आनन्द लेते और जीवन लक्ष्य प्राप्त करते हैं ।

ऐसे ईश्वर-भक्तों की भक्ति ईश्वर को करनी पड़ती है । ऐसे सच्चे भक्त जहाँ उस परमेश्वर को बुलाते हैं । वहाँ वह निश्चित रूप से दौड़ा आता है ।

ईश्वर दर्शन इस प्रकार होता है

आँख से, इन्द्रियों से प्रत्यक्ष ईश्वर का दर्शन करना हो तो उसे व्यक्ति के अन्तरंग में छिपी हुई, आत्म-ज्योति के रूप में अथवा इस जगत की जड़-चेतन-सत्ता में आलोकित देखा जा सकता है । यही विराट् ब्रह्म है । जिसका दर्शन गीता के अर्जुन ने किया था । यशोदा को बालकृष्ण ने इसी ब्रह्म स्वरूप की झाँकी कराई थी । कौशिल्या ने पालने में झूलते हुए राम में उसे देखा था । काकभुसुण्डि की ईश्वर दर्शन आकांक्षा भी इस प्रकार पूरी हुई थी । व्यक्ति पर शरीर और मन पर छाये कषाय-कल्मषों के अन्तर को चीरकर यदि उसकी मूल सत्ता में ओत-प्रोत सत्य, शिव और सुन्दर को देखा जा सके तो नर के भीतर नारायण को क्रीड़ा-कल्लोल करते हुए देखा जा सकता है । इसी प्रकार विश्व सत्ता की अन्तरात्मा-ब्रह्मचेतना की अनुभूति हो ही सके तो आँखों के सामने फैले हुए इस विराट् में परमात्मा के दर्शन हो सकते हैं । यदि ईश्वर को प्रत्यक्ष ही देखना है, व्यक्ति की अन्तरात्मा में और विराट् की विश्व चेतना में उसकी झाँकी हो सकती है । इसके लिए दिव्य-चक्षु चाहिए । दिव्य-चक्षु अर्थात् वह दार्शनिक दृष्टिकोण जो कलेवर के भीतर प्रवेश करके अन्तःस्थिति की सूक्ष्मता को समझ सकने में समर्थ हो । ईश्वर-दर्शन के लिए यह आधार आवश्यक है । कारण कि उसकी स्थूलता तो पंच- तत्वों के रूप में ही दीख पड़ेगी । सत् चित् आनन्द तो सूक्ष्म ही है, उसे आँखों से नहीं आत्मानुभूति से ही अनुभव किया जा सकता है । दिव्य-चक्षु इसी आवश्यकता की पूर्ति करते हैं ।

शास्त्र ने इस विराट् ब्रह्म का वर्णन कितने ही अलंकारित रूप में किया है । ऋग्वेद १०।९०।१२ "ब्राह्मणोस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः"..... .....मन्त्र में चारों वर्णों को ब्रह्म शरीर कहा है । ऋग्वेद १०।९०।१ में उसका उल्लेख "सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्"..... के रूप में मिलता है । उसे सहस्त्र अनन्त, सिर, आँख, हाथ पैर वाला बताया गया है । उसने न केवल मनुष्य को वरन् समस्त पृथ्वी को-समूचे ब्रह्माण्ड को घेर रखा है- "सः भूमि विश्वतः कृत्वा" जिस प्रकार शरीर के भीतर अगणित कोशाओं और तन्तुओं का अस्तित्व और बाहर बाल रोम, कूप आदि का विस्तार है, उसी प्रकार उस विराट् ब्रह्म के अवयवों की तरह अनेकानेक प्राणी एवं पदार्थ देखे जा सकते हैं ।

यह तो हुआ उसका स्वरूप निर्धारण, अब उसकी अनुभूति कैसे हो ? यह प्रश्न सामने आता है । खाद्य पदार्थों को देखने भर से तो काम नहीं चलता । उनके चखने, चबाने और उदरस्थ करने से ही बात बनती है । खाद्य जब पेट में जाकर पचता और रक्त-माँस आदि के रूप में शरीर का अंग बनता है तभी उससे चक्षुओं एवं जीवन की प्राप्ति होती है । ईश्वर को दिव्य चक्षुओं से देख लेने भर से किसी उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती । ईश्वर दर्शन का उद्देश्य उस परम सत्ता का जीवन-सत्ता में समन्वय होने पर ही पूरा होता है । देखने के लिए तो विराट् ब्रह्म की वे तस्वीरें बाजार से खरीदी जा सकती हैं, जिसमें कृष्ण द्वारा गीता में वर्णित विराट् का अलंकारिक चित्रांकन किया गया है, पर उसे देख लेने भर से किसका क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ।

जिस समय मनुष्य को यह अनुभूति होती है कि 'ईश्वर मेरे अन्दर है; उसी समय वह ईश्वर रूप हो जाता है ।' इस तथ्य के प्रतिपादन में ऋग्वेद ६।४७।७८ की साक्षी है- "इन्द्रोमायाभिः पुरुरूप ईयते" ऐसा इस तथ्य को जान लेने पर भर से संतोष नहीं कर सकता उसका आचरण एवं चिन्तन भी वैसा ही परिष्कृत हो जाता है जैसा कि ईश्वर के साथ निरन्तर रहने वाले का होना चाहिए । पारस को छूकर लोहे का सोना हो जाना चन्दन के समीपवर्ती पादपों में सुगन्ध आना, अग्नि की समीपता से उष्णता बढ़ना-समीपवर्ती को छूत लगना यदि सही है तो कोई कारण नहीं कि जिसे अपनी अन्तरात्मा में ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव होता है वह उसी स्तर का बनने में क्यों असफल रहेगा । हाँ, अन्तरात्मा में वैसी अनुभूति न होती हो। जीभ, कान और मस्तिष्क तक ही आत्म-ज्ञान की विडम्बना उलझकर रह गई हो तो बात दूसरी है ।

उस ईश्वर ने अपनी सत्ता को टुकड़े-टुकड़े करके सर्वत्र बिखेर दिया है । यह बिखराव 'अनेकधा' और उसका समन्वय 'एकधा' कहा गया है । अथर्व १०।७।९ में

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहा गया है- "एकं यदंगं अकृणोत्सहस्त्रधा ।" अर्थात् परमेश्वर ने अपने एक ही अंग को अनेक टुकड़ों में काटकर बखेर दिया । "एकं अंग सहस्त्रधा अकृणोत्" में भी इसी तथ्य की पुनरावृत्ति है ।

ईश्वरानुभूति की स्थिति का विवेचन करत हुए यजुर्वेद ४०।६ में गीता के एक श्लोक में मिलता-जुलता मन्त्र आता है-

यस्तु सर्वाणि भूतान्यिात्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकत्सति ।।

अर्थात्- "जो सब प्राणियों को अपने में और अपने को सब प्राणियों में देखता है । उन्हें अपने ही समान मानता है, उसे अज्ञानान्धकार में नहीं भटकना पड़ता ।

यही अद्वैत का प्रतिपादन है । हमें दूसरों से वही व्यवहार करना चाहिए; जो उनसे अपने लिए अपेक्षा करते है । यह नीतिवचन इसी आत्मानुभूति की ओर इंगित करता है कि हमारी आत्मीयता शरीर परिवार तक सीमित न रहकर अन्यान्यों तक बढ़ती विकसित होती चली जाये । सब अपने लगने लगें और अपने भीतर अन्यान्यों की उपस्थिति परिलक्षित होने लगे । जिस प्रकार शरीर एवं परिवार को अपना मान कर उनकी सुविधा, सुरक्षा एवं उन्नति का ध्यान रखा जाता है, वैसे ही भाव व्यापक होते-होते देश, धर्म, समाज की सीमाओं को पार करते-करते प्राणिमात्र तक फैल पड़े तो समझना चाहिए कि नर ने नारायण की-आत्मा ने परमात्मा की-पुरुष ने पुरुषोत्तम की-जीव ने ब्रह्म की स्थिति प्राप्त कर ली । इसी ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त करने के उपरान्त आत्मा मोह आवरणों से मुक्त हो जाता है । इसी को मोक्ष कहा गया है । संकीर्ण स्वार्थपरता ही माया है । वासना, तृष्णा, अहंता और उद्विग्नता के बन्धन ही भवबन्धन कहलाते हैं और नागपाशों में जकड़ा हुआ प्राणी विभिन्न प्रकार के शोक-सन्ताप सहता है । यह टूटने लगें तो समझना चाहिए कि जीवन-मुक्त होने का परम लक्ष्य प्राप्त हो गया । आत्मा के निर्मल और व्यापक स्वरूप का आभास होने लगे तो समझना चाहिए कि आत्म-साक्षात्कार का, ईश्वर दर्शन का लक्ष्य पूरा हो रहा है ।

मुक्ति और ईश्वर प्राप्ति पृथक् नहीं-एक हैं

जड़ और चेतन के बीच अन्तर यह है कि क्षुद्र चेतन जीव भी स्वतन्त्र रूप से सोच-विचार सकता है, निर्णय ले सकता है, जबकि जड़ शक्ति सम्पन्न होते हुए भी स्वतन्त्र विचार करने में सर्वथा असमर्थ है । विशालकाय इंजन, हवाई जहाज और कम्प्यूटर तक मनुष्य द्वारा संचालित होते हैं। यन्त्र के कार्य प्राणियों की भाँति कभी नहीं हो सकते। जीवित प्राणियों में स्वाधीनता है, बुद्धि है- जबकि जड़ में इसका अभाव है। जड़ नियमों में आबद्ध है। चेतनबद्ध नहीं है । जिस स्वाधीनता के कारण जीव यन्त्र से भिन्न है उसी पूर्णभाव को पाने के लिए सारी चेष्टाएँ चल रही हैं । प्राणी जगत की सम्पूर्ण क्रियाओं का एकमात्र लक्ष्य है-अधिकाधिक स्वतन्त्र होना। इसी को आध्यात्मिक भाषा में 'मुक्ति' के लिए प्रयत्न कहा गया है ।

पूर्णता की प्राप्ति अथवा मुक्ति को जीवन-लक्ष्य माना है । संसार भर में प्रचलित साधना-उपक्रमों का एकमात्र लक्ष्य यही है । जीवन में सभी व्यापार जाने-अनजाने इसी लक्ष्य की ओर बढ़ रहे हैं । पराधीनता मानवी प्रकृति के विरुद्ध है। उसे तोड़ने के लिए मनुष्य हर सम्भव प्रयास करता है । बड़ी-बड़ी राजनैतिक क्रान्तियाँ परतन्त्रता की बेडियों को तोड़ने के लिए हुई हैं । स्वतन्त्रता प्राप्ति का भाव इस बात का प्रमाण है कि मानवी अन्तराल में कोई ऐसी वस्तु है, जो बन्धनों से निकलने के लिए व्याकुल है। अन्दर बैठी आत्मा ही मुक्त होने का भाव संप्रेषित करती रहती है । बाह्य जगत में मुड़कर जब अन्तःक्षेत्र में जड़ जमाकर बैठी हुई पशु प्रवृत्तियों के बन्धनों को तोड़ने को प्रयास किया जाता है तो यह प्रयास ही मुक्ति का आधार बनता है ।

मुक्त होने का भाव मनुष्य के बीज रूप में विद्यमान है । उसकी पूर्ण उपलब्धि के बिना शन्ति एवं सन्तोष मिल सकना सम्भव नहीं। जन्म लेते ही नवजात शिशु रुदन आरम्भ करता है । सांसारिक बंधनों के प्रति जीवात्मा का प्रत्यक्ष विरोध शिशु के रोने के रूप में प्रकट होता है । बचपन में पारिवारिक एवं सामाजिक बन्धनों का अंकुश उसे अच्छा नहीं लगता । युवावस्था में वह अपने को अधिक मुक्त अनुभव करता है । किन्तु स्थूल बन्धनों के ढीला होने पर भी आन्तरिक लोभ-मोह के बन्धन उसे व्यग्र बनाये रहते हैं । उनसे छुटकारा पाने के लिए अन्तः प्रेरणाएँ उभरती रहती हैं । किन्तु स्वतन्त्रता के इस अन्तः भाव का अभिप्राय वह वस्तुओं का स्वतन्त्र उपयोग करने में समझता है । यही भारी वैचारिक भूल होती है । वस्तुओं के स्वतन्त्र उपयोग तो मनुष्य को उनमें और भी आबद्ध करता आता है । आन्तरिक भावों की प्रेरणा दबकर रह जाती है । परतन्त्रता और भी अधिक बढ़ती जाती है । यही कारण है कि बाह्य स्वतन्त्रता के होते हुए भी अन्तः-प्रवृत्तियों की दासता के कारण आज मनुष्य अधिक पराधीन है । साधनों के उपभोग की आज जितनी अधिक छूट मिल रही है मनुष्य उतना ही व्यग्र होता जा रहा है । लोभ-मोह के बन्धनों में स्वयं को जकड़ता जा रहा है । स्वतन्त्रता का यह उपहासास्पद प्रयास मनुष्य को पराधीनता की ओर ले जा रहा है ।

मनुष्य का आन्तरिक स्वभाव ही प्रकृति विद्रोही है । अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण यह प्रकृति के नियमों का बन्धन स्वीकार नहीं करता । यही कारण है कि मनुष्य जैसे-जैसे वस्तुओं के आकर्षण में आबद्ध होता जाता है । उसकी व्यग्रता उसी अनुपात में बढ़ती जाती है । यह इस बात का प्रमाण है कि अपने अन्दर ऐसा कोई स्वतन्त्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

लोभ-मोह के प्रकृति बन्धनों से निकलने के लिए छटपटाता रहता है। इस अन्तःभाव को न समझकर सामान्यतया लोग स्थूल जगत के नीति-नियमों को तोड़ने को ही स्वतन्त्रता समझने की भूल कर बैठते हैं, जबकि यह प्रेरणा आन्तरिक दुष्प्रवृत्तियों से निवृत्त होने के लिए होती है ।

स्वतन्त्र होने के स्थूल प्रयास विभिन्न प्रकार के संघर्षों के रूप में देखे जाते हैं तथा सामाजिक अव्यवस्था के कारण बनते हैं । यह प्रवृत्ति जब आन्तरिक प्रकृति के बन्धनों को तोड़ने के लिए सचेष्ट होती है तो मुक्ति, लक्ष्यप्राप्ति का आधार बनती है। महापुरुषों के उज्ज्वल इतिहास साक्षी है कि मुक्त होने के लिए सबने कठोर संघर्ष किये हैं। किन्तु यह संघर्ष बाह्य परिस्थितियों अथवा व्यक्तियों से नहीं, आन्तरिक प्रवृत्तियों से हुए हैं। बाह्य क्रिया-कलाप, छुट-पुट संघर्ष भी आन्तरिक वृत्तियों के परिशोधन एवं उन पर विजय प्राप्त करने के निमित्त होते रहे हैं ।

भूल यह होती है कि संचित कुसंस्कारों की प्रेरणाओं को अपनाने पर होने वाली हानि को न समझकर प्रकृति के बाह्य नियमों की अवहेलना करने, उसे तोड़ने को ही मुक्ति मान लिया जाता है । इस प्रयास का परिणाम यह होता है कि प्रकृति की जड़ता में मनुष्य और भी अधिक आबद्ध होता जाता है । संसार में चल रहे अधिकांश स्वतन्त्रता के प्रयास लगभग इसी स्तर के हैं। चाहे वह नैतिक हों, सामाजिक हों अथवा राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय ।

स्वतन्त्र होना सभी चाहते हैं। उसके लिए सही अथवा गलत प्रयास करते हुए सभी देखे जाते हैं । किन्तु यह मुक्ति प्रकृति के भीतर नहीं है । उसके भीतर तो केवल नियम है। जहाँ नियम है-वहाँ बन्धन हैं । इन स्थूल बन्धनों को बिना उचित-अनुचित का विचार किये तोड़ने पर उतारू हो जाना मुक्ति प्रयास नहीं है । मुक्ति का लक्ष्य तो अन्तः की दुष्प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करने पर ही सम्भव है ।

स्थूल-जगत में तो यह प्रयास समस्त जड़-चेतन में एक स्वसंचालित प्रक्रिया के रूप में चलता रहता है । पौधा जमीन की गहराई में जाते ही बन्धनों को तोड़ते हुए निकलता है । अंकुरित बीज सीमाबद्ध क्षेत्र में न रहकर अपने को विस्तृत करता है । यह भी मुक्ति का स्थूल प्रयास है । जो उसे विकसित करता तथा फल-फूल से लदे पौधों का स्वरूप प्रदान करता है । जीव जन्तुओं में शारीरिक एवं मानसिक गतिविधियों में इस प्रकार का प्रयास निरन्तर चलता रहता है ।

वासना-तृष्णा, लोभ-मोह की वृत्तियों से मुक्त होना ही वास्तविक मुक्ति है। बाह्य प्रकृति के बन्धनों को तोड़ने में सफलता मिल भी जाये तो भी आन्तरिक प्रवृत्तियाँ पुनः उन बन्धनों में आबद्ध कर देंगी । साधना उपचारों का यही लक्ष्य होता है । आन्तरिक परिष्कार एवं प्रवृत्तियों पर नियंत्रण । जप-तप, अनुष्ठान की कठोर साधनाएँ इसीलिए की जाती हैं । साधना के विशाल उपक्रम इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए ही बनाये गये हैं । सबका एकमात्र लक्ष्य है-अन्तःप्रकृति पर नियन्त्रण ।

मुक्ति के इस मूर्त स्वरूप को ही हम ईश्वर कहते हैं । जिसकी प्राप्ति को जीवन का परम लक्ष्य माना गया है । उस आकांक्षा को एक पल भी त्यागा नहीं जा सकता । जहाँ भी जीवन है वहीं मुक्ति का किसी न किसी रूप में प्रयास-अनुसन्धान चल रहा है । यह मुक्ति ईश्वर स्वरूप है। इसके द्वारा ही प्रकृति पर आधिपत्य प्राप्त किया जा सकता है । बाह्य प्रयत्नों की अपेक्षा आवश्यकता इस बात की है कि अपनी चेष्टाओं को अन्तर्मुखी बनाया जाए । वासना-तृष्णा के मानसिक विकारों को दूर किया जाए । इसके लिए समग्र साधना का अवलम्बन लेना होगा। साधना के द्वारा जैसे-जैसे साधक ईश्वरीय प्रकाश के निकट पहुँचता है वैसे-वैसे उसके मन के विकार दूर होते जाते हैं । लोभ-मोह की अन्ध-तमिस्रा परमात्मसत्ता के प्रकाश के आलोक से तिरोहित हो जाती है । उस स्थिति में सांसारिक आकर्षण साधक को प्रभावित नहीं कर पाते । 'मुक्त पुरुष' जो अन्तरात्मा में विद्यमान है, ईश्वरीय प्रकाश के अवतरित होते ही अपने स्वतन्त्र स्वरूप में प्रकाशित होता है । इस स्थिति को ही 'मुक्ति' कहा गया है । जिसे प्राप्त कर और कुछ पाने की कामना नहीं रह जाती । मुक्ति और ईश्वर प्राप्ति दोनों में शाब्दिक भिन्नता है वस्तुतः ये दोनों एक ही उत्कृष्ट मनोभूमि की परिचायक हैं ।

* * *

परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवनकाल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनों का निर्माण, उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युग निर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी, जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईंट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्र निर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़, पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद काँग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं-सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति-स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रँगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका- मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोवाजी के चले जाने के बाद अस्तित्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण, आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक, भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि.संवत् २०८६ में जन्मे, राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराममत्त कहलाने वाले, आचार्यश्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रान्ति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माताजी के रूप में खड़ा किया, 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका अपनी लेखनी से लिखी, ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उन्होंने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाव लाये कोई क्रान्ति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्त्वदर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनों में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में सम्पन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरुसत्ता को त्याग करने की, यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उन्होंने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेध के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से सम्पन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी **गायत्री तपोभूमि, मथुरा** जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक अपनी जन्मभूमि आँवलखेड़ा से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी १२ वर्ष पूर्व आरम्भ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनों का निर्माण उनके अंतःस्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा हवेली कहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप, **अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा** के रूप में विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जो कि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ में बनाई गई। १९५३ में क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों, प्रज्ञा संस्थानों, भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों, चरणपीठों का महत्त्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं, ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत् उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्यपूर्ण था।

परमपूज्य गुरुदेव की महत्त्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ इस प्रकार हैं–

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शान्तिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार ।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन, ब्राह्ममुहूर्त में, जो अँग्रेजी तारीख से २० सितम्बर, १९११ के दिन आती थी, में जन्मा। एक श्रीमंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित, पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित, बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलालेखों की स्थापना हुई है- वहीं पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं- जैसी उनके समय में थीं। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुँआ जिसे पूरे गाँव का एकमात्र मीठे जल वाला कुँआ माना गया- वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीरधारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशाधारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क-पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इण्टर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धनराशि द्वारा विनिर्मित है। १९६३ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म-निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ एवं कन्या इंटर कॉलेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा जो एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित, संस्कारवान, आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव-निर्माण की सांस्कृतिक व भावनात्मक क्रान्ति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये, जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा में स्थित है। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रान्तिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरम्भ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ व अन्यान्य लेखों की पंक्तियों के माध्यम से सम्पन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतःस्थल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुःखी, तनावग्रसित

व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परमवंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी ट्रेडिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी-सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजाघर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में १९४२-४३ में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ में सहस्र कुण्डी यज्ञ की आधारशिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परमवंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं सम्पन्न हुआ। जनसम्मेलनों, छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट् यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन, विस्तार, डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन वहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षत: देखा जा सकता है।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पू. गुरुदेव की साधनास्थली व प्रात:काल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्रकुण्डी यज्ञायोजन सम्पन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा सम्पन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्यश्री ने युग निर्माण योजना के शत-सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युग निर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरम्भ होने की घोषणा की। यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युग निर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शान्तिकुंज, हरिद्वार ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड ज्योति दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालय में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुन: एक वर्ष बाद लौटे व तब शांतिकुंज को उनने एक बड़ा विसट रूप देने, सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया। इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने २४ कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़

गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था। पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्तन सत्र, जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता यहीं गढ़े। यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का ताँता लगा रहता है। पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्तऋषियों की मूर्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को सम्पन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत् चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार सम्पन्न होते हैं। इस बीच परमवंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ सम्पन्न करना आरम्भ रखा। देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया। इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक एकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं, १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ । विलक्षण, दुर्लभ जड़ी-बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थस्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया। यहीं उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी। स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता-जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवीं स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है। इसे १९७१ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था। वर्तमान शांतिकुंज- गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनों को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फलश्रुतियों सहित स्थापित हैं। द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच-पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये। इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है। यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों, जैव विद्युत आदि पर पड़ा, यह देखा जाता है। विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं। तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित है, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं। यहाँ प्रायः ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं। यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टास्तर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीली संदोह रचकर चली गयी। प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान ४००००० से अधिक प्रज्ञामण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जाएँ तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावनत होने का मन करता है। ❑❑❑

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्त्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गूढ़ विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२
(सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अवदान अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६ ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे—

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org